Jivaraj Jain Granthamala No. 3

General Editors ;

Prof. A. N. Upadhye & Prof. H. L. Jain

SHUBHACHANDRA'S

PANDAWA-PURANAM

(An Ancient Sanskrit Text with Hindi Translation.)

Authentically edited with Various Readings etc.

By

Agamabhaktiparayana, Pandit Jinadas Parshwanatha Shastri,
Nyayatirth, Sholapur.

Published by

JIVRAJ GAUTAMCHAND DOSHI,

Founder and President,

Jain Samskriti Samraksaka Samgha,

SHOLAPUR.

1954

प्रकाशक—
जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर.

जीवराज जैन ग्रन्थमालाका परिचय

शोलापुर निवासी दशम प्रतिमाधारी जीवराज गौतमचंद्रजी दोशी कई वर्षोंसे संसारसे उदासीन होकर धर्मकार्यमें अपनी वृत्ति लगा रहे हैं। सन १९४० में उनकी यह इच्छा प्रबल हो उठी कि अपनी न्यायोपार्जित संपत्तिका उपयोग विशेषरूपसे धर्म और समाजकी उन्नतिके कार्यमें करें। तदनुसार उन्होंने समस्त देशका परिभ्रमण कर जैन विद्वानोंसे साक्षात् और लिखित सम्मतियां इस बातकी संग्रह की कि कौनसे कार्यमें संपत्तिका उपयोग किया जाय। स्फुट मतसंचय कर लेनेके पश्चात् सन् १९४१ के ग्रीष्म कालमें उन्होंने तीर्थक्षेत्र गजपंथा (नाशिक) के शीतल वातावरणमें विद्वानोंकी समाज एकत्रित की, और ऊहापोह पूर्वक निर्णयके लिये उक्त विषय प्रस्तुत किया। विद्वत्सम्मेलनके फलस्वरूप पू. जीवराजजीने जैन संस्कृति तथा साहित्यके समस्त अंगोंके संरक्षण, उद्धार और प्रचारके हेतु 'जैन संस्कृति संरक्षक संघ' की स्थापना की, और उसके लिये (३००००), तीस हजारके दानकी घोषणा कर दी उनकी परिग्रहनिवृत्ति बढती गई और सन १९४४ में उन्होंने लगभग (२०००००) दो लाखकी अपनी संपूर्ण संपत्ति संघको ट्रस्टरूपसे अर्पण की। इसी संघके अंतर्गत जीवराज जैन ग्रंथमालाका संचालन हो रहा है। प्रस्तुत ग्रंथ इसी मालाका तृतिय पुष्प है।

मुद्रक—
फुलचंद हिराचंद शाह,
वर्धमान छापखाना, सोलापुर.

॥ श्रीः ॥

जीवराज-जैनग्रन्थमालायाश्चतुर्थो ग्रन्थः ।

★

श्री-शुभचन्द्राचार्य-विरचितं

पाण्डव-पुराणम् ।

[जैनचरितविषयकः संस्कृतपद्य-ग्रन्थः ।]

◆

षोडशपुरनिवासिना न्यायतीर्थ आगमभक्तिपरायणपदभूषितेन जिनदासशास्त्रिणा
पाठान्तरेण, संयोज्य हिन्दी भाषान्तरेण सह सम्पादितम् ।

ग्रन्थमालायाः सम्पादकौ
प्रो. ए. एन्. उपाध्ये, एम्. ए. डी. लिट्, कोल्हापुर
प्रो. हिरालाल जैन, एम्. ए. डी. लिट्, नागपुर

प्रकाशकः
ब्र. जीवराज गौतमचंद दोशी,
अध्यक्ष-जैन-संस्कृति-संरक्षक-संघ सोलापुर.

मुद्रकः
सोलापुरस्थ-वर्धमानमुद्रणालय- स्वामी हिराचन्द्रसुतः फुलचन्द्रः शहा

सन १९५४ ई.

मूल्यं रूप्यकदशकम् ।
मूल्य दस रुपये

वीरनिर्वाणसंवत् २४८०
विक्रमसंवत् २०१०

जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुरसे
प्रकाशित ग्रंथ

[हिन्दी-विभाग]

१	तिलोयपण्णत्ति	प्रथम भाग	किंमत रुपये १२
२	तिलोयपण्णत्ति	द्वितीय भाग	„ „ १६
३	यशस्तिलक और भारतीय संस्कृति	अंग्रेजी प्रबन्ध	„ „ १६
४	पाण्डवपुराण	श्री शुभचन्द्राचार्यकृत	छप रहे हैं । शीघ्र प्रकाशित होंगे ।
५	जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति	श्रीपद्मनन्द्याचार्य रचित	
६	प्राकृत व्याकरण	श्री त्रिविक्रमकृत	
७	भव्यजन कण्ठाभरण	श्री अर्हद्दास कविकृत	
८	हैद्राबाद शिलालेख		

[मराठी-विभाग]

१	रत्नकरंड श्रावकाचार	पं. सदासुखजीकृत	किंमत रु. १०
२	आर्या दशभक्ति	पं. जिनदासजीकृत	„ रु. १
३	श्री पार्श्वनाथ-चरित्र	स्व. हिराचंद नेमचंदकृत	आणे ८
४	श्री महावीर-चरित्र	स्व. हिराचंद नेमचंदकृत	आणे ८
५	साहित्याचार्य पं. पन्नालालजी व महापुराण	ब्र. जी. गौ. दोशीकृत	आणे ४
६	मराठी तत्त्वार्थसूत्र	ब्र. जी. गौ. दोशीकृत	आणे १२
७	तत्त्वसार व महावीर-चरित्र [आर्यावृत्तांत]	श्रीदेवसेनाचार्यकृत	आणे २
८	ब्र. जीवराजभाईचें जीवन-चरित्र	सुभाषचंद्र अक्कोळेकृत	आणे २
९	श्री कुंदकुंदाचार्यांचें रत्नत्रय [समयसारादि तीन ग्रंथांचा सारांश] छापत आहे		
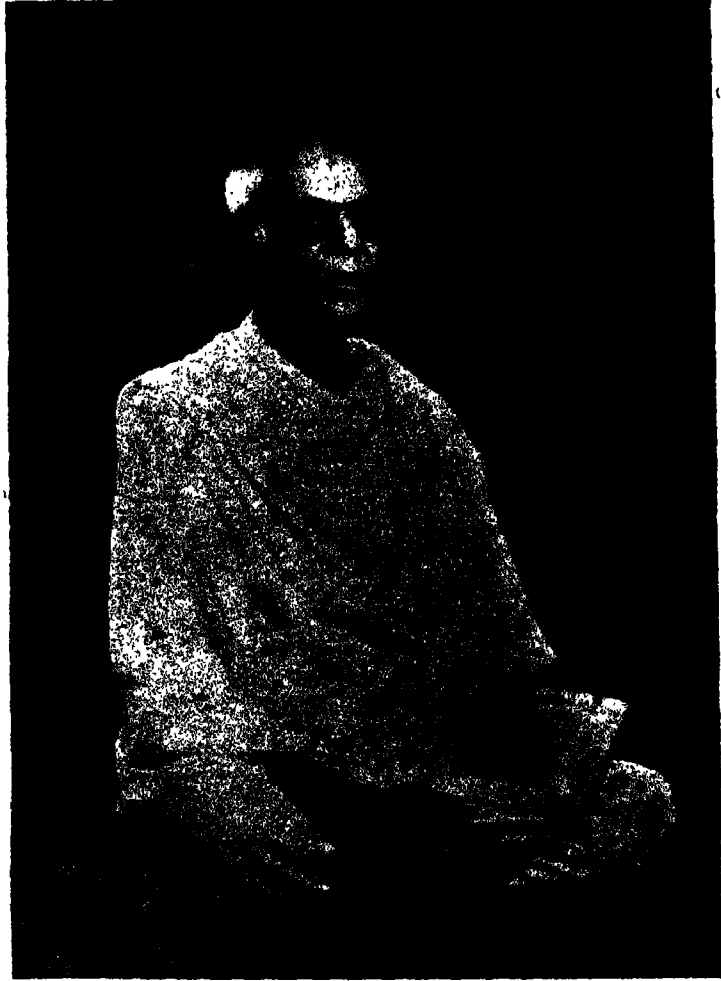
ब्र. जीवराज गौतमचंद दोशी

संस्थापक,

जैनसंस्कृति-संरक्षक-संघ, सोलापुर.

प्रस्तावना

पाण्डवपुराण व उसके कर्ता शुभचन्द्र

प्रस्तुत ग्रन्थके कर्ता भट्टारक शुभचन्द्र हैं। ये भट्टारक विजयकीर्तिके शिष्य और ज्ञानभूषणके प्रशिष्य थे। इनके शिष्य श्रीपाल वर्णी थे। इनकी सहायतासे भट्टारक शुभचन्द्रने वाग्वर (वागड) प्रान्तके अन्तर्गत शाकवाट (सागवाडा) नगरमें विक्रम संवत् १६०८ भाद्रपद द्वितीयाके दिन इस पाण्डवपुराणकी रचना की[1]। इसकी श्लोकसंख्या ६००० है।

शुभचन्द्र भट्टारक बहुत विद्वान् व अनेक विषयोंके ज्ञाता थे। पाण्डवपुराणके अतिरिक्त उन्होंने औरभी अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है। देखिये प्रस्तुत पुराणकी कविप्रशस्ति पृ. ५१४ श्लोक १७३-८०।

यहां ग्रन्थरचनाके पूर्व भ. शुभचन्द्रने सिद्धों व वृषभ तीर्थंकर आदिकी स्तुति करते हुए भद्रबाहु (श्रुतकेवली), विशाखाचार्य, कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंक, जिनसेन (महापुराणके कर्ता) और भदन्त गुणभद्रका स्मरण किया है। इसके साथही उन्होंने यहभी कह दिया है कि मै इनके (जिनसेन व गुणभद्रके) पुराणार्थको देखकर पाण्डवोंके पुराण-भारतको कहता हूं। आगे चलकर श्लोक २२ में यहभी प्रगट किया है कि शास्त्रके पारगामी जिनसेन [इन जिनसेनसे हरिवंशपुराणके कर्ता का अभिप्राय इहां प्रतीत होता है] आदि अनेक कवि हो गये हैं, उनके चरणोंके स्मरणसे उक्त कथाको कहूंगा।

पाण्डवपुराणकी रचनामें भट्टारक शुभचन्द्रने हरिवंशपुराण, आदि व उत्तरपुराण तथा श्वे. देवप्रभ सूरिविरचित पाण्डवचरित्रका काफी उपयोग किया है, ऐसा ग्रन्थके अन्तरङ्ग परीक्षणसे स्पष्ट प्रतीत होता है।

हरिवंशपुराण

इसकी रचना कवि जिनसेनाचार्यके द्वारा शकसंवत् ७०५ (विक्रम संवत् ८४०) में की गई है[2]। इसमें प्रधानतया यादवोंका चरित्र वर्णित है। परन्तु पुराण ग्रन्थ होनेसे इसमें यथास्थान (जैसे सर्ग ४५, ४६, ४७, ५०-५२, ५४ व ६४ आदि) पाण्डवोंके चरित्रकाभी वर्णन पाया जाता है। इससे पूर्वके किसी अन्य दिगम्बर ग्रन्थमें सम्भवतः इतना विस्तृत पाण्डववृत्त नहीं पाया जावेगा। यद्यपि आचार्य जिनसेनने इसमें पाण्डवोंकी कथाका संक्षेपमेंही कथन किया है। तथापि वह उत्तरपुराणकी अपेक्षा कुछ अधिक विस्तृत है[3]। भ. शुभचन्द्रने हरिवंशपुराणोक्त कथा तथा शब्द-

---

१ देखिये पां. पु. २५-१८७. २ ह. पु. ६६, ५२-५३.

३ उत्तरपुराणमें पाण्डवोंका वृत्तान्त बहुत संक्षेपसे पाया जाता है। यह सूचना वहां स्वयं गुणभद्राचार्यने भी की है। यथा—

अत्र पाण्डुतनूजानां प्रपञ्चोऽल्पः प्रभाष्यते। ग्रन्थविस्तरभीरूणामायुर्मेधानुरोधतः॥ उ. पु. ७२-१९७

रचनाका आश्रय लेते हुए उक्त कथाको अपनी रुचि व आम्नायके अनुसार यत्र-तत्र परिवर्तित व परिवर्धितभी किया है। उदाहरणार्थ, हरिवंशपुराणकारने पाण्डवोंकी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई है-

' शान्तनु राजाकी पत्नी योजनगन्धा थी। इससे उनके धृतव्यास पुत्र हुआ। धृतव्यासका पुत्र धृतधर्मा और उसकाभी पुत्र धृतराज था। धृतराजके अम्बिका, अम्बालिका और अम्बा नामकी तीन पत्नियां थी। उनसे धृतराजके क्रमशः धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ये तीन पुत्र हुए। इनमें धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधन आदि थे। पाण्डुका विवाह कुन्तीके साथ हुआ था। उसके विवाह होनेके पूर्व कन्यावस्थामें कर्ण पुत्र हुआ, पश्चात् विवाहित अवस्थामें युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन ये तीन पुत्र हुए। नकुल और सहदेव पाण्डुकी द्वितीय पत्नी मद्रीसे उत्पन्न हुए थे ' यहां भीष्मका जन्म शान्तनुकीही परम्परामें गंगा नामक मातासे बतलाया गया है। [श्लोकमें जो ' रुक्मिणः ' पद है वह भीष्मके पिताका नाम प्रतीत होता है [1]]।

प्रस्तुत पुराणमें तो उनकी उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई गई है– शान्तनुके सवकी नामक पत्नीसे पराशर राजा उत्पन्न हुआ था। उसका विवाह जन्हु विद्याधरकी पुत्री जाह्नवी [गंगा] के साथ हुआ। इन दोनोंके गांगेय पुत्र उत्पन्न हुआ। गांगेय [भीष्म] के अपूर्व त्याग व विशेष प्रयत्नसे पराशरको नाविक-परिपालित रत्नाङ्गद पुत्री गुणवतीका [योजनगन्धिकाका] लाभ हुआ था। पराशर और गुणवतीने व्यासको जन्म दिया। व्यासके सुभद्रा पत्नीसे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें पाण्डुने कुन्तीसे कर्ण [अविवाहित अवस्थामें], युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा माद्रीसे नकुल और सहदेवको उत्पन्न किया।

इस परम्परामें हरिवंशपुराणके कर्ताने केवल शान्तनु आदिके नामोंकाही उल्लेख किया है, किन्तु पाण्डवपुराणके कर्ताने उन नामोंके आश्रित कुछ विशेष घटनाओंकोभी जोडा है–जैसे पराशर और गुणवती आदि। गुणवती यह नाम सम्भवतः शुभचन्द्रके द्वाराही कल्पित किया गया प्रतीत होता है; अन्यथा महाभारत, देवप्रभ सूरिके पाण्डवचरित्र और उत्तरपुराणमें इसके स्थानमें ' सत्यवती ' नाम पाया जाता है। हरिवंशपुराणमें शान्तनुकी पत्नीका जो योजनगन्धा नाम निर्दिष्ट किया गया है, प्रकारान्तरसे पाण्डवपुराणके कर्तानेभी उसका सम्बन्ध गुणवती [सत्यवती] के साथ जोडा है। [देखिये पर्व ७, श्लोक ११५] विशेषता यही है कि उन्होंने महाभारत अथवा देवप्रभसूरिके पाण्डवचरित्रके अनुसार इस घटनाका सीधा सम्बन्ध शान्तनुसे न जोडकर उत्तरपुराणके निर्देशानुसार [७०, १०२-१०३] उनके पुत्र व्यासके साथ जोडा है।

हरिवंशपुराणमें सुकुमारिका [द्रौपदीकी पूर्वपर्याय] के साथ जिनदेवका वाङ्निश्चय और जिनदत्तके साथ विवाहका उल्लेख पाया जाता है। यथा–

---

१ ह. पु. ४५, ३१-३५

कन्यां तामपि दुर्गन्धां घृतां बन्धुभिरग्रजः । परित्यज्य प्रवव्राज सुव्रतः सुव्रतान्तिके ॥
कनीयान् जिनदत्तस्तां बन्धुवाक्योपरोधनः (तः) । परिणीयापि तत्याज दुर्गन्धामतिदूरतः ॥
ह. पु. स. ६४; १२०–२१

उ. पु. पर्व ७२ श्लोक २४५ से २४८ पर्यंतके श्लोकोंमेंभी यही आशय है अतः इन दोनों आचार्योंके अनुसार पाण्डवपुराणकारनेभी वैसाही उल्लेख कर सुकुमारिकाके साथ विवाहके प्रस्तावसे विरक्त होकर जिनदेवके दीक्षित होने तथा जिनदत्तके साथ उसके विवाह होनेका उल्लेख किया है। [देखिये पर्व २४ श्लोक २४–४३]

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत पुराणमें कुछ ऐसे पद्य भी पाये जाते हैं जो हरिवंश पुराणके पद्योंसे अत्यन्त प्रभावित हैं । यथा–

ततस्ते दाक्षिणान् देशान् विहृत्य हस्तिनं पुरम् । गन्तुं समुद्यताश्चासन् भुञ्जन्तो धर्मजं फलम् ॥
क्रमान्मार्गवशात्प्रापुर्माकन्दीं नगरीं नृपाः । स्वःपुरीमिव देवौघा बुधसीमन्तिनीश्रिताम् ॥
पां. पु. स. १५, ३६–१७

विहृत्य विविधान् देशान् दक्षिणात्यान् महोदयाः । ते हस्तिनपुरं गन्तुं प्रवृत्ताः पाण्डुनन्दनाः ॥
प्राप्ता मार्गवशाद् विश्वे माकन्दीं नगरीं दिवः । प्रतिच्छंदस्थितिं दिव्यां दधाना देवविभ्रमाः ॥
ह. पु. स. ४५, ११९–१२०

इनके अतिरिक्त निम्नांकित श्लोकोंकाभी मिलान किया जा सकता है—

ह. पु. सर्ग ४५	१२६	१२७-२९	१३२	१३५-३९	५४, ५७-६०
पाण्डवपु. प. १५	५४	६६-६८	१०८	११२-१६	२२, ८-११

आदिपुराण व उत्तरपुराण

हरिवंशपुराणके कुछही कालके पश्चात् जिनसेनाचार्य [हरिवंशपुराणकारसे भिन्न] के द्वारा आदिपुराणकी (४२ पर्वतक) और उनके शिष्य गुणभद्रके द्वारा वि. सं. ९५५ में उत्तरपुराण (४३–४७ पर्व आ. पु. की भी) की रचना हुई । आदिपुराणमें भगवान् ऋषभ देवका तथा उत्तरपुराणमें शेष २३ तीर्थंकरों, भरतको छोड़ शेष ग्यारह चक्रवर्तियों, नौ नारायणों, नौ प्रतिनारायणों और नौ बलभद्रोंके चरित्रका वर्णन किया गया है । आदिपुराणके अन्तिम ५ पर्वोंमें जो भरतचक्रवर्तीके सेनापति जयकुमारके चरित्रका वर्णन है वह जिनसेनाचार्यके स्वर्गस्थ हो जानेसे गुणभद्रके द्वारा पूर्ण किया गया है। भट्टारक शुभचन्द्रने यथाप्रसङ्ग इन दोनों ग्रन्थोंकाभी सदुपयोग किया है । उदाहरणार्थ, शुभचन्द्रने प्रस्तुत पुराणमें पाण्डु राजाकी सल्लेखनाका जो वर्णन किया है उसका आधार आदिपुराणान्तर्गत महाबलकी सल्लेखनाका प्रकरण रहा है । इसके लिये आदि-

पुराणके निम्न श्लोकोंका मिलान क्रमसे पाण्डवपुराण (पर्व ९)के श्लोक १२७, १२८ [पूर्वार्द्ध], १३०, १३२, १३३, १३६ व १३७ से किया जा सकता है–

आदिपुराण पर्व ५

यावज्जीवं कृताहारशरीरत्यागसंगरः । गुरुसाक्षि समारुक्षद्वीरशय्याममूढधीः ॥ २३३ ॥
आरुरुक्षाराधनानावं तितीर्षुर्भवसागरम् । २३४
प्रायोपगमनं कृत्वा धीरः स्व-परगोचरान् । उपकारानसौ नैच्छच्छरीरेऽनिच्छतां गतः ॥ २३७ ॥
अनाशुषोऽस्य गात्राणां परं शिथिलताभवत् । नारूढायाः प्रतिज्ञाया व्रतं हि महतामिदम् ॥ २३९ ॥
शरद्घन इवारूढकार्श्योऽभूत्स रसक्षयात् । मांसासृजवियुक्तं हि देहं सुर इवाभवन् ॥ २४० ॥
चक्षुषी परमात्मानमद्राष्टामस्य योगतः । अश्रौष्टां परमं मंत्रं श्रोत्रे जिह्वा तमापठत् ॥ २४९ ॥
कोशादसेरिवान्यत्त्वं देहाज्जीवस्य भावयन् । भावितात्मा सुखं प्राणानौज्झत् सन्मन्त्रसाक्षिकम् ॥ २५३ ॥

इस प्रकार मिलान करनेसे पाठक देख सकते हैं, ये आदिपुराणके श्लोकही थोडेबहुत शब्द परिवर्तनके साथ पाण्डवपुराणमें लिये गये ह । इसी प्रकार प्रस्तुत पुराणके तीसरे पर्वमें जो जय-कुमार-सुलोचनाका वृत्त दिया गया है उस प्रकरणकेभी अनेक श्लोक थोडेबहुत परिवर्तनके साथ आदिपुराणसे लिये गये हैं[1] ।

आदिपुराणके समानही उत्तरपुराणकेभी कितनेही श्लोकोंका उपयोग शुभचन्द्रने प्रस्तुत पुराणमें किया है, उदाहरण स्वरूप, चतुर्थ पर्वके अन्तर्गत शान्तिनाथका चरित्र[2] । यहां यह सम्पूर्ण चरित्रही प्रायः उत्तरपुराणके अनुसार लिखा गया है ।

इनके अतिरिक्त कवि वादीभसिंह विरचित क्षत्रचूडामणिकाभी उपयोग प्रकरणानुसार भ. शुभचन्द्रने प्रस्तुत पुराणमें किया है[3] । यह बात प्रस्तुत पुराणके अन्तमें दी गई प्रशस्तिमें अपने लिये प्रयुक्त ' वादीभसिंह[4] ' विशेषणसेभी पुष्ट होती है । क्षत्रचूडामणिकी रचना सम्भवतः ११ वीं शताब्दी या इससे पहिलेही हुई है । इसमें कवि वादीभसिंहके द्वारा जीवन्धर स्वामीके चरित्रका बडी सुन्दरतासे वर्णन किया गया है । प्रत्येक श्लोकके उत्तरार्धमें प्रायः नीतिवाक्य देकर पूर्वार्द्ध के अभिप्रायको पुष्ट किया गया है । इससे यदि इसे नीतिग्रन्थ कहा जाय तो अनुचित न होगा ।

---

१ देखिये आदिपुराण पर्व ४४ श्लोक १-४ और पाण्डवपुराण पर्व ३ श्लोक ६४-६६

२ देखिये उत्तरपुराण पर्व ६२ श्लोक १२५-१३१ और पाण्डवपुराण पर्व ४ श्लोक ६३-६८

३ देखिये क्षत्रचूडामणि लम्ब १ श्लोक ६६ से ६८ व ७५ तथा पां. पु. पर्व ९ श्लोक ४५,४६, ४९ व ६१; तथा क्ष. चू. लम्ब ११ श्लोक ३५, ४७, ६१ और पां. पु. पर्व २५ श्लोक ८३,९४,१०४

४ पट्टे तस्य गुणाम्बुधिर्व्रतधरो धीमान् गरीयान् वरः । श्रीमच्छ्रीशुभचन्द्र एष विदितो वादीभसिंहो महान् ॥ तेनेदं चरितं विचारसुकरं चाकारि चञ्चद्रुचा । पाण्डोः श्रीशुभसिद्धिसातजनकं सिद्धयै सुतानां मुदा ॥ पर्व २५-१७२

पाण्डवचरित्र

इसकी रचना श्वेताम्बर सम्प्रदायके श्री देवप्रभसूरिद्वारा वि. सं. १२७० में की गई है। इसमें पाण्डवोंके तथा उनसे सम्बद्ध होनेके कारण भगवान् नेमि, कृष्ण और बलदेव आदि महापुरुषोंके चरित्रका बहुत विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। आठ हजार श्लोकसंख्याप्रमाण यह ग्रन्थ १८ सर्गोंमें विभक्त है। प्रस्तुत पाण्डवपुराणमें जो अनेक विस्तृत कथानक पाये जाते हैं उनका आधार यह पाण्डवचरित्रही रहा है, ऐसा हमारा विश्वास है। उदाहरणके लिये हम पराशर राजा और गुणवतीके कथानकको ले सकते हैं। यहां कहा गया है कि किसी समय पराशर राजा मनोविनोदके लिये यमुनाकिनारे गये थे। वहां उन्हें नावपर बैठी हुई एक सुन्दर कन्या दिखी। उसे देखकर वे मुग्ध हो गये। एतदर्थ कन्यासे उसका वृत्त पूछकर उन्होंने उसके पिता नाविक (धीवर) से उसे अपनी सहचारिणी बनानेकी अभिलाषा प्रगट की। किन्तु जाह्नवी पत्नीसे उत्पन्न उनके पुत्र गांगेय [भीष्म] को लक्ष्यकर अपने दौहित्रको राज्याधिकार न प्राप्त हो सकनेकी सम्भावनासे उसने पराशरको कन्या देना स्वीकार नहीं किया। यह बात किसी प्रकार भीष्मको ज्ञात हो गई। तब भीष्मने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रतको स्वीकार कर उसके पिताको सन्तुष्ट किया। इस प्रकार उसने पराशर राजाके साथ गुणवतीका विवाह कर दिया।

यही वृत्त कुछ थोडेसे परिवर्तनके साथ देवप्रभसूरिके पाण्डवचरित्र [१, १५८–२४७] में पाया जाता है। यहां पराशरका कोई उल्लेख नहीं है। साथही उक्त कन्याका नाम गुणवतीके बजाय सत्यवतीही पाया जाता है, जैसा कि वैदिक सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है। तदनुसार यहां उक्त कन्याका विवाह शान्तनुके साथही हुआ था। गंगा पत्नीसे उत्पन्न गांगेय [भीष्म] इन्हीं शान्तनुकेही पुत्र थे। इतनाही भेद दोनों ग्रन्थोंके अनुसार उक्त कथानकमें पाया जाता है। शेष सब कथानकही दोनों ग्रन्थोंमें समान नहीं है, बल्कि इस प्रकरणके अनेक श्लोकभी दोनोंही ग्रन्थोंमें समानरूपसे पाये जाते हैं। [जैसे पाण्डवपुराण पर्व ७ के श्लोक ८२, ९७, ९९ का उ. और १०० का पू. १०१ व १०९ दे. प्र. पाण्डवचरित्र पर्व १ में क्रमशः १५५, १८७, १९२, १९८ व २८८ इन संख्याओंसे अंकित जैसेके तैसे पाये जाते है] । बहुतसे श्लोकोंमें केवल एक दो शब्दोंका परिवर्तन पाया जाता है [२] ।

---

१ इनमेंसे पां. पु. ७-१०१ और दे. प्र. पां. च. १-१९८ वें श्लोकमें अपनी अपनी मान्यताके अनुसार ' गुणवत्यास्तनूजस्य ' व ' सत्यवत्यास्तनूजस्य ' इतनामात्र पाठभेद है। इन श्लोकोंके अतिरिक्त पां. पु. के १९ वें पर्वके श्लोक २-५ दे. प्र. सूरिके पां. च. सर्ग ११ में २२३, २२४, २२५ और २२९ इन संख्याओंसे अंकित ज्योंके त्यों पाये जाते हैं।

२ जैसे पां. पु. (शुभचन्द्र) त्वं नृरत्न ! सपत्नोऽस्ति येषां तेषां शिवं कुतः। जाग्रत्यसहने सिंहे सुखायन्ते कियन्मृगाः ॥ ७-९६ ॥

दे. प्र. पां. च.–नररत्न ! सपत्नोऽस्ति येषां तेषां कुतः सुखम्। जाग्रत्यसहने सिंहे सुखायन्ते कियन्मृगाः ॥ १-१८५ ॥

इसके पूर्व, इस ग्रन्थमें [१, २१-१५४] राजा शान्तनुको गंगा पत्नीका लाभ और पश्चात् उसका वियोग किस प्रकार हुआ, इसकाभी विस्तृत कथन पाया जाता है। जिसे भ. शुभचन्द्रने नहीं अपनाया।

इसी प्रकार कर्णकी उत्पत्ति [दे. प्र. पां. च. १, ४६९-५५४ तथा शु. चं. पां. पु. ७, १५०-२६७,] लाक्षागृहदाह [दे. प्र. पां. च. ७, १३५-१९७ तथा शु. चं. पां. पु. १२, ५२-१७५] तथा अर्जुन और भील (एकलव्य) का उपाख्यान [दे. प्र. पां. च. ३, २७९ से ३२५ तथा शु. चं. पां. पु. १०, १८५-२६८] आदि कितनेही ऐसे कथानक हैं जो देवप्रभ सूरिके पाण्डव चरित्रसे थोडे बहुत परिवर्तनके साथ प्रस्तुत पाण्डवपुराणमें अपनाये गये हैं।

इस प्रकारके बहुतसे श्लोक दोनो ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। यथा–

पाण्डवपुराण पर्व ७	८३-८६	८८	८९	९२	९८	१०२	१०३	१०७	११३
पां.च. [दे.प्र.] सर्ग २	१५८-६१	१६४	१६६	१७७	१८८	२०५	२०९	२२५	२३८

यहां देवप्रभसूरिके पाण्डवचरित्रमें भगवद्गीताका अनुसरण कर यह कहा गया है कि जिस समय दोनों ओरकी सेनायें युद्धार्थ कुरुक्षेत्रमें आकर उपस्थित हुई उस समय अर्जुनने कृष्णसे शत्रुसेनाके प्रत्येक योद्धाका परिचय पूछा। तदनुसार कृष्णकेद्वारा घोडों व ध्वजाका निर्देश करते हुए शत्रुपक्षके प्रत्येक योद्धाका परिचय दिये जानेपर अर्जुन खिन्न होकर रथके मध्यमें बैठ गया और बोला कि ' हे कृष्ण ! मैं राज्य-लक्ष्मीके लिये भीष्म पितामह, गुरु द्रोणाचार्य और दुर्योधन आदि बन्धुओंका घात कर पापका भागी नहीं होना चाहता। यदि वे हमारा अपकार करते हैं तो भलेही करें, इससे कुछ बन्धुता थोडेही नष्ट हो जावेगी आदि[1]। ' तब कृष्णने उसे क्षात्रधर्मका रहस्य समझाकर युद्धकेलिये उत्साहित किया[2]। विशेषतः यहां इतनी है भगवद्गीतामें जहां कृष्णने अर्जुनको आध्यात्मिक तत्त्वकी ओर लेजाकर युद्धार्थ प्रोत्साहित किया,[3] वहां दे. प्र. पाण्डवचरित्रमें

१ श्रीमद्भगवद्गीता १, २१–४७, दे. प्र. पां. च. १३; ३–२३.

२ श्रीमद्भगवद्गीता २, १०–७२, दे. प्र. पां. च. १३, २४–३४.

३ शु. चं. पां. पु. १९, १७२–१७६.

३ यथा–नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६
अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः। अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ! ॥ १८
य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्। उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥१९
न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यःशाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ २० ॥ भगवद्गीता (अ. २)

क्षत्रियके स्वभावको प्रगट कर कृष्णने अर्जुनको युद्धके निमित्त उद्यत किया[1]।

परन्तु शुभचन्द्रके प्रस्तुत पाण्डवपुराणमें इस प्रकार उल्लेख नहीं है। वहां इतना मात्र कहा गया है कि कुरुक्षेत्रमें दोनों सेनाओंके आजानेपर अर्जुनने सारथीसे रथसहित राजाओंका परिचय पूछा। तदनुसार सारथीकेद्वारा घोडों व ध्वजाका निर्देश करते हुए भीष्मादिकोंका परिचय करा देनेपर अर्जुन स्वयंही युद्धके लिये उद्युक्त हो गया[2]।

पाण्डवपुराणान्तर्गत कथाका सारांश

प्रस्तुत ग्रन्थमें पाण्डवोंकी जिस रोचक कथाका वर्णन किया गया है। वह हरिवंशपुराण एवं उत्तरपुराण आदि अन्य दिगम्बर ग्रन्थों, हेमचन्द्र सूरिविरचित त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र एवं देवप्रभसूरिविरचित पाण्डवपुराण आदि श्वेताम्बर ग्रन्थों, तथा महाभारत, विष्णुपुराण व चम्पू-भारत आदि अनेक वैदिक ग्रन्थोंमेंभी पायी जाती है। सम्प्रदायभेद और ग्रन्थकर्ताओंकी रुचिके अनुसार वह अनेक धाराओंमें प्रवाहित हो गई है। उक्त कथा यहां यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थके अनुसारही दी जा रही है, फिर भी टिप्पणोंद्वारा यथास्थान उसकी अन्य ग्रन्थोंसेभी तुलना की जायेगी।

पुराणका उद्गम

यहां प्रस्तुत पुराणको[3] उद्गमस्थान बतलाते हुए कहा गया है कि जब चौबिसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामीका समवसरण राजगृह नगरीके समीप वैभार[4] पर्वतपर आया था तब राजा श्रेणिक सपरिवार उनकी वन्दनाके लिये गये। वन्दन करके उन्होंने वीरप्रभुसे धर्मश्रवण किया। तत्पश्चात् उन्होंने गौतम गणधरकी स्तुति कर उनसे कुरुवंशकी उत्पत्ति, उसमें उत्पन्न राजाओंका परम्परा और कौरव-पाण्डवोंके जीवनवृत्त आदिके जाननेकी अभिलाषा व्यक्त की। तदनुसार गौतम गणधरने कुरुवंश आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन किया। वही पुराणार्थ पूर्वपरम्परासे शुभ-चन्द्राचार्यको प्राप्त हुआ। इस प्रकार ग्रन्थकर्ताके द्वारा इस पुराणका उद्गम भगवान् महावीर प्रभुसे बतलाया गया है। यही पद्धति प्रायः सभी दिगम्बर पुराणग्रन्थोंमें पायी जाती है।

---

१ गुरौ पितरि पुत्रे वा बान्धवे वा धृतायुधे। वीतशङ्कं प्रहर्त्तव्यमितीहि क्षत्रियव्रतम्॥
बान्धवा बान्धवास्तावद्यावत् परिभवन्ति न। पराभवकृतस्तूचैः शीर्षच्छेद्या भुजावताम्॥
वैश्वानरः करस्पर्शं मृगेन्द्रः श्वापदस्वनम्। क्षत्रियश्च रिपुक्षेपं न क्षमन्ते कदाचन॥
दे. प्र. पां. च. १३, २५-२७.

२ शु. चं. पां. पु. १९, १७२-१७६.

३ एक पुरुषके आश्रित कथाको चरित्र और तिरेसठ शलाकापुरुषोंके आश्रित कथाको पुराण कहा जाता है। ये दोनोंही प्रथमानुयोगमें गर्भित हैं। (र. श्रा. प्रभाचन्द्रीय टीका) २-२

४ हरिवंशपुराण (२-६२) और उत्तरपुराण (७४-३८५) में वैभारके स्थानमें विपुलाचल तथा पूज्यपादसूरिविरचित निर्वाणभक्ति (१६) में वैभार पर्वतकाही उल्लेख है।

कुरुवंशादि चार वंशोंकी स्थापना

कथाके प्रारम्भमें यहां भोगभूमिकालमें होनेवाले चौदह कुलकरोंके उत्पत्तिक्रमको बतलाते हुए भगवान् ऋषभ देवके संक्षिप्त जीवनवृत्तका वर्णन किया गया है। भगवान् ऋषभ देवने सद्बुद्धिसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णोंकी स्थापना की[१]। इसके साथही उन्होंने राजस्थितिकी सिद्धिके लिये इक्ष्वाकु, कौरव, हरि और नाथ नामक ये चार क्षत्रिय गोत्रभी स्थापित किये। इनमेंसे प्रस्तुत कौरववंशमें उन्हीं वृषभेश्वरने सोमप्रभ और श्रेयांस इन दो राजाओंको स्थापित किया।

कुरुवंश परम्परा

कुरुवंश परम्परामें सोमप्रभ, जयकुमार [भरत चक्रवर्तीका सेनापति], अनन्तवीर्य, कुरु[२], कुरुचन्द्र, शुभंकर व धृतिंकर आदि बहुसंख्याक राजाओंके अतीत होनेपर धृति देव हुआ। तत्पश्चात् धृतिमित्र आदि अन्य बहुतसे राजा हुए। तदनन्तर धृतिक्षेम, अक्षयी, सुव्रत, व्रातमन्दर, श्रीचन्द्र, कुलचन्द्र, सुप्रतिष्ठ आदि; भ्रमघोष, हरिघोष, हरिध्वज, रविघोष, महावीर्य, पृथ्वीनाथ, पृथु और गजवाहन आदि सैकड़ों राजा हुए। पश्चात् विजय, सनत्कुमार[३], सुकुमार, वरकुमार, विश्व, वैश्वानर, विश्वध्वज, बृहत्केतु व सुकेतु राजा हुए। तदनन्तर विश्वसेन राजाके पुत्र शान्तिनाथ तीर्थंकर हुए। इसी परम्परामें भगवान् कुन्थु और अरनाथ तीर्थंकर उत्पन्न हुए थे[४]। इनके पश्चात् राजा मेघरथ और उसके पुत्र विष्णु [अकम्पनाचार्यके संघकी रक्षा करनेवाले] और पद्मरथ हुए थे। फिर इसी परम्परामें पद्मनाभ, महापद्म, सुपद्म, कीर्ति, सुकीर्ति, वसुकीर्ति व वासुकि आदि बहुतसे राजाओंके व्यतीत होनेपर कौरवाग्रणी शान्तनु[५] राजा उत्पन्न हुआ। उसकी पत्नीका नाम सवकी था। इन दोनोंके पराशर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ[६]। पराशरका विवाह रत्नपुरनिवासी जह्नु नामक विद्याधरकी पुत्री गंगा [जाह्नवी] के साथ हुआ था। इनके पुत्रका नाम गांगेय [भीष्म पितामह] था[७]। पराशर राजाने योग्य समझकर उसे युवराज पदपर प्रतिष्ठित किया था ।

---

१ ब्राह्मण वर्णकी स्थापना भरतचक्रवर्तीने की थी।

२ हेमचन्द्रसूरिविरचित त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र (८, ६, २६४–६५) और देवप्रभसूरिविरचित पाण्डवचरित्र (१, ९–११) में कुरुको वृषभ स्वामीके सौ पुत्रोंमेंसे एक पुत्र बतलाया गया है। इसीके नामसे कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध हुआ। कुरुपुत्र हस्तीके नामके अनुसार हस्तिनापुरकीभी प्रसिद्धि हुई। हस्ती राजाकी परम्परामें अनन्तवीर्य राजा हुआ (दे प्र. पां. च. १–१८)।

विष्णुपुराणमें बृहत्क्षत्रका पुत्र सुहोत्र और सुहोत्रका पुत्र हस्ती बतलाया गया है। इसने हस्तिनापुर बसाया था (४, १९, २७–२८)।

३ दे. प्र. पां. च. १–१६. ४ दे. प्र. पां. च. १–१७.

५ अतिक्रान्तेष्वसंख्येषु ततो राजस्वजायत। प्रशान्तः शान्तनुर्नाम तेजोधाम प्रजापतिः॥

दे. प्र. पां. च. १–२१

विष्णुपुराणमें शान्तनुकी पूर्वपरम्परा इस प्रकार बतलाई गई है–परीक्षित्के १ जनमेजय २ श्रुतसेन

किसी समय राजा पराशर मनोविनोदके लिये यमुनातटपर गये। वहां उन्होंने नावपर बैठी हुई एक सुन्दर कन्याको देखा। उसे देखतेही उनका मन उसकी ओर आकृष्ट हो गया। वे कामके वश होकर उसके पास पहुंचे और पूछा कि तू कौन है व किसकी कन्या है? उसने उत्तरमें कहा कि हे राजन्! मैं नाविकोंके अधिपतिकी गुणवती नामकी कन्या हूं। पिताकी आज्ञानुसार मैं जलमें शीघ्रतासे नाव चलाती हूं। उक्त कन्याकी प्राप्तिकी अभिलाषासे राजा पराशर शीघ्रही उसके पिताके पास जा पहुंचे। धीवरने उनका यथोचित स्वागत किया। राजाने उससे कहा कि तेरी पुत्री गुणवती मेरी सहचारिणी हो, यह हार्दिक अभिलाषा है। यह सुनकर धीवर बोला कि राजन्! मैं अपनी कन्या आपके लिये नहीं देना चाहता। कारण इसका यह है कि आपका गांगेय नामका पराक्रमी पुत्र राज्यके लिये योग्य है। उसके होते हुए भविष्यमें होनेवाला मेरी पुत्रीका पुत्र भला कैसे राज्यका भोक्ता हो सकता है? अतएव हे महाराज! इस चर्चाको यहीं समाप्त कर दीजिये। इस प्रकार नाविककेद्वारा निषेध कर देनेपर राजा खिन्न होकर राजभवन लौट गया। अभिलाषा पूर्ण न होनेसे उसकी वह चिन्ता बढतीही गई। इससे उसके मुखकी कान्ति फीकी पड़ गई थी।

---

३ उग्रसेन और ४ भीमसेन, ये चार पुत्र थे। जह्नुके पुत्रका नाम सुरथ था। सुरथके विदूरथ, विदूरथके सार्वभौम, सार्वभौमके जयत्सेन, जयत्सेनके आराधित, आराधितके अयुतायु, अयुतायुके अक्रोधन, अक्रोधनके देवातिथि, देवातिथिके ऋक्ष, ऋक्षके भीमसेन, भीमसेनके दिलीप, और दिलीपके प्रतीप नामक पुत्र हुआ। प्रतीपके देवापि, शान्तनु और बाहूलीक नामके तीन पुत्र थे। इनमें शान्तनु मध्यम पुत्र था [४, २०, १-९]।

इसमें आगे [सर्ग १ श्लोक २१-१५७] शान्तनुकी मृगयाव्यसनपरता, जह्नु विद्याधरकी पुत्री गंगाके साथ विवाह, गांगेयका जन्म, गंगा द्वारा मृगया छोडनेकी विज्ञप्ति, उसे न स्वीकार करनेसे शान्तनुको छोड़कर गांगेयके साथ गंगाका अपने पिताके घर जाना, शान्तनुका चौबीस वर्षतक पत्नी व पुत्रसे वियोग, मृगयावश शान्तनुका गांगेयके साथ युद्ध तथा गंगा द्वारा पिता–पुत्रका परिचय आदिका विस्तृत कथन पाया जाता है। (दे. प्र. पां. च. सर्ग १ श्लोक २१ से १२३ पर्यन्त)

६ उत्तरपुराण [७०-१०२] में शक्ति नामक राजाकी पत्नीका नाम शतकी बतलाया गया है। इन दोनोंके पराशर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

विष्णुपुराणके अनुसार तेइसवें व्यासके पीछे वाल्मीकि नामसे प्रसिद्ध भृगुवंशी ऋक्ष व्यास हुए। तत्पश्चात् शक्ति, व्यास और फिर उनके पुत्र पराशर, व्यास हुए (३, ३, १८,)।

७ भीष्मोऽपि शान्तनोरेव सन्ताने रुक्मिणः पिता। यस्य गंगाभिधा माता राजपुत्री पवित्रधीः ॥

ह. पु. ४५-३५

देवप्रभसूरिविरचित पाण्डवचरित्रके अनुसार जह्नु विद्याधर राजाकी पुत्री गंगाके साथ शान्तनु राजाका विवाह हुआ था। उन दोनोंका पुत्र गांगेय नामसे प्रसिद्ध हुआ (सर्ग १, श्लोक ३४, ५२ और ६०)।

८ नृपोऽथ सूनवे तस्मै यौवराज्यपदं ददौ। योग्यं सुतं वा शिष्यं वा नयन्ति गुरवः श्रियम् ॥

यह श्लोक प्रस्तुत पाण्डवपुराण (७-८२) और देवप्रभसूरिविरचित पाण्डवचरित्र (१-१५५) में समान रूपसे पाया जाता है।

पिताकी यह अवस्था देखकर गांगेय बहुत व्याकुल हुए। वे सोचने लगे कि पिताकी ऐसी अवस्था होनेका क्या कारण है? क्या मेरे द्वारा कभी उनकी विनयका या आज्ञाका उल्लंघन हुआ है? अथवा उन्हें माताजीका स्मरण हो आया है? इस प्रकार चिन्तातुर होकर उन्होंने एकान्तमें मन्त्री-जीसे पूछ-ताछ की। उनसे उन्हें यथार्थ परिस्थिति ज्ञात हो गई।

गांगेयकी भीष्मप्रतिज्ञा

अब वे सीधे नाविकके घर जा पहुंचे। उन्होंने धीवरसे कहा कि तुमने राजाका अपमान किया, यह अच्छा नहीं हुआ। धीवर प्रसन्नतासे बोला कि, हे कुमार! इसका कारण सुनिये। तुम जैसे पराक्रमी सापत्न–पुत्रके होते हुए मैं राजाके लिये अपनी कन्या देकर उसे जान-पूछकर अन्ध-कूपमें नहीं पटकना चाहता। भला तुमही बताओ कि भविष्यमें मेरी पुत्रीको जो पुत्र होगा वह क्या राज्यैश्वर्यको भोग सकता है? राज्यैश्वर्य तो दूर रहा, किन्तु वह तो सदा आपत्तियोंसे घिरा रहेगा। राज्यलक्ष्मी तुम जैसे गुणवान पराक्रमी पुत्रको छोड़कर अन्यके पास जानेको उत्सुक नहीं हो सकती। यह सुनकर गांगेय बोले कि हे मातामह! यह आपका विचार भ्रमपूर्ण है, कलहंस और बगुला कभी एक नहीं हो सकते। मैं गुणवतीको अपनी जन्मदात्री माता गंगासेभी अधिक बढ़कर माता समझूंगा। सुनो, मैं यह प्रतिज्ञा करता हूं कि गुणवतीसे जो पुत्र होगा, उसेही राज्य दिया जायेगा, अन्यको नहीं। इतनेपरभी धीवरको सन्तोष नहीं हुआ। वह बोला कि स्वामिन्! यह आपका कहना ठीक है। परन्तु भविष्यमें जो आपके तेजस्वी पुत्र होंगे वे क्या इसे सहन कर सकेंगे? कभी नहीं। इसे सुनकर गांगयने कहा कि तुम्हारी इस चिन्ताकोभी मैं अभी दूर कर देता हूं। हे मातामह! आप सुनिये तथा आकाशमें सिद्ध, गन्धर्व और विद्याधर जनभी इस बातको सुनलें कि मैं यावज्जीवन ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण करता हूं। इससे धीवरको अपूर्व सन्तोष हुआ। उसने गांगेयकी अत्यधिक प्रशंसा की। साथही उसने गुणवतीका जन्मवृत्तान्तभी इस प्रकार बतलाया।

हे कुमार! मैं एक समय विश्रामके लिये यमुनाके किनारेपर गया था। वहां मैंने अशोक वृक्षके नीचे किसी पापीके द्वारा छोडी गई तत्काल उत्पन्न हुई कन्याको देखा। मैं निःसन्तान था, अतः उस सुन्दर कन्याको उठानेके लिये प्रवृत्त हो गया। उस समय मुझे यह आकाशवाणी सुनाई दी– "रत्नपुरमें स्थित रत्नांगद राजाकी रानी रत्नवतीकी कुक्षिसे उत्पन्न हुई इस कन्याको पिताके वैरी विद्याधरने अपहरण कर यहां छोड़ दिया है" इसको सुनकर मैंने उसे उठा लिया और अपनी निःसन्तान पत्नीको दे दिया। उसका मैंने गुणवती नाम रक्खा। यह मेरी कृत्रिम पुत्री है। अब आप इसे अपने पिताके लिये स्वीकार करें। इस प्रकार वह पराशर राजाकी सहचारिणी बन गई[१]।

---

१ यह कथानक देवप्रभसूरिके पाण्डवचरित्रमेंभी इसी प्रकारसे पाया जाता है। विशेषता यह है कि वहां पराशरके स्थानमें शान्तनुका उल्लेख है, तथा गुणवती कन्याका नाम सत्यवती पाया जाता है। शेष कथाभाग समानही नहीं है, प्रत्युत अनेक श्लोकभी इस प्रसंगके दोनों ग्रन्थोंमें समानरूपसे पाये जाते हैं (देखिये दे. प्र. पां. च. सर्ग १ श्लोक १५८-२४७)

शरीरसम्बन्धी गन्धके प्रसारसे उसका दुसरा नाम योजनगन्धाभी प्रसिद्ध हो गया था। पराशर राजाके गुणवतीसे महान् विद्वान् व्यास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। व्यासका दूसरा नाम धृतमर्त्यभी था। उसके सुभद्रा पत्नीसे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें धृतराष्ट्रका विवाह मथुरानिवासी राजा भोजकवृष्टिकी कन्या गान्धारीके[3] साथ सम्पन्न हुआ

१ हरिवंशपुराणमें योजनगन्धाके पतिका नाम शान्तनु और पुत्रका नाम धृतव्यास बतलाया गया है। यथा—

भर्ता योजनगन्धाया राजपुत्र्यास्तु शान्तनुः।

तनयः शंतनो (शान्तनो) र्भूद् धृतव्यास इति स्मृतिः॥ ह. पु. ४५-३१

२ हरिवंशपुराणमें व्यासके पुत्रका नाम धृतधर्मा बतलाया गया है। इसके आगे वहां धृतोदय, धृततेजा, धृतयशा, धृतमान और धृतपद भी पाये जाते हैं, जो स्वतन्त्र नाम न होकर विशेषण पद प्रतीत होते हैं। धृतधर्माके पुत्रका नाम धृतराज था। उसके अम्बिका, अम्बालिका और अम्बा नामकी तीन पत्नियां थी, जिनसे क्रमशः धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। (४५, ३२-३४)

उत्तरपुराण (७०, १०२-१०३) के अनुसार शक्ति नामक राजाकी पत्नीका नाम शतकी और पुत्रका नाम परासर था। इस परासर राजाके सत्यवती नामक मत्स्यकुलोत्पन्न राजपुत्रीसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह बुद्धिमान् व्यास नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसकी पत्नीका नाम सुभद्रा था। इन दोनोंके धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ये तीन पुत्र उत्पन्न हुये।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (८, ६, २६८-२६९) के अनुसार सत्यवतीके चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये। उनमेंसे विचित्रवीर्यकी अम्बिका, अम्बालिका, अम्बा नामकी तीन पत्नियोंसे क्रमशः धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें पाण्डु धृतराष्ट्रपर राज्यभार रखकर मृगयामें आसक्त हुआ। देवप्रभसूरिकृत पाण्डवचरित्र (१, ३५३-५४) के अनुसार धृतराष्ट्र जन्मान्ध और पाण्डु आजन्म पाण्डुरोगी था।

विष्णुपुराणके अनुसार शान्तनु राजाके जाह्नवीसे उदारकीर्ति एवं अशेषशास्त्रार्थवित् भीष्म पुत्र हुआ। इन्हीं शान्तनुने द्वितीय पत्नी सत्यवतीसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। इनमें बाल्यावस्थामेंही चित्राङ्गद गन्धर्वके द्वारा [दे. प्र. पां. च. (१-२६१) के अनुसार नीलाङ्गदके द्वारा] युद्धमें मारा गया था। विचित्रवीर्यका विवाह काशिराजकी अम्बिका और अम्बालिका नामकी दो पुत्रियोंके साथ हुआ था। वह अत्यधिक विषयासक्त होनेसे यक्ष्मासे गृहीत होकर मृत्युको प्राप्त हुआ [ऐसाही उल्लेख दे. प्र. पां. च. (१-३३२ और ३६३-६६) में भी पाया जाता है] तब सत्यवतीके नियोगसे पराशरपुत्र कृष्णद्वैपायनने विचित्रवीर्यके क्षेत्र (अम्बिका और अम्बालिका) में धृतराष्ट्र और पाण्डुको तथा उसकी भेजी हुई दासीसे विदुरको उत्पन्न किया। वि. पु. ४, २०, ३३-३८.

३ उत्तरपुराणके अनुसार गान्धारी नरवृष्टिकी पुत्री थी (७०, १००-१०१) अनुसार वह सुबल राजाकी पुत्री और शकुनिकी बहिन थी। यथा—

धृतराष्ट्रः पर्यणैषीदष्टौ सुबलजन्मनः। गान्धारराजशकुनेर्गान्धार्याद्याः सहोदराः॥ त्रि. श. पु. च. के ८,६,२७०

दे. प्र. पां. च. १, ३९१-९५.

था। धृतराष्ट्रके गान्धारिसे उत्पन्न दुर्योधन आदिक सौ पुत्र थे। विदुरका विवाह देवक राजाकी पुत्री कुमुद्वतीके साथ हुआ था[1]।

धृतराष्ट्रने पाण्डुके लिये राजा अन्धकवृष्टिसे उनकी पुत्री कुन्तीकी याचना की। परन्तु पाण्डुके पाण्डु रोगसे पीडित होनेके कारण अन्धकवृष्टिने उसे स्वीकार नहीं किया[2]। इधर पाण्डु राजा कुन्तीके रूपपर आसक्त था। एक समय उसे किसी वज्रमाली नामक विद्याधर राजासे कामरूपिणी मुद्रिका प्राप्त हुई थी[3]। इसके द्वारा अभीष्ट रूप ग्रहण किया जा सकता था। इस मुद्रिकाके प्रभावसे पाण्डु अदृश्य होकर कुन्तीके महलमें जाने-आने लगा। एक बार धायने कुन्तीके साथ समागम करते उसे देख लिया। उसने इस सम्बन्धमें कुंतीसे पूछ-ताछ की। कुंतीने डरते डरते सब सच्ची घटना सुना दी। उधर पाण्डुके संयोगसे कुंतीके गर्भ रह गया था। गर्भवृद्धिको लक्ष्य कर कुंतीके माता पिता बहुत दुखी हुए। उन्हें धायके ऊपर बहुत क्रोध हुआ। परंतु धायने यथार्थ घटनाको सुनाकर कुंतीकी व अपनी निर्दोषता प्रगट कर दी। साथही उसने यह भी निवेदन कर दिया कि हे "स्वामिन्! मैंने अबतक इस दोषको गुप्त रक्खा है, अब आगेके कर्तव्य कार्यका विचार करें।" यह सुनकर उन्होंने आगे भी इस दोषके गुप्त रखनेकी प्रेरणा की।

इस दोषको गुप्त रखनेका यद्यपि पर्याप्त प्रयत्न किया गया था। फिरभी वह पानीके ऊपर गिरे हुए तैलबिंदुके समान पृथ्वीपर शीघ्र फैल गया। समयानुसार कुन्तीने पुत्रको जन्म दिया। यह बात जनसमुदायमें कानोंकान प्रगट हो गई। अन्धकवृष्टिने इस समाचारको कानों-कान फैलते देखकर कुन्तीपुत्रका नाम 'कर्ण' रक्खा। उसने उक्त पुत्रको वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करके एक पेटीमें रक्खा उसे यमुनामें प्रवाहित कर दिया। पेटीमें 'कर्ण' इन नामाक्षरोंसे पुत्रपत्र भी रख दिया। वह पेटी बहती हुई चम्पापुरीके निकट पहुंची। वहांके राजा भानु [सूर्य] ने किसी निमित्तज्ञके-द्वारा पूर्वमें कहे गये वचनोंका स्मरण कर उस पेटीको मंगवा लिया। पेटीके खोलतेही उसमें सूर्यके समान तेजस्वी सुंदर बालक दिखायी दिया। उसे गोदमें लेकर राजाने अपनी प्रिय पत्नी

---

१ अथो कुमुद्वती नाम देवकक्षितिपात्मजा। विदुषा विदुरेणापि प्रेमतः पर्यणीयत ॥ दे. प्र. पां. च. १-५६४.

२ अथादिष्टो विशां पत्या प्रातराकार्य कोरकः। पाण्डवे पाण्डुरोगित्वान्न दातास्मि निजां सुताम् ॥ कोरकेण नरेन्द्रोक्तं पुरुषाय न्यवेद्यत। तेनापि भीष्म-पाण्डुभ्यां हास्तिनापुरमागुषा ॥ दे. प्र. पां. च. १, ४६९-७० उत्तरपुराण ७०, १०४-१०९.

३ उ. पु. ७०, १०३-१०९. दे. प्र. पां. च. १, ४८०-४९५.

राधाको दे दिया। राधाको उस समय कान खुजाते देखकर भानु राजाने भी पुत्रका नाम कर्णही रक्खा।

पश्चात् अन्धकवृष्टिने पुत्रोंके साथ विचार कर पाण्डु राजाके लिये कुन्तीको देनेका निश्चय किया। इस कार्यके सम्पादनार्थ उसने व्यास राजाके समीप एक चतुर दूत भेज दिया। दूतसे उक्त समाचार ज्ञात कर व्यास राजाने उसे स्वीकार कर लिया। तदनुसार नियत समयपर पाण्डुके साथ कुन्तीका विवाह कर दिया गया। कुन्तीमें अधिक स्नेह रखनेके कारण उसकी छोटी बहिन मद्रीकाका विवाह पाण्डुके साथ सम्पन्न हुआ। उसके कुन्तीसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन ये तीन तथा मद्रीसे नकुल व सहदेव ये दो पुत्र उत्पन्न हुए। पृथ्वीपर ये पांच पाण्डव प्रसिद्ध हुए। कौरवों और पाण्डवोंको द्रोणाचार्यने धनुर्वेदमें सुशिक्षित किया। अतिशय विनयशील होनेसे अर्जुनको द्रोणाचार्यसे शब्दवेधी विद्या प्राप्त हुई। अर्जुन धनुर्वेद विद्यामें सर्वोत्कृष्ट सिद्ध हुआ।

पाण्डु और मद्री तथा धृतराष्ट्रका दीक्षाग्रहण

किसी समय पाण्डु क्रीडार्थ मद्रीके साथ वनमें गये। वहां उन्होंने हरिणीके साथ क्रीडा करते हुए हरिणको बाणके आघातसे मार डाला। उस समय पाण्डुको सम्बोधित करनेवाली आकाश-

---

१ उत्तरपुराण ७०, १०९-११४। हरिवंशपुराणमें इस सम्बन्धमें केवल इतना मात्र उल्लेख पाया जाता है। पाण्डोः कुन्त्यां समुत्पन्नः कर्णः कन्याप्रसंगतः॥ ह. पु. ४५-३७। देवप्रभसूरिविरचित पाण्डव चरित्रके अनुसार "वह लोकविरुद्ध मार्गसे उत्पन्न हुआ है" इस विचारसे कुन्ती और धायने उसे मणिमय कुण्डलोंसे अलंकृत करके रत्नपिटारीमें रखकर गंगाके मध्यमें प्रवाहित कर दिया (१, ५५२-५३)। वह पेटी अतिरथि सारथिको मिली। अतिरथिकी पत्नीका नाम राधा था। उसने रत्नपिटारीसे बालकको निकाल कर राधाकी गोदमें रख दिया। उस समय बालक अपने कानके नीचे हाथको करके सो रहा था, अतः अतिरथिने उसका नाम कर्ण रक्खा (३, ४७३-७४)। पाण्डु और कुन्तीके विवाहका विस्तृत वृत्त यहां ४३३-५६३ श्लोकों (सर्ग १) में वर्णित है।

सत्यकर्मणस्त्वतिरथः। यो गङ्गाङ्गतो मञ्जूषागतं पृथापविद्धं कर्णपुत्रमवाप। विष्णुपुराण ४, १८, २७-२८

२ त्रि. पु. चरित्रके अनुसार अन्धकवृष्टिकी पुत्री मद्री दमघोषके लिये दी गई थी (८, १, १२) दे. प्र. सूरिविरचित पाण्डवपुराणके अनुसार माद्री मद्रराजकी पुत्री थी। राज्यवृद्धोंके उपरोधसे पाण्डुने उसके साथ विवाह किया था (१, ५६५)।

३ हरिवंश पुराण ४५, ३७-३८. उत्तरपुराण ७०, ११४-११६.

पाण्डोः पत्न्यां द्वितीयस्यां शल्यस्वसरि नन्दनौ।
मद्रयामभूतां नकुल-सहदेवौ महाभुजौ॥ त्रि. पु. च. ८, ६, २७२.

पाण्डोरप्यरण्ये मृगयायामृषिशापोपहतप्रजाजननसामर्थ्यस्य धर्म-वायु-शक्रैर्युधिष्ठिर-भीमसेनार्जुनाः कुन्त्यां नकुल-सहदेवौ चाश्विनीभ्यां माद्रयां पंचपुत्रास्समुत्पादिताः। विष्णुपुराण ४, २०, ४०. चम्पूभारत १, ४६.

वाणी आविर्भूत हुई। उसे सुनकर पाण्डु राजा संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त हो गये[1]। उन्होंने अनेक प्रकारसे वैराग्यका चिन्तन किया। भाग्यवश इसी समय उन्हें अकस्मात् सुव्रत मुनिका दर्शन हुआ। उनसे धर्मश्रवणकाभी लाभ हुआ। दिव्य ज्ञानसे मुनिने पाण्डु राजाकी आयु तेरह दिनकी शेष बतलाई। बस फिर क्या था, वे शीघ्रतासे घर वापिस आये। उन्होंने मुनिके द्वारा कहा गया सब वृत्तान्त धृतराष्ट्र आदिसे कह दिया। इससे सभीको दुख हुआ। पाण्डुने भोगोंकी नश्वरता दिखलाकर सबको आश्वासन दिया। पश्चात् पांचो पुत्रोंको बुलाकर उन्हें राज्य दे धृतराष्ट्रके अधीन किया। फिर उन्होंने गंगाके किनारे जाकर मद्रीके साथ संन्यास धारण कर लिया। दोनोंने यावज्जीवन आहारादिका परित्याग करके चार आराधनाओंका आराधन करते हुए शरीरको छोड़ दिया। उन्हें सौधर्म स्वर्गमें देवपर्याय प्राप्त हुई।

किसी समय धृतराष्ट्र राजा वनमें गये थे। वहां उन्हें एक स्फटिकमणिमय शिलाके ऊपर स्थित मुनिराजका दर्शन हुआ। उनसे धर्मश्रवण कर उन्होंने पूछा कि "स्वामिन्! कौरव राज्यके भोक्ता मेरे पुत्र दुर्योधन आदि होंगे या पाण्डुपुत्र?" उत्तरमें सुव्रत मुनिने कहा कि "हे राजन्! राज्यके निमित्तसे तेरे पुत्र दुर्योधन आदि और पाण्डवोंके बीच विरोध उत्पन्न होगा। इसी लिये कुरुक्षेत्रमें महायुद्ध होगा। उसमें तेरे पुत्र मारे जावेंगे और पाण्डव राज्यमें प्रतिष्ठित होंगे।" यह सुनकर चिन्ताको प्राप्त हुए धृतराष्ट्र हस्तिनापुर वापिस आये। वे विचार करने लगे कि "देखो! मेरे पुत्र दुर्योधन आदि अतिशय बुद्धिमान्, बलिष्ठ एवं युद्धमें अजेय हैं। फिरभी वे राज्यको नष्ट करके महायुद्धमें मारे जावेंगे। इस समुन्नत राज्यको धिक्कार है, तथा राज्यके लिये युद्धमें मृत्युको प्राप्त होनेवाले मेरे उन पुत्रोंकोभी धिक्कार है, इत्यादि।" इस प्रकार विरक्त होकर उन्होंने गांगेयको बुलाकर अपना अभिप्राय प्रगट कर उनके तथा द्रोणाचार्यके समक्षमें अपने पुत्रों व पाण्डवोंको राज्य दे दिया[2] और स्वयं माता सुभद्राके साथ दीक्षा लेली।

---

१ चम्पूभारतमें बतलाया गया है कि पाण्डु राजा मृगयार्थ वनमें गये। वहां उन्होंने क्रीडा करते हुए हरिण-हरिणी युगलको देखा और उनमेंसे हरिणको तीक्ष्ण बाणके द्वारा मार डाला। यह हरिणयुगल वास्तविक नहीं था, किन्तु इस आकारमें किंदम नामक ऋषि और उनकी पत्नी था। बाणसे अभिहत होकर उक्त ऋषिने क्रोधित होकर पाण्डुको यह शाप दिया कि जैसे "पत्नीके साथ रतिक्रीडा करते हुए मुझे तूने मारा है वैसेही रतिक्रीडार्थ पत्नीके उन्मुख होनेपर तू भी मृत्युको प्राप्त होगा।" इस ऋषिशापसे सन्तप्त होकर पाण्डुने चतुरङ्ग बल और सताङ्ग राज्यको छोडकर तपको स्वीकार किया। (देखिये निर्णयसागरसे मुद्रित भा. चंपु. पृष्ठ १५-१६ 'तत्र तावत्' इत्यादि)

२ देवप्रभसूरिकृत पाण्डवचरित्रके अनुसार धृतराष्ट्रने स्वयं राज्य स्वीकार नहीं किया था, किन्तु पाण्डुको राजा बनाया था। यथा—

> धृतराष्ट्रमभाषिष्ट भीष्मो मधुरया गिरा। वत्स! राज्यमिदानीं त्वां ज्यायांसमुपतिष्ठताम्॥
> स जगाद न योग्योऽस्मि राज्यस्याहं ध्रुवं ततः। पाण्डुमभ्येति राज्यश्रीर्दिनश्रीरिव भास्करम्॥

१, ३८३-८४.

दुर्योधनादिकी पाण्डवोंसे ईर्षा

इधर दुर्योधन आदिक सब भाई पाण्डवोंके राज्यको न देख सकनेसे उनके विरोधी बन गये। यह विरोध उत्तरोत्तर बढ़ताही गया। तब गांगेय आदि महापुरुषोंने पारस्परिक वैरभावको दूर कर देनेके लिये राज्यको विभक्त कर दोनोंके लिये आधा-आधा बांट दिया। परन्तु फिरभी वह वैरभाव मिट नहीं सका। कौरव स्वभावतः वचनोंसे मीठे, किन्तु हृदयसे दुष्ट थे। वे क्रोधसे सब पाण्डवोंको मार डालनेके प्रयत्नमें रहने लगे। अन्तरङ्गमें दुष्टभावको धारण कर वे बाह्य स्नेहसे पाण्डवोंके साथ क्रीड़ायें करने लगे। इन क्रीड़ाओंमें कौरवोंने अनेकबार भीमको मारनेका दुष्ट प्रयत्न किया, किन्तु वे पुण्योदयसे भीमका कुछ बिगाड़ नहीं कर सके। यहां तककी एक बार उन्होंने भीमके लिये भोजनके साथ तत्काल प्राणोंके हरण करनेवाला विषभी दिलाया, किन्तु दैवयोगसे वह महाविषभी उसके लिये अमृततुल्य हो गया।

द्रोणाचार्यद्वारा शिष्य-परीक्षण

[1]द्रोणाचार्यने कौरवों और पाण्डवोंको धनुर्वेदकी उच्च शिक्षा दी थी। एक बार उन्होंने सब शिष्योंसे कहा कि धनुर्वेदके विषयमें मैं जो कुछभी कहता हूं, तदनुसार आचरण करो। समर्थ अर्जुनने उनके वचनोंपर दृढ़ विश्वास प्रगट किया। इसपर द्रोणाचार्यने प्रसन्न हो उसे वरदान दिया और कहा कि शुद्ध धनुर्विद्यासे मैं तुझे अपने समान करूंगा। इस प्रकार अर्जुनने धनुर्वेदमें अतिशय दक्षता प्राप्त की।

किसी समय गुरु द्रोणाचार्य पाण्डवों व कौरवोंको धनुर्वेदकी शिक्षा देनेके लिये उनको वनमें ले गये। वहां उन्होंने एक उन्नत वृक्षकी शाखापर बैठे हुए काकको देखकर शिष्योंसे कहा कि, जो इस काककी दक्षिण आंखको लक्ष्य कर वेधित करेगा वह धनुर्धर धनुर्वेदके जानकारोंमें श्रेष्ठ समझा जावेगा। यह सुनकर दुर्योधनादिक सब कौरव लक्ष्यवेधको अशक्य जानकर चुपचाप स्थित रहे। कौरव-पाण्डवोंको चुपचाप स्थित देखकर लक्ष्यवेधके जानकार द्रोणाचार्य गम्भीर वाणीसे बोले कि उस पक्षीकी दाहिनी आंखका वेधन मैंही करता हूं। इस प्रकार कहकर वे धनुषपर बाण रखकर लक्ष्यवेधके लिये उद्यत हुए। तब अर्जुनने उसको नमस्कार कर प्रार्थना की कि आप लक्ष्यवेधके लिये सर्वथा समर्थ हैं। परन्तु मेरे जैसे शिष्यके रहते हुए ऐसा कार्य करना आपको योग्य नहीं है। अत एव हे पूज्य गुरुदेव! इसके लिये आप मुझे आज्ञा दें। गुरुके द्वारा आज्ञा दी

---

१ द्रोणाचार्यकी वंशपरम्परा– भार्गवाचार्यवंशोऽपि शृणु श्रेणिक वर्ण्यते। द्रोणाचार्यस्य विख्याता शिष्याचार्यपरम्परा ॥ आत्रेयः प्रथमस्तत्र तच्छिष्यः कौंढिनिः सुतः। तस्याभूदमरावर्तः सितस्तस्यापि नन्दनः ॥ वामदेवः सुतस्तस्य तस्यापि च कपिष्ठकः। जगत्स्थामा सरवरस्तस्य शिष्यः शरासनः ॥ तस्माद्रावण इत्यासीत्तस्य विद्रावणः सुतः। विद्रावणसुतो द्रोणः सर्वभार्गववन्दितः ॥ अश्विन्यामभवत्तस्मादश्वत्थामा धनुर्धरः। रणे यस्य प्रतिस्पर्धी पार्थ एव धनुर्धरः ॥ ह. पु. ४५, ४४-४८

जानेपर अर्जुन हाथमें धनुष लेकर स्थिरचित्त हुआ। कौवा नीचेकी ओर दृष्टिपात करे, एतदर्थ बुद्धिमान् अर्जुनने अपनी जंघाको हस्तताडित किया। उसे सुनकर जैसेही कौवेने नीचेकी और निगाह डाली वैसेही अर्जुनने बाणसे उसकी दाहिनी आंखको वेध दिया। इस दुष्कर कार्यको करते हुए देखकर द्रोणाचार्य व दुर्योधनादिकोंने अर्जुनकी खूब प्रशंसा की।

भीलकी गुरुभक्ति

किसी समय अर्जुन हाथमें धनुषको लेकर वनमें गया। वहां उसने सिंहके समान उन्नत एक कुत्तेको देखा, उसका मुख बाणके प्रहारसे संरुद्ध था। उसे देखकर अर्जुन विचार करने लगा कि इसका मुख बाणोंसे किसके द्वारा वेधा गया है। यह कार्य शब्दवेधके जानकारको छोड़कर दूसरे किसीके द्वारा नहीं किया जा सकता। इधर मैंने यहभी सुना है कि गुरु द्रोणाचार्यके अतिरिक्त दूसरा कोई व्यक्ति शब्दवेधको नहीं जानता। शब्दवेधकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये मैं उनके समीपमें रहता हूं। उन्होंने प्रसन्न होकर वह विद्या केवल मुझेही दी है, अन्य किसीभी शिष्यको नहीं दी। जब यह कुत्ता भोंक रहा होगा, तभी लक्ष्य करके उसका मुख बाणोंसे भर दिया गया है। परन्तु वह किस शब्दवेधीके द्वारा भरा गया है, यह समझमें नहीं आता। इस प्रकार विचार करता हुआ वह आश्चर्यसे वनमें घूमने लगा। उसने एक जगह हाथमें कुत्तेको पकडे हुए और कंधेपर धनुषको धारण करनेवाले एक भयानक भीलको देखा। उसे देखकर अर्जुनने पूछा कि मित्र! तुम कौन हो, कहां रहते हो और कौनसी विद्याको धारण करनेवाले हो। उसने उत्तर दिया कि मैं वनवासी भील हूं, धनुर्विद्यामें निपुण और शुद्ध शब्दवेधका जानकार हूं। अर्जुनने फिर पूछा कि हे भिल्लराज! यह विद्या तुमने कहांसे पायी और तुम्हारा गुरु कौन है? भीलने कहा कि मेरे गुरु द्रोणाचार्य हैं, उन्हींके प्रसादसे यह विद्या मुझे प्राप्त हुई है[1]। उनके सिवा अन्य कोई इस विद्याका जानकार नहीं है। अर्जुनने यह सोचकर कि गुरु द्रोणाचार्यसे इसका संयोग होना शक्य नहीं है, पुनः उससे प्रश्न किया कि तुमने द्रोणाचार्यको कहां देखा। तब भीलने एक स्तूपको दिखा कर कहा कि ये हैं वे मेरे गुरु द्रोणाचार्य। इस पवित्र स्तूपमें मैंने गुरुकी कल्पना की है, गुरुत्व बुद्धिसे मैं इसको बार बार प्रणाम करता हूं। इसीके प्रसादसे मुझे शब्दवेध विद्या प्राप्त हुई है। यह सुनकर अर्जुनने उसकी गुरुभक्तिकी बहुत प्रशंसा की और वह वापिस हस्तिनापुर आ गया।

यहां आकर अर्जुनने उक्त घटनासे गुरु द्रोणाचार्यको परिचित कराया। साथही यहभी निवेदन किया कि हे आचार्य! वह निर्दय भील निरपराध जीवोंका घात करता है। यह सुनकर द्रोणाचार्यके मनमें दुख हुआ। वे इस अनर्थको रोकनेके लिये मायावेषमें अर्जुनके साथ उस

---

१ सोऽवददद्भद्र ! पल्लीन्दोर्हिरण्यधनुषः सुतः। एकलव्याभिधानोऽस्मि पुलिन्दकुलसम्भवः ॥
शब्दतत्त्वाम्बुधिद्रोणी द्रोणाचार्यश्च मे गुरुः।
श्रूयते धन्विनां धुर्यः शिष्यो यस्य धनञ्जयः ॥ दे. प्र. पां. च. ३, २८४-८५.

वनमें गये। वहां जाकर उन्होंने भीलको देखा। वह प्रत्यक्षमें द्रोणाचार्यसे परिचित नहीं था। द्रोणाचार्यने उससे पूछा कि तुम कौन हो और तुम्हारे गुरु कौन है? उसने उत्तर दिया कि मैं भील हूं और मेरे गुरु द्रोणाचार्य हैं। फिर द्रोणाचार्य बोले कि यदि तुझे गुरुका साक्षात्कार हो तो तू क्या करेगा? उसने कहा कि मैं उनकी दासता करुंगा। तब आचार्यने कहा कि वह द्रोणाचार्य मैं ही हूं। यदि तू वचन देता है तो मैं तुझसे कुछ याचना करना चाहता हूं। भीलका वचन प्राप्त कर द्रोणाचार्यने उससे अपने दाहिने हाथके अंगूठेको काटकर देनेके लिये कहा। तब आज्ञाप्रतिपालक गुरुभक्त भीलने तुरन्त अपना दाहिना अंगूठा काटकर दे दिया। हाथके अंगुठा रहित होजानेसे अब वह जीवघातको करनेवाले धनुषको ग्रहण नहीं कर सकता था। पापी व्यक्तिको शब्दार्थवेधिनी विद्या नहीं देना चाहिये, यह विचार कर द्रोणाचार्यने अर्जुनके लिये उक्त समस्त विद्या अर्पित कर दी[१]।

कपटी दुर्योधनद्वारा लाक्षागृह निर्माण और उसका दाह

दुर्योधन आदि स्वभावतः ईर्षालु थे, वे पाण्डवोंकी समृद्धि न देख सकते थे। अब वे स्पष्ट वाक्योंमें कहने लगे कि "हम सौ भाई और पाण्डव केवल पांच हैं, फिरभी वे आधे राज्यको भोग रहे हैं। यह अन्याय है। वस्तुतः राज्यको एकसौ पांच भागोंमें विभक्त कर सौ भागोंका उपभोग हमें और पांच भागोंका उपभोग पाण्डवोंको करना चाहिये था। यही न्यायोचित मार्ग था[२]।" इस प्रकार पूर्वमें महात्मा गांगेय आदिकोंके द्वारा किये गये राज्यविभागको दूषित ठहरा कर दुर्योधनादिक युद्धमें उद्युक्त हो गये। इन वचनोंको सुनकर भीमादिक पाण्डवोंको क्रोध उत्पन्न हुआ। परन्तु युधिष्ठिरके निवारण करनेसे वे पूर्ववत् शान्तही रहे।

परन्तु दुर्योधनके हृदयमें शान्ति न थी। उसने उनके मारनेके निमित्त गुप्त रूपसे लाखका सुन्दर महल बनवाया और पितामह गांगेयसे प्रार्थना की कि मैंने यह सर्वांगसुन्दर प्रासाद पाण्डवोंके लिये बनवा दिया है, आप यह उन्हें देदें। वे इसमें स्वतन्त्रतापूर्वक निवास करें और हम लोग अपने गृहमें स्थिर होकर रहें। यह सुनकर सरलचित्त गांगेयने दुर्योधनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्होंने कहा कि यह अच्छाही किया, एक गृहमें रहनेपर विरोध रहता है। अतएव स्वतन्त्रतापूर्वक अलग अलग रहनेसे स्थिर शान्ति रह सकेगी। इसी विचारसे उन्होंने पाण्डवोंको बुलाया और अपना अभिप्राय प्रगट कर उन्हें लाक्षागृहमें भेज दिया। शक्तिशाली पाण्डव दुर्योधनके कपटाचरणसे अनभिज्ञ थे, अतः उन्होंने इसमें कोई विरोध प्रगट नहीं किया।

---

१ यह कथानक देवप्रभसूरिके पाण्डवचरित्र (३, २७९–३२५) में भी प्रायः इसी प्रकारसे पाया जाता है।

२ यह प्रसंग हरिवंशपुराणमेंभी इसी प्रकारसे मिलता-जुलता पाया जाता है। जैसे–

पार्थप्रतापविज्ञानमात्सर्योपहता अथ। दुर्योधनादयः कर्तुं सन्धिदूषणमुद्यताः॥
पंच कौरवराज्यार्थमेकतः शतमेकतः।
भुंजन्ति किमितोऽन्यत्स्यादन्याय्यमिति ते जगुः॥ ह. पु. ४५, ४९–५०

दुर्योधनका यह कपटपूर्ण व्यवहार किसी प्रकारसे विदुरको ज्ञात हो गया। उन्होंने पाण्डवोंको सचेत करके कह दिया कि तुम्हें दुष्टचित्त दुर्योधनादिकका विश्वास नहीं करना चाहिये। यह सुन्दर गृह लाखसे निर्मित है। तुम दिनमें इधर–उधर वनमें रहना और रातको जागते हुए इसमें रहना। इस प्रवादसे सचेत करके विदुर वनमें गये और पाण्डवोंके रक्षणका उपाय सोचने लगे। अन्ततः उन्हें एक उपाय सूझा। उन्होंने अवसर प्राप्त होनेपर महलसे बाहर निकल जानेके लिये एक गुप्त सुरंग बनवा दी।

लाक्षागृहमें रहते हुए पाण्डवोंका एक वर्ष बीत गया। अब दुर्योधनसे अधिक नहीं रहा गया। उसने कोतवालको बुलाकर और अभीष्ट द्रव्य देनेका लोभ दिखाकर महलमें आग लगानेकी आज्ञा दी। परन्तु साहसी कोतवालने "हे राजन्, आप चाहे मुझे विपुल सम्पत्ति दें, चाहे मेरीही सम्पत्तिका अपहरण करा लें; चाहे मुझपर प्रसन्न हों, चाहे क्रुद्ध होकर मृत्यु दण्ड दें, अथवा दयापूर्वक चाहे मुझे राज्य दें, चाहे मेरी गर्दन कटा दें, किन्तु कपटपूर्वक यह अकार्य मुझसे न हो सकेगा।" यह कहकर उसने दुर्योधनकी उक्त आज्ञाको अस्वीकार कर दिया। उससे क्रुद्ध होकर दुर्योधनने उसे कारागारमें डाल दिया। फिर दुर्योधनने पुरोहित को बुलाकर और वस्त्रभूषणादिसे अलंकृत कर उसे इस कार्यमें नियुक्त किया। तदनुसार उस दुष्ट लोभी ब्राह्मण (सूत्रकण्ठ) ने उक्त गृहमें आग लगा दी और स्वयं कहीं भाग गया।

उस समय पांचों पाण्डव थककर गहरी निद्रामें सो रहे थे, वे जल्दी नहीं जागे। आगकी लपटोंमें घिरकर जब वे किसी प्रकारसे जागृत हुए तो आगकी भयानकता को देखकर व्याकुल होकर बाहिर निकलनेका उपाय सोचने लगे। उन्हें पूर्व निर्मापित सुरंगका पता न था। अन्तमें इधर

---

१ हरिवंश पुराणमें लाक्षागृहदाहका विशेष वृत्तान्त नहीं पाया जाता। वहां केवल इतना मात्र कहा गया है–

वसतां शान्तचित्तानां दिनैः कतिपयैरपि। प्रसुप्तानां गृहं तेषां दीपितं धृतराष्ट्रजैः ॥
विबुध्य सहसा मात्रा सत्रा ते पंच पाण्डवाः। सुरंगया विनिःसृत्य गताः क्वाप्यपभीरवः ॥ ४५, ५६–५७.

उत्तरपुराणमें द्रुपद-राजाद्वाराकृत द्रौपदीके विवाहप्रस्तावमें यह कहा गया है–

एतान् सहजशत्रुत्वाद्दुर्योधनमहीपतिः। पाण्डुपुत्रानुपायेन लाक्षालयमवीविशत् ॥
हेतुं तं तेऽपि विज्ञाय स्वपुण्यपरिचोदिताः। प्रद्रुता पयसि क्ष्माजस्याधस्तात्किल्बिषं स्वयम् ॥
अपहृत्य सुरंगोपान्तेन देशान्तरं गताः। स्वसाम्बन्धादिदुःखस्य छेदं नायंश्च पाण्डवाः ॥ उ.पु. ७२, २०१-२०३

दुर्योधनकेद्वारा भेजे गये पुरोचन पुरोहितके वचनको प्रमाण मानकर पाण्डव नासिकसे वारणावत आ गये। वे यहां विशाल प्रासादमें रहने लगे। विदुरके दूत प्रियंवदने दुर्योधनद्वारा कृष्ण चतुर्दशीको पाण्डवोंके जलाये जानेका संकेत कर उन्हें उससे सावधान किया। पुरोचनने कृष्ण चतुर्दशीको भवनमें आग लगा दी। भीमने पुरोचनको मुक्कोंद्वारा मार डाला और आगमें फेंक दिया (दे. प्र. सूरीकृत पां. पु. ७, १३५–१९२)।

उधर घूमते हुए भीमको सुरंगका पता चल गया और उससे बाहिर निकल कर वे सब शीघ्रही जंगलमें जा पहुंचे। महलसे बाहिर निकलनेपर भीमने वहां छह मुर्दे डाल दिये थे। प्रातःकाल होनेपर यह वार्ता नगरमें वेगसे फैल गई। सर्वत्र हाहाकार मच गया। गांगेय और द्रोणाचार्यको तो मूर्छा आ गई। द्रोणाचार्यने तो निर्भय होकर कौरवोंसे कह दिया कि इस प्रकारसे कुलक्रमका विनाश करना तुम्हें योग्य नहीं है। इस प्रकार भर्त्सना करनेपर कौरव अपना मुख ऊपर नहीं उठा सके।

पाण्डवोंका देशाटन

उधर पाण्डव वनमेंसे जाते हुए गंगा नदीके किनारे पहुंचे और उसे पार करनेके लिये नावमें जा बैठे। नाव चलकर सहसा नदीके बीचमें रुक गई। मल्लाहसे पूछनेपर उन्हें मालूम हुआ कि यहां तुण्डिका नामक जलदेवता रहती है जो नरबलि चाहती है। इससे सब सचिन्त हो गये। अन्तमें भीम नदीमें कूद पडा और युद्धमें तुण्डिकाको परास्त कर अथाह जलमें तैरते हुए किनारे जा पहुंचा[1]। उसको आते देखकर शोकाकुल हुए युधिष्ठिर आदिको बडी प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात् वे ब्राह्मण वेषमें चल कर कौशिकपुरी पहुंचे। वहां वर्ण नामक राजाकी पत्नी प्रभाकरीसे उत्पन्न कमला नामकी सुन्दर कन्या थी। वह युधिष्ठिरके लावण्यमय रूपको देखकर आसक्त हो गई। उसकी खिन्न अवस्थासे इस बातको जानकर राजा वर्णने पाण्डवोंको बुलाया और यथायोग्य आदरसत्कार कर युधिष्ठिरके साथ विधिपूर्वक कमलाका विवाह कर दिया। पाण्डव वहां कुछ दिन रहकर और वर्णराजाकी इच्छानुसार अपना परिचय देकर कमलाको वहीं छोड आगे चल दिये[2]। वे महान् पुरुषोंके द्वारा देश-देशमें पूजे जाने लगे।

देशाटन करते हुए वे पाण्डव किसी पुण्यद्रुम नामक वनमें पहुंचे। उन्होंने वहांपर स्थित जिनमन्दिरोंमें पहुंचकर दर्शन-पूजन व मुनिवन्दन किया। तत्पश्चात् मुनिसे जिनपूजाफलको पूछकर आर्यिकाकी वन्दना की। उक्त आर्यिकाके समक्षमें बैठी हुई एक उत्तम कन्याको देखकर कुन्तीने तद्विष-

---

१ हरिवंशपुराणमें नाव द्वारा गंगा पार करने और तुण्डिका देवीके परास्त करनेका कोई उल्लेख नहीं है। वहां (४५–६०) में इतना मात्र कहा गया है कि महाबुद्धिमान् वे कुन्तिपुत्र गंगा नदीको पार करके वेष बदलकर पूर्व दिशाकी ओर गये। उत्तरपुराणमें यह वृत्त नहीं है। वहां ग्रन्थ विस्तारसे डरनेवालोंके लिये संक्षेपसेही पाण्डवचरित्र कहनेकी प्रतिज्ञा की गई है। यथा–

अत्र पाण्डुतनूजानां प्रपंचोऽल्पः प्रभाष्यते। ग्रन्थविस्तरभीरूणामायुर्मेधानुरोधतः ॥ ७२–१९७

२ हरिवंशपुराणमें वर्ण राजाकी पत्नीका नाम प्रभावती पाया जाता है। कन्याका नाम वहां निर्दिष्ट नहीं है। उसके वर्णनमें दिये गये 'कुसुमकोमल' सुदर्शन और 'धन्या' पद विशेषण प्रतीत होते हैं। वहां बतलाया गया है कि कन्यारूप कुमुदिनी युधिष्ठिररूप चन्द्रके देखनेसे विकासको प्राप्त हुई। भविष्यमें युधिष्ठिरकी पत्नी होनेवाली कन्याने सोचा की इस जन्ममें यही मेरा उत्तम वर हो। उसके अभिप्रायको जानकर युधिष्ठिर प्रेमबन्धनमें बंधकर व विवाहके विषयमें संज्ञासेही आशाबन्ध दिखलाकर चले गये (४५, ६३-६५)।

यक जिज्ञासा प्रगट की। आर्यिकाने उसकी कथा इस प्रकार कही– यहां कौशाम्बी पुरीके राजा विन्ध्यसेनकी पत्नी विन्ध्यसेनाकी कुक्षिसे उत्पन्न यह वसन्तसेना नामकी सुन्दर साध्वी कन्या है। इसके पिता विन्ध्यसेनने इसे युधिष्ठिरको देनेकी कल्पना की थी। किन्तु दुर्भाग्यसे कौरवों द्वारा उनके जलाये जानेकी दुखद वार्ता सुनकर वह तप करनेको उद्यत हुई। विन्ध्यसेनने उसे दीक्षामें उद्युक्त देखकर समझाया कि– हे पुत्रि! ऐसे महापुरुष अल्पायु नहीं हुआ करते हैं। इसलिये तू कुछ समय ठहर कर युधिष्ठिरकी प्रतीक्षा कर। फिर यदि उसकी प्राप्ति न हो सके तो दीक्षा ले लेना। तबसे यह यथायोग्य संयमका पालन करती हुई यहां मेरे पास रहती है। इन छह प्राणियोंको देखकर यद्यपि वसन्तसेनाको पाण्डव होनेकी आशंका अवश्य हुई। परन्तु कुन्तीके यह कहनेपर कि "हम सब दैवज्ञ ब्राह्मण हैं। तेरे पुण्योदयसे पाण्डव जीवित होंगे, तू दीक्षाके विचारको छोड कर श्रावकधर्ममें स्थिर रह।" वह कुछ निश्चय न कर सकी।

तत्पश्चात् पाण्डव वहांसे चलकर त्रिशृङ्ग नामक पुरमें गये। वहांके राजा चण्डवाहनकी गुणप्रभा आदि दस तथा प्रियमित्र सेठकी एक नयनसुन्दरी, ये युधिष्ठिरके लिये संकल्पित ग्यारह कन्यायें उनकी मृत्युवार्तासे दुखित हो धर्मध्यानमें उद्युक्त होकर रह रही थीं। "एक मुहूर्तके भीतर पाण्डव यहां आवेगें" ऐसा उन्हें दमितारि मुनिसे ज्ञात हुआ। तदनुसार पाण्डव वहां पहुंचे और उक्त ग्यारह कन्याओंका विवाह युधिष्ठिरके साथ कर दिया गया।

---

१ हरिवंशपुराणमें इस वनका नाम श्लेष्मान्तक बतलाया गया है। वहां वे तापस वेषमें पहुंचे। वहां कहा गया है कि वसुन्धरपुरके राजा विन्ध्यसेन और उनकी पत्नी नर्मदाके वसन्तसुन्दरी नामक कन्या थी। वह गुरुओंद्वारा पहिले ही युधिष्ठिरके लिये दे दी गई थी। किन्तु उनके जलनेकी बात सुनकर पुराकृत कर्मकी निन्दा करती हुई उसने जन्मान्तरमें पतिदर्शनकी अभिलाषासे वहां तापसाश्रममें तपश्चर्या प्रारम्भ की। पाण्डवोंके तापसाश्रममें आनेपर उसने आतिथ्य कर उनके क्षुत्पिपासा युक्त मार्गके श्रमको दूर किया। हे बाले! इस नवीन वयमें तुझे वैराग्य कैसे हुआ? इस प्रकार कुन्तीद्वारा पूछे जानेपर राजपुत्रीने विनयपूर्वक उत्तर दिया कि मैं गुरुओं (माता–पिता) द्वारा पहिले ही कुरुवंशजात कुन्तीके ज्येष्ठ पुत्रके लिये निवेदित की गई थी। किन्तु उनके जल जानेकी वार्तासे खिन्न हो तपश्चरणमें स्थित हुई हूं। यह सुनकर कुन्तीने उसे सान्त्वना दी। इस प्रकार वह पतिप्राप्तिकी आशासे यथापूर्व स्थित रही। (ह. पु. ४५, ६९–९०)।

२ हरिवंशपुराणके अनुसार राजा व सेठ इन पुत्रियोंके ज्येष्ठ कुन्तीपुत्रके लिये देना चाहते हैं, परन्तु वे पुत्रियोंने 'हमारा पति अन्यलोकको प्राप्त हुआ' ऐसा जानकर उस द्विजको स्वीकार नहीं करती हैं। यथा–

राजा सभार्य इभ्यश्च महापुरुषवेदिनौ। कुन्तीपुत्राय ताः कन्या ज्यायसे दातुमिच्छतः॥
तास्तु निश्चितचित्तत्वादन्यलोकगतोऽपि हि।
स एष पतिरस्माकमिति नेच्छन्ति तं द्विजम्॥ ह. पु. ४५, १०३–१०४

यहांसे निकल कर पाण्डव किसी महावनमें[1] पहुंचे। वहां दैवज्ञके कथनानुसार भीमको संध्याकार-पुरके अधिपति हिडिम्बवंशोद्भूत सिंहघोष राजाकी कन्या हिडिम्बाका[2] लाभ हुआ। पाण्डव कुछ दिन वहां ही स्थित रहे। समयानुसार हिडिम्बाके पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम 'घुटुक[3]' रक्खा गया। पश्चात् वहांसे भी चलकर पाण्डव भीम नामक वनमें स्थित भीमासुरको निर्मद करते हुए श्रुतपुरमें जा पहुंचे। वहां रात्रिको किसी वणिक्के गृहमें निवास किया। रात्रिमें वैश्यपत्नीको रोती देखकर कुन्तीने रोनेका कारण पूछा। उसने श्रुतपुरके राजा बकके मांसभक्षी होने, एक समय पशुमांसके न मिलनेपर मृत नरबालकका मांस देने और उसको उसका चस्का लगने, एतदर्थ बालकोंके मारे जाने तथा प्रतिदिन एक मनुष्यके देनेका नियम बनाने आदिकी सब कथा कह सुनाई। कुन्तीकी प्रेरणासे भीमने उसे वशमें कर नगरवासियोंके कष्टको दूर किया[4]। इससे प्रसन्न होकर नगरवासियोंने भीमका जय-जयकार किया और करोडोंका धन-धान्य भेंटमें दिया। इससे पाण्डवोंने वहां जिनमन्दिरका निर्माण कराया और वर्षा ऋतुके उपस्थित होनेपर चार मास तक वहीं धर्मध्यानपूर्वक निवास किया[5]।

वर्षाकालके समाप्त होनेपर पाण्डव वहांसे चम्पापुरी गये। वहांका राजा कर्ण था। यहां वे एक कुम्हारके घरमें रहे[6]। भीमने आलानसे छूटे हुए एक मदोन्मत्त हाथीको वशमें किया। वे वहां कुछ दिन रहकर वैदेशिकपुर पहुंचे। यहां राजा वृषध्वजके दिशावली प्रियासे उत्पन्न एक दिशानन्दा नामकी कन्या थी। युधिष्ठिर आदिको छोड़कर अकेला भीम भिक्षार्थ विप्रके वेषमें नगरमें गया।

---

१ हरिवंश पुराणमें (४५-११३) में 'विन्ध्यमाविशत्' ऐसा निर्देश है।

२ ह. पु. (४५, ११५-१६) में उसके हृदयसुन्दरी और हिडंबसुन्दरी (११२) ये दो नाम निर्दिष्ट हैं। यहां उसके पुत्र होनेका उल्लेख नहीं है।

३ विष्णुपुराण (४, २०, ४५) और चम्पूभारत (पृ. ५८ श्लोक ३६) में भीमसेनसे हिडिम्बाके घटोत्कच नामक पुत्रके उत्पन्न होनेका निर्देश पाया जाता है।

४ हरिवंशपुराणके अनुसार पाण्डव श्लेष्मान्तक वनमें स्थित तापसाश्रमसे निकलकर तापस वेषको छोड़ द्विजके वेषमें ईहापुर पहुंचे। वहां भीमकेद्वारा नरभक्षी भृंग (वृक और भृंग शब्दोंमें व्यत्यय हुआ प्रतीत होता है।) राक्षसका दमन किये जानेपर निर्भयताको प्राप्त हुए नागरिकोंने पाण्डवोंकी पूजा की। (४५, ९४-९५)। इतना मात्र वृत्त यहां पाया जाता है। बकासुरका विस्तृत वृत्त दे. प्र. सूरिके पां. च. (७, ४०९-७०५) में पाया जाता है।

५ देवप्रभ सूरिविरचित पाण्डवपुराणके अनुसार पाण्डव कृष्णके साथ नासिक्य नगर (नासिक गजपंथ) गये। वहां उन्होंने माताके द्वारा निर्मापित चन्द्रप्रभ जिनेंद्रकी विकसित कमलपुष्पोंके साथ मणिमयी अर्चा की। (७, ११२-११६)

६ हरिवंशपुराणमे कुम्हारके घरमें रहनेका उल्लेख नहीं है। इसके अनुसार पाण्डव ईहापुरसे त्रिशृङ्गपुर और फिर वहांसे चम्पापुरी गये। (४५, १०५-१०६)

भीमको देखकर उसमें अनुरक्त हुई अपनी कन्याको लक्ष्य कर वृषध्वजने उसे बुलाकर भिक्षाके रूपमें देनेके लिये दिशानन्दाको उपस्थित किया। "हे राजन्! मैं नहीं जानता, बडे भाई जाने" इस प्रकार भीमके कहनेपर राजाने युधिष्ठिर आदिको बुलाया और यथायोग्य आदरसत्कार कर भीमके साथ कन्या दिशानन्दाका विवाह कर दिया[1]।

पाण्डवोंका हस्तिनापुर आगमन

यहांसे जाकर पाण्डव विन्ध्याचलपर पहुंचे। वहां माणिभद्रक यक्षसे भीमको शत्रुक्षयंकरा गदा प्राप्त हुई। इसके पश्चात् वे दक्षिण दिशाके देशोंमें परिभ्रमण कर हस्तिनापुर जानेके लिये उद्यत हुए। मार्गमें जाते हुए उन्हें माकन्दीपुरी प्राप्त हुई[2]। पाण्डव वहां ब्राह्मण वेषमें किसी कुम्हारके घर ठहर गये। वहांका राजा द्रुपद था। उसकी पत्नीका नाम भोगवती[3] था। उसके धृष्टद्युम्न आदिक पुत्र और द्रौपदी नामकी पुत्री थी। राजा द्रुपदने द्रौपदीके विवाहार्थ स्वयंवर किया। ब्राह्मणवेषको धारण करनेवाले अर्जुनने गाण्डीव धनुषको चढाकर वहां राधावेध [चक्कर खाती हुई राधाकी नाकके मोतीका वेधन] किया। तब द्रौपदीने अर्जुनके गलेमें माला पहना दी। दैववश वह माला वायुके निमित्तसे बिखरकर पांचों पाण्डवोंके पर्यङ्कमें फैल गई। इससे दुष्ट पुरुषोंने 'इसने इन पाचोंको वरण किया' ऐसी घोषणा की। द्रौपदीका यह कार्य दुष्ट दुर्योधनको सह्य न हुआ। उसने "राजाओंके रहते हुए ब्राह्मणको द्रौपदीसे विवाह करनेका क्या अधिकार है?" इस प्रकार राजाओंको भड़काया। उससे प्रेरित होकर बहुतसे राजा युद्धके लिये उद्यत हो गये। परन्तु पाण्डवोंके सामने वे टिक नहीं सके। अन्तमें अर्जुनके सामने स्वयं द्रोणाचार्य उपस्थित हुए। "जिन पूज्य गुरु देवके प्रसादसे निर्मल धनुर्विद्या प्राप्तकर युद्धमें विजय प्राप्त की, उनके साथ कैसे युद्ध!" यह सोचकर उसने स्वपरिचय युक्त बाण भेजा। द्रोणाचार्यने यह समाचार सबको सुना

---

१ हरिवंशपुराणमें कन्याके अनुरक्त होनेका उल्लेख नहीं है। किन्तु राजा वृषध्वजने भिक्षार्थी भीमको महापुरुष जानकर स्वयंही उसे कन्या देनेका प्रस्ताव किया। '-यह भिक्षा अपूर्व है, ऐसी भिक्षाके प्रति स्वतन्त्रता नहीं है-' यह कहकर और वहांसे जाकर भीमने उनसे (युधिष्ठिर आदिसे) निवेदन किया। 'यहां वे डेढ मास रहे। [४५, १०७-११३]

२ हरिवंशपुराणमेंभी ठीक इसी प्रकारसे कहा गया है। यथा—

विहृत्य विविधान् देशान दाक्षिणात्यान् महोदयाः। ते हास्तिनपुरं गन्तुं प्रवृत्ताः पाण्डुनन्दनाः॥
प्राप्ता मार्गवशाद् विश्वे माकन्दीं नगरीं दिवः।
प्रतिच्छन्दस्थितिं दिव्यां दधाना देवविभ्रमाः॥ ह. पु. ४५, ११९-२०

३ उत्तरपुराणमें नगरीका नाम कम्पिल्या और द्रुपदपत्नीका नाम दृढरथा पाया जाता है। यथा—
कम्पिल्यायां धराधीशो नगरे द्रुपदाह्वयः। देवी दृढरथा तस्य द्रौपदी तनया तयोः॥ ७२-१९८
दे. प्र. पां. चरित्रमें नगरीका नाम काम्पिल्य बतलाया गया है। [४, ३४]

दिया। इससे युद्ध समाप्त हो गया और चतुरङ्ग सेनासहित पाण्डव तथा कौरव हस्तिनापुर जा पहुंचे[5]।

हस्तिनापुर पहुंचकर पाण्डव व कौरव परस्परमें प्रीतिको प्राप्त हो पृथिवी, हाथी, घोडे एवं रथों आदिका आधा आधा विभागकर आनन्दसे रहने लगे[6]। पाचों पाण्डव क्रमशः इन्द्रपथ, तिलपथ, सुनपथ [सोनिपथ,], जलपथ [पानीपत] और वणिक्पथ, इन पांच नगरोंको बसाकर उन्हींमें रहते थे। युधिष्ठिर और भीमने अनेक नगरोंमें पहुंचकर जिन राजपुत्रियोंके साथ विवाह किया था उन सबको बुला लिया। कौशाम्बीनरेशकी पुत्री वसन्तसेनाको लाकर उसके साथ युधिष्ठिरका विवाह कर दिया गया[7]।

---

४ ह. पु. ४५, १३५-३७. प्रस्तुत पाण्डवपुराण (२४, ६८-६९ व ८०-८१), हरिवंशपुराण (६४, १३४-३५) और उत्तरपुराण (७२, २५७-५९) में इस अपयशका कारण पूर्वभवमें द्रौपदी (कुमारिका) के द्वारा किया गया निदान बतलाया गया है। उसने पूर्वभवमें आर्यिकाधर्मका पालन करते हुए पांच विट पुरुषोंसे युक्त किसी वसन्तसेना नामकी सुन्दर वेश्याको देखकर 'ऐसा सौभाग्य मेरे लिये प्राप्त हो' इस प्रकारका विचार किया था। तदनुसार उसे यह अपयश प्राप्त हुआ।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (६, ६, २७९-३३६) और देवप्रभसूरिकृत पाण्डवपुराणके अनुसार द्रौपदी पांचों पाण्डवोंकाही वरण करना चाहती थी, परन्तु लोकापवादके भयसे उसने अर्जुनके गलेमें वरमाला डाली। फिरभी किसी दिव्यप्रभावसे लोगोंको ऐसा प्रतीत हुआ कि द्रौपदीने पांचोंकेही गलेमें वरमाला डाली (४, ३०९-१३)। उन्हें " द्रौपदीने पांचोंका वरण किया " ऐसी आकाशवाणी भी सुनायी दी। इससे किंकर्तव्यविमूढ हो द्रुपद राजा चिन्तित हुआ। इसी समय एक चारण ऋषिने मण्डपमें आकर द्रौपदीके पूर्वभवोंका वर्णन करते हुए कहा कि इसने सुकुमारिकाके भवमें आर्यिकासंयमका पालन करते हुए, पांच विट पुरुषोंके साथ एक देवदत्ता नामकी वेश्याको देखकर " तपके प्रभावसे मैं इसके समान पंचप्रेयसी होऊं " इस प्रकारका निदान किया। इस निदानका कारण उसकी भोगेच्छाका पूर्ण न हो सकना था (४, ३७८, ३८१)। तदनुसार इसे पांच पतियोंकी प्राप्ति हुई। ऐसा कहकर चारण ऋषि वहांसे चले गये व द्रौपदीका पांचों पाण्डवोंके साथ विवाह सम्पन्न हो गया (४१७)।

विष्णुपुराणमें पांचों पाण्डवोंके संयोगसे द्रौपदीके निम्न पांच पुत्रोंके उत्पन्न होनेका उल्लेख पाया जाता है। युधिष्ठिरसे प्रतिविन्ध्य, भीमसेनसे श्रुतसेन, अर्जुनसे श्रुतकीर्ति, नकुलसे श्रुतानीक और सहदेवसे श्रुतश्रम (४, २०, ४१-४२)।

५ यह द्रौपदीके विवाहका प्रसंग हरिवंशपुराण (४५, १२०-१४७) में भी इसी प्रकारसे पाया जाता है। इस प्रकरणमें ह. पु. के निम्न श्लोकोंसे पाण्डवपुराणके निम्न श्लोक अधिक प्रभावित हैं–ह. पु. १२६-१२९, १३२, १३५-१३९; पां. पु. १५ पर्व ५४, ६६-६८, १०८, ११२-११६।

६ अर्धराज्यविभागेन ते हास्तिनापुरे पुनः।
तस्थुर्दुर्योधनाद्याश्च पाण्डवाश्च यथायथम् ॥ ह. पु. ४५-१३८

७ आनाय्यानाय्य वृत्तोऽसौ ज्येष्ठ [ज्येष्ठः] कन्याः पुरातनीः। विवाहैः सुखिताश्चक्रे। भीमसेनो निजोचिताः ॥
ह. पु. ४५-१४९
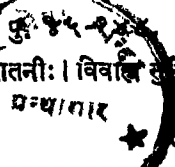
सुभद्राके साथ अर्जुनका विवाह

किसी समय कृष्णके बुलानेपर अर्जुनने ऊर्जयन्त पर्वतपर जाकर उनके साथ अनेक प्रकारसे क्रीडा की। पश्चात् वह कृष्णके साथ द्वारावती पहुंचा। वहां एक समय सुभद्राको जाते हुए देखकर अर्जुन उसकी सुन्दरतापर मुग्ध हो गया। उसने कृष्णसे उसका परिचय पूछा। कृष्णने हंसते हुए कहा कि क्या तुम नहीं जानते हो, यह मेरी सुभद्रा नामकी बहिन है। तब अर्जुनने हंसकर कहा कि यह मेरे मामाकी पुत्री है, अतः मेरे साथ इसका विवाह करना योग्य है। अन्ततः कृष्णकी इच्छानुसार अर्जुनके साथ सुभद्राका विवाह कर दिया गया। साथही युधिष्ठिरका लक्ष्मीमती, भीमका शेषवती, नकुलका विजया और सहदेवकाभी रतिके साथ विवाह सम्पन्न हुआ[1]। अर्जुनके सुभद्रासे अभिमन्यु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

युधिष्ठिरकी द्यूतक्रीडामें हार व वनप्रवास

किसी एक समय दुर्योधनने पाण्डवोंको बुलाकर युधिष्ठिरके साथ छलपूर्वक जुआ खेला। युधिष्ठिरने इस जुआमें धन-धान्य व हाथी, घोडे आदि सब कुछ हारकर अन्तमें समस्त स्त्रियों और भाईयोंकोभी दावपर रख दिया। अन्तमें बारह वर्षतक पृथिवीको हारकर युधिष्ठिरने जुआको समाप्त किया। इधर दुर्योधनने उन्हें बारह वर्षतक वनमें अज्ञातवास और एक वर्ष गुप्तवास करनेकी दूतके द्वारा सूचना दी। इसी बीच दुःशासनने द्रौपदीके महलमें जाकर और उसके बालोंको खींचकर बाहर निकाला।[2] इसपर भीम आदिको बहुत क्रोध आया। परन्तु धर्मराजके समझानेपर वे शान्त रहे। अन्तं गत्वा वे कुन्तीको विदुरके घर छोड़कर प्रवास करने लगे[3]। उन्होंने द्रौपदीकोभी विदुरके घर छोड़ना चाहा था, परन्तु वह वहां न रहकर उनके साथही गई। वे वन-उपवनोंमें

---

१ हरिवंशपुराणमें पांचों पाण्डवोंके विवाहका निर्देशमात्र किया गया है। यथा—

ज्येष्ठो लक्ष्मीमतीं लेभे भीमः शेषवतीं ततः। सुभद्रामर्जुनः कन्यां कनिष्ठौ विजयां रतिं ॥
दशार्हतनयास्तास्ते परिणीय यथाक्रमम्। रेमिरेऽमूभिरिष्टाभिः पाण्डवास्त्रिदशोपमाः ॥ ४७, १५-१९

२ दे. प्र. सूरिके पाण्डवचरित्रके अनुसार दुःशासनने द्रौपदीको केवल चोटी खींचकर बाहरही नहीं निकाला था, बल्कि उसने सम्पूर्ण सभाके बीच उसके अधोवस्त्रको खींचकर उसे अपमानित करनेका भी प्रयत्न किया था। किन्तु दैवीयप्रभावसे एक वस्त्रके खींचे जानेपर ठीक उसी प्रकारका दूसरा और दूसरेके खींचे जानेपर तीसरा, इस प्रकार वस्त्रपरम्परा देखी गई। इस प्रयत्नमें दुःशासन थक गया, किन्तु उसे नग्न न कर सका। इस दुष्कृत्यसे अत्यन्त क्रोधित होकर भीमने प्रतिज्ञा की कि जो द्रौपदीको बाल खींचकर सभाके बीचमे लाया है और जिसने गुरुओंके देखते खींचा है, उसके बाहुको मूलसे उखाड़कर यदि भूमिको रक्त-रंजित न कर दूं तथा उसके ऊरुको गदासे चूरचूर न कर दूं तो मेरा पाण्डुसे जन्म नहीं (६, ९५२-१०००)।

३ दे. प्र. पाण्डवचरित्रके अनुसार पाण्डु तो विदुरके पास हस्तिनापुरही रहे, किन्तु कुन्ती साथमें गई थी (७ ,९५-९७)।

निवास करते हुए कालिञ्जर वनमें पहुंचे[१]।

अर्जुनका विजयार्ध पर्वतपर जाना

यहां अर्जुन मनोहर नामक पर्वतपर चढ़कर बोला कि यदि इस पर्वतपर कोई देव, मनुष्य अथवा विद्याधर हो तो मुझे इष्टसिद्धिका उपाय बतलावे। तब वहां आकाशवाणीसे सुना गया कि "तू विजयार्ध पर्वतपर जा, वहां तुझे जयलक्ष्मी सिद्ध होगी। वहां पांच वर्ष रहनेके पश्चात् बन्धुओंसे मिलाफ होगा।" इतनेमेंही उसे प्रचंड धनुषको धारण करनेवाला एक भयानक भील दिखाई दिया। अर्जुनने उससे तिरस्कारपूर्वक धनुष मांगा। इससे वह क्रोधित होकर युद्ध करने लगा। अर्जुनने उसका घात करनेके लिये जितने बाण छोड़े उन सभीको भीलने निष्फल कर दिया। अन्तमें अर्जुनने उसे अजय्य समझकर बाहुयुद्ध किया। उसके पैरोंको पकड़कर शिरके चारों ओर घुमाते हुए वह पृथ्वींपर पटकनाही चाहता था कि उसने कृत्रिम भीलके रूपको छोड़कर अपना यथार्थ स्वरूप प्रकट कर दिया और अर्जुनको प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक वर मांगनेको कहा। अर्जुनने उसे अपना सारथी बनानेकी अभिलाषा प्रगट की। उसने इसे स्वीकार कर लिया। अर्जुनके पूछनेपर उसने अपना परिचय इस प्रकार दिया– विजयार्ध पर्वतपर स्थित दक्षिण श्रेणीमें रथनूपुर नामका नगर है। उसके स्वामी विद्युत्प्रभ राजाके इन्द्र और विद्युन्माली ये दो पुत्र हैं। उसने विरक्त होकर इन्द्रको राज्य दिया और स्वयं जिनदीक्षा धारण की। विद्युन्मालीको युवराज पद प्राप्त हुआ था। यह पुरवासियोंकी स्त्रियों और धन आदिका अपहरण कर उन्हें कष्ट देता था। इन्द्रके समझानेपर उसे शान्तिके बदले क्रोधही अधिक हुआ। वह रथनूपुरको छोड़कर स्वर्णपुरमें रहने लगा। इन्द्र उससे सन्तापित होकर दुःखी रहने लगा। मैं इसी इन्द्रका विद्याधर सेवक हूं। मेरा नाम चन्द्रशेखर और मेरे पिताका नाम विशालाक्ष है। नैमित्तिकके कथनानुसार मैं यहां इन्द्रके शत्रुओंके विनाशार्थ आपकी अपेक्षा कर रहा था। इस प्रकार अपना परिचय देकर वह चन्द्रशेखर विद्याधर अर्जुनको विमानमें बैठाकर विजयार्ध पर्वतपर ले गया। वहां पहुंचकर अर्जुनने इन्द्रके साथ रहकर उसके शत्रुओंको पराजित किया और राज्यको निष्कण्टक कर दियां। विद्याधरोंके

---

१ ह. पु. ४६, ३-७. (यहां इस वनका नाम कालांजला अटवी बतलाया गया है)।

२ हरिवंशपुराणमें यह कथानक निम्न प्रकार है-कालांजला अटवीमें असुरोद्गीत किंनरोद्गीत (ह. पु. २२-९८) नगरसे अपनी प्रिया कुसुमावतीके साथ एक सुतार नामक विद्याधर आया था। उसने शाबर विद्यासे युक्त होकर भीलका वेष धारण किया था। अर्जुनने उसे इस वेषमें स्त्रीके साथ क्रीडा करते हुए देखा। परस्पर दर्शन होनेपर अकस्मात् इन दोनोंमें विषम युद्ध छिड़ गया। अर्जुनने बाहुयुद्धमें उसके वक्षस्थलमें दृढ़मुष्टिका घात किया। तब कुसुमावती द्वारा पतिभिक्षा मांगनेपर अर्जुनने उसे छोड़ दिया। वह अर्जुनको प्रणाम कर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें चला गया (४६, ८-१३)। यहां इन्द्र विद्याधरका कोई उल्लेख नहीं किया गया।

देवप्रभसूरिके पाण्डवचरित्रमें पर्वतका नाम गन्धमादन (८-१८५) बतलाया गया है। शेष सब

अतिशय आग्रहसे अर्जुन वहां पांच वर्षतक रहा। तत्पश्चात् वह सुतार, गन्धर्व आदि मित्रों तथा चित्राङ्ग आदि योग्य सौ शिष्योंके साथ कालिञ्जर वनमें वापिस आगया और युधिष्ठिर आदि बन्धुओंसे मिलकर अतिशय प्रसन्न हुआ।

सहायवनमें चित्राङ्गदद्वारा दुर्योधनका बन्धन

किसी समय दुर्योधन सहायवनमें प्राप्त हुए पाण्डवोंका समाचार जानकर उन्हें मारनेके लिये सेनाके साथ वहां पहुंचा। किसी प्रकार नारद ऋषिसे इसका संकेत पाकर चित्राङ्ग विद्याधर युद्धमें प्रवृत्त हुआ। तब चित्राङ्ग और दुर्योधनके बीच भयानक युद्ध हुआ। अन्तमें चित्राङ्गने उसे नागपाशसे बांध लिया। वह उसे रथमें बैठाकर अपने नगरकी ओर जानेमें तत्पर हुआ। इधर दुयाधनकी पत्नी भानुमती इस घटनासे दुखी होकर रोने लगी। उसके रुदनको देखकर भीष्म पितामहने सान्त्वन देते हुए युधिष्ठिरकी शरणमें जानेके लिये कहा। तदनुसार उनके पास जाकर भानुमती द्वारा पतिभिक्षा मांगनेपर युधिष्ठिरने अर्जुनसे मरनेके पहिलेही दुर्योधनको छुड़ाकर लानेके लिये कहा। युधिष्ठिरकी आज्ञा पाकर अर्जुन रथमें बैठकर चल दिया और युद्धपूर्वक उन विद्याधरोंसे दुर्योधनको छुड़ाकर ले आया वह दुर्योधनने युधिष्ठिरकी स्तुति कर क्षमायाचना की और वह अपने स्थानको वापिस चला गया।

दुर्योधनको अर्जुन द्वारा बन्धनमुक्त कराये जानेका अपमान असह्य हुआ। उसने इस दुखकी शान्तिके लिये यह घोषणा कराई कि जो पाण्डवोंको शीघ्र मारकर मेरे अपमानजनित दुखको दूर करेगा उसके लिये मैं आधा राज्य दुंगा। इस घोषणाको सुनकर कनकध्वज राजाने सातवें दिन पाण्डवोंको मारनेका अपना निश्चय प्रगट किया। उन्हें न मार सकनेपर उसने स्वयं अग्निमें जल मरनेकी प्रतिज्ञा की। इस प्रतिज्ञाकी पूर्तिके लिये वह 'कृत्या' विद्या सिद्ध करनेके लिये उद्यत हुआ।

(जैसे-विशालाक्षतनय चन्द्रशेखर, रथनूपुर, विद्युत्क्रम, इन्द्र, विद्युन्माली आदि नाम) वृत्तान्त प्रायः प्रस्तुत पाण्डवपुराणकेही समान पाया जाता है (देखिये सर्ग ८, श्लोक १८५-३९८)।

१ यह वृत्तान्त हरिवंशपुराणमें नहीं पाया जाता। दे. प्र. पाण्डवचरित्र (९, ८७-१३९) में दुर्योधनके छुडानेका वृत्तान्त इसीसे मिलता-जुलता पाया जाता है।

चम्पूभारतके अनुसार जब पाण्डव द्वैत वनमें पहुंचे थे तब दुर्योधन उन्हें अपनी साम्राज्यलक्ष्मी दिखलानेके लिये निज गोकुल-निरीक्षणके मिषसे वहां गया था। उस समय उसके पाण्डवोंको तिरस्कृत करनेके विचारको देखकर इन्द्रकी आज्ञासे चित्रसेन नामक गन्धर्वराजने सेनाको क्षुभित करके उसे पाशोंसे बांध और आकाशमार्गसे लेकर चल दिया। तब इससे विलाप करती हुई उसकी स्त्रियां युधिष्ठरके शरणमें आई। उनको शरणागत आया देखकर युधिष्ठिरने दुर्योधनको बन्धनमुक्त करानेके लिये भीमादिकको आज्ञा दी। तब भीमादिकने जाकर गन्धर्वोंसे घोर युद्ध किया और दुर्योधनको उनसे छुड़ाकर युधिष्ठिरके समीप लाकर उपस्थित किया। चं. भा. ५, ४७-६४.

इधर नारद ऋषिद्वारा इस समाचारको जानकर युधिष्ठिर धर्मध्यानमें तत्पर हुआ। उसी समय धर्म देवने[1] अपने विचारको गुप्त रखकर द्रौपदीका हरण किया और छलसे पांचों पाण्डवोंको मूर्छित कर दिया। सातवें दिन 'कृत्या' विद्याके सिद्ध हो जानेपर कनकध्वजने उसे पाण्डवोंको मार डालनेके लिये भेजा। परन्तु पाण्डवोंको मृत पाकर वह वापिस चली गई और स्वयं कनकध्वजके शिरपर पड़कर उसकोहि मार डाला। पश्चात् देवने पाण्डवोंकी मूर्छा दूर कर उन्हें द्रौपदीको दे दिया और अपना विशुद्ध अभिप्राय प्रगट कर दिया[2]।

तत्पश्चात् पाण्डव मेघदल नामक नगरमें गये। वहांके राजा सिंहकी पत्नीका नाम कांचना और पुत्रीका नाम कनकमेखला था। राजाने भोजनसिद्ध्यर्थ प्राप्त हुए भीमको युधिष्ठिरकी आज्ञानुसार अपनी प्रिय पुत्री अर्पित की। वे कुछ समय वहांपरही रहे[3]।

पाण्डवोंका विराट नगरमें आगमन

तदनन्तर वे कौशल देशकी शोभाको देखते हुए रामगिरि पर्वतको प्राप्त हुए[4]। यहांसे क्रमशः देशाटन करते हुए वे विराट देशस्थ विराट नगरमें गये। उन सबने विचार किया कि वनमें रहते हुए बारह वर्ष पूर्ण हो गये, अब एक वर्ष गुप्त होकर और रहना है। इसके लिये अपने अपने वेषको बदल कर युधिष्ठिरने पुरोहित, भीमने रसोइया, अर्जुनने बृहन्नट नामक नाटकनायक, नकुलने वाजिरक्षक [सईस], सहदेवने गोरक्षक [गोपाल] और द्रौपदीने मालिनके वेषको ग्रहण

---

१ दे. प्र.पां. च. (९-३४६) में इस देवका नाम धर्मावतंस पाया जाता है। चं. भा. ५, ११४-११५.

२ यह सब वृत्तान्त हरिवंशपुराणमें नहीं उपलब्ध होता। देवप्रभसूरिविरचित पाण्डवपुराणके अनुसार यह कृत्या विद्या पुरोचन पुरोहितके भाई सुरोचनको सिद्ध हुई थी। उसने सातवें दिन पाण्डवोंको मार डालनेकी प्रतिज्ञा की थी। यथा—

आराधिता मया पूर्वमस्ति कृत्येति राक्षसी। क्रुद्धासौ ग्रसते क्षोणीं षट्खण्डीं किमु पाण्डवान् ॥

विधास्यामि तवाभीष्टमह्नि तद्देव सप्तमे। ममापि पाण्डवेया हि पुरोचनवधाद्द्विषः ॥ ९, २००-२०१.

३ हरिवंशपुराणमें सिंह राजाकी पत्नीका नाम कनकमेखला और पुत्रीका नाम कनकावर्ता बतलाया है। यहां मेघ नामक सेठकी कन्याके साथ भी भीमके विवाहका उल्लेख पाया जाता है (४६, १४-१७)।

४ हरिवंशपुराणके अनुसार पाण्डव कितनेही मास कौशल देशमें सुखपूर्वक रहकर रामगिरि (रामटेक) पर्वतको प्राप्त हुए। यथा—

याताः क्रमेण पुन्नागा विषयं कौशलाभिधम् ॥ स्थित्वा तत्रापि सौख्येन मासान् कतिपयानपि।

प्राप्ता रामगिरिं प्राग्यो राम-लक्ष्मणसेवितः ॥ ४६, १७-१८

यहां आगे (१९-२२) कहा गया है कि रामगिरिपर रामदेवके द्वारा कारित सैकड़ों चैत्यालय शोभायमान हैं। पाण्डवोंने वहां नाना देशोंसे आये हुए भव्य जीवोंके द्वारा वन्दित ऐसी जिनेंद्रप्रतिमाओंकी वन्दना की। यहांसे विहार करते हुए उनके ग्यारह वर्ष वीत चुके थे।

कियीं। इन्हीं वेषोंके अनुसार कार्य करते हुए वे विराट राजाके यहां रहने लगे। राजा इनके कार्योंसे प्रसन्न था। इस प्रकार वहां उनका एक वर्ष आनन्दपूर्वक बीत गया।[2]

इसी बीचमें चूलिकापुरीके राजा चूलिकका पुत्र कीचक अपने बहिनेउ राजा विराटके यहां आया। द्रौपदीको देखकर कामासक्त होनेसे उसने उसके साथ छेड़-छाड़ शुरू की। इससे दुखी होकर द्रौपदीने इस संकटसे बचानेके लिये भीमसे निवेदन किया। भीमने स्त्रीवेषमें लड़कर पाद-प्रहारसे उसे मार डाला[3]। इसी अवसरपर दुर्योधनने पाण्डवोंकी खोजके लिये कई सेवकोंको भेजा, परन्तु वे उनका पता नहीं लगा सके[4]। उस समय गुरु गांगेयने कहा था कि "हे कौरवों! पांचो

---

१ विराट नगर पहुंचकर राजाके पूछनेपर जो पाण्डवोंने अपना अपना परिचय दिया वह देवप्रभ सूरिके पाण्डवचरित्र (सर्ग १०) में इस प्रकारसे पाया जाता है—

वस्तव्यमस्ति तत्रापि वर्षमेतत् त्रयोदशम्। प्रच्छन्नैर्जनवन्मत्स्यभर्तुः सेवापरायणैः ॥१०
अथावोचदजातारिः कङ्को नामऽद्विजोऽस्म्यहम्। भूमिभर्तुस्तपःसूनोः प्रियमित्रं पुरोहितः ॥३३
सोऽनुयुक्तस्ततो राज्ञा स्वां कथामित्यचीकथत्। बल्लवः सूपकारोऽस्मि भूपतेर्धर्मजन्मनः ॥४५
कपिकेतुरभाषिष्ट नास्मि नारी न वा पुमान्। अहं बृहन्नटो नाम किन्तु षण्ढोऽस्मि भूपतेः ॥५६
सोऽभ्यधाद् भूभुजा पृष्टस्तपःसूनोर्महीभुजः। सर्वाश्वसाधनाधीशस्तन्त्रिपालाभिधोऽस्म्यहम् ॥६४
अश्वानां लक्षणं वेद्मि वेद्मि सर्वं चिकित्सितम्। देशं वेद्मि वयो वेद्मि वेद्मि वाहनिकाक्रमम् ॥६५
जगाद सहदेवोऽथ पाण्डवेयस्स भूभुजः। गणशो गोकुलान्यासन् प्रत्येकं लक्ष्यसंख्यया ॥७१
स तेषां ग्रन्थिकं नाम संख्याकारं न्ययुङ्क्त माम्। सर्वेषां वल्लवानां च राजन्! नेतारमातनोत् ॥७२
स्नुषाथ पाण्डुराजस्य स्मितपूर्वमभाषत। मालिनी नाम सैरन्ध्री दास्यस्मि न नृपप्रिया ॥८१

चम्पूभारत ६, ३-२०

२ इति संवसतां तेषां विराटनृपतेः पुरे। त्रयोदशस्य वर्षस्य मासा एकादशाऽत्यगुः ॥दे. प्र. पां. च. १०-९६.

३ हरिवंशपुराणके अनुसार भीमने कीचकको लात-घूंसोंसे मारकर और फिर उसे परस्त्रीके विषयमें श्रद्धासे परिपूर्ण कराकर छोड़ दिया। तत्पश्चात् उसने विरक्त होकर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली और अन्तमें तपश्चरण करके मुक्तिको प्राप्त किया (४६-६१)। यथा—

तथा तस्य तदा श्रद्धां प्रपूर्य परयोषिति। अमुचद् व्रज पापेति दयमानो महामनाः ॥
महावैराग्यसम्पन्नस्ततो विषयहेतुकम्। प्राव्रजत् कीचकः श्रित्वा मुनीन्द्रं रतिवर्धनम् ॥

ह. पु. ४६, ३६-३७.

दे. प्र. सूरिके पां. च. (१०, ९७-१६६) में भी कीचकके द्रौपदीमें कामासक्त होने और इसीलिये भीमके द्वारा मारे जानेका उल्लेख इसी प्रकारसे पाया जाता है। चम्पूभारत पृ. २५०-२७१.

४ दे. प्र. पाण्डवचरित्रके अनुसार दुर्योधनने पाण्डवोंकी खोजके लिये वृषकर्पर, नामक मल्लको भेजा था। उसे विराट नगरमें सूपकारके वेषमें भीमने मार डाला था (१०, २२०-२२५)।

तदनु विदितवार्तो धार्तराष्ट्रश्चरेभ्यः शुभगुणचरितेभ्यः सूतजानां शतस्य।
वसतिमरिजनानां मत्स्यभूपालपूर्वां। हृदयमुकुरलग्नैर्हेतुभिर्निश्चिकाय ॥ चम्पूभारत ६, ८२.

पाण्डव अजेय हैं, उनका अल्पायुमें मरण नहीं हो सकता, वे चरमशरीरी हैं। मुनिमहाराजने मुझसे कहा था कि राज्यका भोक्ता युधिष्ठिर होगा, पश्चात् वह तप करके शत्रुञ्जय पर्वतसे मुक्तिको प्राप्त करेगा।"

दुर्योधनकी प्रेरणासे विराट नरेशके गोधनका हरण व युद्ध

उस समय जालंधर राजाने दुर्योधनसे विराट राजाका मानमर्दन कर उसके विशाल गोकुलके अपहरण करनेकी इच्छा प्रगट की। दुर्योधनने प्रशंसा कर उसे सेनाके साथ वहां भेज दिया। वहां जाकर उसके द्वारा गोधनका अपहरण किये जानेपर परस्पर युद्ध प्रारम्भ हो गया। इस युद्धमें विराट राजाकी सहायता कर पाण्डवोंने शत्रुको पराजित किया। तब दुर्योधन स्वयं सेनासे सुसज्जित हो युद्धार्थ विराट नगर आया। उसे आया देखकर विराट राजाके पुत्रने कायरता प्रगट की। तब अर्जुनने अपना परिचय देकर उसे स्थिर किया व अपना सारथी बनाया। इस युद्धमें अर्जुनने साक्षर बाणद्वारा गांगेयको अपना परिचय दिया। उसे कर्ण, भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य आदिसेभी युद्ध करना पड़ा। अन्तमें विजय अर्जुनको प्राप्त हुई। इससे प्रसन्न होकर विराट राजाने अपनी अज्ञताके लिये क्षमा याचना करते हुए अर्जुनसे अपनी पुत्रीके साथ विवाह करनेकी प्रार्थना की। अर्जुनने उसे अपने पुत्र अभिमन्युको देनेके लिये कहा (१८, १६१–१६३)[5]। तदनुसार विराट राजाने अभिमन्युके साथ पुत्रीका विवाह कर दिया। विवाहप्रसङ्गपर कृष्ण व बलभद्र आदि सभी सम्बन्धी सुजन विराट नगर जा पहुंचे थे। तत्पश्चात् पाण्डव कृष्णके साथ द्वारावती

---

१ यह कथन हरिवंशपुराणमें नहीं पाया जाता।

२ दे. प्र. पां. च. के अनुसार वृषकर्पर मल्लके मारे जानेपर उसके घातक सूपकारको भीम होनेका अनुमान कर दुर्योधनने कर्ण, दुःशासन, द्रोणाचार्य और गांगेय आदिके साथ मिलकर विचार किया और तब वह सेनाके साथ विराट नगरकी ओर गया (दे. प्र. पां. च. १०, २१७–२३३)। चम्पूभारतके अनुसार गुप्तचरोंसे कीचकादिकोंके वधका समाचार ज्ञातकर दुर्योधनने विराट नगरीमें पाण्डवोंके स्थित होनेका अनुमान किया और उनके अज्ञातवास व्रतको भंग करनेके लिये त्रिगर्त देशके अधिपति सुशर्माको गोधन हरणार्थ वहां भेजा। चं. भा. ६–८५.

३ दे. प्र. पां. च. (१०, ३२३–३४१) के अनुसार स्वयं विराटपुत्र उत्तरने अपने युद्धसे विमुख होने और बृहन्नट (अर्जुन) द्वारा धैर्य दिलाकर सारथि बनाये जानेका वृत्तान्त विराट राजासे कहा है। चम्पूभारत (७, ९–३३) में भी प्रायः ऐसाही वृत्त पाया है।

४ ततः किमपि बीभत्सु-शरैराकुलतां गतौ। द्वावपि द्रोण-गाङ्गेयौ रणाग्रादपसस्रतुः॥ दे. प्र. पां. च. १०–३६७.

५ अर्जुनो मे सुतां कन्यामुत्तरामध्यजीगमत्। तामस्यैवोपदां कुर्वे चेत् प्रसीदस्यनुज्ञया॥
पश्यत्यास्यं ततो ज्येष्ठबन्धौ बीभत्सुरभ्यधात्। उत्तरा देव ! मे शिष्या सुतातुल्यैव तन्मम॥
विराटः कुरुवंश्यैस्तु यदि स्वाजन्यकाम्यति। सौभद्रेयोऽभिमन्युस्तां तदुद्वहतु मे सुतः॥
दे. प्र. पां. च १०, ४४१–४४२. चम्पूभारत ७–७२.

चले गये[१]।

विदुरका दीक्षाग्रहण

वहां पहुंचकर अर्जुनने कृष्णको दुर्योधन द्वारा किये गये दुर्व्यवहार। [लाक्षागृहदाहादि] का स्मरण कराया। इससे क्रोधित हो कृष्णने पाण्डवोंके साथ विचार कर दुयाधनके पास दूत भेज दिया। उसने हस्तिनापुर जाकर दुर्योधनसे कहा कि 'हे राजन्! पाण्डव अजेय हैं, व्यर्थ अपने वंशका नाश न कीजिये। उनके सहायक कृष्ण, विराट, द्रुपद और बलदेव आदि हैं। अतएव अभिमानको छोड़िये और पाण्डवोंके साथ सन्धि करके उन्हे आधा राज्य दे दीजिये' दूतके इन वाक्योंको सुनकर दुर्योधनने विदुरसे परमश किया। उन्होंने भी उसे धर्ममें बुद्धि करके पाण्डवोंको आधा राज्य देनेकी सम्मति दी। इससे दुर्योधनको क्रोधही हुआ। उसने दुष्ट वाक्य कहकर दूतको निकाल दिया। दूतने वापिस जाकर सब समाचार कह दिया। दूतसे समाचार पाकर नीतिमार्गपर चलनेवाले पाण्डव यादवोंके साथ कौरवोंपर आक्रमण करनेके लिये उद्यत हुए[२]। दुर्योधनके इस दुर्व्यवहारके कारण विदुरका मन विरक्त हो गया। उन्होंने विश्वकीर्ति मुनिके पास जाकर मुनिधर्मको ग्रहण कर लिया[३]।

---

१ हरिवंशपुराणके अनुसार गोधनके अपहरणसे जो विराट नगरमें युद्ध हुआ था उसमें विजयी होकर पाण्डव हस्तिनापुर चले गये और दुर्योधनसे सम्मत होकर वहां रहने लगे। परन्तु अभीभी दुर्योधन आदिके हृदयमें क्षोभ था। अतएव वे फिरसे सन्धिको दूषित करनेके लिये उद्यत हुए। इससे क्रोधको प्राप्त हुए भाइयोंको पूर्ववत् शान्तकर युधिष्ठिर माता व भाइयोंके साथ दक्षिणकी ओर गये। उन्होंने विन्ध्याटवीके भीतर निज आश्रममें तपश्चरण करनेवाले विदुरके दर्शन कर उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् वे (दे. प्र. पां. च. ११-१) में विराट नगरसे द्वारिकापुरी जानेका उल्लेख है। सब द्वारिकापुरीमें प्रविष्ट हुए (४७, १-१२)।

२ दे. प्र. पां. चरित्रके अनुसार कृष्णको दुर्योधनकृत अपराधोंकी स्मृति भीम और द्रौपदीने दिलायी थी। तब कृष्णने दुर्योधनके समीप द्रुपद राजाके पुरोहितको दूतकार्यके लिये भेजा था (११, १९-११३)।

३ दे. प्र. पां. च. के अनुसार कृष्णके द्वारा भेजे गये दूतके वापिस आजानेपर धृतराष्ट्रने प्रतिदूत स्वरूप अपने सारथि संजयको युधिष्ठिरके पास भेजा। उन्होंने नम्रतापूर्ण उत्तर देकर उसे हस्तिनापुर वापिस भेज दिया। संजयने यहां आकर दुर्योधनको बहुत कुछ समझाया। परन्तु इससे दुर्योधनको क्रोधही उत्पन्न हुआ, इसी लिये उसने संजयको अपमानित भी किया। तत्पश्चात् धृतराष्ट्रने विदुरको बुलाकर उनसे कुल-कल्याणके निमित्त सम्मति मांगी। तदनुसार विदुरने भी योग्य सम्मति देकर धृतराष्ट्रसे कहा कि आप अपने पुत्रोंको कदाग्रहसे रोकिये, तभी वंशकी रक्षा हो सकती है। इसी विचारसे धृतराष्ट्र और विदुर दोनोंने जाकर दुर्योधनको समझानेका प्रयत्न किया। किन्तु उसने अपने दुराग्रहको नहीं छोड़ा। इससे खिन्न होकर विदुरको विरक्ति हुई। इसी लिये उन्होंने उद्यानमें विश्वकीर्ति मुनिके पास जाकर उनकी स्तुति की और उनसे सर्वसत्वाद्यनिवृत्ति (महाव्रत) को प्राप्त किया (११, ११४-२५०)। इस प्रकरणमें विदुरकी विरक्तिसे सम्बन्धित ४ श्लोक दोनों ग्रन्थों (पां. पु. १९, २-४ व ५ तथा दे. प्र. पां. च. ११, २२३-२२५ व २२९) में समान रूपसे पाये जाते हैं।

महायुद्धका प्रारम्भ

एक समय किसी विद्वान् पुरुषने राजगृह नगर पहुंच कर जरासंध राजाको उत्तम रत्न भेंट किये। राजाके पूछनेपर उसने बतलाया कि मैं द्वारिकापुरीसे आया हूं। वहां भगवान् नेमिनाथके साथ कृष्णका राज्य है। इस प्रकार उसके कथनसे द्वारिकामें यादवोंके स्थित होनेका समाचार ज्ञातकर जरासंधको उनके ऊपर बहुत क्रोध हुआ। वह उनके ऊपर आक्रमण करनेके लिये तैयारी करने लगा[1]। उधर कलहप्रिय नारदसे यह समाचार जानकर कृष्णने भगवान् नेमिसे अपने विजयके सम्बन्धमें पूछा। नेमीश्वरने मन्द हास्यपूर्वक 'ओम्' कहकर इस युद्धमें प्राप्त होनेवाली विजयकी सूचना दी। इससे कृष्ण युद्धके लिये समुद्यत हो गये। उनके पक्षके अन्य सभी योद्धा युद्धकी तैयारी करने लगे[2]। इधर जरासंधके द्वारा भेजे गये दूतोंसे युद्धके समाचारको जानकर कर्ण और दुर्योधन आदि सम्राट् अपनी अपनी सेनाओंके साथ आकर जरासंधकी सेनामें आ मिले[3]। जरासंधने दूतद्वारा यादवोंको अपने सेवक हो जानेकी आज्ञा कराई। "कृष्णको छोड़कर अन्य कोई सम्राट् नहीं है, जिसकी हम सेवा कर सकें" ऐसा कहकर बलदेवने दूतको वापिस कर

---

१ हरिवंशपुराण (५०,१-४) के अनुसार जरासंघ राजाके पास अमूल्य मणिराशियोंको विक्रयार्थ लेकर एक वणिक् पहुंचा था। उ. पु. ७१, ५२-६६. दे. प्र. पां. च. के अनुसार जरासंधको सोमक नामक दूत द्वारावती पहुंचा। उसने समुद्रविजयकी सभामें जाकर कहा कि 'हे राजन्! तुम्हारे दो शिशुओंने (कृष्ण-बलदेव) स्वामी जरासंधके जामात कंसको मार डाला था। तब अतिशय क्रोधको प्राप्त होकर कालकुमारने यदुवंशको नष्ट करनेका प्रयत्न किया। परन्तु उसे मार्गमें चितासमूहोंके बीच रुदन करती हुई एक वृद्धा स्त्री दिखी। उससे ज्ञात हुआ कि कालकुमारके भयसे यादव इन चिताओंमें जल गये। इससे अनायासही अपना प्रयत्न सफल हुआ जानकर वह वापिस हो गया। इससे विधवा राजपुत्री जीवयशाको भी शान्त्वना प्राप्त हुई थी। परन्तु इस घटनाके बहुत समय पश्चात् कुछ व्यापारी रत्नकम्बल आदि वस्तुओंको लेकर मेरे नगरमें आये। उन्होंने जीवयशाको रत्नकम्बल दिखलाये। जीवयशाने जो उनका मूल्यांकन किया उससे असंतुष्ट होकर उन्होंने कहा कि इससे अठगुने मूल्यमें तो द्वारिकावासियोंने इन्हें आग्रहपूर्वक मांगा था। परन्तु अधिक मूल्यप्राप्तिकी इच्छासे हम इन वस्तुओंको यहां लाये हैं। व्यापारियोंसे द्वारिकापुरीका नाम सुनकर जीवयशाने इस नगरीकी स्थिति आदिके सम्बन्धमें पूछा। तब उत्तरमें जो उन्होंने द्वारिकापुरीकी स्थिति और उसमें निवास करनेवाले यादवोंकी अभिवृद्धिका वर्णन किया। उससे शत्रुओंको सुरक्षित जानकर जीवयशाको बहुत दुख हुआ। इसी कारण राजा जरासंधने मुझे यहां भेजकर अपने जामाताके घातक उन दोनों ग्वालबालकोंको मांगा है। अतएव आप यदुवंशको सुरक्षित रखनेके लिये उन दोनों बालकोंको दीजिये।" दूतके इन वचनोंको सुनकर समुद्रविजयने जरासंधकी पुत्रयाचनाको अयोग्य बताकर सोमक दूतको वापिस कर दिया (१२, ३३-१०६)।

२ उ. पु. ७१, ६७-७२. हरिवंशपुराणमें इस प्रकारका कथन नहीं पाया जाता।

३ ह. पु. ५०, ३३-३५.

दिया। दूतसे यादवोंका अभिमानपूर्ण उत्तर पाकर जरासंध द्रोणाचार्य, भीष्म और कर्ण आदि महायोद्धाओंके साथ कुरुक्षेत्रकी ओर चल दिया[1]।

कृष्णने दूतको भेजकर कर्णसे निवेदन किया कि आप पाण्डुराजाके पुत्र हैं, युधिष्ठिर आदि पांच पाण्डव आपके सहोदर हैं। आप यहां आइये और कुरुजांगलका राज्यग्रहण कीजिये। कर्णने उत्तरमें इसे न्यायमार्गके प्रतिकूल बताकर अस्वीकार कर दिया[2]। वह दूत यहांसे जाकर जरासंधके पास पहुंचा। उसने जरासंधसे यादवोंके साथ सन्धि करनेकी अभिलाषा प्रकट करते हुए जिनोक्त वचनद्वारा भविष्यकी इस प्रकार सूचना दी-युद्धमें कृष्णके द्वारा आपकी मृत्यु होगी। साथ ही शिखण्डीसे गांगेय, धृष्टार्जुनसे द्रोणाचार्य, युधिष्ठिरसे शल्य, भीमसे दुर्योधन, अर्जुनसे जयद्रथ और अभिमन्युसे कुरुपुत्रोंका मरण अवश्यम्भावी है। उक्त सूचना देकर दूत वापिस द्वारिकापुरी पहुंच गया। उसने सब समाचार देते हुए कृष्णको जरासंधक कुरुक्षेत्रमें पहुंचनेकी सूचना कर दी[3]।

---

१ ह. पु. ५०, ३२-४८.

२ हरिवंशपुराणके अनुसार जब दोनों सेनायें कुरुक्षेत्रमें आ पहुंची तब व्याकुलताको प्राप्त हुई कुन्ती कर्णके पास गई। उसने रुदन करते हुए दोनोंके बीचमें माता-पुत्रका सम्बन्ध प्रगट किया और कहा कि हे पुत्र! उठो जहां तुम्हारे अन्य सब भाई एवं कृष्ण आदि सम्बन्धी जन उत्कण्ठित होकर स्थित हैं वहां चलो। इस प्रकारके माताके वचनोंको सुनकर यद्यपि कर्ण भ्रातृस्नेहके वशीभूत हो गया, फिरभी उसने मातासे निवेदन किया कि यद्यपि माता, पिता व बन्धुजन दुर्लभ अवश्य है, परन्तु स्वामिकार्यके उपस्थित होनेपर उसे छोड़कर बन्धुकार्य अनुचित तथा निन्द्य है। इसलिये स्वामिकार्य होनेसे अन्य योद्धाओंके साथ युद्ध करना, यह मेरा प्रथम कार्य है। हां, युद्ध समाप्त होनेपर यदि हम जीवित रहे तो हे माता! निश्चितही हम सब भाईयोंका समागम होगा। आप जाकर यही निवेदन भाईयोंसेभी कर दें। इस प्रकार कह कर कर्णने माताकी पूजा की। कुन्तीने भी जाकर वैसाहि किया। ह. पु. ५०, ८७-१०१. दे. प्र. पां. च. के अनुसारभी कृष्णने समझाकर कर्णको पाण्डव पक्षमें लानेका प्रयत्न किया था, परन्तु उसने मित्र (दुर्योधन) के साथ विश्वासघात करके पाण्डव पक्षमें आना स्वीकार नहीं किया। फिरभी उसने कृष्णके द्वारा नमस्कारपूर्वक माता कुन्तीसे यह निवेदन किया था कि मैं अर्जुनको छोड़कर शेष चार भाईयोंका घात नहीं करूंगा (११, ३२०-३५७)।

३ हरिवंशपुराणमें यह भविष्यवाणी नहीं उपलब्ध होती। वहां यह कहा गया है कि जब कृष्णादिकने जरासंधके दूतको वापिस किया तब मंत्रियोंने मंत्रणा कर समुद्रविजयसे निवेदन की जैसी युद्धकी साधन-सामग्री हमारे पास है वैसीही जरासंधके पासभी है। इसलिये विश्वकल्याणके लिये इस समय सामका प्रयोग करना उचित है। इसके लिये जरासंधके पास दूत भेजना चाहिये। समुद्रविजयने मंत्रियोंकी इस सम्मतिको उचित समझा और तदनुसार लोहजंघ दूतको जरासंधके पास भेज दिया। वह शूरवीर दूत सेनाके साथ चलकर पूर्व मालव पहुंचा, उसने वहां पड़ाव डाल दिया। इतनेमें वहां वनमें तिलकानन्द एवं नन्दक नामके मासोपवासी दो मुनि आये। लोहजंघने उन्हें नवधा भक्तिपूर्वक आहार दिया। इससे वहां पंचाश्चर्य हुए। तबसे भूतलपर वह स्थान देवावतार नामक तीर्थस्वरूपसे प्रसिद्ध हो गया।

तत्पश्चात् उस दूतने जरासंधके पास पहुंच कर उसे एकान्तमें समझाया। जरासंधने प्रसन्नतापूर्वक लोहजंघके वचनको मान लिया और छह मासके लिये सन्धि कर ली। दूतने वापिस द्वारिकापुरी पहुंचकर समुद्रविजयसे सब वृत्त कह दिया। इस प्रकार साम्यपूर्वक एक वर्ष बीत गया। तत्पश्चात् जरासंध सैन्यसे सुसज्जित हो युद्धके निमित्त कुरुक्षेत्र पहुंचा [ह. पु. ५०, ४९–६५]।

दूतसे शत्रुका सब समाचार जानकर कृष्णने पांचजन्य शंखके शब्दसे युद्धकी सूचना देकर कुरुक्षेत्रकी ओर प्रस्थान किया। इस प्रकार कुरुक्षेत्रमें युद्धोन्मुख दोनों सेनाओंके उपस्थित होनेपर जरासंधने अपने सैन्यमें चक्रव्यूहकी और कृष्णने गरुडव्यूहकी रचना की[1]। बस फिर क्या था, दोनों ओरसे घनघोर युद्ध छिड़ गया। अनेक योद्धा सन्मुख उपस्थित शत्रुके प्रति अभिमानपूर्ण मर्मभेदी वाग्बाणोंका प्रयोग कर शस्त्रोंके आघातसे मरने-करने लगे। इस युद्धमें भीष्म पितामह और शिखण्डीने आपसमें बहुत आघात–प्रत्याघात किये। अन्तमें नौवें दिन पूर्वकृत प्रतिज्ञाके अनुसार शिखण्डीने अनेक बाणोंकी वर्षा कर गांगेयके कवचको विद्ध कर दिया। तत्पश्चात् उसने तीक्ष्ण बाणके द्वारा उनके हृदयकोभी छेद दिया। वे पृथ्वीपर गिर पड़े। उन्होंने अपने मरणको निकट आया देख संन्यास ग्रहण कर लिया और धर्मध्यानपूर्वक प्राणोंका परित्याग कर पांचवें स्वर्गमें देवपर्याय प्राप्त की [१९–२७१][2]।

इस युद्धमें वीर अभिमन्युने अपूर्व कुशलता दिखाई। उसने अनेक योद्धाओंको धराशायी किया। उसके पराक्रमको देखकर कर्णने द्रोणाचार्यसे कहा कि अभिमन्युने लक्ष्मण आदि हजारों

---

१ हरिवंशपुराण (५०, १०२–१३४) में इन दोनों व्यूहोंकी रचनाका क्रमभी बतलाया गया है।

२ हरिवंशपुराणमें भीष्म पितामहके युद्धमें उपस्थित रहने और संन्यासमरणका उल्लेख दृष्टिगोचर नहीं होता। दे. प्र. सूरिकृत पां. च. के अनुसार नौवें दिन भीष्मके द्वारा पाण्डवसेनाका संहार किये जानेपर युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे उसकी रक्षा कर उपाय पूछा। तब कृष्णने " स्त्रियां पूर्वस्त्रियां दीने भीते षण्ढे निरायुधे। यद्भीष्मस्य समीकेषु न पतन्ति पतत्रिणः ॥ " (१३–१५०) इस आबालगोपाल प्रसिद्ध भीष्मके नियमका स्मरण कराकर द्रुपद राजाके षण्ढ पुत्र शिखण्डीको आगे करके पीछेसे तीक्ष्ण बाणों द्वारा अभिघात करनेका उपदेश दिया। प्रातःकालके होनेपर कृष्ण द्वारा बतलाये गये उपायका अनुसरण कर शिखण्डीको आगे करके भीम और अर्जुन आदिने भीष्मके ऊपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा की। इसी बीचमें "मा स्म विस्मर गाङ्गेय। गिरं गुरुसमीरिताम् " यह आकाशवाणी (१३–१९३) सुनी गई। तब दुर्योधन द्वारा इस सम्बन्धमें पूछे जानेपर भीष्मने कहा कि जब मैं अपने मातामह (नाना) के यहां रहता था तब एक समय उनके साथ मुनिचंद्र नामक मुनीन्द्रके पास वन्दनार्थ जानेपर जो उन्होंने मेरे सम्बन्धमें भविष्यवाणी की थी, उसीका यह आकाशवाणी स्मरण कराती है। तत्पश्चात् उक्त भविष्यवाणीकेही अनुसार भीष्मने दुर्योधनको संबोधित करके भद्रगुप्तसूरिके पास व्रतोंको ग्रहण कर लिया (१३, १२८–२७२)। मुनिचन्द्र मुनिकी भविष्यवाणीके अनुसार अभी भीष्मकी आयु एक वर्ष शेष थी (१३–२१२)। आयुके पूर्ण होनेपर वे अच्युत स्वर्गको प्राप्त हुए (१५, १२५)।

कुमारोंको मार डाला है, उसे मारनेके लिये कोईभी वीर समर्थ नहीं है। यह सुनकर द्रोणाचार्य बोले कि जो किसी एक रणशौण्ड सुभटके द्वारा नहीं मारा जा सकता है, वह भला किसके द्वारा मारा जा सकेगा? अतः अनेक राजाओंको मिलाकर कल-कल करते हुए उसके धनुषको छेदकर मार डाला। इस प्रकारके द्रोणाचार्यके वचन [२०, २५-२६] को सुनकर न्यायक्रमको छोड़ उन सभीने मिलकर उसके ऊपर आक्रमण कर दिया। इसी समय जयार्द्रकुमारने महाबाणोंसे उसे अभिहत किया। वह भूमिपर गिर पड़ा। तब कर्णने उससे शीतल जल पीनेके लिये कहा। यह सुनकर अभिमन्युने कहा कि हे राजन् अब मैं जल न पीऊंगा, किन्तु उपवासको स्वीकार कर परमेष्ठिस्मरणपूर्वक शरीरका त्याग करूंगा। इस प्रकारसे उसने काय और कषायकी सल्लेखना करके शरीरको छोड़ा और देवपर्याय प्राप्त की। अभिमन्युकी मृत्युसे यादवसेनामें शोक छा गया। उस समय अर्जुनने सुभद्राको सान्त्वना देते हुए कहा कि अभिमन्युको मारनेवाले जयार्द्रकुमारका यदि शिरश्छेद न करुं तो म अग्निमें प्रवेश करुंगा।

---

१ अथ कर्णमुखा महारथास्ते मिलिता कैतवमेत्य यौगपद्यात्।
सुरनायकपौत्रमेनमस्त्रैः स्वयशोभिः सह पातयांबभूवुः॥ चम्पूभारत १०, ५१.
अभिमन्युका यह वृत्तान्त हरिवंशपुराणमें नहीं उपलब्ध होता।

दे. प्र. पां. च. के अनुसार जब पाण्डवोंको द्रोणाचार्य द्वारा रचे जानेवाले चक्रव्यूहका समाचार गुप्तचरोंसे ज्ञात हुआ तब वे चक्रव्यूहके भेदनेका विचार करने लगे। उस समय अभिमन्युने कहा कि पहिले मैंने द्वारिकापुरीमें कृष्णकी समरमें किसीके मुहसे चक्रव्यूहमें प्रवेश करनेकी विधि तो सुनी थी, परन्तु उससे बाहिर निकलनेकी विधि नहीं सुनी। तब भीमने कहा कि फिर चिन्ताकी कोई बात नही है, अर्जुनके त्रैगर्त (सुशर्मा आदि) विजयमें जानेपरभी हम चारोंजन चक्रव्यूहको भेद कर बाहिर निकलनेका भी मार्ग खोज लेंगे। गुप्तचरोंसे सुने गये समाचारके अनुसार द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरको ग्रहण करनेकी अभिलाषासे चक्रव्यूहकी रचना की। इधर पाण्डवोंने भी अभिमन्युके साथ द्रोणाचार्यको जीतकर दुर्भेद चक्रव्यूह भेद डाला। उस समय अकेले अभिमन्युने करोड़ों सुभटोंको मार गिराया। तब अभिमन्युको दुर्जय जानकर कौरवसेना सभी मुख्य सैनिकोंने मिलकर एक साथ उसके ऊपर आक्रमण कर दिया। इस अनेक सैनिकोंके शस्त्रोंसे अभिहत होकर अभिमन्यु पृथ्वीतलपर गिर पड़ा। तब दुःशासन-पुत्रने तलवारसे उसका शिर काट डाला। तब दोनों पक्षोंके कृत्यको देखनेवाले देवोंने साधुवाद और हानाद किया (१३, ३४४-३७५)। इधर त्रैगर्तोंको जीतकर जैसेही अर्जुन यहां आया वैसेही उसे सभी शोकसागरमें मग्न दिखायी दिये। पश्चात् युधिष्ठिरसे अभिमन्युके मरणको जानकर वह सुभद्राके पास गया और उसे सान्त्वना दी। साथही उसने यह प्रतिज्ञाभी की यदि कल दिनके रहते तुम्हारे पुत्रके घातक जयद्रथको न मार डाला तो मैं अग्निमें प्रवेश करूंगा (१३, ३७६-३८६)।

इन्द्रात्मजस्तदनु बाहुमुदस्य कोपात्सिन्धूद्वहस्य समरे द्विषतां समक्षम्।
हेत्यां श्व एव यदि तस्य शिरो न कुर्यां तस्यां विशेयमहमित्यकरोत् प्रतिज्ञाम्॥ चम्पूभारत १०, ५७.

जयाद्र अर्जुनकी प्रतिज्ञाको सुनकर बहुत चिन्तित हुआ। तब द्रोणाचार्यने उसे समझा-बुझाकर सान्त्वना दी। प्रातःकालके होनेपर द्रोणाचार्यको जयाद्रके रक्षणकी चिन्ता हुई। उन्होंने उसे हजारों हाथियों और लाखों घोडोंके बीचमें स्थापित किया। रणके मुखपर वे स्वयं स्थित हुए।

उधर अर्जुनकी प्रतिज्ञाके निर्वाहार्थ युधिष्ठिरको अत्यधिक चिन्ता हुई। उस समय कृष्णने उन्हें आश्वसन दिया। इधर अर्जुनने शासनदेवताका आराधन कर उसकी सहायतासे विशिष्ट धनुष-बाण प्राप्त किये। अब अर्जुन कृष्णके साथ रथमें आरूढ होकर युद्धार्थ चल दिया। रणभूमिमें पहुंच कर उसने घोर युद्ध किया। अर्जुनने सन्मुख प्राप्त हुए गुरु द्रोणाचार्यसे युद्धसे विमुख होनेकी प्रार्थना की, परन्तु वे हटे नहीं। अतएव वे दोनों परस्परमें बाणवर्षा करने लगे। तब कृष्णके समझानेसे अर्जुन मार्ग निकालकर आगे बढ़ा। अन्तमें वह सन्मुख आये हुय शत्रुओंका हनन करते हुए जयाद्रतक पहुंच गया और उसने शासनदेवतासे प्राप्त किये महानागबाणसे उसका मस्तक छेद दिया[1]। इससे शत्रुपक्षमें हाःहाकार मच गया।

इस महायुद्धमें धृष्टार्जुन [धृष्टद्युम्न] के द्वारा गुरु द्रोणाचार्य [२०-२३३][2], अर्जुनके द्वारा

---

१ देवप्रभसूरिके पाण्डवचरित्रमें जयद्रथके वधका वर्णन १३ वें सर्गके ३८७-४३४ श्लोकोंमें है।

तावत्किरीटी तरुणेन्दुमौलेर्वदान्यताकीर्तिवदावदेन
शरेण शत्रोरनुनीतशीर्षं साकं प्रमोदेन स कौरवाणाम्॥ चं. भा. १०, ७७.

२ हरिवंशपुराणके अनुसार कृष्णके द्वारा जरासंधके मारे जानेपर दुर्योधन, द्रोणाचार्य और दुःशासन आदिने निर्वेदको प्राप्त होकर विदुर मुनिके समीपमें जैनी दीक्षा ग्रहण की। कर्णने सुदर्शन उद्यानमें दमवर मुनिके पास जिनदीक्षा ग्रहण की। उसने जहां अपने कर्णकुण्डलोंका परित्याग किया था वह स्थान 'कर्ण-सुवर्ण' नामसे प्रसिद्ध हुआ। ह. पु. ५२, ८८-९०.

दे. प्र. सूरिकृत पां. च. के अनुसार द्रोणाचार्यके शस्त्रसंन्यासका कारण युधिष्ठिरके द्वारा कहा गया 'अश्वत्थामा हतः' यह वाक्य बतलाया गया है। कि यह प्रसङ्ग प्रस्तुत पाण्डवपुराण (२०, २२४-२३१) में भी पाया जाता है। यहां विशेष इतना है कि युधिष्ठिरने जब फिरसे "हतोऽश्वत्थामनामायं गजो न तु तवात्मजः (१३-५०६)" यह वाक्य कहा तब क्रोधित होकर द्रोणाचार्य बोले कि हे राजन्! तुमने यह आजन्म सत्यव्रत इस वृद्ध ब्राह्मण गुरुकी मृत्युके लियेही धारण किया था। तत्पश्चात् द्रोणाचार्यने आकाश-वाणी द्वारा सम्बोधित होकर क्रोधादि कषायोंके परित्यागके साथ ही पंचनमस्कारका स्मरण करते हुए शरीरका भी परित्याग कर दिया। इस प्रकार मृत्युको प्राप्त होकर वे ब्रह्म स्वर्गमें देव हुए (१३, ४९८-५१४)।

चम्पूभारतके अनुसार भी 'अश्वत्थामा हतः' इस प्रकार युधिष्ठिरके कहनेपर सुतशोकसे पीडित होकर द्रोणाचार्यने हाथसे धनुषको छोड दिया। इसी समय धृष्टद्युम्नने शीघ्र आकर खड्गसे उनका शिर काट डाला। यथा—

एकेन खड्गं द्रुपदस्य सुनुः करेण चान्येन कचं गृहीत्वा। विद्रुय शीर्षं गुरुमप्यमुं द्रागन्ते वसन्तं कलयांचकार॥
चं. भा. १०-९७.

कर्ण[1] [२०, २५९-२६३],[2] भीमके द्वारा दुर्योधन आदिक सौ धृतराष्ट्र-पुत्रों [२०-२६६, २९५-९६, ३४८], अश्वत्थामाके द्वारा द्रुपद राजा[3] [२०-३१०] तथा कृष्णके द्वारा जरासंधका [२० ३४१] मरण हुआ।

पाण्डवोंका राज्योपभोग व द्रौपदीहरण

युद्धके समाप्त होनेपर युधिष्ठिरादिक पाण्डव राज्यका उपभोग करने लगे[4]। एक समय नारद ऋषि उनकी सभामें पहुंचे। पाण्डवोंने उनका समुचित सन्मान किया। पश्चात् नारद पाण्डवोंके साथ अन्तःपुरमें पहुंचे। उस समय श्रृंगारमें निरत द्रौपदीकी दृष्टि उनकी ओर नहीं गई, इसीलिये वह उनका यथेष्ट आदर न कर सकी थी। इससे नारद क्रुद्ध होगये, उनके हृदयमें इस अपमानका बदला लेनेकी भावना जागृत हुई। इसी कारण उन्होंने द्रौपदीका सुन्दर चित्रपट तैयार करके धातकीखण्ड द्वीपमें स्थित दक्षिण भरतक्षेत्र सम्बन्धी अमरकङ्का पुरीके स्वामी पद्मनाभको दिया। वह उसके ऊपर मुग्ध हो गया। उसने इसे प्राप्त करनेके लिये वनमें जाकर संगम देवको सिद्ध किया और उसके द्वारा सोती हुई द्रौपदीका हरण कराया। धातकीखण्ड पहुंच कर जागृत होनेपर उसने पद्मनाभसे अपने अपहरणका समाचार ज्ञात किया। इससे उसे अतिशय क्लेश हुआ। उसने पद्मनाभको एक माह प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। इस बीच यदि पाण्डव न आये तो फिर जैसी उसकी इच्छा हो वैसा करे।

इधर प्रातःकाल होनेपर महलमें द्रौपदीको न पाकर पाण्डव दुखी हुए। उन्होंने बहुत खोजा पर कहीं भी उसका पता नहीं लगा। यह समाचार द्वारावतीमें कृष्णके पास भी पहुंच गया। वे क्रोधित हो युद्धके लिये उद्यत हुए। इसी समय उन्हें नारद द्वारा द्रौपदीके हरणका सब समाचार ज्ञात हो गया। उन्होंने स्वस्तिक देवको सिद्ध कर उससे जलमें चलनेवाले छह रथ प्राप्त किये। उनसे लवणसमुद्रको पार कर वे धातकीखण्ड द्वीपमें जा पहुंचे और युद्धमें पद्मनाभको जीत कर द्रौपदीको वापिस ले आये। लवणसमुद्रको पारकर यमुना नदीके उस पार पहुंचनेपर भीमने कृष्णके बाहुबलके परीक्षणार्थ नौकाको छुपा दिया। तब कृष्ण तैरकर यमुनाके उस पार गये।

---

१ इति विष्णुगिरा जिष्णुः पुनरप्यात्तधन्वनः। क्षिप्रमेव क्षुरप्रेण राधेयस्याहरच्छिरः।

दे. प्र. पां. च. १३–७६२

चम्पूभारतके अनुसार भी श्रीकृष्णकी आज्ञासे अर्जुनने नाना अस्त्रोंसे कर्णके शरीरको विद्ध करके प्राणरहित कर दिया। चं. भा. ११, ५४-५५.

२ दे. प्र. पां. चं. १३, ६०२-६०९ (दुःशासनवध), १३, ९२५-९३३, ९९६ (दुर्योधनमरण)।

चम्पूभारत १२-१२.

३ चम्पूभारत (पृ. ४१० ततः शरसंभवमणिनी....) के अनुसार द्रुपद राजाकी मृत्यु द्रोणाचार्यके द्वारा हुई।

४ उ. पु. ७२, २१८-१९.

वहां पहुंचकर भीमके छलपूर्ण कार्यके ज्ञात हो जानेसे उन्हें बहुत क्रोध हुआ। उन्होंने सौ योजन जाकर दक्षिण मथुरामें रहनेकी पाण्डवोंको आज्ञा दी और अभिमन्युके पुत्र परीक्षितको राज्यकार्यमें स्थापित किया[१]।

द्वारिकादाह व पाण्डवदीक्षा

नेमि जिनकी भविष्यवाणीके अनुसार मुनि द्वीपायनके निमित्तसे द्वारिकापुरीका दाह हुआ। जरत्कुमारसे इस समाचारको ज्ञातकर[२] पाण्डव वहां पहुंचे। यहां भस्मीभूत द्वारिकाको देखकर उन्हें अस्थिर भव-भोगोंसे विरक्ति उत्पन्न हुई[३]। वे नेमि जिनेन्द्रके समवसरणमें गये। वहां उन्होंने नेमि प्रभुकी स्तुति कर उनसे धर्मोपदेश सुना। तत्पश्चात् अपने अपने पूर्वभवोंको पूछकर पांचों पाण्डवोंने दीक्षा ले ली। कुन्ती, सुभद्रा आर द्रौपदीने भी राजीमती आर्यिकाके समीपमें संयम ग्रहण कर लिया[४]। मुनि पाण्डव विहार करते हुए शत्रुञ्जय पर्वतपर पहुंचे। इसी समय वहां दुर्योधनका

---

१ द्रौपदीहरण और पाण्डवोंको दक्षिण मथुरा भेज कर परीक्षित्को राज्यकार्यमें प्रतिष्ठित करनेका यह कथानक हरिवंशपुराण (सर्ग ५४) में भी ठीक इसी प्रकारसे पाया जाता है। यहां यमुनाके स्थानमें गंगा नदीको पार करनेका उल्लेख है। यथा—

नौभिर्गंगां समुत्तीर्य तस्थुस्ते दक्षिणे तटे। व्यपनीता च भीमेन क्रीडाशैलेन नौस्तटी ॥ ५४-६५.

दे. प्र. पां. च. (१७, ८५-१९४) में भी द्रौपदीहरण और पाण्डवोंके छलपूर्ण व्यवहार (गंगापार जाना व नावको छुपाना) से क्रोधित होकर उन्हें देशनिकाला देनेका वृत्त इसी प्रकारसे पाया जाता है। विशेषता इतनी है जब कृष्णने उन्हें देशनिकाला दिया तब पाण्डुने कुन्तीको द्वारिकापुरी भेजा था। कुन्तीने अवसर पाकर कृष्णसे निवेदन किया कि समस्त पृथिवी तो तुम्हारी है, फिर पाण्डव कहां रहे। तब कृष्णने कहा कि दक्षिण समुद्रमें पाण्डुमथुरा नगरीका निर्माण करके वे वहां रहे। तब पाण्डवोंने परीक्षित्को राज्यमें प्रतिष्ठित कर वैसा ही किया (१७, २२१-२२५)।

२ ह. पु. ६३, ४६-४८. दे. प्र. पां. च. १८, ३५५-३६७.

३ व्यासवाक्यं च ते सर्वे श्रुत्वार्जुनमुखेरितम्। राज्ये परीक्षितं कृत्वा ययुः पाण्डुसता वनम् ॥

विष्णुपुराण ५, ३८-९२. यहां सर्व यादवसंहारका कारण यादवकुमारोंकी वंचनासे क्रोधित हुए विश्वामित्रादि मुनियोंका शाप बतलाया गया है (वि. पु. ५, ३७, ६-१०)।

४ ह. पु. ६४, १४३-४४. उत्तरपुराण पर्व ७२—

तत्सर्वे पाण्डवाः श्रुत्वा तदायान्मथुराधिपाः। स्वामिबन्धुवियोगेन निर्विद्य त्यक्तराज्यकाः ॥ २२४

महाप्रस्थानकर्माणः प्राप्य नेमिजिनेश्वरम्। तत्कालोचितसत्कर्म सर्वं निर्माप्य भाक्तिकाः ॥ २२५

स्वपूर्वभवसम्बन्धमपृच्छन् संसृतेर्भयात्। अवोचद् भगवानित्यमप्रतर्क्यमहोदयः ॥ २२६

पाण्डवाः संयमं प्रापन् सतामेषा हि बन्धुता। कुन्ती–सुभद्रा-द्रौपद्यः दीक्षां तां च परां ययुः ॥ २६४

निकटे राजिमत्याख्यगणिन्या गुणभूषणाः। तास्तिस्रः षोडशे कल्पे भूत्वाः तस्मात्परिच्युताः ॥ २६५

तत्रोत्तीर्य गजेन्द्रेभ्यो राज्यचिह्नान्यपास्य ते। सपत्नीका प्रभुं धर्मघोषाख्यमुपतस्थिरे ॥

विज्ञा विज्ञापयन्नेनं ते निपत्य पदाम्भुजे। शिरो नः पावय स्वामिन् दीक्षादानात् स्वपाणितः ॥

भूत्वा भगवतो नेमेस्ततः स प्रतिहस्तकः। दक्षिणो दीक्षयामास मुनिः सप्रेयसीनमून्।

दे. प्र. पां. च. १८, ११६–११८.

भानजा कुर्यधर आ पहुंचा। उसने पाण्डवोंको देखकर और अपने मातुलोंके घातक समझकर उन्हें घोर कष्ट दिया। उसने लोहनिर्मित आभूषणोंको अतिशय गरम कर उनके अंगोंमें पहिनाया। इस समय पाण्डवोंने आत्मचिन्तन करते हुए बारह अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन किया। उस भयानक उपसर्गको जीतकर युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनने मुक्ति प्राप्त की। नकुल और सहदेवने किंचित् कालुष्यसे संगत हो शरीरका त्याग कर सर्वार्थसिद्धिमें देवपर्याय प्राप्त की[1]। राजीमती, कुन्ती, सुभद्रा और द्रौपदीने सम्यक्त्वके साथ चारित्रका परिपालन करते हुए आयुके अन्तमें स्त्रीलिंगको नष्ट कर सोहलवें स्वर्गमें देवत्वको प्राप्त किया[2]।

पंडित बालचंद्र सिद्धान्तशास्त्री

धन्यवाद

श्रीयुत पण्डित बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्रिजीने हमारी प्रार्थनाका स्वीकार कर पाण्डवपुराणपर गवेषणापूर्ण प्रस्तावना भेजदी अतः हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

पाण्डवोंके विषयमें दिगंबर, श्वेतांबर और वैदिकोंमें जितना साहित्य प्राप्त हुआ है उसका पण्डितजीने अच्छा चिन्तन किया है। पण्डितजीने प्रस्तावनाकी टिप्पणियोंमें पाण्डवोंके .रित-संबंधी बातोंमें कहां समानता और कहां भिन्नता है यह खूब सुंदरतासे दिखाया है। इस विषयमें तथा अन्य सिद्धान्तादिक विषयोंमें उनका परिश्रम प्रशंसनीय और अनुकरणीय है।

ब्र. जीवराज गौतमचंद दोशी

---

१ ह. पु. ६५, १८-२३. यहां कहा गया है कि नकुल और सहदेव ज्येष्ठदाहको देखकर अनाकुलित चेतस्क (किंचित् व्याकुल) होकर सर्वार्थसिद्धिमें उत्पन्न हुए। उ. पु. ७२, २६७-२७१.

धर्मं विशुद्धमुपदिश्य ततः सदैव मर्त्यासुरे सदसि योगजुषो मुहूर्तम्।
पाण्डोः सुताः क्षणमयोगिगुणास्पदे ते विश्रम्य मुक्तिपदमक्षयसौख्यमीयुः॥
तत्पथानुगमकाम्यविक्रमा निर्मलानशनकर्मपावनी। नन्दिनी द्रुपदभूभुजोऽपि सा ब्रह्मलोकमतुलश्रियं ययौ॥

दे. प्र. पां. च. १८, २७२-७३.

२ कृष्णस्याष्टौ महिष्यश्च तथैव मुनयोऽपरे। साध्व्यश्च राजीमत्याद्या भूयस्यः शिवमासदन्॥

दे. प्र. पां. च. १८, २४७.

सम्पादकीय-

अंग्रेजीकी एक सुप्रसिद्ध कहावत है " The proper study of mankind is man " मनुष्यके अध्ययनका उपयुक्त विषय मनुष्यही है। जबसे हमें मानवीय सभ्यताका इतिहास मिलता है तभीसे हमें इस बातके प्रचुरप्रमाण दिखाई देते हैं, कि मनुष्य अपने अनुभवोंका लाभ अपने समकालीन अन्य जनोंको, एवं भावी सन्तानको देनेका प्रयत्न करता रहा है। और अपने पूर्वजों एवं समसामयिकोंसे बहुत कुछ सीखता रहा है। जिसे हम साहित्य कहते हैं वह इसी मानवीय प्रवृत्तिका फल है। कहानी साहित्यका प्राण है। पूर्वजोंके अनुभव कह कहकर दूसरोंका मनोरंजन करना बड़ी प्राचीन कला है। संभवतः उतनीही प्राचीन जितनी चित्रकला और भाषा। किन्तु कथाओं द्वारा नैतिक उपदेश देनेकी कलाका उद्गम और विकास धर्मके साथ साथ हुआ प्रतीत होता है। बौद्धधर्मके जातक और जैनधर्मके व्रत कथानक इतिहास-प्रसिद्ध हैं।

जिन कथाओंने भारतवर्षमें विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की है वे हैं राम और कौरव-पाण्डवोंके चरित्र। यहांतक कि राम हिन्दूधर्ममें भगवान्के अवतारही माने जाने लगे और रामायणकी प्रतिष्ठा घर घरमें हो गई। जैनियोंनेभी रामको अपने त्रेसठ शलाका पुरुषोंमें स्थान देकर उन्हें 'बलभद्र' माना और पद्मपुराण, पउमचरियं, पउमचरिउ आदि संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश काव्योंमें उनके चरित्रका विस्तारसे वर्णन किया। कौरव-पाण्डवोंका चरित्र महाभारतमें इतने विस्तारसे वर्णन किया गया है कि उस रचनाको शत-साहस्री अर्थात् एक लाख श्लोक प्रमाण होनेका गौरव प्राप्त हुआ है। महाभारतका दावा है कि 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्' जो यहां है वही अन्यत्र है, और जो बात यहां नही कही गई वह अन्यत्र कहींभी नही मिल सकती। तात्पर्य यह कि इस ग्रंथको भारतीय विद्वानोंने एक राष्ट्रीय विश्वकोश बनानेका प्रयत्न किया है। अन्वेषकोंने खोज करके पता लगाया है कि महाभारतकी कथा प्रारंभमें चारणों और भाटोंद्वारा ग्राम ग्राम और घर घर गाई जाती थी। इसका जब साहित्यमें अवतरण हुआ तब आदितः यह लगभग आठ नौ हजार श्लोक प्रमाण ग्रंथ था जिसमें पाण्डवोंके विविध प्रयत्नोंसे कौरवोंके विनाशकी दुःखद कहानी कही गई थी। पश्चात् कृष्णके पाण्डवोंके साथ सम्पर्कके कारण जब कथाने लगभग चौवीस हजार श्लोकोंका विस्तार प्राप्त किया तब जनताकी सहानुभूति कौरवोंपरसे हटाकर पाण्डवोंके प्रति उत्पन्न करनेकी प्रवृत्ति काव्यमें आगई। पश्चात् कृष्णभक्तिके प्रसारके साथ क्रमशः ग्रंथ एक लाख श्लोक-प्रमाण बन गया।

यहां यह सब कहनेका तात्पर्य यह है कि इन पौराणिक कथाओंमें ऐतिहासिकता देखना बड़ी भूल है। प्राचीन छोटीसी कथाको लेकर कवि उसे अपनी प्रतिभाद्वारा चाहे जितना विस्तार दे सकता है और पाठकोंकी भावनाको अपनी रुचि अनुसार मोड़ सकता है। किसी प्राचीन कविने रामायणके विषयमेंभी कहा है कि कौन जाने राम कहांतक अवतार पुरुष थे और रावण कहांतक राक्षस था; हम जो कुछ समझ रहे हैं वह सब तो वाल्मीकि कविकी प्रतिभाका चमत्कार है। जो रामायणके विषयमें कहा गया है वह महाभारतके विषयमें तो इतिहास-सिद्धही

है जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। ये कथाएं मूलतः किसी एक धर्म, सम्प्रदाय अथवा जनसमुदायकी सम्पत्ति नही रहीं। वे जन-निधिके अंगही हैं, और सभीने उनका अपनी अपनी रुचि, समझदारी एवं आवश्यकतानुसार उपयोग किया है। इसमें कभी कोई ऐतिहासिक तथ्य व सत्यके बन्धनका अनुभव नही किया गया। इसी कारण स्वयं हिन्दू पुराणोंमेंही अनेक घटनाओं व नामादिके सम्बन्धमें विषमताएं पाई जाती हैं।

जैन साहित्यमेंभी कौरव-पाण्डवोंकी कथाका गौरवपूर्ण स्थान है। बलराम और कृष्ण दोनो त्रेसठ-शलाका-पुरुषोंमें गिने गये हैं। एक बलभद्र और दूसरे नारायण थे। इस निमित्तसे उनका जैन पुराणमें अच्छा वर्णन किया गया है। कौरव-पाण्डवोंका कथानक जैनसाहित्यमें विधिवत् शक संवत् ७०५ में रचित जिनसेनकृत हरिवंशपुराणमें पाया जाता है। तत्पश्चात् जिनसेन और गुणभद्रकृत महापुराणमेंभी उक्त कथानक सम्मिलित है। अपभ्रंश भाषाके आदिकवि स्वयंभूने अपने 'हरिवंस पुराणु' मेंभी इस कथाका अच्छा वर्णन किया है। तथा हेमचन्द्राचार्यके त्रिषष्टिचरितमेंभी यह कथा वर्णित है। किन्तु पाण्डवोंकी कथा स्वतंत्ररूपसे देवप्रभसूरिने अपने पाण्डव-चरित्रमें वर्णन की है। इस ग्रंथकी रचना विक्रम संवत् १२७० में पूर्ण हुई थी। प्रस्तुत ग्रंथ शुभचन्द्र भट्टारक द्वारा वि. सं. १६०८ में रचा गया है। प्रस्तावनामें और विशेषतः ग्रंथके स्वाध्यायसे पाठक देखेंगे कि इस कथामें हिन्दू पुराण सम्मत कथासे तो पद पद पर भेद है ही, किन्तु अन्य उपर्युक्त जैनपुराणकारोंकी रचनाओंसेभी भेद है। इससे पाठकोंको आश्चर्य नही होना चाहिये। पुराणकारको कथा एक साधनमात्र है जिसकेद्वारा वह अपने साध्य विषयका उपदेश देना चाहता है, और इस कार्यमें वह अपने पूर्व ग्रंथकारोंका अनुकरण करने न करने अथवा अपनी रुचि अनुसार घटनाचक्रको बदलनेमें स्वतंत्र मानता है।

प्रस्तुत ग्रंथके मूल संस्कृत पाठका संशोधन सम्पादन एवं उसका हिन्दी अनुवाद शोलापुरनिवासी पं. जिनदास शास्त्रीने किया है। शास्त्रीजी जैनसमाजके वयोवृद्ध विद्याव्यसनी विद्वान हैं। उनका ब्रह्मचारी जीवराजजीके साथ शास्त्रस्वाध्याय निरन्तर चलता रहता है। उनकी मातृभाषा मराठी होते हुएभी उन्होने जो इस ग्रंथका हिन्दीमें अनुवाद किया वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। इस अवस्थामें यदि कहीं इसमें हिन्दी मुहावरेसे विसंगति दिखाई दे तो आश्चर्य नही। आश्चर्य तो यही है कि शास्त्रीजीने हिन्दी अनुवादका कार्य इतनी कुशलतासे सम्पन्न किया है। उनके इस सम्पादन व अनुवादकार्यके लिये वे हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

हमें यह कहते हुए बड़ी प्रसन्नता है कि जैन संस्कृति संरक्षक संघके संस्थापक ब्रह्मचारी जीवराजजी ग्रंथ-प्रकाशन-कार्यमें खूब तन, मन, धनसे तल्लीन हैं और इस कार्यको जितना हो सके विस्तृत व गतिशील बनानेके लिये उत्सुक रहते हैं। हमारी भावना है कि वे चिरायु हों जिससे जिनवाणीकी सेवाका यह उपकार वृद्धिशील होता रहे।

कोल्हापुर और नागपुर
सितंबर १९५४

आ. ने. उपाध्ये.
हीरालाल जैन.

विषयानुक्रमणिका

भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीतं महाभारतं नाम

पाण्डवपुराणम् ।

। प्रथमं पर्व ।

सिद्धं सिद्धार्थसर्वस्वं सिद्धिदं सिद्धसत्पदम् । प्रमाणनयसंसिद्धं सर्वज्ञं नौमि सिद्धये ॥ १
वृषभं वृषभं भान्तं वृषभाङ्कं वृषोन्नतम् । जगत्सृष्टिविधातारं वन्दे ब्रह्माणमादिमम् ॥ २
चन्द्राभं चन्द्रशोभाढ्यं चन्द्रार्च्यं चन्द्रसंयुतम् । चन्द्रप्रभं सदाचन्द्रमीडे सच्चन्द्रलाञ्छनम् ॥३
शान्तिं शान्तेर्विधातारं सुशान्तं शान्तकिल्बिषम् । नंनमीमि निरस्ताघं मृगाङ्कं षोडशं जिनम् ॥ ४
नेमिर्धर्मरथे नेमिः शास्तु शंसितशासनः । जगज्जगत्त्रयीनाथो निर्जितानङ्गसम्मदः ॥ ५
वर्धमानो महावीरो वीरः सन्मतिनामभाक् । स पातु भगवान्विश्वं येन बाल्ये जितः स्मरः ॥ ६

[श्रीसिद्धपरमेष्ठीकी स्तुति] जिनके कर्मक्षयादि समस्त कार्य सिद्ध हो चुके हैं, जो सर्वज्ञ, सिद्धिके दाता, उत्तम सिद्धपदके धारक और प्रमाण तथा नयोंसे सिद्ध हुए हैं ऐसे सिद्धपरमेष्ठीकी मैं सिद्धपदकी प्राप्तिके लिए स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

[वृषभादि तीर्थकरोंकी स्तुति] अहिंसाधर्मसे सुशोभित, शरीरसे निरुपम सुंदर, बैलके चिह्नसे युक्त, धर्मसे उन्नत और असि मषि कृषि आदि षट्कर्मोंके उपदेशद्वारा जगत् की रचना अर्थात् समाजरचना करनेवाले आदिब्रह्मा श्रीवृषभनाथ [आदिनाथ] को मैं नमस्कार करता हूं ॥२॥ जिनके देहकी कान्ति चन्द्रकी कान्तिके समान है, जो चन्द्रकी कान्तिके समान हैं, जो चन्द्रके समान शोभासे पूर्ण हैं, जो चन्द्रसे पूजित हैं और चन्द्रसे युक्त हैं, जो उत्तम चन्द्रके चिह्नसे युक्त तथा चन्द्रमाके समान निरन्तर आनन्द देनेवाले हैं ऐसे श्रीचन्द्रप्रभप्रभुकी मैं स्तुति करता हूं ॥ ३ ॥ जो शान्तिके विधाता हैं, अतिशय शान्तस्वरूप हैं, जिनके दोष नष्ट हुए हैं और जिन्होंने भव्यजनोंका पाप दूर किया है, ऐसे मृगचिह्नधारक सोलहवे शान्ति-जिनेश्वरको मैं बार बार नमस्कार करता हूं ॥४॥ जिनका शासन अर्थात् मत सत्पुरुषोंद्वारा प्रशंसित हुआ है, जो त्रैलोक्यके नाथ हैं, जिन्होंने कामदेवके हर्षको- गर्वको जीत लिया है, अर्थात जो बाल-ब्रह्मचारी हैं, और जो धर्मरथके नेमि अर्थात् चक्रधाराके समान हैं, वे नेमिप्रभु जगत् को पालन करें ॥५॥ जिन्होंने बाल्यकालमें कामदेवको जीत लिया है ऐसे महावीर, वीर, सन्मति नामवाले वर्द्धमान भगवान् जगतका रक्षण करें ॥ ६ ॥

१ स. सर्वार्थसर्वस्वं ।

गौतमो गोतमो गीष्पा गणेशो गणनायकः। गिरां गणनतो नित्यं भातु भाभारभूषितः ॥ ७
युधिष्ठिरं कर्मशत्रुयुधि स्थिरं स्थिरात्मकम्। दधे धर्मार्थसंसिद्धं मानसे मेहितं मुदा ॥ ८
भीमं महामुनिं भीमं पापारिक्षयकारणे। संसारासातशान्त्यर्थं दधे हृदि धृतोन्नतिम् ॥ ९
अर्जुनस्य प्रसिद्धस्य विशुद्धस्य जितात्मनः। स्मरामि स्मरमुक्तस्य स्मररूपस्य सुस्मृतेः ॥ १०
नकुलो वै सदा देवैः सेवितः शुद्धशासनः। सहदेवो बली कौल्यो मलनाशी विभाति च ॥ ११
भद्रबाहुर्महाभद्रो महाबाहुर्महातपाः। स जीयात्सकलं येन श्रुतं ज्ञातं कलौ विदा ॥ १२
विशाखो विश्रुता शाखा सुशाखो यस्य पातु माम्। स भूतले मिलन्मौलिहस्तभूलोकसंस्तुतः॥१३
कुन्दकुन्दो गणी येनोर्ज्जयन्तगिरिमस्तके। सोऽवताद्वादिता ब्राह्मी पाषाणघटिता कलौ ॥ १४
समन्तभद्रो भद्रार्थो भातु भारतभूषणः। देवागमेन येनात्र व्यक्तो देवागमः कृतः ॥ १५

[गौतमादि--यतीश्वरोंका स्तवन] जिन्होंने वीरप्रभुके मुखसे निकली हुई वाणी धारण की है, जो गोतम अर्थात् किरणातिशयसे युक्त हैं, -- तेजःसंपन्न शरीरवाले हैं, अथवा गोतम अर्थात् द्वादशांग-वाणीकी गणना करनेके कारण उत्कृष्ट वाणीके धारक हैं या गोतम अर्थात् पृथ्वीपर श्रेष्ठ हैं, जो चतुःसंघके अधिपति--पथप्रदर्शक हैं तथा जो कान्तिमण्डलसे भूषित हैं वे गौतमगणधर सदा प्रकाशमान रहें ॥७॥ कर्मशत्रुओंके साथ युद्ध करनेमें उसी तरह आत्मस्वरूपमें स्थिर रहनेवाले, धर्मके अर्थका अर्थात् स्वरूपको प्राप्त करनेवाले, लोकपूज्य युधिष्ठिर-मुनिराजको मैं आनन्दसे हृदयमें धारण करता हूं ॥८॥ पापशत्रुओंका नाश करनेमें भयंकर, तथा आत्मोन्नतिके धारक भीम-महामुनिको मैं संसारदुःख की शान्तिके लिये हृदयमें धारण करता हूं ॥९॥ जगतमें प्रसिद्ध निर्मल परिणामवाले जितेन्द्रिय, कामविकार-रहित, कामदेवके समान सुंदर तथा सम्यग्ज्ञानको धारण करनेवाले, अर्जुन मुनिराजको मैं स्मरण करता हूं ॥१०॥ जो बलवान् और कुलीन हैं तथा जिनका शासन निर्मल है ऐसे नकुलमुनिराज तथा सदा देवोंके द्वारा सेवित ऐसे कर्ममलका नाश करनेवाले सहदेव-मुनिराज सदैव सुशोभित होते हैं ॥११॥ इस पंचमकालमें जिस बुद्धिमानने सम्पूर्ण द्वादशाङ्ग-श्रुतको जाना तथा जो महातपस्वी तथा भव्यजीवोंके महाकल्याण करनेवाले थे, जो आजानुलम्बीभुजाधारी होनेसे महाबाहु थे उन भद्रबाहु श्रुतकेवलीकी जय हो ॥१२॥ जिनकी ज्ञानशाखा विशिष्ट थी अर्थात् जो ग्यारह अंग, चतुर्दश पूर्वज्ञान धारण करनेवाले थे, जिनकी शिष्यशाखा अर्थात् शिष्यपरम्परा भी निर्मल-ज्ञानचारित्रवाली थी, तथा इस भूतलपर सारा संसार मस्तकपर हाथ जोडकर जिनकी स्तुति करता था वे विशाखाचार्य मेरी रक्षा करें ॥१३॥ जिन्होंने इस पंचमकालमें गिरनारपर्वतके शिखरपर स्थित पाषाणनिर्मित सरस्वती-देवीको बुलवाया वे कुन्दकुन्दाचार्य मेरी रक्षा करें ॥ १४ ॥ देवागम-स्तोत्रके द्वारा जिन्होंने इस संसारमें देवका आगम अर्थात् जिनदेवके

---

२ घ महसं।

पूज्यपादः सदा पूज्यपादः पूज्यैः पुनातु माम्। व्याकरणार्णवो येन तीर्णो विस्तीर्णसद्गुणः ॥१६
अकलङ्कोऽकलङ्कः स कलौ कलयतु श्रुतम्। पादेन ताडिता येन मायादेवी घटस्थिता ॥१७
जिनसेनयतिर्जीयाज्जिनसेनः कृतं वरम्। पुराणपुरुषाख्यार्थपुराणं येन धीमता ॥१८
गुणभद्रभदन्तोऽत्र भगवान्भातु भूतले। पुराणाद्रौ प्रकाशार्थं येन सूर्यायितं लघु ॥ १९
तत्पुराणार्थमालोक्य धृत्वा सारस्वतं श्रुतम्। मानसे पाण्डवानां हि पुराणं भारतं ब्रुवे ॥ २०
पुराणाब्धिः क्व गम्भीरः क्व मेऽत्र धिषणा लघु। अतोऽतिसाहसं मन्ये सर्वज्ञभरदायकम् ॥२१
जिनसेनादयोऽभूवन्कवयः शास्त्रपारगाः। तदङ्घ्रिस्मरणानन्दात्करिष्ये तत्कथां पराम् ॥ २२
यथा मूको विवक्षुः सन्याति हास्यं जगत्त्रये। तथा शास्त्रं विवक्षुः सन् लोकेऽहं हास्यभाजनम् ॥२३
यथा जिगमिषुः पङ्गुर्मेरुमूर्धानमुन्नतम्। विहस्यते जनैः शास्त्रं चिकीर्षुश्चाहमञ्जसा ॥२४
यतेऽहं च तथाप्यत्र शास्त्रं कर्तुमशक्तितः। क्षीणा धेनुर्यथा वत्सं पाति दुग्धप्रदानतः ॥ २५

सिद्धान्तकी महिमा व्यक्त की, जिनके कार्य ग्रंथरचना आदि भव्योंका भद्र [हित] करनेवाली हैं वे भारतके अलंकार आचार्य समन्तभद्र सदा शोभायमान रहें ॥ १५ ॥ पूज्यपुरुषोंके द्वारा जिनके चरण सदा पूजे जाते थे इस लिये जिनका ' पूज्यपाद ' नाम सार्थक है, जो विस्तीर्ण सद्गुणवाले व्याकरणसमुद्रके पारगामी थे वे आचार्य पूज्यपाद मेरी रक्षा करें ॥ १६ ॥ जिन्होंनें घडेमें बैठी हुई मायादेवीको पैरसे ताडन किया वे कलंकरहित अकलंकदेव मुझे इस पंचमकालमें श्रुतज्ञान देवें ॥ १७ ॥ जो जिनोंकी सेनाको अर्थात् जिनेन्द्रभक्तोंके समुदायको धारण करते थे, तथा जिनने पुराणपुरुषोंके (अर्थात् त्रिरसठ शलाकापुरुषोंके) श्रेष्ठपुराणकी, (महापुराण) रचना की वे जिनसेनाचार्य जयवंत हों ॥१८॥ महापुराणरूपी पर्वतपर शीघ्र प्रकाश डालनेके लिये जो सूर्यके समान हुए वे पूज्य गुणभद्रभगवान् इस भूतलपर शोभायमान होवें ॥१९॥ श्रीगुणभद्राचार्यके पुराणोंका अभिप्राय देखकर तथा सरस्वतीके अन्यशास्त्रोंको हृदयमें धारण कर मैं पाण्डवोंके पुराणकी, जिसको भारत कहते हैं, रचना करता हूं ॥ २० ॥ यह अथाह पुराणसमुद्र कहां और इसमें प्रवृत्त हुई मेरी छोटीसी बुद्धि कहां ? इस लिए ग्रंथ रचनेका मेरा साहस पूर्णहास्यास्पद तथा भयदायक होगा ॥ २१ ॥ जिनसेनादि कवि शास्त्रके पारंगत हुए हैं; उनके चरणस्मरणजन्य आनन्दसे मैं पाण्डवोंकी उत्कृष्ट कथा कहता हूं ॥२२॥ जैसे गूंगा मनुष्य बोलनेकी इच्छा करनेसे त्रैलोक्यमें हास्यपात्र होता है उसी प्रकार शास्त्रका कथन करनेकी इच्छा करनेवाला मैं इस जगतमें हास्यपात्र बन जाऊंगा ॥२३॥ जैसे मेरुगिरिके उच्च शिखरपर चढनेकी इच्छा करनेवाला पंगुपुरुष लोगोंका हास्यपात्र बनता हैं वैसेही शास्त्रकी रचना करनेकी इच्छा करनेवाला मैं भी परमार्थसे हास्यपात्र बनूंगा ॥२४॥ असमर्थ होनेपर भी मैं पाण्डवपुराणकी रचना करनेका प्रयत्न कर रहा हूं, क्योंकि क्षीण गाय भी अपने बछडेको दूध पिलाकर उसका संरक्षण करती है ॥२५॥

पूर्वाचार्यकृतार्थस्य प्रकाशनविधौ यते। अध्नप्रकाशितं ह्यर्थं दीपः किं न प्रकाशयेत् ॥ २६
वक्राकूतास्तु बहवः कवयोऽन्ये स्वभावतः। स्वल्पा यथा पलाशाद्या आम्राद्याश्च त्रिविष्टपे ॥ २७
सन्ति सन्तः कियन्तोऽत्र काव्यदूषणवारकाः। स्वार्णं मलं यथा नित्यं शोधयन्ति धनञ्जयाः ॥२८
असन्तश्च स्वभावेन परार्थं दूषयन्त्यहो। दिवान्धा द्वादशात्मानं यथा दूषणदूषिताः ॥ २९
वह्नयो दाहका नूनं तृषादुःखनिवारकाः। स्वर्णं मलं यथा नित्यं सन्तः सन्ति च भूतले ॥ ३०
यथा मत्ता न जानन्ति हेयाहेयविवेचनम्। तथा खलाः खलं लोकं कुर्वन्ति खलु केवलम् ॥ ३१
पयोधरा धरां धृत्वा धरन्त्यम्बुप्रदानतः। सज्जनास्तु जनान्सर्वास्तथा सन्तथ्यशिक्षया ॥ ३२
सर्पो विषकणं दत्ते सुधां चामृतदीधितिः। खलोऽस्मातय कल्पेत सज्जनस्तु हिताप्तये ॥ ३३
खलेतरस्वभावोऽयं ज्ञातव्यो ज्ञानकोविदैः। अलं तेन विचारेण वयं लघु हितैषिणः ॥ ३४
षड्विधाख्यायते व्याख्या व्याख्यातैस्तत्र मङ्गलम्। निमित्तं कारणं कर्ताभिधानं मानमत्र च॥३५

पूर्वाचार्यद्वारा प्रगट किये हुए पुराणार्थको प्रकाशित करनेके लिए मैं प्रयत्न कर रहा हूं, क्या सूर्यप्रकाशित पदार्थोंको दीप प्रकाशित नहीं करता है ? ॥२६॥

[सज्जनदुर्जनवर्णन] जिस प्रकार पलाशादिक वृक्ष जगतमें बहुत हैं और आम्रादिक वृक्ष अल्प हैं, उसी प्रकार इस जगतमें कुटिल अभिप्रायवाले अर्थात् कुटिलहृदयवाले कवि स्वभावतः बहुत हैं और सरल अभिप्रायवाले कवि अल्प हैं ॥२७॥ जैसे अग्नि सदा सोनेका मल दूर करता है, वैसेही काव्यमलको दूर करनेवाले कितनेही सज्जन इस जगतमें हैं ॥२८॥ जिसतरह दूषणोंसे दूषित उल्लू पक्षी सूर्य को दोष देते हैं, उसीतरह दुष्टपुरुष स्वभावसे ही दूसरेकी कृतिको (काव्यको) दोष देते हैं ॥२९॥ इस भूतलमें जिसतरह अग्नि सोनेके मलको दूर करती है, उसीतरह सज्जनपुरुष तृष्णाजन्य दुःख को दूर करते हैं ॥३०॥ जैसे मत्तपुरुष ग्राह्य अग्राह्यका कुछ विचार नहीं करते, वैसेही दुष्ट पुरुष अच्छे बुरेका विचार नहीं करते है, परंतु निश्चयसे वे लोगोंको दुष्ट ही बनाते हैं ॥३१॥ जैसे मेघ जल देकर पृथ्वीको शान्त करते हैं, वैसेही सज्जन सभी लोगोंको सम्यक् हितोपदेशसे हितकार्यमें स्थापन करते हैं ॥३२॥ जैसे सर्प विषकण देता है, वैसेही दुष्टजन लोगोंको दुःख देते हैं और सज्जन उनका हित करते हैं ॥३३॥ इस प्रकार सज्जनदुर्जनोंका स्वभाव ज्ञानियोंके द्वारा जानने योग्य है। अस्तु, इस विषयका इतना ही विचार पर्याप्त है, क्योंकि हम थोडेमें ही हित चाहने वाले हैं ॥३४॥

[व्याख्यानके छह प्रकार] पुराणका निरूपण करनेवाले आचार्योंने व्याख्याके छह प्रकार कहे हैं। वे इस प्रकार हैं– मंगल, निमित्त, कारण, कर्ता, अभिधान और मान ॥३५॥ प्राचीन कथाओंके

१ ख. यथा घनास्तथा दुष्टाः सन्तः सन्ति च भूतले।

इतिहाससमुद्रेऽस्मिन्मङ्गलं गदितं पुरा। यज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्रं मलक्षालनयोगतः ॥ ३६
यन्निमित्तमुपादाय मीयते शास्त्रसंचयः। तन्निमित्तं मतं मान्यैः पापपङ्कनिवारकम् ॥ ३७
कारणं कृतिभिः प्रोक्तं भव्यवृन्दं समुध्दृतम्। यथात्र श्रुतिसंधानः श्रेणिकः श्रेयसे श्रुतः ॥ ३८
कर्ता श्रुतौ श्रुतस्तत्र मूलकर्ता जिनेश्वरः। गौतमोऽप्युत्तरः कर्ता कृतिनां संमतो मुदा ॥ ३९
उत्तरोत्तरकर्तारो विष्णुनन्द्यपराजिताः। गोवर्धनो भद्रबाहुर्बहवोऽन्ये तदादयः ॥ ४०
नाम्ना पुराणमर्थाढ्यं पाण्डवानां सुपण्डितैः। मतं पाण्डुपुराणाख्यं पुरुपौरुषसंगतम् ॥४१
संख्यया चार्थतोऽनन्तं संख्याताक्षरसंख्यया। संख्यातं क्षिप्रमाख्यातं पुराणं पूर्वसूरिभिः ॥४२
षोढा संधा पुराणस्य ज्ञात्वा व्याख्येयमञ्जसा। पञ्चधा तत्पुनः प्रोक्तं द्रव्यक्षेत्रादिभेदतः॥४३

निरूपणको इतिहास कहते हैं। इस इतिहाससमुद्रके प्रारंभमें अर्थात् इस पाण्डवपुराणकी रचनाके प्रारंभमें मंगल किया गया है। जिनेन्द्रके गुणस्तोत्रको मंगल कहते हैं, क्योंकि वह भव्योंके पापकर्मरूप मलका क्षालन करता है ॥३६॥ जिस निमित्तको लेकर शास्त्रसमूह रचते हैं उसे पूज्य पुरुष निमित्त कहते हैं। अर्थात् ग्रंथकार अपनी और सुननेवालोंकी पापरूपी कीचड को नष्ट करनेके लिये ग्रंथ रचते हैं। यहां पापका विनाश करना इस ग्रंथरचनाका निमित्त है ॥३७॥ विद्वान् लोगोंने भव्यसमूहको ग्रंथरचनेका कारण माना है। जैसे इस पुराणमें शास्त्रश्रवणके संयोगसे श्रेणिक राजा भव्यजीवोंके हितके लिये कारण माना है। अर्थात् भव्यजीवोंको शास्त्रश्रवण करनेका जो प्रसंग प्राप्त हुआ उसमें श्रेणिक कारण है, क्योंकि श्रेणिकने गौतमगणधरसे पाण्डवचरित कहनेके लिये प्रार्थना की और गौतमगणधरने यह चरित्र कहा ॥३८॥ शास्त्रमें कर्ताका वर्णन है। शास्त्रोंके मूलकर्ता वीरजिनेश्वर हैं, और विद्वान् लोगोंने आनंदके साथ गौतमगणधरको उत्तरकर्ता स्वीकार किया है। ॥३९॥ विष्णुमुनि, नन्दिमुनि, अपराजितमुनि, गोवर्धनमुनि और भद्रबाहुमुनि, ये पांच श्रुत-केवली उत्तरोत्तर-कर्ता हैं। इस प्रकार अन्य विशाख, प्रौष्ठिल आदिक अङ्गधारक मुनि भी उत्तरोत्तर-कर्ता हैं ॥४०॥ उत्तम विद्वानोंने पाण्डवोंके इस पुराणको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चार पुरुषार्थोंसे परिपूर्ण होनेसे '**पाण्डुपुराण**' नाम दिया है। यह पुराण महान् पौरुषसे युक्त है। इस पुराणमें पाण्डवोंके महान् पौरुषका वर्णन है ॥ ४१ ॥ इस पाण्डवपुराण अथवा महाभारतको पूर्वाचार्योंने भावरूपश्रुतज्ञानसे अर्थरूप अनंत कहा है, तथा अक्षरसंख्यासे संख्यातरूप कहा है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार पुराणकी छह प्रकारकी व्याख्या जानकर उसका परमार्थसे व्याख्यान करना चाहिये। अर्थात् पुराणका इन छह व्याख्याओं द्वारा व्याख्यान करना चाहिये। पुनः वह पुराण द्रव्य, क्षेत्र, तीर्थ, काल और भावके भेदसे पांच

२ स विख्यातैः।

इति सर्वस्वमालोच्य पुराणं प्रोच्यते बुधैः । वक्ता श्रोता कथास्तत्र विचार्याश्चारुलक्षणाः ॥४४
वक्ता व्यक्तं वदेद्वाक्यं वाग्मी धीमान् धृतिकरः। शुद्धाशयो महाप्राज्ञो व्यक्तलोकस्थितिः पटुः॥४५
प्राप्तशास्त्रार्थसर्वस्व प्रास्ताशः प्रशमाङ्कितः। जितेन्द्रियो जितात्मा च सौम्यमूर्तिः सुदृक् शुभः४६
तीर्थतत्त्वार्थविज्ञानी षण्मतार्थविचक्षणः । नैयायिकः स्वान्यमतज्ञादिसेवितशासनः ॥४७
सव्रतो व्रतिभिः सेव्यो जिनशासनवत्सलः । लक्षणैर्लक्षितो दक्षः सुपक्षः क्षितिपैः स्तुतः ॥४८
सदा दृष्टोत्तरः श्रीमान्सुकुलो विपुलाशयः । सुदेशजः सुजातिश्च प्रतिभाभरभूषणः ॥ ४९
विशिष्टोऽनिष्टनिर्मुक्तः सम्यग्दृष्टिःसुमृष्टवाक् । सर्वेष्टस्पष्टगमको गरिष्ठो हृष्टमानसः ॥ ५०
वादीशो वादिवारेण वन्दितः कविशेखरः । परनिन्दातिगः शास्ता गुरुः सच्छीलसागरः ॥५१
श्रोता प्रशस्यते शीललीलालङ्कृतविग्रहः । सद्भिः सुदर्शनः श्रीमान्नानालक्षणलक्षितः ॥५२
दाता भोक्ता व्रताधिष्ठो विशिष्टजनजीवनः । पूर्णाक्षः पूर्णचेतस्को हेयादेयार्थदृक् शुचिः ॥५३

प्रकारका कहा गया है ॥ ४३ ॥ इस प्रकार सभी अपेक्षाओंसे विचार कर विद्वान् पुराणका कथन करते हैं । यहां वक्ता, श्रोता और कथाके सुन्दरलक्षण भी विचार करने योग्य हैं ॥ ४४ ॥

[वक्ताके लक्षण] वाक्योंका उच्चार स्पष्ट करनेवाला, वाग्मी, युक्तियुक्तभाषण करनेमें चतुर, बुद्धिमान्, संतोष उत्पन्न करनेवाला, निर्मल अभिप्रायवाला, महाचतुर, लोकव्यवहारका ज्ञाता, प्रवीण, शास्त्रोंके मार्गका ज्ञाता,निस्पृह,प्रशान्तकषायी,जितेन्द्रिय, जितात्मा-संयमी,सौम्य, सुंदरदृष्टियुक्त, कल्याण-रूप, श्रुतज्ञानको धारण करनेवाला, जीवादि तत्त्वोंका ज्ञाता, बौद्ध, सांख्य, मीमांसकादि छह मतोंके पदार्थोंका ज्ञाता, न्यायपूर्वक प्रतिपादन करनेवाला, जैन विद्वान् और अन्य विद्वानोंको जिसका उपदेश प्रिय लगता है ऐसा, व्रतयुक्त और व्रतिमान्य, जैनमतमें प्रेम रखनेवाला, सामुद्रिक लक्षणोंसे युक्त, स्वपक्ष–सिद्धि करनेमें तत्पर, आगमोक्त पक्षका प्रतिपादक, राजमान्य, श्रोताके प्रश्नका उत्तर जिसके मनमें तत्काल प्रगट होता है, सुन्दर और कुलीन, उदारचित्त, आर्यदेशमें जन्मा हुआ, उत्तम जातिमें पैदा हुआ, नई नई कल्पना जिसके मनमें उत्पन्न होती है, शिष्टाचारी, निर्व्यसनी, सम्यग्दृष्टि, मधुर बोलनेवाला, आगममान्य विषयोंको स्पष्ट करनेवाली बुद्धिका धारक, सम्मान्य, प्रसन्नचित्तवाला, वादियोंका प्रभु, वादिओंके समूहसे वंदित, [मान्य] श्रेष्ठ कवि, परनिंदासे सदा दूर रहनेवाला, हितोपदेशी, तथा शीलसागर, सुस्वभाव, व्रतरक्षण, ब्रह्मचर्य और सद्गुणपालन, इन गुणोंका सागर श्रेष्ठ वक्ता होता है ॥ ४५–५१ ॥

[श्रोताके लक्षण] जिसका शरीर शीलसे भूषित हुआ हो, जो सम्यग्दृष्टि, शोभायुक्त, सामुद्रिक नानासुलक्षणोंसे युक्त शरीरवाला, दाता, भोक्ता, व्रतमें तत्पर, विशिष्ट जनोंको- (धार्मिक जनोंको) आश्रय देनेवाला, आंख कान वगैरह इंद्रियोंसे परिपूर्ण, स्थिरमनवाला, ग्राह्याग्राह्य पदार्थोंका विचार करनेवाला, पवित्र, निर्लोभी, शास्त्र सुननेकी इच्छा रखनेवाला, शास्त्रश्रवण करनेवाला, सुना

शुश्रूषाश्रवणाधारो ग्रहणं धारणे स्मृतौ । ऊहापोहार्थविज्ञानी सदाचाररतश्च सः ॥ ५४
सत्कलाकुशलः कौल्यो गुर्वाज्ञाप्रतिपालकः । विवेकी विनयी विद्वांस्तत्त्वविद्विमलाशयः ॥५५
सावधानो विधानज्ञो विबुधो बन्धुरः सुधीः । दयादत्तिप्रधानश्च जिनधर्मप्रभावकः ॥५६
सदाचारो विचारज्ञो धर्मज्ञो धर्मसाधनः । क्रियाग्रणीः सुगीर्मान्यो महतां मानवर्जितः ॥५७
शुभाशुभादिभेदेन श्रोतारो बहवो मताः । हंसधेनुसमाः श्रेष्ठा मृच्छुकाभाश्च मध्यमाः ॥५८
मार्जाराजशिलासर्पकङ्कच्छिद्रघटैः समाः । चालिनीदंशमहिषजलौकाभाश्च तेऽधमाः ॥५९
असच्छ्रोतरि निर्णाशमुक्तं शास्त्रं भजेद्यथा । जर्जरे चामपात्रे वा पयः क्षिप्तं कियत्स्थिति ॥६०
सदग्रे कथितं शास्त्रं गुरुणा सार्थकं भवेत् । सुभूमौ पतितं बीजं फलवज्जायते यथा ॥६१
कथा वाक्यप्रबन्धार्था सत्कथा विकथा च सा । द्विधा प्रोक्ता सुकथ्यन्ते यत्र तत्त्वानि सा कथा॥६२
व्रतध्यानतपोदानसंयमादिप्ररूपिका । पुण्यपापफलावाप्तिः सत्कथा कथ्यते जिनैः ॥६३

हुआ ग्रहण करनेवाला तथा उसे कालान्तरमें भी न भूलनेवाला, स्मरणशक्तियुक्त, विचार करनेवाला और दूषण निवारण करके पदार्थका स्वरूप जाननेवाला, सदाचारमें तत्पर, उत्तम कलाओंमें गानादिककलाओंमें कुशल, कुलीन, गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला, विवेकी, विनयी, विद्वान् तत्त्वस्वरूप जाननेवाला, निर्मल अभिप्रायवाला, सावधान रहनेवाला, कार्यको जाननेवाला, सम्यग्ज्ञानी, सुंदर, स्वपरहितकर्त्ता बुद्धि रखनेवाला, दयादान देनेवालों में मुख्य, जिनधर्मकी प्रभावना करनेवाला, सदाचारी, विचारवान्, धर्मके स्वरूपका ज्ञाता, धर्म साधनेवाला, धर्मकार्य करने में प्रमुख, मधुर और हितकर भाषण करनेवाला, और गर्वरहित, ऐसे श्रोताकी सज्जन प्रशंसा करते हैं ॥ ५२-५७ ॥ शुभ श्रोता, अशुभ श्रोता इत्यादिक श्रोताओंके अनेक भेद हैं। हंस और गायके स्वभाव वाले श्रोता श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे उपदेशमेंसे ग्राह्यतत्त्वको लेते हैं और त्याज्यको छोड़ते हैं। मिट्टी और तोताके स्वभाववाले श्रोता मध्यम हैं और बिल्ली, बकरा, पत्थर, सर्प, बगुला, सच्छिद्र घट चालनी, मच्छर, और जोंकके समान जिनका स्वभाव है वे श्रोता अधम माने गये हैं। अधम श्रोताओंको शास्त्र सुनानेसे शास्त्रका नाश होता है। जीर्ण अथवा कच्चे घटमें रखा हुवा पानी कितने कालतक रहेगा ? । जिसतरह उत्तम खेतमें बोया हुआ बीज विपुल फल देनेवाला होता है, उसी तरह सज्जनश्रोताके आगे उत्तम गुरूका कहा हुआ शास्त्र सफल होता है। ५९-६१ ॥

[कथाका लक्षण तथा उसके भेद] वाक्योंकी रचना करके अपने विषयका वर्णन करनेको, कथा कहते हैं। सत्कथा और विकथा ऐसे कथाके दो भेद कहे हैं। तत्त्वोंका सुंदर पद्धतिसे निरूपण करनेवाली, व्रत, ध्यान, तप, दान और संयम आदिका वर्णन करनेवाली, पुण्यपापोंके फलकी प्राप्ति बतानेवाली कथाको जिनेन्द्रदेव सत्कथा कहते हैं। सज्जनपुरुष जिस कथामें तद्भवमोक्षगामी तीर्थंकर, गणधर, नारायण, बलभद्र, आदिकोंके धर्म और अर्थकी वृद्धि करनेवाले

विचित्राणि चरित्राणि चरमाङ्गादिदेहिनाम्। कथ्यन्ते सत्कथा सद्भिर्यत्र धर्मार्थवर्धिनी ॥६४
द्रव्यं क्षेत्रं तथा तीर्थं संवेगो जायते यथा। सत्कथा प्रोच्यते शास्त्रे संवेगार्थप्रवर्धिनी ॥६५
वृषो वृषफलं यत्र वर्ण्यते विबुधैर्नरैः। निर्वेगाय सुवेगेन कथा निर्वेजिनी मता ॥६६
स्वतत्त्वानि व्यवस्थाप्य परतत्त्वविनाशिनी। ऊहापोहार्थविज्ञानं सा कथा कथिता जिनैः ॥६७
सम्यक्त्वगुणसंपूर्णा बोधवृत्तसमन्विता। नानागुणसमाकीर्णा सा कथा गुणवर्धिनी ॥६८
विशिष्टवेदसद्व्यासद्वैपायनसमुद्भवा। कल्पनाकल्पिता प्रोक्ता विकथा पङ्कवर्द्धिनी ॥६९
द्रव्यं क्षेत्रं तथा तीर्थं कालो भावस्तथा फलम्। प्रकृतं सप्त चाङ्गान्याहुरमूनि कथामुखे ॥७०
इत्याख्याय कथासारं पुराणं पावनं परम्। पुराणपुरुषाणां हि प्रोच्यते भारताभिधम् ॥७१
अथ जम्बूमति द्वीपे विस्तीर्णे विबुधैर्जनैः। भारतं सस्यमाभाति भारतीभरभूषितम् ॥७२
धैर्यवर्यार्यखण्डेऽस्मिन्नार्यखण्डे सुमण्डिते। अखण्डाखण्डलाकारैर्जनैर्जीवनदायिभिः ॥७३
विदेहविषयो भाति विशिष्टैर्देहसद्गुणैः। विदेहा यत्र जायन्ते नरा नार्यश्च नित्यशः ॥७४

अनेक प्रकारके चरित्रका वर्णन करते हैं, तथा जिसमें जीवादिक द्रव्य, चंपा, पावादि पवित्र क्षेत्र एवं रत्नत्रयका वर्णन होता है वह सुकथा है ॥ ६३ ६४ ॥ धर्म और धर्मके फलोंमें जो अत्यंत प्रीति उत्पन्न होती है उसे संवेग कहते हैं। यह संवेग जिस कथाके द्वारा उत्पन्न होता है उसे विद्वानोंने शास्त्रोंमें संवेगार्थ बढानेवाली कथा कहा है ॥ ६५ ॥ देह, भोग और संसारमें विरक्तता उत्पन्न होना निर्वेग कहा जाता है। निर्वेगके लिये जो कथा कही जाती है उसे निर्वेजिनी कथा कहते हैं। स्याद्वादके द्वारा जैनमतकथित जीवादितत्त्वोंकी व्यवस्था करके परमतके तत्त्वोंका खण्डन जिसमें किया जाता है उसे जिनेश्वरने ऊहापोहार्थ-विज्ञानी अर्थात् तर्कवितर्कयुक्त कथा-आक्षेपिणी कथा कहा है। जो सम्यक्त्वगुणसे परिपूर्ण है अर्थात् जो सम्यग्दर्शनको उत्पन्न करती है, सम्यग्ज्ञान तथा चारित्रसे युक्त है, जो अहिंसा, सत्य आदिक नाना गुणोंको बढाती है उसे गुणवर्द्धिनी कथा अथवा विक्षेपिणी कथा कहते हैं। वशिष्ठ, वेद-व्यास, द्वैपायन आदि मिथ्यात्वी ऋषियोंसे जिस कथाकी उत्पत्ति हुई है वह कल्पनाकल्पित होनेसे विकथा है और पापवर्धक है। कथाके प्रारंभमें द्रव्य, क्षेत्र, तीर्थ, काल, भाव, फल और प्रकृत ये कथाके सात अङ्ग आचार्योंने कहे हैं ॥६६–७०॥ इस प्रकार कथामुख कहकर जिसमें प्राचीन महापुरुषोंकी कथाका सार है तथा जो ' भारत ' नामसे प्रसिद्ध है उस अतिशय पवित्र पाण्डव-पुराणको हम कहते हैं ॥ ७१ ॥ सज्जन और विद्वान लोगोंसे भरे हुए इस विस्तीर्ण जम्बूद्वीपमें सरस्वतीके अतिशयसे अलङ्कृत हुआ समृद्ध भरतक्षेत्र शोभायमान हो रहा है। इस भरतक्षेत्रमें धैर्ययुक्त श्रेष्ठ आर्योंका निवास जिसमें है ऐसा मनोहर आर्यखंड है। इस में अखण्ड ऐश्वर्यके धारक इन्द्रके समान, जीवोंको अभयदान देनेवाले धनिक लोक रहते हैं ॥७२–७३॥ इस आर्य-

विदेहा यत्र जायन्ते धन्या ध्यानाग्नियोगतः। तपसातो जनैर्योग्यैर्विदेहो विषयो मतः ॥७५
कुण्डाख्यं मण्डनं भूमेः पत्तनं तत्र राजते। सत्तमैः सकलैः पूर्णं राजराजपुरोपमम् ॥७६
सिद्धार्थः सिद्धसर्वार्थः सिद्धसाध्यः सुसिद्धिभाक्। नाथवंशोद्भुवां नाथो भूनाथः पाति तत्पुरम् ॥७७
चेटकाद्रिसमुत्पन्ना सिद्धार्थाब्ध्यवगाहिनी। तटिनीव रसेशस्य प्रियाभूत्प्रियकारिणी ॥७८
विशुद्धकुलसंपन्ना गुणखानिर्गुणाकरा। सकला कुशला कार्ये त्रिशला या सुशोभते ॥७९
सेविता दिव्यकन्याभिर्धनदैर्धनसंचयैः। उपासिता सदा देवैः षण्मासान्या च पूर्वतः ॥८०
सा सुप्ता शयने शान्ता मातङ्गं गां हरिं रमाम्। दाम्नी चन्द्रं दिवानाथं मीनौ कुम्भं सरोवरम् ॥८१
वार्द्धिं सिंहासनं व्योमयानं भूमिगृहं पुनः। रत्नौघमग्निमैक्षिष्ट स्वप्नान्षोडश चेत्यमून् ॥८२

खण्डमें विदेह नामक देश बहुत सुंदर है। इसमें रहनेवाले स्त्रीपुरुष अपने शरीरके विशिष्ट गुणोंसे हमेशा विदेह–विशेष गुणसहित शरीरयुक्त होते हैं। वहांके रत्नत्रयधारक भाग्यशाली मुनि ध्यानरूपी अग्नि और तपश्चरणके द्वारा कर्मनाश करके विदेह–मुक्तावस्थाको प्राप्त होते हैं। अतएव सत्पुरुषोंने इस देशको ' विदेह ' यह सार्थक नाम दिया है ॥ ७४–७५ ॥

[श्री महावीर जिनचरित्र] इस विदेहदेशमें महासज्जनोंसे भरा हुआ, कुबेरकी अलका नगरीके समान सुंदर, भूमीका भूषण 'कुंड' नामक नगर शोभायमान हो रहा है ॥ ७६ ॥ जिनको सर्व उत्तम पदार्थोंकी प्राप्ति हुई हैं, जिनका साध्य सिद्धिसम्पन्न था, जो आदर्श सफलताके धारक थे, और जो नाथवंश में उत्पन्न हुए पुरुषोंके नाथ-स्वामी थे ऐसे पृथ्वीपति सिद्धार्थ महाराज उस कुण्डपुरका रक्षण करते थे ॥ ७७ ॥ जैसे नदी पर्वतसे उत्पन्न होती है और समुद्रमें मिलती है, वैसे इस राजाकी रानी प्रियकारिणी चेटकरूप पहाडसे उत्पन्न होकर सिद्धार्थनृपतिरूप समुद्रमें जाकर मिली थी। राजा सिद्धार्थ समुद्रके समान रसेश थे। समुद्र रसेश (जलपति) होता है और राजा रसेश शृङ्गारादि नवरसोंका अधिपति था। ऐसे सिद्धार्थ राजाकी प्रियकारिणी प्रिय पट्टरानी थी। रानीका दूसरा नाम त्रिशला था। वह त्रिशला रानी निर्दोष कुलमें उत्पन्न हुई थी। वह गुणोंकी खानि, गुणोंको उत्पन्न करनेवाली, कलासंपन्न, कार्यकुशल और अतिशय सुंदर थी। महावीर भगवान् इस रानीके गर्भमें आनेके छह महिने पहिलेसे ही देवकन्यायें रानीकी सेवा करती थीं। कुबेर रत्नवृष्टिसे रानीकी उपासना करने लगे थे, तथा देव भी अनेक दिव्य भोगोपभोगपदार्थ अर्पण कर सेवा करते थे ॥ ७८–८० ॥ किसी समय शान्तस्वभाववाली रानी शय्यापर सोयी थी। रात्रिके चौथे पहरमें रानीने हाथी, बैल, सिंह, लक्ष्मी, दो पुष्पमाला, चंद्र, सूर्य, दो मछलियां, दो कलश, सरोवर, समुद्र, सिंहासन, विमान, भूमिगृह (नागभवन), रत्नोंकी राशि और अग्नि इन सोलह स्वप्नोंको देखा ॥ ८१–८२ ॥ रानीने जागृत होकर अपने पति महाराज सिद्धार्थसे उन स्वप्नोंके फल सुने और पुष्पक नामक स्वर्गविमानसे च्युत हुए सुरेन्द्रको अपने गर्भमें धारण किया। हाथी-

प्रबुद्धा नाथतो नूनं तत्फलानि निशम्य च । पुष्पकात्प्रच्युतं देवं सा दधे गर्भपङ्कजे ॥८३
आषाढे सितषष्ठ्यां च हस्तभे हस्तिगामिनी । सुहस्ता हस्तिसंरूढैः सुरैः संप्राप्तपूजना ॥८४
जज्ञे सा सुसुतं चैत्रे त्रयोदश्यां सितेऽहनि । चतुर्दश्यां सुतो लेभे मेरौ स्नानं सुरेन्द्रतः ॥८५
वर्धमानाख्यया ख्यातः क्षितौ क्षिप्तरिपूत्करः । त्रिंशद्वर्षे कुमारत्वे सातं सिवे स शुद्धधीः ॥८६
कांचिद्धेतुं हितं वाञ्छन् हेतुं वैराग्यसंततेः । वीक्ष्य दक्षः स आचख्यौ वैराग्यं स्वस्य सज्जनान् ॥८७
तदा लौकान्तिका देवाः पञ्चमात्समुपागताः । स्तुत्वा निर्वेदिनं तं ते निर्वेदाय गताः पुनः ॥८८
सुरेन्द्राः सह संप्राप्य ज्ञात्वा वैराग्यमञ्जसा । जिनस्य जनितानन्दा नेमुस्तं नतमस्तकाः ॥८९
संस्नाप्य भूषणैर्भक्त्या विभूष्य भूषणं भुवः । सुरास्ते भक्तितो भेजुर्वैराग्यार्थं जिनेश्वरम् ॥९०
नानारूपान्वितां चित्रां चित्रकूटैर्विचित्रिताम् । चन्द्रप्रभां सुशिबिकामारुह्य पुरतो ययौ ॥९१
मार्गे कृष्णदशम्यां च हस्ते भे वनसंस्थितः । षष्ठेन त्वपराह्णे च प्राव्राजीज्जिनसत्तमः ॥९२
मनःपर्ययसद्बोधो दीक्षातस्तत्क्षणे क्षणी । पारणाप्राप्तसंमानो विजहाराखिलां महीम् ॥९३

के समान गतिवाली, सुंदर हाथवाली रानीने आषाढ शुद्ध षष्ठीके दिन हस्तनक्षत्रके होनेपर गर्भ धारण किया । उस समय हाथीपर आरूढ होकर आये हुए देवोंने उनका पूजन किया ॥८३–८४॥ चैत्रशुक्लत्रयोदशीके दिन त्रिशला रानीने भगवान् वीरको जन्म दिया । चतुर्दशीके दिन मेरुपर्वतपर सुरेन्द्रोंसे वे भगवान् अभिषेकको प्राप्त हुए । वे वर्धमान इस नामसे जगतमें प्रसिद्ध हुए । जिन्होंने शत्रुओंको पराजित किया है, ऐसे निर्मल बुद्धिवाले भगवान् वर्धमानने तीस वर्षतक कुमार अवस्थामें सुखोंका अनुभव लिया । अनंतर आत्महितका कोई निमित्त चाहनेवाले विज्ञ भगवान्ने वैराग्यका हेतु देखकर सज्जनोंके पास अपने वैराग्यका वर्णन किया ॥ ८५–८७ ॥ तब लौकान्तिक देव पंचमस्वर्गसे आये । उनने विरक्त प्रभुके वैराग्य भावोंकी प्रशंसा की । अनंतर वे पुनः ब्रह्मस्वर्गको चले गये ॥ ८८ ॥ भगवान्को विरक्त जानकर देवेन्द्र चतुर्णिकाय देवोंसहित आनंदके साथ प्रभुके पास पहुंचे और उन्होंने मस्तक झुकाकर उन्हें नमस्कार किया ॥८९॥ पृथ्वीके भूषणस्वरूप जिनेश्वरका भक्तिपूर्वक अभिषेक कर देवोंने उन्हें आभूषण पहनाये और वैराग्यके लिये उन्होंने भक्तिसे उनका शरण ग्रहण किया ॥९०॥ नानारूपोंसे युक्त, नानाप्रकारके शिखरोंसे सुशोभित, सुंदर चित्रोंसे युक्त चन्द्रप्रभा नामक मनोज्ञ पालकीमें आरोहण कर भगवानने नगरसे बाहर प्रस्थान किया । मार्गशीर्ष कृष्ण दशमीके हस्तनक्षत्रके अपराह्णमें सज्जनश्रेष्ठ उन जिनेश्वरने—वीरप्रभुने—दो उपवासोंकी प्रतिज्ञा धारण कर उद्यानमें दीक्षा ली । दीक्षा लेनेके अनंतर क्षणमात्रमें प्रभु मनःपर्ययज्ञानी हो गये । दो उपवास होनेके अनंतर वे पारणाके लिये चले । अतिशय आदरसे दाताने उनको आहार दिया ।

१ शं. सिषेवे

जिनो द्वादश वर्षाणि तपस्तप्त्वा दुरुत्तरम्। प्रपेदे जृम्भिकाग्रामं जृम्भाजृम्भणवर्जितः ॥९४
ऋजुकूलासरित्तीरे ऋजुकूले किलाकुले। शालैः शालद्रुमाकीर्णे शिलापट्टे जिनोऽविशत्॥९५
वैशाखदशमीपक्षेऽपराह्ने षष्ठसंश्रितः। हस्ताश्रिते सिते पक्षे क्षपकश्रेणिमाश्रितः ॥९६
विघातिघातिकर्माणि घातयित्वा घनानि सः। प्रपेदे केवलं बोधं बोधिताखिलविष्टपम् ॥९७
भगवानथ संप्राप दिव्यं वैभारभूधरम्। तत्र शोभासमाकीर्णः समवसृतिशोभितः ॥९८
छत्राशोकमहाघोषसिंहासनसमाश्रितः । चामरैः पुष्पवृष्ट्या च भामण्डलदिवाकरैः ॥९९
दुन्दुभीनां सहस्रेण रेजे रञ्जितशासनः। गौतमादिगणाधीशैः सुरानीतैः स सेवितः ॥१००
अथास्ति मगधो देशो मागधैर्गीतसद्गुणः। मागधैर्देववृन्दैश्च सेव्यः स्वर्लोकवत्सदा॥१०१
राजगृहपुरं तत्र राजते स्वःपुरोपमम्। राजद्राजेन्द्रसद्गेहशोभाभाभारभूषणम् ॥१०२
श्रेणिको भूपतिस्तत्र शुभश्रेणिगुणाकरः। महामनाश्च सद्दृष्टिः प्रतापपरमेश्वरः ॥१०३
चेलनाचित्तचौरेण तेन तत्र स्थितं जिनम्। ज्ञात्वा जग्मे यथापूर्वं भरतेन सुचेतसा॥१०४

तदनंतर उन्होंने समस्त पृथ्वीपर विहार किया ॥ ९१–९३ ॥ आलस्यकी वृद्धिसे रहित अर्थात् मुनिव्रत पालनेमें अत्यंत तत्पर वीरप्रभुने बारह वर्षतक घोर तप किया। तदनंतर वे जृंभिका ग्रामको आये। शालवृक्षोंमे व्याप्त और सरलतटयुक्त ऋजुकूलानदीके किनारेपर शालवृक्षोंसे घिरे हुए एक शिलापट्टपर वे प्रभु बैठ गये। हस्तनक्षत्रयुक्त वैशाख शुक्ल दशमीके दिन दोपहरके पश्चात् दो उपवासोंकी प्रतिज्ञा कर वीरप्रभुने क्षपकश्रेणीका आश्रय लिया। आत्माके अनंतज्ञानादि चार गुणोंका घात करनेवाले निबिड चार घातिकर्मोंका (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय) नाश करके प्रभुने संपूर्ण जगत्को जाननेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया ॥ ९४–९७ ॥ तदनंतर भगवान् दिव्य वैभारपर्वतपर आये। वहां शोभासंपन्न समवसरणसे शोभित प्रभु अतिशय शोभते थे। वे तीन छत्र, अशोकवृक्ष, दिव्यध्वनि, रत्नजडित सिंहासनसे युक्त, चौंसठ चामर, भामंडलरूप सूर्यों तथा सहस्रदुंदुभियोंसे शोभायमान हुए। उन प्रभुका शासन सर्व जीवोंको अतिशय प्रिय हुआ। इन्द्रके द्वारा लाये गये गौतमादिकगणधरोंसे प्रभु सेवित थे ॥ ९८–१०० ॥ मागध (गंधर्व) देवोंद्वारा जिसके सद्गुण गाये जाते थे, ऐसा स्वर्गलोकके समान मगधनामका एक देश है। जो सदा स्वर्गलोकके सदृश देवसमूहके द्वारा सेवनीय था। इस मगधदेशमें राजगृह नामका नगर देवोंकी अमरावतीनगरीके समान सुंदर था। शोभायमान राजमहलोंकी अत्यधिक शोभासे वह भूषित था ॥ १०१–१०२ ॥ शुभश्रेणियुक्त गुणोंके धारक महाराज श्रेणिक उस नगरमें राज्य करते थे। वे उदार चित्तवाले, सम्यग्दृष्टि और महान् प्रतापी थे। जैसे पूर्वकालमें शुद्धचित्तके धारक भरतचक्रवर्ती केवलज्ञानी आदिभगवानके पास कैलासपर्वतपर वंदनार्थ गये थे, वैसे ही चेलनाका चित्त हरण करनेवाले अर्थात् चेलनाके पति श्रेणिकनरेश महावीरप्रभुका वैभार-

घटद्घोटकसंघातैर्महादन्तसुदन्तिभिः । नानार्थैरथसार्थैश्च नृत्यत्पादातिसद्व्रजैः ॥१०५
वदद्वादित्रनिर्घोषैः संसिद्धैर्मागधस्तवैः । श्रेणिकः सत्यसंधानः प्रपेदे जिनसंनिधिम् ॥१०६
दन्तावलात्समुत्तीर्य विवेश जिनसंसदम् । मुक्तचामरछत्रादिचिह्नः श्रेणिकभूपतिः ॥१०७
जिनं मृगारिपीठस्थं छत्रत्रयमहाछदम् । चतुरास्यं महाशस्यं विशेष्यं त्रिजगत्पतिम् ॥१०८
नतामरनराधीशमीशानं शंसितव्रतम् । नत्वाभ्यर्च्य स्तुतिं कर्तुं प्रारेभे स इलापतिः ॥१०९
स्तुत्यं स्तोतारमात्मानं स्तुतिं स्तुतिफलं पुनः । नृपो ज्ञात्वा समारेभे स्तुतिं वीरजिनेशिनः॥११०
भगवन् देवदेवेश विभो भुवनसत्पते । त्वां स्तोतुं कः क्षमो दक्षः शक्तः शक्रसमोऽपि च ॥१११
चिद्रूपं चित्तनिर्मुक्तं विभुं चेन्द्रियवर्जितम् । निर्मलं निर्मलाकारं गन्धज्ञं गन्धवर्जितम् ॥११२
अरूपं रूपवेत्तारं नीरसं रसवित्स्तुतम् । रसज्ञं ज्ञातसर्वस्वं त्वां स्तवीमि जगत्पतिम् ॥११३

पर्वतपर आगमन जानकर वहां वन्दनार्थ गये ॥१०३-१०४॥ वेगसे गमन करनेवाले घोडोंके समूह, बडे दांतवाले हाथी, अनेक कार्य साधनेमें समर्थ ऐसे रथ, नृत्य करनेवाले प्यादोंका समूह, बजनेवाले वाद्योंकी ध्वनि तथा उत्तम पद्धतिसे रची गई बन्दिजनोंकी स्तुतिके साथ सत्यशील नरेश श्रेणिक श्रीमहावीर प्रभुके समीप आए। उनने चामर छत्रादि राजचिन्होंको छोड दिया और हाथीपरसे उतरकर जिनभगवानके समवसरणमें प्रवेश किया ॥ १०५-१०७ ॥ वहां जाकर सिंहासनपर विराजमान छत्रत्रयरूप प्रातिहार्यसे सुशोभित, चार मुखोंसे युक्त, अत्यन्त प्रशंसनीय, इतर देवताओंसे विशिष्टता, सम्पन्न अर्थात् परमवीतराग, त्रिलोकके नाथ, देवेन्द्र और राजेन्द्रों द्वारा नमस्कृत, अठारह हजार शील और चौरासी लाख उत्तरगुण धारण करनेवाले प्रभुको पृथ्वीपति श्रेणिकराजाने वन्दन किया। तथा प्रशंसायुक्त व्रतोंके धारक प्रभुकी इस प्रकार स्तुति की ॥ १०८-१०९ ॥ स्तुत्य, स्तोता, स्तुति और स्तुतिफल इन चारोंका स्वरूप अर्थात् वीरप्रभु स्तुत्य हैं, मैं स्तुति करनेवाला हूं, प्रभुके गुणवर्णनको स्तुति कहते हैं, तथा पापविनाश और पुण्यलाभ यह स्तुतिका फल है, ऐसा जानकर श्रेणिकने वीरजिनेशकी स्तुतिका प्रारंभ किया ॥ ११० ॥ हे भगवन् ! आप देवोंके देव जो इन्द्र उनके भी स्वामी हैं। हे विभो ! आप त्रैलोक्यके हितकर्ता पति हैं। हे प्रभो ! विज्ञ तथा इन्द्रके समान सामर्थ्यवान् ऐसा कौनसा पुरुष है, जो आपकी स्तुति करनेमें समर्थ होगा ? ॥ १११ ॥ हे ईश ! आप चिद्रूप अर्थात् केवलदर्शन, केवलज्ञानमय हैं। आप चित्तनिर्मुक्त हैं अर्थात् भावमनसे रहित हैं। (क्षायिक केवलज्ञानकी प्राप्ति होनेपर क्षायोपशमिक भावमनका विनाश होता है।) आप ज्ञानसे सर्व जगत् को जानते हैं इसलिये विभु हैं, तथा आप भावेन्द्रियरहित हैं। (केवलज्ञान होनेपर भावमनके समान क्षयोपशमरूप भावेन्द्रियां भी नष्ट होती हैं।) उनके नष्ट होनेसे आप निर्मल हुए हैं, तथा आप परमौदारिक शरीरके धारक होनेसे निर्मलाकार हैं। आप गंधको जानते हैं परंतु स्वयं आप गंधरहित हैं (गंधगुण पुद्गलम होता है जीवद्रव्यमें नहीं।) ॥११२॥ हे प्रभो ! आप रूपरहित होकर रूपको

बाल्ये रतिपतिः क्षिप्तः क्षिप्रं क्षेमंकरेण भोः। त्वया लोकितलोकेन विपुलाचलपालिना ॥११४
बाल्यक्रीडाविधौ देव नागीभूतात्सुपर्वणः। त्वं निर्जित्य जितारातिर्वीर त्वं समुपाश्रितः ॥११५
बालखेलासमारूढं नभःस्था वीक्ष्य योगिनः। द्वापराकरनाशेन सन्मतिं त्वां च तुष्टुवुः ॥११६
शंकरस्त्वां समावीक्ष्य योगस्थं योगिनं जगौ। कृतोपसर्गो निश्चाल्यं महावीर इति स्फुटम् ॥११७
वर्धमानमहाज्ञानो वर्धमानो भवान्मतः। स्तुत्वेति तं नरेड् भक्त्योपाविशन्नरसंसदि ॥११८
तावता भगवान्वीरो व्याजहार परां गिरम्। ताल्वोष्ठकण्ठचलनामुक्तामक्षरवर्जिताम् ॥११९
राजन् धर्मे मतिं धत्स्व धर्मो द्वेधा दयामयः। अनगारसहागारभेदेन भेदमाश्रितः ॥१२०
नैर्ग्रन्थ्यमृषिसद्ग्रन्थ्यं नैर्ग्रन्थ्यं परमं तपः। नैर्ग्रन्थ्यं परमं ध्यानं नैर्ग्रन्थ्यं ध्येयमेव च ॥१२१
नैर्ग्रन्थ्यं परमं ज्ञानं नैर्ग्रन्थ्यं परमो गुणः। नैर्ग्रन्थ्यं प्रथमं प्रोक्तं ज्ञेयं सन्मुनिगोचरम् ॥१२२

जाननेवाले, रसरहित होकर रसको जाननेवाले, विद्वानोंसे स्तुत, रसके ज्ञाता, सर्वज्ञ तथा त्रिलोकके पति हैं। मैं आपकी स्तुति करता हूं ॥११३॥ हे प्रभो! जगत् का कल्याण करनेवाले आपने बाल्यकाल ही में कामका शीघ्रही नाश किया है। विपुलाचल को सुशोभित करके आपने लोकालोक को जाना है ॥११४॥ हे प्रभो! आपने बालकालकी क्रीडाके समय सर्पाकार धारण करनेवाले संगम नामक देवको जीत लिया था। घातिकर्मशत्रु को जीतने वाले हे जिनेश! उससमय उस देवने आपको 'वीर' कहकर आपका आश्रय ग्रहण किया था ॥११५॥ बाल्यावस्थामें खेलने में तत्पर आपके दर्शनसे आकाशगामी संजय और विजय नामके मुनिराजोंका तत्त्वविषयक संशय नष्ट हुआ। उस समय उन्होंने सन्मति नाम रखकर आपकी स्तुति की थी। ॥११६॥ हे प्रभो! ध्यानमें स्थिर रहने वाले आप योगी को देखकर भव नामके ग्यारहवे रुद्रने घोर उपसर्ग किया। फिर भी आपकी निश्चलतामें कुछभी अन्तर नहीं पडा, तब उसने 'महावीर' नाम रखकर आपकी स्तुति की। हे स्वामिन्! आपका ज्ञान वृद्धिंगत होनेसे आप 'वर्धमान' नामसे प्रख्यात हुए हैं। इस प्रकार भक्तिपूर्वक प्रभुकी स्तुति करके श्रेणिकराजा मनुष्योंकी सभामें बैठ गया ॥११७-१८॥ उस समय वीर जिनेश्वरने तालु, ओठ तथा कंठकी चंचलतासे मुक्त और अक्षररहित दिव्यध्वनिसे श्रेणिकको धर्मोपदेश दिया ॥११९॥ हे राजन्! तू जिनधर्म धारण कर। वह दयामय है। उसके अनगारधर्म और सागारधर्म इसतरह दो भेद हैं। निर्ग्रंथपना ऋषियों से पाला जाता है (संपूर्ण बाह्याभ्यंतर परिग्रहोंका जो त्याग है उसे नैर्ग्रन्थ्य कहते हैं) यह निर्ग्रन्थताही श्रेष्ठ तप है। यह निर्ग्रन्थताही उत्तम शुक्लध्यान है और यही आत्माको मुक्तिप्राप्तिके लिये चिन्तनयोग्य-ध्येय-है। पूर्ण निर्ग्रन्थताही केवलज्ञान है। निर्ग्रन्थता मुनिका उत्कृष्ट गुण है। आगममें इसका प्रथमवर्णन किया है, तथा मुनिही इसको धारण करते हैं ॥१२०-२२॥ 'गृहस्थधर्म शील, तप, दान और शुभभावनारूप

श्राद्धश्रेयः श्रुतं शीलतपोदानसुभावनैः। नाकं साकं सुखैर्दत्ते चतुर्धा सुधृतं ध्रुवम् ॥१२३
शीलं च सत्स्वभावोऽत्र शीलं च व्रतरक्षणम्। ब्रह्मचर्यात्मकं शीलं शीलं सद्गुणपालनम्॥१२४
तपस्तपनमेवात्र देहस्येन्द्रियदर्पिणः। इन्द्रियार्थनिवृत्तेस्तत्वोढा बाह्यं तथान्तरम् ॥ १२५
दानं दत्तिस्त्रिधा पात्रे स्वस्य शुद्ध्या चतुर्विधम्। भोगभूमिफलाधारं तदाहारादिभेदगम्॥१२६
भावनं जिनधर्मस्य चिद्रूपस्य निजात्मनः। स्वहृदः शुद्धता चाथ भावना साभिधीयते ॥१२७
इति धर्मस्य सर्वस्वं श्रुत्वा भूपो जिनोदितम्। द्रङ्गं जिगमिषुर्द्राक् स ननाम जिनपुङ्गवम्॥१२८
पुरं नृपो जगामाशु सेवितो नरनायकैः। सुरेशैः सेवितः स्वामी वीरश्च परनीवृतम् ॥१२९
रेमे भूपः सुचेलिन्या चलचारुसुचेतसा। जिनश्चेतनया चित्ते चिन्त्यमानस्वभावया ॥१३०
ददौ दानं स निःस्वेभ्यः सातसिद्ध्यर्थमञ्जसा। वीरोऽपि ध्वनिना ध्रौव्यं वृषं सत्सातसिद्धये ॥१३१
वर्धमानोऽथ सद्देशे कोशले कुरुजाङ्गले। अङ्गे वङ्गे कलिङ्गे च काश्मीरे कौङ्कणे तथा ॥१३२
महाराष्ट्रे च सौराष्ट्रे मेदपाटे सुभोटके। मालवे मालवे देशे कर्णाटे कर्णकोशले ॥१३३
पराभीरे सुगम्भीरे विराटे विजहार च। बोधयन्बुधसद्राशिं जिनः सद्धर्मदेशनैः ॥१३४

चार प्रकारका हैं। इन के पालने से जीवको सुखोंके साथ स्वर्गप्राप्ति होती है। उत्तम दयादिस्वभाव-को शील कहते हैं। व्रत का रक्षण शील है, ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना शील है, सद्गुणोंका पालन भी शील ही है। इन्द्रियोंसे उन्मत्त हुए शरीरको संतप्त करना तप कहा गया है, अर्थात् इंद्रियोंको अपने विषयोंसे हटाना तप है। इसके बाह्यतप तथा अभ्यन्तरतप ऐसे दो भेद हैं, तथा दोनोंके भी छह छह प्रकार होते हैं। उत्तमपात्र, मध्यमपात्र और जघन्यपात्र इन तीनों सुपात्रोंको (उनको रत्नत्रयवृद्धिके लिये तथा अपनेको पुण्यप्राप्तिके लिये) नवधा भक्तिपूर्वक आहारादिक देना इसे दान वा दत्ति कहते हैं। इस दानके आहारदान, अभयदान, औषधदान और शास्त्रदान ये चार भेद हैं। इनसे भोगभूमिके सुखोंकी प्राप्ति होती है ॥१२३–२६॥ जिनधर्मका मनन, अपने आत्माके चैतन्य शुद्धस्वरूपका चिन्तन या अपने हृदयकी निर्मलताको भावना कहते हैं। इस प्रकार जिनेन्द्रकथित धर्मका स्वरूप सुन अपने नगरको जानेकी इच्छासे श्रेणिकने जिनश्रेष्ठ वीरनाथको नमस्कार किया ॥१२७-२८॥ राजाओंसे सेवित श्रेणिक महाराजने पुरमें प्रवेश किया और देवसेवित वीर जिनेश्वरने अन्य देशोंमें विहार किया। श्रेणिक महाराज चंचल और सुंदर चित्तवाली चेलनाके साथ रममाण होने लगे और श्रीवीर जिन मनमें वारंवार चिंतन किये जानेवाले चेतना स्वभावमें रममाण होने लगे। श्रेणिक राजा याचकोंको सुखी करनेके लिये दान देते थे और श्रीवीर भगवानभी भव्योंको सुखकी प्राप्ति के लिये अविनाशी धर्मका उपदेश देते थे ॥१२९–१३१॥ वीर जिनेश्वरने कोशल, कुरुजांगल, अंग, वंग, कलिंग, काश्मीर, कोंकण, महाराष्ट्र, साराष्ट्र, मेदपाट, सुभोट, मालव, कर्णाट, कर्णकोशल, पराभीर, सुगंभीर और

पुनः स मगधे देशे प्रतिबोधनपण्डितः। वैभारं भूषयामास भास्वांश्चोदयपर्वतम् ॥१३५
वनपालो जिनेशस्य विभूतिं वाक्पथातिगाम्। वीक्ष्य विस्मयमापन्नो जगाम राजमन्दिरम्॥१३६
नृपं सिंहासनासीनं प्रकीर्णाकीर्णसद्भुजम्। छत्रव्रातगतादित्यतापं पापविवर्जितम् ॥१३७
नानानीवृत्समायातप्राभृते दत्तलोचनम्। मागधव्रातसंगीतगणद्गुणकदम्बकम् ॥१३८
कृपाणकरकौलीन्यराजन्यशतसंस्तुतम्। सूर्यचन्द्राभसौरूप्यकुण्डलाभ्यां सुशोभितम् ॥१३९
मुकुटस्य मयूखेन लिखितं स्वं नभस्तले। हसन्तं हारिहारस्य किरणेन पराञ्जनान् ॥१४०
कटकाङ्गदकेयूरकान्त्या कृन्तिततामसम्। दन्तज्योत्स्नासमूहेन कलयन्तं च भूतलम् ॥१४१
दौवारिकनिदेशेन वनपालो महीभुजम्। वीक्ष्य नत्वा च विज्ञप्तिं चर्करीति स्म सस्मयः॥१४२
राजंस्त्रिजगतां नाथो नाथान्वयसमुद्भवः। भूषयामास वैभारं भूषयन्तं भुवस्तलम् ॥१४३
यत्प्रभावान्महाव्याघ्री निघ्नचित्ता सविघ्निका। पस्पर्श सौरभेयीणां सन्तानं स्वसुतेच्छया॥१४४

विराट इन अनेक देशों में विद्वान लोगोंको जिनधर्मका उपदेश देते हुए विहार किया ॥१३२–३४॥ दिव्यध्वनिसे धर्मोपदेश देनेमें निपुण वीरप्रभुने मगध देशके वैभारपर्वतको पुनः सुशोभित किया। सूर्यनेभी उदयाचलको अलंकृत किया ॥१३५॥ जिनेश्वरका वचनागोचर ऐश्वर्य देखकर वनपालको बहुत आश्चर्य हुआ और वह राज प्रासादमें गया ॥१३६॥ वहां द्वारपालकी अनुज्ञासे सिंहासनपर बैठे हुये, चामर जिनपर ढुर रहे हैं, छत्रके कारण सूर्यका आताप जिनका दूर हुआ है, जो पापसे दूर है, अनेक देशोंसे आई हुई भेटोंपर जिनने दृष्टी दी है, स्तुतिपाठकोंके गीतोंमें जिनके गुणोंका वर्णन हो रहा है, तलवार धारण किए हुए सैंकडों राजाओंद्वारा जिनकी स्तुति की जा रही है, सूर्यचन्द्रके समान कुण्डलोंद्वारा जो शोभायमान हो रहे हैं, जिनके मुकुटकी किरणें आकाशमें फैल रही हैं, सुन्दर हारोंकी किरणोंसे औरोंको जो हंसते हुए दिखाई दे रहे हैं ऐसे कटक, अंगद और बाजूबंदोंकी कान्तिसे अन्धकारको दूर करनेवाले तथा दांतोंकी उज्ज्वल कान्तिसे भूतलको सुशोभित करनेवाले श्रेणिक महाराजाको देखकर आश्चर्यचकित वनपालने नमस्कार किया और इस प्रकार वह विज्ञप्ति करने लगा ॥१३७–४२॥

[वीरप्रभूका वैभार पर्वतपर पुनरागमन] "हे राजन्, नाथ वंशमें उत्पन्न हुए त्रिलोकनाथ वीरप्रभूने पृथ्वीतलको सुशोभित करनेवाले वैभारपर्वतको भूषित किया है, अर्थात् प्रभु समवसरण सहित वैभार पर्वतपर पधारे हैं। उनके आगमनसे पर्वत अत्यंत शोभायमान दीख रहा है। प्रभूके प्रसादसे क्रूर व्याघ्री अपना स्वभाव छोडकर गायके बछडेको अपना बच्चा समझ प्रेमसे स्पर्श कर रही है।

१ स. लिखन्तं।

महागजमजारीणां शावकाः सुखलिप्सया। रम्यारामेषु चान्योन्यं रमन्ते यत्प्रभावतः॥१४५
नागनाकुलवृन्दानि ददते स्वहितेच्छया। स्वस्वस्थाने स्थितिं मुक्तवैरा यस्य समागमात्॥१४६
मार्जारमूषका मत्ताः क्रीडन्ति क्रीडनोद्यताः। परस्परं प्रभावेण बान्धवा इव यस्य च ॥१४७
पद्माकराः सदाशुष्का जाताः संजीवनान्विताः। मरालकोककादम्बकलरावा यतो जिनात् ॥१४८
शुष्काः शालाः समाकीर्णाः फलपुष्पसुपल्लवैः। फलभारभराकीर्णा नमन्तीव जिनेशिनम् ॥१४९
अकालकल्पिताकल्पफलपुष्पभरान्विताः। महीरुहा महद्मान्या मीयन्ते स्म जिनेशिनः ॥१५०
इति तस्य प्रभावं भो नानाकालसमुद्भवैः। फलैः पुष्पैरहं वीक्ष्य प्राभृतं कृतवांस्तव ॥१५१
इत्यानन्दभराद्भूपः पुलकाङ्कितविग्रहः। श्रुत्वा तद्वचनं रम्यं जहर्ष हर्षनिस्वनः॥१५२

दत्त्वा तस्मै भुवनपतये सारवित्तं स भक्त्या
गत्वा सप्तोत्तरसुविधिना सत्पदानि प्रहृष्टः।
नत्वा तस्यां दिशि जिनपदाम्भोजयुग्मं प्रपेदे
स्थानं नानानृपगणयुतस्तत्पदं वन्दनेच्छः ॥१५३

बडे हाथी और सिंहके बालक सुन्दर बगीचोंमें सुखकी इच्छासे प्रभुके प्रभावसे आपसमें खेलकूद रहे हैं। प्रभूके आगमनसे सर्प और नेवला आपसी वैर छोडकर अपना अपना स्थान सुखकी इच्छासे एक दूसरेको देरहे हैं। प्रभुके प्रभावसे उन्मत्त बिल्ली और चूहे बंधुओंके समान क्रीडा करनेमें तत्पर होकर एक दूसरेके साथ खेल रहे हैं। जो तालाव सदा शुष्क थे वे प्रभूके आगमनसे स्वच्छपानीसे भर गये और उनमें हंस, चक्रवाक, कादंब आदि पक्षी कलरवकर रहे हैं। सूखे वृक्ष फल, पुष्प और सुंदर पल्लवोंसे व्याप्त होकर, मानो फलोंके भारसे जिन भगवान को नमस्कार कर रहे हैं। अकालमें उत्पन्न हुए फलपुष्परूपी आभूषणोंके भारसे युक्त वृक्ष जिनेश्वरके प्रसादसे बडोंको मान्य हो गये हैं ऐसा विदित होता है। हे राजन्! अनेक कालमें उत्पन्न होनेवाले फल पुष्पोंसे प्रभुका प्रभाव जानकर मैंने वे फलपुष्प आपको भेट किये हैं ॥१४३–५१॥ इस प्रकार मालीके प्रिय वचनको सुनकर राजाके शरीरपर आनंदसे रोमांच उत्पन्न हो गये। आनंदित होकर उनके मुखसे हर्षोद्गार निकले ॥१५२॥ राजा श्रेणिकने वनपालको अच्छा पारितोषिक दिया। और जिस दिशामें महावीर प्रभु समवसरणमें विराजमान थे उस दिशामें भक्तिसे सात पद प्रमाण चलकर आनंदित हो प्रभुको उसने परोक्ष वंदना की। तदनंतर प्रभुके चरणोंकी वंदनाकी अभिलाषासे वे अनेक राजाओंके साथ समवसरणमें गये ॥१५३॥ भगवान्

---

१ प. नास्त्ययं श्लोकः।

वीरो विश्वगुणाश्रितो गुणगणा वीरं श्रिताः सिद्धये
वीरेणैव विधीयते व्रतचयः स्वस्त्यस्तु वीराय च ।
वीराद्वर्तत एव धर्मनिचयो वीरस्य सिद्धिर्वरा
वीरे पाति जगत्त्रयं जितमिदं संजायते निश्चितम् ॥१५४

इति श्रीपाण्डवपुराणे महाभारतनाम्नि भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्म० श्रीपालसाहाय्यसापेक्षे श्रेणिकजिनवन्दनोत्साहवर्णनं नाम प्रथमं पर्व ॥१॥

। द्वितीयं पर्व ।

नौमि वीरं महावीरं विजिताखिलवैरिणम्। भवपाथोधिसंप्राप्तपारं परमपावनम् ॥१
अथानन्दभरेणैवानन्दभेरीं स नादिनीम्। दापयामास दानेन नन्दिताखिलविष्टपः ॥२
श्रुत्वानन्देन भेरीं तां लोका यात्रार्थसिद्धये। सज्जाः संनाहसंबद्धा संबोभुवति ते स्म वै ॥३
सादिनो मोदतो मङ्क्षु पर्याणं घोटकेषु च। रोपयन्ति स्म रागेण चलच्चामरचारुषु ॥४
दन्तिनो दन्तघातेन दारयन्तश्च दिग्गजान्। समर्थकुथसंबद्धाश्चेक्रीयन्ते स्म तज्जनैः ॥५

वीरप्रभुने संपूर्ण गुणोंका आश्रय किया है तथा गुणसमूहने भी वीरप्रभुका आश्रय किया है। वीर भगवानने व्रतोंका समूह सिद्धिके लिये धारण किया है। ऐसे वीरप्रभुको धन्य है। वीरप्रभुसेही धर्मका तीर्थ चल रहा है। वीरजिनकी सिद्धिही संसारमें श्रेष्ठ है। वीरप्रभुके द्वारा रक्षण किये जानेपर यह त्रिलोक निश्चयसे उनके अधीन हुवा है ॥१५४॥

ब्रह्मश्रीपालकी सहायतासे श्रीशुभचंद्र–भट्टारकद्वारा रचे हुए पाण्डवपुराणमें अर्थात् महाभारतमें श्रेणिककी जिनवंदनाके उत्साहका वर्णन करनेवाला पहिला पर्व समाप्त हुवा॥ १ ॥

[द्वितीय पर्व]

संपूर्ण–घाति कर्मशत्रुओंको जिन्होंने पराजित किया है, संसारसमुद्रको जो पार कर चुके हैं ऐसे परम पवित्र वीर अर्थात् महावीर प्रभुकी मैं स्तुति करता हूं ॥१॥

अथानंतर दानद्वारा सारे जगतको आनंदित करनेवाले श्रेणिकमहाराजने गंभीर शब्द करनेवाली आनंदभेरी अतिशय हर्षसे बजवाई। उस भेरीके शब्द सुनकर लोग सजधजकर प्रभुके दर्शनके लिये तैयार हुए। सईसोंने बडे आनंदसे हिनहिनानेवाले तथा हिलते हुए चामरोंसे सुन्दर दिखनेवाले घोडोंपर पलाण रक्खे। महावतोंने दांतोंके आघातसे दिग्गजोंको विदीर्ण करनेवाले

रथिनो रथचक्रेण चक्रेणालंकृतेन च। वाजिवारनिबद्धेन संभेजू राजमन्दिरम् ॥६
याप्ययानस्थिताः केचित्सौरभेयाश्रिताः परे। क्रमेलकसमारूढाः संप्रापुस्तद्गृहाङ्गणम् ॥७
खड्गखेटकसद्धस्ताः कुन्तकोटिकराः परे। केचिच्छक्तिसमासक्ताः पत्तयस्तं प्रपेदिरे ॥८
नर्तक्यो नर्तनोद्युक्ता नटपेटकपूरिताः। नरीनृतति सद्वक्त्रास्तत्पुरः सस्मयाः पराः ॥९
इत्थं समग्रसामग्र्या संगतोऽद्भुतविक्रमः। रेजे राजा रमाधीशो राजराज इवापरः ॥१०
निर्भयेनाभयेनापि वारिषेणसुतेन च। चेलिन्या सह संतस्थे जिनं वन्दितुमीश्वरः ॥११
दन्तावलाद्बलोपेतः संप्राप्य जिनसंनिधिम्। समुत्तीर्य सुवेगेन विवेश समवसृतिम् ॥१२
दर्शं दर्शं दयाधीशं नामं नामं स तत्पदम्। स्थायं स्थायं स्थिरं स्थाने शुश्राव श्रेयसः श्रुतिम्॥१३
समुत्थाय ततो राजा गोतमं गौतमं गुरुम्। गुणाग्रण्यं प्रवन्द्यासावाचष्ट स्म धराधवः ॥१४
भगवन्नमितानेकनराधिप महामुने। आलोकं लोकितार्थस्ते ज्ञानालोको विलोकते ॥१५

हाथियोंको अंबारियोंसे सजाया। जिनमें घोडे जोते गये है, जो सुंदर पहियोंसे शोभायमान हैं ऐसे रथोंपर आरूढ होकर रथी वीर राजमंदिरमें आये। कोई लोग पालकियोंपर, कोई बैलपर और कोई ऊँटपर आरूढ होकर राजमंदिर के आंगनमें आये। कोई वीर अपने हाथमें तरवार और ढाल लेकर, कोई अपने हाथमें भाले लेकर और कोई हाथमें शक्ति नामक शस्त्र लेकर पैदलही वहां पहुंचे। सुंदर मुखवाला, नृत्य करनेमें उत्सुक ऐसा नर्तकीसमूह नटोंसे युक्त हो, श्रेणिक महाराजाके समक्ष सगर्व बारबार नृत्य करता था। अद्भुत पराक्रमी और लक्ष्मीपति महाराजा श्रेणिक इस प्रकारकी सामग्रीसे युक्त होकर मानो दूसरे कुबेरके समान शोभायमान दीखने लगे। चेलना रानीसहित श्रेणिक महाराज, निर्भय अभयकुमार और वारिषेण इन दो पुत्रोंके साथ वीरजिनको वंदना करनेके लिये चले। चतुरंग सेनाके साथ महाराज श्रेणिक प्रभुके पास पहुंचे और उनने हाथीसे उतरकर शीघ्रही समवसरणमें प्रवेश किया ॥२--१२॥ उनने कृपानाथ वीर प्रभुकी छबिका बारबार अवलोकन किया। उनके चरणों की बारबार वन्दना की और बहुत समयतक मनुष्योंकी सभामें बैठकर प्रभुके मुखसे कल्याणकारी उपदेश सुना ॥१३॥ पृथ्वीपति श्रेणिकमहाराजने खडे होकर उत्कृष्ट वाणीके धारक गुणोंसे श्रेष्ठ गौतम गणधरकी वन्दना कर इस प्रकार कहना प्रारंभ किया। "हे भगवन्, अनेक भूपाल आपकी वन्दना करते रहे हैं। हे महामुने, आपका ज्ञानरूपी प्रकाश लोकान्तपर्यन्त संपूर्ण पदार्थोंको प्रकाशित कर रहा है। हे महाज्ञानिन्, आपके लिये कोईभी वस्तु-समूह अगम्य अज्ञेय नहीं है। हे सन्त, आपके ज्ञानसमुद्रमें यह सर्व जगत् जलबिन्दुके समान प्रतीत हो रहा है। हे नाथ, सर्व लोकको प्रकाशित करनेवाली विद्या सदा आपके अधीन है, अर्थात् आप उसके स्वामी हैं। उस विद्यामें-ज्ञानमें यह जगत् सदा गायके खुरसमान ज्ञात हो रहा है। हे प्रभो, मनःपर्ययज्ञानके धारक, बीजबुद्धिके स्वामी, महर्षि, आपकी सब ऋद्धियाँ सर्वदा वर्धमान हो रही हैं।

अगम्यं न हि किंचित्ते वस्तुजालं महामते। त्वज्ज्ञानाब्धौ जगत्सर्वं जलबिन्दूयते यते ॥१६
त्वदायत्ता सदा विद्या सर्वलोकप्रदीपिका। यस्यां सर्वं जगन्नाथ नित्यशो गोष्पदायते ॥१७
ऋद्धयो बुद्धिसंबद्धा महर्षेश्च तवाधिप। बीजबुद्धिं प्रपन्नस्य मनःपर्यययोगिनः ॥१८
पदानुसारिता तेऽद्य परमावधिवेदिनः। सर्वार्थवेदिनी विद्या शोभते गगनेऽर्कवत् ॥१९
सर्वौषधिसमृद्धस्य पररोगापहारिणः। परोपकारिता ते क्व सर्ववाचामगोचरा ॥२०
चारणर्द्ध्या चरश्चारो विहायसि भवान्महान्। अवता जीववृन्दानि क्व न ते परमा दया ॥२१
अक्षीणर्द्धिपदप्राप्तेरियत्ता न च विद्यते। ऋद्धीनां तव ताराणां प्रमाणं गगने यथा ॥२२
द्वापरो द्वापरे काले मम क्व व्यवतिष्ठते। त्वत्प्रसादात्किमाध्मातो वह्निः शोध्यं न शोधयेत् ॥२३
त्वमद्य परमो नाथस्त्वमद्य परमो गुरुः। त्वमद्य शरणं देव त्वमद्य परमो मुनिः ॥२४

एक ही बीजभूत पदार्थको परके उपदेशसे जान कर उस पदके आश्रयसे संपूर्ण श्रुतका ग्रहण करना बीजबुद्धि ऋद्धि है। परमावधिज्ञान के धारक, आपकी पदानुसारिता विद्या संपूर्ण पदार्थोंको जानती हुई आकाशमें सूर्यके समान शोभायमान हो रही है। [जो बुद्धि आदि मध्य अथवा अन्तमें गुरुके उपदेशसे एक बीजपदको ग्रहण करके उपरिम ग्रंथको ग्रहण करती है वह पदानुसारिणी बुद्धि कहलाती है।] हे प्रभो, आप सर्वौषधि ऋद्धिसे संपन्न हैं। दूसरोंके रोग मिटानेवाले आपकी परोपकारिताका कितना वर्णन करें, वह सर्व वचनोंके द्वारा भी अकथनीय है। अर्थात् आपका परोपकार स्वभाव लोकोत्तर है ॥१४-२०॥ हे महापुरुष, आप [1]चारणऋद्धिके प्रभावसे आकाशमें सूर्यके समान गमन करते हैं। आप प्राणिमात्रका रक्षण करनेवाले होनेसे आपकी दया किसपर नहीं है? अर्थात् आप सबपर दयालु हैं। हे प्रभो, आपको अक्षीण ऋद्धि नामकी ऋद्धि प्राप्त होनेसे आपमें श्रेष्ठ ऋद्धियोंकी सीमा नहीं रही जैसे आकाशमें ताराओंकी सीमा नहीं होती है ॥२१-२२॥ हे प्रभो, इस चतुर्थ कालमें आपके प्रसादसे मेरा संशय कहां रहेगा? प्रज्वलित की हुई अग्नि क्या शोधनीय वस्तुके मलका नाश कर उसे शुद्ध नहीं करती है? अर्थात् अग्नि जैसे पदार्थके मलको नष्ट कर उसे निर्मल बनाती हैं उसी प्रकार आप मेरे हृदयका संशय निकालकर उसे निर्मल बनाइये। हे प्रभो, आप हमारे उत्तम हितकारी स्वामी हैं। आप ही हमारे परम गुरु हैं। हे देव, आप हमारे लिये शरण हैं, रक्षक हैं तथा अब आप ही उत्कृष्ट मुनि हैं। प्रभो, आप सर्वज्ञ महावीर के पुत्र हैं। महावीर प्रभु आपके पिता हैं। आप उन के तत्त्वज्ञानरूपी गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। आप सर्वज्ञसदृश हैं अर्थात सर्वज्ञ केवलज्ञानसे चराचरको प्रत्यक्ष जानते हैं और आप श्रुतज्ञानसे परोक्षतया जीवादिक

1 चारणऋद्धिके धारक मुनि आकाशमार्गसे जाते हैं अतः उनसे किसी प्राणिको कुछ भी बाधा नहीं होती है, अतः उनका दयालुत्व गुण बाधारहित निर्दोष रहता है।

सर्वज्ञपुत्र सर्वज्ञदेश्य सर्वज्ञवत्सल। त्वत्तः सर्वं बुभुत्सेऽहं नानालोकहितावहम् ॥२५
प्रसीद पुरुषश्रेष्ठ दयां कुरु दयापर। चरितं श्रोतुमिच्छामि पाण्डवानां कुरूद्भुवाम् ॥२६
पाण्डवाः कौरवाः ख्याताः क्षितौ क्षितिपसेविताः। कस्मिन्वंशे समुत्पन्ना वदेति च विदांवर॥२७
कुर्वन्वयसमुत्पत्तिर्युगे कस्मिन्नजायत। के के नराश्च संजातास्तद्वंशे वसुधातले ॥२८
के के तीर्थकरास्तीर्थ्याः सुतीर्थपथपण्डिताः। के के च चक्रिणो वंशे कुरूणां गुणगौरवे॥ २९
नाथात्र श्रूयते शास्त्रे परकीये कथान्तरम्। तद्वन्ध्यासुतसौरूप्यवर्णनाभं विभाति मे ॥३०
तथा हि शान्तनो राजा युद्धार्थं क्वापि यातवान्। तत्र स्थितः स्वकामिन्या रजःकालं विवेद सः ॥३१
स्वरेतो रतिदानाय निषिच्य ताम्रभाजने। संमुद्य तत्स भूमीशो बबन्ध श्येनकन्धरे ॥३२
स पत्री प्रेषितस्तेन स्वजायां प्रति सत्वरम्। अटन्पथि समायासीद्गङ्गोपरि सुलीलया ॥३३
तत्रान्यः श्येनको मार्गे दृष्ट्वा तं पत्रिणं रुषा। आयान्तं पातयामास छित्त्वा सुयुध्य ताम्रकम्॥३४
मत्सीमुखेऽपतत्तच्च सरेतः स्थितिमाप च। पुनस्तज्जठरे गर्भो बभूव तत ऊर्जितः ॥३५

सकल वस्तु जानते हैं। इसलिये आपको सर्वज्ञदेश्य अर्थात् श्रुतकेवली कहते हैं। आप सर्वज्ञ तथा दयालु हैं। हे प्रभो, आपसे नाना जीवोंका हित करनेवाले सर्व विषय जाननेकी मेरी इच्छा है। हे पुरुषश्रेष्ठ, आप प्रसन्न हूजिये, और हे दयातत्पर, मुझपर दया कीजिये। कुरुवंशमें उत्पन्न हुए पाण्डवोंका चरित्र सुननेकी मेरी इच्छा है ॥ २३-२६ ॥ हे विद्वच्छ्रेष्ठ, राजगण जिनकी सेवा करता था, जो इस संसारमें प्रसिद्ध थे ऐसे पाण्डव और कौरव किस वंशमें उत्पन्न हुए थे सो कहिये। कुरुवंशकी उत्पत्ति किस युगमें हो गयी ? इस भूतलपर उनके वंशमें किन किन पुरुषोंने जन्म लिया ? गुणोंसे महनीय ऐसे कुरुवंशमें कौन कौनसे पूज्य-तीर्थ-मार्ग दिखानेमें पण्डित और तीर्थके हित करनेवाले तीर्थकरोंका जन्म हुआ ? और कौन कौनसे चक्रवर्ती उत्पन्न हुए ? ॥ २७-२९ ॥

[अन्यमतीय पुराणोंमें पांडवोंकी कथा] हे नाथ, अन्यमतके शास्त्रमें पाण्डवोंकी जो जैन मतसे भिन्न कथा सुनी जाती है, वह मुझे वंध्यापुत्रकी सुन्दरताके वर्णनके समान दीखती है। अन्य मतकी कथा इस प्रकार है-शांतनु राजा युद्धार्थ कहीं गया था। वहां उसे अपनी पत्नीके ऋतुकालकी याद आ गई। उसने एक तांबेके कलशमें रतिदानके लिये अपना वीर्य रख दिया, तथा उसका मुँह बंद कर वह बाजके गले बांध दिया और उस पक्षीको अपने पत्नीके पास शीघ्र भेज दिया। वह पक्षी जाता हुआ मार्गमें लीलासे गंगानदीपर आगया। वहां मार्गमें दूसरे बाज पक्षीने उसे आते हुए देख क्रोधसे उसके साथ युद्ध कर उसके गलेका तांबेका कलश तोडकर नदीमें गिराया ॥ ३०-३४ ॥ वीर्यसे भरा हुआ वह कलश मछलीके मुहमें गिरकर उसके पेटमें चला गया और उसे गर्भ हुआ,

स्त्रीत्वं गतस्तदा भ्रूणः पूर्णे मासि कदाचन। मात्सिकेन च सा मत्सी दृष्टा लब्धा विदारिता॥३६
ततस्तज्जठरात्तूर्णं निर्गता मत्स्यगन्धिका। मत्स्यगन्धाख्यया ख्याता नारी पूतिकलेवरा ॥३७
दौर्गन्ध्याद्धीवरेणैषा गङ्गाकूले निवासिता। द्रोणीवाहनकृत्येन जीविता यौवनोन्नता ॥३८
कदाचिदृषिणा पारासरेणं नावि संस्थिता। सा संगं संगिता भेजे भ्रूणं कर्मवशाल्लघु ॥३९
तेन योजनगन्धा सा दीर्घेणानेहसा कृता। सुतं व्यासाभिधं जज्ञे रूपिणं नयकोविदम् ॥४०
जन्मानन्तरतस्तूर्णं व्यासो वेदाङ्गपारगः। जनकान्तिकमापासौ तपोऽर्थं तपसावृतः ॥४१
शान्तवेन सुशान्तेन दृष्ट्वा योजनगन्धिका। उपयेमे सुतौ लेभे सा चित्रं च विचित्रकम्॥४२
शान्तनोश्च सुवीर्येण जाता सा सुततामगात्। पुनर्विवाह्य सा तेन सुता जाया कथं कृता॥४३
तौ च चित्रविचित्राख्यौ प्राप्तपाणिप्रपीडनौ। मृते ताते‌ऽथ संप्राप्तराज्यौ तौ मृतिमापतुः॥४४

तबसे वह गर्भ बढ़ता गया। उस समय नौ महिने पूर्ण होनेपर वह गर्भ स्त्रीत्वको प्राप्त हुआ। किसी धीवरने उस मछली को देखा, पकड लिया और चीर डाला। तब उसके पेटसे मत्स्यके समान दुर्गन्ध शरीरको धारण करनेवाली 'मत्स्यगन्धा' नामसे प्रसिद्ध बालिका निकली। दुर्गन्धा होनेके कारण धीवरने गंगाके किनारेपर उसका निवास करा दिया। वहां वह नौका चला कर उदरनिर्वाह करने लगी। कुछ काल बीतनेपर वह तरुणी हो गई ॥ ३५--३८ ॥ एक दिन नौकामें रहनेवाली उस कन्याके साथ पाराशर ऋषिका सम्बन्ध हुआ। दैवयोगसे वह गर्भवती हो गई, उसे पाराशर ऋषीने बहुत दिनों बाद योजनगंधा बनाया अर्थात् उसका शरीर एक योजन तक सुगन्ध फैलाने वाला बनवाया। योजनगंधाने 'व्यास' नामक सुंदर और नीतिनिपुण पुत्रको जन्म दिया। जन्मके अनन्तर वेदाङ्गोंमें निपुण, तपोयुक्त वह व्यास तपके लिये अपने पिताके पास चला गया ॥ ३९--४१ ॥

[शान्तन राजाके साथ योजनगंधाका विवाह] अतिशय शान्त स्वभावी शान्तन राजाने एक दिन योजनगन्धाको देखा और उसके साथ उसने विवाह किया। उससे योजनगंधाके चित्र और विचित्र नामके दो पुत्र हुए। शांतनके वीर्यसे ही यह योजनगंधा उत्पन्न हुई थी। अतएव यह शांतनकी पुत्री हुई, फिर उसे राजाने किस तरह अपनी पत्नी बना लिया? चित्र विचित्र राजकुमारोंका विवाह हुआ, वे दोनों पिताका देहान्त होनेपर राज्य पालन करने लगे और कुछ कालके बाद उनकी मृत्यु

१ स. पाराशरेण।

राज्यस्थित्यर्थमानीतो व्यासो योजनगन्धया। राज्यस्य स्थितये तेन गर्ह्यं कर्म समांवृतम्[1] ॥४५
धृतराष्ट्रस्य चोत्पत्तिरन्धस्य व्यासतः कथम्। पाण्डोः कुष्ठाभिभूतस्य चोत्पत्तिस्तत एव हि॥४६
विदुरस्य पुनस्तस्मादुत्पत्तिः श्रूयते प्रभो। चित्रस्य च विचित्रस्य भार्यासु रक्तमानसात्॥४७
गान्धारी गदिता साध्वी शतसंख्यैरजैः समम्। विवाह्य मारितैः पित्रा यदुवंशोद्भवेन च ॥४८
ते स्तभा मृतिमापन्ना भूतीभूतास्तया समम्। भोगसंयोगरङ्गाढ्या जातास्तत्कथमुच्यताम् ॥४९
ततस्तस्यां सुगर्भाणामुत्पत्तिः श्रूयते कथम्। देवैर्मनुष्यनारीणां संगमः किमु जायते ॥५०
गर्भोत्पत्तिस्ततस्तस्याः संजाताकर्ण्यते प्रभो। अपूर्णे मासि गर्भाणां तेषां पातः समाभवत्॥५१
पतन्तस्ते पुनर्गर्भाः कर्पासे विनियोजिताः। रक्षितास्ते पुनः पूर्णे मासि पूर्णत्वमागताः ॥५२
दुर्योधनादयो जाताः कौरवास्ते महोन्नताः। गान्धार्या धृतराष्ट्रेण पुनर्विवाहमङ्गलम् ॥५३

. . . .

होगई। राज्यकी स्थितिके लिये योजनगंधाने व्यासको बुलाया। उसने राज्यकी स्थितिके लिये निन्द्य कर्म किया ॥ ४२-४५ ॥

[धृतराष्ट्रकी उत्पत्तिपर विचार] हे प्रभो, अंध धृतराष्ट्रकी उत्पत्ति व्याससे कैसी हो गई? तथा कुष्ठरोगसे पीडित पाण्डुराजाकी भी उत्पत्ति उससे ही कैसे हुई? और विदुरका भी जन्म उससे ही हुआ सुना जाता है। व्यासजी चित्र और विचित्र राजाओंकी भार्याओंमें आसक्त होकर उसने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ये तीन पुत्र उत्पन्न किये, क्या यह सत्य है? (चित्र और विचित्र की अंबा, अंबिका और अंबालिका ये तीन पत्नियां थीं। व्यासके संबंधसे उनसे क्रमशः धृतराष्ट्र आदि पैदा हुये ऐसा परमतका पुराणार्थ है) ॥ ४६-४७ ॥

[अन्यमतमें दुर्योधनादिकोंकी उत्पत्ति के विषयमें कथा] गांधारी साध्वी कही जाती है। यदुवंशमें उत्पन्न हुए गांधारीके पिताने गांधारीका विवाह सौ बकरोंके साथ किया और बाद वे बकरे जब यज्ञमें मारे गए तब वे भूत (देव) होकर उसके साथ भोगरंगमें तत्पर हो गये। यह वृत्त भी कहांतक सत्य समझना चाहिये? सुना जाता है, कि उनसे गांधारीमें गर्भोत्पत्ति हुई। क्या देवोंके साथ मनुष्य स्त्रियोंका संबंध होता है? क्या देवोंसे --(भूतोंसे) गर्भोत्पत्ति होती है? अपूर्ण महिनोंहीमें वे गर्भ गिर गये तब वे गर्भ कपासमें रख दिये और उनका रक्षण किया। पूर्ण महिने होनेपर वे गर्भ पूर्ण हुए और वे महा उन्नतिशाली कौरव हुये। गांधारीका पुनर्विवाहमंगल गोलैक[2]

१ अ समाहृतम्। २ विधवाके संतानको गोलक कहते है।

गोलकेन समं भाति चैतत्खपुष्पवर्णनम् । एनं पुराणपन्थानं कथं लोका हि मन्वते ॥५४
पाण्डुना गोलकेनापि श्वेतकुष्ठेन कुष्ठिना । कुन्ती मद्री च संप्राप्ता विवाहवरमङ्गलम् ॥५५
एकदा वरनारीभ्यां पाण्डुराखण्डलोपमः । मृगयायां मृगादीनां मारणाय वनेऽगमत् ॥५६
ते सज्जनाः सदा सन्तः सर्वजीवदयापराः । मृगयायां मृगान्घ्नन्ति चैतत्किं सांप्रतं प्रभो ॥५७
मृगीभूय वने तत्र तापसद्वन्द्वमुत्तमम् । सुरतक्रीडनासक्तं जघान पाण्डुपण्डितः ॥५८
मृगत्वे हि मनुष्याणां योग्यता जायते कथम् । मृगादिमारणं राज्ञो धार्मिकस्य कथं भवेत् ॥५९
बाणेनापि मृगो विद्धो नृपेण मृतिमाप च । सुरती तत्स्त्रिया दत्तः शापो राज्ञ इति ध्रुवम् ॥६०
मन्नाथवत्तवापि स्याद्युवतीसंगमक्षणे । मृतिः कष्टेति संलब्धशापो भूपो बभूव च ॥६१
कुन्त्या कर्णेन संलब्धः कर्णः किं सूर्यसंगतः । नराः कर्णोद्भवा नाथ नेक्षिताश्च क्षितौ क्वचित् ॥६२
ततः कुन्ती सुधर्मेण सुरतासक्तमानसा । दधे गर्भं ततो लेभे युधिष्ठिरतनूद्भवम् ॥६३

भूतगप्तके साथ हुआ । हे प्रभो, यह सब वर्णन आकाशपुष्पके समान मिथ्या दिखता है । इस प्रकारके असत्य पुराणमार्गको लोग कैसे मान रहे हैं ? यह आश्चर्य की बात है ॥ ४८–५४ ॥

[पाण्डवोंकी उत्पत्तिकी अन्यमतमें विचित्र कथा] श्वेतकुष्ठसे कुष्ठी और गोलक पाण्डु राजाके साथ कुन्ती और मद्रीका विवाह हुआ । किसी समय इन्द्रके समान वैभवशाली पाण्डु राजा अपनी दो सुंदर पत्नियोंके साथ वनमें हरिणादिक पशुओंकी शिकार करनेके लिये गया था । हे प्रभो, पाण्डु आदिक भूपाल हमेशा सर्व प्राणियोंपर दया करनेवाले थे परन्तु वे शिकारमें हरिणादिक पशुओंको मारते थे यह वर्णन क्या योग्य है ? उस समय वनमें ऋषि और उसकी पत्नी हरिण और हरिणीका रूप धारण कर सुरतक्रीडा करनेमें आसक्त हुए थे । उनको देखकर विद्वान् पाण्डु राजाने उन दोनोंको मार डाला । हे प्रभो, मनुष्योंमें मृगरूप धारण करनेकी योग्यता कैसी ? तथा धार्मिक राजा मृगादिकों को कैसे मारेगा ? सुरतक्रीडा करनेवाला हरिण राजाके बाणसे विद्ध हुआ, इससे वह मर गया । " हे राजन्, मेरे पतिके समान तुम भी अपनी स्त्रीके साथ संभोग करते समय मरण करोगे । इस प्रकार उस हरिणीके द्वारा राजाको शाप प्राप्त हुआ ॥ ५५–६१ ॥

[अन्यमतमें कर्णादिकोंकी उत्पत्ति कथा] क्या सूर्यके संगमसे कुन्तीको कानसे कर्णकी प्राप्ति हुई ? हे नाथ, मनुष्योंकी उत्पत्ति कानसे होती हुई इस भूतल पर कहीं भी किसीने नहीं देखी है ? तदनन्तर कुन्ती सुधर्म नामक देवके साथ सुरत करनेमें आसक्त हो गई; तब उसे गर्भधारणा हुई और उसने युधिष्ठिर नामक पुत्रको जन्म दिया । वायुने कुन्तीके साथ संभोग किया, तब भयरहित भीम पैदा हुआ । इन्द्रके साथ मैथुन करनेसे कुंतीको चान्दीके समान शुभ्र अर्जुन नामक पुत्र प्राप्त

वायुना जनिता कुन्ती लेभे भीमं भयातिगम् । मघोना मैथुनं प्राप्तार्जुनं चार्जुनसत्प्रभम् ॥६४
मद्री सन्मुद्रया युक्ता याश्विनेयसुरश्रिता । नकुलं सहदेवं च सा लेभे सद्गुणौ सुतौ ॥६५
कुण्डाश्च पाण्डवाः स्वामिन् संबोभुवति भूतले । कथं सत्पुरुषाणां च समुत्पत्तिर्वदेदृशी ॥६६
भीमो महाबली बुद्धः प्रज्ञापारमितः कथम् । दशमान्यकमाभुङ्क्ते स्वल्पाहारो महान्यतः॥६७
गङ्गायाः सरितो जातो गाङ्गेयः कथमुच्यते । यदि नद्या मनुष्याणामुत्पत्तिः किं नराम्बया॥६८
द्रौपदी रूपभूषाढ्या साध्वी शीलव्रतान्विता । पञ्चापि पाण्डवान्भ्रातॄन्कथं सेवेत सेवनी ॥६९
यदा युधिष्ठिरासक्ता सान्यान्सर्वांश्च पाण्डवान् । देवरान्सुतसंतुल्यान्कथं भुङ्क्ते पुनः शुभा॥७०
यदान्यपाण्डवासक्ता पुनर्ज्येष्ठं युधिष्ठिरम् । पितृप्रायं कथं नित्यं भुङ्क्ते साहो विडम्बना॥७१
एतत्सर्वं मुने भाति सिकतापीडनोपमम् । तैलार्थं च घृतार्थं वा यथा सलिलमन्थनम् ॥७२

हुआ ॥ ६२–६४ ॥ उत्तम मुद्रावाली मद्रीने अश्विनीकुमार देवका आश्रय लिया अर्थात् उसके साथ उसने संभोग किया जिससे उसे नकुल और सहदेव ये दो सद्गुणी पुत्र प्राप्त हुए । इस तरह ये पांचों पाण्डव कुण्ड हुए अर्थात् कुन्ती और मद्रीका पति पण्डुराज विद्यमान होते हुए भी धर्म-राजादिकोंकी उत्पत्ति यम, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारसे हुई है अर्थात् सधवा अवस्था होनेपर भी जारसे पाण्डवोंकी उत्पत्ति हुई, अतः वे इस भूतलपर 'कुण्ड' (अमृते जारजः कुण्डः) कह-लाये । आपही कहिए कि सत्पुरुषोंकी इस तरह अयोग्य उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? ॥६५-६६॥ भीम महाबलवान् और समझदार था । वह बुद्धिका समुद्र था । उसका आहार अल्प था । परन्तु वह प्रति दिन दस मन प्रमाण अन्न खाता था, यह किंवदन्ती कैसे फैली ? गंगानदीसे गाङ्गेय उत्पन्न हुआ ऐसा क्यों कहा जाता है ? यदि मनुष्योंकी उत्पत्ति नदीसे होने लगी तो मनुष्यस्त्रीसे क्या प्रयोजन है अर्थात् मातापिताके विना पुत्र कन्यादिक होने लगेंगे ॥ ६७–६८ ॥ द्रौपदी सौन्दर्य व अलंकारोंसे भूषित थी । वह पतिव्रता अर्थात् शीलव्रतधारक थी । वह युधिष्ठिर आदि पांच पाण्डवोंके साथ कैसे कामसेवन करेगी ? जब वह युधिष्ठिरमें आसक्त होती थी तब अन्य सब पाण्डव उसके छोटे देवर बन चुके और छोटे देवर पुत्रके समान होते हैं। उनके साथ वह साध्वी कैसे सुरतानुभव करेगी ? तथा जब वह अन्य पाण्डवोंमें आसक्त होती है तब ज्येष्ठ युधिष्ठिर उसके पिताके समान हुए उनके साथ वह हमेशा सुरतसुख कैसे भोगती थी ? ओह ! यह सब वर्णन साध्वियोंकी विडम्बना है ॥ ६९–७१ ॥ यह सब कथन हे प्रभो ! तेलके लिये वालूको पेलनेके समान है तथा घीके लिये जलमंथन करनेके समान है । अंकुरके लिये शिलापर बीज बोनेके

१ स वायुना संगता ।

शिलायां वापनं बीजरोहणार्थं वरं न हि । तथा परपुराणार्थो नाथ नार्थी भवेल्लघु ॥७३
गाङ्गेयस्य च माहात्म्यं गाङ्गेयसमसत्प्रभम् । द्रोणाचार्यबलाख्यानं ख्याहि भीमपराक्रमम्॥७४
हरिवंशसमुत्पत्तिं द्वारावतीनिवेशनम् । हरेर्नेमेर्बलाख्यानं जरासन्धविनाशनम् ॥७५
कुरूणां पाण्डुपुत्राणां वैरं वैरस्य कारणम् । विदेशगमनं पाण्डुपुत्राणां पुनरागमम् ॥७६
द्रौपदीहरणं चैवावाचीदिङ्मथुरास्थितिम् । विष्णोश्च मरणे तेषामागमं नेमिसंनिधौ ॥७७
अटनं झटिति प्रायः पूर्वसर्वभवोद्भवम् । वर्णनं द्रौपदीपञ्चभर्तृलाञ्छनकालिकाम् ॥७८
दीक्षणं पाण्डुपुत्राणां शत्रुंजयसमागमम् । परीषहजयाख्यानं त्रयाणां केवलोद्गमम् ॥७९
निर्वाणार्थपथप्राप्तिं पञ्चानुत्तरवासिताम् । द्वयोरेतत्समाख्याहि सर्वं सार्व शिवोद्यत ॥८०
इतीमां नृपतेः प्रश्नमालां संशीतिनाशिनीम् । सर्वजीवहितोद्युक्तां श्रुत्वा प्रोवाच सद्गणी ॥८१
तद्भाषाजलदो भव्यसस्यान्सिञ्चंश्च नर्तयन् । जजृम्भे जिततापार्तिः परमः शिष्यबर्हिणः ॥८२
तद्दन्तज्योत्स्नया सर्वान्भव्यान्सच्छुभसंगतान्।क्षालयन्स चकास्ति स्म क्षालिताशेषकिल्बिषः॥८३
तेजसा सोऽपरं पीठं कुर्वन्सत्तेजसा वृतः । चकासे चेतनारूढः प्ररूढगुणसंपदः ॥८४

समान है । हे नाथ, परपुराणोंका यह सब अभिप्राय अर्थवान् नहीं है अर्थात् निष्प्रयोजन अनर्थका हेतु है ॥ ७२-७३ ॥

[श्रेणिक राजाने गौतम गणधरसे जिन विषयोंमें प्रश्न पूछे उनका विवरण ।] हे गणाधीश, गांगेयका सुवर्णके समान उज्ज्वल माहात्म्य कहिये । द्रोणाचार्यका बल और भीमका पराक्रम कहिये । हरिवंशकी उत्पत्ति, द्वारावतीकी रचना, श्रीकृष्ण और नेमिप्रभुका बलवर्णन तथा जरासंधका युद्धमें नाश, कौरव और पाण्डवोंका वैर तथा उसका कारण, पाण्डुपुत्रोंका विदेशमें गमन तथा पुनरागमन; द्रौपदीहरण, दक्षिण दिशाकी मथुरामें पांडवोंका वास, श्रीकृष्णके मरणसे पाण्डवोंका वनमें आगमन, तदनंतर नेमिनाथ स्वामीके समीप आना, उनसे अपने पूर्वभवोंका श्रवण, द्रौपदीके पांच पतियोंकी पत्नी होनेरूप अपवादके कारणका वर्णन, पांडवोंका दीक्षा लेकर शत्रुंजय पर्वतपर आगमन, परीषहजयका वर्णन और तीन पाण्डवोंको केवलज्ञानका होना और निर्वाण प्राप्त करना, नकुल और सहदेवका पंचानुत्तरविमानमें उत्पन्न होना, हे लोकहित करनेवाले तथा मोक्षोद्यत प्रभो, यह सर्व मुझे कहिये । इस प्रकारकी राजाकी प्रश्नमाला सुनकर गौतम गणधर संशय दूर करनेवाली, सर्व जीवोंका हित करनेमें उद्युक्त ऐसी वाणी बोलने लगे ॥ ७४-८१ ॥ उनका उत्तम उपदेशरूपी मेघ भव्यजनरूपी धान्योंको सींचता हुआ, शिष्यरूपी मोरोंको नचाता हुआ, दुःखरूपी तापको नष्ट करके वृद्धिंगत हुआ । उस समय वे पुण्यवान् अपने दांतोंकी शुभ्र किरणोंसे संपूर्ण सभ्यजनोंको स्नान कराते तथा संपूर्ण पापोंको धोते हुए शोभने लगे ॥ ८२-८३ ॥ उत्कृष्ट तेजोमंडलसे घिरे हुए, मतिज्ञानादिक चार ज्ञानोंके धारक,

समीपस्थाः सुशिष्याश्च श्रुत्वा तं प्रश्नमुत्तमम् । हर्षोत्कण्ठितसर्वाङ्गा अजायन्ताप्तसत्क्षणाः॥८५
अभाषन्त तदा सर्वे ऋषयः सुरसत्तमाः । तत्पुराणं प्रसिद्धार्थमिच्छन्तः श्रोतुमञ्जसा ॥८६
राजन्मगधनीवृत्य नाशिताशेषशात्रव । सद्दृष्टे मिष्टवाक्यौघ भविष्यत्तीर्थकारक ॥८७
अनुयोगः कृतो यस्तु त्वया सद्दृष्टिचेतसा। सोऽस्माकं प्रीतिदः पुण्यपाकोद्भूतिसुकारकः ॥८८
अस्माकं मतमेतद्धि पुराणार्थोद्यतात्मनाम् । यत्पुराणनराणां भो पुराणं श्रूयते शुभम् ॥८९
अस्माकं संशयध्वान्तध्वंसाद्भानायसे नृप । गुणगौरवदानेन गुरूणां त्वं गुरूयसे ॥९०
हितकृच्च हितार्थानां प्रश्नात्त्वं सर्वदेहिनाम् । मिथ्यारोगविनाशेन सदा वैद्यायसे स्फुटम्॥९१
पाण्डवानां पुराणार्थं श्रोतुकामा वयं पुरा । स एव भवता पृष्टः केषां हर्षाय नो भवेत् ॥९२
पुराणश्रवणाच्छ्रेयः श्रूयते जिनशासने । त्वत्तस्तच्छ्रवणं नूनं भविता भवनाशनम् ॥९३
भरताद्याः पुरा जाता भारते भरतेश्वराः । पुराणश्रवणात्प्राप्ता देशावधिमहाविदम् ॥९४
विष्णुर्नेमिसभायां च पुराणं पुण्यदेहिनाम् । आकर्ण्याशु बबन्धात्र तीर्थकृत्त्वं सुतीर्थकृत् ॥९५

गुणोंकी संपत्ति जिनको प्राप्त हुई है अर्थात् असंख्यात गुणोंको धारण करनेवाले श्रीगौतम गणधर अपने तेजसे मानो दूसरा सिंहासन ही रचा है ऐसे शोभने लगे । श्रीगौतम-गणधरके समीप रहनेवाले शिष्योंने श्रेणिकका उत्तम प्रश्न सुना । उससे उनका सर्वाङ्ग हर्षसे रोमाञ्चित हुआ । तथा अपना अभिप्राय व्यक्त करनेके लिये उनको योग्य अवसर मिला । पाण्डवोंके पुराणप्रसिद्ध अर्थको परमार्थरूपसे सुननेकी इच्छा करनेवाले सर्व ऋषि और श्रेष्ठ देव इसप्रकार कहने लगे ॥ ८४-८६ ॥ हे राजन्, हे मगधाधिपते, आपने सब शत्रु नष्ट किये हैं । आप सम्यग्दृष्टि, मिष्टभाषी और भविष्यत्कालमें तीर्थंकर होनेवाले हैं । हे राजन्, सम्यग्दर्शनयुक्त हृदयसे जो प्रश्न किया है वह अतिशय आनंदित करनेवाला है और पुण्यके फलको प्रगट करनेवाला है। हे राजन्, पुराणार्थ सुननेको हम उत्कण्ठित हुए हैं । अब हमारी त्रिषष्टिलक्षण--पुण्यपुरुषोंका शुभ पुराण सुननेकी आकांक्षा है । राजन्, अब हमारा संशयान्धकार नष्ट करनेके लिये आप सूर्यसदृश हैं। आप गुणोंका गौरव करनेवाले होनेसे गुरुओंके भी गुरु हैं। हितकर पदार्थके विषयमें आपका प्रश्न होनेसे आप सर्व प्राणियोंका हित करनेवाले हैं। तथा मिथ्यात्वरोगका नाश करनेसे आप सदा वैद्यके समान प्रतीत होते हैं । पाण्डवोंके पुराणका अर्थ हम सुनना चाहते थे अर्थात् आपके प्रश्नके पूर्व ही पाण्डवोंके पुराणार्थ--श्रवणकी हमारी इच्छा हुई थी और आपने वही पुराणार्थ-श्रवण करनेका प्रश्न गणनायकसे पूछा । अतः आपका यह प्रश्न किसको हर्षयुक्त नहीं करेगा ? ॥ ८७–९२ ॥ हमने जिनशासनमें, पुराणश्रवणसे हितप्राप्ति होती है, ऐसा सुना है । अब आपके निमित्तसे पुराणका श्रवण हमारे संसारनाशका हेतु बन जायगा । इस भरतक्षेत्रमें पूर्वकालमें भरतादिक संपूर्ण भरतके अधिपति हुए हैं । पुराणके श्रवणसे उनको

**त्वमपि प्राप्य वीरेशं निशम्यागमसत्कथाम् । भविताऽत्र महापद्मः प्रथमस्तीर्थनायकः ॥९६
अत एव पुराणार्थं पावनं त्वत्प्रसादतः । श्रोष्यामः सिद्धये सत्यं गुणिसंगाद् गुणो भवेत्॥९७
अगण्यगुणगौरत्वं वात्सल्यं जिनशासने । साधर्मिकमहास्नेहो विद्यते भूपते त्वयि ॥९८
त्वत्समो न गुणी भूपो दृष्टो नैव च दृश्यते । गुणज्ञता जगत्पूज्या गुणी सर्वत्र मान्यते ॥९९
इति प्रशंसयामासुर्भूपालं ते महर्षयः । मणिवद् गुणतो मान्यो महतां लघुरप्यहो ॥१००
ततो गम्भीरया वाचा वाग्मी विद्वज्जनैर्नुतः । गौतमो गणभृद्रम्यो जगाद जगतां गुरुः॥१०१
साधु साधु त्वया पृष्टं श्रेणिक श्रुतिकोविद । व्याख्यास्यामि क्षितौ ख्यातं यत्पृष्टं तत्समासतः १०२
भरतेऽत्र महीपाल भोगभूमिस्थितिक्षये । पल्यस्य चाष्टमे भागे तृतीयस्याप्यनेहसः ॥ १०३
उध्दृते मनवो जाताश्चतुर्दश दिगीश्वराः । अनेककुलकर्तारः कलाकलापकोविदाः ॥१०४
प्रतिश्रुत्प्रथमस्तत्र सन्मतिर्द्वितीयो मतः । क्षेमंकरः क्षेमधरः सीम्नः करधरौ स्मृतौ ॥१०५**

देशावधिनामक महाज्ञान प्राप्त हुआ था। श्रीकृष्णने नेमिप्रभुकी सभामें त्रिषष्टि-शलाका-पुण्यपुरुषोंके चरित्र सुनकर शीघ्रही तीर्थकरप्रकृतिका बंध कर लिया था। अब वे भविष्यकालमें तीर्थकर होंगे। हे श्रेणिक, श्रीवीर भगवान् को प्राप्त कर और आगमकी शुभकथा सुनकर आप भी इस भरतक्षेत्रमें महापद्म नामके पहिले तीर्थनायक होंगे। इसलिये तुम्हारे प्रसादसे मोक्षप्राप्तिके लिये हम पवित्र पुराणार्थ सुनेंगे। गुणियोंकी संगतिसे गुण उत्पन्न होते हैं यह सत्य है। हे राजन् आपमें गणनारहित गुणोंका प्राधान्य है अर्थात् आपमें असंख्यात प्रधान गुण निवास करते हैं। आपमें जिनशासनका वात्सल्य है। साधर्मियोंके प्रति महास्नेह है। हे राजन्, आपके समान गुणवान् राजा न देखा गया है और न दिखताही है, क्योंकि आपमें विश्ववंद्य गुणज्ञता है अर्थात् आप गुणोंको जाननवाले हैं। गुणी सर्वत्र पूज्य होता है। इस प्रकार उन महर्षियोंने महाराज श्रेणिककी प्रशंसा की; जैसे छोटासाभी मणि गुणोंसे बडोंको भी मान्य होता है, वैसे हे राजन् आप लघु होते हुये भी गुणोंसे बडोंको मान्य हुए हैं॥ ९३–१०० ॥ इसके अनंतर महान् वक्ता विद्वज्जनोंके द्वारा स्तुत्य, भव्यजन रक्षक और जगत्के गुरु गौतम गणधर गंभीर वाणीसे इस प्रकार कहने लगे। हे शास्त्रनिपुण श्रेणिक, तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। जो तुमने पूछा है उस जगत्प्रसिद्ध बातका मैं संक्षेपसे व्याख्यान करूंगा ॥१०१–१०२॥

[गौतम गणधर भोगभूमिके कालका वर्णन करते हैं।] हे राजन्, इस भरतक्षेत्रमें भोगभूमिकी स्थिति नष्ट होनेके समय तृतीयकालमें पल्यका आठवां भाग शेष रहनेपर अनेक कुलोंके कर्ता, कलासमूहके ज्ञाता, दश दिशाओंके स्वामी चौदह मनु क्रमसे उत्पन्न हुए। उनमें पहिले मनु प्रतिश्रुत्, दूसरे सन्मति, तीसरे क्षेमंकर, चौथे क्षेमन्धर, इस क्रमसे सीमंकर, सीमन्धर, विपुलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वी, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, मरुदेव तथा तेरहवे मनु प्रसेनजित हुए

विपुलाद्वाहनश्चक्षुष्मान्यशस्व्यभिचन्द्रकः । चन्द्राभो मरुदेवश्च प्रसेनजित्त्रयोदशः ॥१०६
चतुर्दशस्तु नाभीश एते कुलकरा मताः । हा मा धिकारदण्डैश्च स्वपदापन्निवारकाः ॥१०७
नाभिना मरुदेवी च संप्राप्ता पाणिपीडनम् । तदेन्द्रेण सुवासार्थमयोध्यापूस्तयोः कृता ॥१०८
इन्द्राज्ञया जिनेशेऽत्रावतरिष्यति वर्षणम् । षण्मासे किन्नरेशानो रत्नानां विदधे वरम् ॥१०९
सर्वार्थसिद्धितो देवश्च्युत आषाढकृष्णके । द्वितीयायां तदा गर्भे दधे देवीसुशोधिते ॥११०
षट्पञ्चाशत्कुमारीभिः सेव्यमाना मुहुर्मुहुः । गर्भेण शुशुभे सापि मणिनाकरभूमिवत् ॥१११
नवमासेष्वतीतेषु सा सूते स्म सुतं शुभम् । चैत्रकृष्णनवम्यां तु शुक्तिका मौक्तिकं यथा॥११२
जातमात्रः सुरेन्द्राणां कम्पयामास सज्जिनः। विष्टराणि न को वेत्ति महतां चरितं भुवि॥११३
तज्जन्मक्षणसंक्षुब्धाः क्षणेन जिष्णवोऽखिलाः। आगत्य जन्मकल्याणं विदधुर्धृतिमागताः॥११४
इन्द्र ऐरावणारूढो नानासुरसमन्वितः । स्थित्वा नाभ्यालयद्वारि वरिष्ठारिष्टसद्मनि ॥ ११५
शचीं शुचिसमाकारां प्रेषयामास मानिताम् । जिनं गुणघनं कम्रं समानेतुं स्वभक्तितः॥११६
जिष्णुजाया गता तत्र प्रच्छन्नाङ्गी जिनेश्वरम्। शयनीये समालोक्य निजाम्बासहितं नता ११७

इसके अनंतर चौदहवें मनु नाभिराजा हुए। इनको कुलकर भी कहते हैं। इन्होंने हा, मा, और धिक्कार ऐसे शब्दोंका दण्डरूपमें प्रयोग करके लोगोंकी आपत्ति दूर की थी ॥ ३-७ ॥

[इन्द्रके द्वारा अयोध्याकी रचना और आदि भगवानका जन्म ।] नाभिराजाने मरुदेवीके साथ विवाह किया। उस समय इन्द्रने उन दोनोंके रहनेके लिये अयोध्यानगरीकी रचना की। छह महीनोंके अनंतर आदिभगवान् अवतार लेंगे, यह जानकर इंद्रकी आज्ञासे कुबेरने रत्नोंकी सुन्दर वृष्टि करना प्रारंभ किया ॥८-९॥ आषाढ कृष्ण द्वितीयाके दिन सर्वार्थसिध्दिसे चय करनेवाले अहमिन्द्र देवको, देवियोंसे सुशोभित गर्भमें मरुदेवी माताने धारण किया। छप्पन दिक्कुमारियोंके-द्वारा बारबार सेवित वह माता मरुदेवी भी मणियोंसे सुशोभित खदानकी तरह शोभने लगी। जैसे सीप मोतीको जन्म देती है वैसे नवमास पूर्ण होनेपर शुभ पुत्रको मरुदेवी माताने जन्म दिया ॥ ॥१०-११ ॥ जन्मके अनन्तरही जिनेश्वरके प्रभावसे देवेन्द्रोंके सिंहासन कम्पित हुए। महापुरुषके चरित्रको भूतलमें भला कौन नहीं जानता है? प्रभुके जन्मसमयमें क्षुब्ध हुए सर्व देवेन्द्रोंने आकर हर्षित हो भगवानका जन्मकल्याण किया। ऐरावत हाथीपर आरूढ होकर अनेक देवोंके साथ इंद्र महाराज नाभिराजाके प्रासादके द्वारमें खडा हुआ और उसने उत्तम प्रसूतिघरमें आदरणीय, निर्मल आकारवाली इन्द्राणीको गुणपूर्ण, सुंदर जिनबालकको लानेके लिये भक्तिसे भेज दिया ॥१२-१५॥ प्रसूतिगृहमें इन्द्रपत्नी शची गुप्तरूपसे गई। वहां उसने शय्यापर अपनी माताके साथ जिनेश्वरको देख कर नमस्कार किया। संतोषपूर्ण गुणगौरवकी ओर अपनी बुध्दि लगानेवाली और हर्षयुक्त शरीरवाली इन्द्राणीने विशिष्ट और प्रियगुणोंके धारक जिनेश्वरकी स्तुति की ॥१६-१७॥

तुष्टाव तुष्टिसंपुष्टा विशिष्टेष्टगुणं जिनम् । सा शची हर्षपूर्णाङ्गी गुणगौरवसन्मतिः ॥ ११८
जिनाम्बां संनियोज्याशु शाम्बरीनिद्रया तदा । शिशुं मायामयं चान्यं मुक्त्वा जग्राह तं जिनम्
सुदुर्लभं तदासाद्य तद्गात्रस्पर्शमाशु सा । जहर्ष हृष्टचेतस्का तदाननविलोकनात् ॥ १२०
बिडौजसः करेऽधात्तं बिडौजःप्राणवल्लभा । प्राचीवोदयशैलस्य शृङ्गे बालार्कमुत्तमम् ॥१२१
ततः सुरैः समं श्रीमान्सुरेन्द्रः शिशुसंयुतः । अगान्मेरुगिरेः शृङ्गं नानावाद्यकृतोत्सवः ॥१२२
पाण्डुके पाण्डुकायां स बिडौजा बहुभिः सुरैः। शिलायां विष्टरे बालं रोपयामास तं मुदा॥१२३
ततः क्षीराब्धितः क्षुब्धादानीतार्जुनसत्कुटैः। सहस्रसंख्यैः सजलैः शक्रो ह्यस्नापयज्जिनम्॥१२४
स्नापयित्वा जिनं स्तुत्वा कृत्वा भूषणभूषितम्। योजयामास तं भक्त्या वृत्रहा वृषभाख्यया।१२५
समाप्य जन्मकल्याणं समारोप्य गजोत्तमे । शतयज्वा यजन्बालमाजगाम पुरं वरम् ॥ १२६
नाभिपार्श्वस्थितां चार्वीं मरुदेवीं महादराम्। ददर्श मघवा मानी मायानिद्रावियोजिताम्॥१२७
नत्वा नाभिं ददौ तस्यै बालं बालार्कसंनिभम्। कथां स कथयामास मेरुजां नामजां पुनः॥१२८

[आदिभगवानका जन्माभिषेक ।] शीघ्रही जिनमाताको मायानिद्रासे युक्त कर तथा उसके पास मायामयी बालकको रखकर इन्द्राणीने बाल-जिनको उठा लिया । उस समय अतिशय दुर्लभ प्रभुके अंगके स्पर्शसे वह इंद्राणी तत्काल हर्षित हुई और प्रभुकी छविके दर्शनसे उसका मन आनंदित हुआ ॥ १८ १९ ॥ उदयाचलके शिखरपर उत्तम बालसूर्यको स्थापित करनेवाली पूर्व दिशाके समान इन्द्रकी प्राणवल्लभा इन्द्राणीने इन्द्रके हाथोंमें जिनबालकको स्थापित किया । ऐश्वर्यशाली, नाना वाद्योंको बजवाकर जिसने उत्सव किया है ऐसा इन्द्र जिनबालकको लेकर देवोंके साथ मेरुगिरिके शिखरपर गया । पांडुकवनमें पांडुकशिलाके ऊपर रखे हुए सिंहासनपर इन्द्रने आनन्दसे जिनबालकको विराजमान किया ॥ २०-२३ ॥ तदनंतर क्षुब्ध हुए क्षीरसमुद्रसे लाये गये जलसे पूर्ण, हजार चांदीके कलशोंसे इन्द्रने जिनेश्वरका अभिषेक किया अनन्तर उनको आभूषणोंसे अलंकृत कर उसने भक्तिसे प्रभुको ' वृषभ ' नामसे संयुक्त किया अर्थात् इन्द्रने प्रभुको वृषभ नाम दिया । इस प्रकार जन्मकल्याण समाप्त करके प्रभुकी पूजा करनेवाला इन्द्र ऐरावत हाथीपर उनको आरूढ कर सुन्दर अयोध्या नगरमें आया ॥ २४-२६ ॥ महाराज नाभिराजके पास स्थित तथा मायानिद्रासे विमुक्त सुंदरी महारानी मरुदेवीको गौरवशाली इन्द्रने बडे आदरपूर्वक देखा । इन्द्रने महाराज नाभिराजको नमस्कार किया और बालसूर्यके समान श्रीजिनबालकको माताकी गोदमें दिया । अनंतर उसने मेरुपर्वतपर अभिषेकपूर्वक नामकरणविधि की कथा सुनाई । हर्षयुक्त इन्द्रने अनेक इंद्राणियोंके साथ सैकडों नटनटियोंको लेकर सविस्तर सुंदर रचनायुक्त तथा हाव-

१ स. करे धत्ते

ननाट नाटकैर्नाट्यं नटीनटशतोत्कटः। विकटं सुघटं शक्रः शचीभिः सहितः सुखी ॥१२९
निवेद्य रक्षणे रक्षान्समर्थं जिनपस्य वै। शतयज्वा ययौ नाकं गृहीत्वाज्ञां नरेशिनः ॥१३०
ववृधे वृद्धिसंपन्नः समृद्धो बोधनत्रयैः। विबुधैः सेव्यपादोऽसौ कुमारत्वं समासदत् ॥१३१
क्रमेण यौवनोद्भासी भासिताखिलदिक्चयः। वृषभो वृषभो भाति भूरिभव्यपरिष्कृतः ॥१३२
इन्द्रेण नाभिभूपेन यशस्वत्या सुनन्दया। जिनेशः कारयामास सबुधः पाणिपीडनम् ॥१३३
कल्पवृक्षक्षये क्षीणास्तावता सकलाः प्रजाः। अभ्येत्य नाभिभूपालं पूत्कुर्वन्ति स्म सस्मयाः॥१३४
राजन् राजन्वतीं कुर्वन्वसुधां वसुधातले। क्षीणाः क्षुधा समाक्रान्ता वयं भोज्यं विना प्रभो१३५
कल्पवृक्षाः क्षयं क्षिप्रं संयाता जनकोपमाः। इदानीं तदभावे हि किं विधास्याम उत्सुकाः१३६
निशम्य मतिमान्वाचं कृपणां कृपणात्मनां। नाभिः संप्रेषयामास नाभिजं तान्सुशिक्षितान्॥१३७
अभ्येत्य नाभिजं भक्त्या विज्ञप्तिं युक्तिसंगताम्। चक्रुः क्षुधाभराक्रान्ता नम्रा नम्रमुखा नराः१३८
देव देवेशसंस्तुत्य त्वद्गर्भोत्सवसंक्षणे। क्षणेन त्रिदशैः क्लृप्ता हेमवृष्टिः सुवृष्टिवत् ॥ १३९

भावोंसहित नृत्य किया ॥ २८-२९. ॥ नाभिराजाके समक्ष जिनेश्वरके रक्षण करनेमें प्रवीण देवोंको आज्ञा देकर और नाभिराजाकी अनुज्ञा प्राप्तकर इंद्र सौधर्मस्वर्गको चला गया ॥ ३० ॥ मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञानोंसे पूर्ण वृद्धिसंपन्न जिनेश्वर बढने लगे। देव जिनके चरणोंकी सेवा करते थे ऐसे वे प्रभु कुमारावस्थाको प्राप्त हुए। क्रमसे प्राप्त हुए यौवनसे प्रभु शोभने लगे। उनकी देहकी कान्तिसे सर्व दिशाएं प्रकाशित हुई। अनेक भव्यजीवोंसे अलंकृत भगवान् वृषभनाथ वृषसे (धर्मसे) शोभने लगे ॥ ३१-३२ ॥

[आदिप्रभुका विवाह और प्रजापालन।] इन्द्रने और महाराज नाभिराजाने ज्ञानवान जिनेश्वरका यशस्वती और सुनन्दाके साथ विवाह किया ॥ ३३ ॥ किसी समय कल्पवृक्षोंका नाश होनेसे आश्चर्यचकित और क्षीण हुई सर्व प्रजा नाभिराजाके पास आकर अपना दुःख कहने लगी, पृथ्वीको सुखी करनेवाले हे राजन्, इस भूतलपर हम भूखसे पीडित होकर क्षीण हो गये हैं। हे प्रभो, आहारके बिना हमारा जीवन कैसे टिकेगा? पिताके समान हितकर कल्पवृक्ष शीघ्र नष्ट हो गये। उनके अभावसे जीवनोपाय जाननेके लिये उत्सुक हम लोग अब क्या करें? ३४-३६ ॥ उन दीन लोगोंका आर्तस्वर सुनकर बुद्धिमान् नाभिराजने उनको उपदेश दिया और आदिनाथ भगवान्‌के पास भेज दिया। क्षुधाकी वेदनासे पीडित वे लोग प्रभुके पास गए और मस्तक झुकाकर नम्रताके साथ भक्तिपूर्वक इस प्रकार युक्तिसङ्गत निवेदन करने लगे ॥३७-३८॥ देवेन्द्रद्वारा स्तुत्य हे देव, आपके गर्भोत्सवके समय देवोंने जलवृष्टिके समान सुवर्णवृष्टि की थी। हे विद्वन्, उसके द्वारा लोगोंका दारिद्र्य नष्ट होकर कहां चला गया उसे हम नहीं जानते। किंतु नाथ, अब हमारी यह भूखकी पीडा भी जिससे दूर हो जाय वह उपाय बताइये। हे देव, ये

तथा न विद्यते विद्वन् दारिद्र्यं क्व गतं नृणाम्। इदानीं च क्षुधा नाथ यथा याति तथा कुरु॥१४०
त्वदाज्ञापालकाः पुण्याः सुपर्वाणः सुपावनाः। अतः किं दुर्लभं देव वर्तते तव सांप्रतम्॥१४१
सति त्वयि मरिष्यामस्तव देव कृपा कथं। अतः पाहि पवित्रास्मान्क्षुधार्त्तान् क्षीणविग्रहान्॥१४२
तेषां दीनं वचः श्रुत्वा दयावान्भगवानभूत्। दीनान्दृष्ट्वा हि कस्यात्र दया नो जायते लघु॥१४३
उवाच वृषभो धीमान्कृपया कृपणान्प्रति। महीरुहा महीपृष्ठे महान्ते महितैर्गुणैः॥ १४४
ते भोज्याः खल्वभोज्याश्च वर्तन्ते विविधा द्रुमाः। तत्र तान्प्रथमान्भोज्यानाद्रियन्ते नरोत्तमाः१४५
वृक्षा वल्ल्यस्तृणान्येव सुवनस्पतयोऽखिलाः। भोज्याभोज्यादिभेदेन भिद्यन्ते विबुधा जनाः॥१४६
रसाला लाङ्गलीवृक्षा जम्बीरा जम्बवस्तथा। राजादनाश्च खर्जूराः पनसाः कदलीद्रुमाः॥१४७
मातुलिङ्गा मधूकाश्च नारङ्गाः क्रमुकास्तथा। तिन्दुकाश्च कपित्थाश्च बदर्यश्चिञ्चिणीद्रवः॥१४८
भल्लातक्यश्च चारोद्या भोज्या ज्ञेयाश्च श्रीफलाः। वल्ल्यस्तु गोस्तनीमुख्याःकुष्माण्डिन्यश्च चिर्भटाः
इत्याद्या बहवो वल्ल्यो भोज्याश्चान्याः पराः स्मृताः। व्रीहयः शालयो मुद्गा राजमाषाश्च माषकाः॥
गोधूमाः सर्षपाश्चैलास्तिलाः श्यामाककङ्गवः। कोद्रवाश्च मसूराश्च वल्लाश्च हरिमन्थकाः॥१५१
यवा धानास्त्रिपुटका आढकाश्च कुलत्थकाः। वेणवा वनमुद्गाश्च नीवारप्रमुखा इमे॥ १५२

पवित्र और पुण्यवान देव आपकी आज्ञाके वश हैं। इसलिये हे प्रभो, ऐसे समय आपको क्या दुर्लभ है? हे ईश, आपके होते हुए भी यदि हमारी मृत्यु हो गयी तो हमपर आपकी कृपा कैसी? इसलिये हे देव, क्षुधासे क्षीणशरीरवाले हम लोगोंकी आप रक्षा कीजिये॥ ३८-४२॥ उन प्रजाजनोंकी दीनवाणी सुनकर प्रभुके चित्तमें करुणा उत्पन्न हुई। भला! दीनोंको देखकर तत्काल किसके मनमें दया नहीं जागृत होगी?॥ ४३॥

[प्रभुने जीवनोपाय बताये।] ज्ञानवान् श्रीवृषभदेवने उन दीन प्रजाजनोंको दयासे इस प्रकार कहा " इस भूतलपर ये दीखनेवाले वृक्ष अपने उत्कृष्ट गुणोंसे आदरणीय बने हैं। अर्थात् जिन वृक्षोंको आप लोग देख रहे हैं उनमें अच्छे अच्छे गुण हैं। अनेक प्रकारके ये वृक्ष भोज्य और अभोज्य हैं। उनमेंसे प्रथम भोज्यवृक्षोंका श्रेष्ठ लोग उपयोग करते हैं। वृक्ष, वल्ली और घास ये सब अच्छी वनस्पतियां हैं। इनके भोज्य-वनस्पति और अभोज्य-वनस्पति ऐसे दो भेद बुद्धिमान लोक करते हैं। आम्रवृक्ष, नारियल, नीबू, जामून, राजादन-चिरोंजी वृक्ष, खजूर, पनस, केला, बिजौरा, महुआ, नारिंग, सुपारी, तिन्दुक, कैंथ, बेर, चिंचणी-इमलीका वृक्ष, भिलावा चारोली, श्रीफल आदिक वृक्ष अर्थात् उनके फल भोज्य हैं। बेलोंमें द्राक्षा, कुष्मांडी और चिर्भटी-ककडी आदिक लतायें मुख्य हैं। इनसे अन्य वल्ली अभोज्य हैं। व्रीहि, शालि, मूंग, चौलाई, उडीद, गेहूं, सरसों, इलायची, तिल, श्यामाक, कोद्रव, मसूर वाल, चना, जौ, धान, त्रिपुटक, तूअर, वैणव—वनमूंग और नीवार इत्यादिक जो धान्यभेद हैं वे सब भोजनमें भूखशमनके लिये खाने

धान्यभेदाः सदा भोज्या भोजने क्षुद्विहानये। पचनं भाण्डभेदाश्च दर्शितास्तेन धीमता॥१५३
असिर्मषी कृषिर्विद्या वाणिज्यं पशुपालनम्। एवं षट्कर्मसंघातं वृषभस्तानुपादिशत् ॥१५४
भरतादिसुपुत्राणां शतकं शास्ति शिक्षया। स ब्राह्मीसुन्दरीपुत्र्यौ लेभे लब्धकलागुणे ॥१५५
सुमुहूर्तेऽथ शक्रेण नाभिर्देवं वरासने। संरोप्य स्थापयामास राज्ये प्राज्ये प्रजाहिते ॥१५६
ततो देवश्च देवेशं देशस्थापनहेतवे। आदिदेश विदां मान्यो विदेह इव भारते ॥१५७
नीवृतः कोशलाद्याश्च निर्मितास्तेन धीमता। ग्रामो वृत्यावृतो रम्यपुरं शालेन संवृतम्॥ १५८
नद्यद्रिवेष्टितं खेटं कर्वटं पर्वतैर्वृतम्। ग्रामपञ्चशतोपेतं मटम्बं मण्डितं जनैः ॥१५९
पत्तनं बहुरत्नानां योनीभूतं महोन्नतम्। सिन्धुसागरवेलाभिर्युतं द्रोणं मतं जनैः ॥१६०
वाहनं पर्वतारूढमेवं भेदाः प्रतिष्ठिताः। वर्णास्त्रयो वरास्तेन क्षत्रिया वैश्यसञ्ज्ञकाः ॥१६१
शूद्रा अशुचिसंपन्नाः स्थापिताः सद्धिया इमे। एवं च निर्मिते वर्णे क्षात्रभेदमतः शृणु॥१६२

योग्य हैं। बुद्धिमान प्रभुने उनके पकानेकी विधि और अनेक प्रकारके बर्तन भी बताये॥४४-५३॥ असि-शस्त्रोंके द्वारा अपना और प्रजाका शत्रुसे रक्षण करना। मषि--जमाखर्च--वहीखाता इत्यादिक लिखना। कृषि--खेती करना। विद्या-गायनादि कलाओंसे उपजीविका करना। वाणिज्य--व्यापार करना। शिल्प--वाद्य बजाना, बढई आदिका कार्य करना। इन छह कर्मोंका उपदेश आदीश्वरने प्रजाओंको दिया॥ ५४॥ भरतादिक एकसौ एक पुत्रोंको प्रभुने अनेक शास्त्रोंका शिक्षण दिया। ब्राह्मी तथा सुंदरी इन दो पुत्रियोंको कला और गुणोंमें निपुण किया॥ ५५॥

[नाभिराजने प्रभुको राज्य दिया।] उत्तम मुहूर्तमें नाभिराजाने इन्द्रकी सहायतासे प्रभुको उत्तम आसनपर बिठाकर प्रजाका हित करनेवाला उत्कृष्ट राज्यपद प्रदान किया। तदनंतर विद्वन्मान्य आदिप्रभुने इंद्रको विदेहके समान इस भारतक्षेत्रमें देशोंकी रचना करनेके लिये आदेश दिया॥ १५६-१५७॥ उस निपुण इंद्रने कोशलादिक अनेक देशोंकी रचना की। जिसके चारों ओर बाडी हो उसको गांव कहते हैं। जिसके चारों ओर परकोटा हो वह नगर रमणीय समझें। नदी और पहाडसे घिरे हुए गांवको खेट कहते हैं। तथा पर्वतोंसे घिरे हुए गांवको कर्वट कहते हैं। पांचसौ गांव जिसके अधीन हैं ऐसे गांवको मटम्ब कहते हैं, यह जनोंसे अलंकृत रहता है। जो अनेक रत्नोंकी खानियोंसे युक्त तथा जो वैभवयुक्त है उसे पत्तन कहते हैं। नदी और समुद्रकी मर्यादाओंसे युक्त गांवको द्रोण कहते हैं। पर्वतपर जो गांव है वह 'वाहन' कहा जाता है। इस प्रकार इन्द्रने ग्रामादिकोंके भेदोंसे युक्त देशोंकी रचना की॥ ५८-६१॥

[वर्ण और वंशोंकी स्थापना।] शुभमतिवाले आदिभगवानने तीन वर्णोंकी स्थापना की। क्षत्रिय और वैश्य ये दो वर्ण उत्तम हैं और शूद्र अपवित्रतासंपन्न हैं। इस प्रकार प्रभुने उज्ज्वल ज्ञानसे वर्णोंकी रचना की। अब हे श्रेणिक, क्षत्रियोंके भेदोंका वर्णन सुनो॥६२॥ चतुर भगवान् वृषभदेवने राज्यकी अव-

क्षत्रियाणां सुगोत्राणि व्यधायिषत वेधसा। चत्वारि चतुरेणैव राजस्थितिसुसिद्धये ॥१६३
सुवागिक्ष्वाकुराद्यस्तु द्वितीयः कौरवो मतः। हरिवंशस्तृतीयस्तु चतुर्थो नाथनामभाक् ॥१६४
कौ रवे कौरवे वंशे राजानौ रम्यलक्षणौ। प्रवरौ सोमश्रेयांसौ स्थापितौ वृषभेशिना ॥१६५
अथ नीवृन्महाख्यातः कुरुजाङ्गलनामभाक्। नानारम्यगुणोपेतो भाति भूमण्डले भृशम् ॥१६६
भूगुणैर्बहुभूमीशोऽनन्तशर्मप्रदायकैः। अकृष्टपच्यधान्यौघैर्धत्ते यः सुगुणान्भृशम् ॥१६७
यत्र क्षेत्राणि धान्यौघैः कालत्रयसमुद्भवैः। भृतानि भान्ति भूभर्तुः कोष्ठागाराणि वा भृशम् ॥१६८
कुलीना सफला रम्या भोगानां साधनं शुभाः। यत्रारण्यश्रियो रेजू रामा इव महीपतेः ॥१६९
ग्रामाः कुक्कुटसंपात्या रम्या रम्यैर्जनैर्भृताः। राजन्ते स्म महाधामश्रेणिलक्षा महोत्कटाः ॥१७०
सरांसि सर्वसंतापहारीण्यमृतसंचयैः। स्वच्छानि यत्र शोभन्ते ध्यानानीव महामुनेः ॥१७१

स्थितिके लिये क्षत्रियाके चार वंशोंकी स्थापना की। पहिला मधुरवाणीवाला इक्ष्वाकु-वंश, दूसरा कौरववंश, तीसरा हरिवंश और चौथा नाथवंश। वृषभेश्वरने जगतमें प्रसिद्ध कौरववंशमें सुंदर लक्षणोंवाले, श्रेष्ठ सोमप्रभ और श्रेयांस इन दो राजाओंकी स्थापना की ॥१६३-१६५॥

[कुरुजाङ्गल देश और उसकी राजधानी आदिका वर्णन] इस भूमण्डलमें अनेक रमणीय गुणोंसे भरा हुआ अतिशय शोभायमान कुरुजाङ्गल नामक महाप्रसिद्ध देश है। अनेक भूमिनायकोंसे युक्त वह देश विना बोए उत्पन्न होनेवाले, अनन्त सुख देनेवाले, पृथ्वीके गुणभूत धान्यसमूहोंके कारण अनेक गुणोंको धारण करता था ॥ १६६-१६७ ॥ जिस देशमें तीन कालोंमें-वर्षाकाल, शीतकाल और उष्णकालमें उत्पन्न हुए धान्योंसे भरे हुए खेत राजाओंके धान्यसंग्रहालयों के समान अतिशय शोभते हैं ॥१६८॥ जिस देशकी वनशोभा राजाकी रानियोंके समान शोभायमान होती है। राजाकी रानियां कुलीन-उच्चवंशमें जन्मी हुई, सफल- फलवती-बालबच्चोंवाली, रम्या-सुन्दर, राजाके भोगोंके साधन तथा शुभ-कल्याणकारक होती हैं। और वनकी शोभा भी कुलीन-पृथ्वीमें संलग्न, सफला-अनेक ऋतुजन्य फलोंसे भरी हुई, रम्या-रमणीय, भोगानां साधनं- भोगोंकी साधनभूत तथा शुभ-हितकारक हैं ॥१६९॥ इस कुरुजाङ्गल देशके ग्राम कुक्कुटसम्पात्य अर्थात् मुर्गा उडकर एक गांवसे दूसरे गांवको जा सके इतने कम अन्तरपर बसे हुए हैं। वे सुन्दर और रमणीय लोगोंसे भरे हुए हैं। वे उन्नतिशाली ग्राम बडे बडे लक्षावधि महलोंकी पंक्तियोंसे सुन्दर दिखते हैं ॥ १७० ॥ इस देशके सरोवर महामुनियोंके शुक्लध्यानके समान शोभायमान हैं। महामुनियोंका ध्यान स्वच्छ मोहकर्ममल-रहित तथा सर्व-सन्तापहारी-संपूर्ण संसारतापको नष्ट करनेवाला होता है। तथा कुरुजाङ्गल देशके सरोवर स्वच्छ-कीचडसे रहित तथा समस्त प्राणियोंके शरीरसंतापको दूर करनेवाले हैं और अमृतके समान जलसमूहसे सदा भरे हुए हैं ॥ १७१ ॥ इस देशमें पक्व-संवेद्य तथा स्वकालस्थायी उत्तम शालिधान्य प्राणियोंके उत्कृष्ट कर्मोदयके समान शोभते हैं।

शालयः पक्वसंवेद्याः स्वकालस्थायिनो वराः । फलप्रदा विराजन्ते यत्र कर्मोदया इव ॥१७२
जञ्जन्यन्ते जना यत्र नाकात्पाकाद्वृषस्य वै । त्यागिनस्त्यक्तदुष्टत्वमात्सर्यामर्षभावकाः ॥१७३
दन्ध्वन्यन्ते वने वृक्षाः सफलाः फलदायिनः । ददत्यध्वजनानां ये फलानि फलकाङ्क्षिणाम् ॥१७४
नराः सुरसमाकारा वृक्षाः फलभरोन्नताः । कल्पानोकहसादृश्या यत्र भान्ति शुभालयाः ॥१७५
लावण्येन सुरूपेण कलया ध्वनिना पुनः । यत्रत्यास्तर्जयन्त्येव योषितः सुरयोषितः ॥१७६
नगरोपान्त्यदेशेषु कृता धान्यसुराशयः । भान्तीव यत्र गिरयः सूरविश्रामहेतवे ॥ १७७
रम्यारामप्रदेशेषु द्रोणे पर्वतमस्तके । पत्तने नगरे यत्र भान्ति प्रासादपङ्क्तयः ॥१७८
गम्भीराणि मनोज्ञानि सरसान्यत्र भान्ति वै । तृष्णाघ्नानि सपद्मानि चेतांसीव सरांसि च ॥१७९
सपद्मा मदनोद्दीप्तास्तिलकाढ्याः फलावहाः । सपुष्पा यत्र राजन्ते रामा आरामका इव ॥१८०
क्षेत्रेषु व्रीहयो यत्र फलभारेण सन्नताः[1] । कुर्वाणाः पथिकानां वा प्राघूर्ण्याय नतिं बभुः ॥१८१

कर्मोदय पक्वसंवेद्य–उदयावलिमें आनेपर जीवोंके द्वारा भोगे जाते हैं । जबतक आत्मामें उनके रहनेकी कालमर्यादा होती है तबतक वे रहते हैं, तथा अपना फल देते हैं । शालिधान्य भी पकनेपर लोगोंको फल देते हैं, लोग उनका अनुभव करते हैं । तथा वे शालिधान्य अपनी काल-मर्यादापर्यंत स्थिर रहते हैं ॥ १७२ ॥ स्वर्गसे च्युत हुए जीव पुण्यकर्मके उदयसे यहां सदा जन्म धारण करते हैं । वे त्यागी दानशील होते हैं और दुष्टपना, मत्सरभाव, तथा क्रोध इनके त्यागी हैं । अर्थात् क्षमा, मार्दव, आर्जव इत्यादि गुणोंके धारक होते हैं । इस देशके सभी वृक्ष वनमें सफल–फलदायक थे। फलेच्छु पथिक लोगोंको नित्य फल देनेमें प्रसिद्ध थे ॥ १७३–७४ ॥ यहांके लोग–प्रजाजन देवोंके समान आकारवाले थे । फलभारसे लदे हुए वृक्ष कल्पवृक्षोंके समान दीखते थे । तथा वे शुभकार्यके मंदिर थे ॥ १७५ ॥ यहां स्त्रिया लावण्य, सुरूप, कला और स्वरसे देवांगनाओंको तिरस्कृत करती थीं । इस देशमें नगरोंके समीप संचित की हुई धान्योंकी राशियां सूर्यकी विश्रान्तिके लिये पर्वतके समान शोभती थीं । यहांके सुंदर बगीचोंमें, द्रोणोंमें, पर्वतोंके मस्तकपर, पत्तनोंमें तथा नगरोंमें महलोंकी पंक्तियां, अतिशय शोभायमान होती हैं । इस देशके सरोवर सज्जनोंके चित्तके समान गंभीर, सरस, तृष्णा पिपासा दूर करनेवाले और सपद्म–कमलोंसे सहित शोभते थे ॥ १७६–७९ ॥ यहांकी स्त्रियां उपवनके समान शोभती थीं, उपवन सपद्म–कमलवनसहित, मदनोद्दीप्त मदननामक वृक्षोंसे सुशोभित, तिलकाढ्य तिलकवृक्षोंसे परिपूर्ण, फलावह–फलोंको धारण करनेवाले तथा सपुष्प–फूलोंसे युक्त थे । स्त्रियां भी सपद्मा पद्मा–लक्ष्मी सहित, मदनसे उद्दीप्त, तिलक–कुंकुमतिलकोंसे सुन्दर, फलावह पुत्रवती व सपुष्पा-ऋतुमती

[1] ग सम्भृताः ।

देशानामाधिपत्यं यो दधान इव संबभौ । विभूत्या चामरैर्गेहैः सदातपनिवारणैः ॥१८२
कुरुभूमिसमत्वेन कुरुजाङ्गलनामभाक् । कुरुते कर्मनैपुण्यं यः कलाकाण्डसंविदाम् ॥१८३
हस्तिनागपुरं तत्र हस्तिसंहतिसंगतम् । हन्त्यहङ्कारकारिस्वमहितानां च यत्सदा ॥ १८४
यत्र प्राकारकूटेषु धृतमुक्ताफलानि वा । तारा रेजुः प्रश्यायां हेमकुम्भायते विधुः ॥१८५
यत्खातिका विषाकीर्णा मणियुक्ता भयावहा । सेवागतेन शेषेण यथा मुक्ता निचोलिका ॥१८६
सतां यद्विशिखा ब्रूते मार्गं रोहावरोहणैः । स्वर्गस्याधोगतेर्नित्यं स्फीता सद्भूमिका वरा॥१८७
यत्रत्यजिनसद्मानि भव्यानाकार्य केवलम् । केतुहस्तेन वादित्रनादेनाहुर्बुधोत्तमाः ॥ १८८
यथास्माकं महोच्चत्वं तथा पुण्यवतां नृणाम् । शृङ्गाग्रलग्नसद्दण्डकिङ्किणीनादतः स्फुटम् ॥१८९
दानिनो धनिनो लोका ज्ञानिनो जितमत्सराः । परर्द्धिमहिमोपेता यत्र तिष्ठन्ति वत्सलाः॥१९०

थीं ॥ १८० ॥ यहां खेतोंमें फलोंसे नम्र हुआ शालिधान्य पथिकलोगोंका आतिथ्य करनेके लिये मानों नम्र हुआसा दीखता था ॥ १८१ ॥ यह कुरुजाङ्गल देश वैभव, चामर, प्रासाद तथा छत्रोंसे संपूर्ण देशोंका मानों स्वामित्व धारण करनेवाले राजाके समान शोभता था ! यह देश देवकुरु और उत्तरकुरु भोगभूमिके समान होनेसे 'कुरुजाङ्गल' नामको धारण करता था। तथा गान, नृत्यादि कलाओंके जाननेवालोंके स्वकीय कार्योंका चातुर्य व्यक्त करता था। अर्थात् इस देशमें अनेक कलाभिज्ञ लोग रहते थे तथा उनके चातुर्यकी सर्व देशोंमें प्रसिद्धि हुई थी ॥ १८२-८३ ॥

[कुरुजाङ्गल देशकी राजधानी हस्तिनापुरका वर्णन] इस कुरुजाङ्गल देशमें हाथियोंके समूहसे भरा हुआ हस्तिनापुर नगर है। जो सदा शत्रुओंके अहंकारको नष्ट करता था। जिसके परकोटेके शिखरोंपर ताराओंका समूह जडे हुए मोतियोंके समान शोभायमान होता था तथा चन्द्र पुरद्वारके ऊपर स्थित सुवर्ण–कलशके समान शोभा धारण करता था ॥ १८४–८५ ॥ इस नगरकी खातिका–खाई–सेवा करनेके लिये आये हुए शेषनागके द्वारा छोडी हुई विषाकीर्ण–विषपूर्ण–मणियुक्त, और भय दिखानेवाली मानों कांचलीही प्रतीत होती है। कारण यह खाई भी विषाकीर्ण जलसे भरी हुई, मणि रत्नोंसे युक्त तथा भयावह थी। इस नगरका, उत्तम भूमिकाओंसे सुशोभित पुरद्वार ऊपर चढनेसे और नीचे उतरनेसे सज्जनोंको मानों स्वर्ग और नरकका मार्ग सदा बतलाता है ॥ १८६–८७ ॥ इस नगरीके जिनमंदिर केवल ध्वजरूपी हाथोंसे तथा वाद्योंकी ध्वनिसे तथा शिखरोंके अग्रभागमें लगे हुए दण्डके किंकिणीयोंकी ध्वनिके द्वारा भव्योंको बुलाकर, हे विद्वच्छ्रेष्ठ जैसे हमको महान् उच्चता प्राप्त हुई है वैसी पुण्ययुक्त आप मनुष्योंको भी प्राप्त होगी ऐसा मानो स्पष्ट कहते थे ॥ १८८–८९ ॥ इस नगरीके निवासी धनी लोग दानी थे और ज्ञानी जन मत्सरभावरहित थे। उत्कृष्ट धनधान्यादि ऋद्धिसम्पन्न तथा लोकवत्सल थे। अर्थात् दीन अनाथादि--लोगोंपर दयाभाव रखते थे ॥ १९० ॥ इस नगरीमें स्त्रियोंके मस्तकके केशोंहीमें भंग था

भङ्गो यत्र कचेष्वेव चापल्यं वरयोषिताम् । नेत्रे याञ्चा सतां यत्र पाणिग्रहणयुक्तिषु ॥१९१
मृदङ्गे ताडनं यत्र मदनत्वमनोकुहे । पतनं वृक्षपर्णेषु लोपः क्विप्प्रत्यये पुनः ॥ १९२
स्पर्धा दानोद्भवा यत्र कामिचेतोऽपहारता। चौर्यं स्त्रीषु ततो भीतिः कामिनां कामवासिनाम्॥१९३
पुष्पाणां हरणं यत्र निम्नत्वं नाभिमण्डले । प्रस्तरे विरसत्वं च नान्यत्र कुत्रचिद्भुवि॥१९४
नरा ज्ञानविहीना न नाशीला योषितः क्वचित्। वृक्षाः फलातिगा नैव वर्तन्ते यत्र भासुराः॥१९५
सेवते यत्र भोगीन्द्रो हारिप्राकारसंमिषात् । भयादिति जगत्सर्वं वशीकृतमनेन वा ॥१९६
त्रिवर्गफलसंभूतां भूतिं भुञ्जन्ति यत्र च। धनाकीर्णा जना धीराः शर्मशाखिफलावहाः॥१९७
शोकं पङ्कसमुद्भूतं नालोकन्ते स्म ते क्वचित्। दानादिकर्मनिर्णाशिदुरिता यत्र संशुभाः ॥१९८

अर्थात् विशिष्ट केशरचना थी। परंतु यहांके लोगोंमें भंग विनाश-नहीं था। यहांकी उत्तम स्त्रियोंके नेत्रोंहीमें चापल्य अर्थात् कटाक्षविक्षेप था। अन्यत्र चापल्य--बुद्धिकी अस्थिरता वहां नहीं थी। इस नगरीमें 'याञ्चा' -याचना करनेवाला कोई भी नहीं दीखता था, परंतु पाणिग्रहणकी योजनामें अर्थात् विवाहक्रियामें 'याञ्चा' -कन्याकी याचना वरपक्ष करता था। यहां मृदंगहीमें ताडन था, अन्यत्र ताडनकी आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि लोग नीतिपूर्वक प्रवृत्ति करते थे। इस नगरीमें 'मदनत्व' केवल वृक्षहीमें था अर्थात् मदन नामके वृक्ष यहां थे परंतु यहांके लोगोंमें मदनत्व (कामवेगसे अत्यंत पीडित होना) नहीं था। 'पतन' वृक्षके पर्णोंहीमें था। परंतु पतन-जातिपतन, व्रतोंसे पतन, नीतिमार्गसे पतन आदि लोगोंमें नहीं था। लोप-नाश केवल क्विप्प्रत्ययमें था, परंतु लोगोंके व्रतादिकोंका लोप-नाश नहीं था। यहां स्पर्द्धा दान देनेमें थी। अन्यकार्योंमें नहीं थी। अपहार-चोरी करना लोगोंमें नहीं था परंतु कामी स्त्री पुरुष एक दूसरेके चित्तका हरण करते थे। यहां भीति केवल कामी पुरुषोंको स्त्रियोंके विषयमें थी अर्थात् हम यदि अनुकूल प्रवृत्ति नहीं करेंगे तो स्त्री रुष्ट हो जायगी इस तरहकी भीति मनमें धारण करते थे। इस नगरीमें केवल पुष्पोंकाही हरण अर्थात् वृक्षोंसे पुष्पोंको लाना-तोडनारूप क्रिया था। दूसरोंकी वस्तूका हरण नहीं होता था। निम्नत्व-गहरापना केवल नाभिमंडलमें था, अन्यत्र-लोगोंमें निम्नत्व-नीचपना नहीं था। इस नगरीमें केवल पत्थरहीमें 'विरसत्व' रसाभाव था। लोगोंमें विरस-पना नहीं था। लोग सरस थे। वहां किसी भी जगहके लोग ज्ञानहीन नहीं थे और स्त्रियां अशील-शीलरहित नहीं थीं। यहांके वृक्ष फलातिग-फलोंसे रहित नहीं थे। सर्व वृक्ष फलोंसे लदे हुए थे। यहांके सर्व पदार्थ शोभायमान थे ॥ १९१-९५ ॥ प्रतीत होता है कि इस नगरने सब जगतको वशमें किया है अतः भयसे मानो सुन्दर परकोटेके बहानेसे शेषनाग इस नगरकी सेवा करता है ॥ १९६ ॥ इस नगरीमें सुखरूपी वृक्षके फल धारण करनेवाले धनवान तथा धीर मनुष्य धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थोंके फलरूप विभूतिको भोगते रहते हैं। इस नगरीके लोग

यत्खातिका महानीलसरोजश्रेणिलोचनैः । ईक्षते गृहसंचारिशोभां नेत्रविकाशिकाम् ॥१९९
पण्यवीथीकृतोत्तुङ्गरत्नराशावितस्ततः । पर्यटन्त्यत्र संप्राप्त्यै प्रचुरं च परीषणम्[1] ॥२००
दधद्वीरो जनो वैश्यो रेजे दीधितिमण्डितः । मेराविव सुनक्षत्रगणो गुणविभूषितः ॥२०१
जिनचैत्यमहापूजां नित्याष्टाह्निकसंज्ञिकाम् । कुर्वते शर्मणे यत्र लोका मङ्गलसिद्धये ॥२०२
दीपा यत्र प्रजायन्ते मङ्गलार्थं गृहे निशि । योषिन्मुखमहाचन्द्रप्रकाशे ध्वान्तनाशिनि ॥२०३
यत्रापणौ सुताम्बूलपङ्के मग्ना जना अपि । मदोद्धता न गन्तुं वै शक्नुवन्ति क्षणं स्थिताः॥२०४
योषिच्चरणसंलग्नमृगनाभिसुगन्धतः । आगताः षट्पदा यत्र पूत्कुर्वन्तीति वादिनः ॥२०५
भोः कामिनः शुभं सारं वधूचरणपङ्कजम् । वयं यथा तथा यूयं सेवध्वं च सुखाप्तये ॥२०६

पापसे उत्पन्न हुए शोकका कभी अनुभव नहीं करते थे । यहांके शुभचरित लोग दानादि कार्योंसे पापका नाश करते थे ॥ १९७–९८ ॥ इस नगरीकी खातिका अतिशय नील कमलोंकी पंक्तिरूप नेत्रोंद्वारा मानो नेत्रोंको विकसित [आनंदित] करनेवाली घरोंकी शोभा देख रही है ॥ १९९ ॥ वहां जौहरीबाजारकी दुकानोंमें रत्नोंकी उंची राशि विद्यमान थी । उन रत्नोंकी प्राप्तिके लिये विपुल द्रव्य लेकर यहां वहां भ्रमण करनेवाले गुणविभूषित तेजस्वी व्यापारी लोग मेरुपर्वतपर भ्रमण करनेवाले उत्तम नक्षत्रसमूहके समान शोभायमान होते थे ॥ २००–२०१ ॥ जहांपर धार्मिक लोग सुख और कल्याणके हेतु जिनप्रतिमाओंकी नित्यपूजा और अष्टाह्निक पूजा नामकी महापूजा करते थे ॥२०२॥ इस नगरमें स्त्रियोंके मुखरूपी महाचन्द्रके प्रकाशसे अंधकार नष्ट हो जानेसे रात्रीमें गृहोंमें दीपक केवल मंगलके लिये होते थे ॥ २०३ ॥ इस नगरीके बाजारमें तांबूलकी पीकसे जो कीचड होता था उसमें फसे हुए लोग मदोद्धत होनेपर भी उसमेंसे आगे नहीं जा सकते थे । क्षणपर्यन्त उनको वहां रुकना पडता था ॥ २०४ ॥ इस नगरमें स्त्रियोंके चरणोंमें चर्चित कस्तुरीकी सुगंधसे आगत भ्रमर गुंजारव करते हुए कह रहे है कि " हे कामिजन, स्त्रियोंके चरण-कमल शुभ और उत्तम हैं, उनकी हम जैसी सेवा करते हैं वैसी तुम भी सुखकी प्राप्तिके लिये सेवा करो ॥ २०५–२०६ ॥

[सोमराजा, श्रेयान् राजा तथा सोमराजाकी रानी लक्ष्मीमती और पुत्र जयकुमार इनका वर्णन ।] इस हस्तिनापुरमें श्रीवृषभेश्वरने कुरुवंशके भूषण तथा श्रेष्ठ सोम और श्रेयान्को कुरुजाङ्गल देशके अधिपति बनाये । श्रीसोमराजाकी प्राणोंसेभी प्यारी चन्द्रके समान मुखवाली, उज्ज्वल शोभाको धारण करनेवाली लक्ष्मीमती नामकी पतिव्रता धर्मपत्नी थी । वह लक्ष्मीमती निर्दोष शब्दरचनायुक्त, उपमादि अलंकारोंसे भूषित, गूढार्थको धारण करनेवाली, कान्ति, समाधि,

१ प परीक्षणम् ।

तत्राथ वृषभेशेन कुरुवंशविभूषणौ । नरेन्द्रौ स्थापितौ यत्र सोमश्रेयांसौ तौ वरो ॥ २०७
तत्र सोमस्य सोमास्या लसल्लक्ष्मीमती सती। लक्ष्मीमती प्रिया चासीत्प्राणेभ्योऽपि गरीयसी२०८
योल्लसत्पदविन्यासालङ्कारपरिभूषिता । गूढार्था सद्गुणा रम्या त्यक्तदोषेव भारती ॥२०९
मञ्जूषेव समस्तस्यालङ्कारस्य स्फुरत्प्रभा । सच्छवेः सगुणस्यापि या भाति भुवनत्रये॥२१०
स्फुरत्कुण्डलकेयूरतारहारा समुद्रिका । समेखला शुभाकारा शोभते योपमातिगा ॥२११
चन्द्रानना कुरङ्गाक्षी चन्द्रखण्डललाटिका । पक्वश्रीफलसंछन्नपयोधरा बभौ च या ॥२१२
नितम्बिनीगणानां या सीमां कर्तुं विनिर्मिता । वेधसा विधिवत्सर्वां सामग्रीमनुभूय वै॥ २१३
तयोः सुतः सदा श्रीमाञ्शत्रुपक्षक्षयंकरः । जयाभिधो जयश्रीकः साक्षाज्जय इवापरः ॥२१४
अथ श्रीवृषभो भाति वसुधां वसुधां बुधः । सुधामयीं प्रकुर्वाणो नानानीतिसमन्विताम्॥२१५
सुनासीराज्ञया नृत्यं निर्मितुं नटपेटकैः । नीलाञ्जसा समायासीज्जिनाग्रे सह सद्गुणा ॥ २१६

श्लेष आदि काव्यके सद्गुणोंसे सुंदर और अप्रतिपत्ति आदि दोषोंसे वाजत सरस्वती समान शोभती थी। अर्थात् सुंदर चरणोंको लीलासे धरतापर रखती हुई, कटक-कुण्डलादि अलंकारोंको धारण करनेवाली, गूढाभिप्रायको धारण करनेवाली, सत्यभाषणादि सद्गुणयुक्त और सौन्दर्य धारण करनेवाली, लक्ष्मीमती नामकी महारानी थी। वह संपूर्ण अलंकारा, सद्गुणा तथा उत्तम कान्तिकी दीप्तिमान पिटारीसी त्रैलोक्यमें शोभती थी। सुन्दर शरीरयुक्त वह रानी चमकनेवाले कर्णकुंडल, बाजुबंद, प्रभायुक्त हार, मुद्रिका तथा करधनी इन आभूषणोंको धारण कर अनुपम शोभाको धारण करती थी। लक्ष्मीमती रानीका मुख चन्द्रके समान था, आंखें हरिणके आंखोंके समान थीं। ललाट अष्टमीके चन्द्रके समान था। तथा पक्व श्रीफल-बिल्वफलके समान पुष्ट स्तन थे। ऐसे सुंदर अवयवोंसे यह रानी शोभती थी। ब्रह्मदेवने योग्य-पद्धतिसे संपूर्ण कारणसामग्रीका अनुभव करके इस लक्ष्मीमती रानीको सर्व स्त्रियोंमें श्रेष्ठ बनाया ॥२०७-२१३॥ महाराज सोमप्रभ और लक्ष्मीमति रानीका शत्रुपक्षका क्षय करनेवाला श्रीमान् जय नामक पुत्र था, जो साक्षात् दूसरा जयही प्रतीत होता था ॥२१४॥

[नीलांजसा देवाङ्गनाका नृत्य देखकर आदिभगवानने विरक्त होकर दीक्षा धारण की।] सुवर्णादि धनको धारण करनेवाली पृथ्वीको अनेक नीतियुक्त और अमृतमय करनेवाले बुद्धिमान आदिभगवान् शोभते थे। उस समय इन्द्रके आदेशसे सद्गुणयुक्त नीलाञ्जसा नामकी देवाङ्गना जिनेश्वरके आगे नृत्य करनेके लिये नटोंका समूह लेकर आगई ॥ २१५-२१६ ॥ हावभावमें

१ प सोमश्रेयांसनामानौ नरेन्द्रौ स्थापितौ वरौ । म नरेन्द्रौ स्थापितौ सोमश्रेयांसौ भ्रातरौ वरौ ।

नृत्यन्ती सा जिनस्याग्रे हावभावविचक्षणा । चञ्चला चञ्चलेवाभाद्गगने गुणगुण्ठिता ॥२१७
वीणावंशविनोदेन तरला ताललास्यगा । काकलीकलनासक्ता ननर्त लेखनर्तकी ॥२१८
तदा सभ्याः शुभाकारां नटन्तीं तां निरीक्ष्य च । चित्रिता इव संभेजुः कामवस्थां वचोऽतिगाम्॥
तत्क्षणे क्षणदेवासीददृश्या सायुषः क्षये । लास्यं विलयमापन्नं वृक्षवन्मूलसंक्षये ॥२२०
ज्ञात्वा जिनेश्वरस्तस्या विपत्तिं विपदातिगः । निर्वेदं वेदयन्दिव्यं विवेद जगतः स्थितिम् ॥२२१
आजवंजवजीवानां जीवनं हि विनश्वरम् । जीवनं हस्तगं यद्वत् दृष्टनष्टं क्षणान्तरे ॥२२२
अहो केऽत्र भवे जीवाः स्थास्नवो विहितागसः । दृश्यन्ते जलदा यद्वत्कथमत्र स्थितौ मतिः॥२२३
इत्यालोच्य चिरं चित्ते चैतन्यगतचेतनः । राज्ये निवेशयामास भरतं भरताधिपम् ॥२२४
सुरम्ये पोदने बाहुबलिनं बलशालिनम् । सोऽस्थापयत्तथा शेषान्सुतान्नीवृति नीवृति ॥२२५
संस्नाप्य स सुरैर्नीतो याप्ययानेन युक्तिमान् । वन भूषणभारेण भूषितो भरतादिभिः ॥२२६
वटाधःस्थितिमासाद्य नवम्यां चैत्रकृष्णके । दिदीक्षे कृतकेशादिलुञ्चनो भगवाञ्जिनः ॥२२७

चतुर, गुणोंसे युक्त, जिनेश्वरके आगे नृत्य करनेवाली वह चंचल नीलांजसा आकाशमें चंचल बिजलीके समान दीखती थी। तालके ठेकेपर नृत्य करनेवाली, काकलीस्वरसे गायन करनेवाली वह नीलांजसा वीणा और बासुरी वाद्यके विनोदसे नृत्य करने लगी। उस समय नृत्य करनेवाली उस सुंदरीको देखकर सभासदगण चित्रसदृश स्तब्ध हो अपूर्व और अवर्णनीय अवस्थाको प्राप्त हुए ॥ २१७-२१९ ॥ वह नीलांजसा आयुष्यका नाश होनेसे बिजलीके समान तत्काल अदृश्य हो गई। मूल नष्ट होनेपर जैसा वृक्ष नष्ट होता है उसी प्रकार नीलांजसाके विलयसे वह नृत्य भी नष्ट हुआ ॥ २२० ॥ आपदाओंसे रहित आदिभगवंतने उसका नाश देखकर दिव्य वैराग्यका अनुभव करते हुए जगत्की स्थितिको समझा। अंजलीमें रखा हुआ पानी जैसा देखते देखते क्षणभंगमें नष्ट होता है वैसेही संसारी जीवोंका जीवन विनाशी है। अहो ! इस संसारमें कौन कर्मबद्ध जीव मृत्युको अगोचर हैं ? सब संसारी जीव मेघके समान नश्वर दीखते हैं। अतः इनकी नित्यतामें विश्वास क्यों किया जाता है ? इस प्रकार कुछ कालतक विचार कर अपने चैतन्यस्वरूपमें उपयोगको लगानेवाले आदिप्रभुने भरतखंडके स्वामीको–भरतको राज्यपर स्थापित किया। बलशाली बाहुबलिकुमारको सुरम्य पोदनपुरमें राज्यारूढ किया। तथा अन्य निन्यानवे पुत्रोंको भिन्न-भिन्न देशका राज्य दिया। देवोंने आदिप्रभुका अभिषेक किया, अनेक अलंकारोंसे भूषित, युक्तिज्ञ आदिभगवानको देवोंने पालखीमें बिठाकर भरतादिपुत्रोंके साथ वनमें लाये। वहां वटके नीचे आदिप्रभुने चैत्रकृष्णनवमी के दिन केशलोचपूर्वक दीक्षा धारण की ॥ २२१-२२७ ॥ पापका नाश करनेवाले योगी आदिजिन छह मासतक ध्यानमें निमग्न हो गये। महाभूतोंसे–व्याघ्रादि बडे प्राणियोंसे सेवित प्रभु छह मासतक उपवास धारण कर खडे रहे ॥ २२८ ॥ छह

षण्मासान्स स्थितो योगे योगी विक्षिप्तकल्मषः। ऊर्ध्वीभूतो महाभूतसेवितः प्रोषधावृतः ॥२२८
संहृत्य स निजं योगं योगे पूर्णे विनिर्ययौ। अनाश्वान्विश्वसंदृश्यो विश्वलोकनमस्कृतः ॥२२९
न्यादस्यापि विधिं लोका अजानानाः कथंचन। दृष्ट्वा तं हर्षिणश्चक्रुर्जिनपादनमस्कृतिम्॥२३०
विहरन्तं परं ज्येष्ठं द्रङ्गे द्रङ्गे च नीवृति। गृहे गृहे क्रमेणाशूडावुडावुडुनाथवत् ॥२३१
जनास्तं वाजिनं वर्यं दन्तिनं दशनोन्नतम्। कन्यामन्नं च वसनं मणिं मुक्ताफलं फलम्॥२३२
भूषणं दूषणातीतमासनं शयनान्वितम्। कुसुमानि सुगन्धीनि ढौकयन्ति स्म तत्पुरः ॥२३३
षण्मासान्मौनसंपन्नः कृतेर्यापथवीक्षणः। क्षणेन विहरन्नाप हस्तिनागपुरान्तिकम् ॥२३४
अथ श्रेयान् श्रियोपेतः पुरेशो निशि निश्चलम्। सुप्तः शय्यातले श्रीमान्ददर्श स्वप्नसंचयम्॥२३५
सुराद्रिं कल्पवृक्षं च हिमांशुं च दिवाकरम्। पारावारं सुगम्भीरं जजागार विलोक्य सः॥२३६
सोमप्रभाय तत्सर्वं स निवेदयति स्म हि। सोऽवोचन्मेरुतस्तुङ्गः कल्पद्रोः कल्पदायकः॥२३७

मासक योग की समाप्ति होनेपर प्रभुने योगको पूर्ण किया। षण्मासोपवासी, सब लोगों द्वारा आदरसे देखे जानेवाले विश्वजन-वन्दनीय प्रभुने दीक्षास्थानसे विहार किया। प्रभु आहारके लिये निकले परंतु लोग आहारकी विधि बिलकुल नहीं जानते थे। प्रभुको देखकर हर्षसे वे उनके चरणोंको नमस्कार करते थे॥ २२९-२३०॥ जैसे चंद्र प्रत्येक नक्षत्रपर क्रमसे गमन करता है वैसे प्रत्येक नगरमें, प्रत्येक देशमें, तथा प्रत्येक घरमें विहार करनेवाले सर्वोत्कृष्ट आदि-भगवानके आगे लोगोंद्वारा घोडा, उन्नत दांतवाले उत्कृष्ट हाथी, कन्या, अन्न, वस्त्र, रत्न, मौक्तिक, फल, निर्दोष अलंकार, आसन, शयन, सुगंधित पुष्पसमूह अर्पण किये जाने लगे। इस प्रकार मौनी भगवान् छह महिनातक ईर्यासमितिपूर्वक विहार करते हुए हस्तिनापुरके समीप आगये ॥ २३१-२३४॥

[आदिनाथ प्रभुका श्रेयांस राजाके यहां आहारग्रहण] उस समय राजलक्ष्मीसे अलंकृत, हस्तिनापुरके स्वामी, श्रीमान् श्रेयांस राजा रात्रीमें निश्चल सोये थे। उनने ये स्वप्नसमूह देखे। मेरुपर्वत, कल्पवृक्ष, चन्द्र, सूर्य और गंभीर समुद्र। इनको देखनेपर वे जागृत हुए। उनने प्रातःकाल अपने बडे भाई सोमप्रभ को सब स्वप्न कहे। महाराज सोमप्रभने स्वप्नोंका फल इस प्रकार बताया। मेरुके देखनेसे मेरुके समान ऊंचा, कल्पवृक्षको देखनेसे इच्छित वस्तुदाता, चन्द्रको देखनेसे जगतको आनंद देनेवाला, सूर्यको देखनेसे प्रतापी, समुद्र देखनेसे अन्यजन जिसके गुणोंका पार नहीं देख सके ऐसे कोई महापुरुष अपने महलमें आवेंगे ऐसा स्पष्ट व्यक्त होता है। तदनंतर मध्याह्नकालमें प्रभु उनके महलमें पधारे ॥२३५-२३७॥ प्रभुके दर्शनसे श्रेयांस् राजाको अत्यंत आनंद हुआ। इससे श्रेयांसको पूर्वभवका स्मरण हुआ। सोमप्रभ राजाके साथ श्रेयांसने जिनेश्वरके चरणोंको प्रणाम किया। आहारकी विधि जानकर नवधा विधिसे वैशाख शुद्ध तृतीया-

हिमांशोर्जगदाह्लादी भास्करात्स प्रतापवान् । अकूपारात्पराद्दृष्टपारः कोऽपि महाकरः॥२३८
समटिष्यति सुस्पष्टमावयोर्वेश्मनि स्फुटम् । तावता मध्यदिवसे समाट स च तद्गृहे॥२३९
तद्दर्शनसमानन्दाज्जातपूर्वभवस्मृतिः । श्रेयान्सोमप्रभेणामा पपात जिनपद्युगम् ॥२४०
विधिना विधिवद्राधे तृतीयादिवसे स च । मधुरेक्षुरसेनास्य कारयामास पारणम् ॥२४१
तत्क्षणेक्षणसंदीप्ता रत्नवृष्टिर्गृहाङ्गणे । बभूव तस्मागाद्देवो वनं मौनी महामनाः ॥२४२
जिनः सहस्रवर्षान्ते फाल्गुनैकादशीदिने । कृष्णपक्षेऽथ संप्रापत्केवलज्ञानमद्भुतम् ॥२४३
चक्रोत्पत्त्या नरेन्द्रोऽसौ भरतो भारतं खलु । संसाधयितुमुद्युक्तो बभूव बलमण्डितः ॥२४४
जयं च कौरवाधीशमाहूयास्थापयत्तराम् । स सेनानीपदे रत्नं सहस्रसुररक्षितम् ॥२४५
स चक्री सैन्यचक्रेण सहस्रषष्टिवर्षणैः । संसाध्य भारतं क्षेत्रं विनीतामाजगाम च ॥२४६
जयो मेघेश्वरांल्लेखाञ्जित्वा मेघस्वराभिधाम् । लब्धवान्भरताधीशाद्राज्ये गजपुरे स्थितः॥२४७

मेघस्वरः शुद्धमना मनोहरो जीयान्महाशत्रुजये कृतोद्यमः ।
नीत्या निरस्तदुरितो जयनामधेयः सचक्रवर्तिहृदयाम्बुजसप्तसप्तिः ॥२४८

के दिन श्रेयांस राजाने ईखके मधुर रससे आदिभगवानकी पारणा कराई । आहारके समय तत्काल सुन्दर कान्तिधारक रत्नोंकी वृष्टि राजाके गृहाङ्गणमें हुई । मौनी महामना आदिभगवान् वनको चले गये ॥ २४०–२४२ ॥ आदिभगवानने एक वर्षतक तप किया । पश्चात् फाल्गुन कृष्ण एकादशीके दिन उनको महान् केवलज्ञान प्राप्त हुआ ॥ २४३ ॥ चक्रोत्पत्ति होनेके अनंतर भरतराजेन्द्र सेना लेकर समस्त भरतक्षेत्रको साधनेके लिये उद्युक्त हुए । उन्होंने कौरवोंके अधिपति जयकुमारको बुलाकर सेनापतिके पदपर स्थापित किया । यह सेनापतिरत्न हजार देवोंसे रक्षण किया जाता था । भरतचक्रवर्ती सैन्य तथा चक्ररत्नके साहाय्यसे साठ हजार वर्षोंमें भरतक्षेत्रको वश करके विनीता नगरी अर्थात् अयोध्या को लौट आये । जयकुमारने मेघेश्वर नामके देवोंको पराजित कर भरतेश्वरसे मेघस्वरपद प्राप्त किया और वह हस्तिनापुरके राज्यमें सुखसे रहने लगा ॥ २४४–२४७ ॥ शुद्ध अन्तःकरणवाला, दूसरोंके मनको हरण करनेवाला, बडे बडे शत्रुओंको जीतनेके लिये सदा उद्युक्त, नीतिके आचरणसे पापनाशक, तथा भरतचक्रवर्तीके हृदयकमलको प्रफुल्लित करनेमें सूर्यके समान ऐसे जयकुमार सेनापति सदा विजयशाली होवे ॥ २४८ ॥ जिसने मेघेश्वर देवोंको जीतकर देवेन्द्रकी समताको धारण किया, जो भव्यश्रेष्ठ है, शत्रुसमूहको मारकर गुणोंसे सुगुणवान् कहलाया, जो तेजस्वी, जयवान् तथा उत्तम सेनापतिरत्न हुआ ऐसा जयकुमार मनुष्य और देवोंके द्वारा वन्दनीय हुआ । यह योग्यही है कि धर्मके माहात्म्यसे प्राणी जग-

१ म. स. नीत्या निरस्तारितार्जयाभिधः ।

जित्वा मेघसुरान्सुरेन्द्रसमतां भेजे स भव्योत्तमः ।
हत्वा वैरिगणान्गुणेन सुगुणी दीप्यज्जयाख्यो जयी ॥
सेनानीमणिरुत्तमो नरसुरैः संसेव्यपादाम्बुजो ।
धर्मस्यैव विजृम्भितेन भुवने मान्यो जनो जायते ॥२४९

इति भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपालसाहाय्यसापेक्षे श्रीपाण्डवपुराणे
महाभारतनाम्नि जयस्य सेनापतिपदप्राप्तिवर्णनं नाम
द्वितीयं पर्व ॥ २ ॥

। तृतीयं पर्व ।

जिनं नौमि जितारातिं वृषभं वृषलाञ्छनम् । वृषभं वृषदातारं वृषार्थिजनसेवितम् ॥१
अथ सोमप्रभस्यान्ये सुताश्च विजयादयः । गुणैर्विजज्ञिरे रम्याश्चतुर्दशमनूपमाः ॥२
तैः पञ्चदशभिः पुत्रै रेजे राजा सुराजवत् । अन्यदा कायभोगेषु विरक्तोऽभूद्विशांपतिः ॥३
विभज्य राज्यं संयोज्य धुर्ये शौर्योर्जिते जये । गत्वा स वृषभस्यान्ते दीक्षित्वा मोक्षमन्वभूत्॥४

तमें मान्य होता है ॥२४९॥

ब्रह्मश्रीपालकी सहायतासे श्रीशुभचन्द्रभट्टारकद्वारा रचित पाण्डवपुराणमें अर्थात् महाभारतमें जयकुमारको सेनापतिपद प्राप्तिका वर्णन करनेवाला दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥२॥

[तृतीय पर्व]

जिन्होंने कर्म–शत्रुओंपर विजय प्राप्त किया है, जो वृषभसे-धर्मसे शोभायमान हैं, बैल जिनका चिह्न है, जो भव्योंको धर्मोपदेश देते हैं, धर्मार्थी जन जिनकी सेवा करते हैं, उन वृषभनाथ जिनेश्वरकी मैं स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

[जयकुमार नृप नागनागीका चरित्र कहते हैं ।] सोमप्रभ राजाको जयकुमारके अतिरिक्त गुणोंसे सुन्दर तथा चौदह मनुओंके समान विजय आदि चौदह पुत्र थे । उन पन्द्रह पुत्रोंके साथ वह राजा इन्द्रके समान शोभता था । किसी समय राजा सोमप्रभको शरीर और भोगोंसे वैराग्य हुआ । अपना समस्त राज्य समस्त पुत्रोंमें विभक्त कर शौर्यसे श्रेष्ठ जयकुमारको उनपर नियुक्त किया । जैसे पूर्वकालमें श्रेयांस राजाके साथ नृपपदका अनुभव सोमप्रभ राजाने किया था वैसेही अब उसके साथ आदि भगवानके समीप दीक्षा लेकर मुक्तिसुखका अनुभव लेने लगा ॥ २-४ ॥
किसी समय जयकुमार राजा क्रीडा करनेके लिये नगरके बाहर घने उपवनमें चला गया । वह बैठे हुए दर्शनीय शीलगुप्त नामक मुनीश्वरको उसने नमस्कार किया । वहां नागयुग्मके साथ धर्म

नृपस्त्वं श्रेयसा सार्धमन्वभूत्स यथा पुरा । एकदा स विहारार्थं बाह्योद्यानं गतो घनम् ॥५
तत्रासीनं मुनिं लोक्यं शीलगुप्तं ननाम सः । शृण्वन्धर्मं स्थितेनामा नागयुग्मेन तत्र च ॥६
प्रत्याविशत्पुरीं तुष्टो विशिष्टवृषवर्धितः । कदाचित्स घनारम्भे प्रचण्डवज्रपाततः ॥७
मृतः शान्तिं समापन्नो नागो नागामरोऽजनि । अन्यदा गजमारुह्य तद्वनं पुनराप सः ॥८
सार्धं श्रुतवतीं नागीं धर्मं राजात्र चात्मना । दृष्ट्वा काकोदरेणामा कृतकोपं विजातिना ॥९
जघानेन्दीवरेणासौ जम्पती तौ धिगित्यरम् । नश्यन्तौ पत्तयः काष्ठैर्लोष्ठैरघ्नन्समे तदा ॥१०
दुश्चरित्राय को नात्र राजकोपे हि कुप्यति । वेदनाकुलधीर्मृत्वा नागः स निर्जरान्वितः ॥११
तदा बभूव गङ्गायां कालीति जलदेवता । पश्चात्तापहता सापि धर्मं ध्यात्वा स्वमानसे ॥१२
स्वनागस्य प्रिया भूत्वा राज्ञः स्वमृतिमाह च । जातकोपोऽमरो हन्तुं जयं तद्गृहमासदत्॥१३
सहन्ते न ननु स्त्रीणां तिर्यञ्चोऽपि पराभवम् । जयो रात्रौ वसन्गेहं श्रीमत्याः कौतुकं प्रिये॥१४

श्रवण कर आनंदित तथा विशिष्ट धर्मसे उन्नत होकर राजा नगरमें लौट आया। किसी समय वह नाग वर्षाकालमें प्रचण्ड वज्रपात होकर शान्तिसे मरा और नागकुमार देव हुआ। जयकुमार राजा हाथीपर चढकर पुनः उस वनमें आया। वहां पूर्व कालमें जिसने अपने साथ धर्मश्रवण किया था ऐसी नागिनीको काकोदर नामक विजाति सर्पके साथ देखकर 'इस दम्पतिको धिक्कार है' ऐसा कह कर नीलकमलसे ताडन किया। जब वे नाग और नागिनी भागने लगे तब राजाके सैनिकोंने लकडी तथा पत्थरोंसे दोनोंको युगपत् मार डाला। योग्य ही है कि दुश्चरित्रके ऊपर राजकोप होनेपर कौन कुपित नहीं होता? अर्थात् कुपित होते हैं। वेदनासे व्याकुल वह नाग मरकर कर्मनिर्जरासे गंगानदीमें काली नामकी जल-देवता हो गया। वह नागिनी भी पश्चात्ताप-पीडित होकर और मनमें धर्मके स्वरूपका विचार कर मरनेसे अपने नागकी प्रिय पत्नी हुई। तथा उसने उसको अपने मृत्युका हाल कह सुनाया; तब वह नागकुमार क्रुद्ध होकर जयकुमार राजाको मारनेके लिये उसके घर आगया ॥ ५-१३ ॥ ठीकही है कि तिर्यंच प्राणी भी अपनी स्त्रियोंका अपमान सहन नहीं करते हैं। किसी समय जयकुमार राजा रात्रीमें श्रीमतीके महलमें रह कर उसे "हे प्रिये, कौतुककी एक बात मैंने देखी वह मैं तुझे कहता हूं सुन" कह कर उसने श्रीमतीको नागिनीका सम्पूर्ण चरित कहा। "मैंने यहां कहांसे जन्म लिया है? मुझे किससे धर्मोपदेश मिला" ऐसा विचार करनेसे उस देवको सब वृत्त मालूम हुआ। "मुझे इन राजाकी संगतिसे धर्मप्राप्ति हुई तथा वह धर्म मेरे साथ मोक्षप्राप्ति होने तक रहेगा। सत्संगतिको छोडकर अन्य हित नहीं है," ऐसा विचार कर नागकुमारने राजाके ऊपरका कोप छोड दिया और कृतज्ञ तथा श्रेष्ठ ऐसे जयकुमारकी उसने रत्नोंसे पूजा की और अपना वृत्तान्त कह दिया। तथा अपने कार्यके प्रसंगमें मेरा स्मरण करो ऐसी विज्ञप्ति कर वह देव अपने घर चला गया ॥ १४-१७ ॥

श्रुण्वेकं दृष्टमित्याख्यत्तं चार्यखिलचेष्टितम् । अहं कुतः कुतो धर्मः संसर्गादस्य सोऽभवत्॥१५
ममेह सिद्धिपर्यन्तो नान्यत्सत्संगमाद्धितम् । ध्यात्वेति मुक्तकोपोऽसौ कृतज्ञो जयमुत्तमम्॥१६
रत्नैः संपूज्य स्वस्यापि प्रपञ्चं न्यगदत्सुरः। स्मर्तव्योऽहं स्वकार्येऽपीत्युक्त्वा स्वगृहमासदत्॥१७
जयोऽपि चक्रिणा सार्धमाक्रम्य क्रमतो दिशः। विक्रमी क्रमणं मुक्त्वा संयमीव शमं श्रितः॥१८
अथ काश्यभिधो देशो विकाशी विष्टपेऽखिले। भोगभूमिक्षयाद्भोगभूमिः साक्षादिवाभवत्॥१९
वाराणसी पुरी तत्रामानैः सौधैरिवाहसत्। स्वर्विमानानि संजित्य शुभां तामामरीं पुरीम्॥२०
तत्पतिः कम्पितारातिरकम्पनो बभूव च। पूर्वोपार्जितपुण्यस्य वर्धनं रक्षणं श्रियः॥२१
तत्प्रिया सुप्रभादेवी सुप्रभा हिमगोरिव। प्रभाकुमुदखण्डानि दधती विपुलश्रिया॥२२
सहस्रं तत्सुता जाताः स्फुरन्तश्चांशवो रवेः। हेमाङ्गदसुकेतुश्रीसुकान्ताद्या इवोन्नताः॥२३
तयोः सुलोचनालक्ष्मीवत्यौ पुत्र्यौ बभूवतुः। हिमवत्पद्मयोर्गङ्गासिन्धू वानु ततः शुभे॥२४
सुलोचना परा पुत्री सुलोचना कलागुणैः। मनोरमा यथा लक्ष्मीश्चन्द्रिकेव जगत्प्रिया॥२५

इधर पराक्रमी जयकुमार भी चक्रवर्ती भरतेश्वरके साथ सर्व दिशाओंको क्रमसे आक्रमण कर अर्थात् दिग्विजय कर लौट आया। अनन्तर दिग्विजयके कार्यको छोड कर संयमीके समान शमको प्राप्त हुआ ॥ १८ ॥

[अकम्पन–नृपकन्या सुलोचनाका वृत्त] इस भूमण्डलमें प्रसिद्ध काशी नामक देश है। वह भोगभूमिका क्षय होने पर साक्षात भोगभूमीके समान दीखता था। उस देशमें वाराणसी नामक नगरी अपने अत्युच्च प्रासादोंके द्वारा स्वर्गीय विमानोंको जीतकर शुभ ऐसी देवनगरीको मानो हसती थी ॥१९-२०॥ शत्रुओंके छक्के छुडानेवाला, पूर्वोपार्जित पुण्यको बढानेवाला, तथा लक्ष्मीका रक्षण करनेवाला अकम्पन नामका राजा उस नगरीका स्वामी था ॥२१॥ अपनी विपुल श्रीसे कुमुद-खण्डोंको धारण करनेवाली चन्द्रमाकी कान्तीके समान सुप्रभा नामक देवी उस राजाकी पत्नी थी। अर्थात जैसे चन्द्रमाकी किरणें अपनी विपुलश्रीसे निशाविकासी कमलसमूहको प्रफुल्लित करती हैं वैसेही यह रानी अपने विपुल ऐश्वर्यसे (कु–पृथ्वी; मुद–आनन्द, षण्ड-समूह) पृथ्वीको आनंदित करती थी ॥ २२ ॥ राजा-रानीको सूर्यकी चमकीली हजार किरणोंके समान उन्नतिशाली हजार पुत्र हुए। हेमांगद, सुकेतु, श्रीसुकान्त इत्यादि उनके नाम थे ॥ २३ ॥ इस दम्पतीको हिमवान पर्वतके पद्महदसे उत्पन्न गंगा सिन्धु नदियोंकी तरह सुलोचना और लक्ष्मीवती नामकी दो शुभ पुत्रियां हुईं ॥ २४ ॥ सुन्दर आंखोवाली सुलोचना अपने कलागुणोंसे लक्ष्मीके समान जनमनोंको हरती थी और चन्द्रकी कान्तिके समान जगतको प्रिय थी ॥ २५ ॥ शुक्लपक्षकी रात्री जिस तरह चन्द्रमाकी सोलहवी कला और गुणोंको बढाती है उसी तरह सुमति नामक धायने भी सुलोचनाके गुण और कलाओंको बढाया ॥ २६ ॥ सुलोचनाकी जांघे केलेके खंबेके समान होनेसे

सुमत्याख्याभवत्तस्या धात्री सर्वगुणान् कलाः। अवर्धयन्निशा शुक्ला रेखायाः शशिनो यथा॥२६
रम्भास्तम्भोरुकत्वेन सा रम्भा भाषिता बुधैः। तिलोत्तमसमूहेन तिलोत्तमैव सा मता॥२७
भ्राजिष्णुकेशभारेण सुकेशी कथिता जनैः। परमैश्वर्ययोगेन सेन्द्राणीसमतां गता॥२८
फाल्गुनेऽष्टाह्निकायां सा संपूज्य जिनपुङ्गवान्। कृतोपवासा तन्वङ्गी शेषां दातुं नृपं गता॥२९
सोऽपि तां तत्करां दृष्ट्वोत्थाय तद्दत्तशेषिकाम्। कृताञ्जलिः समाधाय न्यधत्त शिरसि स्वयम्॥३०
उपवासपरिक्षीणा पुत्रि त्वं पारणाकृते। सदनं याहि वेगेनेति तां सोऽपि व्यसर्जयत्॥३१
संपूर्णयौवनां बालां वीक्ष्य भूपः स्वमन्त्रिणः। पराङ्श्रुतार्थसिद्धार्थसर्वार्थसुमतिश्रुतीन्॥३२
आहूयेति समापृच्छत्कस्मै देयेति कन्यका। श्रुतार्थः प्राह भूपेशात्र भारतस्य मण्डनम्॥३३
भरतस्य सुतो धीमानर्ककीर्तिर्वरो मतः। कुलं रूपं वयो विद्यावृत्तं श्रीः पौरुषादिकम्॥३४
यद्वरेषु विलोक्येत तत्सर्वं तत्र पिण्डितं। सिद्धार्थोऽत्रावदत्सर्वमस्तु किं च कनीयसः॥३५
ज्यायसा सह संबन्धं नेच्छन्ति विबुधा जनाः। प्रभञ्जनो रथचरो बालिर्वज्रायुधस्तथा॥३६
मेघस्वरो भूमिभुजस्तथान्ये सन्ति भूमिपाः। तेषु यत्राशयो योऽस्ति तस्मै कन्येति दीयताम्॥३७

सुलोचनाको विद्वान लोक रंभा कहते थे। उसके देहपर उत्तम तिलसमूह होनेसे उसे तिलोत्तमा कहते थे। कांतियुक्त केशसमूहसे उसे लोक सुकेशी कहते थे और महावैभवके संयोगसे वह इन्द्राणीके समान दीखती थी॥ २७ २८॥ फाल्गुनकी अष्टाह्निकामें कृशाङ्गी सुलोचना उपवासके बाद जिनभगवंतकी पूजा करके शेषा देनेके लिये अपने पिताके पास गई। शेषा जिसके हाथमें है ऐसी सुलोचनाको देख कर तथा उठ कर दी हुई शेषाको अंजलीमें ग्रहण कर उसे अपने मस्तकपर राजाने स्वयं स्थापन किया। "हे पुत्रि, तुम उपवाससे क्षीण हुई हो अतः पारणाके लिये शीघ्र अपने घर जाओ" ऐसा कह कर राजाने उसे घर भेज दिया॥ २९. ३१॥ अपनी पूर्ण यौवनवती कन्याको देख राजाने श्रुतार्थ, सिद्धार्थ, सर्वार्थ, और सुमति नामक मंत्रियोंको बुला कर पूछा कि सुलोचना कन्या किसे देना चाहिये? उस समय श्रुतार्थने इस प्रकार कहा। "हे भूपेश, यहां भारतका भूषण भरत चक्रवर्ती है और उसका पुत्र विद्वान् अर्ककीर्ति सुलोचनाके लिये योग्य वर है। कुल, रूप, वय, विद्या, सदाचार, श्री, पौरुष आदिक जो विशेषतायें वरमें देखी जाती हैं वे सब अर्ककीर्तिमें विद्यमान हैं"। तब सिद्धार्थने कहा "कुलरूपादिक सर्व वरयोग्य गुण चक्रवर्तीके पुत्रमें हैं परंतु विद्वज्जन छोटोंका बडोंके साथ संबंध होना पसंद नहीं करते। प्रभंजन, रथचर, बलि, वज्रायुध, मेघेश्वर तथा अन्य भी अनेक राजा भूगोचरी राजाओंमें श्रेष्ठ हैं, उनमेंसे आपको जो पसंद हो उसे अपनी कन्या आप देवें।" ३२-३७॥ इसके अनंतर सर्व कार्योंको सिद्ध करनेवाले सर्वार्थ मंत्रीने इस प्रकार उत्तम भाषण किया। "भूगोचरी राजाओंके साथ तो हमारा सम्बन्ध पहलेहीसे हैही, परन्तु विद्याधरोंके साथ अपूर्व है।

सर्वार्थः सिद्धसर्वार्थः श्रुत्वोवाच वचो वरम् । भूगोचरेण संबन्धः स नः पूर्वं हि विद्यते ॥३८
विद्याधरेण संबन्धोऽपूर्वोऽस्त्वस्याः सुखप्रदः । श्रुत्वेति सुमतिः प्राह युक्तमेतन्न सांप्रतम् ॥३९
स्वयंवरविधिः कार्यः किंतु सर्वसुखावहः । श्रुत्वेत्यकम्पनो धीमान्वरमाह निवेद्य च ॥४०
सुप्रभाया इदं कार्यं तथा हेमाङ्गदस्य च । समानेतुं महीपालानादिदेश वचोहरान् ॥४१
तदा ज्ञात्वा सुसंबन्धं विचित्राङ्गदसंज्ञकः । सौधर्मादागतो देवोऽकम्पनं प्रत्यभाषत ॥४२
स्वयंवरविधिं तस्या वीक्षितुं वयमागताः । इत्युक्त्वोपपुरे भागे ब्रह्मस्थानोत्तरे पुरे ॥४३
प्राङ्मुखं सर्वतोभद्रं प्रासादं बहुभूमिकम् । विधाय विधिवद्धीमांस्तं परीत्य विशुद्धदृक् ॥४४
मुदा निष्पादयमास स्वयंवरसुमण्डपम् । ततो महीभृतः सर्वे त्रिसमुद्रान्तरस्थिताः ॥४५
तल्लेखार्थं परिज्ञाय प्रापुर्वाणारसीं पुरीम् । स्वोचितेषु नृपास्तत्र स्थानेषु स्थितिभाजिनः ॥४६
सुलोचनाथ सिद्धार्चां चर्चयित्वा समग्रहीत् । सिद्धशेषां कृतस्नाना कृतनेपथ्यमण्डना ॥४७

अतः यह सम्बन्ध सुलोचनाको सुखद होगा "। सिद्धार्थ मन्त्रीका भाषण सुनकर सुमति मन्त्रीने कहा कि आपका " यह कहना युक्त है परन्तु इस समय स्वयंवरविधि करना चाहिये और वह सबको सुखदायक होगा।" सुमति मन्त्रीका भाषण सुनकर बुद्धिमान् अकम्पन राजाने उसकी बात मान ली और अपनी सुप्रभा रानी तथा ज्येष्ठ पुत्र हेमाङ्गदको यह बात सुनायी। तदनंतर सर्व राजाओंको लानेके लिये दूतोंको आज्ञा दी ॥ ३८-४१ ॥ उस समय स्वयंवर पद्धतिको जानकर स्वर्गसे आये हुए विचित्राङ्गद देवने अकम्पन राजाको कहा, "हे राजन्, स्वयंवरविधिकी तयारी करनेके लिये हम आये हैं।" ऐसा कह कर वाराणसी नगरमें उसके समीप ब्रह्मस्थानकी उत्तर दिशामें पूर्व दिशाकी तरफ मुखवाला अनेक तलोंसे भूषित सर्वतोभद्र नामक प्रासाद निर्माण कर उसके चारों तरफ उस सम्यग्दृष्टि बुद्धिमान् देवने आनन्दसे स्वयंवरमण्डपकी रचना की। इसके अनन्तर तीन समुद्रोंसे मर्यादित भूप्रदेशोंमें रहनेवाले सर्व राजगण अकम्पनराजाके लेखार्थको (कुंकुम-पत्रिका) प्राप्त कर वाराणसी नगरको आये और स्वयंवरमण्डपमें अपने योग्य स्थानपर बैठ गये ॥ ४२-४६ ॥ तदनन्तर स्नानोत्तर वस्त्रालङ्कार धारण कर सुलोचनाने सिद्धप्रतिमाका पूजन किया और सिद्धशेषा मस्तकपर धारण की ॥ ४७ ॥

[सुलोचना जयकुमारको वरती है] अपने रूपसे रतिको जीतनेवाली कन्या सुलोचनाको रथमें विराजमान कर महेन्द्रदत्त कञ्चुकी स्वयंवरमण्डपमें आया। उसी समय ऐश्वर्यसे इन्द्रको जीतनेवाले विद्वान् अकम्पन राजा भी सुप्रभा रानीसहित मण्डपमें पधारे। बलवान् हेमाङ्गदकुमार अपने छोटे भाईयोंके साथ समस्त सैनिकोंसे सज्ज होकर आनन्द और स्नेहसे स्वयंवर-मण्डपमें गये। महेन्द्रदत्त कञ्चुकी रत्नमाला हाथमें लेकर रथमें बैठा था; वह विद्याधर राजाओंको दिखाता हुआ सुलोचना कन्याको इस प्रकार कहने लगा ॥ ४८-५१ ॥ " पुत्री, यह दक्षिणश्रेणीका अधिपति

रथे महेन्द्रदत्ताख्यः कञ्चुकी तां समाययौ। आरोप्य मण्डपे कन्यां रूपेण जितसद्रतिम्॥४८
तदा पुरात्समागत्य कृती जितपुरंदरः। सुप्रभासहितो राजा सोऽस्थान्मण्डपसंनिधिम् ॥४९
समस्तकटकं सम्यक् संनाह्य सानुजो बली। हेमाङ्गदः समायासीत्प्रीत्या च परितो मुदा॥५०
स्थित्वा महेन्द्रदत्तोऽपि रत्नमालाधरो रथे। सुलोचनामुवाचेति दर्शयन्खगनायकान् ॥५१
कन्येऽयं च नमेः पुत्रो दक्षिणश्रेणिनायकः। सुनमी रोचते तुभ्यं व्रियतां व्रियतामिति॥५२
अयं सुविनमी राजोत्तरश्रेणिखगाधिपः। सुनमेः संततिश्चान्ये खगास्तेन निदर्शिताः ॥५३
कञ्चुकी दर्शयन्नेवं दर्शयामास भूमिपम्। अर्काभमर्ककीर्त्याख्यं चक्रिपुत्रं स्फुरद्गुणम् ॥५४
साथ मुक्त्वार्ककीर्त्यादीनजेया जयमागता। मुक्त्वाखिलान्द्रुमांश्चूतं वसन्ते कोकिला यथा॥५५
तत्र रक्तं मनो मत्वा तस्याः प्रोवाच कञ्चुकी। जयोऽयं जगति ख्यातः सोमप्रभसुतः शुभः॥५६
अस्य रूपं कथं वर्ण्यं यदेतदतिमन्मथम्। स आदर्शेऽर्पणीयः किं हस्तः कङ्कणलोकने ॥५७
उत्तरे भरते देवाञ्जित्वा मेघकुमारकान्। कृतोऽनेन मृगेन्द्रनादो जिततन्मेघसुस्वनः ॥५८
चक्रिणा स्वभुजाभ्यां हि बबन्धे वीरपट्टकम्। चक्रे मेघस्वराख्यास्य हृष्ट्वा सेनापतीकृते॥५९
तदा जन्मान्तरस्नेहाद् दृष्ट्वा तं सुन्दराकृतिम्। कुन्दाभांस्तद्गुणाञ्श्रुत्वा मुमुदे सा च मानिनी॥६०
समुत्क्षिप्य रथादेषा कन्या कञ्चुकिनः करात्। रत्नमालां समादाय चिक्षेप तत्सुकन्धरे॥६१

सुनमि विद्याधर नमि विद्याधरेशका पुत्र है। यदि तुझे यह पसंद हो तो तू इसे वर। हे कन्ये, यह सुनमीका पुत्र सुविनमी विद्याधर राजा उत्तरश्रेणीका स्वामी है" इस तरह अन्य अनेक विद्याधरोंको महेन्द्रदत्तने दिखाया। इस प्रकार अनेक राजाओंको दिखाते हुए महेन्द्रदत्तने सूर्यसम कान्तिधारक, जिसके गुण स्फुरित हो रहे हैं ऐसे चक्रवर्तीके पुत्र अर्ककीर्तिको दिखाया ॥५२-५४॥ वसन्तऋतुमें जैसे कोकिला सम्पूर्ण वृक्षोंको छोडकर आम्रवृक्षका आश्रय लेती है वैसेही किसीसे भी नहीं जीती जानेवाली सुलोचना जयकुमार राजाके पास आई। जयकुमारके ऊपर कन्याका मन अनुरक्त हुआ है ऐसा जानकर कञ्चुकीने कहा "यह जयकुमार सोमप्रभ राजाका पुत्र है। समस्त संसारमें इसकी कीर्ति फैली है और यह शुभ विचारोंका धारक है ॥ ५५-५६ ॥ इसके रूपका कैसे वर्णन होगा? क्योंकि वह मदनके रूपको भी उल्लंघनेवाला है। हाथकंकनको क्या आरसीकी जरूरत होती है? उत्तर भारतमें इसने मेघकुमार देवोंको जीतकर उनके मेघके समान स्वरको जीतनेवाला सिंहनाद किया था। उस समय चक्रवर्ती भरतने अपने दोनों बाहुओंसे इसके मस्तकपर वीरपट्ट बांधकर इसे सेनापतिपद दिया और आनंदित हो कर मेघस्वरपद प्रदान किया।" उस समय सुंदर आकृतिवाले जयकुमारको देखकर तथा कुन्दके समान उसके उज्ज्वल गुणोंको देखकर पूर्वजन्मके स्नेहसे वह सुलोचना आनन्दित हो गई ॥ ५७-६० ॥ तदनन्तर रथसे उतरकर सुलोचनाने कञ्चुकीके हाथसे रत्नमाला ली और जयकुमार राजाके सुन्दर गलेमें पहना दी

तदा च सर्वतूर्याणामुदतिष्ठन्महास्वरः । कन्यासामान्यमुत्साहं दिक्कन्याः श्रावयन्निव ॥६२
साधु साधु कृतं सर्वे कन्ययाघोषयन्निति । साधवो वीक्ष्य योग्यत्वं साधुकारं वदन्त्यहो॥६३
तदा दुर्मर्षणः कश्चिदर्ककीर्त्यनुजीवकः । कोपादुद्दीपयन्भूपान्प्राह सर्वासहिष्णुकः ॥६४
अकम्पनो वृथा युष्मानाहूयासञ्जयजये । कन्यां विधित्सुर्वो दीर्घां पराभूतिं युगावधिम्॥६५
इत्युक्त्वा चक्रिणः पुत्रं सव्रीडं प्राप्य चाब्रवीत् । त्वत्तां स्वगेहमानीय कृतं दौष्ट्यमनेन च॥६६
त्वं हि चाक्रिसुतः श्रीमाञ्जयोऽयं तव सेवकः। त्वां हित्वास्मै ददे कन्यानेन दौष्ट्यं महत्कृतम् ॥६७
इत्यसन्धुक्षयद्धूर्तुर्वचोवातैः क्रुधानलम् । मामधिक्षिप्य कन्येयं दत्तानेन दुरात्मना ॥६८
वीरपट्टस्तदा सोढश्चक्रिणो भयतो मया । मालां सहे कथं चाद्य सर्वसौभाग्यहारिणीम् ॥६९
इति निर्मुक्तमर्यादो हेयादेयविमूढधीः । सोऽविचार्याचलद्योध्दुं कल्पान्तजलदोपमः ॥७०

॥ ६१ ॥ उस समय सुलोचना कन्याका असामान्य उत्साह दिक्कन्याओंको मानो सुनानेवाला, सर्व वाद्योंका ध्वनि युगपत् उत्पन्न हुआ ॥ ६२ ॥ इस कन्याने बहुत अच्छा कार्य किया ऐसा सर्व लोग कहने लगे । तथा कन्याकी योग्यता अर्थात् योग्य पुरुषको ढूंढ कर उसे वरनेका चातुर्य देखकर कन्याकी प्रशंसा करने लगे। यह योग्य ही है कि सज्जन कार्यको देखकर उसकी प्रशंसा करते ही हैं। परन्तु अर्ककीर्ति राजपुत्रका दुर्मर्षण नामक एक किङ्कर था। उसको जयकुमारको वरनेका कार्य सहन नहीं हुआ । इस लिये कोपसे इतर राजाओंको भडकानेके लिये वह इस प्रकार कहने लगा, "हे राजगण, कल्पान्तकालतक चलनेवाला आपका दीर्घ अपमान करनेकी इच्छासे अकम्पन राजाने आपको बुलाया और अपनी कन्यासे जयकुमारके गलेमें वरमाला डलवायी"। इस प्रकारकहकर लज्जित हुए चक्रवर्तिपुत्र अर्ककीर्तिके पास जाकर उसको कहने लगा। "हे प्रभो, आप चक्रवर्तीके लक्ष्मीवान् पुत्र हैं और जयकुमार आपका सेवक है। आपको छोडकर अकम्पनराजाने जयकुमारको अपनी कन्या दी, यह उसने बडी भारी दुष्टता की है"। इस प्रकार वचनरूपी हवासे उसने अर्ककीर्तिकी क्रोधरूपी अग्निको प्रदीप्त किया। दुर्मर्षणके वचन सुनकर अर्ककीर्तिने इस प्रकार विचार किया कि इस दुष्ट अकम्पनने मेरा अपमान कर सुलोचना कन्या जयकुमारको दी। चक्रवर्तीके भयसे जयकुमारको बंधा हुआ वीरपट्ट मैंने सहन किया। परन्तु मेरे सौभाग्यको—महती योग्यताको नष्ट करनेवाला यह जयकुमारको वरनेका कार्य मैं कैसे सहूं? इस प्रकार विचार कर जिसने मर्यादा छोडी है, ग्राह्याग्राह्यका विचार करनेमें जिसकी मति कुंठित हुई है ऐसा अर्ककीर्तिकुमार अविचारसे कल्पान्तकालके मेघसमान युद्धके लिये उद्यत हुआ ॥ ६३–७० ॥

[अनवद्यमति मंत्रीके हितोपदेशकी विफलता] मन्त्रीके लक्षणोंसे युक्त अनवद्यमति नामका मन्त्री अर्ककीर्तिको इस प्रकार न्याय्य और हितकर वचन कहने लगा। "हे कुमार, तुम्हारे इक्ष्वाकु वंशमे धर्मतीर्थकी प्रवृत्ति हुई है। और दानतीर्थकी प्रवृत्ति कुरुवंशके धारक पुरुषोंसे हुई है।

अनवद्यमतिर्मन्त्री मन्त्रिलक्षणलाक्षितः । न्याय्यं पथ्यं वचो वक्तुमर्ककीर्तिं प्रचक्रमे ॥७१
धर्मतीर्थं भवद्वंशाद्दानतीर्थं कुरूद्भवात् । तव तस्यापि संबन्धो वर्तते स्वामिभृत्ययोः ॥७२
अन्ययोषाभिलाषस्य पौर्व्यं त्वं मा कृथा वृथा। अवश्यमेषाप्यानीता न भार्या ते भविष्यति॥७३
यशः स्थास्नु प्रतापाढ्यं जयस्य स्याद्यथा दिनम् । मलीमसापकीर्तिस्ते स्थायिन्यत्र निशेव वै॥७४
मा मंस्थाः साधनं सर्वं ममैतदिति वै बुधः । भूपाला बहवोऽप्यत्र सन्ति तत्पक्षगामिनः॥७५
दुःप्रापं तत्त्वया पुम्भिः पुरुषार्थत्रयं महत् । अर्जितं न्यायमुल्लङ्घ्य वृथा तत्किं विनाशयेः॥७६
भूभुजां सन्ति कन्यादिरत्नान्यन्यानि भूतले । तानि सर्वाणि रत्नैश्चानयामि तेऽद्य निश्चितम्॥७७
स्वयंवरविधौ नैव नियमोऽयं विवाह्यते । मान्यो नायं लघुः किंतु कन्येष्टो यो वरः स च॥७८
इति न्याय्यं वचस्तस्य हृदये न स्थितिं व्यधात् । यद्वत्पयःकणो मुक्तो युक्त्या सन्नलिनीदले॥७९
एवमुल्लङ्घ्य मन्त्रीशं दुर्ग्रहार्तो महाकुधीः । स्वसेनपं समाहूय प्रत्यासन्नपराभवः ॥८०
सर्वेषां च महीपानां प्रकथ्य रणनिश्चयम् । भेरीं संदापयामास जगत्त्रयभयावहाम् ॥८१

नेरा और जयकुमारका सेव्यसेवक संबन्ध है । तू उसका मालिक है और वह तेरा सेवक है । हे कुमार, तू परस्त्री की अभिलाषा करनेवालोंमें प्रथम स्थान मत बन । इस सुलोचनाको हरण करने पर भी यह किसी भी हालतमें तेरी भार्या नहीं होगी । हे कुमार, जैसा दिन प्रतापयुक्त रहता है वैसा जयकुमारका यश इस जगतमें स्थिर और प्रतापसे परिपूर्ण रहेगा तथा रात्रीके समान तेरी अपकीर्ति हमेशा स्थिर रहेगी । हे कुमार, तू सैन्यादिक सब युद्धके साधन मेरे ही हैं ऐसा मत समझ, क्योंकि यहां आये हुए बहुतसे राजालोग उसके पक्षको धारण करनेवाले भी हैं । अन्य लोगोंको दुष्प्राप्य ऐसे धर्म, अर्थ और काम ये तीन पुरुषार्थ तुझे प्राप्त हुए हैं । परन्तु न्यायका उल्लंघन कर तू व्यर्थही उनका नाश मत कर । इस भूतलपर अन्य राजाओंके पास कन्यादिक तथा रत्न बहुत हैं उनको मैं रत्नोंके साथ आज तेरे पास निश्चयसे लाता हूं । स्वयंवर विधिमें सर्व श्रेष्ठ पुरुषही वरा जावे अन्य पुरुष न वरा जावे ऐसा कोई नियम नहीं है । कन्याको जो पुरुष पसंद होगा वही उसका पति होगा । इस प्रकारका न्याय्यवचन कमलिनीके दलपर युक्तिसे डाली हुई जलकी बूंदके समान कुमारके मनमें नहीं टिक सका " ॥ ७१-७९ ॥ इस प्रकार मंत्रीशके वचनोंको उसने नहीं माना । दुराग्रहसे पीडित, अत्यंत कुबुद्धिवाला, जिसका पराभव शीघ्र होनेवाला है, ऐसे कुमारने अपने सेनापतिको बुलाकर संपूर्ण राजाओंको युद्धके लिये तय्यार रहनेकी आज्ञा देकर जगत्त्रयको भयभीत करनेवाली भेरी बजवाई ॥ ८०-८१ ॥ भेरीकी ध्वनि सुनकर सर्व नृपगण युद्धोत्सुक हो गये । नाचते कुदते भटोंके द्वारा हाथोंकी ताली पीटनेसे उत्पन्न हुए चंचल शब्द सुनकर निष्ठुर तथा सर्व सामग्रीसे सज्ज हाथी, जो कि पर्वतके समान दीखते थे, युद्धके लिये आगे बढे । युद्धसमुद्रके तरंगसमान दीखनेवाले घोडे कवचसे सज्ज किये

भेरीरवं समाकर्ण्य नृपाः सर्वे रणोत्सुकाः । नटद्भटकरास्फोटचटुलारावनिष्ठुराः ॥८२
नागाः समन्तात्संनद्धाश्चेलुः प्रागचलोपमाः । संग्रामाब्धेस्तरङ्गाभास्तुरङ्गास्तु सगर्वकाः॥ ८३
चक्रचीत्कारसंचारा रथाश्चेलुः सवाजिनः । चण्डकोदण्डकुन्तासिकरास्तदनु पत्तयः ॥८४
गजं विजयघोषाख्यमर्ककीर्तिः सुकीर्तिमान् । समारुह्य चचालासावकम्पननृपं प्रति ॥८५
श्रुत्वा वार्तामिमां भूप आलोच्य सचिवैःसह । अर्ककीर्तिं समादिक्षद्दूतं स प्राप्य तं जगौ ॥८६
तवार्ककीर्ते किं युक्तमेवं[1] सीमातिलङ्घनम् । प्रसीद चक्रिपुत्र त्वं तन्मा कार्षीर्मृषागमम् ॥८७
इत्युक्तमप्यशान्तं तं ज्ञात्वा प्रत्येत्य तत्तथा । आख्यद्वाजीगमत्सर्वं दूतोऽकम्पनभूपतिम् ॥८८
शृङ्खलालिङ्गनोद्युक्तमिदानीमिव वानरम् । बध्द्वाऽनेष्ये कुमारं तं परदाराभिलाषिणम् ॥८९
इत्युक्त्वा स जयो मेघकुमारविजयार्जितम् । मेघघोषाभिधां भेरीं दापयामास सत्वरम् ॥९०
तच्छब्दाकर्णनात्सर्वे घूर्णितार्णवसंनिभाः । दन्तावला मदेनेवोत्तुङ्गाश्चेलुर्मदिष्णवः ॥९१
खनन्तः कुं स्वनन्तश्च वायुवेगाः सुवाजिनः । पूर्णसर्वायुधरथाः प्रनृत्यद्ध्वजबाहवः ॥९२
पदातयः परं प्रीत्या पेतुस्तत्संयुगं प्रति । योषितोऽप्यभटायन्त तत्र का वर्णना परा ॥९३

गये । जिनको घोडे जोडे गये हैं, जो चक्रके चीत्कारध्वनिसहित संचार कर रहे हैं ऐसे रथ चलने लगे । रथोंके पीछे पीछे प्रचंड धनुष्य, भाले, तरवारें जिनके हाथोंमें हैं ऐसे पयादे जाने लगे ॥ ८२–८४ ॥ उत्तम कीर्तिका धारक अर्ककीर्तिकुमार विजयघोष नामक हाथीपर आरूढ होकर अकंपन राजाके तरफ निकला ॥ ८५ ॥ इस वृत्तान्तको सुनकर अकम्पन राजाने अपने मंत्रियोंके साथ विचार कर अर्ककीर्तिके पास दूत भेजा, वह अर्ककीर्तिके पास जाकर इस प्रकार बोलने लगा- " हे कुमार आपका यह मर्यादाका उल्लंघन करना क्या योग्य है ? आप भरत चक्रवर्तीके पुत्र हैं, आप असत्य–अन्याय मार्गका पोषण न करें। आप प्रसन्न हूजिये। " दूतके इस प्रकार कहने पर भी कुमार अशान्तही है ऐसा समझकर दूत लौटकर आया और उसने संपूर्ण वृत्तान्त अकम्पन महाराजको कहा ॥ ८६–८८ ॥ परस्त्रीकी अभिलाषा करनेवाले कुमारके गलेमें लोहशृंखला बांधकर बन्दरके समान मैं उसको यहां लाऊंगा, ऐसा कहकर जयकुमारने मेघकुमारों-पर विजय प्राप्त करके प्राप्त की हुई मेघघोषा नामकी भेरी तत्काल बजवाई ॥ ८९–९० ॥ भेरीका शब्द सुनकर तरंगित–समुद्रके समान सब योद्धा क्षुब्ध होगये । मदोन्मत्त हाथी मानों मदहीसे ऊंचे होकर युद्धस्थलके प्रति चलने लगे । हिसनेवाले और जमीनको खुरोंसे खोदनेवाले उत्तम घोडे वायुवेगसे दौडने लगे । सर्वायुधोंसे भरे हुए, नृत्य कर रहे हैं ध्वजरूपी बाहु जिनके ऐसे रथ तथा पयादे अतिशय प्रीतिसे युद्धके तरफ प्रयाण करने लगे । अधिक क्या कहे उस

१ स प ब म ग कुमार तव किं युक्तमेवं ।

अकम्पोऽकम्पनोऽरातिं संयुगे कम्पयन्ययौ । सूर्यमित्रः सुकेतुश्च जयवर्माथ श्रीधरः ॥९४
देवकीर्तिश्च मुकुटबद्धा जग्मुर्जयं प्रति । नाथसोमान्वयाश्चान्ये भूपास्तं परिवव्रिरे ॥९५
मेघप्रभोऽर्धविद्येशैर्विद्याधीशस्तमासदत् । विरच्य मकरव्यूहं रेजे मेघस्वरस्तदा ॥९६
चक्रव्यूहं विरच्याशु सोऽर्ककीर्तिर्जयत्स्वलम् ।सुनमिप्रमुखाः खेटास्तार्क्ष्यव्यूहमरीरचन् ॥९७
अष्टचन्द्राः खगाश्चक्रिपुत्रं च परिवव्रिरे । ततो भटा भटैः सार्धं योयुध्यन्ते रणाङ्गणे ॥९८
विपक्षहृदयं भित्त्वा शरास्तेषां विशन्ति च। दण्डादण्डि भटा भेजुःखड्गाखड्गि कचाकचि ॥९९
कुन्ताकुन्ति तयोर्युद्धं गदागदि शराशरि । मुशलामुशलि क्षिप्रं हलाहलि शिलाशिलि ॥१००
विशिखाश्चार्ककीर्तीनां ज्वलज्ज्वालाशिखोपमाः। जयानां योधमुख्यानां बिभिदुर्हृदयानि वै॥१०१
विलोक्य स्वबलं क्षिप्तं स तदा सानुजो जयः। वज्रकाण्डं धनुर्लात्वा समारेभे महाहवम्॥१०२
वादिनेव जयेनोच्चैः क्षिप्रं कीर्तिं जिघृक्षुणा । प्रतिपक्षः प्रतिक्षिप्तः शास्त्रैः शस्त्रैर्जिगीषुणा ॥१०३
खेचराः खेचरान्क्षिप्रं क्षिपन्ति गगने गताः । विद्यायुद्धग्रहग्रस्ता भेजुः संगरसंगरम् ॥१०४
समवेगैः समं मुक्तैर्बाणैर्गगनभूचरैः । अग्रेऽन्योन्यमुखालग्नैः स्थितं कतिपयक्षणान्॥१०५

समय स्त्रियाँ भी वीरके समान हो गयीं ॥ ९१-९३ ॥ धीर अकम्पन महाराज शत्रुओंको कम्पित करते हुए युद्धमें चले गये । सूर्यमित्र, सुकेतु, जयवर्मा, श्रीधर और देवकीर्ति ये मुकुटबद्ध भूपाल जयकुमारके पास आगये । नाथवंशी और सोमवंशी अन्य राजगण भी जयकुमारसे आ मिले । मेघप्रभ नामक विद्याधरोंका राजा आधे विद्याधरराजाओंको साथ लेकर जयकुमारसे आ मिला । उस समय जयकुमार मकरव्यूहकी रचना कर शोभने लगा ॥ ९४-९६ ॥ शीघ्रही चक्रव्यूहकी रचना कर अर्ककीर्तिने जय प्राप्त किया । सुनमि आदिक विद्याधर राजाओंने गरुडव्यूहकी रचना की । अष्टचन्द्र विद्याधरोंने चक्रिपुत्र अर्ककीर्तिका आश्रय लिया । इस प्रकार तयारी होनेके अनन्तर वीरपुरुष प्रतिपक्षवीरोंके साथ रणाङ्गणमें लडने लगे ॥ ९७-९८ ॥ अन्योन्यके बाण शत्रुहृदयको भेदकर उनमें घुसने लगे । वीरगण दंडों, तरवारों, भालाओं, गदाओं, बाणों, मुसलों, हलों और शिलाओंसे अन्योन्य लडने लगे । तथा एक दूसरेके केश पकडकर युद्ध करने लगे ॥९९-१००॥ प्रज्वलित ज्वालाओंके अग्रके समान अर्ककीर्तिके वीरोंके बाण जयकुमारके वीरमुख्योंके हृदयोंको भेदने लगे । अपने सैन्यको पराजित हुआ देखकर अपने छोटे भाईयोंके साथ युद्धस्थलमें आकर उसने वज्रकाण्ड धनुष्य हाथमें लेकर भयानक युद्ध किया ॥ १०१-१०२ ॥ कीर्तिके इच्छुक तथा प्रतिवादीको जीतनेकी इच्छा रखनेवाले वादीके समान शत्रुको जीतनेकी इच्छा रखनेवाले जय-कुमारने शस्त्रोंके द्वारा बडे जोर शोरसे शीघ्रही शत्रुको पराजित किया ॥१०३॥ आकाशमें विद्याधर वीर अपने प्रतिपक्षी विद्याधरवीरोंको परास्त करने लगे । विद्यायुद्धके ग्रहसे ग्रस्त होकर विद्याधर प्रतिपक्षी मारनेकी प्रतिज्ञा कर लडने लगे ॥ १०४ ॥ जिनका वेग समान है, जो समान-समयमें

सानुजोऽथ जयस्तावदाविःकृत्य यमाकृतिम्। हयमारुह्य पञ्चास्यमिव योध्दुं समुद्ययौ॥१०६
जयन्तं ते जयं वीक्ष्य समं पेतू रणोद्यताः। सर्वेऽपि युद्धशौण्डीरा अभ्यग्नि शलभा यथा॥१०७
लङ्घयित्वा गजानीकं कुमारो जयमारुणत्। विजयार्धगजाधीशं जय आरुह्य युद्धवान्॥ १०८
अरिंजयाख्यमारुह्य रथं श्वेताश्वयोजितम्। गृहीत्वा वज्रकाण्डं च दत्तं यच्चक्रिणा द्वयम्॥१०९
बन्दिवृन्देन संस्तुत्यः समुत्थाप्य महाध्वजम्। अर्ककीर्तिर्जयं लेभे जयलक्ष्मीसमुत्सुकः॥११०
जयो ज्यास्फालनं कृत्वा कृतान्तसमविक्रमः। गजानां भीषणस्तस्थौ दिशामप्याहरन्मदम्॥१११
जयोऽपि शरसंघातैरर्ककीर्तिं गतप्रभम्। चक्रे घनाघनः सूर्यं यथा विगतरश्मिकम्॥११२
अच्छैत्सीच्छत्रमस्त्राणि ध्वजं च दुर्जयो जयः। अर्ककीर्तेर्महौद्धत्यं हतवान्हतिकोविदः॥ ११३
अष्टचन्द्रास्तदागत्य जयस्येष्टं न्यवारयन्। भुजबल्यादयोऽभीयुर्योध्दुं हेमाङ्गदं रुषा॥११४
सभ्रातारं हरिव्यूहं हरिव्यूहा इवापरे। सानुजोऽनन्तसेनोऽपि प्राप मेघस्वरानुजान्॥११५

धनुष्योंमे विद्याधर और भूगोचरी वीरोंके द्वारा छोडे गये हैं ऐसे बाण एक दूसरेसे भिडकर आकाशमें कुछ क्षण तक स्थिर हो गये ॥१०५॥ तदनन्तर अपने भ्राताओंको साथ लेकर भीषण-यमसा आकार धारण कर, और घोडेपर चढकर, सिंहके समान जयकुमार युद्धके लिये उद्युक्त हुआ ॥ १०६ ॥ जैसे पतङ्ग अग्निमें पडते हैं वैसे वे युद्धचतुर योधा युद्धके लिये जयकुमारको देखकर लडनेकी इच्छासे उसके ऊपर पडने लगे ॥ १०७ ॥ अर्ककीर्ति कुमारने विजयार्द्ध नामक हाथीपर चढ उसकेद्वारा गजसेनाको उल्लंघकर जयकुमारको रोका। तब जयकुमार श्रीचक्रवर्ती द्वारा दिये हुए, जिसे शुभ्र घोडे जोते हैं ऐसे अरिंजय नामक रथपर चढकर हाथमें वज्रकाण्ड धनुष्य लेकर अर्ककीर्तिके साथ युद्ध करने लगा ॥ १०८-१०९ ॥ स्तुतिपाठकों द्वारा स्तवनीय जयलक्ष्मीको पानेके लिये उत्सुक अर्ककीर्तिने अपना महाध्वज उठाकर जय प्राप्त किया ॥ ११० ॥ कृतान्तके--यमके समान विक्रम करनेवाले भयानक जयकुमारने धनुष्यकी डोरीकी टंकारसे दिग्गजोंका भी मद नष्ट किया ॥१११॥ जैसे मेघ सूर्यको आच्छादित करके किरणरहित करता है। वैसे जयकुमारने भी बाणोंके समूहसे अर्ककीर्तिको कांतिहीन कर दिया ॥ ११२ ॥ शत्रुघात करनेमें निपुण दुर्जय जयकुमारने अर्ककीर्तिका छत्र, अस्त्र और ध्वज तोड दिया तथा उसकी महती उद्धतता नष्ट की ॥ ११३ ॥ उस समय अष्टचन्द्रादिक विद्याधर आकर जयके इष्टकार्यमें बाधक हुए। भुजबल्यादिक भूपालोंने क्रोधसे हेमांगदपर लडनेके लिये आक्रमण किया ॥ ११४ ॥ जैसे सिंहोंके समूह मृगोंके समूहपर आक्रमण करते हैं वैसे अपने छोटे भ्राताओंको लेकर लडनेके लिये आये हुए हेमांगदपर भुजबल्यादि राजाओंने आक्रमण किया तथा अनन्तसेन राजा भी अपने छोटे भ्राताओं सहित मेघस्वर--जयकुमारके छोटे भ्राताओंपर आक्रमण करने लगा ॥ ११५ ॥ कोपसे कंपित हुआ है शरीर जिनका ऐसे दोनों पक्षके भूपाल एक दूसरेपर आक्रमण करने लगे। ऐसी

अन्योन्यं च तयोर्भूपाः कोपकम्पितविग्रहाः। अभिपेतुर्जयो योध्दुं संनद्धो रोषमानसः॥११६
मित्रनागसुरो ज्ञात्वा विष्टराकम्पतो जयम्। नागपाशं शरं चार्धचन्द्रं दत्त्वा गतोऽप्यसौ॥११७
कौरवो बाणमादाय वज्रकाण्डे न्ययोजयत्। रथानथाष्टचन्द्राणां ससारथीनभस्मयत् ॥११८
छिन्नदन्तकरो हस्तीव यमो वा हृतायुधः। भग्नमानः कुमारोऽस्थाद्धिक्कष्टं चेष्टितं विधेः॥११९
विधिज्ञो विधिवत्पुत्रं चाक्रिणः समजीग्रहत्। तस्याप्यासीदवस्थेयमुन्मार्गः कं न पीडयेत्॥१२०
पतद्भास्करसंकाशमर्ककीर्तिं गतायुधम्। स्वरथे स्थापयित्वा स आरुरोह द्विपं स्वयम्॥१२१
विपक्षखचरान्भूपान्नागपाशेन पाशितान्। नियन्त्र्य निर्जितारातिः संन्यस्थात्सिंहविक्रमः॥१२२
इति प्राप्तजये तस्मिन्वृष्टिः सुमनसां दिवः। पपात सुरसंघेभ्यो जयारावविमिश्रिता ॥१२३
रणावनिं स आलोक्य कारयामास सर्वतः। मृतानां प्रेतसंस्कारं जीवतां जीवनक्रियाम् ॥१२४
जयोऽप्यकम्पननामा प्राविशत्सर्वसंपदाम्। पुरीं पुरजनाकीर्णां लसत्केतनशोभिताम् ॥१२५
रक्षितान्धृतभूपालान्कुमारं च नियोगिभिः। आश्वास्याश्वासकुशलैर्यथास्थानमवापयत् ॥१२६

परिस्थिति देखकर रुष्टचित्त होकर जयकुमार युद्धके लिये तयार हुआ ॥ ११६ ॥ जयकुमारका मित्र नागकुमारदेव भी आसनकंपसे वास्तविक परिस्थिति जानकर वहां आया और जयकुमारको नागपाश और अर्द्धचन्द्र बाण देकर चला गया ॥ ११७ ॥ बाण लेकर उसे उस समय कौरववंशी जयकुमारने वज्रकाण्ड धनुष्यपर जोड दिया। और अष्टचन्द्र विद्याधरोंके रथोंको सारथियोंके साथ भस्म कर दिया। युद्धचतुर जयकुमारने चक्रवर्तीके पुत्रको पकडा। अहह ! चक्रवर्तीके पुत्रकी भी ऐसी दुर्दशा हो गई। दुर्मार्ग किसको दुःख नहीं देता ! जिसके दांत और शुण्डा टूट गये हैं ऐसे हाथीके समान अथवा जिसका शस्त्र नष्ट हुआ है ऐसे यमके समान, कुमारका अभिमान नष्ट हुआ। अरेरे ! कर्मकी दुष्ट प्रवृत्तिको धिःकार हो ॥ ११८--१२० ॥ अस्तको जाते हुए सूर्यके समान दीखनेवाला, नष्ट हुआ है आयुध जिसका ऐसे चक्रवर्तिपुत्र अर्ककीर्तिको अपने रथमें लेकर स्वयं जयकुमार हाथीपर आरूढ हो गया ॥ १२१ ॥ जयकुमारने शत्रुपक्षके विद्याधर राजाओंको नागपाशमें नियंत्रित कर दिया। इस प्रकार शत्रुओंको जीतनेवाला सिंहके समान पराक्रमी जयकुमार स्वस्थ हुआ ॥ १२२ ॥ इसप्रकार जिसको जयप्राप्ति हुई है ऐसे जयकुमारके ऊपर स्वर्गसे देवोंने जयजयकार करके पुष्पवृष्टि की ॥ १२३ ॥ तदनंतर राजाने चारों तरफसे रणभूमीको देखकर जो मरे हुए थे उनका प्रेतसंस्कार करवाया और जीवित थे उनके लिये जीवनोपाय बतलाया ॥ १२४ ॥ तदनन्तर जयकुमार अकम्पन राजाके साथ सुंदर ध्वजोंसे सुशोभित, नागरिक लोगोंसे भरी हुई, सर्व संपन्न नगरीमें--वाराणसीमें प्रविष्ट हुआ ॥ १२५ ॥ कैद किये गये राजा और अर्ककीर्तिको चतुर सरदारोंसे आश्वासन देकर उनको योग्य स्थानपर भेज दिया ॥ १२६ ॥ संपूर्ण विघ्नोंका नाश जिनेश्वरसे होता है इसलिये उनकी वंदना की और पूजा, स्तुति

विनाशो विश्वविघ्नानां जिनादिति ववन्दिरे। संपूज्य स्तुतिभिः स्तुत्वा जिनं ते स्वस्थितिं गताः॥
विद्याधरधराधीशान् विपाशीकृत्य कृत्यवित्। विश्वान्विश्वासयामास तद्योग्यैः समुदीरितैः॥१२८
अकम्पनजयौ नत्वा कुमारं विहितस्तुती। अभाषेतां भृशं भक्त्या भव्यौ भद्रमनोरथौ॥१२९
अस्मद्वंशौ च युष्माभिर्विहितौ वर्धितौ सदा। न यास्यतः क्षयं त्वत्तो यतो वः सेवका वयम्॥
सुतबन्धुपदातीनामपराधशतान्यपि। महात्मानः क्षमन्ते हि तेषां तद्धि विभूषणम्॥१३१
अपराधः कृतोऽस्माभिरेकोऽयमविवेकिभिः। बन्धुभृत्या वयं वस्तत्कुमार क्षन्तुमर्हसि॥१३२
सुलोचनेति का वार्ता सर्वस्वं नस्तवैव तत्। चेन्निषिद्धस्त्वया पूर्वं क्रियते किं स्वयंवरः॥१३३
त्वमग्निनेव केनापि पापिना विश्वजीवकः। उष्णीकृतोऽसि प्रत्यस्माञ्शीतीभव सुवारिवत्॥१३४
इति प्रसाद्य संतोष्य समारोप्य महाद्विपम्। अर्ककीर्तिं पुरस्कृत्य भेजे खेचरभूचरैः॥१३५
सर्वार्थसंपदं दत्त्वाक्षमालामर्ककीर्तये। स तं विसर्जयामास लक्ष्मीमत्यपराभिधाम्॥१३६
अपरांश्च नराधीशान्संतोष्य गजवाजिभिः। प्रेषयामास ते सर्वे जग्मुः स्वं स्वं पुरं प्रति॥१३७

कर वे भूपगण अपने घर चले गये ॥ १२७ ॥ विद्याधर और भूगोचरी राजाओंको भी नागपाशके बंधनसे विमुक्त कर योग्य कार्यको जाननेवाले जयकुमारने योग्य भाषणसे सबको सन्तुष्ट किया ॥ १२८ ॥

[अर्ककीर्तिका अक्षमालाके साथ विवाह] शुभ मनोरथ धारण करनेवाले भव्य अकंपन और जयकुमारने अर्ककीर्तिको नमस्कार कर उसकी स्तुति की। और अतिशय भक्तिसे वे इसप्रकार बोले ॥ १२९ ॥ हे कुमार, हमारे वंशोंकी उत्पत्ति आपने की है तथा उनको आपहीने वृद्धिंगत किया है। वे तुम्हारे द्वारा नष्ट नहीं होंगे: क्योंकि हम आपके सेवक हैं। पुत्र, बंधु और सेवकोंके सैंकडों अपराधोंको भी महात्मा क्षमा करते हैं और यही उनका भूषण है। हम अविवेकियों द्वारा यह एक अपराध हुआ है। हम आपके बंधुसेवक हैं। हे कुमार, हमारे अपराध क्षमा करें। हे कुमार, सुलोचना क्या चीज है? हमारा सभी धन आपहीका है। यदि आप स्वयंवर करनेके लिये निषेध करते तो हम इसको रोक देते ॥ १३३ ॥ हे कुमार, आप सर्व जगतको जीवन देनेवाले हैं। परंतु किसी पापी व्यक्तिके द्वारा अग्निके समान आप संतप्त किये गये हैं। अब आप हमारे लिये जलके समान शांत हो जाइये ॥ १३४ ॥ इस प्रकार कुमारको प्रसन्न और संतुष्ट कर उसे बडे हाथीपर बैठाकर उन्होंने आदर किया, और विद्याधर तथा भूगोचरोंके साथ अकंपनादिक उसकी सेवा करने लगे ॥ १३५ ॥ अकम्पनने सर्व धनसम्पत्ति तथा लक्ष्मीमति जिसका अपर नाम है ऐसी अक्षमाला नामक कन्या भी अर्ककीर्तिको देकर उसे विदा किया ॥१३६॥ अन्यराजाओंको भी हाथीघोडोंसे संतुष्ट कर विदा किया। वे भी अपने अपने नगरको चले गये ॥ १३७ ॥ उस समय नागासुरने आकर जयशाली जयकुमारके साथ बडे वैभवसे सुलोचनाका विवाह करवाया

तदा नागासुरौ भूत्या समेत्य समपादयत् । सुलोचनाविवाहं च जयेन सुजयेशिना ॥१३८
जयोऽकम्पनभूपेनालोच्य रत्नाद्युपायनैः । सुमुखाख्यं नरं प्रीत्यै चक्रेशं प्रत्यजीगमत् ॥१३९
गत्वासौ प्राभृतं मुक्त्वा प्रणम्य निभृताञ्जलिः । चक्रेशं चर्करीति स्म विज्ञप्तिं विनयान्वितः ॥
अकम्पनो भयादेवं विज्ञप्तिं कुरुते प्रभो । स्वयंवरविधानेन तस्मै तां प्रददौ मुदा ॥१४१
तत्रागत्य कुमारोऽपि सर्वं प्रागनुमत्य तत् । केनापि कोपितः क्रुद्धः संगरं विदधे ध्रुवम् ॥१४२
विज्ञातमेव देवेन सर्वं चावधिचक्षुषा । कर्तव्यं क्रियतां यत्नो वधः क्लेशोऽर्थसंहृतिः ॥१४३
इति प्रश्रयिणीं वाणीं निगद्य सुमुखः स्थितः । उवाच वचनं चक्री परचक्रभयंकरः ॥१४४
अकम्पनैः किमित्येवमुक्त्वा संप्रहितो भवान् । पुरुभ्यो निर्विशेषास्ते सर्वज्येष्ठाश्च सांप्रतम् ॥१४५
मोक्षमार्गस्य पुरवो गुरवो दानसंततेः । श्रेयांसश्चक्रवर्तित्वे यथेहास्म्यहमग्रणीः ॥१४६
स्वयंवरविधातारो नाभविष्यंस्त्वकम्पनाः। कः प्रवर्तयितान्योऽस्य मार्गस्य यदि निश्चितम् ॥१४७
पथः पुरातनान्येऽत्र भोगभूमितिरोहितान् । कुर्वते नूतनान्सन्तः पूज्याः सद्भिस्त एव हि ॥

॥ १३८ ॥ अकम्पन राजाके साथ जयकुमारने विचार करके रत्नादिक उपायनोंके साथ सुमुख नामका दूत चक्रवर्तीके पास संतोष करनेके लिये भेज दिया ॥ १३९ ॥ चक्रवर्तीके पास जाकर उनको भेट अर्पण कर दूतने नमस्कार किया । तदनन्तर विनयसे युक्त होकर हाथ जोडकर भरतेशसे विज्ञप्ति की ॥ १४० ॥ हे प्रभो ! अकम्पनमहाराज भयसे आपके प्रति इस प्रकार विज्ञप्ति करते हैं । सुलोचना स्वयंवरविधानसे जयकुमारको मैने आनन्दसे अर्पण की है । स्वयंवर-मण्डपमें अर्ककीर्तिकुमार भी आये थे तथा उनको वह स्वयंवरविधान मान्य था । परन्तु किसीके द्वारा भडकानेसे क्रुद्ध होकर कुमारहीने युद्ध किया । हे देव, आपने अवधिज्ञाननेत्रसे यह सर्व जानाही होगा । इस विषयमें आप आपका कर्तव्य करें। अर्थात् इस अपराधका शासन हमें क्लेश, वध, और धनहरण करना चाहते हैं, सो करें । सुमुख इस प्रकारकी नम्रतायुक्त वाणी बोलकर बैठा तब शत्रुसैन्यको भीति उत्पन्न करनेवाला चक्रवर्ती इस प्रकार कहने लगा । हे दूत, क्या अकम्पन महाराजने ऐसा वचन कहकर तुझे यहां भेज दिया है ? हम अकम्पन महाराजको श्री-आदिभगवानके समान समझते हैं । इस समय वे सबसे ज्येष्ठ हैं । जैसे मोक्षमार्गका उपदेश करनेमें आदिजिनेश्वर अग्रणी हैं । दानपरंपराके विधानमें श्रेयांस महाराज मुख्य हैं, चक्रवर्तियोंमें मैं भरतक्षेत्रमें अग्रगामी हूं । स्वयंवर-विधानके प्रवर्तक अकम्पन महाराज यदि न होते तो निश्चयसे इस मार्गका प्रवर्तक अन्य कौन होता ? भोगभूमीके सद्भावमें लुप्त हुए प्राचीन मार्गोंको जो सज्जन फिरसे उनका आविष्कार करते हैं वे ही सज्जनों द्वारा पूज्य होते हैं। अर्ककीर्तिकुमारने अकीर्तिवान् लोगोंमें मेरी भौंरोंके समान कृष्ण अकीर्ति कल्पान्तकाल तक वर्णन करने योग्य की है । इस प्रकारके भाषणसे जगत्प्रभु भरतेश्वरने सुमुख दूतको सन्तुष्ट कर भेज दिया । तब वह

अकीर्तिमर्ककीर्तिर्मे कीर्तनीयामकीर्तिषु । अकार्षीदायुगं चेह मधुव्रतमलीमसाम् ॥ १४९
संतोष्येति स विश्वेशः सुमुखं प्राहिणोत्स च । गत्वा तयोः पदं नत्वा सर्वं पूर्वमचीकथत् ॥१५०
सुलोचनाजयौ तत्र चिक्रीडतुश्चिरं सुखम् । पुनस्तौ स्वपुरं गन्तुमीहेते जननोदितौ॥१५१
अकम्पनं निवेद्यासौ पूजितो गजवाजिभिः । अनुगङ्गं जगामाशु वृतः श्वशुरबांधवैः ॥१५२
तत्र गङ्गानदीतीरे संस्थाप्य वरवाहिनीम् । आप्तैः कतिपयैः सार्धं प्रत्ययोध्यां ययौ जयः॥१५३
अर्ककीर्त्यादिभिर्भूपैस्तस्य संमुखमागतैः । सहायोध्यां विवेशासौ मघवेवामरीं पुरीम् ॥१५४
मध्येसभं समानार्थं नत्वासौ चक्रवर्तिनम् । निर्दिष्टभूतलेऽतिष्ठज्जयो जयविराजितः ॥१५५
ऊचे स चक्रिणा तूर्णं वधूर्विधुमुखी किमु । नानीता तां वयं द्रष्टुं वर्तामहे समुत्सुकाः॥१५६
अकम्पनेन नाहूतास्त्वद्विवाहोत्सवे नवे । वयं युक्तमिदं किं भोः सनाभिभ्यो बहिःकृताः॥१५७
अहं त्वत्पितृस्थानीयो मां पुरस्कृत्य कन्यका । त्वयासौ परिणेतव्या त्वं तद्विस्मृतवानसि॥१५८
इत्यपूर्ववचोवादैस्तर्पितश्चक्रवर्तिना । लब्धमानो महामानं तं प्रणम्य जयो ययौ ॥१५९

जयकुमार और अकम्पन महाराजके सन्निध आकर उनके चरणोंको नमस्कार कर सर्व वृत्तान्त कहने लगा ॥ १४१–१५० ॥

[चक्रवर्तीकी सभामें जाकर जयकुमारने नम्र भाषण किया] सुलोचना और जय-कुमार दोनों वाराणसीनगरीमें दीर्घकालतक सुखसे क्रीडा करने लगे। कुछ काल बीतनेपर स्वजनोंकी प्रेरणासे उनको अपने नगरको जानेकी इच्छा हुई। जयकुमारने अपना अभिप्राय अकम्पन महाराजको कहा। तब महाराजने जयकुमारका हाथी घोडा आदि देकर आदर किया। तदनंतर जयकुमारने अपने श्वशुरके बांधवोंको साथ लेकर गंगानदीके अनुसार प्रयाण किया। गंगानदीके तटपर अपनी उत्कृष्ट सेना रखकर कुछ वृद्ध जनोंके साथ जयकुमार आयोध्याको चला गया ॥ १५१–१५३ ॥ सम्मुख आये हुए अर्ककीर्त्यादिकनृपोंके साथ इंद्र जैसा देवोंके साथ अमरावतीमें प्रवेश करता है, वैसा जयकुमारने आयोध्यामें प्रवेश किया। सभाके बीचमें सभापति चक्रवर्तीको वंदन कर उसने दिखाये हुए स्थान पर जयसे शोभनेवाला जयकुमार बैठ गया। तब चक्र-वर्तीने उसे कहा। "हे वत्स, चन्द्रमुखी वधू सुलोचनाको तुम क्यों नहीं लाये ? उसे देखनेको हम उत्सुक हैं। अकम्पन महाराजने तुम्हारे नवविवाहोत्सवमें हमको आमन्त्रण नहीं दिया क्या यह युक्त है ? क्या हमको महाराजने अपने बंधुओमेंसे बहिष्कृत किया है ? मैं तुम्हारे पिताके स्थानमें हूं। तुम्हें चाहिए था कि हमको अगुआ बनाकर तुम इसके साथ विवाह करते, परंतु तुम तो हमें भूलही गये।" इस प्रकार अपूर्व वचन बोलकर चक्रवर्तीने जयकुमारको संतुष्ट करके उसका आदर किया। तदनंतर जयकुमार भरतेश्वरको नमस्कार कर वहांसे चला गया ॥ १५४–१५९ ॥ हाथीपर आरूढ होकर अपने प्राणोंसेभी प्यारी मनःप्रियाको देखनेकी उत्कंठा धारण करनेवाला

समारुह्य गजं सद्यः स गङ्गातटमासदत् । ईप्सुर्मनःप्रियां द्रष्टुं स्वप्राणेभ्यो गरीयसीम् ॥१६०
शुष्कवृक्षस्य शाखाग्रे संमुखीभूय भास्वतः । ब्रुवन्तं ध्वांक्षमावीक्ष्य कान्ताया भयचिन्तया ॥
मूर्च्छितः स समाश्वास्य तद्योग्यवरवस्तुभिः । सुरदेवेन मा भैषीर्भार्यायामिति सान्त्वितः ॥
प्रमाणीकृत्य तद्वाक्यमतीर्थेनोदयद्गजम् । उत्पुष्करं स्फुरद्दन्तं तरन्तं मकराकृतिम् ॥१६३
दन्तिनं वीक्ष्य पूर्वोक्ता सरय्वाः संगमेऽग्रहीत् । कालीदेवी स्वदेशस्थः क्षुद्रोऽपि महतां बली ॥
गजराजं निमज्जन्तं दृष्ट्वा हेमाङ्गदादयः । तटस्थिताः सहापेतुः ससंभ्रमं महाह्रदम् ॥१६५
सुलोचनार्हतो गोत्रं समाधाय स्वमानसे । त्यक्ताहारशरीरादिरुपसर्गावसानकम् ॥१६६
प्राविशद्बहुभिः सार्धं गङ्गां गङ्गेव देवताम् । ज्ञात्वाथासनकम्पेन गंगाकूटाधिवासिनी ॥१६७
तानानयत्तटं सर्वानागत्य खलकालिकाम् । संतर्ज्य जयमासञ्ज्य जये पुण्याज्जयो भवेत् ॥१६८
गङ्गातीरे विकृत्याशु सदनं सर्वसंपदा । रत्नपीठे समाधायापूजयत्सा सुलोचनाम् ॥१६९
अवरुद्धामरेशस्य त्वया दत्तनमस्कृतेः । त्वत्प्रसादादहं जज्ञे प्रिया गङ्गाधिदेवता ॥१७०
जयस्तदुक्तमाकर्ण्य किमित्याह सुलोचना । उपविन्ध्याद्रिभूपोऽभूद्विन्ध्यपुर्यां तु तद्ध्वजः ॥

जयकुमार तत्काल गंगाके तटपर प्राप्त हुआ। शुष्कवृक्षकी शाखाके अग्रपर सूर्यके सम्मुख मुखकर बैठा हुआ और शब्द करता हुआ कौवा देखकर पत्नीकी अनिष्ट भयचिन्तासे वह मूर्च्छित हो गया। तब सुरदेवने उसके योग्य उत्तम वस्तुओं द्वारा उसको विश्वास उत्पन्न कराकर मार्निचित कर दिया, और कहा कि पत्नीके विषयमें भयकी कोइ बात नहीं है। उसका वाक्य प्रमाण मान, घाट को छोडकर दूसरे मार्गसे हाथीको चलाया। चमकीले दांतवाले तथा ऊपर सोंड उठाये हुए मगरके समान तैरते हुए हाथीको देखकर पूर्वोक्त कालीदेवताने सरयू नदीके संगममें उसे पकडा। योग्य ही है कि स्वदेशमें रहा हुआ क्षुद्रभी बडोंसे बलवान् होता है ॥१६०-१६४॥ हाथीको डूबता हुआ देख तटपर खडे हुए हेमांगदादिक कुमार बडे वेगसे एकसाथ महाह्रदमें कूद पडे। उस समय सुलोचना अर्हन्तके नामका उच्चारण अपने मनमें करने लगी। उसने उपसर्ग समाप्त होनेतक आहार, शरीर और भोगपदार्थोंका त्याग किया। सुलोचना गंगादेवताके समान बहुत लोगोंके साथ गंगानदीमें प्रवेश करने लगी। गंगाकूटपर रहनेवाली गंगादेवता आसनकंपसे जानकर वहाँ आई और उसने उन सबको तटके ऊपर लाकर छोड दिया। दुष्ट कालिकाका उसने खूब तिरस्कार किया, और जयकुमारको जय प्राप्त कराया। योग्यही है कि पुण्योदयसे जय प्राप्त होती है ॥१६५-१६८॥ गंगादेवीने विक्रियासे गंगाके तटपर तत्काल सर्व-संपदासे सुंदर प्रासाद बनाया और रत्नसिंहासनपर सुलोचनाको बिठाकर पूजा की। और कहने लगी—हे सुलोचने, आपने जो नमस्कार मंत्र दिया था उसके प्रभावसे मैं इन्द्रकी वल्लभा गंगा देवता हुई हूं ॥१६९-१७०॥ जयकुमारने देवीका भाषण सुनकर यह क्या ऐसा प्रश्न पूछा। तब सुलोचनाने कहा— विंध्यपर्वतके समीप विंध्यपुरी नामक

प्रियङ्गुश्रीः प्रिया तस्य विन्ध्यश्रीश्च तयोः सुता । तत्पिता तां गुणान्सर्वाञ्शिक्षितुं मां समर्पयत्॥
मया सह मयि स्नेहात्क्रीडन्ती सैकदाहिना । वसन्ततिलकोद्याने दष्टादायि मया तदा ॥१७३
नमस्कारमहामन्त्रो भावयन्त्यत्र सा मृता । जातेयं स्नेहिनी देवी मयि धर्मानुरागतः ॥१७४
जय आकर्ण्य तत्सर्वं गङ्गादेवीं विसर्ज्य च । सपताकं निजावासं प्राविशत्सप्रियः प्रियी॥१७५
नीत्वा निशां स तत्रैव प्रातरुत्थाय अध्नवत् । अनुगङ्गं प्रयान्प्रेम्णा संप्राप स्वपुरं परम् ॥१७६
पताकाचलहस्ताढ्यं हेमकुम्भास्यशोभनम् । महातोरणवक्षस्कं गवाक्षाक्षिणचक्षुषम् ॥१७७
हटद्घटितसट्टालीकटीतटसमाश्रितम् । शातकुम्भमहास्तम्भसत्पादं रत्नसन्नखम् ॥ १७८
पुरं नरमिवालोक्य सल्लीलालीविलोकितम् । सुलोचनायुतो भेजे जयो जय इवापरः ॥१७९
विवेश पत्तनं पत्न्या पुरुपुत्र इवापरः । निश्छद्म सुखसद्मामाध्यासीत्स्वसदनं जयः ॥१८०
सुलोचनामुखाम्भोजभ्रमरो भ्रातृभिः सह । पालयन्निखिलां क्षोणीं रेजेऽसौ सुरराडिव ॥१८१

नगरमें विंध्यध्वज नामक राजा राज्य करता था उसकी पत्नीका नाम प्रियंगुश्री था और विंध्यश्री उन दोनोंकी कन्या थी। उसके पिताने--विंध्यध्वजने विंध्यश्रीको सर्व सद्गुणोंका शिक्षण देनेके लिये मेरे स्वाधीन किया। मुझपर उसका स्नेह था। वसंततिलकोद्यानमें एक दिन मेरे साथ वह क्रीडा कर रही थी। इतनेमें सर्पने उसे दंश किया। मैंने उसको नमस्कार महामंत्र दिया। उसका चिन्तन करते २ वह मर गई और वह गंगाकूटपर गंगा नामकी देवी हुई। धर्मानुरागसे यह देवी मुझपर स्नेहयुक्त हो गई है। यह सुनकर प्रिय जयकुमारने गंगादेवीका विसर्जन किया और पताकोंसे शोभनेवाले अपने महलमें अपनी प्रिया सुलोचनाके साथ प्रवेश किया ॥१७१-१७५॥ उसी स्थानमें रात बिताकर सूर्यके समान प्रातःकाल ऊठकर गंगा नदीके अनुसार गमन करनेवाले जयकुमारने प्रेमसे अपने उत्तम नगर हस्तिनापुरमें प्रवेश किया ॥१७६॥ हस्तिनापुर मनुष्यके समान दीखता था। मनुष्यके हाथ होते हैं। इस नगरको पताकारूपी चंचल हस्त थे। मनुष्यको मुख होता है। इस नगरको सुवर्ण कलशरूपी मुखसे शोभा प्राप्त हुई थी। मनुष्यको वक्षःस्थल होता है। इस नगरको महातोरणद्वाररूपी वक्षःस्थल था। मनुष्यको आखें होती हैं। इस नगरके गवाक्ष ही बडी बडी आखें थीं। सुवर्णखचित सुन्दर अट्टालिका इस नगररूपी मनुष्यकी मानो-कटीके समान थी। सुवर्णके खंबे इस नगर-मनुष्यके चरण थे और रत्न नखोंके सदृश थे। उत्तम लीलाओंकी पङ्क्तिरूपी कटाक्षोंको धारण करनेवाले नगरको मनुष्यके समान देखकर दूसरे जयके समान राजा जयकुमारने सुलोचनाके साथ नगरमें प्रवेश किया ॥ १७७-१७९ ॥ पुरुपुत्र- भरतके समान कपटरहित उस सुखी जयकुमारने सुलोचनाके साथ नगरमें प्रवेश किया था वह अपने महलमें रहने लगा ॥१८०॥ सुलोचनाके मुखकमलका भ्रमर वह जयकुमार अपने भाइयोंके साथ सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन करनेवाला इन्द्रके समान शोभने लगा ॥ १८१ ॥

प्रासादमेकदारुह्य गच्छन्तौ खगदम्पती। दृष्ट्वा प्रभावती मेऽहो क्वेति जल्पन्मुमूर्च्छ सः॥१८२
तथा कलरवद्वन्द्वं वीक्ष्य जातिस्मरान्विता । हा मे रतिवरेत्युक्त्वा सापि मूर्च्छामुपागमत्॥१८३
हिमचन्दनसंमिश्रवार्भिस्तन्मूर्च्छनासुखम् । अवारयत्परीवारस्तमो वा रत्नदीधितिः ॥१८४
प्रबुद्धौ तौ स्मयाक्रान्तौ दृष्ट्वा लोकान्सुविह्वलान् । विदित्वा पूर्वजन्मानि सोऽभाणीत्स्वप्रियां प्रति॥
प्रिये जन्मान्तरावाप्तं वृत्तान्तं विश्वमावयोः । व्यावर्ण्येदमदः शान्तं कुरु कौतुकमंगतम्॥१८६
साज्ञापिता प्रियेणेति बभाषे कलभाषिणी । इह जम्बूमति द्वीपे पुष्कलावत्यभिख्यया ॥१८७
प्राग्विदेहे श्रुते देशे मृणालादिवती पुरी । सुकेतुस्तत्र भूपालो वैश्येशो रतिकर्मकः ॥ १८८
कनकश्रीः प्रिया तस्य भवदेवः सुतस्तयोः । श्रीदत्तश्चापरस्तत्र वणिक् तस्यातिवल्लभा ॥१८९
विमलश्रीस्तयोः ख्याता रतिवेगा सुता सती। तथान्योऽशोकदेवाख्यो जिनदत्ताप्रियो वणिक्॥
सुकान्तस्तनयो जातस्तयोर्धर्मार्थमानसः । भवदेवविवाहार्थं रतिवेगा च याचिता ॥ १९१
पितृभ्यां तत्पितृभ्यां च तथेत्यङ्गीकृतं तदा । भवदेवस्य दुर्वृत्त्या दुर्मुखाख्याप्यजायत ॥१९२

[सुलोचनाका पूर्वजन्मचरित्र] किसी समय प्रासादपर आरूढ हुए जयकुमार और सुलोचनाने आकाशमें विद्याधर विद्याधरीको जाते हुए देखा । ' अहो मेरी प्रभावती तू कहां है ' इस प्रकार कहता हुआ जयकुमार मूर्छित हुआ । उसी तरह आकाशमें जाते हुए कबूतरोंकी जोडी देखकर जातिस्मरणसे ' अहो मेरा रतिवर ' ऐसा बोलकर सुलोचना भी मूर्छित हुई । कर्पूर और चन्दनसे संमिश्रित पानीके छिडकावसे उनके परिवारने उनका मूर्च्छासुख, रत्नोंका प्रकाश जैसे अंधकारको दूर करता है वैसा दूर किया॥१८२-१८४॥ मूर्च्छासे जागृत होकर वे आश्चर्यचकित हुए । उन्होंने लोगोंको दुःखित देखा । अपने पूर्वजन्म जानकर जयकुमार अपनी प्रिया सुलो–चनाको कहने लगा । " हे प्रिये, पूर्वजन्मोंमें अनुभव किया हुआ अपने दोनोंका संपूर्ण वृत्तान्त कहकर जिनको कौतुक हुआ है ऐसे इन लोगोंको शान्त करो " । इस प्रकार प्रियकरसे आज्ञापित हुई मधुरभाषिणी सुलोचना अपने और जयकुमारके पूर्व भवोंका वर्णन करने लगी ॥ १८५--१८६ ॥ इस जम्बूद्वीपमें पूर्वविदेहक्षेत्रके प्रासिद्ध पुष्कलावती देशमें मृणालवती नामक नगर है । वहां सुकेतु नामक राजा राज्य करता था । इसी नगरीमें रतिकर्मा नामक श्रेष्ठी रहता था । उसकी पत्नीका नाम कनकश्री था । तथा उनके पुत्रका नाम भवदेव था । उसी नगरमें श्रीदत्त नामक दूसरा श्रेष्ठी रहता था । उसको विमलश्री नामक अतिशय प्रिय पत्नी थी और उन दोनोंको रतिवेगा नामक सती कन्या थी। उसी नगरमें अशोकदेव नामक व्यापारी अपनी पत्नी जिनदत्ताके साथ रहता था। उन दोनोंको धर्मक्रियाओंमें मन लगानेवाला सुकान्त नामक पुत्र हुआ। भवदेवके साथ विवाह करनेके लिये उसके मातापिताओंने रतिवेगाकी याचना उसके मातापिताके पास की। तथा उन्होंने भी उसका स्वीकार किया। भवदेवके दुराचरणसे उसकी दुर्मुख नामसे भी ख्याति

व्यापारार्थमटन्देशान्तरं स खजिघृक्षुकः । श्रीदत्तेनेति संप्रोक्तो विवाहविषयं स्फुटम् ॥१९३
अटाट्यसे वाणिज्यार्थे विवाहस्य च का गतिः । द्वादशाब्दावधिं कृत्वेति स देशान्तरं ययौ ॥
तन्मर्यादात्यये तस्याः पितृभ्यां परमोत्सवैः । सुकान्ताय समादायि रतिवेगा रतिप्रदा ॥१९५
देशान्तरात्समागत्य तद्वार्ताश्रवणात्कृशम् । दुर्मुखे कुपिते भीत्वा तदानीं तद्वधूवरम् ॥१९६
वने धान्यकमालाख्ये प्राप्य सर्पसरोवरम् । स्थितस्य शक्तिषेणस्य व्रजित्वा शरणं ययौ॥१९७
दुर्मुखोऽनुगतस्तत्र बद्धवैरो वधूवरम् । हन्तुं श्रीशक्तिषेणस्य नृपस्य निवृतो भयात् ॥१९८
शक्तिषेणं ददद्दानं दृष्ट्वा संभाव्य भावनाम् । वधूवरं सुखेनास्थाच्चारणाय सुभावतः ॥१९९
कदाचिद्भवदेवेन निर्दग्धं च वधूवरम् । दुर्मुखाख्यः खलो ध्वस्तः कदाचित्तन्महाभटैः॥२००
अथात्र पुण्डरीकिण्यां प्रजापालो महीपतिः । श्रेष्ठी कुबेरमित्राख्यस्तस्यासीद्राजवल्लभः ॥२०१
द्वात्रिंशद्धनवत्याद्याः प्रियास्तस्याभवन्वराः । तद्गेहेऽभूद्रतिवरः कपोतस्तु सुकान्तकः ॥ २०२

हो गयी थी ॥ १८७-१९२ ॥ धनको चाहनेवाला भवदेव व्यापारके लिये देशान्तरको जा रहा था । उस समय श्रीदत्तने स्पष्टरूपसे विवाहकी बात छेडी । "हे भवदेव, हमेशा व्यापारके लिये तू दौडता है ऐसी अवस्थामें विवाहका क्या हाल होगा ? तब भवदेवने बारा वर्षोंकी मर्यादा की और वह देशान्तरको चला गया ॥ १९३-१९४ ॥ बारा वर्षोंकी मर्यादा समाप्त होनेपर रतिवेगाके मातापिताने बडे उत्सवसे सुकान्तको सुख देनेवाली रतिवेगा दी ॥ १९५ ॥ देशान्तरसे आकर विवाहकी वार्ता सुनकर दुर्मुख अतिशय कुपित हुआ । तब सुकान्त और रति-वेगा उसके भयसे भाग गये और धान्यकमाल नामक वनमें सर्पसरोवरके पास रहे हुए शक्तिषेणका आश्रय लिया । जिसने वैर बांधा है ऐसा वह भवदेव उस वधूवरको मारनेके लिये उनके पीछे गया । परंतु श्रीशक्तिषेण राजाके भयसे वह वहांसे लौट आया । चारणमुनिको दान देते हुए शक्तिषेणको देखकर शुभपरिणाम होनेसे शुभभावोंकी भावना करते हुए वे वधूवर सुखसे रहने लगे । किसी समय भवदेवने उस वधूवरको जला डाला । तब शक्तिषेण राजाके महापराक्रमी वीरोंने उसको मार डाला ॥ १९६-२०० ॥ पुंडरीकिणी नगरमें प्रजापाल राजा राज्य करता था । उसका कुबेरमित्र श्रेष्ठीपर अतिशय स्नेह था । श्रेष्ठीको धनवती आदिक बत्तीस सुन्दर स्त्रियां थी । श्रेष्ठीके घरमें सुकांत रतिवर नामक कबूतर होकर रहा था । तथा पूर्वजन्ममें जो रतिवेगा थी वह रतिषेणा नामक कबूतरी हुई । ये दोनों श्रेष्ठीके घरमें ही रहते थे । क्योंकि वहांही उनकी उत्पत्ति हुई थी । वहां तंडुलादिक भक्षण करते हुए वे दोनों संसारको देनेवाले नानाप्रकारके सुख भोगते थे । किसी समय कुबेरमित्र श्रेष्ठीके घरमें दो चारणमुनि आगये । उनको आये हुए देखकर श्रेष्ठी और श्रेष्ठिनी दोनोंने आनंदितहृदयसे उन्हें भक्तिसे ठहराया । आहारके लिये जब वे उद्युक्त हुए तब कपोतोंकी जोडी उन दो जंघाचारणमुनिओंको देखकर

रतिवेगाचरी जाता रतिषेणा कपोतिका। पारापतद्वयं तत्र तिष्ठच्चद्गृहसंभवात् ॥२०३
तण्डुलादीश्वराचित्रं सुखं भेजे भवार्थदम्। कदाचिच्छ्रेष्ठिनो गेहे चारणद्वयमागमत् ॥२०४
आगतं तद्युगं वीक्ष्य दम्पती तौ मुदा हृदा। तदास्थापयतां भावादाहारार्थं कृतोद्यमौ ॥२०५
कपोतमिथुनं तावज्जङ्घाचारणयोर्द्वयम्। विलोक्य परिस्पृश्यात्र पक्षैस्तत्पदमानमत् ॥२०६
तद्दृष्टमात्रविज्ञातप्राग्भवं तत्समीपताम्। प्राप्तं कपोतमिथुनं तद्दानं पूर्वजं स्मरत् ॥२०७
तत्र दानानुमोदेन समुपार्ज्य वृषं वरम्। भिक्षार्थं तौ कपोतौ च ग्रामान्तरमुपागतौ ॥२०८
भवदेवचरेणानुबद्धवैरेण पापिना। मार्जारेणोत्थकोपेन मारितौ तौ कदाचन ॥२०९
तद्देशविजयस्यार्धदक्षिणश्रेणिसंश्रिते। गान्धारविषये श्रीरवत्यभून्नगरी परा ॥२१०
तच्छास्तादित्यगत्याख्यस्तस्यासीच्च शशिप्रभा। सुदेवी तत्सुतः पारापतो हिरण्यवर्मकः ॥२११
तस्मिन्नेवोत्तरश्रेण्यां गौरीदेशेऽभवत्पुरे। राजा भोगपुरे वायुरथो विद्याधराधिपः ॥२१२
तस्य स्वयंप्रभा राज्ञ्या रतिषेणा प्रभावती। जाता यौवनसंक्रान्तां दृष्ट्वा कन्यां प्रभावतीम् ॥२१३
कस्मै देयमित्याख्यत्खगेशो मन्त्रिणस्तदा। सर्वे संमन्त्र्य मन्त्रीशाः स्वयंवरविधिं जगुः ॥२१४
आकारिताः क्षणात्खेटा अटिता मण्डपे परे। कन्यार्थिनस्तयाकस्माद्वव्रिरे न निमित्ततः ॥२१५
पितृभ्यां तत्समालोक्य सा पृष्टावीवदत्स्फुटम्। यो जयेद्गतियुद्धे मां मालां तस्य गले व्यधाम् ॥

अपने पक्षोंसे उनके चरणोंको स्पर्श कर वन्दन करने लगे। उन मुनीश्वरोंको देखने मात्रसे उनको अपने पूर्वजन्मका ज्ञान हुआ। पूर्वजन्मके दानका स्मरण करते हुये वे उनके पास आकर बैठे। श्रेष्ठीके घरमें चारणमुनिओंके दानानुमोदनासे उन्होंने श्रेष्ठपुण्यका उपार्जन किया। किसी समय वे दोनों कबूतर भिक्षाके लिये (धान्यकण चुननेके लिये) अन्यग्रामको चले गये। मरकर मार्जार हुये पापी भवदेवने पूर्वजन्मके बँधे हुए वैरसे कोपयुक्त होकर उन दोनोंको मार डाला ॥ २०१–२०९ ॥ पुष्कलावती देशके विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें गांधार नामक विषयमें शीरवती नामक एक सुन्दर नगर था। उसका स्वामी आदित्यगति विद्याधर था। उसकी पत्नीका नाम शशिप्रभादेवी था। पूर्वजन्ममें जो रतिवर नामक कबूतर था, वह इस दंपतीका हिरण्यवर्म नामक पुत्र हुआ ॥ २१०–२११ ॥ उसही विजयार्धकी उत्तरश्रेणीमें गौरी नामक देशके भोगपुरमें वायुरथ नामक विद्याधर राजा था। उसकी रानीका नाम स्वयंप्रभा था। रतिषेणा कबूतरीको मार्जारने मारा था। वह इस रानीको प्रभावती नामक कन्या होगई। जब वह तरुणी होगई तब इसे देखकर वायुरथने मंत्रिओंको पूछा, कि इस कन्याको किसे अर्पण करना चाहिये? सर्व मंत्रियोंने मिलकर स्वयंवरविधि करना चाहिये ऐसा उत्तर दिया। राजाने शीघ्रही विद्याधरोंको उत्तम मंडपमें बुलाया। कन्याभिलाषी वे विद्याधर आये परंतु कन्याने कुछ कारणसे उनमेंसे किसीकाभी अङ्गीकार नहीं किया ॥ २१२–२१५ ॥ मातापिताओंने वह देखकर उसे जब पूछा तब उसने

पुनः स्वयंवरारम्भे रभसाभस्यरञ्जिता । सिद्धकूटजिनागारात्पुरो मालामपातयत् ॥२१७
त्रिः परीत्य महामेरोरस्पृष्टां भूतलं खगाः । ग्रहीतुमक्षमास्तां हि त्रपायुक्ता गृहं ययुः ॥२१८
ततो हिरण्यवर्मागाद्गतिसंगरसंगवित् । निर्जिता तेन तत्कण्ठे मालामारोपयच्च सा ॥२१९
विवाहविधिना कन्यामुपयेमे खगात्मजः । सिद्धकूटालये प्राप्तकल्याणपरमोत्सवः ॥२२०
काले गच्छति कस्मिंश्चित्कपोतद्वयवीक्षणात् । ज्ञातप्राग्भवसंबन्धा विरक्ताभूत्प्रभावती॥२२१
प्रभावत्या परिपृष्टः परमौषधिचारणः । स्वपूर्वभवसंबन्धं श्रुत्वैतदाह योगिराट् ॥२२२
वधूवरादिसंबन्धं श्रुत्वा श्रीमुनिपुङ्गवात् । परस्परमहास्नेहावभूतां तौ खगीखगौ ॥२२३
अथादित्यगतिर्वीक्ष्य विशरारुं सुवारिदम् । राज्ये हिरण्यवर्माणं स्थापयित्वाग्रहीत्तपः ॥२२४
राज्यं प्राज्यं प्रकुर्वाणः खेचरश्चरणोज्ज्वलः । कुतश्चिद्विरतः स्वर्णवर्मणेऽदान्निजं पदम् ॥२२५
ततोऽवतीर्य भूभागं श्रीपुरं प्राप्य सद्गुरोः । श्रीपालात्संयमं लेभे विलुब्धो बुधसेवितः॥२२६

स्पष्ट उत्तर दिया, कि जो मुझे गतियुद्धमें जीतेगा, उसके गलेमें मैं माला डालूंगी । पुनः स्वयंवरके आरंभमें वेगकी शीघ्रतामें अनुरक्त कन्याने सिद्धकूट जिनमंदिरके आगे पुष्पमाला छोड दी । महा-मेरूको तीन प्रदक्षिणा देकर भूतलको जिसने स्पर्श नहीं किया है ऐसी पुष्पमालाको पकडनेमें असमर्थ अतएव लज्जायुक्त हुए वे विद्याधर अपने स्थानको चले गये । तदनंतर गतियुद्धकी संगतिको जाननेवाले हिरण्यवर्माने प्रभावतीको जीता । तब उसने उसके गलेमें पुष्पमाला डाली । आदित्यगतिविद्याधर-पुत्र हिरण्यवर्माने कन्याके साथ सिद्धकूट जिनमंदिरमें लाभदायक उत्कृष्ट उत्सवके साथ विधिपूर्वक विवाह किया ॥ २१६–२२० ॥ कुछ काल बीतनेपर कबूतरोंका जोडा देखनेसे पूर्वभवका संबंध जानकर प्रभावती विरक्त होगई । उसने उत्तम औषधि ऋद्धि-धारक चारणमुनीश्वरसे अपने पूर्वभवका संबंध पूछा । मुनिराजने वह कहा । मुनिराजसे वधूवर आदिक संबंध सुनकर प्रभावती और हिरण्यवर्मामें आपसमें गाढ स्नेह उत्पन्न हुआ ॥२२१-२२३॥ किसी समय नष्ट होते हुए सुंदर मेघको देखकर आदित्यगतिको वैराग्य उत्पन्न हुआ । राज्यपद हिरण्यवर्माको देकर उसने दीक्षा ग्रहण की । सदाचारसे उज्ज्वल हिरण्यवर्मा उत्तम राज्यका रक्षण करने लगा । किसी कारणसे विरक्त होकर उसने स्वर्णवर्मा नामक पुत्रको अपना पद-राज्य दिया । तदनंतर विद्वज्जन-सेवित निस्स्पृह हिरण्यवर्माने विजयार्धसे उतरकर भूभागमें श्रीपुरनगरमें सद्गुरु श्रीपाल मुनिसे संयम धारण किया । हिरण्यवर्म मुनीश्वरकी माता जो शशिप्रभा आर्यिका उसके सन्निध रहनेवाली गुणवती आर्यिकासे प्रभावतीने दीक्षा ग्रहण की । श्रुतज्ञानमें अपना मन संलग्न कर तपके द्वारा प्रभावतीने अपना शरीर कृश किया । विहार करते करते वे हिरण्यवर्मामुनि

१ स प व ग नास्त्ययं श्लोकः ।

तन्मात्रा गुणवत्यास्तु दीक्षां प्राप्ता प्रभावती । तन्वती तनुसंतापं तपसा श्रुतचेतसा ॥२२७
विहरन्तौ तकौ प्राप्तौ पुरीं च पुण्डरीकिणीम् । श्रेष्ठिवध्वा प्रभावत्यार्यिकाथ ददृशे क्वचित् ॥२२८
इयं केति तदा पृष्टा गणिनी प्रियदत्तया । मम चित्ते परा प्रीतिरस्या उपरि तत्कथम् ॥२२९
किं न स्मरसि कापोतयुगं तत्र भवद्गृहे । रतिषेणाहमित्येतच्छ्रुत्वा सा विस्मितावदत् ॥२३०
क्वासौ रतिवरोऽद्येति सोऽपि विद्याधरेश्वरः । मुनिर्हिरण्यवर्मात्रागतोऽस्तीति च सावदत् ॥२३१
प्रियदत्ता मुनिं नत्वा प्रभावत्युपदेशतः । अदीक्षत क्षमापन्ना विरक्तेः फलमीदृशम् ॥२३२
मुनिर्हिरण्यवर्माथ कदाचिच्चितिभूतले । अहानि सप्त संगीर्य समस्थात्प्रतिमास्थितः ॥२३३
दास्याश्च प्रियदत्तायास्तद्यतेः प्राक्तनं भवम् । स मार्जारचरोऽश्रौषीद्विद्युच्चौरः प्रदुष्टधीः ॥२३४
विभङ्गावधिना ज्ञात्वा प्रतिमायोगमास्थितम् । तं च प्रभावतीं नीत्वा चितिकायां स चाक्षिपत् ॥
तौ तत्राग्निसमुत्पन्नान्सोढ्वा शुद्धौ परीषहान् । हित्वा प्राणान्गतौ नाकं विकस्वरमुखाम्बुजौ ॥
स्वर्णवर्माथ तं ज्ञात्वा विद्युच्चरस्य मारणम् । करिष्यामीति तज्ज्ञात्वावधिबोधेन तौ सुरौ ॥
रूपं संयमिनोर्लात्वागत्याबोधयतां सुतम् । प्रदायाभरणं तस्मै दिव्यरूपौ गतौ दिवि ॥२३८

और प्रभावती आर्यिका दोनों पुण्डरीकिणी नगरको आगये। वहां किसी स्थानमें कुबेरमित्रकी पत्नी प्रियदत्ताने प्रभावती आर्यिकाको देखा और प्रधान आर्यिकासे पूछा, कि यह कौन है? मेरे मनमें इसके ऊपर अतिशय स्नेह क्यों उत्पन्न हुआ है? तुम्हारे घरमें जो कबूतरोंकी जोडी थी क्या तुम उसे भूल गई? उनमेंसे मैं रतिषेणा नामक कबूतरी थी। यह वृत्त सुनकर प्रियदत्ता आश्चर्यसे पूछने लगी कि वह रतिवर कबूतर आज कहां है? तब प्रभावती आर्यिकाने कहा, वह हिरण्यवर्मा विद्याधरेश्वर होकर अब मुनि होगये हैं और वे यहां आये हैं' ॥ २२४-२३० ॥ मुनि हिरण्यवर्माको नमस्कार कर प्रभावती आर्यिकाके उपदेशसे प्रियदत्ता क्षमा धारण करनेवाली आर्यिका होगयी। योग्यही है, कि वैराग्यका फल ऐसाही होता है। किसी समय मुनि हिरण्यवर्मा स्मशानमें सात दिनोंकी प्रतिज्ञा करके प्रतिमायोगसे खडे होगये॥ पूर्वजन्ममें जो मार्जार था, उस दुष्टबुद्धि विद्युच्चोरने प्रियदत्ताकी दासीसे मुनि हिरण्यवर्माके पूर्वभव सुने। प्रतिमायोगमें वे मुनिराज स्थित हैं इस बातको विभंगावधिसे जानकर उनको और प्रभावती आर्यिकाको उठाकर चितामें फेंक दिया। पवित्र आर्यिका और मुनि दोनों अग्निसे उत्पन्न हुए परीषहोंको सहकर प्रफुल्ल मुखकमलको धारण करते हुए प्राणोंको छोडकर स्वर्गको गये ॥ २३१-२३६ ॥ स्वर्णवर्माने मेरे माता-पिताको विद्युच्चरने मार डाला यह वृत्त जानकर उसको मारनेका निश्चय किया। इस बातको अवधिज्ञानसे जानकर वे देव और देवी मुनि और आर्यिकाका रूप धारण करके अपने पुत्रके पास जाकर उन्होंने उसे उपदेश दिया तथा उसको वस्त्राभूषण देकर दिव्य-रूपवाले वे देव स्वर्गलोकको गये ॥ २३७-२३८ ॥

लोकयन्तौ तकौ लोकान्स्वर्गिणौ भीमयोगिनम् । वीक्ष्य प्राष्टां च तौ धर्मं शर्मधर्मार्थसाधनम् ॥
धर्मो जीवदया धर्मः सत्यवाक् संयमस्थितिः । धर्मस्तद्वचनं श्रुत्वा मुनिरित्येवमब्रवीत् ॥२४०
हेतुना केन सद्दीक्षा गृहीता वद वेदवित् । सोऽवोचत्पुण्डरीकिण्यां भीमोऽहं दुर्गते कुले ॥
एकदा मुनितो मत्वा वृषं मूलगुणाष्टकम् । व्रतं चाग्रहिषं पित्रे कथितं तन्मयाखिलम् ॥२४२
श्रुत्वा पिता क्रुधाक्रान्तो बोधितो बहुहेतुना । दिदीक्षे च मया क्षिप्रं जातजातिस्मरात्मना ॥
अहं पूर्वभवेऽभूवं भवदेवो वणिक्सुतः । बद्धवैरो निहन्तारं रतिवेगसुकान्तयोः ॥२४४
पारापतभवेऽप्याखुभुजा तद्युगलं हतम् । विद्युच्चौरत्वमासाद्य हतौ तौ खगदम्पती ॥२४५
तदयोदयविभ्रात्मा निरये दुःखपूरिते । अपतं तन्महादुःखं पापात्किं किं न जायते ॥२४६
ततोऽहं निर्गतो भीमो भीमोऽभूवं भवं भ्रमन् । श्रुत्वा सुरौ कथां तस्य प्रबुद्धौ शुद्धमानसौ ॥
गतौ तौ त्रिदशावासे सातसागरसाधकौ । देवदेवीसमासंगरङ्गगाढाङ्गसंगतौ ॥२४८

[भीममुनि अपने भवोंका वर्णन करते हैं]— लोगोंको देखते हुए उन दो देवोंने भीमयोगीको देखकर सुख, धर्म और अर्थका साधनभूत धर्मका स्वरूप पूछा। तब उनके प्रश्नको सुनकर मुनिने ' जीवोंपर दया करना धर्म है। सत्यभाषण बोलना धर्म है। संयमपालन धर्म ह ' इत्यादि धर्मका स्वरूप कहा। हे तत्त्वज्ञानी आपने किस कारणसे यह हितकर दीक्षा ली है?' इस तरह देवोंके पूछने पर मुनिने कहा। " पुण्डरीकिणी नगरीमें मेरा दरिद्रकुलमें जन्म हुआ। किसी समय मुनिसे धर्मका स्वरूप जानकर आठ मूलगुण और अहिंसादि व्रत ग्रहण किये, और पिताजीसे यह सब निवेदन किया। सुनकर पिताजी क्रोधाविष्ट हुए, तब मैंने अनेक हेतुओंसे समझाया। मुझे जातिस्मरण हुआ, और मैंने शीघ्रही दीक्षा धारण की। मैं पूर्वभवमें भवदेव नामक वैश्यपुत्र हुआ था। पूर्वभवमे वैर बांधकर मैंने रतिवेगा और सुकान्तका नाश किया। जब वे दोनों कबूतरके भवमें थे तब मार्जार होकर उन दोनोंको मैंने भक्षण किया। तदनंतर विद्युच्चोर होकर उन विद्याधर दंपतीको मैंने मार डाला। उनके पुण्योदयसे मैं विघ्न-करनेवाला हुआ हूं। और उससे मैं दुःखोंसे भरे हुए नरकमें पडा था। योग्यही है, कि पापसे कोनसा कोनसा महादुःख जीवको उत्पन्न नहीं होता है? तदनंतर संसारमें भ्रमण करता हुआ भयंकर वृत्तिवाला मैं भीम नामक मनुष्य बन गया "। इस प्रकार उस भीममुनिकी कथा सुनकर वे सुखसागरके साधक शुद्ध अन्तःकरणवाले दोनों देव सावध हो गये और अपने निवासस्थानको-स्वर्गको चले गये ॥ २३९-२४७ ॥ जिनकी बुद्धि मानो भयोंसे रहित हुई है, संसारभ्रमणसे जिनकी बुद्धि भययुक्त हुई है, ऐसे भव्य भीममुनि पुण्डरीकिणी नगरीमें मैत्रीप्रमोदादिक भावनाओंको भाते हुए अधःकरणके परिणामोंसे विशुद्धि प्राप्त करके अपूर्वकरणके परिणामोंमें उद्युक्त हुए। उन परिणामोंके अनंतर वे अनिवृत्तिकरणरूप परिणामोंसे अपने पापोंका नाश करने

अथासौ पुण्डरीकिण्यां भीमो भयविमुक्तधीः । भावयन्भावनां भव्यो भवभ्रमणभीतधीः ॥२४८
अधःकरणसत्कृत्या प्रापूर्वकरणोद्यतः । कृत्वानिवृत्तिकरणं कृन्तति स्म स्वकिल्बिषम् ॥२४९
क्षायिकं दर्शनं लब्ध्वा चारित्रं क्षायिकं पुनः । विघ्नौघघनसद्वायुर्घातिसंघातघातकृत् ॥२५०
लब्ध्वा केवलसज्ज्ञानमघातिक्षयतोऽगमत् । भीमो भीतिविमुक्तात्मा मोक्षं सौख्यमयं परम् ॥
आवामपि तदा नाथ वन्दनार्थे गतौ लघु । इदं श्रुत्वा गतौ वीक्ष्य त्रिदिवं त्रिदशाश्रितम् ॥२५२
आवां ततः समुत्पन्नौ भारते भरताग्रणीः । सोमात्मजो भवाञ्जज्ञे जयो जयविराजितः ॥२५३
अकम्पितः कृपोपेतः कम्पितारातिमण्डलः । कम्रः कम्प्रं परं प्रीत्या ह्रापयन्भात्यकम्पनः ॥२५४
तत उत्पत्तिमात्मीयां प्रतीहि परमेश्वर । भवान्प्रभावतीं खेटामुक्त्वा मूर्च्छामुपागतः ॥२५५
पारापतभवोत्पन्नं रतिवेगं स्वपक्षिणम् । स्मृत्वा चोक्त्वा गता मूर्च्छामहं हूर्च्छाछिदाविदा॥२५६
एवं क्रीडाकरौ कम्रौ व्रीडावारविराजितौ । दम्पतित्वमितावावां जातौ जातिस्मरान्वितौ ॥२५७

लगे। अनंतर क्षायिक सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर उन्होंने क्षायिक चारित्रको प्राप्त कर लिया विघ्नसमूहरूपी मेघोंका नाश करनेमें वायुके समान उस मुनिराजने संपूर्ण घातिकर्मोंका घात किया। उनको केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इसके अनंतर उनके अघाति कर्मोंकाभी नाश हुआ और वे भीम मुनि संसारभीतिसे रहित होकर पुण्डरीकिणी नगरमें मुक्त होगये। उनको अक्षय मोक्ष सौख्य प्राप्त हुआ ॥ २४८-२५२ ॥ हे नाथ, भीममुनि मुक्त होगये हैं इस बातको सुनकर हम दोनों भी शीघ्रही उनके वन्दनार्थ गये थे। उनका दर्शन कर देवोंसे आदरणीय स्वर्गको गये। तदनंतर हम दोनों भरतक्षेत्रके आर्यखण्डमें उत्पन्न हुए। हे नाथ, आप सोमप्रभ राजाके भरताग्रणी-कौरववंशके प्रमुख पुरुष जयसे विराजित जयकुमार नामसे प्रसिद्ध हैं। तथा हे नाथ, जो धीर, कृपालु, शत्रुमण्डलको कंपित करनेवाले, नम्र, तथा भयसे कांपनेवाले जनोंका कंप प्रेमसे नष्ट करनेवाले अकम्पन महाराज शोभते हैं, उनसे मेरा जन्म हुआ है, सो आप जाने। ' हा, हे प्रभावती विद्याधरी ' बोलकर आप मूर्च्छित होगये, और मैं कबूतरके भवमें मेरा पति हुए रतिवर कबूतरका स्मरण करके ' हे रतिवर तू कहां है ' बोलकर मूर्च्छित होगई। यह कौटिल्यका कपटका नाश करनेवाला मेरा ज्ञान है। अर्थात् जो जातिस्मरणसे मुझे ज्ञात हुआ है वह सब मायारहित मैंने आप लोगोंके सान्निध्य स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार क्रीडा करनेवाले लज्जारूपी अपार समुद्रसे भरे हुए, हम दोनों दंपतीत्वको प्राप्त होकर अब जातिस्मरणसे युक्त हो गये और हम दोनों यहा पैदा हुए हैं। इस प्रकार सुलोचनाने कहा। जयकुमार अपनी पत्नीके वचनोंसे आनंदित हो गये। योग्यही है कि, स्त्रीके भाषणसे कौन आनंदित नहीं होता है? इस प्रकार आनंदसे भोगोंको भोगते हुए वे काल व्यतीत करने लगे। विद्याधरभवमें जो अनेक विद्यायें उनको प्राप्त हुई थीं वे विद्यायें इस समय भी उनको प्राप्त हुई। विद्याके सामर्थ्यसे

इहागताविति व्यक्तं सा प्रोवाच सुलोचना। जयोऽतुषत्प्रियावाक्यात्कः स्त्रीवाचा न तुष्यति ॥
एवं सुखेन भुञ्जानौ भोगं कालं विनिन्यतुः। विद्याधरभवावाप्तनानाविद्यासमाश्रितौ ॥२५९
विद्याप्रभावतस्तौ द्वौ मेरौ च कुलपर्वते। विहरन्तौ सुभेजाते सातं संसारसारजम् ॥२६०
कैलासशैलजे रम्ये वने मेघस्वरो गतः। तदा सुलोचनाभ्यर्णादसौ किंचिदपासरत् ॥२६१
तदेन्द्रेण सभामध्ये जयस्य शीलशंसनम्। तत्प्रियायाश्च संचक्रे तच्छुश्राव रविप्रभः ॥२६२
असहिष्णुः सुरो देवीं काञ्चनाख्यामजीगमत्। सा तं प्राप्य समाचख्यौ क्षेत्रेऽस्मिन्भारते वरे ॥
विजयार्द्धोत्तरश्रेण्यां पुरे रत्नपुरेऽप्यभूत्। राजा पिङ्गलगन्धारो भामिनी तस्य सुप्रभा॥२६४
विद्युत्प्रभा तयोःपुत्री नमेर्भार्याभवं पुनः। त्वां मेरुनन्दने वीक्ष्य क्रीडन्तं सोत्सुकाप्यहम् ॥२६५
ततः प्रभृति मच्चित्ते त्वमभूर्लिखिताकृतिः। दैवतस्त्वं च दृष्टोऽसि मां धारय सुखाप्तये ॥२६६
तद्दुष्टचेष्टितं दृष्ट्वा मा मंस्थाः पापमीदृशम्। पराङ्गनापरित्यागव्रतं स्वीकृतवानहम् ॥२६७
निर्भर्त्सिता महीशेन साभूत्कोपनकम्पिता। उपात्तराक्षसीवेषा तं समुध्दृत्य गत्वरी ॥२६८
पुष्पावचयसंसक्तसुलोचनाभितर्जिता। भीता सा काञ्चना तस्याः शीलमाहात्म्यतो गता॥२६९

वे दम्पती मेरुपर्वतपर तथा कुलपर्वतपर विहार करते हुए संसारका सारभूत सुख भोगने लगे ॥ २५३–२६० ॥ किसी समय मेघस्वर अर्थात् जयकुमार कैलासपर्वतके रम्य वनमें गया था, तब सुलोचनाके पाससे वह किंचित् दूर हुआ। उस समय इन्द्रने सभामें जय और उसकी पत्नी सुलोचनाके शीलकी प्रशंसा की। रविप्रभदेवने वह सुनी। परंतु वह असहिष्णु होनेसे उसने कांचना नामकी देवी जयकुमारके पास भेजी। वह उसके पास जाकर इस प्रकार कहने लगी। इस उत्तम भरत क्षेत्रमें विजयार्द्धपर्वतकी उत्तर श्रेणीमें रत्नपुरनगरका पिंगलगंधार नामका राजा है। उसकी पत्नीका नाम सुप्रभा है। उन दोनोंको मैं विद्युत्प्रभा नामकी पुत्री हुई हूं और मेरा नमि विद्याधरके साथ विवाह हुआ है। किसी समय मेरुके नंदनवनमें आपको क्रीडा करते हुए मैंने देखा। आपके विषयमें मैं उत्कंठित भी हुई और तबसे मेरे मनमें चित्रके समान आपकी आकृति लिखी गई है। दैवयोगसे आज आपका दर्शन होगया। हे नाथ, आप सुखके लिये मेरा स्वीकार करें ॥ २६१–२६६ ॥ उस देवीकी वह दुष्ट चेष्टा देखकर इस तरहका पाप विचार तू मनसे निकाल दे। मैंने परस्त्रीत्यागव्रत धारण किया है। ऐसा कहकर राजा जयकुमारने उसकी निर्भर्त्सना की। तब वह देवता कोपसे कांपने लगी। उसने राक्षसी वेष धारण किया और उसको उठाकर लेजाने लगी। उस समय सुलोचना पुष्प तोड रही थी, उसने जब राक्षसीको डाँट लगायी तब उसके शीलके माहात्म्यसे डरकर वह कांचना देवी वहांसे भाग कर अदृश्य होगई। योग्यही है कि देव शीलवतीसे भय को प्राप्त होते हैं। वह कांचनादेवी अपने स्वामीके पास जाकर उसको नमस्कार

अदर्शयत्तां सुराः शीलवत्या यान्ति भयं ननु। गत्वा सा स्वामिनं नत्वा चक्रे तच्छीलशंसनम् ॥
रविप्रभः समागत्य विस्मयात्तावुभौ नतः। समाख्याय स्ववृत्तान्तं युवाभ्यां क्षम्यतामिति ॥२७१
संपूज्य वस्त्रसद्रत्नैः स्वर्गलोकं समासदत्। विहृत्य कान्तयारण्ये पुरं निवृत्य सोऽगमत् ॥२७२
बभूव नमितानेकनृपवृन्दो महोदयः। अन्यदा स समुत्पन्नबोधिर्मेघस्वरो नृपः ॥२७३
आदिनाथं समासाद्य वन्दित्वा श्रुतवान्वृषम्। विरक्तो भवभोगेष्वनन्तवीर्यं सुतं धृतम् ॥२७४
शिवंकरमहादेव्या अभ्यषिञ्चन्निजे पदे। सर्वसंगं परित्यज्य संयमं बहुभिर्नृपैः ॥२७५
अग्रहीत्सिद्धसप्तर्द्धिश्चतुर्ज्ञानविराजितः। अभूद्गणधरो भर्तुरेकसप्ततिसंख्यकः ॥२७६
सुलोचना वियोगार्ता विरक्ता च सुभद्रया। चक्रिपत्न्या समं ब्राह्मीसमीपे व्रतमग्रहीत् ॥२७७
कृत्वा तपो विमानेऽनुत्तरेऽभूत्साच्युतेऽमरः। ततः श्रीवृषभश्रेष्ठो विहृत्य निवृतोऽखिलान् ॥२७८
धर्मोपदेशदानेन सिञ्चन्भव्यजनावलीम्। कैलासशिखरं प्राप्य चतुर्दशदिनानि वै ॥२७९
मुक्तसंगसमायोगो निरस्ताखिलयोगकः। माघकृष्णचतुर्दश्यां भगवान्भास्करोदये ॥२८०
पल्यङ्कासनसंरूढप्राङ्मुखः क्षिप्तकल्मषः। शरीरत्रितयापाये जगाम पदमव्ययम् ॥२८१

कर जयकुमारके शीलकी प्रशंसा करने लगी ॥ २६७-२७१ ॥ रविप्रभदेव आश्चर्यचकित होकर उनके पास आया और उसने दोनों को नमस्कार किया। तथा इन्द्रने सभामें कहा हुआ सब वृत्त उसने जयकुमारको कह दिया। अपनी भी कथा कहकर उनकी उसने क्षमायाचना की। वस्त्र और रत्नोंसे उनकी पूजा कर वह स्वर्गको गया। इधर जयकुमारभी वनमें अपनी स्त्रीके साथ क्रीडा कर वहांसे लौटकर अपने नगरको पत्नीसहित चला गया ॥ २७२ ॥ जयकुमार दीक्षा लेकर वृषभनाथका गणधर हुआ। जिसको अनेक नृपसमूह नमस्कार करते हैं, जो महावैभवशाली है ऐसा मेघस्वर (जयकुमार) राजा एक समय संसारविरक्त हुआ। आदीश्वरके पास जाकर उनको वंदनाकर उसने धर्मोपदेश सुना। भवभोगोंमें विरक्त होकर शिवंकर महादेवीके पुत्र अनंतवीर्यको अपने पदपर उसने अभिषिक्त किया। सर्व परिग्रहोंको त्यागकर अनेक नृपोंके साथ उसने संयम धारण किया। उसको सात ऋद्धियां सिद्ध हो गयीं। चार ज्ञानोंसे वह विराजमान होगया और वह भगवंतका इकहत्तरवा गणधर बन गया ॥ २७३-२७६ ॥ पतिवियोगसे दुःखी सुलोचनाने विरक्त होकर चक्रवर्ती भरतकी पत्नी सुभद्राके साथ ब्राह्मी आर्यिकाके समीप दीक्षा ग्रहण की। तपश्चरण करके अच्युत स्वर्गके अनुत्तर विमानमें वह देव हुई ॥२७७-२७८॥ तदनन्तर श्रीवृषभ प्रभुने अनेक देशोंमें विहार किया। धर्मोपदेशके दानसे भव्य जनोंको सिंचित करके भगवान् कैलास शिखरपर आये। वहां चौदह दिनतक संपूर्ण परिग्रहोंका संबंध नष्ट होनेसे वे संपूर्ण योगोंसे रहित होगये। माघकृष्णचतुर्दशीके दिन सूर्योदयके समय भगवान्ने पल्यंकासनसे बैठकर, पूर्व दिशाके सम्मुख मुख कर, संपूर्ण अघातिकर्मोंको नष्ट कर,

तदा सुरासुराः सर्वे निर्वाणपरमोत्सवम् । चक्रुः सुकृतकर्माणि कुर्वन्तः सिद्धिसिद्धये ॥२८२
जयोऽपि प्राप्तकैवल्यबोधनो घातिघातनात् । अघातिक्षयतः प्राप शिवस्थानं शिवोन्नतम् ॥२८३

जयो जयतु जित्वरो जगति जैनशास्त्रार्थवित् ।
घनाघनसमः सदा सकलवैरिदावानले ॥
मनोमलविशोधनो विपुलशुद्धिसंपादकः ।
सुकौरवशिरोमणिः सुभगभव्यवारस्तुतः ॥२८४
इति वृषभजिनेशे प्राप्तनिर्वाणदेशे ।
सुघटितसुघटार्थे प्रोद्धृतप्राणिसार्थे ॥
भरतभवनभोगी शुद्धसंवेगयोगी ।
भरतनरपपालो यातु मोक्षं दयालुः ॥२८५

इति त्रैविद्यविद्या-विशदभट्टारक-श्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्म-श्रीपालसाहाय्यसापेक्षे श्रीपाण्डवपुराणे महाभारतनाम्नि जयसुलोचनोपाख्यानवर्णनं नाम तृतीयं पर्व ॥ ३ ॥

औदारिक, तैजस और कार्मण तीन शरीरोंके नाशसे अविनाशी मोक्षपद प्राप्त करलिया। तब सर्व देव और असुरोंने सिद्धि की प्राप्तिके लिये पुण्यकर्मोंको करते हुए आदिभगवानका निर्वाण महोत्सव किया ॥ २७९-८२ ॥ जयकुमार मुनिराज भी घातिकर्मका विनाश कर केवलज्ञानी हुए और अघातिकर्मोंके क्षयसे सुखपरिपूर्ण मोक्षको प्राप्त होगये ॥ २८३ ॥ जैनशास्त्रोंके अर्थोंका ज्ञाता, सम्पूर्ण वैरीरूपी दावानल शान्त करनेके लिये सदा मेघके समान, मनका रागद्वेषादि मल नष्ट करनेवाला, उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त करनेवाला, उत्तम कौरववंशका शिरोमणि, विजयशाली जयकुमार राजा जगतमें जयवन्त रहे ॥ २८४ ॥ जीवादिपदार्थ समूहको सुव्यवस्थित करनेवाले, प्राणिसमूहको संसारसे उद्धृत करनेवाले वृषभ जिनेश्वरके निर्वाणस्थानको प्राप्त होनेपर भरतक्षेत्ररूपी गृहके भोगी, संसारभयसे शुद्ध ध्यान धारण करनेवाले, दयालु भरतचक्रवर्ती मुक्तिको प्राप्त होवे ॥ २८५ ॥

इस प्रकार ब्रह्मश्रीपालकी सहायताकी अपेक्षा जिसमें है, ऐसे त्रैविद्यविद्यासे निर्मल भट्टारक श्रीशुभचन्द्रप्रणीत पाण्डवपुराणमें अर्थात् महाभारतमें जयकुमार सुलोचनाकी कथा वर्णन करनेवाला तृतीय पर्व समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

। चतुर्थं पर्व ।

प्रथमं पृथुजीवानां प्रथमानमहोदयम् । प्रथमं पृथुतां प्राप्तं पप्रथे तद्गुणैर्जिनम् ॥१
अथ जज्ञे क्रमाद्राजानन्तवीर्यात्कुरुर्महान् । कुरुवंशनभश्चन्द्रः कुरुचन्द्रस्ततोऽजनि ॥२
तस्माच्छुभंकरः श्रीमान्धृतिकारी धृतिंकरः । एवं नृपेष्वतीतेषु बहुसंख्येष्वनुक्रमात् ॥३
धृतदेवस्ततो जज्ञे गङ्गदेवो गुणाकरः । धृतिमित्रादयश्चान्ये राजानो बहवोऽभवन् ॥४
धृतिक्षेमोऽक्षयीख्यातः सुव्रतश्च ततः परः । व्रातमन्दरनामाथ श्रीचन्द्रः कुलचन्द्रमाः ॥५
सुप्रतिष्ठादयो भूपा बहवः स्वर्गगामिनः । भ्रमघोषस्ततो जज्ञे हरिघोषो हरिध्वजः ॥६
रविघोषो महावीर्यः पृथ्वीनाथः परः पृथुः । गजवाहनभूपाद्या व्यतीयुः शतशो नृपाः ॥७
विजयाख्योऽभवत्तस्मात्सनत्कुमारभूपतिः । सुकुमारस्ततो जातस्तस्माद्वरकुमारकः ॥८
विश्वो वैश्वानरस्तस्माद्विश्वध्वजो महीपतिः । बृहत्केतुः सुकेतुत्वं गतो नृपतिसंहतौ ॥९
अथ श्रीविश्वसेनस्य सुतः शान्तिजिनो महान् । चरितं तस्य संक्षिप्य वक्ष्ये क्षेमंकरं मताम् ॥१०

[चतुर्थ पर्व]

जो महापुरुषोंमें विस्तीर्ण महोदयको अर्थात् इन्द्रादिकृत पंचमहाकल्याणरूपी अभ्युदयको धारण करनेवाले हुए, प्रथमही सबमें ज्येष्ठपदको जिन्होंने प्राप्त करलिया ऐसे प्रथम जिनेश्वरके गुणोंकी मैं प्रशंसा करता हूं ॥ १ ॥

[कुरुवंशमें उत्पन्न हुए राजाओंकी परम्परा] जयकुमार राजाने अपने पुत्र--अनंतवीर्यको राज्य दिया था । अनन्तवीर्य राजासे कुरु नामक पुत्र हुआ । वह महान् पराक्रमी था । उससे कुरुवंशरूपी आकाशमें चन्द्रके समान कुरुचन्द्र नामका पुत्र हुआ । उससे लक्ष्मीसंपन्न शुभङ्कर राजा हुआ । उससे धृति-संतोषको उत्पन्न करनेवाला धृतिङ्कर पुत्र उत्पन्न हुआ । इस प्रकार इस कुरुवंशमें अनुक्रमसे बहुसंख्य राजा होगये ॥ २-३ ॥ इनके अनंतर धृतदेव, गुणोंका कोष ऐसा गङ्गदेव तदनंतर धृतिमित्रादिक अन्य अनेक राजा होगये । तदनंतर धृतिक्षेम, अक्षयी, सुव्रत ये नृप हुए । इनके अनंतर व्रातमन्दर नामक राजा हुआ । तदनंतर श्रीचन्द्रराजा, कुलचन्द्र, सुप्रतिष्ठ आदिक अनेक राजा स्वर्गगामी होगये । तदनंतर भ्रमघोष राजा हुआ । इसके अनंतर हरिघोष, हरिध्वज, रविघोष, महावीर्य, पृथ्वीनाथ, पृथु, गजवाहन आदिक सैंकडों राजा हो गये । गजवाहनसे विजयनामक राजा, उससे सनत्कुमार राजा, उससे सुकुमार ऐसे नरपाल होगये, सुकुमारसे वरकुमार राजा हुआ । उससे विश्व, विश्वसे वैश्वानर, उससे विश्वध्वज, अनंतर बृहत्केतु हुये, ये सब राजा राजाओंमें उत्तम ध्वजके समान थे ॥ ३-९ ॥

[श्रीशान्ति जिनेश्वरका चरित] इस कुरुवंशमें विश्वसेन राजाके पुत्र महान् शान्तितीर्थंकरका जन्म हुआ । सज्जनोंका हित करनेवाला उस प्रभुका चरित संक्षेपसे कहता हूं ॥ १० ॥

मध्ये भरतमाभाति विजयार्धो महाचलः । तदवाच्यां पुरं श्रेण्यां रथनूपुरसंज्ञकम् ॥११
ज्वलनादिजटी तस्य पतिर्विद्याधराग्रणीः । वायुवेगाभवत्तस्य वायुवेगा सुभामिनी ॥१२
अर्ककीर्तिस्तयोः सूनुः स्वकीर्त्या व्याप्तविष्टपः । स्वयंप्रभा सुता चासील्लक्ष्मीरिव सुशोभया ॥१३
अथान्येद्युर्जगन्नन्दनाभिनन्दनयोगिनौ । मनोहरवने ज्ञात्वा स्थितौ स वन्दितुं गतः ॥१४
वन्दित्वा धर्ममाकर्ण्य सम्यग्दर्शनमाददे । चारणौ स पुनर्नत्वा प्रत्येत्य प्राविशत्पुरम् ॥१५
स्वयंप्रभा समादाय धर्मं तत्रैकदा मुदा । पर्वोपवासिनी क्षीणा जिनानभ्यर्च्य भक्तितः ॥१६
तत्पादद्वन्द्वसंश्लिष्टपुष्पशेषां समर्पयत् । पित्रे स तां समावीक्ष्य यौवनोन्नतिशालिनीम् ॥१७
कस्मै देया सुचिन्त्येति प्राह्वयन्मन्त्रिणोऽखिलान् । प्रस्तुतार्थे नृपेणोक्ते सुश्रुतः प्राह सुश्रुती ॥१८
अथोत्तरमहाश्रेण्यामलकापुरि भूपतिः । बर्हिग्रीवः प्रिया नीलाञ्जना तस्य तयोः सुताः ॥१९
अश्वग्रीवो नीलकण्ठो वज्रकण्ठो महाबलः । अश्वग्रीवस्य कनकचित्रादेवी तयोः सुताः ॥२०
शतानि पञ्च परमा मन्त्र्यस्य हरिश्मश्रुकः । शतबिन्दुर्निमित्तज्ञस्त्रिखण्डभरतेशितुः ॥२१

भरतक्षेत्रके मध्यमें विजयार्द्धनामका बडा पर्वत है। उसके दक्षिण श्रेणीमें रथनूपुर नामक नगर है। विद्याधरोंका अगुआ ज्वलनजटी नामक राजा उसका स्वामी था। उसकी पत्नी वायुके समान वेगवाली वायुवेगा नामकी थी। इन दोनोंको अपनी कीर्तिसे जगत को व्यापनेवाला अर्ककीर्ति नामक पुत्र था, और लक्ष्मीके समान सुन्दर स्वयंप्रभा नामकी एक कन्या थी ॥११-१३॥ किसी समय मनोहरवनमें जगन्नन्दन और अभिनन्दन ये दो मुनिराज आये हैं ऐसा जानकर ज्वलनजटी राजा उनकी वन्दनाके लिये गया। उनको वन्दन करके उनसे धर्मका स्वरूप राजाने सुनकर सम्यग्दर्शन ग्रहण किया। और पुनः उन चारणर्षिको नमस्कार कर लौटकर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥ १४ १५ ॥

[स्वयंप्रभाका स्वयंवरविधान] किसी समय स्वयंप्रभाकन्याने आनंदसे उन मुनियोंके पास अणुव्रत रूप धर्म का स्वीकार किया। वह पर्वोपवाससे क्षीण हुई थी। उसने जिनेश्वरोंकी भक्तिसे पूजा कर उनके चरणयुगलोंपरकी पुष्पशेषा पिताको दी। राजाने यौवनके उदयसे शोभनेवाली कन्याको देखकर विचार किया। और सर्व मंत्रियोंको बुलाकर पूछा कि किसके साथ इसका विवाह करना चाहिये। तब सुश्रुतनामक विद्वान् मंत्री कहने लगा ॥ १६-१८ ॥ विजयार्ध पर्वतकी उत्तर महाश्रेणीकी अलकानगरीमें राजा मयूरग्रीव राज्य करता था। उसकी नीलांजना नामकी रानी थी। उन दोनोंको अश्वग्रीव, नीलकण्ठ, वज्रकण्ठ, महाबल ये पुत्र हुए। अश्वग्रीवकी कनकचित्रा नामक रानी थी। उन दोनोंको पांचसौ पुत्र हुए। अश्वग्रीव त्रिखंड भरतक्षेत्रका अधिपति है उसके मंत्रीका नाम हरिश्मश्रु और निमित्तज्ञानीका नाम शतबिन्दु है। त्रिखण्डभरतके अधिपति अश्वग्रीवको अपनी कन्या सुखके लिये देना चाहिये। इस

तस्मै संपूर्णराज्याय कन्या देया सुखाप्तये । सुश्रुतोक्तं श्रुतं श्रुत्वा बभाषे च बहुश्रुतः ॥२२
युक्तमुक्तं पुनः किंत्वश्वग्रीवश्च वयोऽधिकः । तस्मै दत्ता सुता नित्यं यतः स्याद्भोगवर्जिता ॥२३
तदुक्तम् ।
आभिजात्यमरोगित्वं वयः शीलं श्रुतं वपुः । लक्ष्मीः पक्षः परीवारो वरे नव गुणाः स्मृताः ॥२४
ततोऽन्यं वरमन्विष्य कथयामि नराधिप । येन स्पष्टसुदृष्टेन शिष्टास्तिष्ठन्ति पुष्टये ॥२५
पुरे खवल्लभे सिंहरथो मेघपुरे नृपः । कुशेशयरथश्चित्रपुरेऽरिंजयभूपतिः ॥२६
अश्वद्रङ्गे हेमरथो रत्नपुरे धनंजयः । एतेष्वन्यतमायेयं देया कन्या शुभावहा ॥२७
श्रुत्वा वचः शुभं तस्य प्रोवाच श्रुतसागरः । कन्यावरो वरः कश्चित्कथ्यते श्रूयतां लघु ॥२८
द्रङ्गे सुरेन्द्रकान्तारे उदक्श्रेणिनिवासिनि । मेघवाहनभूपस्य प्रियासीन्मेघमालिनी ॥२९
विद्युत्प्रभस्तयोः पुत्रो ज्योतिर्माला परा सुता । सिद्धकूटं गतो मेघवाहनस्तत्र दृष्टवान् ॥३०
चारणं वरधर्माख्यं नत्वा स श्रुतवान्वृषम् । स्वसूनोः प्राक्तने पृष्टे भवे प्रोवाच चारणः ॥३१
प्राग्विदेहेऽस्ति विषयो द्वीपेऽत्र वत्सकावती । प्रभाकरी पुरी राज्ञो नन्दनस्य च नन्दनः ॥३२

प्रकार सुश्रुतने अपना अभिप्राय कहा। उसे सुनकर बहुश्रुत नामक मंत्रीने कहा ॥ १९-२२ ॥ कि सुश्रुत मंत्रीने जो कहा वह योग्य है; परंतु अश्वग्रीव वयसे अधिक है। उसे अपनी कन्या देनेपर वह सुखोपभोगसे वंचित रहेगी। कहा भी है, कि वरमें सत्कुलमें उत्पत्ति, रोगरहितपना, तारुण्य, शील, विद्वत्ता, पुष्टशरीर, लक्ष्मी, पक्ष और परीवार ये नौगुण होने चाहिए। अश्वग्रीव वयसे अधिक होनेसे उसको कन्या नहीं देनी चाहिये। इसलिये अन्यवर की तलाश कर हे राजन् मैं खुलासा करूंगा। स्पष्टरीतीसे अवलोकन करनेसे विचार करनेसे अपने विषयकी पुष्टि होती है। और विद्वान् लोक अपने विषयकी पुष्टीके लिये होते हैं ॥ २३-२५ ॥ हे राजन्। गगनवल्लभ नगरका सिंहरथ, मेघपुरका पद्मरथ, चित्रपुरका अरिंजय, अश्वपुरका हेमरथ, रत्नपुरका धनंजय, इन राजाओंमेंसे किसीएकको यह कल्याण करनेवाली कन्या देनी चाहिये। बहुश्रुत मंत्रीका भाषण सुनकर श्रुतसागर नामक मंत्रीने कहा कि. मैं एक श्रेष्ठ वरके विषयमें थोडासा कहता हूं आप सुनिये ॥ २६-२८ ॥ विजयार्धपर्वतकी उत्तरश्रेणीके सुरेन्द्रकान्तार नामक नगरमें मेघवाहन राजा राज्य करता है। उसकी रानी मेघमालिनी नामकी है। इन दोनोंको विद्युत्प्रभ नामक पुत्र और ज्योतिर्माला नामकी कन्या है। किसी समय मेघवाहन राजा सिद्धकूटपर गया था। वहा उसने वरधर्मनामक चारण मुनिको देखा। वंदनकर उनसे धर्मका स्वरूप सुन लिया। अपने पुत्रका पूर्व भव पूछनेपर चारणमुनीने कहा, कि इस द्वीपमें पूर्वविदेहके वत्सकावती देशमें प्रभाकरी नगरीका राजा नंदन था। उसके पुत्रका नाम विजयभद्र था। विजयभद्रकी प्रियपत्नी जयसेना थी। किसी समय पेडसे फलको गिरते हुए देखकर उसे वैराग्य हुआ। अुसने वनमें पिहितास्रव नामक गुरुके पास

वीरो विजयभद्राख्यो जयसेनास्य वल्लभा । अन्यदा स पतद्वीक्ष्य फलं च विपिने गतः ॥३३
वैराग्यं स्वं गुरुं प्राप्य पिहितास्रवसंज्ञकम् । चतुःसहस्रभूपालैः संयमं संयमी ययौ ॥३४
मृत्वा माहेन्द्रकल्पेऽगाद्विमाने चक्रके ततः । सप्तसागरमाजीव्य च्युत्वा त्वत्सुततां गतः ॥३५
प्रयास्यति स निर्वाणमिति तत्र गतेन तत् । मया श्रुतं ततस्तस्मै देया कन्या प्रयत्नतः ॥३६
ज्योतिर्मालां ग्रहीष्यामस्तत्पुत्रीमर्ककीर्तये । इति श्रुत्वा वचस्तस्य सुमतिः सचिवोऽवदत् ॥३७
कन्याया याचकाः सन्ति खगाः सर्वे सहस्रशः । कन्यायां ते प्रदत्तायामस्मै यास्यन्ति वैरिताम् ॥
श्रेयान्स्वयंवरस्तस्मादित्युक्त्वा विरराम सः । अनुमन्य तदेवाशु सर्वे ते तेन प्रेषिताः ॥३९
संभिन्नश्रोतृनामानं पुराणार्थप्रवेदिनम् । अप्राक्षीत्स समाहूय स्वयंप्रभायै वरं परम् ॥४०
सोऽवोचच्छृणु शास्त्रेऽत्र श्रुतं तत्कथ्यते मया । सुरम्यविषये ख्याते पोदनाख्ये पुरे परे ॥४१
नृपः प्रजापतिस्तस्य जाया भद्रा मृगावती । भद्रायां विजयो जज्ञे मृगावत्यास्त्रिपृष्ठकः ॥४२
भवितारौ बलकृष्णौ श्रेयस्तीर्थे महाबलौ । हत्वाश्वग्रीवशत्रुं चाद्यौ त्रिखण्डपती च तौ ॥४३
त्रिपृष्टस्तु भवं भ्रान्त्वा भावी तीर्थकरोऽन्तिमः । अतः कन्या त्रिपृष्टाय देया त्रिखण्डभोगिने ॥
कन्या तस्य मनो हृत्वा भूयात्कल्याणभागिनी । भवतो भावितानेन सर्वविद्याधरेशिता ॥४५

जाकर चार हजार राजाओंके साथ संयम धारण किया। आयुष्यके अन्तमें विजयभद्रमुनि महेन्द्र-कल्पके चक्रकविमानमें उत्पन्न हुए। वहां सात सागरतक सुखसे रहकर वहांसे च्युत होकर, हे राजन्, वह देव विद्युत्प्रभ नामक तुम्हारा पुत्र हुआ है। और वह कर्मक्षय करके मुक्ति प्राप्त कर लेगा। हे राजन्, सिद्धकूटपर गये हुए मैंने यह बात सुनी है। इसलिये विद्युत्प्रभको प्रयत्नपूर्वक कन्या देना योग्य है। उस मेघवाहनकी पुत्री ज्योतिर्मालाको हम अर्ककीर्तिके लिये ग्रहण करेंगे। इस प्रकार श्रुतसागर मंत्रीका वचन सुनकर सुमति नामक मंत्रीने कहा हे राजन्, विद्युत्प्रभको कन्या देनेपर हजारों विद्याधर शत्रु बनेंगे इसलिये स्वयंवर करनाही अच्छा है। इस प्रकार बोलकर वह मंत्री मौनसे बैठा। राजा ज्वलनजटीने उसकी बात मानी और सभा विसर्जन की। सर्व मंत्री स्वस्थानोंको चले गये। अनंतर राजाने पुराणार्थोंका ज्ञाता सम्भिन्न श्रोता नामक मंत्रीको बुलाकर पूछा कि स्वयम्प्रभाका वर कौन होगा? उसने कहा राजन् शास्त्रमें जो मैंने सुना है वह कहता हूं सुनो। सुरम्य नामक प्रसिद्ध देशमें पोदनपुर नामक सुन्दर शहर है। वहां के प्रजापति राजाको भद्रा और मृगावती नामक दो रानियां हैं। भद्रा रानीसे विजय और मृगावती रानीसे त्रिपृष्ठक ऐसे दो पुत्र हुए हैं। श्रेयान तीर्थकरके तीर्थमें ये दोनों पुत्र महाबली प्रथम बलभद्र और नारायण होंगे। अश्वग्रीवको युद्धमें मारकर वे पहिले त्रिखण्डाधिपति होंगे। त्रिपृष्ठ तो संसारमें भ्रमण कर भावी अन्तिम तीर्थकर होनेवाले हैं। इसलिये त्रिखण्डको भोगनेवाले त्रिपृष्ठको कन्या देना योग्य है। तथा यह कन्या उसका मन हरण कर कल्याणयुक्त

इति तस्य वचो श्रुत्वा चित्तेऽसौ तमपूजयत् । इन्द्राख्यदूतमाहूय लेखप्राभृतसंयुतम् ॥४६
प्राहिणोच्छिक्षया युक्तं भूपः प्रजापतिं प्रति। जयगुप्तात्पुरा ज्ञातं निमित्तज्ञाच्चिरात्स्फुटम् ॥४७
स्वयंप्रभापतिर्भावी त्रिपृष्ठ इति भूभुजा । दूतोऽथ राजसदनं स प्रविष्टः सभालये ॥ ४८
योग्यासने स्थितस्तस्मै दत्तवान्वरप्राभृतम् । दूतः प्रोवाच विनयान्नृपं प्रति कृतादरः ॥४९
स्वयंप्रभाख्यया लक्ष्म्या त्रिपृष्ठो व्रियतामिति। शुश्राव सकलं वृत्तं वाचयित्वा च वाचिकम्॥
प्रतिप्राभृतकं दत्त्वा तं प्रपूज्य वचोहरम् । तथेति प्रतिपद्यासौ विससर्ज प्रजापतिः ॥ ५१
गत्वा स सत्वरं दूतो रथनूपुरभूमिपम् । प्रणम्य सर्वकार्यस्य सिद्धिं युक्त्या व्यजिज्ञपत् ॥५२
विभूत्या नगरं प्राप्तं विद्येशं स प्रजापतिः । गत्वा सम्मुखमानीयास्थापयद्योगमण्डपे ॥ ५३
विवाहोचितकार्येण ददौ तस्मै स्वयंप्रभाम् । सिंहाहिताक्ष्र्यविद्याश्च खगः साधयितुं ददौ ॥५४
अश्वग्रीवपुरेऽभूवन्नुत्पातास्त्रिविधाः परे । अभूतपूर्वांस्तान्दृष्ट्वा जना भीतिमगुस्तदा॥ ५५
शतबिन्दुं निमित्तज्ञमश्वग्रीवः समाह्वयत् । किमेतदिति संपृष्टे स ब्रूते स्म च तत्फलम् ॥५६

होगा और आपको भी सर्व विद्याधरोंका स्वामित्व प्राप्त होगा ॥ ३८–४५ ॥ राजा ज्वलनजटीने उसके वचन मनमें धारण किये। उसका उसने आदर किया। अनन्तर राजाने इन्द्र नामक दूतको बुलाकर उसको लेख और भेंट सौंप दी। और कहने योग्य बातें कह कर उसे राजाने प्रजापति राजाके पास भेज दिया। राजा ज्वलनजटीने जयगुप्त नामक निमित्तज्ञानीसे पहिलेही सुना था कि स्वयम्प्रभाका भावी पति त्रिपृष्ठ होगा। इसके अनंतर उस दूतने राजप्रासादमें प्रवेश किया। सभामें योग्य आसनपर बैठकर प्रजापति महाराजको भेटके पदार्थ अर्पण किये और आदरयुक्त होकर विनयसे कहा कि स्वयम्प्रभारूपी लक्ष्मीकेद्वारा त्रिपृष्ठ वरा जावे। राजा प्रजापतिने सम्पूर्ण वृत्त सुना तथा सन्देशपत्र भी पढ लिया। उसने भी ज्वलनजटीके प्रति भेट देकर और दूतका आदर सत्कार कर हम स्वयम्प्रभाको त्रिपृष्ठके लिये पसन्द करते हैं ऐसा कह कर दूतको भेज दिया ॥ ४६–५१ ॥ वहांसे सत्वर निकलकर रथनूपुरके राजाके पास अर्थात ज्वलनजटीके पास आकर नमस्कार करके दूतने युक्तिसे कहा कि सर्व कार्यकी सिद्धि हुई है ॥ ५२ ॥ अनंतर ज्वलनजटी अपने वैभवसे पोदनपुरको आगये। प्रजापति राजाने सम्मुख जाकर स्वागत किया और उनको लाकर योग्य मण्डपमें उनकी स्थापना की। विद्याधरेश ज्वलनजटीने विवाहके योग्य सर्व कार्य करके त्रिपृष्ठको स्वयंप्रभा दी। तथा सिंहवाहिनी, नागवाहिनी और गरुडवाहिनी ये तीन विद्यायें त्रिपृष्ठको साधनेके लिये दीं ॥ ५३–५४ ॥ उधर अश्वग्रीवके नगरमें–अलकापुरीमें तीन प्रकारके उत्पात (दिग्दाह, उल्कापात, और भूकम्प) होने लगे। ऐसे उत्पात पहिले कभी नहीं हुए थे। उनको देखकर लोगोंको भय होने लगा। उस समय अश्वग्रीवने शतबिन्दु नामक निमित्तज्ञानीको बुलाकर पूछा कि यह क्या है ? तब उसने उनका फल बताया ॥ ५५–५६ ॥

सिन्धुदेशे हतो येन मृगारिः सत्पराक्रमः । येनाहारि हठात्त्वां च प्राभृतं प्रति प्रेषितम् ॥५७
स्वयंप्रभाभिधं रत्नं येनादायि खगेश्वरात् । ततस्ते शोभनं नूनं भविता चेक्ष्यतां स हि ॥५८
सोऽवादीन्मन्त्रिणस्तूर्णं युष्माभिः स समीक्ष्यताम् । विषाङ्कुरवदुच्छेद्यः सोऽन्यथा दुःखकृत्खलः॥
सर्वमन्विष्य तत्रापि निगूढैः प्रेषितैर्जनैः । शतबिन्दूक्तमाचिन्त्य तन्मृगारिवधादिकम् ॥६०
त्रिपृष्ठो नाम दर्पिष्ठः स परीक्ष्यः क्षितौ महान् । इत्युक्तं च महादूतौ चिन्तागतिमनोगती॥६१
त्रिपृष्ठं प्रेषयामासाश्वग्रीवो भयसंयुतः । तौ गत्वा नृपतिं नत्वा दृष्ट्वा प्राभृतपूर्वकम् ॥ ६२
निवेद्यागमनं युक्त्या प्रोचतुर्विनयान्वितौ । खगेश्वरेण भूप त्वमधुना ज्ञापितोऽस्यहो ॥ ६३
एष्याम्यहं रथावर्ताद्रिं ममानु भवानिति । त्वां नेतुमागतावावामारोप्याज्ञां स्वमूर्धनि ॥ ६४
आगन्तव्यं त्वयेत्युक्ते जगाद सोऽपि कोपतः । उष्ट्रग्रीवाः खरग्रीवा अश्वग्रीवा नराः क्वचित्॥
न दृष्टा इत्ययुक्तं तावूचतुः खगनायकम् । अवमन्तुं सर्वलोकाभ्यर्च्यं युक्तं न ते द्रुतम् ॥६६
इत्युक्ते सोऽवदत्स्वामी खगेट् ते पक्षसंयुतः । एष्याम्यहं न तं द्रष्टुमित्यब्रूतां च तौ नृपम्॥

[अश्वग्रीवने त्रिपृष्ठके पास दूत भेजे ।] जिसने सिंधु देशमें उत्तम पराक्रमी सिंह मारा, और आपके तरफ भेजी हुई भेट बीचमेंही बलात्कारसे लूट ली तथा स्वयंप्रभा राजकन्याको जिसने ज्वलनजटीसे ग्रहण किया, उससे आपको निश्चयसे पीडा होगी, अतः आप विचार करे । तब अश्वग्रीवने अपने मंत्रियोंसे कहा कि आप शीघ्र उसका अन्वेषण करें । विषांकुरके समान उसे तोडना ही चाहिये । यदि वह दुष्ट शत्रु नष्ट नहीं होगा तो वह हमको दुःखदायक होगा ॥ ५७-५९ ॥ शतबिन्दुने कही हुई सिंहवधादिक बातोंका विचार कर भेजे गये गुप्तचरों द्वारा उन बातोंका वहां अन्वेषण किया गया । त्रिपृष्ठ अत्यन्त दर्पयुक्त है, उसकी परीक्षा करनी चाहिये ऐसा कहकर भयभीत अश्वग्रीवने चिन्तागति और मनोगति नामके दो दूत भेटके पदार्थों-सहित भेज दिये । उन्होंने जाकर नमस्कार कर भेट अर्पण की तथा विनय और युक्तिसे अपना आगमन निवेदन कर वे बोलने लगे । हे राजन्, विद्याधरोंके अधिपति अश्वग्रीव महाराजने आपको आज्ञा दी है कि, मैं रथावर्त पर्वतपर आनेवाला हूं । आप भी मेरे पीछे वहां अवश्य आवें । हम दोनो आपको लेनेके लिये आगये हैं । चक्रवर्तीकी आज्ञा मस्तकपर धारण कर आप चलिये । दूतका भाषण सुनकर त्रिपृष्ठ कोपसे इस प्रकार बोलने लगा । उष्ट्रग्रीव-ऊंटके समान जिसका कण्ठ है, खरग्रीव-गधेके समान जिसकी गर्दन है, अश्वग्रीव-घोडेके समान जिसका गला है ऐसे पुरुष हमने कहीं नहीं देखे । तब उन दोनोंने कहा कि, सर्व लोगोंसे मान्य, विद्याधरोंके स्वामी अश्वग्रीव महाराजकी ऐसे वचनोंसे अवहेलना करना आपको योग्य नहीं है । तब पुनः त्रिपृष्ठ इस प्रकारसे बोले तुम्हारा स्वामी खगेट्-खग-पक्षीयोंका ईट्-स्वामी है अर्थात् पंखोंसे युक्त है अतः उसको मैं देखनेके लिये नहीं आऊंगा। दूतोंने कहा चक्रवर्तीको विना देखे दूर्भोक्ति योग्य नहीं है।

वक्तुं दर्पादिदं युक्तं नादृष्ट्वा चक्रनायकम् । यत्कोपान्न स्थितिर्देहे कौ कश्च स्थातुमर्हति॥६८
निशम्येति तयोर्वाक्यमवादीत्स भवत्पतिः । चक्री ते कुम्भकारः किं घटकृत्कारुकाग्रणीः॥६९
किं प्रेष्यं तस्य चेत्युक्ते तौ सक्रोधाववोचताम् । चक्रिभोग्यमिदं कन्यारत्नं किं तेऽद्य जीर्यति॥
ज्वलनादिजटी कोऽसौ कः प्रजापतिनामभाक् । क्रुद्धे चक्रिणि चेत्युक्त्वा गतौ दूतौ ततः क्रुधा॥
प्राप्याश्वग्रीवमानम्याकुण्ठौ भूपविचेष्टितम् । प्रोचतुस्तत्खगेट् श्रुत्वा स्फालयामास दुन्दुभिम्॥७२
जगद्व्यापिनमाकर्ण्य भेरीनादं जगुर्नृपाः । क्रुद्धे चक्रिणि कस्तिष्ठेद्भूमौ भीतिभरावहः ॥७३
रथावर्तमगाच्चक्री चतुरङ्गबलैस्तदा । जजृम्भिरे ककुब्दाहा उल्कापाताश्चचाल भूः ॥ ७४
विदित्वैतत्सुतौ तत्र प्रतीयतुः प्रजापतेः । सेनयोरुभयोस्तत्र सङ्गरः समभून्महान् ॥ ७५
हयग्रीवमगात्कोपात्त्रिपृष्ठो युद्धसन्मधीः । हयकण्ठोऽपि तं पूर्ववैराद्योद्धुं समुद्यतः ॥ ७६
समाच्छादयतः सेनां तौ बाणैर्बलिनौ बलात् । सामान्यशस्त्रयुद्धेन जेतुं तावितरेतरम् ॥ ७७

यदि वह कोपयुक्त हो जावे तो देहमेंभी रहना कठिन है । फिर पृथ्वीपर कौन कैसे रह सकता है । उन दूतोंका वाक्य सुनकर वह त्रिपृष्ठ आपका स्वामी चक्री–कुंभकार है, क्या घडे बनानेवाला कारुशूद्रोंमें अगुआ है ? उसकी क्या आज्ञा है ? इसप्रकार बोलनेपर फिर वे दूत क्रोधसे बोले । जो कन्यारत्न तुमको प्राप्त हुआ है, क्या तुम उसे पचा सकते हो । यह कन्यारत्न चक्रिभोग्य है, वह आपको नहीं पचेगा । चक्रवर्ती कुपित होनेपर कहांका ज्वलनजटी और कहांका प्रजापति ? इसतरह बोलकर वे दोनों क्रोधसे वहांसे चले गये ॥ ६८–७१ ॥ वे दो चतुर दूत लौटकर अश्वग्रीवके पास गये उसको नमस्कार कर त्रिपृष्ठकी चेष्टा का उन्होंने वर्णन किया । उसे सुनकर अश्वग्रीवने नगारे बजवाये । जगतमें फैलनेवाला दुंदुभीका आवाज सुनकर भूपाल बोलने लगे । चक्रवर्तीके क्रुद्ध होनेपर इस पृथ्वीपर डरके मारे कौन रह सकता है ? ॥ ७२, ७३ ॥

[त्रिपृष्ठका अश्वग्रीवके साथ युद्ध] चक्रवर्तीने चतुरंगसेनाके साथ रथावर्तपर प्रयाण किया । तब दिग्दाह, उल्कापात और भूकम्प हो गये । चक्रवर्तीका रथावर्तगिरिपर आना जानकर प्रजापति राजाके दोनों पुत्र उस पर्वतपर गये । तब वहां दोनों सेनाओंका घमसान युद्ध हुआ । युद्धमें जिसकी बुद्धि लगी है ऐसे त्रिपृष्ठ कुमारने कोपसे अश्वग्रीवपर आक्रमण किया, और पूर्व वैरसे अश्वग्रीवभी त्रिपृष्ठसे लडनेके लिये उद्युक्त हुआ । वे दोनों बलवान् वीर अपने बलसे बाणोंसे सेनाको आच्छादित करने लगे । तथा सामान्यशस्त्रोंसे वे दोनों एक दूसरेको जीतनेके लिये आरंभ करने लगे । समर्थ तथा बलसे उद्धत वे दोनों विद्यायुद्धभी करने लगे । दीर्घकालतक युद्ध करके भी जब अश्वग्रीवका विद्याबल व्यर्थ हुआ तब क्रोधसे उसने शत्रुके ऊपर चक्र फेंक दिया । वही

१ स म वाक्यमगदीत्स ।

आरेभाते क्षमौ तौ च विद्यायुद्धं बलोद्धतौ । चिरं युद्ध्वाश्वग्रीवस्तु व्यर्थविद्याबलः क्रुधा ॥७८
अभ्यारि क्षिप्तवांश्चक्रं तदेवादाय केशवः । तेनाश्वग्रीवसद्ग्रीवामच्छिनद्बलतो बली ॥ ७९
त्रिपृष्ठविजयौ जातौ भरतार्धपती परौ । खेचरैर्व्यन्तरैर्भूपैर्मागधैः कृतपूजनौ ॥ ८०
रथनूपुरनाथाय द्वयोः श्रेण्योरवातरत् । प्रभुत्वं किं न जायेत महदाश्रयतोऽच्युतः ॥ ८१
खड्गः शङ्खो धनुश्चक्रं दण्डः शक्तिर्गदाभवन् । सप्त रत्नानि सद्विष्णो रक्षितानि मरुद्गणैः॥८२
रत्नमाला गदा दीप्यद्रामस्य मुशलं हलम् । चत्वारीमानि रत्नानि जज्ञिरे भाविनिर्वृतेः ॥८३
सहस्रद्व्यष्टदेव्यस्तु विष्णोः स्वयंप्रभादयः । रामस्याष्टसहस्राणिशीलरूपगुणान्विताः ॥८४
प्रजापतिः सुतां ज्योतिर्मालां दत्त्वार्ककीर्तये । प्राप प्रीतिं परां युक्त्या विवाहेन महोत्सवैः॥८५
तयोरमिततेजास्तुक् सुतारा च सुताभवत् । विष्णोः श्रीविजयः पुत्रः परो विजयभद्रकः॥८६
सुता ज्योतिःप्रभा नाम्नी स्वयंप्रभासमुद्भवा । प्रजापतिर्भवाद्भीतो गत्वाथ पिहितास्रवम् ॥८७

चक्ररत्न लेकर उसके द्वारा बली त्रिपृष्ठने बलपूर्वक अश्वग्रीवका कंठ छेद दिया। त्रिपृष्ठ और विजय दोनों कुमार उत्तम त्रिखण्डभरतके स्वामी हुए। उनकी विद्याधर, भूमिगोचरी राजा और मागधादिव्यंतर-देवोंने पूजा की। रथनूपुरके स्वामी श्रीज्वलनजटी विद्याधर राजाको त्रिपृष्ठने दक्षिणश्रेणी और उत्तरश्रेणी इन दोनो श्रेणियोंके समस्त देशोंका राज्य दिया। योग्यही है कि, महापुरुषोंके आश्रयसे क्या नहीं होता? अर्थात् बडोंके आश्रयसे तुच्छ पुरुषभी बडे-मान्य हो जाते हैं। ॥ ७४-८१ ॥

[त्रिपृष्ठका वैभव] खड्ग-तलवार, शंख, धनुष्य, चक्र, दण्ड, शक्ति और गदा इन सात रत्नोंकी प्राप्ति विष्णु–त्रिपृष्ठ कुमारको हुई थी। इन रत्नोंका रक्षण देवसमूह करता था ॥८२॥ रत्नमाला, गदा, तेजस्वी मुशल और हल ऐसे चार रत्न राम को-विजयबलभद्रको जो कि मुक्त होनेवाले थे प्राप्त हुए थे ॥ ८३ ॥ त्रिपृष्ठनारायणकी स्वयंप्रभादिक सोलह हजार रानियां थी। और विजय बलभद्रकी आठ हजार रानियां थीं। वे सभी शील, रूप आदि गुणोंसे युक्त थीं ॥८४॥ प्रजापति महाराज अपनी लडकी ज्योतिर्माला ज्वलनजटी राजाके पुत्र अर्ककीर्तिको विवाहसे महोत्सवपूर्वक अर्पण कर अतिशय आनंदित हुआ। अर्ककीर्ति और ज्योतिर्मालाको अमिततेज नामक पुत्र और सुतारा नामकी कन्या हुई। विष्णु त्रिपृष्ठको स्वयंप्रभारानीसे श्रीविजय और विजयभद्र दो पुत्र और ज्योतिःप्रभा नामकी कन्या हुई ॥ ८५ ॥

[प्रजापति राजा और ज्वलनजटीको मोक्ष लाभ] प्रजापति राजा संसारसे भय धारण कर पिहितास्रव मुनिराजके पास गये। उनके चरणमूलमें उन्होंने जैन दीक्षा धारण की तथा क्रमसे मोक्षलाभ किया। प्रजापति राजाकी दीक्षाप्राप्ति तथा मुक्तिप्राप्ति सुनकर ज्वलनजटी राजाने भी अर्ककीर्तिको राज्य दिया और जगनन्दन मुनिराजके समीप जगद्वन्द्य जिनदीक्षा धारण

आदाज्जैनेश्वरीं दीक्षां क्रमान्मोक्षं समासदत् । तच्छ्रुत्वा खेचरेन्द्रोऽपि राज्यं न्यस्यार्ककीर्तये॥
जगन्नन्दनसामीप्ये दीक्षामाप जगन्नुताम् । सोऽगमत्परमं ध्यानं ततश्च परमं पदम् ॥८९
ज्योतिःप्रभा कदाचिच्च त्रिपृष्ठस्य सुता परा । स्वयंवरविधानेन वव्रे चामिततेजसम् ॥ ९०
खगपुत्री सुतारा सुस्वयंवरविधानतः । स्वयं रागवती वव्रे वरं श्रीविजयं वरम् ॥ ९१
भुक्त्वा चिरं महाराज्यं विष्णुश्चायुःक्षये गतः । सप्तमं भूतलं राज्यं बलः श्रीविजये न्यधात्॥९२
न्यस्य विजयभद्राय यौवराज्यं हलायुधः । चक्रिशोकाकुलो गत्वा स्वर्णकुम्भसमीपताम् ॥९३
सहस्रैः सप्तभिर्भूपैर्ययौ संयममुत्तमम् । निर्मूल्य घातिकर्माणि केवल्यासीत्परोदयः ॥ ९४
अर्ककीर्तिस्तदाकर्ण्य संस्थाप्यामिततेजसम् । राज्ये विपुलमत्याख्यचारणादग्रहीत्तपः ॥९५
नष्टकर्मा गतो मुक्तिं तयोरविकले परे । शर्मणामिततेजःश्रीविजयाख्यनृपालयोः ॥ ९६
गच्छति प्रचुरे काले कश्चित्पोदनपत्तने । साशीर्वादः समागत्य प्रोवाच नृपतिं प्रति ॥ ९७
सावधानो धराधीश भूत्वा मद्वचनं शृणु । सप्तमेऽह्नि तरां मूर्ध्नि पोदनाधिपतेरितः ॥९८

की । तदनंतर उसे परमध्यान--शुक्लध्यान की प्राप्ति हुई और कर्मोके क्षयसे परमपद-मोक्षपद लाभ हुआ ॥ ८६--८९ ॥

[ज्योतिःप्रभा और सुतारा के स्वयंवर] त्रिपृष्ठनारायणकी पुत्री ज्योतिःप्रभाने स्वयंवरविधीसे अमिततेजको वरा । और अर्ककीर्तिकी पुत्री सुताराने प्रेम वश होकर स्वयंवर विधानमें श्रेष्ठ श्रीविजयको वरा ॥ ९०--९१ ॥

[त्रिपृष्ठ नरकगमन तथा श्रीविजयको मुक्तिलाभ] दीर्घकालतक महाराज्यका उपभोग लेकर विष्णु त्रिपृष्ठ आयु के क्षयसे मरकर सातवे नरक गया । तब चक्रवर्ती के शोकमे पीडित होकर विजयबलभद्रने श्रीविजयको राज्यपर बैठाया और विजयभद्रको युवराजपद दिया । अनंतर उन्होंने स्वर्णकुंभ मुनिके पास जाकर सात हजार राजाओंके साथ उत्तम संयम को धारण किया । तदनंतर घातिकर्मोंको नष्ट कर वे परमोदयके धारक केवलज्ञानी हुए ॥ ९२-९४ ॥ अर्ककीर्तिने यह सब वृत्त सुनकर अमिततेजको राज्यपर स्थापन किया और विपुलमति नामक चारणमुनिके समीप तप-दीक्षा धारण की । कर्मोंका नाश कर वह मुक्त होगया ॥ ९५ ॥

[श्रीविजयके मस्तकपर वज्रपात होगा ऐसा निमित्तज्ञानीका कथन] अमिततेज और श्रीविजय राजाओंका दीर्घकाल सुखसे बीत रहा था । किसी समय कोई विद्वान् पोदनपुरमें आकर आशीर्वाद देकर श्रीविजयको इसप्रकार कहने लगा । हे राजन्, सावधान होकर मेरा भाषण सुन । आजसे सातवें दिन पोदनाधिपतिके मस्तकपर महावज्र पडेगा । अतः उस विषय में उपायका विचार करो । यह सुनकर युवराजने तीव्र क्रोधसे पूछा, कि हे विद्वन्, उससमय तेरे मस्तकपर क्या पडेगा, बोल । निमित्तज्ञने युवराजका वचन सुनकर कहा, कि हे भूपेश, मेरे

पतिष्यति महावज्रमुपायस्तत्र चिन्त्यताम् । इत्याकर्ण्य तदा प्राह युवराजो महाक्रुधा ॥९९
पतिता तव शीर्षे किं वद कोविद वै तदा । श्रुत्वावादीन्निमित्तज्ञ इति भूपेश मूर्धनि ॥१००
पतिता रत्नवृष्टिर्मे महाभिषेकपूर्वकम् । साहंकारं निशम्यैतत्स राजा विस्मयी जगौ ॥१०१
भद्रात्र स्थीयतां तावच्छृणु त्वं किंचिदुच्यते । किंगुरुः ख्याहि किंगोत्रः किंशास्त्रः किंनिमित्तकः॥
किमाख्यः किंनिमित्तोऽयमादेशः कथ्यतामिति । स जगौ कुण्डले द्रङ्गे राजा सिंहरथो महान्॥
पुरोधाः सुरगुर्वाख्यः शिष्यस्तस्य विशारदः । तदन्तेवासिना दीक्षां गृहीत्वा हलिना समम्॥
मयाष्टाङ्गनिमित्तान्यधीतानि च श्रुतानि च । तानि कानीति संप्रश्नेऽन्तरीक्षं भौममङ्गगम्॥१०५
लक्षणं व्यञ्जनं छिन्नं स्वरः स्वप्नोऽष्टधेति च । तल्लक्षणानि भेदांश्च प्रोच्याहं क्षुत्तृषाकुलः॥१०६
मुक्तदीक्षः सदादुःखी पद्मिनीखेटमाययौ । मातुलस्तत्र मे सोमशर्मा चन्द्राननां सुताम्॥१०७
हिरण्यलोमासंजातां तस्याहं परिणीतवान् । वित्तोपार्जनमुन्मुच्य निमित्ताभ्यासरञ्जितः ॥१०८
मां निरीक्ष्य प्रिया खिन्ना तातदत्तवसुक्षयात् । भोजनावसरेऽन्येद्युर्वित्तमेतत्त्वयार्जितम् ॥१०९

मस्तकपर तब महाभिषेकपूर्वक रत्नोंकी वर्षा होगी । निमित्तज्ञका यह अहंकारयुक्त भाषण सुनकर आश्चर्ययुक्त होकर युवराज उसके साथ इस प्रकारसे बोलने लगा । हे भद्र, यहां बैठो और मैं कुछ प्रश्न पूछता हूं सुनो, तुह्मारा गुरु कौन है, तुह्मारा गोत्र कौनसा, तुमने कौनसे शास्त्रोंका अध्ययन किया है, किस निमित्तसे तुम यहां आये हो, तुह्मारा नाम क्या है, तुमने यह आदेश किस प्रयोजनसे दिया है ? इन सब बातोंका खुलासा करो ॥ ९६-१०२ ॥ वह विद्वान् इस प्रकार कहने लगा । कुण्डलपुरमें महापराक्रमी सिंहरथ राजा राज्य करता है । उस राजाका सुरगुरु नामका पुरोहित है । उसके शिष्यका नाम विशारद है । मैं विशारद गुरुका शिष्य हूं । मैंने विजयबलभद्रके साथ दीक्षा ली और अष्टाङ्गनिमित्तोंका अध्ययन किया और सुने भी । वे कौनसे इस तरहका प्रश्न करनेपर उसने कहा । अन्तरिक्ष, भौम, अंग, लक्षण, व्यञ्जन, छिन्न, स्वर और स्वप्न ये अष्टाङ्गनिमित्त हैं । इनके लक्षण और उनके भेद कह कर पुनः वह विद्वान् युवराजको इस प्रकार कहने लगा । हे युवराज, मैंने भूख और प्याससे पीडित होकर दीक्षा छोड दी । मैं दरिद्री होनेसे मुझे हमेशा दुःख भोगना पडा । मैं तदनंतर पद्मिनीखेटको आया । वहां मेरे सोमशर्मा नामके मामा रहते थे । उनकी पत्नीका नाम हिरण्यलोमा था । उन दोनोंकी चन्द्रानना नामकी कन्या थी उसके साथ मेरा विवाह हुआ । मैंने धन कमाना छोड दिया और अष्टांग-निमित्तोंके अभ्यासमें अनुरक्त हुआ । पत्नीके पिताने दिया हुआ धन खर्च होनेसे मुझे देखकर वह खिन्न हो गई । और एक दिन भोजनके समय 'यह तुह्मारा कमाया हुआ धन है' ऐसा कहकर क्रोधसे मेरे पात्रमें पत्नीने मेरी सब कौडिया फेंक दीं । सूर्यकी किरणोंका सान्निध्य पाकर वह स्फटिकका पात्र रंजित होगया । उसके उपर मेरी स्त्रीने हाथ धोनेकी पानीकी धारा छोड दी । मैंने

मद्वराटकवृन्दं चैत्यमत्रे रोषतोऽक्षिपत् । वज्रपातस्तदा मूर्ध्नि पोदनेशस्य निश्चितम् ॥११०
रञ्जितस्फटिके तत्र तपनाभीषुसंनिभिम् । भार्याक्षिप्तकरक्षालजलधारां च पश्यता ॥१११
निश्चित्यात्मयथालाभं तोषाभिषवपूर्वकम् । अयं चामोघजिह्वाख्यस्तवादेशो मया कृतः ॥११२
श्रुत्वेति तं विसर्ज्यासौ भूपश्चिन्तासमाकुलः । आहूय मन्त्रिणोऽपृच्छद्वृत्तमेतद्भयावहम् ॥११३
श्रुत्वैतत्सुमतिः प्राह त्वां समुद्रजलान्तरे । संस्थाप्य लोहमञ्जूषामध्ये मुक्त्वे च रक्षितुम् ॥११४
सुबुद्धिरिति तच्छ्रुत्वा बभाषे तत्र संभयम् । मत्स्यजं विजयार्धस्य निदधामो गुहान्तरे ॥११५
तदाकर्ण्य वचोऽवादीत्सचिवो बुद्धिसागरः । अर्थाख्यानं प्रसिद्धार्थं कथ्यमानं निशम्यताम् ॥११६
परिव्राट् सोमनामा च वसन्सिंहपुरे खलः । वादार्थी जिनदासेन निर्जितो मृतिमाप च ॥११७
बभूव महिषो भारचिरवाहवशीकृतः । उपेक्षितो विशक्तिश्च जातजातिस्मृतिस्तदा ॥ ११८
बद्धवैरो मृतोऽप्यासीच्छ्मशाने राक्षसः खलः । कुम्भभीमौ नृपौ तत्र कुंभस्य पाचकः पटुः ॥११९

यह सब देखा। और उसमें ऐसा निश्चय किया, कि मेरे पात्रमें कौडियां फेंक दीं उससे पोदनपुरके स्वामीके मस्तकपर वज्रपात होगा। स्फटिकपात्रके ऊपर जलधारा डालनेसे मुझको आनंदसे अभिषेकपूर्वक धनलाभ होगा। हे युवराज मैंने अमोघजिह्वनामक यह आदेश किया है। अर्थात् मैंने जो भविष्य कहा है वह व्यर्थ नहीं होगा ॥ १०३–११२ ॥ युवराजने उसका सब कथन सुना और उसका विसर्जन किया। राजा चिन्तातुर हुआ और मंत्रियोंको बुलाकर इस भयदायक वृत्तके विषयमें उनकी सलाह पूछी ॥ ११३ ॥ सुमति नामक मंत्रीने सुनकर कहा कि हे राजन् हम समुद्रके पानीके बीचमें लोहेके संदूकमें रक्षणके लिये आपको रक्खेंगे। सुमति मंत्रीका भाषण सुनकर सुबुद्धि मंत्रिने कहा समुद्रमें मगर, मत्स्य आदि जलचरप्राणियोंका भय है। अतः यह उपाय योग्य नहीं है। हे राजन् हम आपको विजयार्द्ध पर्वतकी गुहामें रक्खेंगे। सुबुद्धि मंत्रीके वचन सुनकर बुद्धिसागर मंत्रीने कहा कि मैं इस विषयमें एक प्रसिद्ध अभिप्रायवाली कहानी आपको सुनाता हूं आप सुनिए ॥ ११४–११६ ॥ सिंहपुरमें सोम नामका वाद करनेवाला एक दुष्ट तपस्वी रहता था। जिनदास नामक विद्वानने उसको वादमें हराया। वह कुछ कालके बाद मरकर भैंसा हुआ। दीर्घकालतक भार वहनेसे वह कृश होगया। उसके स्वामीने उसकी बिलकुल उपेक्षा करदी। उसे जातिस्मरण होगया। वह मनमें वैर धारण कर मर गया और श्मशानमें दुष्ट राक्षस होगया। सिंहपुरमें कुंभ और भीम नामक दो राजा थे। कुंभराजाका रसायनपाक नामका चतुर रसोइया था। वह कुंभराजाको हमेशा उसके भोगयोग्य मांस खानेको देता था। एक दिन उसने उसको मनुष्यका मांस अच्छीतरह पकाकर खानेको दिया। उसके स्वादमें लुब्ध

१ प स प्र स्फुटिके।

रसायनादिपाकाख्यस्तद्भोग्यं पिशितं सदा । दत्ते स्म चैकदा कुम्भभूपाय नरमांसके ॥१२०
दत्ते सुसंस्कृते खाद्ये भूपस्तत्स्वादलोलुपः । कृते सेदं त्वया तेनानेतव्यं च तथा कृतम्॥१२१
लोका ज्ञात्वेति संचिन्त्य दुष्टोऽयं नरभक्षकः । निःकाश्यो नगरात्तूर्णं स त्यक्तः सचिवादिभिः॥
कदाचित्पाचकं हत्वा साधयित्वा स राक्षसम् । पूर्वोक्तं भक्षयामास प्रजा बभ्राम तत्पुरम् ॥२३
संत्रस्ताः सकलाः पौराः संत्यज्य तत्पुरं तदा । कुम्भकारकटं कृत्वा पुरं तत्रेति संस्थितिम् ॥
व्यधुर्भीता नरं चैकं तथा च शकटौदनम् । खादान्यमानवानां हि रक्षणं कुरु राक्षस ॥१२५
तत्रैव वाडवश्चण्डकौशिकस्तत्प्रिया परा । सोमश्रीर्भूतमाराध्य मौण्ड्यकौशिकसत्सुतम् ॥१२६
लेभे कुम्भस्य भोज्याय दातुं तं शकटास्थितम् । नीयमानं च कुम्भेन सह वीक्ष्य च खादितुम्॥
दण्डहस्तैस्तदा भूताः कुम्भं निर्भर्त्स्य तं बिले । क्षिप्तं शयुर्जगालाशु द्विजं कर्मविपाकतः॥१२८
विजयार्धगुहायां हि कथं निक्षिप्यते नृपः । श्रुत्वा तद्वचनं पथ्यं जगाद मतिसागरः ॥१२९
वज्रपातस्तु भूपस्य प्रोक्तो नैमित्तिकेन न । किंतु पोदननाथस्य चातोऽन्यः क्षिप्यतामिति[1] ॥

होकर उसने रसोइयाको आज्ञा दी कि तू यही नरमांस हमेशा लाकर मुझे दे । उस रसोईयाने वैसा ही किया । लोगोंने यह दुष्ट राजा नरभक्षक है, इसे नगरसे शीघ्र निकाल देना चाहिये, ऐसा विचार किया । मंत्री आदिकोंने राजाका त्याग किया ॥ ११७–२२ ॥ किसी समय राजाने रसोईयाको मारकर श्मशानमें रहनेवाले राक्षसको वश किया और ग्राममें प्रवेश कर लोगोंको खाने लगा। सब नगरवासी डर गये। उन्होंने उस समय उस नगरको छोड दिया और कुंभकारकट नामक नगर बनाकर वे वहां रहने लगे । प्रतिदिन एक मनुष्य और एक गाडी अन्न भक्षण कर तथा अन्य मनुष्योंका रक्षण कर इसतरह कहकर नियम बांध दिया ॥१२३–१२५॥ उसी नगरमें चंडकौशिक नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नीका नाम सोमश्री था। सोमश्रीने भूतोंकी आराधना कर प्राप्त हुए पुत्रका नाम 'मौंड्यकौशिक' रखा था। कुंभके भोजनके लिये गाडीमें बैठा हुआ मौंड्यकौशिक भेजा गया। खानेके लिये ले जानेवाले कुंभके साथ मौंड्यकौशिकको देखकर भूतोंने हाथमें लाठिया लेकर कुंभकी निर्भर्त्सना की और उस ब्राह्मणको उन्होंने बिलमें रखा परन्तु उसमें रहनेवाला अजगर कर्मोदयसे उसको निगल गया ॥ १२६–१२८ ॥ इस लिये राजाको विजयार्द्धकी गुहामें कैसे रक्खा जाये। बुद्धिसागरका यह हितकर कथानक सुनकर मतिसागर मंत्री इस प्रकार बोलने लगा। राजाके ऊपर वज्रपात होगा ऐसा तो नैमित्तिकने नहीं कहा है; परन्तु पोदनपुरका जो नाथ है उसके ऊपर होगा। अतः राजाको हटाकर दूसरे व्यक्तिको राज्यपर बैठाना चाहिये। युक्तिनिपुण सर्व मंत्री उसकी योग्य बुद्धिकी प्रशंसा करने लगे। उन

१. स म स्थाप्यतामिति ।

मत्रे शशंसुस्तद्बुद्धिं युक्तां युक्तिविशारदाः । मन्त्रिणः प्रतिबिम्बं तु कृत्वा भौपं नृपासने ॥
निवेश्य सकला नेमुः पोदनाधीशसद्धिया । नरेशोऽस्थात्परित्यज्य राज्यं प्रारब्धपूजनः॥१३२
ददद्दानं जिनागारे शान्तिकर्मकृतोत्सवः । सप्तमेऽह्नि पपाताशु वज्रं बिम्बस्य मूर्धनि ॥१३३
तस्मिन्नुपद्रवे नष्टे सहर्षाः पुरवासिनः । नानानकैर्नटीनाट्यैर्नराश्चक्रुर्महोत्सवम् ॥ १३४
नैमित्तिकाय ग्रामाणां पद्मिनीखेटसंयुतम् । शतं प्रपूज्य वस्त्राद्यैर्ददुर्दीप्तमहोत्सवाः ॥१३५
शातकुम्भमयैः कुम्भैरभिषिच्य महीपतिम् । समारोप्यासनेऽमात्याः सुराज्ये प्रत्यतिष्ठिपन् ॥
एकदा मातुरादाय विद्यामाकाशगामिनीम् । सुतारया समं ज्योतिर्वनं रन्तुं जगाम सः॥१३७
यथेष्टमिष्टसंश्लिष्टश्चिक्रीड कान्तया नृपः । अथो चमरचञ्चाख्यपुर्यामिन्द्राशनिः पतिः॥१३८
आसुरीशः सुतस्तस्याशनिघोषः सुघोषवान् । संसाध्य भ्रामरीं विद्यां पुरं गच्छन्यदृच्छया ॥
सुतारां लक्षणैर्लक्ष्यां वीक्ष्य तां लातुमुद्यतः । मायामृगं महीशस्य रन्तुं स प्राहिणोच्छलात् ॥
तं वीक्ष्य सुतरां तारा नृत्यन्तं संजगौ पतिम् । रमण त्वं मृगं रम्यं रमणाय समानय॥१४१
तदा भूपे मृगं लातुं प्रयात्यशनिघोषकः । नृपरूपं समादाय जगौ तस्याः पुरःस्थितः॥१४२

मंत्रियोंने राजाका पुतला बनाकर सिंहासनपर स्थापन कर दिया और सब पोदनाधीशके संकल्पसे उसे नमस्कार करने लगे । राजाने राज्यत्याग कर जिनमंदिरमें जिनपूजनका प्रारंभ किया । वह दान देने लगा । शांतिकर्मके लिये उसने उत्सव किया । शीघ्रही सातवे दिन उस पुतलेके मस्तकपर वज्रपात हुआ ॥ १२९-१३३ ॥ वह उपसर्ग नष्ट होनेसे नगरवासी लोगोंका आनन्द हुआ । अनेक नगारें आदि वाद्योंकी ध्वनि और अनेक नटीयोंके नृत्योंसे लोगोंने खूब उत्सव मनाया ॥ १३४ ॥ बडे महोत्सवके साथ युवराजादिकोंने वस्त्रादिकोंसे आदर कर नैमित्तिकको पद्मिनीखेटसहित सौ गांव दिये ॥ १३५ ॥

[अशनिघोषके द्वारा सुताराका हरण] संकटका उपशम होनेपर सामन्तादिकोंने राजा श्रीविजयको आसनपर बिठाकर सुवर्णकुंभोंसे उसका अभिषेक किया तथा पुनः राज्यपर बैठाया ॥ १३६ ॥ किसी समय अपनी मातासे आकाशगामिनी विद्या लेकर राजा सुताराके साथ ज्योतिर्वनमें क्रीडा करनेके लिये गया ॥ १३७ ॥ इष्टभोगोंसे युक्त राजा अपनी स्त्रीके साथ यथेष्ट क्रीडा करने लगा । चमरचञ्चा नगरीमें इन्द्राशनि नामक राजा राज्य करता था, उसकी पत्नीका नाम आसुरी था, और दोनोंको मधुरभाषी अशनिघोष नामका पुत्र था । किसी समय वह अशनि-घोष विद्याधर भ्रामरी विद्या सिद्ध करके स्वेच्छासे अपने शहरको जा रहा था । उत्तम लक्षणोंवाली सुताराको देखकर उसको हरण करनेके लिये उद्युक्त हुआ । उसने कपटसे एक मायामृग श्रीविजयके साथ खेलनेके लिये भेज दिया । उस हरिणको सुंदर नृत्य करते हुए सुताराने देखा और अपने पतिको कहने लगी, हे प्रिय इस सुंदर हरिणको क्रीडा करनेके लिये यहां

एहि यावः पुरं यावत्प्रयात्यस्तं दिवाकरः । इत्युक्त्वा तां विमाने स संरोप्यागान्नभस्तले ॥
रूपं सोऽदर्शयद्गत्वान्तरे कामी सुखी निजम् । कोऽयं किंरूपमालोक्य विह्वला मेति वाजनि ॥
निवृत्तो भूपतिर्मायामृगे याते स्थितोऽपराम् । तदुक्तवरवेतालीं सुतारारूपधारिणीम् ॥१४५
दृष्ट्वा कुर्कुटनागेन स्थिताहमितिभाषिणीम् । म्रियमाणामिवालोक्य व्याकुलात्मा नृपोऽजनि ॥
मन्त्रौषधमणिप्रायैर्ज्ञातवान्विषमं विषम् । मर्तुं तया समं भूपश्चितौ तां समरोपयत् ॥१४७
सूर्यकान्तसमुद्भूतवह्निनाज्वालयत्तकाम् । तत्र झम्पां प्रकर्तुं स आरुरोह समाकुलः ॥ १४८
तावता खचरौ क्षिप्रं खादायातौ नृपान्तिकम् । विच्छेदिनीं परां विद्यां मुक्त्वा चिच्छेद तां खगः॥
वामपादेन चैकेन ताडिता स्थातुमक्षमा । स्वरूपं प्रकटीकृत्य सागमत्काप्यदृश्यताम् ॥१५०
एतच्छ्रीविजयो दृष्ट्वा विस्मयव्याप्तमानसः । किमेतत्खेचरौ प्राह प्राहतुस्तौ च तत्कथाम् ॥१५१
भरते खचरावासे दक्षिणश्रेणिवासिनि । ज्योतिःप्रभे पुरे भूमीट् संभिन्नोऽहं मम प्रिया॥१५२
सुप्रिया सर्वकल्याणी सुतो दीपशिखः सुखी । रथनूपुरनाथेन गत्वा मत्स्वामिनाप्यहम् ॥

लाओ। उस हरिणको लानेके लिये राजाके जानेपर अशनिघोष श्रीविजयका रूप धारण कर उसके आगे खड़ा होगया। 'हे प्रिये, चलो सूर्य अस्तको जारहा है। हम दोनों अपने नगरको चलें।' ऐसा बोलकर उसको विमानमें बैठाकर वह आकाशमें चला गया ॥ १३८-१४३ ॥ उस कामी सुखी विद्याधरने कुछ अन्तर चलकर अपना रूप दिखाया। उसे देखकर "यह कौन है यह रूप किसका है" ऐसे विचारसे वह दुःखित होकर शोक करने लगी ॥ १४४ ॥ उधर वह मायामृग दूर निकल जानेपर राजा लौट आया तो सुताराके स्थानपर वेतालीविद्या सुताराका रूप धारण कर बैठी हुई उसको दीख पड़ी। 'हे नाथ मुझे कुर्कुटनागने दंश किया है' ऐसा कह कर उसने मरनेके समयके रूपके समान रूप दिखाया। राजा व्याकुल होगया। मंत्र, औषध, और मणि आदिसे भी यह विष दूर नहीं होनेवाला है ऐसा जानकर राजाने उसके साथ मरनेका निश्चय किया और उसको चितापर बैठाया। सूर्यकान्त मणिसे उत्पन्न हुई अग्निके द्वारा उसे प्रज्वलित किया और उसमें कूदनेके लिये वह व्याकुल होकर चढ गया ॥ १४५-१४८ ॥ इतनेमें बड़ी जल्दीसे दो विद्याधर आकाशसे राजाके पास आगये। विच्छेदिनी नामक विद्याको भेजकर उस विद्याधरने वेताली विद्याको छिन्न किया और बाँये पावसे ताडन किया तब वह वहां रहनेमें असमर्थ होकर अपना स्वरूप प्रकट कर कहीं अदृश्य होगई ॥ १४९, १५० ॥ इस दृश्यको देखकर श्रीविजयका अन्तःकरण विस्मित हुआ। उसने विद्याधरोंको पूछा कि यह क्या है। तब वे उसकी कथा कहने लगे ॥ १५१ ॥

[सुताराहरण वार्ता कथन] इस भरतक्षेत्रमें विजयार्द्धपर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें ज्योतिप्रभा नगरी है। उसका स्वामी मैं संभिन्न नामका विद्याधर राजा हूं। मेरी प्रियपत्नीका

तलान्ताशिखरोद्याने विहृत्य व्याहृतः क्षणात् । खे गच्छन्व्योमयानं हि गच्छद्वीक्ष्य परं महत्॥
शुश्रावेति श्रुतिं क मे भूपः श्रीविजयो जयी । रथनूपुरनाथ त्वं मां पाहि परमेश्वर ॥ १५५
गत्वाहं तत्र चाख्यं कस्त्वममूं कां हरस्यहो । इत्युक्ते सोऽगदीत्क्रोधाद्विद्येशोऽशनिघोषकः॥
सोऽहं चमरचञ्चेशो बलादेनां हरामि भोः। भवतोरस्ति शक्तिश्चेदिमां मोचयतं ध्रुवम्॥१५७
श्रुत्वेति मत्प्रभोरेषानुजानेनाद्य नीयते । कथं गच्छामि हन्म्येनमिति योद्धुं समुद्यतः ॥१५८
मां संवीक्ष्य सुताराख्यद्युद्धं त्वं मा कृथा वृथा। याहि ज्योतिर्वने भूपं स्थितं पोदननायकम्॥
मदवस्थां समाख्याहि प्रेषितोऽहं तयेति च । इयं त्वच्छत्रुसंदिष्टदेवतेत्यादराहृतः ॥ १६०
ततः श्रुत्वेति भूमीशोऽगदीत्खेचर सत्वरम् । इदं वृत्तं समाख्याहि गत्वा पोदनपत्तने॥१६१
जनन्यनुजबन्धूनामित्युक्तेऽसौ खगेश्वरः। प्राहिणोत्पोदनं सद्यः पुत्रं दीपशिखं तदा ॥१६२
पोदनेऽपि बहूत्पातजृम्भणं समजायत । तद्वीक्ष्यामोघजिह्वाख्यो जयगुप्तश्च प्रश्नितः॥१६३

नाम सर्वकल्याणी है; तथा पुत्रका नाम दीपशिख है। वह सुखी है। रथनूपुरके स्वामी अमिततेज मेरे स्वामी हैं। उनके साथ मैं शिखरतल नामक उद्यानमें विहार करनेके लिये गया था। वहां क्रीडाकर जब मैं लौटा तब आकाशमेंसे जाते हुए मुझे बहुत बडा विमान जाता हुआ दीख पडा। उसमें 'हे विजयी श्रीविजय राजा, हे रथनूपुरनाथ 'हे परमेश्वर, आप मेरा रक्षण कीजिए। ऐसी ध्वनि मेरे कानमें पडी ' मैंने वहां जाकर पूछा कि तू कौन है, यह स्त्री कौन है, इसे तू हरण कर कहां ले जा रहा है ? तब वह अशनिघोष विद्याधर क्रोधसे बोलने लगा। ' मैं चमर-चंचा नगरीका स्वामी हूं और इसे मैं जबरदस्ती ले जारहा हूं। कुछ सामर्थ्य हो तो आप दोनों इसको छुडाकर ले जाओ ' ॥ १५२-१५७ ॥ ' यह अशनिघोषका भाषण सुनकर यह मेरे स्वामीकी छोटी बहिन है, इसे आज यह ले जा रहा है। अतः मेरा यहांसे जाना योग्य नहीं है। मैं इस दुष्ट को मारूंगा, ऐसा विचार कर उसके साथ लडनेकेलिये उद्युक्त हुआ।" मुझको देखकर सुताराने कहा कि इसके साथ तू व्यर्थ युद्धके फंदेमें न पडकर ज्योतिर्वनमें मेरे पति पोदन-नगराधीश श्रीविजय हैं उनके सन्निध जाकर मेरा हाल उनको कहो। ऐसा बोलकर उसने मुझे आपके पास भेजा है। "हे राजन् यह वेताली आपके शत्रुके द्वारा आज्ञापित देवता थी; मैं आपके आदरसे यहां आया हूं।" संभिन्नसे इस प्रकारका वृत्त सुनकर राजा श्रीविजयने कहा, "हे विद्याधर, शीघ्रही पोदनपुर जाकर मेरी माता, छोटा भाई और अन्य बंधुजनोंको यह वृत्त कहो।" विद्याधरने तत्काल दीपशिखनामक पुत्र को भेज दिया ॥ १५८-१६२ ॥ उस समय पोदनपुरमें भी अनेक उत्पात प्रकट होगये। उनको देखकर स्वयंप्रभादिकोंने अमोघजिह्व और

भूपतेर्भयमुत्पन्नं किंचित्तदपि निर्गतम् । इदानीं कुशलालापी कश्चिदायास्यति स्फुटम् ॥१६४
स्वस्था भवत भीतिं मा यातेति संजगौ गिरा । स्वयंप्रभादयस्तुष्टा यावत्तिष्ठन्ति तद्गिरा ॥
तावता नभसो दीपशिखः संभूष्य भूतलम् । स्वयंप्रभां प्रणम्यासौ सुतस्याचीकथत्कथाम् ॥
क्षेमी श्रीविजयो भीतिर्भवद्भिर्मुच्यतामिति । तद्वृत्तं सर्वमाख्यातं सुताराहरणादिजम् ॥१६७
तदाकर्णनमात्रेण दावदग्धलतोपमा । निर्वाणासक्तदीपस्य विगताभा शिखा यथा ॥ १६८
घनध्वानश्रुतेर्हंसी शोकिनीव स्वयंप्रभा । तदानीं निर्गता रङ्गच्चतुरङ्गबलोद्धता ॥ १६९
सखगा ससुता याता वनं तां वीक्ष्य दूरतः । आयान्तीं स समागत्यानमत्सानुजमातरम् ॥
सा सदुःखेति संवीक्ष्य प्रोवाचोत्तिष्ठ पत्तनम् । यावः श्रीविजयाद्यास्ते संययुः स्वपुरं तदा ॥
तत्र पुत्रं सुखासीनं सुताराहरणादिकम् । साप्राक्षीत्सोऽब्रवीन्मातः संभिन्नाख्यः खगोऽप्ययम्॥
उपकारकरो धीमान्सेवकोऽमिततेजसः । अनेन यत्कृतं तत्को गदितुं भुवि संक्षमः ॥ १७३
मात्रा समं सुसंमन्त्र्यानुजं पोदनरक्षणे । मुक्त्वा ययौ विमानेन नगरं रथनूपुरम् ॥१७४
ज्ञात्वाथामिततेजाश्च स्वसारं ससुतां पितुः । गत्वा संमुखमानीयास्थापयत्स्वपुरे स्थिरम् ॥

जयगुप्तको पूछा उन्होंने ऐसा खुलासा किया राजाके ऊपर थोडासा संकट आया था: परंतु वह नष्ट भी हुआ है और अब कुशलवार्ता कहनेवाला कोई मनुष्य निश्चयसे आवेगा। आप लोग स्वस्थ रहें, डरनेकी कोई बात नहीं है।" तब स्वयंप्रभादिक राजजन स्वस्थ हुए। इतनेमें आकाशसे दीपशिख भूमिपर आया। स्वयंप्रभाको प्रणाम कर उसने श्रीविजयकी कथा उनको कही। श्री-विजय महाराज कुशल हैं। आप भीतिका त्याग करें। अनंतर सुताराहरणादिका सर्व वृत्तान्त उसने कहा। वृत्तके सुनने मात्रसेही स्वयंप्रभा- राजमाता अग्निसे दग्धलताके समान मुरझा गई। अथवा बुझते दीपकी कान्तिहीन शिखाके समान हुई। किंवा मेघकी गर्जना सुनकर शोक करनेवाली हंसीके समान हो गई। उससमय अपना छोटा पुत्र, विद्याधर और चतुरंगबल साथ लेकर ज्योति-र्वनको वह राजमाता गई। दूरसे छोटे भाईके साथ आती हुई अपनी माताको देखकर राजाने समीप आकर नमस्कार किया ॥ १६३--१७० ॥ दुःखाकुल माताने पुत्रको देखा और कहा हे पुत्र, उठो अब अपनी राजधानीके प्रति चलो तब श्रीविजयादिक अपने नगरके प्रति चले गये ॥१७१॥ अपने प्रासादमें सुखसे बैठे हुए अपने पुत्रको स्वयंप्रभाने सुताराहरणादिक कथा पूछी। पुत्रने कहा "हे माता यह संभिन्नविद्याधरभी अमिततेज राजाका उपकार करनेवाला बुद्धिमान सेवक है। इसने जो उपकारकार्य किया है उसका वर्णन करनेवाला इस भूतलपर कोई नहीं मिलेगा ॥१७२, १७३॥

[स्वयंप्रभाका रथनूपुरमें आगमन] माताके साथ सलाहमसलत करके अपने छोटे भाईको पोदनपुरके रक्षणकार्यमें नियुक्त कर विमानके द्वारा राजाने रथनूपुरके प्रति प्रयाण किया ॥१७४॥ अपने पिताकी बहन स्वयंप्रभा अपने पुत्रके साथ आ रही है, यह जानकर अमिततेज सम्मुख गया और

प्राघुर्णकविधिं प्राप्ता प्राह दम्भोलिघोषजम् । वृत्तं श्रुत्वा खगो दूतं मारीचं प्राहिणोद्द्विषम्॥
स गत्वाशनिघोषस्य जातां दुष्टां खलां गिरम् । निशम्यागत्य निर्वेद्य सुस्थितामिततेजसे ॥
संमन्त्र्य मन्त्रिभिः सत्रं तमुच्छेत्तुं समुद्यतः । निजाम्नायसमायातविद्यात्रयं स संददे ॥१७८
भूपाय युद्धवीर्यास्त्रवारणे बंधमोचनम् । रश्मिवेगसुवेगादिसुतैः पञ्चशतैः समम् ॥ १७९
पोदनेशं च संप्रेष्य शत्रोरुपरि ज्यायसा । सहस्ररश्मिना सार्धं ह्रीमन्तं खचरो गतः॥१८०
विद्याछेदनसंयुक्तं महाज्वालाह्वयं परम् । संजयन्तांह्रिमूले स विद्यां साधयितुं स्थितः॥१८१
दुष्टेनाशनिघोषेण श्रुत्वा श्रीविजयागमम् । रश्मिवेगादिभिः शत्रुयुद्धाय प्रेषिताश्च ते ॥१८२
सुघोषः शतघोषोऽथ सहस्रादिसुघोषकः । भूपेन खचरैः सत्रं सर्वे भङ्गं समापिताः ॥ १८३
आसुरेय इमं श्रुत्वा क्रुद्धो युद्धार्थमीयिवान् । युद्धे श्रीविजयो बाणानेनं कर्तुं द्विधामुचत्॥१८४
भ्रामरीविद्यया बाणाद् द्विरूपः सोऽप्यजायत । द्विगुणत्वं गतोऽप्येवं पुनस्तैस्तेन खण्डितः ॥
वज्रघोषमयो जातः संग्रामः समगात्तदा । सर्वसाधितविद्योऽसौ रथनूपुरभूपतिः ॥ १८६

उनको लाकर अपने नगरमें रक्खा। अर्थात् उनका आदर कर उनके रहनेकी उत्तम व्यवस्था की ॥१७५॥ जिसका अतिथिसत्कार किया है ऐसी स्वयंप्रभाने अशनिघोषका सब हाल कहा। सुनकर अमिततेज राजाने अशनिघोषके प्रति अपना मारीचनामक दूत भेजा ॥१७६॥ दूत अशनिघोषके पास गया। परंतु अशनिघोषके मुखसे दुष्ट और कठोर भाषा सुनकर वह लौटकर अमिततेजके पास आ गया उसका सब वचन राजाको सुनाकर सुखसे रहा ॥ १७७ ॥ अमिततेज राजाने मंत्रिओंके साथ विचार किया। और उस दुष्ट अशनिघोषका नाश करनेके लिये उद्युक्त हुआ। राजाने श्रीविजयभूपको युद्धवीर्या, अस्त्रवारणा और बंधमोचना ये तीन विद्यायें दी। तथा रश्मिवेग, सुवेगादि पांचसौ पुत्रोंके साथ श्रीविजयको शत्रुके ऊपर आक्रमण करनेके लिये भेज दिया। तथा सहस्र-रश्मि नामक बडे पुत्रके साथ अमिततेज विद्याधरेश ह्रीमन्त पर्वतपर गया। संजयंतमुनिके पादमूलमें विद्याच्छेदन करनेमें समर्थ महाज्वाला नामकी उत्तम विद्या सिद्ध करनेके लिये अमिततेज विद्याधरेश बैठा ॥ १७८–१८१ ॥ दुष्ट अशनिघोषने श्रीविजयराजाका आगमन सुना और उसने रश्मिवेगादिकोंके साथ लडनेके लिये सुघोष, शतघोष, सहस्रघोषादि पुत्र भेज दिये परंतु राजाने विद्याधरोंके साथ उन सब पुत्रोंका पराजय किया ॥ १८२–१८३ ॥ आसुरीविद्याधरीका पुत्र अशनिघोषने यह वार्ता सुनी वह क्रुद्ध हुआ और लडनेके लिये निकला। युद्धमें श्रीविजयने अशनिघोषके दो तुकडे करनेके लिये बाण छोडे। परंतु भ्रामरी विद्याके प्रभावसे एक अशनिघोषने दो रूप धारण किये। द्विगुण हुए अशनिघोषपर राजाने पुनः बाण छोडकर उसको खंडित कर दिया। पुनः वह द्विगुण हुआ इस तरह द्विगुण होते होते सब रणस्थल अशनिघोषमय हुआ। इतनेमें सर्व विद्याओंको सिद्ध करके रथनूपुरका राजा अमिततेज लडनेके लिये आया ॥१८४–१८६॥

महाज्वालाप्रभावेन युद्ध्वा मासार्धमेव च । नष्टविद्यो ननाशाशु वज्रघोषः परंतपः ॥ १८७
नाभेयाद्रौ स्थितं देवं विजयाख्यजिनेश्वरम् । गत्वा भीत्वा सभायां स स्थितस्तावन्नृपादयः॥
अनुगत्वा विलोक्याशु मानस्तम्भं गलन्मदाः । जिनं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणेमुर्मूर्धपाणयः॥१८९
मुक्तवैरास्तदा सर्वे तत्रासिषत ते समम् । तदासुरी समागत्य सुतारां द्रुतमानयत् ॥ १९०
मत्पुत्रस्यापराधं भो युवां क्षन्तुं समर्हतम् । साभाष्येत्यार्पयत्तां श्रीविजयामिततेजसोः॥१९१
ततः खगपतिपृष्टं धर्मं प्रोवाच तीर्थराट् । सम्यक्त्वव्रततत्त्वार्थं श्रुत्वा भूपोऽब्रवीदिति ॥१९२
सुतारा मेऽनुजानेन हृता वै केन हेतुना । इति पृष्टो विशिष्टः सोऽवादीदेवो नृपं प्रति॥१९३
भरते मागधे देशेऽचलग्रामे निवासभृत् । अग्निलास्त्रीपतिर्विप्रो विदितो धरणीजटः॥१९४
तत्सुताविन्द्रभूत्यग्निभूतौ जातौ मनोहरौ । दासेरः कपिलस्तस्य वेदाध्ययनसक्तधीः॥ १९५
तं वेदार्थविदं मत्वा विप्रो हि निरजीगमत् । विषण्णः कपिलस्तस्माद्ययौ रत्नपुरं परम्॥१९६
वेदाध्ययनयुक्ताय सत्यभामां च सत्यकिः । विप्रो जम्बूद्भवां पुत्रीं विधिनाम्नै समार्पयत् ॥

महाज्वाला विद्याके प्रभावसे राजाने अशनिघोषके साथ अर्धमासतक युद्ध किया । तब अशनिघोषकी सब विद्या नष्ट हो गई । वह भाग गया ॥ १८७ ॥ नाभेयपर्वतके ऊपर विराजमान हुए श्रीविजय नामके जिनेश्वरके पास जाकर भयसे वह अशनिघोष समवसरणमें बैठ गया । इतनेमें श्रीविजय राजा आदिक उसके पीछे आगये । मानस्तंभ देखकर उनका मद नष्ट हुआ । जिनेश्वरको प्रदक्षिणा दे कर अपने मस्तकपर दोनों हाथ जोडकर उन्होंने वंदन किया । वैर छोडकर वे सर्व सभामें एकत्र बैठ गये । उस समय अशनिघोषकी माता आसुरी शीघ्रही सुतारा को वहां साथ ले आयी और 'मेरे पुत्रके अपराध आप दोनों क्षमा करें' कहकर उसने श्रीविजय और अमिततेजको सुतारा अर्पण की ॥ १८८-१९१ ॥

[सुताराके पूर्वभवोंका कथन] तदनंतर अमितगति विद्याधरको केवली जिनने धर्मका स्वरूप बताया । सम्यग्दर्शन, अहिंसादिक व्रत, जीवादिक सप्ततत्त्व और पापपुण्य सहित नव पदार्थ इनका स्वरूप प्रभुने कहा । धर्मस्वरूप सुनकर मेरी छोटी भगिनी सुताराको अशनिघोष क्यों हर लेगया? ऐसा प्रश्न अमिततेजने केवलीको पूछा तब विशिष्ट मुनियोंके स्वामी अर्थात् ऋद्धिधारी, अवधिज्ञानी आदि मुनियोंके अधिपति विजय केवलीने नीचे लिखा हुआ उनका पूर्वभवसंबंध कहा ॥ १९२-१९३ ॥ "इस भरत क्षेत्रके मगध देशमें अचल नामके गांवमें धरणीजट नामक प्रसिद्ध ब्राह्मण अपनी पत्नी अग्निलाके साथ रहता था । इन दम्पतीको इंद्रभूति और अग्निभूति नामके दो मनोहर पुत्र थे और कपिल नामक दासीपुत्र था । हमेशा वेदाध्ययनमें उसकी बुद्धि लीन था । धरणीजटने दासीपुत्र वेदार्थज्ञ हुआ देखकर उसे अपने घरसे निकाल दिया । खिन्न हुआ कपिल धरणीजटके घरसे निकलकर रत्नपुर चला गया ।" ॥१९४-१९६॥ "वेदाध्ययनमें

तं राजपूजितं स्वाढ्यं श्रुत्वा च धरणीजटः । निःस्वत्वहानयेऽयासीद्दुःखी कपिलसंनिधिम् ॥
कपिलो दूरतो वीक्ष्य समुत्थायानमत्सकम् । जनकोऽयं जनान्वक्ति मम सोऽपि तथावदत् ॥
धनवस्त्रादिकं लात्वा तुष्टोऽसौ निःस्वनाशतः । एकदा सत्यभामा तं पूजयित्वा धनादिभिः ॥
भक्त्या परोक्षतोऽप्राक्षीत्पुत्रोऽयं वा न ते वद । समादाय धनं विप्रः प्रकथ्य तद्विचेष्टितम् ॥
अगाद्देशान्तरं शीघ्रं धनं किं न करोति वै । अथ सा शरणं श्रान्ता गता श्रीषेणभूपतेः ॥२०२
श्री सिंहनन्दिता यस्य नन्दिता चापरा प्रिया । इन्द्रोपेन्द्राख्यया ख्यातौ तयोः पुत्रौ महाप्रभौ ॥
सत्यभामा नृपस्याग्रे वृत्तं भर्तृसमुद्भवम् । अवीवदन्नृपो ज्ञात्वा नगरात्तं निराकरोत् ॥२०४
श्रीषेणोऽपि कदाचिच्च चारणद्वन्द्वमागतम् । ननामामितगत्याख्यारिंजयाख्यं स्ववेश्मनि ॥
ताभ्यां दत्त्वान्नदानं स समुपार्ज्य महाशुभम् । देवीभ्यामनुमोदेन दानस्य सत्यभामया ॥२०६
भोगभूम्याः परं चायुरबापुस्ते शुभाः शुभम् । कौशाम्ब्यामथ विख्यातो महाबलमहीपतिः ॥

तत्पर कपिलको रत्नपुर निवासी सत्यकि नामक ब्राह्मणने जंबू नामक पत्नीसे उत्पन्न हुई सत्यभामा कन्या विधिसे परणाई । वह दासीपुत्र कपिल रत्नपुरके राजाके द्वारा सम्मानित और श्रीमंतभी हुआ । यह सुनकर दारिद्र्यनाशके लिये दुःखी धरणीजट उसके पास आगया " ॥१९७-१९८॥ कपिलने दूरसे देखकर ऊठ कर उसे नमस्कार किया । तथा लोगोंको ये मेरे पिताजी हैं ऐसा कहा । धरणीजटनेभी यह मेरा पुत्र है ऐसा लोगोंको कहा । कपिलसे धन लेकर दारिद्र्यनाशसे धरणीजट आनंदित हुआ । किसी समय सत्यभामाने धनादिकके द्वारा उसकी पूजा की अर्थात् उसको बहुत धन दिया और कपिलके परोक्षमें भक्तिपूर्वक पूछा कि मेरा पति कपिल आपका पुत्र है या नहीं । सत्यभामासे धन लेकर उसे कपिलकी सब कथा सुनाई और वह ब्राह्मण शीघ्र वहांसे चला गया । योग्यही है, कि धन क्या क्या नहीं करता ? इधर कपिलका दासीपुत्रत्व ज्ञात होनेसे दुःखित हुई सत्यभामा श्रीषेण राजाको शरण गई ॥ १९९-२०२ ॥ राजा श्रीषेण रत्नपुरका स्वामी था । उसकी पहली पत्नीका नाम सिंहनंदिता और दूसरीका नाम नंदिता था । उन दोनोंको इन्द्र और उपेन्द्र नामके दो तेजस्वी पुत्र थे ॥ २०३ ॥ सत्यभामाने राजाके आगे अपने पतिकी कथा निवेदन की, राजाने सब हाल जानकर कपिलको नगरसे निकाल दिया । श्रीषेण राजाने किसी समय गृहमें आये हुए अमितगति और अरिंजय नामक दो चारणमुनियोंको वन्दन किया । तथा उनको आहार-दान दिया । सिंहनंदिता, नंदिता और सत्यभामाने दानका अनुमोदन दिया । राजाको आहार-दानसे महापुण्यबंध हुआ । राजा, उसकी दो स्त्रियाँ और सत्यभामा इनको भोगभूमीके उत्कृष्ट आयुका बंध हुआ । श्रीषेण राजाके पुत्रादिकोंने अपने परिणामोंके अनुसार शुभाशुभ कर्मबंध किया ॥ २०४-२०६ ॥ कौशाम्बी नगरीमें महाबल नामक राजा था । उसकी रानीका नाम श्रीमति और पुत्रीका नाम श्रीकान्ता था । वह सुंदर और शुभविचारवाली थी । राजा महाबलने श्रीषेण

श्रीमती वल्लभा तस्य श्रीकान्ता तत्सुता शुभा । इन्द्रसेनाय तां भूपो विवाहविधये ददौ ॥
सामान्यवनिता तत्र तया सार्धं समागता । सोपेन्द्रसेनं संलुब्धा जाता कर्मविपाकतः॥२०९
इन्द्रस्तथात्वमाकर्ण्य क्रुद्धो युद्धाय नद्धवान् । उद्यानवर्तिनोर्युद्धं तयोराकर्ण्य भूमिपः ॥२१०
तन्निवारयितुं नैव शक्तो निर्वेदमानसः । आज्ञोल्लंघनदुःखेनाघ्राय पद्मं विषाविलम् ॥ २११
मृतिं ययौ तदा देव्यौ सत्यभामा च तन्मृतेः । विधाय तद्विधिं साध्व्यः समीयुर्विगतासुताम्॥
धातकीखण्डपूर्वार्धकुरुषूत्तरगेषु च । तदा तौ दम्पती भूपोऽभूतां च सिंहनन्दिता ॥ २१३
अनिन्दिता बभूवार्यः सत्यभामा च भामिनी । सर्वेऽपि ते सुखं तस्थुस्तत्र भोगभरान्विताः॥
तत्र पल्यत्रयं भुक्त्वा भोगान्भोगार्थिनो मृताः । श्रीषेणस्तत्र सौधर्मे विमाने श्रीप्रभोऽभवत्॥
विद्युत्प्रभा तथा सिंहनन्दितासीत्तदङ्गना । अनिन्दिताभवद्देवो विमाने विमलप्रभः ॥२१६
शुक्लप्रभाभिधा देवी ब्राह्मणी विमलप्रभे । पञ्चपल्योपमायुष्काःशर्मासेदुः समुन्नताः ॥२१७
श्रीषेणः प्रच्युतस्तस्मादर्ककीर्तिसुतो भवान् । जाता ज्योतिःप्रभा कान्ता या पूर्वं सिंहनन्दिता॥
अनिन्दिताचरो देवोऽजनि श्रीविजयो महान् । सत्यभामा सुतारासीत्कपिलः प्राक्तनः खलः॥

राजाके पुत्र इन्द्रसेनको श्रीकान्ता विवाहविधीसे दी । श्रीकान्ताके साथ उसकी दासीभी इन्द्रसेनके घर आगई; परंतु कर्मोदयसे वह दासी उपेन्द्रसेनपर अनुरक्त होगई । इन्द्रसेनको यह बात मालूम होनेपर वह क्रुद्ध होकर युद्धके लिये तैयार हो गया । बगीचेमें उन दोनोंका युद्ध छिड गया । यह वृत्त सुनकर उनके युद्धका निवारण करनेमें असमर्थ राजा खिन्नचित्त हुआ । आज्ञाके उल्लंघन-दुःखसे उसने विषसे युक्त कमल सूंघकर प्राणत्याग किया । तब उसकी दोनों रानियाँ और सत्य-भामा इन साध्वीयोंने राजाके मरणका अनुकरण करके अर्थात् विषयुक्त कमलको सूंघकर मरण प्राप्त किया । ॥२०७-२१२॥ धातकीखण्डके पूर्वार्द्धमें उत्तरकुरु भोगभूमीमें राजा और सिंहनंदिता दंपती हुए । अनिंदिता आर्य हुई और सत्यभामा उसकी पत्नी हुई । भोगसमूहसे युक्त वे सब सुखसे रहने लगे । ॥ २१३-२१४ ॥

[सौधर्मस्वर्गमें देवपदप्राप्ति ।] भोगभूमीमें तीन पल्य आयु समाप्त होनेतक वे भोगेच्छु आर्य और आर्या भोगोंको भोगकर मर गये । उनमेंसे श्रीषेण राजा सौधर्म स्वर्गके विमानमें श्रीप्रभ नामक देव हुआ । सिंहनंदिता आर्या उसकी विद्युत्प्रभा नामक देवी हो गई । अनिंदिता सौधर्मस्वर्गके विमानमें विमलप्रभ नामक देव हुई और सत्यभामा ब्राह्मणी विमलप्रभकी शुक्लप्रभा नामक देवी हो गई । उन देवदेवीयोंकी आयु पांच पल्योपम थी । श्रीषेणकी स्वर्गीय आयु समाप्त होनेपर वह अर्क-कीर्तिका पुत्र हुआ अर्थात् हे अमिततेज तू ही पूर्वभवमें श्रीषेण राजा था । सिंहनंदिता तेरी पत्नी ज्योतिःप्रभा नामकी हुई है । पूर्वमें जो अनिंदिता रानी थी वह अब श्रीविजय राजा हुई है । और सत्यभामा सुतारा हुई है ॥ २१५-२१९ ॥

बभ्राम भवकान्तारं पापात्किं जायते शुभम् । वने स भूतरमण ऐरावतीसरित्तटे ॥ २२०
तापसाश्रमसंवासिकौशिकात्समजायत । सुतश्चपलवेगाया मृगशृङ्गोऽपि तापसः ॥ २२१
दृष्ट्वा चपलवेगस्य विभूतिं खेचरेशितुः । निदानमकरोन्मूढोऽशनिघोषस्ततश्च्युतः ॥ २२२
जातोऽयं स्नेहतस्तारां सुतारां चाग्रहीद्धठात् । भवे त्वं पञ्चमे भावी चक्रवर्ती जिनेश्वरः॥२२३
श्रुत्वेत्यशनिघोषाख्यो जनन्यस्य स्वयंप्रभा । सुताराप्रमुखाश्चान्ये जगृहुः संयमं परम् ॥२२४
प्रवन्द्य ते जिनं जग्मुश्चक्रवर्तिसुतादयः । स्वं स्वं पुरं पताकाढ्यं विद्येशामिततेजसा ॥ २२५
पर्वसु प्रोषधं कुर्वन्नर्ककीर्तिसुतः शुभः । प्रायश्चित्तं चरन्योग्यं पूजया पूजयञ्जिनम् ॥ २२६
ददद्दानं सुपात्रेभ्यः शृण्वन्धर्मकथां पराम् । निर्दोषं निर्मलं शान्तं सम्यक्त्वं श्रितवाञ्शमी॥
प्रजानां पितृवत्पाता संयमीव शमं श्रितः । धर्म्यं प्रावर्तयत्कर्म लोकद्वयहितोद्यतः ॥ २२८
प्रज्ञप्तिः स्तम्भनी वह्निजलयोः कामरूपिणी । विश्वप्रकाशिका विद्या प्राप्रतीघातकामिनी ॥

[कपिलभव कथा] पूर्वजन्ममें जो दुष्ट कपिल था, वह संसार-वनमें भ्रमने लगा। योग्य ही है, कि पापसे कभी किसीका भला होता है? संभूतरमण नामक वनमें ऐरावती नदीके तटपर तपस्वियोंके आश्रममें रहनेवाला कौशिक नामा ऋषि था। उसकी पत्नीका नाम चपलवेगा था। संसारमें भ्रमनेवाला यह कपिल उन दंपतीका मृगशृङ्ग नामक पुत्र हुआ। वह अपने पिताके समान ऋषि होगया ॥ २२०-२२१ ॥ चपलवेग नामक विद्याधरका वैभव देख उस मूढने आगेके भवमें मुझे ऐसाही वैभव मिले इस तरह निदान किया। तदनंतर आयु समाप्त होनेसे मरकर अशनिघोष विद्याधर हुआ। पूर्व जन्मके स्नेहके वश होकर वह सौंदर्यसे चमकनेवाली सुताराको हठसे हरण कर ले गया ॥ २२२-२२३ ॥ हे अमिततेज, तू अब यहांसे पांचवे भवमें चक्रवर्ती तीर्थकर शांतिनाथ होनेवाला है। यह सब वृत्तान्त सुनकर अशनिघोष उसकी माता आसुरी, स्वयंप्रभा, सुताराआदि और अन्य भव्योंनेभी उत्तम संयम धारण किया ॥ २२४ ॥ चक्रवर्तीपुत्र श्रीविजय, आदि भूपाल जिनेश्वरको वंदनकर पताकाओंसे सुशोभित अपने अपने नगरको अमिततेज विद्याधरप्रभुके साथ गये। शुभकार्य-तत्पर शांतकषायी अर्ककीर्तिपुत्र अमिततेज पर्वतिथियोंमें प्रोषधोपवास, व्रताचरणमें दोष लगनेपर योग्य प्रायश्चित्त-धारण, जिनेश्वरका अष्ट द्रव्योंसे पूजन, सुपात्रोंको दान देना ये कार्य करता था। उत्तम धर्मकी कथाओंका श्रवण करते हुए उसने निर्दोष निर्मल और शांतिदायक सम्यग्दर्शन धारण किया ॥ २२५-२२७ ॥ अपने पिताके समान प्रजाओंका पालक, संयमीके समान समताको धारण करनेवाला, इहलोक परलोकके हितकार्यमें तत्पर अमिततेज विद्याधरेश गृहस्थके देवपूजादिक षट्कर्म स्वयं आचरता हुआ प्रजाओंकोभी इन कर्मोंमें तत्पर करता था ॥ २२८ ॥ प्रज्ञप्ति, अग्निस्तंभनी, जलस्तंभनी, कामरूपिणी, विश्वप्रकाशिका, अप्रतीघातकामिनी, आकाशगामिनी, उत्पातिनी, वशंकरा, आवेशिनी, शत्रुदमा, प्रस्थापनी, आवर्तनी,

आकाशगामिनी चान्योत्पातिनी च वशंकरा । आवेशनी शत्रुदमा तथा प्रस्थापनी परा॥२३०
आवर्तनी प्रहरणी प्रमोहिनी विपाटिनी । संक्रामणी संग्रहणी भञ्जनी च प्रवर्तनी ॥ २३१
प्रहापनी प्रमादिन्या प्रभावती पलायिनी । निक्षेपणी च चाण्डाली शबरी च परा स्मृता ॥
गौरी खट्वाङ्गिका श्रीमद्गुण्या च शतसंकुला । मातङ्गी रोहिणी ख्याता कूष्माण्डी वरवेगिका ॥
महावेगा मनोवेगा चण्डवेगा लघूकरी । पर्णलघ्वी च चपलवेगा वेगावती मता ॥ २३४
महाज्वालाभिधा शीतोष्णादिवैतालिके मते । सर्वविद्यासमुच्छेदा तथा बन्धप्रमोचनी ॥२३५
प्रहारावरणी युद्धवीर्या च भ्रामरी खगम् । भोगिन्याद्याः श्रिता विद्याः कुलजातिप्रसाधिताः॥
तासां श्रेण्योर्द्वयोश्चाधिपत्येन विदितो भुवि । भुञ्जन्भोगान्कदाचिच्च दत्वा दानं मुनीशिने ॥
प्रापद्दमवराख्यायाश्चर्यपञ्चकमम्बरे । चारणायान्यदामिततेजःश्रीविजयौ वने ॥ २३८
सुरदेवगुरू दृष्ट्वा नत्वा च मुनिपुङ्गवौ । श्रुत्वा धर्मं ततोऽप्राक्षीत्पुनः श्रीविजयो नतः ॥२३९
आत्मनो भवसंबन्धं पितुश्च भगवान्मुनिः । श्रुत्वा प्राह भवांस्तस्य पितुश्च विश्वनन्दिनः ॥२४०
तन्माहात्म्यं निशम्यासौ तत्पदाप्तनिदानकः । भूचरैः खचरैः सेव्यौ भेजतुस्तौ सुखामृतम् ॥

प्रमोहिनी, विपाटिनी, संक्रामणी, संग्रहणी, भंजनी, प्रवर्तिनी, प्रहापनी, प्रमादिनी, प्रभावती, पलायिनी, निक्षेपणी, चाण्डाली, शबरी, गौरी, खट्वाङ्गिका, श्रीमद्गुण्या, शतसंकुला, मातंगी, रोहिणी, कूष्मांडी, वरवेगा, महावेगा, मनोवेगा, चण्डवेगा, लघूकरी, पर्णलघ्वी, चपलवेगा, वेगावती, महाज्वाला, शीतवैतालिका, उष्णवैतालिका, सर्वविद्यासमुच्छेदा, बंधप्रमोचिनी, प्रहारावरणी, युद्धवीर्या, भ्रामरी, भोगिनी आदि विद्याओंने अमिततेज विद्याधरका आश्रय लिया था। ये विद्या विशिष्ट कुल और विशिष्ट जातिवाले विद्याधरोंके द्वारा सिद्ध की जाती थी परंतु अमिततेज के विशाल पुण्योदयसे इन विद्याओंने उसका स्वयं आश्रय लिया था ॥ २३०-२३६ ॥ अमिततेज विद्याधर इन विद्याओंका और दोनों श्रेणिओंके विद्याधर-राजाओंका अधिपति होनेसे भूतलमें सर्वत्र प्रसिद्ध हुआ। भोगभोगनेवाला वह सुखसे रहने लगा ॥ २३७ ॥ किसी समय अमिततेजने दमवर नामक आकाशचारण मुनिराजको आहार दिया तब आश्चर्यपंचककी प्राप्ति हुई। अर्थात देव अहो दान, अहो दान इसप्रकारकी स्तुति, रत्नवृष्टि, ठंडा सुगंधित पवन बहना, सुगंधित जलवृष्टि होना, और आकाशमें देववाद्योंका बजना इस प्रकार पंचाश्चर्यवृष्टि हुई ॥ २३८ ॥ अन्य किसी समयमें श्रीविजय और अमिततेज दोनों विद्याधरोंने सुरगुरु और देवगुरु ऐसे श्रेष्ठ मुनियोंको देखकर वंदन किया। उनसे धर्मश्रवण कर नम्रतासे श्रीविजय अपने और अपने पिताके भवसंबंध पूछने लगा। श्रीविजयका प्रश्न सुनकर भगवान् मुनिने उसके और विश्वको आनन्दित करनेवाले उसके पिता त्रिपृष्ठके भव कहे ॥ २३९-२४० ॥ पिताके माहात्म्यको सुनकर श्रीविजयने नारायणपदकी प्राप्तिका निदान किया। भूचर और खेचर राजाओंसे सेवनीय ऐसे वे भूपति

पार्श्वे विपुलविमलमत्योः श्रुत्वा मुनीशयोः । मासमात्रं महीनाथावायुर्धर्मदयोद्यतौ ॥ २४२
दत्त्वार्कतेजसे खेटः श्रीदत्ताय महीपतिः । राज्यमाष्टाह्निकीं पूजां कृत्वा नन्दनपार्श्वगे॥२४३
चन्दने मुनिसंगेन प्रायोपगमनोद्यतौ । वने संन्यस्य स्वप्राणान्विमसर्जतुरुत्तमान् ॥२४४
कल्पे त्रयोदशे नन्द्यावर्तेऽभूद्रविचूलकः । खगः श्रीविजयोऽप्यत्र स्वस्तिके मणिचूलकः॥२४५
विंशतिं सागरान्भुक्त्वा जीवितं तौ ततो मृतौ । द्वीपेऽत्र प्राग्विदेहाख्ये सद्वत्सकावतीति च ॥
देशे प्रभावतीपुर्याः पत्युः स्तिमितसागरात् । वसुंधर्यां सुतो जज्ञे रविचूलोऽपराजितः॥२४७
स्वस्तिकाद्दिव्च्युतो देवो मणिचूलोऽप्यभूत्सुतः । श्रीमाननन्तवीर्याख्यो देव्यामनुमतौ ततः ॥
नित्योदयौ जगन्नेत्रकमलाकरभास्करौ । पद्मानन्दकरौ तौ च रेजतुः प्राप्तयौवनौ ॥ २४९
भूपः कुतश्चिदासाद्य वैराग्यमात्मजौ तकौ । तदैव स समाहूय राज्ये संस्थाप्य निर्गतः॥२५०

और खगपति सुखामृतका उपभोग लेने लगे ॥ २४१ ॥ कदाचित् विपुलमति और विमलमति मुनियोंके समीप दोनों राजाओंने अपनी आयु मासमात्र अवशिष्ट है ऐसा सुना तब वे धर्म और दया करनेमें तत्पर रहे। अमिततेज राजाने अपना राज्य अर्कतेज नामक पुत्रको दिया और श्रीविजयने श्रीदत्त पुत्रको दिया। उन्होंने आठ दिनतक अष्टाह्निक पूजा की अनंतर नन्दनवनके समीप चन्दनवनमें मुनियोंके आश्रयमें वे प्रायोपगमनमरणमें उद्युक्त हुए। अर्थात् उन्होंने अपना वैयावृत्य स्वयं नहीं किया, और दूसरोंके द्वाराभी नहीं करवाया। आहार तथा कषायोंका त्याग कर पंच-नमस्कारका स्मरण करते हुए समाधिपूर्वक प्राण छोडे ॥ २४२-४४ ॥ तेरहवे कल्पमें—आनत-स्वर्गमें नंद्यावर्त विमानमें श्रीअमिततेज रविचूलनामक महर्द्धिक देव हुआ और श्रीविजयराजा स्वस्तिक विमानमें मणिचूल नामक महर्द्धिक देव हुआ। बीससागरतक देवसुखका अनुभव लेनेपर उन्होंने प्राणत्याग किया। अपराजित और अनंतवीर्य बलभद्र और नारायणपदके धारक थे। इस जम्बूद्वीपमें पूर्वविदेहक्षेत्रके वत्सकावती देशमें प्रभावती नगरके अधिपति स्तिमितसागर राजा थे। उनको रानी वसुंधरासे रविचूलदेव अपराजित नामक पुत्र हुआ। स्वस्तिकविमानसे च्युत हुआ मणिचूल देवभी अनुमति नामक रानीसे लक्ष्मीसंपन्न अनंतवीर्य नामक पुत्र हुआ ॥ २४५—२४८ ॥ जैसे सूर्य प्रतिदिन उदित होता है वैसे ये दोनों राजपुत्र नित्योदय नित्यवैभवसे युक्त थे। सूर्य कमलोंको प्रफुल्लित करता है वैसे ये दोनों राजकुमारभी जगतके नेत्ररूपी कमलोंको विकसित करते थे। सूर्य पद्मोंको आनंदित करता है। ये दोनों पद्मा—लक्ष्मीको आनंदित करते थे। इस प्रकार इन दोनों राजपुत्रोंने यौवनमें प्रवेश कर अतिशय शोभा धारण की ॥ २४९ ॥ स्तिमितसागर राजाको किसी कारणसे वैराग्य हुआ। उसने उसी समय अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर राज्यपर स्थापन कर स्वयंप्रभ जिनेश्वरके पास जाकर उनके चरणमूलमें संयम धारण किया। उस समय धरणेन्द्रकी ऋद्धिको देखकर उस पदकी प्राप्तिके लिये स्तिमितसागर मुनिराजने निदान किया।

स्वयंप्रभजिनस्यान्ते प्रायासीत्संयमं नृपः । धरणेन्द्रर्द्धिमालोक्य तत्पदाप्तिनिदानवान्॥२५१
मृत्वा धरणेशितां प्राप सुखघ्नं धिग्निदानकम् । अपराजितभूपालोऽनन्तवीर्यो महामनाः॥२५२
इन्द्रप्रतीन्द्रवत्तौ च दधतुश्च वसुंधराम् । एकदा बर्बरी ख्याता नटी चान्या चिलातिका ॥
प्राभृतीकृत्य केनापि प्रेषिते ते सुखावहे । भूपौ तौ भूरिभूमीशभूषितप्रान्तभूतलौ ॥२५४
तयोर्नृत्यं स्थितौ द्रष्टुमायासीन्नारदस्तदा । नृत्यासंगात्कुमाराभ्यां न दृष्टः स विधेः सुतः ॥
जाज्वलत्कोपसंतप्तः शुचिचण्डांशुवत्तपन् । दमितारिसभां प्राप्य नारदो देहिदुःखदः ॥२५६
तत्र विष्टरसंनिष्ठं विशिष्टं शिष्टसेवितम् । गरिष्ठमिष्टसंदिष्टसेव्यं तं वीक्ष्य खाङ्गणात् ॥ २५७
अवतीर्याशिषं दत्वा स्थिते तस्मिन्खगाधिपः। तमभ्युत्थाननत्याद्यैः संमान्यास्थापयत्पदे ॥२५८
दमितारिरवोचत्तं भवन्तो भक्तवत्सलाः । भव्या भवभ्रमं भेत्तुं भान्तो भूतविभूतिदाः ॥ २५९
किं कार्यं हेतुना केनागमनं ब्रूत वः प्रभो । इत्याकर्ण्य वचोऽवादीन्नारदः शृणु खेचर॥ २६०
त्वदर्थं सारभूतानि वस्तून्यालोकयन्भ्रमन् । दृष्ट्वा च नर्तकीयुग्मं रम्भोर्वशीसमं महत्॥ २६१
अस्थानस्थं भवद्योग्यमनिष्टं सोढुमक्षमः। आयातोऽहं कथं सोढः पादे चूडामणिः स्थितः॥२६२

मरकर वह धरणेन्द्र हुआ। यह निदान सुखका नाश करनेवाला है अतः इसे धिक्कार है ॥२५०-२५१॥

[नारदका आगमन] उदारचित्त अपराजित और अनंतवीर्य ये दोनों राजा इंद्र-प्रतीन्द्रके समान पृथ्वीका रक्षण करने लगे। किसी समय एक राजाने बर्बरी और चिलातिका नामक दो सुखदायक नर्तकियां भेटके रूपमें भेज दीं। समीप स्थानमें बैठे हुए अनेक राजाओंसे भूषित वे दोनों भूपाल उन नर्तकियोंका नृत्य देखनेके लिये बैठे थे। उस समय नारद सभामें आगये। परंतु नृत्य देखनेमें आसक्त होनेसे दोनों कुमारोंने ब्रह्मदेवके पुत्र नारदको नहीं देखा ॥ २५२-५५ ॥ अतिशय प्रज्वलित कोपसे संतप्त, आषाढमासके सूर्यके समान तपनेवाले, कलह उत्पन्न कर प्राणियोंको दुःख देनेवाले, नारद दमितारिराजाकी सभामें आये। सज्जनोंसे सेवित, अभीष्टसिद्धिके लिये अर्थीलोगोंसे सेवनीय ऐसे महापुरुष दमितारिको सिंहासनपर बैठा हुआ देखकर आकाशाङ्गणसे नारद उतरे; तथा आशीर्वाद देकर सभामें खडे हो गये। विद्याधरोंके राजा दमितारिने सिंहासनसे ऊठकर नमस्कारादिकोंसे नारदका सम्मानकर योग्य सिंहासनपर बैठाया। दमितारि राजाने उनको कहा " हे प्रभो आप भक्तोंपर दया धारण करते हैं, भक्तवत्सल हैं, भव्य हैं, संसारभ्रमणको नष्ट करनेवाले हैं तथा जीवोंको वैभव देनेवाले हैं। हे प्रभो, कुछ कार्य कहिये, किस हेतुसे आपका आगमन हुआ है, कहिये? " दमितारिका भाषण सुनकर नारद कहने लगे - " हे दमितारि राजन्, मैं आपके लिये सारभूत वस्तुओंको देखता हुआ फिरता हूं। अपराजित राजाकी सभामें रंभा और उर्वशीके समान सुन्दर दो नर्तकियां आपके योग्य देखीं परंतु अपराजितराजाके सभामें उनका रहना मैं सहन नहीं करता हूं इस लिये तुम्हारे पास आया हूं,

खगापराजितानन्तवीर्यगेहे न शोभते । तच्छोभते भवद्गेहे रत्नान्यालयवन्मणिः ॥ २६३
श्रुत्वासौ प्राहिणोद्दूतं सोपहारं स्फुरद्गुणम् । गत्वा दूतः प्रभाकर्यां वीक्ष्य तौ नरपुङ्गवौ ॥२६४
मुक्त्वोपायनमाचख्यौ युवां पाति खगाधिराट् । श्रीमता तेन देवेन प्रेषितोऽहं युवां प्रति॥२६५
याचितं नर्तकीयुग्मं दातव्यं प्रीतये ततः । निशम्येदं तकौ दूतं प्रहित्याहूय मन्त्रिणः॥२६६
किं कार्यमिति पृच्छन्तौ स्थितौ तत्पुण्ययोगतः । तृतीयभवविद्याश्च संप्राप्ताः स्वं निरूप्य च ॥
विपक्षक्षयसंलक्ष्याः स्थितास्तत्कार्यकारिकाः । निधाय मन्त्रिणं तत्र नर्तकीवेषधारिणौ ॥२६८
निर्गतौ सह दूतेन तौ प्राप्तौ शिवमन्दिरम् । विधीयमानं तन्नृत्यं नृपो वीक्ष्य स्फुरद्गुणम्॥२६९
विस्मितः शिक्षितुं ताभ्यां समदात्कनकश्रियम् । तामादाय यथायोग्यं गीतनृत्तकलाविदम् ॥
अनन्तवीर्यसंरक्तां चक्रतुस्ते सुभाविनीम् । तद्रक्तां तां समादाय नर्तक्यौ जग्मतुर्दिवि ॥२७१
श्रुत्वाथ खेचरो वार्तां प्रेषयामास सद्भटान् । बलिना तेन युद्धेन भङ्गं नीताः क्षणान्तरे॥२७२

क्यों कि चूडामणि पावोंमें रहना मुझसे सहा नहीं जाता है। हे विद्याधराधीश, दोनके घरमें रत्नके समान अपराजित और अनंतवीर्यके घरमें वे शोभा नहीं पाती हैं। आपके घरहीमें उनकी शोभा है" ॥ २५६ - २६३ ॥ नारदके वचन सुनकर दमितारि राजाने गुणोंसे स्फुरायमान ऐसे एक दूतको उपहारके साथ भेज दिया। दूत प्रभाकरी नगरीमें गया। वहां उसने नरश्रेष्ठ अपराजित और अनंतवीर्यको देखा। उनके आगे भेटकी चीजें रखकर इस प्रकार कहा " दमितारि विद्याधराधीश, आप दोनोंका रक्षण करते हैं। लक्ष्मीसंपन्न उस राजाने आपके प्रति मुझे दो नर्तकियोंकी याचना करनेके लिये भेजा है। आप प्रेमवृद्धि होनेके लिये दमितारि महाराजको उन दोनों नर्तकियोंको दे दीजिये। यह भाषण सुनकर दूतको उन्होंने बाहर भेज दिया। मंत्रियोंको बुलाकर पूछा, कि इस समय कौनसा उपाय करना चाहिये और वे बैठ गये। इतनेमें उनके पास तीसरे भवकी विद्यायें प्राप्त होगईं। उन्होंने " हम शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ हैं, आपका कार्य करनेवाली हैं " इस तरह अपना स्वरूप कहा। तब उन दोनों राजाओंने मंत्रीको प्रभाकरी नगरके रक्षणके लिये स्थापन किया और आप दोनों नर्तकियोंका वेष धारण कर दूतके साथ चलकर शिवमंदिर नगरको आये। राजसभामें गुणोंसे शोभायमान नृत्य शुरू किया, राजाको नृत्य देखकर आश्चर्य हुआ। राजाने नृत्यका अभ्यास करानेके लिये कनकश्रीको उनके हाथमें सौंप दिया। उसको उन्होंने गीतकला और नृत्यकलामें निपुण किया। उन दोनों नर्तकियोंने शुभ विचार करनेवाली सुन्दर राजकन्याको अनंतवीर्यमें आसक्त कर दिया। तदनंतर अनुरक्त हुई कनकश्रीको लेकर वे दोनों नर्तकियां आकाशमें चली गयीं ॥ २६४ - ७१ ॥

[अनन्तवीर्यके हस्तसे दमितारिका निधन] विद्याधर दमितारिने यह वार्ता सुनकर अच्छे पराक्रमी वीरोंको भेजा। परंतु बलवान् अपराजितने शीघ्रही युद्धमें उन भटोंका पराजय

प्रेषितांश्च पुनर्भग्रान्वीक्ष्योचस्थौ खगो युधि । नर्तकयोर्न प्रभावोऽयं चिन्तयन्निति निष्ठुरम् ॥
संप्राप्तविद्यया रामो युयुधे युद्धविक्रमी । अनन्तवीर्यमालोक्य चिरं युद्ध्वा खगाधिपः॥२७४
मुमोच चक्रमाक्रम्य चक्रिचक्रभयप्रदम् । तं परीत्य स्थितं हस्ते तेन तेन खगो हतः ॥ २७५
ततः खगाः समागत्य सर्वे नेमुस्त्रिखण्डपौ । खचरैः सह संपत्त्या चेलतुस्तौ प्रभाकरीम् ॥२७६
गच्छन्तौ मार्गतो दृष्ट्वा जिनं कीर्तिधराह्वयम् । नत्वा श्रुत्वा च सद्धर्मं कनकश्रीभवान्तरान् ॥
श्रुतवन्तौ निशम्यासौ प्राव्राजीद्रागमुक्तधीः । तां प्रशस्य जिनं नत्वा निर्गतौ समवसृतेः॥२७८

बुधजननतपादौ दीप्यदाप्तप्रमोदौ निहतरिपुविवादौ मुक्तसर्वापवादौ ।
प्रतिगतविविषादौ लब्धधर्मप्रमादौ कृतसुकृतनिनादौ जग्मतुस्तां नृपौ तौ ॥ २७९

किया ॥ २७२ ॥ दमितारिने पुनः पराक्रमी योद्धाओंको भेज दिया, पुनः अपराजितने उनको पराजित किया । तब चक्रवर्तीने, इतना सामर्थ्य नर्तकियोंका नहीं हो सकता, अतः अब स्वयं युद्धके लिये चलना चाहिये ऐसा विचार करके निष्ठुरतासे रणभूमिमें प्रयाण किया ॥ २७३ ॥ अपराजित बलभद्रने प्राप्त हुई विद्याओंके माहात्म्यसे दमितारिके साथ युद्ध किया । तदनंतर अनन्तवीर्यको देखकर विद्याधर दमितारिने उसके साथ दीर्घकालतक युद्ध किया । अन्तमें चक्रवर्तीने सैन्यको भय दिखलानेवाला चक्र हाथमें लेकर वह अनन्तवीर्यके ऊपर छोड दिया । अनन्तवीर्यको प्रदक्षिणा देकर वह उसके हाथमें आया । तब अनंतवीर्यने उसे छोडकर दमितारिको मार दिया । ॥ २७४-२७५ ॥ तदनंतर सर्व विद्याधर आकर त्रिखंडपति अपराजित और अनन्तवीर्यको नमस्कार करने लगे । तब वे विद्याधरोंके साथ तथा संपदाके साथ प्रभाकरी नगरीको चले गये ॥ २७६ ॥ चलते हुए उन्होंने मार्गमें कीर्तिधर नामक जिनेश्वरको वंदन किया । उनसे धर्मका स्वरूप और कनकश्रीके भवान्तर सुने ॥ २७७ ॥ भवान्तर सुननेपर कनकश्रीकी बुद्धि रागभावरहित हो गई और उसने दीक्षा धारण की. अपराजितने कनकश्रीकी प्रशंसा की. और जिनेश्वरको वन्दनकर समवसरणसे प्रयाण किया ॥ २७८ ॥ जिनके चरणोंको देव नमस्कार करते हैं, जो उत्कट आनंदको प्राप्त हुए हैं. जिन्होंने शत्रुओंका विवाद कलह नष्ट किया है अर्थात् शत्रुओंको जिन्होंने नष्ट किया है. जिनके सर्व प्रकारके अपवाद (निन्दा) दूर हुए हैं. जिनको खेद नहीं है, धर्मसे जिनको प्रसन्नता प्राप्त हुई है, जिनके पुण्यका शब्द सर्वत्र सुना जाता है. ऐसे वे दोनों बलभद्र और नारायण पदके धारक अपराजित और अनंतवीर्य प्रभाकरी नगरीको गये । अजेय तथा आक्रमण करनेकी इच्छा करनेवाले प्रबल शत्रुपक्षको शीघ्रही जीतकर जिसने दिव्य और सुन्दर 'अपराजित' नाम प्राप्त किया है, वह अपराजित बलभद्र जयवंत होवे । जिसने दमितारि

१ स म नृपाङ्गौ ।

जित्वाजय्यं जगामाजिगमिषुबलिनं स्वभुपधं क्षणेन ।
यः सद्विद्यापराद्याजितमिति सुभगं नामधेयं स जीयात् ।
हत्वा वीर्यं सुवीर्याद्दमितरिपुपतेः शौर्यधुर्योऽप्यनन्त-
वीर्यो भाति प्रभावाद्वृषविशदमतेः सर्वशक्तिप्रदेष्टुः ॥ २८०

इति त्रैविद्यविद्याविशदभट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपालसाहाय्यसापेक्षे श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि शान्तिनाथभवषट्कवर्णनं नाम चतुर्थं पर्व ॥ ४ ॥

। पञ्चमं पर्व ।

अजितं जितकर्मारिमपराजितमर्थतः । जितजेयं यजे युक्त्या विराजितजनार्चितम् ॥ १
त्रिखण्डस्याधिपत्यं च विधाय विविधैः सुखैः । केशवः प्राविशत्प्रान्ते पापाद्रत्नप्रभावनिम् ॥
बलोऽप्यनन्तसेनाय राज्यं दत्त्वा यशोधरात् । प्राव्राज्य तृतीयं बोधं प्राप्य संन्यस्य मासकम्॥

विद्याधर राजाके वीर्यका (शक्तिका) अपने उत्कृष्ट वीर्यसे नाश किया है, जो शौर्यगुणमें श्रेष्ठ है, ऐसा अनन्तवीर्य नारायणभी, धर्मके विस्तारमें जिसकी मति है और सर्वशक्तियोंको प्रगट करनेवाले ऐसे बलदेव अपराजितके सामर्थ्यसे सुशोभित होता है ॥ २७९-२८० ॥

ब्रह्मश्रीपालकी सहायताकी अपेक्षा जिसमें हुई है, ऐसे त्रैविद्यविद्याओंमें निर्मल भट्टारक श्रीशुभचन्द्रप्रणीत पाण्डवपुराणमें अर्थात् महाभारतमें श्री शान्तिनाथके छह भवोंका वर्णन करनेवाला चौथा पर्व समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

(पर्व पांचवा)

जिन्होंने कर्मरूपी शत्रुओंको पराजित किया है, तथा जो किसीभी महान् पराक्रमी पुरुषोंद्वारा पराजित नहीं हुए हैं, अर्थात् जो अनंतवीर्य हैं, प्रमाण नयरूप युक्तिकेद्वारा जीतने योग्य वादियोंको जिन्होंने जीत लिया है, विराजितजनोंसे यानी गणधरादि मुनियों तथा इन्द्रादिकोंसे जो पूजनीय हैं, ऐसे अजित जिनेश्वरकी मैं पूजा करता हूं ॥ १ ॥

[अपराजितको इन्द्रपदलाभ] अनेक प्रकारके सुखोंके साथ त्रिखण्डस्वामित्वका अनुभव लेकर आयुष्य समाप्त होनेपर पापसे केशव अनंतवीर्य रत्नप्रभा नरकमें उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ अपराजित बलभद्रनेभी अनंतसेनको राज्य देकर यशोधरमुनिसे दीक्षा धारण की । उसको अवधिज्ञान प्राप्त हुआ । एक मासपर्यन्त संन्यास धारणकर वह अच्युतस्वर्गमें इन्द्र हुआ ॥ ३ ॥ धरणेन्द्रसे

अच्युताधीश्वरो जज्ञेऽनन्तवीर्यस्तु नारकः । धरणेन्द्रात्पितुः प्राप्य सम्यक्त्वं दृढमानसः ॥४
संख्यातवर्षसंजीवी प्रच्युत्य प्रासदद्भुवम् । भरतेऽस्मिन्खेचराद्र्युदक्छ्रेणौ व्योमवल्लभे ॥ ५
मेघवाहनराजासीत्तत्प्रिया मेघमालिनी । तत्सुतो मेघनादाख्यः सोऽभूच्छ्रेणीद्वयाधिपः ॥ ६
प्रज्ञप्तिं साधयन्विद्यां मन्दरे नन्दने वने । दरीदृष्टोऽच्युतेशेन बोधितो लब्धबोधकः ॥ ७
प्रव्राज्य नन्दनाख्याद्रौ प्रतिमायोगमासदत् । अश्वग्रीवानुजो भ्रान्त्वा सुकण्ठोऽभूद्भवार्णवे ॥८
असुरत्वं समापन्नो वीक्ष्यैनं मुनिमुत्तमम् । व्यधत्त बहुधा क्रोधादुपसर्गं न सोऽचलत् ॥ ९
सोढोपसर्गः संन्यस्य सोऽच्युतेऽगात्प्रतीन्द्रताम् । मघोना सह संप्राप सातमच्युतसंभवम्॥१०
प्रच्युत्याच्युतनाथः प्राग्द्वीपेऽत्र प्राग्विदेहके । देशे च मङ्गलावत्यां नगरे रत्नसंचये ॥ ११
राज्ञ्यां कनकमालायां राज्ञः क्षेमंकरस्य च । वज्रायुधाभिधो धीमानौरस्योऽभूत्सुलक्षणः॥१२
आधानप्रीतिसुप्रीतिधृतिमोदक्रियान्वितः । वदनेन्दुप्रभाजालसंध्वस्ततिमिरोत्करः ॥ १३
नवं वयो दधानोऽसौ राज्यलक्ष्म्या परिष्कृतः । प्रतीन्द्रस्तत्सुतो जज्ञे सहस्रायुधसंज्ञकः ॥१४

(पूर्व जन्ममें जो नारायणका पिता स्तिमितसागर राजा था।) सम्यग्दर्शन प्राप्त कर, दृढ चित्त-वाला वह नारकी नरकमें संख्यात वर्षतक जीकरके अनन्तर वहांसे निकलकर इस भूतलपर आया। इस भरतक्षेत्रमें विजयार्द्धकी उत्तरश्रेणीमें मेघवल्लभ नगरका अधिपति मेघवाहन नामका राजा था। उसकी प्रिय पत्नी मेघमालिनी थी। इन दोनोंका यह नारकी मेघनाद नामक पुत्र हुआ। वह दोनों श्रेणियोंका अधिपति हुआ ॥ ४-६ ॥

[मेघनादको अच्युतस्वर्गमें प्रतीन्द्रपद-प्राप्ति] किसी समय मंदरपर्वतके नन्दनवनमें प्रज्ञप्ति विद्याको सिद्ध करते हुए मेघनाद विद्याधरको अच्युतेन्द्रने देखकर उपदेश दिया। उपदेश पाकर मेघनादने दीक्षा ली और नन्दन नामक पर्वतपर प्रतिमायोग धारण किया। अश्वग्रीव प्रति-नारायणका छोटा भाई सुकण्ठ संसारसमुद्रमें भ्रमण कर असुर हुआ। उसने इन मुनिराजको देखकर क्रोधसे नानाविध उपसर्ग किये परंतु वे उनसे विचलित नहीं हुए। उपसर्ग सहन करके संन्याससे उन्होंने अच्युतस्वर्गमें प्रतीन्द्रपद पा लिया। तथा अच्युतेन्द्रके साथ अच्युतस्वर्गमें उत्पन्न हुए सुखोंका अनुभव लेने लगे ॥ ७-१० ॥ अच्युतस्वर्गका स्वामी अच्युतेन्द्र अच्युतस्वर्गसे प्रथम च्यय करके जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रस्थ मंगलावती देशमें रत्नसंचय नामक नगरीमें क्षेमंकर राजाकी रानी कनकमालाका वज्रायुध नामक विद्वान् सुलक्षण पुत्र हुआ। अपने मुखरूपी चन्द्रमाके कान्ति-समूहसे अंधकारसमूहको दूर करनेवाला कुमार आधान, प्रीति, सुप्रीति, धृति, मोद इत्यादिक संस्कारोंसे युक्त था। अर्थात् श्रीक्षेमंकर पिताने ये संस्कार, जो कि जैनत्वसूचक हैं, उसपर किये थे। क्रमसे वह नवीन वयसे अर्थात् यौवनसे युक्त तथा राजलक्ष्मीसे अलंकृत हुआ। अच्युत स्वर्गका प्रतीन्द्र वज्रायुधका सहस्रायुध नामक पुत्र हुआ ॥ ११-१४ ॥ साक्षात् श्रीके समान सुन्दर ऐसी

श्रीषेणा भामिनी तस्य साक्षाच्छ्रीरिव शालिनी। शान्त्यन्तकनकः सूनुस्तयोः सुकनकच्छविः॥
पुत्रपौत्रादिभिः क्षेमंकरो राज्यकरोऽप्यभात्। एकदैशानकल्पेशो वज्रायुधसुदर्शनम् ॥१६
स्तुवन्सदसि संतस्थौ गुणाधारं स्फुरद्गुणम्। अक्षमस्तत्स्तवं सोढुं लेखो विचित्रचूलकः॥१७
वज्रायुधं बुधः प्राप्य कृतरूपविपर्ययः। यथोचितं महीनाथं वादकण्डूययावदत् ॥ १८
राजन् जीवादितत्त्वानां विद्वानसि विचारणे। ब्रूहि पर्यायिणो भिन्नः पर्यायः किं विपर्ययः॥
चेद्भिन्नः शून्यतावाप्तिरभावाच्च तयोर्ध्रुवम्। एकत्वसंगरेऽप्येतन्न युक्तिघटनामटेत् ॥ २०
जीवो वा पर्ययो वा स्यादन्योन्यागोचरत्वतः। चेदस्तु द्रव्यमेकं ते पर्याया बहवो मताः॥

श्रीषेणा सहस्रायुधकी पत्नी थी। इन दोनोंको सुवर्णकान्तिका धारक कनकशान्ति नामक पुत्र हुआ। इस प्रकार पुत्रपौत्रादिकोंके साथ राज्यपालन करनेवाले श्रीक्षेमंकर महाराजभी शोभने लगे ॥ १५-१६ ॥ किसी समय ऐशानस्वर्गका इन्द्र अपनी सभामें वज्रायुध राजाके निःशंकितादि गुणोंके आधारभूत सम्यग्दर्शनकी प्रशंसा कर रहा था। गुणोंसे शोभनेवाली वह प्रशंसा विचित्रचूल नामक देव नहीं सह सका। वह रूपपरिवर्तन करके अर्थात् पण्डितका रूप धारण कर वज्रायुध राजाके पास आगया। वाद करनेकी पद्धतिके अनुसार वादकी इच्छासे इसप्रकार बोलने लगा ॥ १७-१८ ॥ "हे राजन्, आप जीवादितत्त्वोंका विचार करनेमें चतुर हैं। जीवादि वस्तुओंसे पर्याय भिन्न हैं या अभिन्न हैं? यदि जीवादिकसे पर्याय भिन्न मानोगे तो जीवादि द्रव्योंको शून्यता-प्राप्ति होगी अर्थात् अग्निसे उष्णता भिन्न होनेपर अग्निका जैसा अभाव होता है, वैसे जीवादिक द्रव्यभी उनके पर्यायोंसे भिन्न होनेपर शून्य हो जावेंगे। और द्रव्य तथा पर्यायोंका—दोनोंका नाश होगा। यदि जीवादिक द्रव्योंसे पर्याय अभिन्न मानोगे तो भी युक्तिसे जीवादिकोंकी सिद्धि न होगी। अभिन्नपक्षमें पर्याय रहेंगे वा पर्यायी रहेंगे। दोनोंका अस्तित्व सिद्ध नहीं होगा। और दोनों एक दूसरेके संबंधी नहीं रहेंगे। जीवके ये मनुष्यादिपर्याय हैं और जीव इनका आधारभूत स्वामी है यह सम्बंध सिद्ध नहीं होगा। यदि द्रव्य एक और पर्याय अनेक मानते हो तो सर्व जगत् एकात्मक हो जायगा। क्योंकि पर्याय अनेक होनेपरभी वस्तुभूत वास्तविक नहीं हैं। ऐसा माननेपर संसारका नाश होगा। फिर मनुष्योंको पुण्यपापोंके फलोंकी प्राप्ति कैसे होगी? बंधनाभाव होनेसे मोक्षका अभाव होगा। अर्थात् अकेला जीव रहनेसे बंध मोक्षादिकोंकी सिद्धि नहीं होगी। सर्वथा पदार्थ नित्य माननेपर जीव नित्य एकस्वरूपकाही मानना पडेगा और उसकी नाना अवस्थायें नहीं होंगी। क्योंकि पूर्वावस्था छोडकर उत्तरावस्था धारण करनेपर नित्यस्वरूप नष्ट होगा। नित्य अपनी पूर्वावस्था नहीं छोडता और उत्तरावस्था धारण नहीं करता। पदार्थको नित्य या अनित्य माननेपर उनकी अर्थक्रिया नष्ट होगी। जलकी अर्थक्रिया तृषाशमन करना, धूपसे भाप बनना, स्नानादि

एकात्मकं जगत्सर्वमित्येवं संसृतेः स्थितिः । पुण्यपापफलावाप्तिः कथं संजायते नृणाम् ॥२२
बन्धनाभाव एव स्यान्मोक्षाभावो भवेन्ननु । नित्ये च क्षणिके चाथ भवेदर्थक्रियाच्युतिः॥२३
तदभावे न सत्त्वं स्यात्सत्त्वाभावे न वस्तुता । कल्पनामात्रमत्रैवं जीवादीनां तु मा कथा॥२४
तदोक्तमिति तच्छ्रुत्वा नृपो वज्रायुधोऽभ्यधात् । शृणु सौगत सुस्वान्ते मतिं कृत्वाथ मद्वचः॥
क्षणिकैकान्तपक्षेऽन्यपक्षे चैतद्धि दूषणम् । सर्वथाभेदवादस्तु निरस्यो भेदवादवत् ॥ २६
स्याद्वादं वदतां पुंसां पुण्यपापास्रवो भवेत् । ततो बन्धस्य संसिद्धिस्तदभावे शिवं भवेत्॥२७
एवं सिद्धः सुनिर्णीतासंभवद्बाधकत्वतः । स्याद्वादः सर्वदा सर्ववस्तूनां विशदात्मकः ॥ २८
एवं पराजितो लेखः संख्याप्य निजवृत्तकम् । संपूज्य वस्त्रदानाद्यैस्तमगाद् द्वितीयां दिवम् ॥
लब्धबोधिरथो क्षेमंकरः क्षेमंकरो भुवि । प्राप्तलौकान्तिकस्तोत्रः प्रव्रज्यायै समुद्यतः ॥ ३०

क्रियाओंमें उपयोगी होना इत्यादि अनेक कार्य होते हैं परंतु वह नित्य एकरूपमें रहनेपर ऐसे अनेक कार्य कैसे होंगे ? क्षणिकपदार्थ एकक्षणके अनंतर नष्ट होनेसे उससे कोईभी कार्य नहीं होगा और लेना देना आदि व्यवहार नष्ट हो जायेंगे। अर्थक्रियाके अभावमें सत्त्वधर्म- अस्तित्वधर्म नहीं रहेगा। उसके विनाशसे पदार्थकी वस्तुताभी उसको छोड देगी। इसप्रकार विचार करनेसे जीवादिक वस्तु कल्पनामात्रही रहती है। हे राजन्, आप जीवादिकोंकी कल्पना छोड दें " ॥ १९-२४ ॥

[नित्यानित्यवाद-खण्डन] विचित्रचूलदेवका सर्व भाषण सुनकर वज्रायुध राजाने इस प्रकार कहा- " हे सौगत अर्थात् हे बुद्धके अनुयायी, अपने मनमें बुद्धि स्थिर कर मेरा वचन सुनो। क्षणिकपक्षमें और अन्यपक्षमें अर्थात् नित्यपक्षमें जो तुमने दूषण दिये हैं वे योग्यही हैं। सर्वथा अभेदवादभी सर्वथा भेदवादके समान खण्डन करने योग्य है। परंतु स्याद्वादसे विवेचन करनेवालोंके मनमें कोई दोष उत्पन्न होनेही नहीं। वस्तु किसी अपेक्षासे भिन्न, किसी अपेक्षासे अभिन्न, किसी अपेक्षासे नित्य, किसी अपेक्षासे अनित्य, किसी अपेक्षासे छोटी व किसी अपेक्षासे बडी होती है, और कथंचित् नित्य अनित्य माननेसे बंधमोक्ष, पाप पुण्य आदिक अवस्थायें सिद्ध होती हैं। बंधके अभावमें मोक्षप्राप्ति होती है। यह स्याद्वाद सुनिर्णीत है, इसमें बाधकोंका संभव हैही नहीं। यह स्याद्वाद सर्व जीवादिक वस्तुओंका विशद निर्णय करनेका निर्दोष उपाय है " ॥ २५-२८ ॥ इस प्रकार भाषण करके विचित्रचूलका राजाने पराजय किया। तब उस देवने अपना सर्व वृत्त कह दिया और वस्त्रदानादिकोंसे राजाका आदर करके वह ऐशान स्वर्गको चला गया ॥ २९ ॥

[वज्रायुधको चक्रवर्तिपद-लाभ] इसके अनंतर-पृथ्वीका क्षेम-कल्याण करनेवाले क्षेमंकर तीर्थंकरको वैराग्य हुआ। लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की। दीक्षाके लिये उद्युक्त

राज्ये वज्रायुधं न्यस्य दिदीक्षे वनसंगतः। कालेन प्राप्तकैवल्यो बभासे तीर्थराड्विभुः ॥३१
अथ वज्रायुधो धीमान्धृतराज्यधुरो ध्रुवम्। मधौ मधुरसल्लापे वनं रन्तुं गतो नृपः ॥ ३२
स्वदेवीभिः स्वयं रन्त्वा सुदर्शनजलाशये। जलक्रीडां प्रकुर्वाणे तस्मिंस्तं शिलयाप्यधात् ॥३३
कश्चिद्विद्याधरो दुष्टो नागपाशेन तं नृपम्। अबध्नात्तत्क्षणं चक्रे शिलां स शतखण्डताम् ॥३४
हस्तेन नागपाशं च विपाशीकृतवांस्तदा। एष पौर्वभवः शत्रुर्विद्युद्दंष्ट्रः पलायितः ॥ ३५
भूपोऽपि सह देवीभिः प्रविश्य स्वपुरं स्थितः। धर्मेण तस्य चोत्पन्नं रत्नं सुनिधिभिः समम् ॥
चक्रवर्तिश्रियं भेजे स भोगव्याप्तमानसः। षट्खण्डमण्डितां पाति पृथ्वीं तस्मिन्नरेश्वरे ॥ ३७
विजयार्धाग्रपाक्श्रेण्यां पत्तने शिवमन्दिरे। मेघवाहनभूपोऽस्य विमलाख्या प्रिया शुभा ॥३८
पुत्री कनकमालेति तयोर्विवाहपूर्वकम्। प्रिया कनकशान्तेश्च सा जाता सुखदायिनी ॥३९
स्तोकसारपुरेशस्य जयसेनाप्रियापतेः। सुता वसन्तसेनाख्या समुद्रसेनभूपतेः ॥ ४०
बभूवास्य प्रिया ताभ्यां सुखी कनकशान्तिवाक्। कदाचिद्वनखेलार्थं कुमारो वनितासखः ॥

हुए क्षेमंकर जिनेश्वरने वज्रायुधको राज्य दिया। और वनमें जाकर दीक्षा धारण की। कुछ कालके अनंतर उत्पन्न हुआ है केवलज्ञान जिनको ऐसे वे विभु क्षेमंकर तीर्थंकर शोभने लगे ॥ ३०-३१ ॥ इधर राज्यकी धुरा धारण करनेवाले धीमान् वज्रायुध राजा वसंतऋतुमें बगीचेमें क्रीडा करनेके लिये गये। चारों तरफ कोकिलपक्षी मधुर शब्द कर रहे थे। अपनी रानियोंके साथ स्वयं क्रीडाकर अनंतर सुदर्शन नामक सरोवरमें जलक्रीडा करते समय कोई दुष्ट विद्याधर वहां आगया और राजाको उसने शिलासे आच्छादित किया। अनंतर नागपाशसे उसको बांध दिया। यह विद्युद्दंष्ट्र विद्याधर राजाका पूर्वजन्मका शत्रु था। राजाने तत्काल शिलाके सौ तुकडे कर दिये तथा हाथसे नागपाशभी निकालकर फेंक दिया। तब वह वहांसे भाग गया। राजाभी अपनी रानियोंके साथ नगरमें प्रवेशकर अपने महलमें आकर आनंदसे रहा। उसको पूर्वपुण्यसे नव--निधियोंके साथ चक्ररत्नका लाभ हुआ ॥ ३२-३६ ॥

[कनकशान्तिको कैवल्यप्राप्ति] दशांगभोगोंमें लुब्धचित्त चक्रवर्ती साम्राज्यलक्ष्मीको प्राप्त होकर षट्खण्डभूषित पृथ्वीका पालन कर रहा था। उस समय विजयार्द्ध पर्वतके दक्षिण श्रेणीमें शिवमंदिर नगरमें मेघवाहन राजा राज्य करता था। उसकी प्रियाका नाम विमला था। वह शुभकार्योंमें तत्पर रहती थी। उन दोनोंको कनकमाला कन्या थी। कनकशांतिके साथ उसका विवाह होगया। वह उसे सुख देनेवाली हुई। स्तोकसार नगरके स्वामी समुद्रसेन नामक राजा थे। उनकी प्रियपत्नी जयसेना थी। इनको वसंतसेना नामक कन्या हुई। कनकशांतिका इसके साथ विवाह हो गया। इन दो पत्नियोंसे कनकशांति सुखी हुआ। किसी समय वनमें क्रीडा करनेके लिये वह अपनी दोनों प्रियाओंके साथ गया। वहां उसने विमलप्रभ नामक मुनिको देखा।

वनं गतः समद्राक्षीन्मुनिं च विमलप्रभम् । नत्वा तद्वदनाच्छ्रुत्वा वृषं वैराग्यमानसः ॥ ४२
दिदीक्षे तत्क्षणे राज्यौ विमलागणिनीं श्रिते । अदीक्षेतां तपोयुक्ते युक्तं तत्कुलयोषिताम् ॥४३
सिद्धाचलस्थितो योगी प्रतिमायोगधारकः । सोढ्वा खगोपसर्गान्स प्राप्तकेवलबोधनः ॥ ४४
चक्री कैवल्यमालोक्य नप्तुर्निर्विण्णमानसः । सहस्रायुधपुत्राय राज्यं दत्त्वा विनिर्गतः ॥ ४५
श्रीक्षेमंकरमर्हन्तं प्राप्य दीक्षां समग्रहीत् । योगी सिद्धगिरौ वर्षं प्रतिमायोगमाश्रितः॥४६
वल्मीकाश्रितपादान्त आकण्ठारूढसल्लतः । अश्वग्रीवसुतौ रत्नकण्ठरत्नायुधौ भवान् ॥ ४७
भ्रान्त्वा भूत्वा सुरौ चातिबलमहाबलौ पुनः । तमभ्येत्योपसर्गं तौ कर्तुकामा विघातनम् ॥४८
रम्भातिलोत्तमाभ्यां तौ तर्जितौ प्रपलायितौ । ते तं गत्वा यतिं नत्वा समभ्यर्च्य दिवं गते॥
स सहस्रायुधः पुत्रे राज्यं शान्तबलिन्यथ । किंचिद्धेतोः समारोप्य दिदीक्षे पिहितास्रवात् ॥
योगावसाने संप्राप्य वैभाराद्रिमस्तकौ । अस्थाष्टां च सुदीक्षेष्टौ वरिष्ठौ क्लिष्टनिग्रहौ ॥ ५१

उनके चरणोंको वंदन कर उनके मुखसे धर्मस्वरूप सुन लिया । उसका मन विरक्त हुआ, तत्काल उसने उस मुनीशके पास दीक्षा ली । कनकशांतिकी दोनों रानियोंनेभी विमला नामक आर्यिकाके पास दीक्षा लेकर तप करना प्रारंभ किया । जो कुलीन स्त्रियाएँ होतीं हैं वे अपने पतिके अनुकूलही आचरण रखतीं हैं । कुलीन स्त्रियोंकी यह प्रवृत्ति सर्वथा प्रशंसनीय है । एक समय कनकशान्ति मुनिने सिद्धाचलपर प्रतिमायोग धारण किया था । उस समय दुष्टोंद्वारा अनेक उपसर्ग किये गये । उनके सहनेसे उनको केवलज्ञान प्राप्त हुआ ॥ ३७-४४ ॥

[वज्रायुधचक्रवर्तीका ऊर्ध्वग्रैवेयकमें जन्म] वज्रायुध चक्रवर्ती अपने पोतेका कैवल्य देखकर संसारसे विरक्त हुआ । उसने सहस्रायुध पुत्रको राज्य दिया और श्रीक्षेमंकर तीर्थंकरके पास जाकर दीक्षा ग्रहण की । सिद्धगिरिपर्वतपर उस योगीने एक वर्षतक प्रतिमायोग धारण किया । तब उनके चरणोंके पास वामी उत्पन्न होगई और पाँवसे कण्ठतक उगम बेलियोंने उनको वेढ लिया था । अश्वग्रीवके पुत्र रत्नकंठ और रत्नायुध अनेक भवोंमें भ्रमण कर अतिबल, महाबल नामके असुर हुए थे; वे पुनः वज्रायुध मुनिके पास आये । प्राणनाशक उपसर्ग करनेकी उनकी इच्छा थी परंतु रंभा और तिलोत्तमा नामक दो देवांगनाओंने उनको धमकाया तब वे भाग गये । वे देवांगनायें मुनीश्वरके सन्निध जाकर उनका वन्दन तथा पूजन करके स्वर्गको चलीं गईं । ॥ ४५-४९ ॥ सहस्रायुध राजानेभी वैराग्यका कुछ कारण देख शांतबलि नामक पुत्रको राज्य सौंप दिया और स्वयं पिहितास्रव मुनिके पास दीक्षा ग्रहण की । फिर सिद्धाचल पर्वतपर

१ ब क्लिष्ट ।

ऊर्ध्वग्रैवेयकाधोविमाने सौमनसे च तौ । एकोनत्रिंशदब्ध्यायुर्धरौ जातौ सुरोत्तमौ ॥ ५२
मृत्वा वज्रायुधः श्रीमान् द्वीपेऽत्र प्राग्विदेहके । देशे च पुष्कलावत्यां पुर्यस्ति पुण्डरीकिणी ॥
पतिर्धनरथस्तस्याः प्रिया तस्य मनोहरा । तयोर्मेघरथः सूनुर्जातो जातमहोत्सवः ॥५४
अहमिन्द्रः परस्तस्य सूनुर्दृढरथाह्वयः । मनोरमाभवो जातो वर्धाते च तौ सुतौ ॥ ५५
जनको ज्येष्ठपुत्रस्य प्रियमित्रामनोरमे । वल्लभे विदधेऽन्यस्य सुमतिं चित्तवल्लभाम् ॥५६
आत्मजः प्रियमित्रायां समभून्नन्दिवर्धनः । वरसेनः सुमत्यां च सूनुर्दृढरथस्य च ॥ ५७
एवं स्वपुत्रपौत्राद्यैर्युतो घनरथो नृपः । रेजे मेरुरिवात्यर्थं ताराचन्द्रदिवाकरैः ॥ ५८
देवो घनरथो भुक्त्वा राज्यं मेघरथे सुते । दिदीक्षे प्राप्तकल्याणः स्वयमेव स्वयंगुरुः ॥ ५९
उच्छेद्य घातिकर्माणि स प्राप केवलोद्गमम् । अथ मेघरथो देवरमणोद्यानमाविशत् ॥ ६०
स्वदेवीभिर्विहृत्यास्थाच्चन्द्रकान्तशिलातले । खेचरः कश्चन व्योम्नि गच्छंस्तस्योपरि स्थितः॥६१

उसनेभी वर्षप्रतिमा-योग धारण किया । जिनदीक्षा जिनको प्रिय है, इंद्रियोंको क्लेश देकर निग्रह करनेवाले ऐसे उन दो श्रेष्ठ मुनीश्वरोंने योग समाप्त होनेपर वैभार पर्वतपर आकर प्राणत्याग किया । मरणोत्तर ऊर्ध्वग्रैवेयकके सौमनस नामक अधोविमानमें उनतीस सागर आयुको धारण करनेवाले अहमिन्द्रदेव हुए । ॥ ५० -५२ ॥

[मेघरथ और दृढरथका चरित्र] इस जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रके पुष्कलावती देशमें पुण्डरीकिणी नगरीका अधिपति घनरथ राजा था । उसकी प्रिय रानी मनोहरा थी। वज्रायुध अहमिन्द्र सौमनस विमानसे चयकर उन दोनोंको मेघरथ नामक पुत्र हुआ. तब राजा घनरथने पुत्रजन्मका बडा उत्सव किया । सहस्रायुध अहमिन्द्रभी सौमनस विमानसे चयकर घनरथ राजाकी दूसरी पत्नी मनोरमाको दृढरथ नामका पुत्र हुआ । वे दोनों पुत्र बढने लगे ॥ ५३--५५ ॥ घनरथ राजाने ज्येष्ठ पुत्रका-मेघरथका विवाह प्रियमित्रा और मनोरमा इन दो राजकन्याओंके साथ किया । उन दोनोंपर मेघरथ राजाका अतिशय प्रेम था । दृढरथ पुत्रका विवाह सुमतिके साथ हुआ, वह दृढरथके चित्तको अतिशय प्रिय थी । मेघरथको प्रियमित्रासे नंदिवर्धन नामक पुत्र हुआ और दृढरथको सुमतिसे वरसेन नामक पुत्र हुआ । इस प्रकार पुत्रपौत्रादिकोंसे घनरथ राजा तारा, चंद्र और दिवाकर सूर्यसे युक्त मेरुके समान अतिशय शोभने लगा ॥ ५६--५८ ॥ घनरथ राजाने मेघरथ पुत्रपर राज्यस्थापन किया । वे दीक्षाकल्याणको प्राप्त हुए । स्वयं दीक्षा लेकर स्वयं गुरु होगये । दीक्षाके अनंतर उन्होंने घातिकर्मोंका नाश किया और केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ॥ ५९- ६० ॥

[विद्याधरीकी पतिभिक्षा] किसी समय मेघरथ राजा देवरमण नामक उद्यानमें गया । वहां अपनी देवियोंके साथ विहार कर चन्द्रकान्त शिलापर बैठ गया । उस समय आकाशमें कोई

निरुद्धव्योमयानः सन्पश्यन्भूपं शिलास्थितम् । तमुत्थापयितुं रोषात्तदधः संप्रविष्टवान् ॥
नृपोऽङ्गुष्ठाग्रदेशेन ज्ञात्वा तं तां न्यपीडयत् । खगः शिलाभराक्रान्तस्तत्सोढुमक्षमोऽरुदत्॥
तदा तत्खेचरी श्रुत्वा क्रन्दनं खपतेः परम् । श्रीमेघरथमाश्रित्य भर्तृभिक्षामयाचत ॥ ६४
उत्थापितक्रमः पृष्टः कान्तया प्रियमित्रया । किमेतदिति संप्राह विजयार्धालके पुरे ॥ ६५
विद्युद्दंष्ट्रपतेर्भार्यानिलवेगा सुतस्तयोः । नृपः सिंहरथो देवं वन्दित्वामितवाहनम् ॥ ६६
अटन्ममोपरि प्रेक्ष्य विमानं गतरंहसम् । दिशो विलोक्य मां प्रेक्ष्य स्वदर्पात्कोपकम्पितः ॥
अस्माञ्शिलातलेनामा प्रोत्थापयितुमुद्यतः । पीडितोऽयं मदङ्गुष्ठेनैवाप्तास्य मनोरमा ॥६८
इत्यन्योन्यं स संतोष्य प्रेषितस्तेन खेचरः । कदाचित्स नृपो दत्त्वा दानं दमवरेशिने ॥ ६९
चारणाय समापासौ पञ्चाश्चर्यं चरंस्तपः । आष्टाह्निकविधिं भक्त्या विधाय प्रोषधं श्रितः॥७०
प्रतिमायोगतो ध्यायन्रात्रौ ध्यानं स्थितोऽद्रिवत् । ईशानेन्द्रः परिज्ञायैतन्मरुत्सदसि स्थितः॥
तवाद्य परमं धैर्यं नमस्तुभ्यं चिदात्मने । आत्मध्यानरतायैवं संसारासातभीमुषे ॥ ७२

विद्याधर जा रहा था उसका विमान राजा मेघरथके ऊपरसे गुजर रहा था कि उसकी गति रुक गई । विद्याधरने शिलापर बैठे हुये राजाको देखा । उसको शिलासहित उठानेके लिये वह क्रोधसे शिलाके नीचे घुस गया । राजाने उसका प्रवेश जानकर अपने अंगूठेके अग्रभागसे शिला दबायी । शिलाके बोझसे वह विद्याधर दब गया । उसका भार असह्य होनेसे वह रोने लगा । तब उसकी पत्नी विद्याधरी अपने पतिका आक्रन्दन सुनकर श्रीमेघरथके पास आगई और उसे पतिभिक्षाकी याचना करने लगी ॥ ६१ ६४ ॥ राजाने अपना चरण ऊपर उठाया तब प्रिय-मित्रा रानीने पूछा कि यह क्या बात है ? तब उसने इस प्रकार कहा--- " विजयार्द्ध पर्वतकी अलका नगरीमें विद्युद्दंष्ट्र राजा रहता था, उसकी भार्याका नाम अनिलवेगा था, उन दोनोंको सिंहरथ नामक पुत्र हुआ । वह अमितवाहन मुनिको वंदन करके आते समय मेरे ऊपर उसका विमान आकर रुक गया । तब वह विद्याधर चारों ओर देखने लगा । तब मैं उसके दृष्टिपथमें आया तब दर्पसे कोपयुक्त होकर हम सबको शिलातलके साथ उठाने के लिये उद्युक्त हुआ । मैंने मेरे अंगुठेसे उसको दबाया । तब पतिभिक्षा मांगने के लिये उसकी पत्नी मनोरमा यहां आई है ।" इस प्रकार प्रियमित्राको वृत्तान्त कहकर राजाने उस विद्याधरको सन्तुष्ट कर भेज दिया और स्वयं भी अपनी राजधानीको अपनी रानियोंसहित लौट गया ॥ ६५--६८ ॥ किसी समय चारणमुनीश दमवरको दान देनेसे राजाको पंचाश्चर्य-वृष्टिका लाभ हुआ । राजा तपकाभी अभ्यास करता था । किसी समय अष्टाह्निक-व्रतका विधिपूर्वक आचरण कर राजाने प्रोषधोपवास धारण किया और रात्रौ प्रतिमायोगको स्वीकार आत्मचिन्तनमें मेरु-पर्वतके समान निश्चल रहा ॥ ६९--७१ ॥

[देवांगनाकी आत्मध्यानसे च्युत करने में असफलता] राजा मेघरथकी आत्मध्यानमें

इति स्तुतिरवं श्रुत्वा सुराः शतमुखं जगुः। कः स्तुतो देव इत्युक्ते प्रोवाच स सुरान्प्रति॥
नृपो मेघरथः शुद्धदृष्टिः प्रतिमया स्थितः। पूज्यः पूज्यगुणो ज्ञानी मयास्तीति नमस्कृतः॥
अतिरूपासुरूपाख्ये तदुक्तं सोढुमक्षमे। आगते विभ्रमैर्हावैर्विलासैर्गीतनर्तनैः॥ ७५
भावैः प्रजल्पनैश्चान्यैर्न तं चालयितुं क्षमा। विद्युल्लतेव देवाद्रिं यथा निश्चलमुत्तमम्॥७६
ऐशानोक्तं दृढं मत्वा नत्वा ते स्थानमीयतुः। एकदैशानकल्पेशः सदोमध्ये व्यवर्णयत्॥७७
रूपं च प्रियमित्रायाः समाकर्ण्य समागते। रतिषेणारतीदेव्यौ साक्षात्तद्रूपमीक्षितुम्॥७८
मज्जनावसरे ते तां गन्धतैलाक्तदेहिकाम्। निर्भूषणां विवसनां निरूप्यावोचतां वचः॥ ७९

स्थिरता अवधिज्ञानसे जानकर ईशानेन्द्रने उसकी इस प्रकार स्तुति की " हे राजन् आज आपका उत्कृष्ट धैर्य मैने जान लिया। शुद्ध–चैतन्यमय आपको मैं नमस्कार करता हूं। संसारके दुःखकी भीति नष्ट करनेवाले, आत्मध्यानमें तत्पर रहनेवाले आपको मेरा प्रणाम है।" इस प्रकार मुखसे स्तुति करनेवाले इंद्रको देखकर हे देव, आप किसकी स्तुति कर रहे हैं? इस तरह देवोंके पूछनेपर इन्द्रने उनको कहा। " राजा मेघरथ शुद्ध सम्यग्दृष्टि है। वह इस समय प्रतिमायोग धारण कर आत्मध्यानमें स्थिर हुआ है। वह पूज्य है और पूज्य–गुणोंका धारक तथा ज्ञानी है। इस लिये मैंने उसकी स्तुति करके उसे नमस्कार किया है" ॥ ७२–७४ ॥ अतिरूपा और सुरूपा नामक दो देवांगनाओंको इन्द्रने राजाकी की हुई स्तुति सहन नहीं हुई। इस लिये उसकी परीक्षा करने के लिये वे स्वर्गसे राजाके पास आगई। हाव, विलास, गीत, नृत्य, भाव और मधुर बोलना आदि उपायोंसे तथा अन्य उपायोंसे भी वे उसे ध्यानच्युत करनेमें असमर्थ हुई। जैसे बिजली निश्चल और उत्तम मेरूपर्वतको डगमगानेमें असमर्थ होती है, वैसे वे दोनों देवियां असमर्थ हुईं। ऐशानेन्द्रने जो राजाका वर्णन किया था वह सत्य है ऐसा निश्चय कर वे राजाको वंदन करके स्वस्थानके प्रति चली गईं॥ ७५–७७ ॥

[प्रियमित्राको राजाके आश्वासनसे संतोष] किसी समय ऐशानेन्द्रने अपनी सभामें प्रियमित्राके रूपका वर्णन किया। वह रतिषेणा और रतिदेवीने सुनकर रानीका साक्षात् रूप देखनेके लिये अन्तःपुरमें वे आगई। रानीकी उस समय स्नानकी तयारी हो रही थी। उसने अपने सर्वांगको तैल लगाया था। वस्त्रालंकार रहित रानीको देखकर वे देवी आपसमें कहने लगी ' स्नानके समयमेंभी रानी अपूर्व सुंदर दीखती है, शृंगारसे युक्त होनेपर तो उसके रूपकी महिमा अवर्णनीयही होगी।' उन देवताओंने दो कन्याओंका रूप धारण किया और चतुर ऐसी वे कन्यायें रानीके साथ चतुरतासे भाषण करने लगी। ' हे देवि, हम दो कन्यायें आपके रूपको देखनेके लिये आयी हैं।' रानीने स्वतःको रुचनेवाले अलंकार धारण किये थे। गंध और पुष्पोंसे वह सुशोभित हुई थी। उस समय कन्याओंने अपना मस्तक हिलाया तब रानीने उनको

भृङ्गारसहितायास्तु कीदृग्रूपं भविष्यति । ततः कन्याकृतिं कृत्वा चतुरे चतुरं वचः ॥ ८०
अवोचतां तके देवि त्वद्रूपं द्रष्टुमागते । सा संकल्पितकल्पाढ्या गन्धपुष्पोपशोभिता॥८१
ताभ्यां वीक्ष्य निजं शीर्षं धूनितं सैक्ष्य तज्जगौ । किमेतदिति ते देव्यावूचतुश्चतुरे शृणु ॥
यद्रूपं वर्णितं तथ्यमीशानेशेन तत्तथा । यत्स्नानसमये दृष्टं तदिदानीं न विद्यते ॥ ८३
इत्युदीर्य निगीर्य स्वं ते देव्यौ दिवमीयतुः । क्षणक्षयात्स्वरूपस्य विरक्ताश्वासिता प्रिया ॥
सहदीक्षेति वाक्येन नृपेण विरतात्मना । अथैकदा समुद्यानं मनोहरमगान्नृपः ॥ ८५
स्वगुरुं जिनमानम्य स्थितं सिंहासने स्थितः । अप्राक्षीच्छ्रेयसे श्रेयः संस्कृतं क्रियया कृती ॥
अवादीद्देवदेवेशो राजदेव विदां वर । श्रावकाध्ययनप्रोक्तामष्टोत्तरशतक्रियाम् ॥८७
त्रिपंचाशत् क्रियास्तत्र गर्भान्वयसमाह्वयाः । गर्भाधानादिनिर्वाणपर्यन्तविधिवेदिकाः॥८८
दीक्षान्वयक्रियाश्चाष्टचत्वारिंशदुदीरिताः । सुदीक्षादिनिवृत्त्यन्तनिर्वाणपदसाधिकाः ॥ ८९
कर्त्रन्वयक्रियाः सप्त सत्सिद्धान्तवचोवहाः । सुदृक्स्वरूपमेतासां विधानं फलमप्यदः ॥ ९०

कहा कि आप अपना मस्तक क्यों हिलाती हैं ? । वे चतुर देवतायें बोली–" रानी सुन, ईशानेन्द्रने आपके रूपका जो सत्य वर्णन किया था वह वैसा नहीं रहा । क्योंकि जो रूप हमने आपका स्नान करते समयमें देखा था वह अब नहीं दीखता है । " ऐसा बोलकर और अपने नामादि कहकर वे स्वर्गको गई । अपना स्वरूप क्षणक्षयी है ऐसा जानकर रानी विरक्त हो गई । " हम दोनों एक साथ दीक्षा लेकर हे देवि, मनुष्य जन्म सफल करेंगे जिससे अपनेको निश्चल स्वरूप प्राप्त होगा " ऐसा बोलकर विरक्त राजाने रानीका समाधान किया ॥ ७८-८४ ॥

[घनरथकेवली का उपदेश] किसी समय मेघरथ राजा मनोहर नामक वनमें गया वहां सिंहासनपर विराजे हुए अपने केवलज्ञानी घनरथ पिताको देखकर वन्दना करके बैठ गया। मोक्षकी प्राप्तिकी क्रियाओंसे संस्कृत हुए परमगुरु घनरथको विद्वान राजाने पूछा कि मोक्षके लिये श्रेष्ठ हेतु-कारण कौनसा आचरण है । तब देवेन्द्र के भी पति-स्वामी ऐसे घनरथ जिन इस प्रकार निरूपण करने लगे-" हे राजाओंके देव, विद्वच्छ्रेष्ठ, श्रावकाध्यायनमें १०८ क्रियायें बताई हैं । उनमेंसे गर्भान्वय क्रियायें ५३ हैं । जो गर्भाधानसे लेकर मोक्षपर्यन्तकी विधि बताती हैं । दीक्षान्वयक्रियायें ४८ अडतालीस हैं । जिनमें मिथ्यादृष्टि त्रिवर्णको जैनदीक्षा देनेकी विधिसे मोक्ष तक की क्रियाओंकी विधि बताई गई है । तथा सात कर्त्रन्वयक्रियायें कही हैं जिनसे सज्जाति, सद्गृहस्थत्व, मुनिपना, सुरेन्द्रपदवी, चक्रवर्तित्व, अर्हत्पदप्राप्ति और सिद्धपद ये सात परम स्थान प्राप्त होते हैं । ये सब १०८ क्रियायें समीचीन सिद्धान्तवचनको धारण करनेवाली हैं अर्थात् जिनागममें कही हैं । घनरथ जिनपतिसे सम्यग्दर्शनका स्वरूप, इन क्रियाओंकी विधि और उनसे फलप्राप्ति तथा श्रावकाचारका सद्धर्म सुनकर प्रभुको मेघरथ राजाने वन्दन किया।

श्रुत्वा भ्रातुस्य सद्धर्मं घनं घनरथोदितम् । नत्वा मेघरथोऽवोचद्विरक्तोऽनुजमुन्नतम् ॥ ९१
गृहाण राज्यमेतद्धि स्थास्यामि तपसे वनम् । इत्युक्ते सोऽवदद्वाक्यं तित्यक्षुः क्षिप्रतः क्षितिम् ॥
भो राज्ये यस्त्वया दृष्टो दोषोऽदर्शि मयापि सः । गृहीत्वा त्यज्यते यच्च प्राकृतस्याग्रहणं वरम् ॥
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम् । विमुखे सुमुखे तस्मिन्निति राजा स्वसूनवे ॥९४
मेघसेनाय राज्यं स दत्त्वा सप्तसहस्रकैः । भूपैश्च सानुजो जज्ञे संयमी संयमोद्यतः ॥९५
एकादशाङ्गविद्धीरो भावनाः षोडशात्मिकाः । भावयन्नर्थकृत्तीर्थकृत्त्वं कर्म बबन्ध सः ॥ ९६
दृढो दृढरथेनामा नभस्तिलकभूभृति । अत्याक्षीन्मासमात्रं स शरीराहारकिल्बिषम् ॥ ९७
तौ प्राणान्ते गतप्राणौ प्रपेदातेऽहमिन्द्रताम् । सर्वार्थसिद्धिसद्धाम्नि शुक्ललेश्यौ स्फुरत्प्रभौ ॥९८
त्रयस्त्रिंशत्समुद्रायुर्जीवनौ श्वासमाश्रितौ । सार्धषोडशभिर्मासैः संगतामृतवल्भनौ ॥ ९९

अनंतर विरक्त होकर अपने छोटे भाईसे कहा, कि ' हे बंधु तुम राज्यका स्वीकार करो मैं तप, करनेके लिये वनमें जाता हूं । अपने बडे भाईका वचन सुनकर पृथ्वीका त्याग करनेकी इच्छा रखनेवाला दृढरथ कहने लगा, हे देव, आपने जो राज्यमें दोष देखा है वह मुझेभी मालूम है । ग्रहण करके जो चीज छोड दी जाती है, वह प्रथमही छोड देना अच्छा है । क्यों कि कीचड लगाकर धोने बैठनेकी अपेक्षासे कीचड को न छूनाही अच्छा है । इस प्रकार दृढरथका भाषण सुनकर यह सुमुख सुंदर मुखवाला मेरा छोटा भाई राज्य विमुख है ऐसा मेघरथने जाना और मेघसेन नामक अपने पुत्रको राज्य दिया । और संयम धारण करनेमें उद्युक्त वह राजा सात हजार राजाओं और अपने छोटे भाईके साथ संयमी होगया ॥ ८५-९५ ॥

[मेघरथमुनिको तीर्थंकर कर्म-बन्ध] धीर मेघरथ मुनि ग्यारह अंगोंके धारक हुए । दर्शनविशुद्ध्यादि सोलह भावनाओंका चिन्तन करनेवाले उन मुनीश्वरको मोक्षपुरुषार्थको देनेवाला तीर्थंकर कर्मका बंध हुआ ॥ ९६ ॥ तपश्चरणमें दृढ ऐसे दृढरथ मुनिके साथ नभस्तिलक पर्वतपर मेघरथ मुनीश्वरने एक मासपर्यन्त शरीर और आहारका मोह बिलकुल छोड दिया । आयुके अवसानमें जिनके प्राण नष्ट हुए हैं ऐसे वे दोनों मुनीश सर्वार्थसिद्धिके सुंदर विमानमें शुक्ल-लेश्याके धारक, चमकनेवाली कान्तिके धारक अहमिन्द्र हुए । उनका जीवन तेहतीस सागर परि-मित आयुवाला था । साडे सोलह मास व्यतीत होनेपर वे श्वास लेते थे । तेहतीस हजार वर्ष समाप्त होनेपर मनमें प्राप्त हुए अमृतका भक्षण करते थे । (अर्थात् आहार करनेकी इच्छा होनेपर उनके कंठमें अमृतके समान शुभ सूक्ष्म स्कंधोंका आगमन होकर उनकी आहारेच्छा तृप्त होती थी ।) उनको स्पर्शादिक मैथुनसे रहित सुख था अर्थात् कामसंभव वेदनासे रहित अत्यंत हर्षरूप सुख उनको सतत प्राप्त होता था । लोकनाडीमें रहे हुए योग्य द्रव्यको अपनी अव-धिज्ञानरूप आँखोंसे वे देखते थे । लोकनाडी तक उत्तम विक्रिया करनेका उनमें सामर्थ्य था । वे

त्रयस्त्रिंशत्सहस्राब्दैर्निःप्रवीचारसत्सुखौ। लोकनाडीस्थितप्रेक्ष्यद्योग्यद्रव्यावधीक्षणौ ॥१००
तावत्सद्विक्रियौ तौ द्वौ रेजतुर्हस्तमुच्छ्रितौ। अनन्तरभवप्राप्यमोक्षलक्ष्मीसमागमौ ॥ १०१
अथ जम्बूमति द्वीपे भरते कुरुजाङ्गले। हस्तिनागपुरे राजा विश्वसेनो विदांवरः ॥ १०२
ऐरावती प्रिया तस्य तरत्तारा सुलोचना। श्रीह्रीधृत्यादिदेवीड्या दिव्यलावण्यधारिणी॥१०३
शयाना शयने रात्रौ स्वप्नानैक्षिष्ट षोडश। विशन्तं वदने तुङ्गं दन्तिनं साप्यजागरीत्॥१०४
तदा मेघरथो देवो दिवश्च्युत्वा तमिस्रके। नभस्ये सप्तमीघस्रे तत्कुक्षिक्षेत्रमासदत् ॥ १०५
उन्निद्रा सा समुन्मुद्रा नेपथ्यार्पितविग्रहा। दत्तदानकरा भासा कल्पवल्लीव जङ्गमा ॥१०६
नत्वा नाथं स्वनाथात्तमाना मान्या सुमानिनी। पृष्ट्वा मत्वा सुस्वप्नानां फलानि मुमुदे मुहुः॥
तदा चतुर्विधा बुद्ध्वा नाकेशा नाकिभिः समं। स्वर्गावतारकल्याणं संप्राप्य समवर्तयन् ॥
वर्धमाने तदा भ्रूणे वर्धमानमहोदया। दयावती दयांचक्रे दानं सा दीप्तदेहिका ॥ १०९

एक हाथप्रमाणशरीरके धारक थे। आगेके एक जन्महीमें मोक्षलक्ष्मीका समागम जिनको प्राप्त होनेवाला है ऐसे ये अहमिन्द्रदेव सर्वार्थसिद्धिमें सुखसे रहने लगे ॥ ९७–१०१ ॥

[शान्तितीर्थकरका गर्भकल्याण] इस जम्बूद्वीपमें भरतके कुरुजांगल देशमें हस्तिनापुर नगरके स्वामी विद्वच्छ्रेष्ठ श्रीविश्वसेननामक राजा थे। उनकी प्रियपत्नीका नाम ऐरावती था। उसके सुनेत्र चंचल और तेजस्वी थे, और दिव्यलावण्य श्री ह्री धृति आदिक देवीओंके द्वारा प्रशंसित था ॥ १०२–१०३ ॥ शय्यापर सोई हुई ऐरादेवीने रात्रौ सोलह स्वप्न देखे और उत्तुंग हाथीको मुखमें प्रवेश करता हुआ देखकर वह जागृत हुई ॥ १०४ ॥ उस समय मेघरथ अहमिन्द्र सर्वार्थसिद्धिसे च्युत होकर भाद्रपद कृष्णपक्ष सप्तमीके दिनमें ऐरावती रानीके उदरमें प्राप्त हुआ अर्थात् गर्भमें आया। निद्रारहित, खिलगई है शरीरकी कान्ति जिसकी, अथवा जिसकी अंगुलीमें उत्तम कान्तियुक्त मुद्रिका है, वस्त्रालंकार जिसने शरीरपर धारण किये हैं, जिसने हाथोंसे याचकोंको दान दिया है, ऐसी वह रानी अपनी कान्तिसे मानो चलनेवाली कल्पलताके समान दीखती थी ॥ १०५–१०६ ॥ विश्वसेन महाराजने मान्य रानी ऐरावतीका योग्य आदर किया। उसने पतिको वंदन कर और उससे स्वप्नोंका फल सुनकर बार बार आनंद माना। उस समय चार प्रकारके देवेन्द्र अपने अपने देवोंको साथ लेकर हस्तिनापुरमें आये और उन्होंने श्रीशान्तिनाथका स्वर्गावतार-कल्याणका विधि किया ॥ १०७–१०८ ॥

[शान्तिप्रभुका जन्माभिषेक] गर्भस्थ बालक जैसे जैसे बढने लगा वैसे वैसे माताका वैभव भी बढने लगा। दीप्त शरीरवाली माताने दान देकर दीनोंपर दया की। पंद्रह महिनेतक कुबेरने रत्नोंकी वृष्टि करके माताका पूजन किया। ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीके दिन ऐरावती देवीने उत्तम पुत्रको जन्म दिया ॥ १०९–११० ॥ पुत्रके जन्मसे देवोंके विमानोंमें जन्मसूचक

मासान्पञ्चदशायातमणिवृष्ट्याप्तपूजना । ज्येष्ठे कृष्णचतुर्दश्यां सासूत सुतमुत्तमम् ॥११०
तज्जन्मतो महाशंखभेरीभारातिघण्टिकाः । स्वरा जजृम्भिरे देवसद्मसु जन्मसूचकाः ॥ १११
प्रीत्या प्रेत्याप्रमाणास्ते सुपर्वाणाः सजिष्णुकाः। मन्दिरात्सुन्दरं देवं गृहीत्वा मन्दरं ययुः॥
वृषा वृषार्थी संस्थाप्य जिनं तत्र महाघटैः । संस्नाप्य स्तुतिभिः स्तुत्वा गेहे मात्रे समार्पयत्॥
लक्षवर्षसमायुष्कः शान्तीशो यौवनोन्नतः । चत्वारिंशत्सुचापोच्चाचलाङ्गो वरलक्षणः ॥११४
अथो दृढरथस्तस्माद्यशस्वत्यां च्युतोऽजनि । विश्वसेनात्सुतश्चक्रायुधो भूरिनरैः स्तुतः॥११५
कुलशीलकलारूपवयःसौभाग्यभूषिताः । तत्पिता कन्यकास्तेन यौवने समयोजयत् ॥ ११६
पितृदत्तमहाराज्यो जिनो रेजे जितार्कभः। कालेन जातश्चक्रेशो जितषट्खण्डभूमिपः ॥ ११७
शस्त्रगेहेऽभवंश्चक्रच्छत्रदण्डासयः पराः । तस्य लक्ष्मीगृहे चर्म चूडारत्नं च काकिणी ॥११८

महाशंख, भेरी, सिंहगर्जना और घंटाके ध्वनि अतिशय वृद्धिंगत हुए । इन्द्रोंके साथ अपरिमितदेव अतिशय स्नेहसे हस्तिनापुरमें आये और राजमंदिरसे सुंदर बालकको ग्रहण कर वे मंदरपर्वतपर जा पहुंचे ॥ १११-११२ ॥ पुण्योपार्जनकी इच्छा धारण करनेवाले इन्द्रने मेरुपर्वतपर सिंहासन-पर जिनबालकको बैठाया और महाकलशोंसे उसने उसका अभिषेक किया । तदनंतर स्तुतियोंसे स्तवन कर बालकको घरमें माताके स्वाधीन किया ॥ ११३ ॥

[शान्तिप्रभुको चक्रिपदप्राप्ति] प्रभुशान्तीश्वरकी आयु एक लाख वर्षकी थी । वे तरुण हुए । उनका शरीर चालीस धनुष्य ऊंचा और दृढ था । वह एक हजार आठ लक्षणोंसे युक्त था । दृढरथ अहमिन्द्र सर्वार्थसिद्धिसे च्युत होकर रानी यशस्वतीमें विश्वसेन राजाको अनेक पुरुषोंसे स्तुत्य चक्रायुध नामका पुत्र हुआ ॥ ११४--११५ ॥ विश्वसेन महाराजने कुल, शील, कला, रूप, वय और सौभाग्यसे भूषित ऐसी अनेक राजकन्यायें यौवनावस्थामें प्रवेश किये हुए प्रभु शान्तिनाथके साथ विवाहसे संयोजित कीं । सूर्यकी कान्तिको अपनी देहकान्तिसे जीतने-वाले प्रभु अपने पितासे महान् राज्य पाकर कुल, शील, कला, रूपसे शोभने लगे । कुछ कालके अनंतर वे चक्रवर्ती हुए । षट्खण्डभूमिके राजाओंको उन्होंने जीतकर स्ववश किया । प्रभुके शस्त्रगृहमें चक्र, छत्र, दण्ड, और खड्ग ये उत्तम रत्न उत्पन्न हुए । तथा लक्ष्मीगृहमें चर्मरत्न, चूडामणिरत्न, और काकिणीरत्न उत्पन्न हुए । हस्तिनापुरमें पुरोहितरत्न, गृहपतिरत्न, सेनापति-रत्न और स्थपतिरत्न ये चार रत्न उत्पन्न हुए । विजयार्द्धपर सुंदर कन्यारत्न, गजरत्न और अश्वरत्न उत्पन्न हुए ॥ ११६--११८ ॥

[शान्तिप्रभुका दीक्षाकल्याणविधि] इस प्रकार राज्य करनेवाले, यौवनदर्पसे अभिमानयुक्त प्रभु दर्पणमें जब देखने लगे तब उनको अपने दो प्रतिबिंब दीखने लगे । उनको देखकर संसारसुखसे जिनकी बुद्धि मुक्त हुई है ऐसे वे प्रभु विरक्त होगये ॥ ११९ ॥ वैराग्यके

पुरोधोगृहसेनाश्वपतयो हास्तिने पुरे । विजयार्धे कनत्कन्यागजाश्वा बोभुवत्यपि ॥ ११९
एवं राज्यं प्रकुर्वाणो दर्पणे दर्पदर्पितः । छायाद्वयं विलोक्यागाद्विरक्तिं रतिमुक्तधीः ॥१२०
प्राप्तलौकान्तिकस्तोत्रः कृतदेवाभिषेचनः । नानालङ्कारसंभामी शिबिकासमवस्थितः ॥ १२१
सहस्राम्रवनावासी शोभनीयशिलास्थितः । पञ्चमुष्टिभिरुल्लुञ्च्य कचाञ्ज्येष्ठस्य तामसे॥१२२
चतुर्थ्यामपराह्णेऽभून्मुनिः षष्ठोपवासभृत् । चक्रायुधादिसद्राजसहस्रैः सह संयमी ॥ १२३
मनःपर्ययबोधेन पारणे मन्दिरं परम् । प्रविष्टाय सुमित्रेण तस्मै ददेऽन्नमुत्तमम् ॥ १२४
कदाचित्पूर्वसंप्रोक्तवनमासाद्य भ्रातृभिः । षष्ठोपवासभृत्तस्थौ प्राङ्मुखो ध्यानसन्मुखः॥१२५
षोडशाब्दसुछाद्मस्थ्यमुक्तः केवलमाप सः । पौषेऽथ धवले पक्षे दशम्यां च दिनात्यये ॥
चक्रायुधादयस्तस्य षट्त्रिंशद्गणपा बभुः । द्विषड्भिश्च सभासभ्यैः समवसृतिसंस्थितैः ॥१२७
विजहार महीं रम्यां स सुरासुरसंस्तुतः । मासमात्रावशेषायुः सम्मेदाद्रिं समाश्रितः॥ १२८
ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां सिद्धिस्थानमगाज्जिनः। चक्रायुधादयो धीरा हत्वा कर्मकदम्बकम्॥१२९
ध्यायन्तस्तद्गुणांस्तूर्णं जग्मुः स्वं स्थानमुत्तमाः । नराश्च तद्गुणासक्ता आसेदुः स्वस्वपत्तनम्॥

अनंतरही लौकान्तिक देवोंने आकर प्रभुकी स्तुति की और वे अपने स्थानको चले गये । तदनंतर सर्व देव आगये । उन्होंने प्रभुको क्षीरसागरके जलसे अभिषिक्त किया । अनेक अलंकारोंसे प्रभु भूषित होकर शिबिकापर आरूढ हुए । सहस्राम्रवनमें जाकर वहाँ सुंदर शिलापर वे बैठ गये । ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्थीके दिन दोपहरमें पंचमुष्टियोंसे प्रभुने केशलोंच किया । दो उपवासकी प्रतिज्ञा धारण की, चक्रायुधादि हजार राजाओंके साथ वे संयमी हुए । परिणामविशुद्धिसे उनको मनः-पर्यय ज्ञान हुआ । पारणाके दिन सुमित्रराजाके मंदिरमें प्रभु आहारके लिये आये तब उसने उनको उत्तम अन्नदान दिया ॥ १२०–१२४ ॥ किसी समय उसी सहस्राम्रवनमें जाकर अपने भाईयोंके साथ दो उपवास धारण कर तथा पूर्वदिशाको मुँहकर प्रभु आत्मध्यानमें तत्पर होगये ॥ १२५ ॥

[शान्तिप्रभुको केवलज्ञान और मुक्तिलाभ] सोलह वर्षोंका छद्मस्थपना समाप्त होनेपर पौषशुक्ल दशमीके दिन सूर्यास्तके अनंतर अर्थात् रात्रीके प्रारंभमें प्रभु केवलज्ञानी हुए ॥ १२६ ॥ प्रभुके चक्रायुधादिक छत्तीस गणधर थे । समवसरणमें रहे हुए बारह गणोंके साथ सुर और असुरोंके द्वारा स्तुति किये गये प्रभु रमणीय पृथ्वीतलमें विहार करने लगे । प्रभुकी आयु जब मासमात्रकी रही तब वे सम्मेदपर्वतपर आये । और ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशीके दिन वे सिद्धिस्थानमें विराजमान हुए अर्थात् सर्व कर्मरहित अनंत सुखादिगुणपूर्ण हुए । चक्रायुधादिक धीर मुनि कर्मोंका समूह नष्ट कर प्रभुके साथ कर्ममुक्त होकर सिद्ध होगये ॥ १२७-१२९ ॥ प्रभुके सद्गुणोंका ध्यान करनेवाले उत्तम इंद्रादिक देव स्वर्गको शीघ्र गये तथा उनके गुणोंमें आसक्त मनुष्य भी अपने अपने नगरको गये ॥ १३० ॥ इस प्रकार सौ इन्द्रोंसे सेवनीय, चक्रवर्तियोंके समूहसे पूज्य चरणवाले, गुणोंके

इति जिनवरवंशे कौरवेऽभाज्जिनेश सुरपतिशतसेव्यश्चक्रिचक्रार्च्यपादः ।
गुणगणसगुणार्च्यो ध्वस्तकामादिशत्रुः वरविजयसमाटच्चक्ररत्नः सुतीर्थेट् ॥ १३१

यद्रूपेण मनोहरेण जगतां नाथाः सुमोहं गताः
कीर्तिस्फूर्तिसुमूर्तितूर्तिसदनं यो नीतिविद्यालयः ।
शान्तीशो वरनाथचक्रपदवीं प्राप्तो मनोभूपद-
स्तीर्थेशो वरसार्थतीर्थकरणे दक्षः सुपक्षोऽवतात् ॥ १३२

शान्तिः शान्तिकरः सुदृष्टिसदनं शान्तिं श्रिताः शान्तिना
सन्तः सारशिवं शिवार्थजनकं तस्मै नमः शान्तये ।
शान्तेः सातशतं सुसुप्तिहरणं शान्तेः शुभाः सद्गुणाः
शान्तौ स्वान्तमिदं सृजामि सततं शान्ते सुखं मे सृज ॥ १३३

इति भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपालसाहाय्यसापेक्षे श्रीपाण्डवपुराणे
महाभारतनाम्नि श्रीशान्तिपुराणव्यावर्णनं नाम पञ्चमं पर्व ॥ ५ ॥

गमहोंगे। तथा गुणिजनोंसे पूजायोग्य, कामादि शत्रु जिन्होंने नष्ट किये हैं, उत्कृष्ट विजयके साथ जिनका चक्ररत्न षट्खंडमें घूमता है, ऐसे श्रीशान्तिजिनेश्वर वृषभजिनेश्वरके स्थापन किये गये कुरुवंशमें शोभते थे ॥ १३१ ॥ मनोहर ऐसे जिनके सौंदर्यसे तीन लोकोंके नाथ-धरणेन्द्र, चक्र-वर्ती और देवेन्द्र मोहित हुए, जो कीर्ति, स्फूर्ति-उत्साह, सुंदर शरीर और स्तुतिके निवास थे, जो नय और प्रमाण ज्ञानके घर थे, जिनको उत्कृष्ट चक्रवर्तिपद, कामदेवका पद और तीर्थकर पद प्राप्त हुए थे, जो उत्कृष्ट अन्वर्थ तीर्थोत्पत्ति करनेमें चतुर थे और जो उत्तमपक्षके-स्याद्वादपक्षके पोषक थे, वे श्रीशान्तीश्वर हमारा रक्षण करें ॥ १३२ ॥ श्रीशान्तिप्रभु शांतिको करनेवाले हैं। सम्यग्दर्शनके अथवा सुशासनके स्थान हैं, ऐसे शान्तिप्रभुका भव्यगण आश्रय लेते हैं। शान्ति-प्रभुके द्वारा सज्जन मोक्षपुरुषार्थजनक ऐसे उत्कृष्ट शिवको-मुक्तिसुखको प्राप्त होते हैं। ऐसे श्रीशान्ति-जिनको हम नमस्कार करते हैं। श्रीशान्तिप्रभुसे त्रिकालनिद्राको नष्ट करनेवाले सैकडो सुख मिलते हैं। श्रीशान्तिके सद्गुण शुभकार्य करनेवाले होते हैं। मैं श्रीशान्तिजिनेश्वरमें मनको अर्पण करता हूँ। हे प्रभो शान्तिजिनेश, आप मुझे हमेशा शान्तिसुख दे ॥१३३॥

श्रीब्रह्मचारी श्रीपालने जिसमें माहात्म्यदान किया है ऐसे भट्टारक शुभचन्द्रप्रणीत पाण्डवपुराणमें अर्थात् महाभारतमें श्रीशान्तिनाथपुराणका वर्णन करनेवाला पांचवा पर्व समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

। षष्ठं पर्व ।

कुन्थुं कुन्थ्वादिजीवानां कुन्थनान्मुक्तमानसम् । सुपथ्यं भव्यजीवानां वन्दे सत्पथपातिनाम्॥
अथ शान्तिसुतः श्रीमान्नारायणसमाह्वयः । शान्तिवर्धनसंज्ञस्तु शान्तिचन्द्रस्ततोऽभवत् ॥२
चन्द्रचिह्नः कुरुश्चेति कुरुवंशसमुद्भवाः । एवं बहुष्वतीतेषु शूरसेनो नृपोऽभवत् ॥ ३
यस्मिन्राज्यं प्रकुर्वाणेऽभूवन्नानासुनीतयः । ईतयः क्वापि संनष्टा घस्रे तारागणा इव ॥४
स शूरः शूरताधीशः शूरसहस्रसंयुतः । सूराभः केवलो यस्य रसोऽभूच्छूरसंश्रितः ॥ ५
यत्प्रतापात्परे भूपा हित्वा पत्तनसज्जनान् । दरीषु दरसंदीप्ताः शेरते शयनातिगाः ॥ ६
श्रीकान्ता कामिनी तस्य श्रीवत्कान्ता गुणाब्धितः । जाता श्रात्रिन्दुसद्वक्त्रा जगदानन्ददायिनी॥

[छट्टा पर्व]

रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गका आश्रय करनेवाले भव्यजीवोंको जो हितकर हैं, कुंथु आदिक समस्त जीवोंको पीडा देनेसे रहित जिनका चित्त है अर्थात् कुंथुआदिक समस्त जीवोंपर करुणा करनेवाले, श्रीकुन्थु जिनेश्वरको मैं वन्दन करता हूं ॥ १ ॥

[कुन्थु–जिनेश्वरका चरित] श्रीशान्ति–जिनेश्वरका नारायण नामक राजलक्ष्मीसे शोभनेवाला पुत्र था । उसके अनंतर शान्तिवर्धन नामक नारायणका पुत्र राज्य करने लगा । तदनंतर शान्तिचन्द्र नामक राजा हुआ । इसके अनंतर चंद्रचिह्न और कुरु ये राजा होगये । ये सब कुरुवंशमें उत्पन्न हुए थे । इस प्रकार अनेक राजगण इस वंशमें उत्पन्न हुए । तदनंतर शूरसेन नामक प्रसिद्ध राजा इस वंशमें उत्पन्न हुआ ॥ २-३ ॥ शूरसेन राजाका जब शासन चल रहा था तब लोगोंमें अनेक सुनीतियोंका प्रसार हुआ । और अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि सात प्रकारकी पीडायें दिनमें तारागणके समान कहीं भी नहीं दीखती थीं ॥ ४ ॥ वह शूरसेन राजा शूर था, शूरत्वगुणका प्रभु था । हजारों शूरवीर उसके आश्रयमें थे । सूरसेन राजा सूर्यकेसमान तेजस्वी था । इस राजाके शौर्यरसका आश्रय शूरोंने लिया था । राजाके प्रतापसे शत्रु राजाओंने अपने नगरोंका त्याग किया था और भयसे जलते हुए अपने बिछानोंको छोडकर पर्वतोंकी गुहाओंमें सोते थे ॥५–६॥ राजा शूरसेनकी श्रीकान्ता नामक रानी श्रीके समान सुन्दर थी । लक्ष्मीकी उत्पत्ति समुद्रसे हुई थी, और श्रीकान्ताकी उत्पत्ति गुणसमुद्रसे हुई थी । लक्ष्मीका मुख उसका भाई जो चंद्र उसके समान था, और श्रीकान्तारानीका मुख चन्द्रके समान था । रानी लक्ष्मीके समान जगतको आल्हाद देनेवाली थी ॥७॥ रानीके आखोंकी कनीनिकाके द्वारा पराजित हुआ ताराओंका समूह, रानीके कांति आदिक

१ प गुणा यतः ।

तारागणो गुणाकृष्टश्चक्षुस्तारापराजितः । यस्या नखमिषान्नूनं सेवते शिवसिद्धये ॥ ८
यद्वक्त्रचन्द्रमावीक्ष्य पद्मा सद्मातिगा सदा । जलेषु शेरते यस्माद्विरोधश्चन्द्रपद्मयोः ॥ ९
यद्वक्षोजमहाकुम्भौ सेवते हि निधीच्छया । स्फुरन्मनोहरो हारो नागवन्नागमार्थिनौ ॥१०
यत्सेवावधिसंबद्धाः श्र्यादयोऽमरयोषितः । कुर्वन्ति सर्वकार्याणि पुण्यात्किं हि दुरासदम् ॥
धनधाराधरो धीरो धनदो हि यदङ्गणे । जलवद्रत्नधारां च वर्षतीति महाद्भुतम् ॥ १२
रत्नधाराधरत्वेन वसुधाख्यां गता धरा । यत्र गर्भोत्सवे तत्किं यन्नाभूत्प्रमदावहम् ॥ १३
सैकदा षोडशस्वप्नान्निशापश्चिमयामके । सुप्ताथ शयनेऽद्राक्षीन्नृपपत्नी नृपालिका ॥ १४

गुणोंसे खींचा गया था । अतएव वह उसके नखोंके मिषसे सुखकी प्राप्तिके लिये उसकी सेवा करने लगा ॥ ८ ॥ जिसका मुखचन्द्र देखकर लक्ष्मी अपना निवासस्थान अर्थात् कमल छोडकर अन्यत्र चली गई, और वे कमल जलमें रहने लगे । क्योंकि चन्द्र और पद्ममें आपसमें विरोध होताही है । चन्द्रके उदयसे दिन-विकासी कमल जिनको पद्म कहते हैं वे संकुचित होते हैं । तात्पर्य यह है कि रानीका मुख कमलोंसे भी अधिक सुन्दर था इसलिये वे लक्ष्मीहीन--शोभाहीन होगये ॥ ९ ॥ चमकनेवाला मनोहर हार नागके समान श्रीकान्तारानीके स्तनरूपी महाकुम्भोंका निधिकी इच्छासे निधि समझकर आश्रय करता है । जो निधिके कुम्भ--कलश होते हैं वे सर्पकी इच्छा करते हैं अर्थात् निधि-कलशके पास सर्पोंका निवास रहता है । वैसे श्रीकान्ता रानीके स्तनकलश भी नाग-पुरुषश्रेष्ठ जो सूरसेन महाराज उनकी और मा लक्ष्मीकी इच्छा करते हैं । अर्थात् श्रीकान्ताके स्तनकलश सुन्दर थे और सूरसेन महाराजको अतिशय प्रिय थे ॥ १० ॥ श्रीकान्ता रानीकी सेवामर्यादाओंसे बांधी गई श्री ह्री आदिक देवस्त्रियाँ उसके सर्व कार्य करती थीं । क्योंकि पुण्यो-दयसे कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती है । अर्थात् रानीका विशाल पुण्योदय होनेसे देवतायें उसकी गृहदासियोंके समान कार्य करती थीं ॥ ११ ॥ धनरूपी धारा-धारण करनेवाला धीर कुबेर-रूपी मेघ उस श्रीकान्तारानीके गृहाङ्गणमें जलके समान रत्नवृष्टि करता था; यह बडी अचम्भेकी बात है ॥ १२ ॥ श्रीकुन्थुनाथजिनके गर्भोत्सवमें पृथ्वीने रत्नवृष्टिको धारण किया अतः वह 'वसुधा' नामको धारण करने लगी । प्रभुके गर्भोत्सवके समय ऐसी कौनसी वस्तु थी जो कि आनंदका हेतु नहीं हुई अर्थात् तीर्थंकरके गर्भोत्सवके समय सभी लोगोंके भी पुण्योंका उदय होता है जिससे सब लोगोंको सुख देनेवाली बातेंही हमेशा होती हैं ॥ १३ ॥

[कुन्थुप्रभुका गर्भमहोत्सव] जनताका रक्षण करनेवाली वह सूरसेन महाराजकी पत्नी श्रीकान्तादेवी किसी समय शय्यापर आनंदसे निद्रा ले रही थी । उसने रात्रीके पश्चिम प्रहरमें सोलह स्वप्न देखे । प्रातःकालकी वाद्यध्वनीसे वह जागृत हुई । तदनंतर प्रसन्न मनसे नित्य क्रिया कर उसने स्नान किया । मङ्गल अलंकार धारण किये । अपनी सेवा करनेवाली दासियोंके साथ

विदित्वा वाधनादेन प्रातः साऽन्तःसुखावहा । कृतनित्यक्रिया स्नात्वा मिलन्मङ्गलमण्डना ॥
स्वसेवापरसंसक्ता द्योतयन्ती सदोनमः । विद्युल्लतेव चाद्राक्षीद्भूपं जीमूतवत्स्थितम् ॥ १६
नृपासनार्धमासीना नत्वा तत्पादपङ्कजम् । व्यज्ञासीत्स्वप्नसंघातमघविघ्नौघघातकम् ॥ १७
विदित्वा तत्फलं भूपोऽवधिवीक्षणतः क्षणात् । क्रमतः क्रमसंभावि फलं तेषामवर्णयत् ॥१८
श्रुत्वा वचोंऽशुना स्पृष्टा तत्स्फुरद्वदनाम्बुजा । अब्जिनीवासवसंस्पर्शादतुषद्वोष्णदीधितेः ॥१९
श्रावणे बहुले पक्षे दशम्यां संदधे च्युतम् । सर्वार्थसिद्धितो देवं देवीगर्भे सुशोधिते ॥ २०
बिडौजा जडताभुक्तो ज्ञात्वा तद्गर्भसंभवम् । समाव्य घटनानिष्ठस्तत्कल्याणं तदाकरोत् ॥ २१
सा मुक्ताफलवद्गर्भं शुक्तिकेव समुज्ज्वला । दधती धाम संदीप्ता द्योतते स्म स्मयावहा ॥२२
दीप्तदेवीगणैः सेव्या सेव्यार्थफलदायिनी । प्राश्निता गूढकाव्याद्यै रेजे सा रत्नखानिवत्॥ २३
सारः कः संसृतौ देवि सुखं किं चाभिधीयते । शर्माशर्मकरं किं हि वदाद्याक्षरतः पृथक्॥२४

गमन करनेवाली वह रानी विद्युल्लताके समान सभारूपी आकाशको प्रकाशित करती हुई, मेघके समान बैठे हुए राजाको देखनेके लिये आई ॥ १४–१६ ॥ राजाके चरण कमलोंको वन्दनकर उसके आधेआसनपर बैठकर पाप और विघ्नोंका समूह नष्ट करनेवाला स्वप्नका समूह रानीने राजाको कहा ॥ १७ ॥ तत्काल अवधिज्ञानके द्वारा स्वप्नोंका फल जानकर क्रमसे होनेवाले उनके फल राजाने क्रमसे वर्णन किये ॥ १८ ॥ रानीने फलपरंपरा सुनी । सूर्यके किरणोंके स्पर्शसे कमलिनी जैसी प्रफुल्ल होती है वैसी राजाके वचनरूपी किरणोंका स्पर्श होनेसे जिसका मुखकमल प्रफुल्ल हुआ है ऐसी वह रानी श्रीकान्ता आनंदित हुई ॥ १९ ॥ श्रावणकृष्ण दशमीके दिन रानीने सर्वार्थसिद्धिसे च्युत हुए अहमिन्द्र देवको श्रीआदिक देवियोंसे सुशोधित गर्भमें धारण किया ॥ २० ॥ प्रभु गर्भमें आये हुए हैं यह समझकर अज्ञानतासे रहित इन्द्र हस्तिनापुरमें आया और सर्व कार्योंकी व्यवस्थित रचना करनेवाले उसने श्रीकुंथुनाथका गर्भकल्याणविधि किया ॥ २१ ॥ उज्ज्वल शुक्तिका सीप जैसे मोतीको धारण करती है वैसे तेजसे प्रदीप्त अभिमानयुक्त वह रानी गर्भको धारण करते हुए चमकने लगी ॥ २२ ॥ उज्ज्वलकान्तिको धारण करनेवाली देवियां जिसकी सेवा करती हैं, जो सेव्यार्थ–उपभोग योग्य पदार्थरूपी फलोंको देनेवाली हैं, ऐसी श्रीकान्तारानी रत्नकी खानके समान शोभती थी । देवियोंने रानीसे प्रश्न पूछे । और उनके उत्तर रानीने क्रमसे दिये ॥ २३ ॥ हे देवि, इस संसारमें सार क्या है ? और सुख किसको कहते हैं ? सुख और दुःख देनेवाला क्या है ? आद्य अक्षरको बदलकर आप उत्तर दें । उत्तर– इस संसारमें हे देवियों ! धर्मही सार है । 'शर्म'को सुख कहते हैं और जीवोंको सुखदुःख देनेवाला 'कर्म' है । इन तीन उत्तरमें आद्य अक्षर बदल गया है । धर्म, शर्म और कर्म ॥ २४ ॥

[क्रियागुप्त] जिसमे बहुत लोक वारंवार संसाररूपी पृथ्वीपर जन्म लेते हैं वह

यतो जमा घना नित्यं जंजन्यन्ते भवावनौ । ततोऽद्य गर्भभावेन तद्धि दुःखकरं नृणाम् ॥२५
सूर्यात्का जायते लोके का स्थिता विदुषां मुखे । अर्जुनः कीदृशः का स्याद्गङ्गा भागीरथीति च ॥
एवं प्रश्नोत्तरेऽसूत सा सुतं प्राग्यथा रविम् । नवमे मासि वैशाखे शुक्लपक्षादिमे दिने॥२७
मेघवाहनमुख्यास्ते समागत्य सुरासुराः । नयन्ति स्म जिनं मेरुमूर्धानं चोर्ध्वगामिनः ॥ २८
पीठे संस्थाप्य संपठ्य सत्पाठं पठनोद्यताः । क्षीराब्धिवारिभिर्देवा अभ्यषिञ्चञ्जिनोत्तमम्॥२९
संज्ञया कुंन्थुमाज्ञाय समानीय पुरे सुराः । पित्रोः समर्पयामासुर्मघवप्रमुखाः सुराः ॥ ३०
यौवने वर्धमानः स वर्धमानगुणोदयः । पञ्चत्रिंशद्धनुःकायो निष्टप्ताष्टापदद्युतिः ॥ ३१
स्फुरत्पञ्चसहस्रोनलक्षसंवत्सरस्थितिः । प्राप्तराज्यपदो भोगान्भुञ्जन् भद्रभरावहः ॥ ३२

मनुष्योंको आज दुःख देनेवाला कर्म हे रानी तूं गर्भके प्रभावसे तोड दे । ' ततः अद्य ' ऐसा पदच्छेद है । ' ततोऽद्य गर्भभावेन तद्धि दुःखकरं नृणां ' इस श्लोकार्धके आदिके दो शब्दोंका ततः अद्य ऐसा विग्रह जब करते हैं तब इसमें क्रियापद नहीं है ऐसा भास होता है इसलिये इसे क्रिया-गुप्त कहते हैं । परंतु ' ततः द्य ' ऐसा पदच्छेद करनेपर ' दो छेदने ' इस धातुका लोट् लकारका मध्यमपुरुष एकवचन ' द्य ' ऐसा होता है और श्लोकार्थ बराबर जम जाता है ॥ २५ ॥ इस जगतमें सूर्यसे कौन उत्पन्न होती है ? पंडितोंके मुखमें कौन रहती है ? अर्जुन कैसा होता ? और गंगा कौन है ? ऐसे चार प्रश्न देवीने किये और रानीने ' भागीरथी ' इस एकही शब्दमें सब प्रश्नोंका उत्तर दिया । वह इस प्रकार है—सूर्यसे ' भा ' कान्ति उत्पन्न होती है । पंडितोंके मुखमें ' गी ' सरस्वती रहती है । अर्जुन ' रथी ' नामको धारण करता है और गंगाको ' भागीरथी ' कहते हैं । सब अक्षर मिलकर ' भागीरथी ' यह नाम गंगानदीका हो जाता है ॥ २६ ॥

[कुंथुजिनका जन्मकल्याणक] इस प्रकार देवियोंने प्रश्न किये और माताने उनके उत्तर दिये । इसके अनंतर पूर्वदिशा जैसे सूर्यको जन्म देती है वैसे श्रीकान्तादेवीने वैशाखशुक्ल-प्रतिपदाके दिन जिनबालकको जन्म दिया ॥ २७ ॥ इन्द्र जिनमें मुख्य हैं ऐसे देव और दानव जन्मनगरीमें आये और प्रभुको ऊपर जानेवाले वे मेरूपर्वतके मस्तकपर ले गये । पाण्डुक-शिलाके मध्यसिंहासनपर उन्होंने प्रभुको स्थापन किया । स्तोत्र पढनेमें उद्युक्त देव जिनेश्वरके गुणोंको गाकर क्षीरसमुद्रके जलसे उनको स्नान कराने लगे । अभिषेकविधिके अनंतर प्रभुका 'कुंथु' ऐसा नाम रखकर इंद्रादिक देवोंने उनको नगरमें ले जाकर मातापिताके पास दिया ॥२८–३०॥ तारुण्यावस्थामें बढते जानेवाले प्रभु गुण और ऐश्वर्यके साथ वृद्धिंगत हुए । उनका शरीर पचीस धनुष्यका था । उनके शरीरकी कान्ति तपाये हुए सोनेके समान थी । उनकी आयु पांच हजार वर्ष कम एक लाख वर्षोंकी थी । प्रभुको उनके पितासे राज्यपद प्राप्त हो गया । कल्याणके समूहों

चक्रलक्ष्मीं समासाद्य समभूच्चक्रलाञ्छनः । स्मृतपूर्वभवज्ञानो व्यरंसीद्भवतः स च ॥ ३३
ज्ञात्वा लौकान्तिका देवास्तादृशं तं स्तवस्तवैः । स्तुत्वा दीक्षोद्यतं नत्वा समगुः पञ्चमीं दिवम् ॥
पुत्रे नियुक्तराज्योऽसौ विजयाशिबिकां श्रितः । देवेन्द्रैः सह संप्रापत्सहेतुकवनं वरम् ॥३५
जन्मनो दिवसे षष्ठोपवासी तत्र भूमिपैः । सहस्रैर्लुञ्चनोद्युक्तैरयासीत्संयमं विभुः ॥ ३६
तत्पुरे धर्ममित्राख्यः पारणाह्नि ददौ मुदा । तस्मै च पायसं सोऽतः प्रापदाश्चर्यपञ्चकम् ॥३७
नीत्वा षोडश वर्षाणि छाद्मस्थ्येन सहेतुके । वने षष्ठोपवासी स तिलकद्रुममूलगः ॥ ३८
चैत्रज्योत्स्नापराह्णे च तृतीयायां समुद्यमी । घातिकर्मक्षयं कृत्वा कैवल्यमुदपादयत् ॥ ३९
सुरासुरनरैः पूज्यः समवसृतिसंस्थितः । स्वयंभ्वाद्यैर्गणेशैश्च पञ्चत्रिंशद्भिरीडितः ॥ ४०
सुपूर्वसंविदः सप्तशतान्यस्य यतीश्वराः । शिष्याः शतैकपञ्चाशत्रिपञ्चाशत्सहस्रकाः ॥ ४१
तृतीयावगमास्तस्य पञ्चवर्गशतानि वै । त्रयस्त्रिंशच्छतं तस्य केवलाः केवलेक्षणाः ॥ ४२
विक्रियर्द्धिसमृध्याढ्याः खद्वयैकेन्द्रियोक्तयः । चतुर्थज्ञानिनोऽभूवन्खनभस्त्रित्रिसंख्यकाः ॥४३
वादिनो वादजेतारः पञ्चाशन्द्विसहस्रकाः । सर्वे षष्टिसहस्राणि तस्याभूवन्यतीश्वराः ॥ ४४

को धारण करनेवाले प्रभु भोग भोगने लगे। कुछ काल बीतनेपर वे चक्रलक्ष्मी की प्राप्तिसे चक्रवर्ती हो गये। किसी समय कुंथुजिनेश्वर पूर्वभवके ज्ञान का स्मरण होनेसे संसारसे विरक्त हुए। लौकान्तिकदेवोंने प्रभुके वैराग्यभावोंको जाना। दीक्षाके लिये उद्युक्त हुए प्रभु की स्तुति और वन्दना करके लौकान्तिक देव पांचवे स्वर्गको गये ॥३१—३४॥ प्रभुने पुत्रको राज्य दिया। विजया नामक शिबिकामें वे बैठे और देवेन्द्रोंके साथ वे उत्तम-सुंदर सहेतुक वनमें आये। वहां वैशाख शुक्ल प्रतिपदाके दिन दो उपवासोंकी प्रतिज्ञा कर लोंच करनेमें उद्युक्त हुए। हजारों राजाओंके साथ प्रभुने संयम धारण किया। हस्तिनापुरमें पारणाके दिन धर्ममित्र नामक राजाने प्रभुको आनंदसे पायसका आहार दिया; जिससे पंचाश्चर्यवृष्टि हुई। सहेतुक वनमें प्रभुने छद्मस्थावस्थामें सोलह वर्ष व्यतीत किये। तत्पश्चात् दो उपवासोंकी प्रतिज्ञा कर प्रभु तिलकवृक्षके मूल में बैठ गये। कर्मक्षयका उद्यम करनेवाले प्रभु चैत्र शुक्ल तृतीयाके दिन दो पहरको घातिकर्मोंका क्षय करके केवलज्ञानी हुए ॥ ३५-३९ ॥

[प्रभुके द्वादशगण] समवसरणमें विराजमान प्रभु, देव दानव और मनुष्योंसे पूज्य हुए। स्वयंभू आदिक पैंतीस गणधरोंसे वे स्तुति किये गये। प्रभुके समवसरणमें चौदह पूर्वोंके ज्ञाता मुनि सातसौ थे। तिरेपन हजार एकसौ इक्यावन शिष्य मुनि थे। अवधिज्ञानी मुनि पच्चीससौ थे। केवलज्ञानी मुनि सिर्फ तेहतीससौ थे। विक्रियाऋद्धिसे संपन्न मुनि पांच हजार एकसौ थे। चौथे ज्ञानके धारक--मनःपर्ययज्ञान वाले मुनि तेहतीससौ थे। वादमें अन्य मिथ्यादृष्टि विद्वानोंको जीतनेवाले यति दो हजार पचास थे। संपूर्ण मुनियोंकी उनके समवसरणमें साठ

खपञ्चाग्निनभाःषट्कभाविन्याद्यार्यिकाः शुभाः।लक्षद्वयं च श्राद्धानां द्विलक्षाःश्राविका मताः॥४५
असंख्या देवदेव्यस्तु तिर्यञ्चः संख्ययान्विताः। एवं संघेन देवेशो विजहाराखिलां क्षितिम्॥
मासमुक्तक्रियः प्राप सम्मेदाद्रिं सहस्रकैः। मुनिभिः समगान्मुक्तिं क्षीणकर्मा यतीश्वरः॥४७
वैशाखे शुक्लपक्षस्यादिमे घस्रे जिने गते। सिद्धिं ज्ञात्वा जिनं सिद्धमापुरुत्कण्ठिताः सुराः॥
कुर्वाणास्ते मुनिर्वाणपूजां गीर्वाणनायकाः। नामं नाममगुः स्वर्गं स्तावं स्तावं गुणान्विभोः॥४९

आसीद्यः प्राग्विदेहे नृपमुकुटतटीघृष्टपादारविन्दो
दक्षो वै सिंहपूर्वो रथ इति नृपतिः सिद्धसर्वार्थसिद्धिः।
कुन्थुः कुन्थ्वाख्यजीवप्रमुखसुखदयादायको नायकस्तात्
चक्री तीर्थंकरोऽसौ वरगुणमतये कामदेवो वरो वः॥ ५०
पुष्यत्पापारिकुन्थुर्वरमथनमितो मीनकेतोः सुकेतो
भर्ता धर्मे धरित्रीं त्रिभुवनमाहितः कुन्थुनाथः सुनाथः।
कुन्थ्वादीनां दयाढ्यो वरपथपथिकस्तीर्थराट् चक्रराजः
शुम्भत्सौभाग्यभर्ता भववनदहनः पातु पापात्स युष्मान्॥ ५१

हजारकी संख्या थी॥ ४० ४४॥ प्रभुके समवसरणमें शुभ कार्य करनेवाली भाविनी आदिक आर्यिकायें साठ हजार तीनसौ पचास थीं। दो लाख श्रावक थे और दो लाख श्राविकायें थीं॥४५॥ समवसरणमें असंख्यात देव और देवांगनायें थीं। तिर्यंच संख्यात थे। इस प्रकारके संघके साथ प्रभुने समस्त आर्यखण्डमें विहार किया॥ ४६॥

[कुंथुप्रभुका मोक्षोत्सव] जब प्रभुकी आयु एक मासकी अवशिष्ट रही तब वे सम्मेद-शिखरपर्वतपर आये। तब उनका विहार बंद हुआ। अघाति कर्मोंका नाश होनेपर यतियोंके स्वामी कुंथुनाथ जिन हजारों मुनियोंके साथ मुक्त हुए॥ ४७॥ वैशाख शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाके दिन जिनेश्वर मुक्त हुए सो जानकर उत्कंठित हुए देव सम्मेदशिखरपर आये। देवोंके नायक इन्द्र प्रभुकी निर्वाण पूजा करते हुए प्रभुको बार बार नमस्कार कर तथा प्रभुके गुणोंकी अनेकवार स्तुति कर स्वर्गको चले गये॥ ४८-४९॥ जो पूर्वभवमें जंबूद्वीपके पूर्व विदेहक्षेत्रमें राजाओंके मुकुटतटोंमें घिस गये हैं चरणकमल जिसके ऐसा चतुर सिंहरथ नामक राजा था। अनंतर उसने तपश्चरण करके सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र पद पा लिया। वहांसे च्युत होकर कुंथु नामक जीव जिनमें मुख्य हैं ऐसे जीवोंको सुख देनेवाले और दया करनेवाले स्वामी कुंथुनाथ जिनेश्वर हुए। ये प्रभु चक्रवर्ति, तीर्थकर और श्रेष्ठ कामदेव भी हुए। जो पापशत्रुका मर्दन करनेवाले, उत्तम ध्वज जिसके हाथमें है ऐसे मदनका नाश करनेवाले, सर्व पृथ्वीको धर्ममें स्थापन करनेवाले, त्रिलोक जिसको पूजता है, कुंथु आदिक जीवोंपर पूर्ण दयालु होनेसे जो जीवोंके रक्षक स्वामी हैं, श्रेष्ठ

इति भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपालसाहाय्यसापेक्षे श्रीपाण्डवपुराणे महा भारत-नाम्नि श्रीकुन्थुनाथपुराणप्ररूपणं नाम षष्ठं पर्व ॥ ६ ॥

। सप्तमं पर्व ।

अरं विजितकर्मारिं सारचक्रेशचर्चितम् । सारं सर्वगुणाधारं नौमि तीर्थकरं वरम् ॥ १
एवं भूपेष्वतीतेषु तत्र राजा सुदर्शनः । सुदर्शनः प्रिया तस्य मित्रसेनाभवत्सती ॥ २
वसुधारादिभिर्मान्या दृष्टषोडशस्वप्निका । फाल्गुने सा तृतीयायां सिते गर्भं दधे शुभम्॥ ३
स्वर्गावतारकल्याणं सुपर्वाणश्चतुर्विधाः । कुर्वाणाः परमोत्साहं नत्वा तत्पितरौ ययुः ॥४
अदभ्रभ्रूणसंभारा भारत्यक्ता नृपप्रिया । मार्गशीर्षे सितेऽसूत चतुर्दश्यां सुतं परम् ॥ ५

मोक्षमार्ग के जो पथिक हैं, जो तीर्थंकर, चक्रवर्ती और शोभनेवाले सौभाग्यके स्वामी हैं अर्थात् कामदेव हैं, तथा जो संसाररूपी अरण्यको अग्निके समान हैं वे कुन्थुनाथ प्रभु आपकी पापसे रक्षा करें ॥ ५०-५१ ॥

ब्रह्म श्रीपालने जिसकी रचनामें सहायता दी है ऐसे श्रीशुभचन्द्र भट्टारकविरचित महाभारत नामक पाण्डव-पुराणमें श्रीकुन्थुनाथ तीर्थंकरके पुराणका वर्णन करनेवाला छठा पर्व समाप्त हुआ ॥

[सप्तम पर्व]

उत्तम भक्तियुक्त चक्रवर्तियोंके द्वारा जो पूजे गये हैं, जो सर्व अनन्तज्ञानादि गुणोंके आश्रय हैं, कर्मशत्रुओंको जिन्होंने जीता है तथा जो मुक्तिश्रीके सर्वोत्तम वर हैं, ऐसे अरनाथ तीर्थंकरकी मैं स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

[अरनाथचरित] इस प्रकार अनेक राजाओंके हो चुकनेपर कुरुवंशमें सुदर्शन नामक राजा हुआ। वह नामसे सुदर्शन था और अर्थसे भी। अर्थात् सुदर्शन शंकादि-दोषरहित सम्यग्दर्शनका धारक था। उसकी रानीका नाम मित्रसेना था। वह सती-पतिव्रता थी। कुबेरने रानीके अङ्गणमें रत्नवृष्टयादिक करके उसका आदर किया। एक दिन उसने सोलह स्वप्न देखे तथा फाल्गुण शुक्ल तृतीयाके दिन उसने गर्भ धारण किया ॥ २-३ ॥ बडे उत्साहसे प्रभुका स्वर्गावतारका उत्सव अर्थात् गर्भावतार कल्याणविधि करनेवाले भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और स्वर्गवासी देव जिनमाता और जिनपिताको नमस्कार कर अपने स्थानके प्रति गये ॥ ४ ॥ यद्यपि गर्भका भार अधिक था तोभी रानीको वह भार नहीं के समान था। मार्गशीर्ष शुक्ल चतु-

त्रिविधावगमोद्भासी जिनः संस्नापितः सुरैः। मेरौ प्राप्तारसज्ञामा संप्राप्तो यौवनं क्रमात्॥६
त्रिंशच्चापतनूत्सेधश्चारुचामीकरद्युतिः। चतुर्भिरधिकाशीतिसहस्राब्दायुरूर्जितः॥ ७
स कन्यानां सहस्रैश्च पाणिपीडनमाप्तवान्। प्राप्तराज्योदयो धीमान् सुरकोटिनमस्कृतः॥८
चक्ररत्ने समुत्पन्ने चक्रे चक्रेश्वरो नतान्। नृपतीन् ननु द्वात्रिंशत्सहस्रसंख्यकान्कृती॥ ९
अष्टादशसुकोटीनां घोटकानां घटाश्रितः। चतुर्भिरधिकाशीतिसुलक्षानेकपाधिपः॥ १०
तावतां रथवृन्दानां पप्रथे नाथतां पृथुम्। द्वात्रिंशतां सहस्राणां देशानां प्रभुतामितः॥ ११
षण्णवतिसहस्राणां नारीणां भोगभोजकः। द्वासप्ततिसहस्राणि पुराणि पाति पावनः॥ १२
नवाग्रनवतिद्रोणसहस्रप्रभुतां गतः। पत्तनान्यष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि चास्य वै॥ १३
खेटानां च सहस्राणि षोडशैवाभवन्विभोः। कोटिषण्णवतिग्रामाग्रण्यं स गतवान्महान्॥१४
षट्पञ्चाशत्समुद्रान्तर्द्वीपपालनतत्परः। चतुर्दशसहस्राणां वाहनानां हि रक्षकः॥१५
द्वात्रिंशत्सुसहस्राणां नाटकानां निरीक्षकः। स्थालीनां कोटिसंख्यानां भाजनानां च भाजनम्॥
त्रिकोटिगोकुलैः कोटिहलैः सोऽभूत्परिग्रही। कुक्षिवासाः शतान्यस्य सप्ताभूवन्नरेशितुः॥१७

दशमीके दिन रानीने उत्तम पुत्रको जन्म दिया। देवोंने तीन ज्ञानोंसे शोभायमान प्रभुको मेरू पर्वतपर ले जाकर क्षीरसागरके जलसे स्नान कराया। और उनका 'अर जिन' ऐसा शुभ नाम रखा। प्रभु क्रमसे युवा हो गये। प्रभुका शरीर तीस धनुष्य प्रमाण ऊंचा था। वह सुंदर सुवर्णकी कान्तिवाला था। प्रभुकी आयु चौरासी हजार वर्षोंकी थी॥ ५-७॥ प्रभुका विवाह हजारों कन्याओंके साथ हुआ। प्रभुको राज्य-वैभव प्राप्त हुआ उनको कोट्यवधि देव नमस्कार करते थे॥ ८॥ प्रभुकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। उसके साहाय्यसे पुण्यवान् प्रभुने बत्तीस हजार राजाओंको नम्र किया--वश किया॥ ९॥ प्रभुके अठारह कोटि घोडे थे, तथा प्रभु चौरासी लक्ष हाथियोंके स्वामी थे और उतनेही रथोंके वे नाथ थे। बत्तीस हजार देशोंपर उनका प्रभुत्व था। प्रभु अरनाथ छियानवे हजार स्त्रियोंके भोगको भोगते थे। पवित्र प्रभु बहत्तर हजार नगरोंके रक्षण कर्ता थे। निन्यानवे हजार द्रोण और अडतालीस हजार पत्तनोंके अधिपति थे। (जो नदी और समुद्रके किनारे पर बसे हो उन गांवोंको द्रोण कहते हैं। और रत्नोंकी खानीसे युक्त गांवको पत्तन कहते हैं।)॥ १०-१३॥ प्रभुके खेट नामके गांव सोलह हजार थे। (नदी और पर्वतसे घिरे हुए गांवको खेट कहते हैं।) वे महास्वामी छियानवे कोटि गांवोंके प्रभु थे। समुद्रके भीतरके छप्पन अन्तर्द्वीपोंके रक्षणमें वे प्रभु तत्पर थे। चौदहजार वाहन नामक गांव उनके अधीन थे। (पर्वतके ऊपर बसे हुए गांवको वाहन कहते हैं)॥ १४-१५॥ वे प्रभु बत्तीस हजार नाटकोंको देखते थे। उनके यहां एक कोटि थालियाँ-अन्न पकानेके पात्र थे। तीन कोटि गायें और एक कोटि हल थे। मनुष्योंके अधिपति प्रभु सातसौ कुक्षिवासोंके स्वामी थे॥ १६-१७॥

घना दुर्गाटवी तस्य सहस्राण्यष्टसप्ततिः । अष्टादशसहस्रोक्तम्लेच्छराजनतस्य च ॥१८
निधयो नव तस्यासन् रत्नानि च चतुर्दश । चक्रिणश्चरणत्राणे पादुके विषमोचिके ॥१९
अभेद्याख्यं तनुत्राणं रथश्चास्याजितंजयः । वज्रकाण्डं धनुः प्रोक्तममोघाख्याः शराः स्मृताः ॥
शक्तिस्तु वज्रतुण्डाख्या कुन्तः सिंहाटको मतः । असिरत्नं सुनन्दाख्यं खेटं भूतमुखं मतम् ॥
चक्रं सुदर्शनं चण्डवेगो दण्डः सुदण्डकृत् । वज्रमयं चर्मरत्नं चिंतामणिस्तु काकिणी ॥२२
पवनंजयनामाश्वो हस्ती विजयपर्वतः । आनन्दिन्यो महाभेर्यो द्वादशेति जिनेशितुः ॥२३
तावन्तस्तस्य विजयघोषाख्याः पटहा मताः । एवमृद्ध्या समृद्धः स व्यरंसीत्तु कदाचन ॥२४
अरविन्दकुमाराय दत्त्वा राज्यं स्वसूनवे । लौकान्तिकसुरोद्दिष्टपथः सत्पथदेशकः ॥२५
वैजयन्त्याख्यशिबिकां प्राप्य त्रिदशवेष्टितः । सहेतुकवने वन्यवृत्तिः षष्ठोपवासभृत् ॥२६
दशम्यां मार्गशीर्षस्य शुक्ले सहस्रभूमिपैः । प्राव्राजीद्राजतः पूज्यो देवानामरदेवराट् ॥२७
चतुर्बुद्धिधरो धीमान्पारणाह्न्यपराजितात् । नृपाच्चक्रपुरे प्राप पारणं परमोद्यतः ॥२८
संवाह्य षोडशाब्दान्स छाद्मस्थ्येन सुछद्मगः । जघान घातिसंघातं व्यघो विघ्नघ्न इत्यरः ॥२९

प्रभुके अठहत्तर हजार सघन और दुर्गम अरण्य थे । प्रभुको अठारह हजार म्लेच्छ राजा नमस्कार करते थे। वे प्रभु नवनिधि और चौदह रत्नोंके अधिपति थे। चक्रवर्तिके चरणोंकी रक्षा करनेवाली विषमोचिका नामक पादुकायें थीं तथा अभेद्यनामक कवच और अजितंजय नामका रथ था । वज्र-काण्ड नामक धनुष्य और अमोघ नामक बाण थे ॥ १८-२० ॥ प्रभुकी वज्रतुण्डा नामक शक्ति (शस्त्रविशेष) थी और ' सिंहाटक ' नामक कुन्त-भाला था । सुनन्द नामक खड्गरत्न और भूत-मुख नामकी ढाल थी । सुदर्शन नामक चक्ररत्न और शत्रुओंका शासन करनेवाला चण्डवेग नामक दण्डरत्न था । वज्रमय चर्मरत्न, चिन्तामणि रत्न और काकिणी रत्न थे ॥२१-२२॥ जिनेश्वरके पवनंजय नामका घोडा, विजयपर्वत नामका हाथी, और आनन्दिनी नामक बारा भेरी-नगारे थे । उतनेही विजयघोष नामके पटहवाद्य थे । इस तरहके ऐश्वर्यमें प्रभु समृद्ध थे। परंतु प्रभु ऐसे अपार वैभवसे भी एक दिन विरक्त होगये ॥ २३-२४ ॥ उन्होंने अपने पुत्र अरविन्द कुमारको सारा राज्य दिया। लौकान्तिक देवोंने प्रभुके रत्नत्रय मार्गका कथन किया । सन्मार्गके उपदेशक प्रभु वैजयन्ती नामक पालखीमें बैठकर सर्व देवोंके साथ सहेतुक वनमें गये । वहां प्रभुने वन्यवृत्ति धारण की अर्थात् वनमें रहे। दो दिनका उपवास धारण कर मार्गशीर्ष शुक्ल दशमीके दिन हजार राजाओंके साथ दीक्षा धारण की । राजपूज्य तथा देवपूज्य अरनाथ तीर्थंकर दीक्षाके अनंतर चार ज्ञानोंके धारक हुए । पारणाके दिन धीमान् प्रभु आहारके लिये चक्रपुर नगरमें गये । वहां उनको अपराजित राजासे पारणा प्राप्त हुई ॥ २५-२८ ॥ उत्कृष्ट मोक्षमार्गमें उद्युक्त हुए प्रभुने छद्मस्थ अवस्थामें सोलह वर्ष व्यतीत किये । तबतक उनको केवलज्ञान प्राप्त नहीं हुआ । तदनंतर घातिकर्मोंका नाश

कार्तिके द्वादशीघस्रे सिते चूततरोरधः । षष्ठोपवासतो बोधं पञ्चमं स समासदत् ॥३०
तदा सुरासुराश्चक्रुः सेवां ज्ञानोद्गमे वराः । समवसृतिसंस्थस्य जिनारस्यारिघातिनः ॥३१
चैत्रकृष्णान्तघस्रे स सम्मेदे मासमात्रकम् । मुक्तक्रियः सहस्रेण मुनीनां मुक्तिमासवान् ॥३२
निर्वाणं च प्रकुर्वाणाः सुपर्वाणः सुरावगाः । कल्याणं कल्पनामुक्ता मुमुचुस्तस्य पाप्मनः ॥

जीयाज्जिनारो विगतारिवारः सुरेन्द्रवृन्दारकवन्द्यपादः ।
किरन्कलारः सुसमाजनेशो वृषं वृषात्मा वृषभो गरिष्ठः ॥३४
योऽभूद्भूपोऽद्भुतात्मा धनपतिशुभवाक् प्राङ्मुनीनां पतिश्च
पश्चाज्ज्यायाञ्जितात्मा जयजितविधुरः संजयन्ते विमाने ।
देवानामाधिपत्यं गत इह सुपतिर्धर्मिणां धर्मराजः
सोऽव्याद्युष्माञ्जिनेन्द्रो निखिलनरपतिः कामदेवो वरारः ॥३५

करके प्रभु पापरहित हुए। केवलज्ञान होनेमें विघ्न उपस्थित करनेवाले ज्ञानावरणादि कर्मोंका प्रभुने नाश किया। आम्रवृक्षके नीचे दो उपवासोंकी प्रतिज्ञा धारण कर प्रभु ध्यानस्थ बैठे और कार्तिक शुक्ल द्वादशीके दिन प्रभुको पांचवा बोध--केवलज्ञान प्राप्त हुआ ॥ २९.-३० ॥ घातिकर्मरूपी शत्रुका नाश करनेवाले प्रभु समवसरणमें विराजमान हुए । केवलज्ञानोत्पत्तिके समय श्रेष्ठ सुर और असुर आकर प्रभुकी सेवा करने लगे ॥ ३१ ॥ जब उनकी आयु एक मास--प्रमाण रह गई तब उनका विहार बन्द हुआ । वे सम्मेद शिखरपर चैत्र कृष्ण अमावास्याके दिन एक हजार मुनियोंके साथ मुक्त हो गये ॥ ३२ ॥ प्रभुका निर्वाण कल्याण करनेवाले देव मुखसे प्रभुका जयजयकार शब्द करने लगे । मिथ्याज्ञानसे मुक्त हुए वे देव प्रभुभक्ति करनेसे पापसे मुक्त हो गये ॥ ३३ ॥ शत्रुओंका समूह जिनसे दूर भाग गया है, देवेन्द्र और देवोंके समूहसे जिनके चरण वंदन करने योग्य हैं, जो भव्यजनोंको कला—विज्ञानादिक देते हैं, वृषका —धर्मका उपदेश देनेवाले, समवसरणमें आये हुए सर्व भव्योंके जो अधिपति हैं, धर्मस्वरूप, तथा धर्मसे शोभनेवाले ऐसे जिनपति अरनाथकी सदा जय हो ॥ ३४ ॥ पूर्वभवमें जिसकी आत्मा आश्चर्यकारक थी, जो धनपति इस शुभ नामको धारण करनेवाला राजा और दीक्षा लेकर मुनियोंका ज्येष्ठ स्वामी हुआ। अनंतर जितेन्द्रिय तथा परीषहजयके द्वारा संकटोंको जीतनेवाले, वे मुनिराज संजयन्त--विमानमें देवोंके अधिपति अहमिन्द्र हुए । वहांसे चयकर इस आर्यखण्डमें धार्मिकलोगोंके अधिपति धर्मराज तीर्थकर--पदके धारक हुए । जो संपूर्ण मनुष्योंके पति--चक्रवर्ती तथा कामदेव हुए वे श्रेष्ठ अरनाथ जिनेन्द्र आपका रक्षण करें ॥ ३५ ॥

[श्रीविष्णुकुमार मुनि--चरित्र]-- अरनाथजिनेश्वरके पुत्रका नाम अरविन्द था।

अरनाथसुतः श्रीमानरविन्दो नृपो मतः । सुचारश्च ततः शूरो भूपः पद्मरथो रथी ॥३६
ततो मेघरथस्तस्य जाया पद्मावती श्रुता । विष्णुपद्मरथौ पुत्रौ तयोरास्तां महाबलौ ॥३७
व्यघो मेघरथो धीमान्प्राव्राजीद्विष्णुना सह । पश्चात्पद्मरथो राज्यमलंचक्रे कृपाङ्कुरः ॥३८
अवन्तीविषये रम्योज्जयिन्यां भूपतिर्महान् । श्रीवर्मा मंत्रिणस्तस्य चत्वारः प्रथमो बली ॥
बृहस्पतिश्च प्रह्लादो नमुचिर्वादकोविदाः । वाडवा वादकण्डूयाविडम्बितमनोरथाः ॥४०
एकदाकम्पनस्तत्रागत्य संघैः स्थितो वने । वादे निवारितास्तेन भाविज्ञानेन सद्रुचा ॥४१
तद्वन्दनार्थं गच्छन्तं संघं वीक्ष्य नृपो जगौ । किमर्थं याति लोकोऽयं वन्दनार्थं मुनेरिति ॥
मन्त्रिभिर्भूपतिर्भक्त्या वन्दितुं तान् गतस्तदा । वन्दितैस्तैर्नरेन्द्रेण नाशीर्दत्ता शुभप्रदा ॥
बलीवर्दा इमे नूनमित्युक्त्वा मन्त्रिणो गताः । नृपैर्मार्गे मुनिं बालं ददृशुः श्रुतसागरम् ॥
अनड्वांस्तरुणश्चायमित्याकर्ण्य निराकृताः । मुनिना ते सुवादेन सोऽपि गत्वागदीद्गुरुम् ॥४५

वह एक लक्ष्मी-संपन्न राजा हुआ। उसके अनंतर सुचार नामक राजा हुआ। उसके पश्चात् शूर नामक राजा हुआ। उसके अनंतर रथमें बैठकर हजारों योद्धाओंके साथ युद्ध करनेवाला रथी पद्मरथ नामक राजा हुआ। अनंतर मेघरथ राजा हुआ। उसकी रानीका नाम पद्मावती था। इन दोनोंको महासामर्थ्यशाली विष्णु और पद्मरथ नामके दो पुत्र हुए। कुछ कालतक मेघरथने राज्य पालन किया। एक दिन उसका मन राज्यसे विरक्त हुआ। निष्पाप मेघरथ राजाने विष्णुकुमारके साथ दीक्षा ग्रहण की। इसके अनंतर दयाका अंकुर जिसकी मनोभूमिमें प्रगट हुआ है ऐसा पद्मरथ राज्य करने लगा ॥ ३६--३८ ॥ अवन्ति अर्थात् मालवा प्रान्तके उज्जयिनी नामक नगरमें श्रीवर्मा नामक बडा राजा राज्य करता था। उसके बलि, बृहस्पति, प्रह्लाद और नमुचि ये चार मंत्री वाद करनेमें निपुण थे। वे चारों मंत्री ब्राह्मण थे और वादकी कंडूसे उनके मनोरथ पीडित हुए थे अर्थात् जिस किसी विद्वानको देख लिया, उसके साथ वे वाद करनेको तयार हो जाते थे ॥ ३९-४० ॥ किसी समय उज्जयिनीके वनमें अकम्पनाचार्य अपने संघके साथ आये। तेजस्वी आचार्यने अपने भाविज्ञानसे जानकर संघको किसीके साथ वाद न करनेकी आज्ञा की। मुनियोंकी वन्दनाके लिये जानेवाले लोगोंका समूह देखकर राजाने मंत्रीको पूछा कि ये लोग किसलिये जारहे हैं? मंत्रीने कहा 'महाराज, ये मुनिके वन्दनार्थ जा रहे हैं' ॥ ४१-४२ ॥ राजा मन्त्रियोंको साथ लेकर भक्तिसे मुनियोंकी वन्दना करनेके लिये गया। राजाने मुनियोंको वन्दन किया परन्तु उन्होंने शुभदायक आशीर्वाद नहीं दिया। 'ये मुनि बैलके समान हैं' ऐसा बोलकर मन्त्री वहांसे चले गये। राजाके साथ जाते हुए उन्होंने बालमुनि श्रुतसागरको देखा। 'यह तरुण बैल है' ऐसा वाक्य मंत्रीके मुखसे मुनिने सुना और उसने उनके साथ वाद कर उनको पराजित किया। तदनंतर श्रुतसागरमुनि अकंपनाचार्यके पास गये और सारा हाल उन्होंने

गुरुणाकथि भो वत्स वादस्थाने स्थितिं कुरु । निशायामन्यथा घातः संघस्य भविता लघु॥
तथा तेन कृते रात्रौ ते खला हन्तुमुद्यताः । गच्छन्तः पथि तं वीक्ष्य प्रहर्तुं सायुधाः स्थिताः॥
पुरदेवतया तेऽत्र स्तम्भितास्त्रस्तचेतसः । उत्खातोद्धृतखड्गेन कुर्वन्तस्तोरणश्रियम् ॥४८
प्रभाते वीक्ष्य भूपेन ते तथा पुरतोऽखिलाः । चक्रीवत्सु समारोप्य मुण्डयित्वा च मस्तकान् ॥
निष्कासितास्ततः पद्मरथं नागपुरे गताः । विनीता रक्षिता राज्ञा दत्त्वा मन्त्रिपदं महत् ॥
प्रत्यन्तवासिसंक्षोभे समुद्भूतमहाभये । सचिवो विविधोपायैस्तं रिपुं समजीग्रहत् ॥५१
तुष्टेन तेन संदिष्टमिष्टं संयाच्यतामिति । सप्ताहसमहं कर्तुं राज्यमिच्छामि सद्भलिः ॥
आहेति मोहतस्तेन तथाभ्युपगतं मुदा । दत्तराज्यो बलिर्दत्ते स्म दानं दानवो यथा ॥५३
अकम्पनोऽथ योगीन्द्रो योगिभिर्योगजुष्टये । वर्षायोगं च जग्राह वारयन्मुनिमण्डलीम् ॥
अभिवादं न वक्तव्यं भवद्भिर्वादिभिः सह । अन्यथानर्थसंपातो भविता भवतामिति ॥५५
बलिर्बलेन तं रुष्टो वृत्या संवृत्य यागिभिः । यज्ञेन तापनं चक्रे तेषां धूम्रध्वजात्मना ॥५६

उनको कहा ॥ ४३-४५ ॥ अकम्पन गुरुने कहा कि हे वत्स, तुम रात्रमें वादस्थानपर जाकर रहो। अन्यथा संघका नाश शीघ्र होगा, श्रुतसागर मुनिने वैसाही किया। रात्रीमें वे दुष्ट संघको मारनेके लिये उद्युक्त हुए। जाते हुए उन्होंने मार्गमें श्रुतसागर मुनिको देखा। वे उनको मारनेके लिये आयुध लेकर खडे हो गये। कोशसे बाहर निकालकर खडे किये तरवारोंसे तोरणकी शोभा उत्पन्न करनेवाले वे चारों मंत्री नगरदेवताने तत्काल कीलित कर दिये। तब उनका अन्तःकरण अतिशय भयभीत हो गया ॥ ४६-४८ ॥ प्रातःकाल राजाने देखकर उन मंत्रियोंको गधेपर बैठाकर तथा उनके मस्तक मुंडवाकर नगरसे बाहर निकाल दिया। तदनंतर वे सब मंत्री नागपुर-हस्तिनापुरके पद्मरथ राजाके पास गये। अतिशय विनयभाव दिखानेसे महामंत्रिपद देकर राजाने उनका रक्षण किया। किसी समय म्लेच्छराजाके क्षोभसे राज्यमें बडा भय उत्पन्न हुआ। तब अनेक उपायोंसे म्लेच्छराजाको बलि नामक सचिवने पकड लिया। राजा आनंदित हो गया और जो तुम चाहते हो वह मांगो ऐसी आज्ञा मंत्रीको उसने दी। मंत्रीने कहा कि मैं सात दिनतक राज्य करना चाहता हूं। राजाने भी मोहसे उसका वचन मान्य किया। आनंदसे बलिको उसने राज्य दिया। तब बलि याचकोंको कुबेरके समान दान देने लगा ॥ ४९-५३ ॥ इसी समय अकंपनाचार्य हस्तिनापुरमें अपने संघके साथ आये थे। वर्षायोगके वे दिन थे। अकम्पन योगिराजने योगियोंके साथ ध्यान-सेवनके लिये वर्षायोग धारण किया। और सर्व मुनियोंको वादियोंके साथ वाद करनेका निषेध किया। और कहा यदि वाद करोगे तो आपके ऊपर अनर्थ उत्पन्न होगा ॥ ५४-५५ ॥ बलि राजाने सैन्यरूपी बाडसे अकंपनाचार्यका संघ घेर लिया। अनंतर अग्निही है स्वरूप जिसका ऐसे यज्ञके द्वारा याज्ञिक ब्राह्मणोंसे सर्व मुनिसंघको बलि उपसर्ग करने लगा ॥५६॥ विष्णुकुमार मुनि मुनियोंपर

विष्णुर्ज्ञात्वोपसर्गं तं गत्वा पद्मरथं नृपम् । वीतरागासने रूढमगदीदीरणान्वितः ॥५७
राज्येऽभिवन्दिते पूज्ये त्वया स्थितेन दुर्जयः । मन्त्री नियन्त्र्यते नैव कथं कथय कोविद ॥
भूपतिः प्राह सप्ताहो राज्यं दत्तं मयाधुना । न निवारयितुं शक्यो भवद्भिर्वार्यतामिति ॥
न विदन्ति खलाः क्षिप्रमखिलं न्यायचेष्टितम् । खलत्वं त्वयि संप्राप्तं यतः पूज्येष्वनादरः ॥
निषेत्स्याम्यहमेनं वै पापिष्ठं पटुतातिगम् । इति वामनको भूत्वा यागभूमिं स आसदत् ॥
विप्राकारधरो धीरोऽभ्यधाद्वाचं बलिं प्रति । वेदार्थविद् द्विजश्चाहं त्वं दाता वाञ्छितार्थदः ॥
सोऽभाणीत्सबलो विप्रो यत्तुभ्यं रोचते लघु । याचस्व वाञ्छितं वित्तं पात्रे दत्तं सुखाय हि ॥
विष्णुर्वाचमुवाचेति देयं मे चरणैस्त्रिभिः । प्रमितं भूतलं मत्वा सर्वेऽवोचन्महादराः ॥६४
स्तोकं किं याचितं विप्र यतो दाता महाबलिः । बहुनालं करे वारि दीयतां विष्णुराजगौ ॥६५
तथा कृते मुनिर्विष्णुर्विष्टपं वेष्टितं हृदा । विक्रियर्द्धिप्रभावेनाकार्षीद्रूपं समुन्नतम् ॥६६

होता हुआ उपसर्ग जानकर पद्मरथ राजाके पास गये। और वीतरागासनपर बैठे हुए राजाको प्रेरणा करते हुए वे इसप्रकार बोलने लगे ॥ ५७ ॥ "सत्पुरुषोंद्वारा वन्दित और मान्य ऐसे राज्यपर बैठकर हे विद्वन्, इस दुर्जन मंत्रीको अन्यायसे परावृत्त क्यों नहीं करते हो ? " ॥ ५८ ॥ राजाने कहा, "हे मुनीश्वर मैंने इससमय सात दिनतक बलिको राज्य दिया है। इसलिये मैं उसको अन्यायसे परावृत्त नहीं कर सकता हूँ। आपही उसे ऐसे अन्यायसे परावृत्त कीजिये" ॥५९॥ मुनिराज बोले, "हे पद्मरथ, दुष्ट लोग संपूर्ण न्यायकी प्रवृत्ति जल्दी नहीं जानते हैं। वे न्यायसे चलना ठीक समझतेही नहीं हैं। परंतु तेरे ऊपर दुष्टताका आरोप आया हुआ है क्यों कि पूज्योंका अनादर प्रत्यक्ष दीख रहा है ॥६०॥ मैं चतुरतासे दूर रहनेवाले इस पापिष्ठको इस अन्यायसे रोकूंगा" ऐसा बोलकर विष्णुकुमारमुनि वामनका रूप धारण करके यज्ञभूमिको चले गये। ब्राह्मणका रूप धारण कर वे धीर-विद्वान् मुनि बलिको इसप्रकार कहने लगे- "हे बले, मैं वेदार्थ जाननेवाला ब्राह्मण हूं और तू इच्छित वस्तु देनेवाला दाता है" ॥६१-६२॥ सामर्थ्यवान् ब्राह्मण बलिमंत्रीने कहा, "हे विप्रवर जो आपको इष्ट है वह आप शीघ्र मांगे; क्यों कि सत्पात्रको इच्छित धन देना सुखका कारण है" ॥६३॥ बलिका भाषण सुनकर विष्णुकुमारमुनि बोले कि "हे बलि मुझे तीन पैड भूमि तू दे"। वामनका वचन सुनकर सर्व ब्राह्मण आदरसे कहने लगे कि- "हे विप्र आप इतना अल्प क्यों मांगते हैं, क्योंकि महाबलिमंत्री दाता है अतः अधिक मांगो"। परंतु वामन विप्रने कहा 'मुझे अधिककी इच्छाही नहीं है। मेरे हाथपर पानी छोडिये'। उनके कहने के अनुसार उनके हाथपर संकल्पजल छोडा गया ॥ ६४-६५ ॥ तदनंतर विष्णुकुमार मुनिने अपने हृदयसे अर्थात् शरीरके मध्यसे जगत्को व्याप्त किया। विक्रियर्द्धिके प्रभावसे उन्होंने अपना रूप अतिशय बडा कर दिया। अतिशय दीर्घ शरीर बनाकर तेजस्वी तपस्वी मुनिने अपने पांव फैलाकर एक पांव मेरुपर्वतके मस्तकपर रख दिया।

पादं प्रसार्य पादैकं दीर्घाङ्गो मेरुमूर्धनि । द्वितीयं मानुषाद्रौ च ददौ दीप्ततपाः पदम् ॥६७
तदा सुरासुराः प्राहुः सवीणा नारदादयः । संगीतिगीतनोद्युक्ताः पादौ संहर संहर ॥६८
सद्यः प्रसादयामासुर्मुनिं चामरचामराः । तुष्टा घोषासुघोषाख्ये महाघोषां वरस्वराम् ॥६९
वीणां घोषवतीं चान्यां ददुः खगनरेशिनाम् । तथा त्वं याचितो विप्रवरेणापि ममाधुना ॥७०
चरणस्य तृतीयस्य नावकाश इति ब्रुवन् । बद्ध्वा बली बलिं विष्णुरुद्ध्रे कोपसंगतः ॥७१
तदुद्दिष्टो निराकार्षीदुपसर्गं निसर्गतः । बलिर्बलिमुनीनां च कुर्वन् रक्षाविधिं वरम् ॥७२
निषेध्याधर्ममात्मीयं वृषं जग्राह ग्राहितः । बलिर्विष्णुर्जगामाशु स्थानं धर्मप्रभावकः ॥७३
क्रमेण विक्रमी पद्मनाभो महादिपद्मकः । सुपद्मश्च ततः कीर्तिः सुकीर्तिर्वसुकीर्तिवाक् ॥७४
वासुकिश्च व्यतीतेषु भूपेष्वेवं च भूरिषु । शान्तनुः शान्तियुक्तात्मा कौरवः कौरवाग्रणीः ॥७५
सवकी तत्प्रिया प्रीता सीता वा रामभूभुजः । पराशरमहीशस्तु तयोः सूनुरभूद्बली ॥७६

तथा दूसरा पांव मानुषोत्तर पर्वतपर रख दिया ॥ ६६-६७ ॥ तेजस्वी तपस्वी मुनिने उस समय सर्व देव, दानव तथा वीणा हाथमें लिये नारदादिक नृत्य, वाद्य और गायनयुक्त संगीत करते हुए पैरोंको अब संकुचित करनेके लिए बारबार कहने लगे। तथा चामरजातिके चामर-देवोंने मुनीश्वरको तत्काल प्रसन्न किया। उन्होंने सन्तुष्ट होकर मधुरस्वरवाली घोषा, सुघोषा, महाघोषा और घोषवती ये वीणायें विद्याधर राजाओंको दी। विष्णुकुमारने बलिराजाको कहा कि, " मुझ विप्रश्रेष्ठने तेरे पास आकर याचना की, मेरे तीसरे चरणको अब कहां स्थान है बताओ " ऐसा बोल कर बलवान ऋषिश्वरने बलिको कोपसे बांध दिया और उसको ऊपर उठाया तब विष्णुकुमार मुनिके द्वारा आज्ञा की जानेपर बलिराजाने विना प्रयास उपसर्गको दूर किया और बलवान् बलिने मुनियोंका रक्षण किया। मुनिराजके निषेध करनेपर बलिने अपना अधर्म छोड दिया और जिनधर्मको ग्रहण किया। इसके अनंतर धर्मप्रभावक विष्णुकुमार मुनि अपने स्थानके प्रति चले गये ॥ ६८-७३ ॥

[कौरवपाण्डवोंके पूर्वजोंका चरितकथन] पद्मरथ राजाके अनंतर कौरववंशमें पराक्रमी पद्मनाभ, महापद्म, सुपद्म, कीर्ति, सुकीर्ति, वसुकीर्ति, वासुकि इत्यादि अनेक राजा क्रमसे व्यतीत होगये। तदनंतर कौरववंशके कौरवराजाओंमें अग्रणी, शांत स्वभाववाला शान्तनु नामक राजा हुआ ॥७४-७५॥ रामचन्द्रको सीता जैसी अतिशय प्रिय पत्नी थी वैसे शान्तनुराजाको 'सवकी' नामक पत्नी अतिशय प्रिय थी। इन दोनोंको 'पराशर' नामका बलवान् पुत्र हुआ ॥७६॥

[पराशरका गंगाके साथ विवाह] रत्नपुर नामक नगरमें जयशील जन्हु नामक

१ ब स पराशरमहीशस्तु

त्वां समुत्सृज्य राज्यश्रीर्ननु किं वृणुते परम् । हित्वा वार्द्धिं महासिन्धुः प्रसरः किं प्रसर्पति ॥
मातामह जगादैवं गाङ्गेयस्ते महान्भ्रमः । भिदेलिमा हि प्रकृतिः कुरुवंशान्यवंशयोः ॥९९
भवेत्स्वभावो न ह्येकः कलहंसबकोटयोः । गङ्गातो मे महामाता नाम्ना गुणवती सती ॥१००
एकां शृणु प्रतिज्ञां मे बाहुमुत्क्षिप्य जल्पतः । गुणवत्यास्तनूजस्य राज्यं नान्यस्य कस्यचित् ॥
आह वै धीवरः स्वामिन् भवितारस्तवात्मजाः । न तेऽन्यस्य सहिष्यन्ते राज्यमूर्जिततेजसः ॥
गाङ्गेयस्तद्वचः श्रुत्वा जगाद विशदाशयः । एतामपि तवेदानीं चिन्तां व्यपनयाम्यहम् ॥१०३
शृणु त्वं व्योम्नि शृण्वन्तु सिद्धगन्धर्वखेचराः । आजन्मतो मयोपात्तं ब्रह्मचर्यमतः परम् ॥१०४
ततो दुहितरं कुर्वन्नाहूयोत्संगसंगिनीम् । धीवरो धीधनो धृत्या जगाद जाह्नवीसुतम् ॥१०५
गुणग्रामैकवास्तव्यो नास्त्येव त्वत्समः पुमान् । पितुरर्थे कृथाः सद्यो यद्ब्रह्मव्रतधारणम् ॥१०६
वृत्तान्तमेकमाख्यामि कुमाराकर्णय ध्रुवम् । एकदा यमुनाकूले विश्रामाय समागमम् ॥१०७

नदी समुद्रको छोडकर क्या सरोवरके प्रति जाती है ? ' ॥ ९४--९८ ॥ इसके अनंतर गांगेयने कहा " हे मातामह, यह आपको केवल भ्रम है । कुरुवंश और अन्यवंशमें अवश्य विशेषता है; क्योंकि कलहंस पक्षी और बगुलेका स्वभाव एक नहीं हुआ करता । मेरी माता गंगासे बढकर सती गुणवतीको मैं महामाता मानूंगा । हे मातामह, बाहु ऊपर उठाकर बोलते हुए मेरी प्रतिज्ञा आप सुनिये ' जो गुणवतीको पुत्र होगा उसेही राज्य मिलेगा दूसरे किसीको नहीं मिलेगा " ॥ ९९--१०१ ॥ इसके अनंतर धीवरने कहा; " हे स्वामिन्, आपके जो उत्कृष्ट तेजस्वी पुत्र होंगे वे अन्यकी राज्यप्राप्ति सहन न करेंगे " । धीवरका वह भाषण सुनकर निर्मल अभिप्रायवाले गांगेयने उत्तर दिया-' हे मातामह आपकी यह चिन्ता भी मैं दूर करता हूं ' ॥१०२--१०३॥ " हे मातामह आप सुनिए, तथा हे आकाशस्थ सिद्ध, गंधर्व, खेचर आपभी सुनें । इतःपर मैंने आजन्म ब्रह्मचर्य स्वीकारा है "। तदनंतर धीवरने अपनी कन्याको बुलाया और उसे अपनी गोदमें बिठाकर बुद्धिधन वह धीवर आनंदसे गांगेयको कहने लगा की तुम गुणसमूहका एकही निवासस्थान हो, इस दुनियामें तुह्मारे बराबरीका दूसरा पुरुष है ही नहीं । क्योंकि तुमने पिताके अर्थ पिताके लिये तत्काल ब्रह्मव्रत धारण किया है ' ॥ १०४--१०६ ॥

[गुणवतीकी जन्मकथा] हे कुमार, मैं एक वृत्तान्त कहता हूं तुम उसे चित्त लगाकर सुनो । " मैं किसी समय विश्रामके लिये यमुनाके किनारे गया था । वहां अशोकवृक्षके तले किसी पापीकेद्वारा छोडी हुई, उसही समय पैदा हुई उत्तम सुंदर बालिका देखी । मैं अपत्यहीन था । हमेशा मुझे अपत्यकी इच्छा रहती थी । इसलिये उस सुंदर कन्याको आश्चर्यचित्तसे लेनेके लिये मैं गया । उस समय शीघ्र आकाशमें इस प्रकारकी वाणी हुई - " कल्याणमय रत्नपुर नगरमें रत्नाङ्गद नामक राजा है, उसे रत्नवतीके उदरसे यह कन्या पैदा हुई है । उसके किसी विद्याधर

अशोकानोकुहतले सश्रीकामुज्झितां वराम् । केनापि पापिनाद्राक्षं तदात्वजातबालिकाम् ॥१०८
अपत्यमनपत्योऽहं स्पृहयालुरहर्निशम् । सुरूपां तामुपादातुं प्रवृत्तोऽस्मि सविस्मयः ॥१०९
तदा सरस्वती व्योम्नि प्रोल्ललासेति सत्वरम् । अस्ति स्वस्तिमये रत्नपुरे रत्नाङ्गदो नृपः ॥११०
तस्य रत्नवतीकुक्षिजातेयं सुतरां सुता । खेचरेणापहृत्यात्र विमुक्ता पितृवैरिणा ॥१११
इत्थं श्रुत्वानपत्यायाः प्रियायास्तामुपानयम् । गुणवत्याख्यया वृद्धा सेयं कृत्रिमपुत्रिका ॥
तदिदानीमुपादास्त्वं मत्सुतां तातहेतवे । इत्युक्तस्तां समादाय जगाम निजपत्तने ॥११३
विवाहविधिना पित्रे स भक्त्या तामयोजयत् । तामाप्य स सुखी भूतो निः स्वो निधिमिवाद्भुतम्॥
तस्याः पराभिधा ख्याता गन्धैर्योजनगन्धिका । तयोः सुतो वराभ्यासो व्यासोऽभूद्व्यसनातिगः
पापह्रासनधर्मालोः सभासभ्येश्वरस्थितेः । सुभद्रा भामिनी तस्य सुभद्रा भद्रभावका॥ ११६
सुतास्त्रयः पुनर्व्याससुभद्रयोः शुभाकराः । धृतराष्ट्रस्तथा पाण्डुर्विदुरस्ते बलोद्धताः ॥११७
भरते हरिवर्षाख्ये देशे भोगपुरे बभौ । भोगेन निर्जितं भोगिपुरं येन महात्विषा ॥११८
अथादिदेवनिर्णीतो हरिवंशकुलो महान् । नृपः प्रभञ्जनस्तत्र समासीत्सुखसागरः ॥११९

शत्रुने इस कन्याका हरणकर यहां छोड दिया है । इस प्रकारकी आकाशवाणी सुन पुत्रपुत्रीरहित मेरी स्त्रीके पास वह कन्या मैं ले गया । गुणवती इस नामसे हमने इसको पाला पोसा। यह हमारी मानी हुई पुत्री है । इस लिये इस समय हे कुमार, मेरी इस लडकीको तुम अपने पिताके लिये स्वीकारो " ऐसा वृत्तान्त सुनकर गांगेय अपने पिताके लिये उस कन्याको लेकर अपने घरके प्रति गया ॥ १०७-११३ ॥ गांगेयने भक्तिसे विवाहविधिसे उस कन्याको पितासे जोड दिया। दरिद्री मनुष्य जैसे अद्भुत निधिको पाकर सुखी होता है वैसे गुणवतीको प्राप्त कर राजा सुखी हुआ । उसका दुसरा नाम योजनगंधा था । उसके शरीरका सुगंध दूरतक फैलता था इसलिये उसे योजनगंधा कहते थे । उन दोनोंको व्यसनोंसे रहित, उत्तम शास्त्राभ्यास करनेवाला व्यास नामक पुत्र हुआ । पापोंके नाशक धर्मपर रुचि रखनेवाले, सभा और सभापतिकी मर्यादापालक ऐसे व्यासकी पत्नी सुभद्रा थी। जो शुभविचारवाली और कल्याणकारक थी । इन दोनोंको अर्थात् व्यास राजा और रानी सुभद्राको शुभकार्योंके आकरभूत सामर्थ्यवान् धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर ये आधार तीन पुत्र हुए ॥ ११४-११७ ॥

[हरिवंशीय राजा सिंहकेतुकी कथा] इस भरतक्षेत्रमें हरिवर्ष नामक देशमें भोगिपुर नामक नगर था। जिसने अतिशय दीप्तिसे भोगिपुर-धरणेन्द्रका नगर पराजित किया था ॥ ११८ ॥ आदिदेवने जिसकी स्थापना की है ऐसे हरिवंशमें उत्पन्न हुआ प्रभंजन नामक महापराक्रमी राजा उस नगरमें रहता था, वह सुखसमुद्रमें निमग्न हुआ था। उसकी रानीका नाम मृकण्डू था । वह रूप लावण्यसे अतिशय शोभती थी । उसके स्तन बडे थे, उसका नितंब सुंदर था । वह

मृकण्डूस्तत्प्रिया रूपलावण्यभरभूषिता। पीनस्तनी सुजघना शचीवेन्द्रस्य संबभौ ॥१२०
कौशाम्ब्यामथ यः श्रेष्ठी सुमुखः सुमुखी धनी। वीरदत्तप्रियायाश्च हर्ता द्रव्यादिवञ्चनैः ॥
वनमालाभिधानायाः स काले मुनिदानतः। प्रभञ्जनसुतः सिंहकेतुरासीज्जिताकर्भमः ॥१२२
तत्रैव शीलनगरे वज्रघोषो महीपतिः। सुप्रभा वनिता तस्य मनोनयननन्दिनी ॥१२३
वनमालाचरा जाता तयोः पुत्री सुरूपिणी। विद्युन्मालाभिधा सिंहकेतुना च विवाहिता॥
वीरदत्तचरेणैव चित्राङ्गदसुरेण तौ। वैराद्धृतौ वने क्रीडां कुर्वाणौ कर्मयोगतः ॥१२५
सूर्यप्रभेण देवेन तन्मित्रेण निवारितः। हन्तुकामः स निक्षिप्य चम्पायास्तौ गतौ वने ॥१२६
तद्भूपे चन्द्रकीर्त्याख्ये विपुत्रे च मृते सति। कृताभिषेकौ तौ तत्र दन्तिना राज्यमापतुः ॥
सिंहकेतुः स्ववृत्तान्तमाख्यच्च पुरतस्तदा। लोकानामथ लोकैश्च हर्षितः संप्रपूजितः ॥१२८
मृकण्ड्वास्तनयोऽयं वै मार्कण्डेय इति श्रुतः। सुतो हरिगिरिर्हेमगिरिर्वसुगिरिस्ततः ॥१२९
तदन्वये गतेऽप्येवं शूरवीरौ महीपती। अथ शूरो नराधीशो वल्लभा सुरसुन्दरी ॥१३०
तस्यासीत्सुरसुन्दर्याः सौन्दर्येण समा मदा। तयोरन्धकवृष्ट्याख्यस्तनयो नयमार्गवित् ॥

इंद्रकी इंद्राणीसी शोभती थी ॥११९-१२०॥ कौशांबी नगरमें सुमुख नामका एक श्रेष्ठी था वह सुंदर मुखवाला और धनी था। उसने वीरदत्तकी धनादिके द्वारा वंचना करके उसकी वनमाला नामक स्त्रीको अपने घरमें लाकर रखा था। वह सुमुखश्रेष्ठी मुनिको दान देनेसे उत्तरभवमें प्रभंजन राजाका सूर्यकी कान्तिको जीतनेवाला सिंहकेतु नामक पुत्र हुआ। उसी देशमें शीलनामक नगरमें वज्रघोष नामक राजा था। उसके मन और आंखोंको आनंदित करनेवाली सुप्रभा नामक रानी थी। जो पूर्वभवमें वनमाला थी वह मरकर उन दोनोंको सौंदर्यवती विद्युन्माला नामक कन्या हुई। सिंहकेतुके साथ उसका विवाह हुआ ॥ १२१-१२४ ॥ वीरदत्त वैश्य मरकर स्वर्गमें चित्रांगद नामका देव हुआ था। सिंहकेतु और विद्युन्माला दोनों क्रीडा करनेके लिये वनमें गये थे। कर्मयोगसे चित्रांगद-देवने उनको देखा। उसकी उन दोनोंको मारनेकी इच्छा थी परंतु सूर्यप्रभदेवने, जो कि चित्रांगदका मित्र था इस कार्यसे चित्रांगदको रोका। तब उसने उन दोनोंको चंपापुरके वनमें रख दिया और स्वयं स्वस्थानको गया ॥१२५-१२६॥ चंपापुरीका राजा चन्द्रकीर्ति पुत्ररहित था। वह उस समय मरगया था और इन दोनोंका हाथीने अभिषेक किया। सिंहकेतुको चंपापुरीका राज्य मिला। सिंहकेतुने चंपापुरीके लोगोंके आगे अपना वृत्तान्त कहा। तदनंतर हर्षयुक्त सिंहकेतु-राजाका लोगोंने आदर किया। मृकण्डूका पुत्र होनेसे सिंहकेतु 'मार्कण्डेय' नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसके हरिगिरि नामक पुत्र हुआ। हरिगिरिको हेमगिरि, हेमगिरिको वसुगिरि इस प्रकार सिंहकेतुके वंशमें अनेक राजा हुए। अनंतर इस वंशमें शूर और वीर ये दो

तस्य भद्रा परा पत्नी सभद्रा भद्रतां गता। चन्द्रवक्त्रा सुवक्षोजा वीक्षितक्षिप्तसज्जना ॥१३२
तयोः शुभाः सदा ख्यातास्तनया नयिनो दश। विशाला भालसच्छोभा दशधर्मा इवाभवन् ॥
समुद्रविजयश्चाद्यस्ततः स्तिमितसागरः। हिमवांस्तृतीयस्तुर्यो विजयो विजयोऽचलः ॥१३४
धारणः पूरणाभिख्यः सुमुखश्चाभिनन्दनः। दशमो वसुदेवाख्यो वसुदेवमहाबलः ॥१३५
सुता कुन्ती कलाकान्ता कुचकुम्भमहाभरा। पूर्णचन्द्राभवदना नितम्बौन्नत्यधारिणी ॥१३६
करग्राहिकटिः कान्त्या सदा कुन्तिततामसा। विकटाक्षसुधाधारा जित्वरी सुरयोषिताम् ॥
द्वितीया तत्सुता मद्री मुद्रितानङ्गसद्रसा। कटाक्षाक्षिप्तविबुधा बुधसांनिध्यधारिणी ॥१३८
समुद्रविजयादीनां प्रियाः प्रीतिरसा मिथः। कथ्यन्ते क्रमतो नूनं शृणु श्रेणिक सांप्रतम् ॥
शिवादेवी शिवाकारा धृतिधात्री धृतिस्वरा। स्वयंप्रभा प्रभाभारा सुनीता नीतिमानसा ॥
सीता सीतासमाकारा प्रियवाक्प्रियभाषिणी। प्रभावती प्रभाभूषा कलिङ्गी कनकोज्ज्वला ॥

राजा हुए। शूर राजाकी रानीका नाम सुरसुंदरी था। वह सौंदर्यसे देवांगनाके समान थी। इन दोनोंका अंधकवृष्टि नामक नीतिमार्गको जाननेवाला पुत्र था ॥ १२७-१३१ ॥ अंधकवृष्टिकी पत्नीका नाम भद्रा था। वह कल्याणसहित, शुभविचारवाली, चंद्रमुखी, सुंदर स्तनवाली और अपनी आखोंसे सज्जनोंके चित्त क्षुब्ध करनेवाली थी। इन दोनोंको नीतियुक्त, शुभ, नित्यप्रसिद्ध दशधर्मके समान दश पुत्र हुए। विशाल, अतिशय सुंदर ललाटवाला पहिला पुत्र समुद्रविजय, दूसरा स्तिमितसागर, तीसरा हिमवान्, चौथा विजय, वह मानो विजयही था। पांचवा अचल, छट्टा धारण, सातवा पूरण, आठवा सुमुख, नौवा अभिनंदन तथा दसवा पुत्र वसुदेव था। यह वसुदेव वसु नामक देवोंके समान महाबलवान् था। राजाको कुन्ती नामक कन्या थी वह कला-चतुर थी। उसके कुचकुंभ बडे थे। मुख पूर्णचंद्रकासा था और नितंब उन्नत था। उसकी कटी हाथसे ग्राह्य थी अर्थात् कमर पतली थी। अपनी अंगकान्तिसे उसने अंधकारको मिटा दिया था। उसके कटाक्ष अमृतकी धारासरीखे थे और वह देवांगनाको अपने रूपसे जीतनेवाली थी। अंधकवृष्टिकी दूसरी कन्याका नाम मद्री था। वह मदनके उत्तम रसको संकुचित करनेवाली थी अर्थात् अत्यंत सुंदरी थी। अपने कटाक्षोंसे वह देवोंको भी तिरस्कृत करती थी। और विद्वानोंका सान्निध्य धारण करती थी ॥ १३२-१३८ ॥ हे श्रेणिक, अब समुद्रविजयादिक नौ भ्राताओंकी आपसमें प्रीति रखनेवाली स्त्रियोंका मैं क्रमसे वर्णन करता हूं तूं सुन। सुंदर आकार धारण करनेवाली शिवादेवी, जिसका कण्ठस्वर लोगोंको सन्तुष्ट करता है ऐसी धृतिधात्री देवी, कांतिभारको धारण करनेवाली स्वयंप्रभा, नीति जिसके मनमें है ऐसी सुनीतादेवी, सीताके समान सुंदर आकार धारण करनेवाली सीतादेवी, प्रियभाषण करनेवाली प्रियवाग्देवी, कान्तिही भूषण जिसका है ऐसी प्रभावती, सुवर्णके समान उज्ज्वलवर्णवाली कलिंगी, तथा उत्तम कान्तिवाली

सुप्रभा सुप्रभा चेति नवानां क्रमतः प्रियाः । मथुरायां सुवीरस्य प्रिया पद्मावती प्रिया ॥
सुतो भोजकवृष्टयाख्यस्तयोस्तस्य वरानना । सुमतिः प्रेयसी जज्ञे सुमतिः सुमनास्तयोः ॥
उग्रसेनमहासेनदेवसेनाभिधाह्वयः । जजृम्भिरे जनानन्दा नन्दनानन्ददायिनः ॥१४४
तत्सुता गुणगन्धारी गन्धारी धृतिधारिका । पूर्णचन्द्रानना नम्रा पटुपीनपयोधरा ॥१४५
उग्रसेनादिभूपानां पत्न्यः पद्मावती शुभा । महासेना परा देवी देवसेना मुदावहा ॥१४६
अथ राजगृहे राजा राजराजविराजितः । राजते राजशार्दूलो बृहद्रथसमाह्वयः ॥१४७
भामिनी श्रीमती तस्य श्रीमती श्रीरिवापरा । तयोः सुतः सुतीव्रांशुर्जरासंधो नरेश्वरः ॥१४८
त्रिखण्डभरताधीशो नराधीशैः सुसेवितः । नवमः प्रतिवैकुण्ठो विकुण्ठः शठशातने ॥१४९
धृतराष्ट्रेण राष्ट्राणां राज्ञा कुन्ती सकुन्तला । पाण्डवे याचिता तोषाद्विवाहार्थमथान्यदा ॥
कुन्ती पित्रा सुतैः सार्धं विमृश्य हृदि संदधे । पाण्डुदोषाय नो देया पाण्डवे चेति निश्चितम् ॥
बहुशः प्रार्थितोऽप्येवं न ददौ तां हि यादवः । सरावः कौरवो मौनं तदा ध्यात्वा हृदि स्थितः ॥

सुप्रभा, ये नौ भ्राताओंकी क्रमसे नौ पत्नियां थीं ॥ १३९-१४१ ॥ मथुरानगरीमें सुवीर राजा राज्य करता था । उसकी प्रिय रानीका नाम पद्मावती था । उनको भोजकवृष्टि नामक पुत्र था । उसकी सुंदरमुखी और निर्मल मनको धारण करनेवाली, सुमति इस अन्वर्थ नामकी अर्थात् सुबुद्धिको धारण करनेवाली पत्नी थी । इन दोनोंको उग्रसेन, महासेन और देवसेन ये तीन पुत्र थे । ये लोगोंको आनंद देनेवाले थे । इन दोनोंको--भोजकवृष्टि और सुमति रानीको गंधारी नामक कन्या थी । वह गुणसुगंधको धारण करनेवाली, धृतिसंतोषसे युक्त, पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली, नम्र, सुंदर और पुष्ट स्तनको धारण करनेवाली थी ॥ १४२--१४५ ॥ उग्रसेन राजाकी पत्नी पद्मावती, वह शुभ–विचारयुक्त थी । महासेन राजाकी रानीका नाम महासेना था । और देवसेनको आनंद देनेवाली पत्नी देवसेना थी । राजगृह नगरमें कुबेरके समान शोभनेवाला, राजाओंमें श्रेष्ठ बृहद्रथ नामका राजा राज्य करता था । इस राजाकी पत्नीका नाम श्रीमती था । वह लक्ष्मीयुक्त थी मानो दूसरी श्रीही थी । इन दोनोंको जरासंध नामक पुत्र हुआ । जो तीव्र किरण धारक सूर्यके समान था । वह त्रिखंड भरतका स्वामी था । अनेक राजा उसकी सेवा करते थे । वह नौवा प्रतिनारायण था और शठोंको--दुष्टोंको शासन करनेमें कुंठित नहीं होता था ॥ १४६-१४९ ॥ अनेक देशोंके अधिपति धृतराष्ट्रने किसी समय पण्डुराजाके साथ सुकेशी कुन्तीका विवाह करनेके लिये आनन्दसे याचना की । तब कुन्तीके पिताने अर्थात् अंधकवृष्टि राजाने समुद्रविजयादिपुत्रोंके साथ विचार करके पंडुराजाको पाण्डुरोग होनेसे उसे कुन्ती न देनेका मनमें निश्चय किया । बारबार याचना करनेपर भी अन्धकवृष्टिने पण्डुराजाको कुन्ती नहीं दी । तब कुन्तीकी याचना करनेवाले धृतराष्ट्रने मनमें विचार कर मौन धारण किया ॥ १५० १५२ ॥

भूपस्तद्रूपसंसक्तः पाण्डुराखण्डलोपमः। न मेने मानसे श्रीमान् कामः स्वास्थ्यं रतिं[1] विना॥
पाण्डुः पाण्डुत्वमापन्नस्तां स्मरन्मानसे महान्। ज्वरीव विह्वलो वेगवानभूद्भूतवेशवत्॥१५४
तद्वियोगाशनिध्वस्तः शालवद् ध्वंससन्मुखः। पाण्डुराजो रराजासौ न भस्मवच्च पाण्डुरः॥
अन्यदा पाण्डुरः पाण्डुर्वने रन्तुं लतागृहे। प्राप्योपहारशय्याढ्ये मुद्रिकां दृष्टवान्गतः॥१५६
अगृह्णान्मुद्रिकां यावत्तावत्कश्चित्खगेश्वरः। पश्यन्नितस्ततोऽयासीत्पाण्डुस्तं पृष्टवानिति॥१५७
किं विलोक्यं त्वयालोक्य कल्पते लोककल्पन। तदेति खेचरोऽवोचल्लोकिता मुद्रिका मया॥
प्रदर्श्य पाण्डुना सापि बभाषे खेचराधिपम्। भवतां महतां मान्य मुद्रिकावीक्षणं किमु॥१५९
अनु चात्र खगाधीश मुद्रिका विस्मृता कथम्। अलीलपद्वियच्चारी विचारचतुरेक्षणः॥१६०
विजयार्धधरावासी वज्रमाली वियच्चरः। प्रियासखः सुखं रन्तुमत्रायासं वने घने॥१६१

[पाण्डुराजाको विद्याधरने अंगुठी दी] इन्द्रके समान वैभववाला पाण्डुराजा कुन्तीके रूपमें आसक्त हुआ था। जैसे मदन रतिके बिना अपनेको सुखी नहीं समझता है, वैसे पाण्डु राजा कुन्तीके विना मनमें अपनेको सुखी नहीं समझता था। अर्थात् कुन्तीकी अप्राप्तिसे वह मनमें दुःखी था। हमेशा मनमें कुन्तीका विचार करनेवाला पाण्डुराजा अधिक पाण्डु हो गया-शुभ्र हो गया, अर्थात् कुन्तीके विचारसे वह अशक्त हो गया और उसकी अंगकान्ति पूर्वसे भी अधिक फीकी हो गई। ज्वरयुक्त मनुष्यके समान वह कुन्तीके बिना विह्वल हो गया तथा पिशाचग्रस्त मनुष्यके समान वेगवान् चंचलचित्त हो गया। कुन्तीके वियोगरूपीवज्रके द्वारा जैसे वज्रपातसे वृक्ष सूखता है वैसा वह राजा सूख गया। उस समय भस्मके समान पाण्डुरवर्णका धारक पाण्डु राजा शोभाहीन हुआ। ॥ १५३-१५५ ॥ एक दिन वनमें क्रीडा करनेके लिये गये हुए शुभ्र कान्तिके धारक पाण्डुराजाने वहां पुष्पोंकी शय्यासे युक्त लतागृहमें पडी हुई मुद्रिका देखी। उसने वह अंगुठी लेली। इतनेमें इतस्ततः दृष्टिपात करनेवाला कोई विद्याधर वहां आया। उसे पाण्डुने पूछा, कि हे लोकपूज्य, देखने योग्य ऐसी कौनसी वस्तु आप देख रहे हैं, आप क्या कर रहे हैं अर्थात आप क्या ढूंढ रहे हो, उस समय विद्याधरने कहा कि मैं मुद्रिका खोज रहा हूं। पाण्डु राजाने विद्याधरको अंगुठी दिखाई और पूछा 'हे मान्य सज्जन क्या आप अपनी अंगुठी देखनेके लिये आये है? हे विद्याधरेश आप अंगुठीको कैसे भूल गये?' विचारचतुर आंखवाले आकाशगामी विद्याधरने इस प्रकार उत्तर दिया। 'हे मित्र, मैं विजयार्द्ध पर्वतपर रहनेवाला वज्रमाली नामक विद्याधर हूं। मैं अपनी प्रियाके साथ इस निबिडवनमें सुखसे क्रीडा करनेके लिये आया था। यहां क्रीडा करके कार्यान्तरसे व्याकुलचित्त होकर जाते समय मेरे हाथसे अंगुठी गिर पडी। उसे

१ स म ग रतिं मारो रतिं विना।

रन्त्वात्र गच्छता छिद्रान्मुद्रिका पतिता करात्। विस्मृत्य गगने वेगाद्गतेन च मया स्मृता॥
तामिष्टां द्रष्टुकामेन परावृत्त्यागतं मया। अकाण्डे पाण्डुराख्यश्चानया का क्रियते क्रिया॥
खग आख्यत्तदाख्यानं मुद्रेयं कामरूपिणी। यथेष्टरूपदा रम्या निरूप्या रूपदायिनी॥१६४
मित्रेयं चेत्त्वया देया साह्वानि कानिचित्करे। स्थीयतां स्थायिनी पश्चात्सिद्धे कार्ये तु दास्यते॥
प्रार्थितो वज्रमाली तां परकार्यकरो वरः। अदात्तस्मै यतोऽप्रार्थ्यो मेघो दत्ते जलं महान्॥
कौरवः करसंक्रान्तमुद्रिकः सूर्यपत्तनम्। सूरभूपकृतावासं कदाचिदगमत्त्वरा॥१६७
ततोऽदृश्यवपू रात्रौ प्रविश्यान्तःपुरान्तरे। कुन्तीनिकेतनं सोऽगात्तद्रूपं हृदि संवहन्॥१६८
तत्रासनसमारूढा गूढाङ्गी दृढसद्रतिः। कुन्ती कुन्तीव कामस्य किरत्कोमलकायिका॥१६९
दोर्दण्डेन विदण्ड्यासौ मदनं मदनातुरा। धत्ते हृदि मदोन्मादमोदिनी मन्द्रमानसा॥१७०
यस्याः पीनपयोवाहभाराद्भारान्नितम्बतः। मध्येकटि कृशा चाभून्मध्यस्थः को न सीदति॥
अनङ्गो युगपज्जित्वा जगज्जिष्णुर्भ्रमन्स्थिरम्।स्थितो यस्यास्स्तने नो चेत्तत्स्पर्शात्प्रगटः स किम्॥

भूलकर मैं आकाशमें वेगसे जा रहा था। उस समय पुनः मुझे उसका स्मरण हुआ। वह अंगुठी मुझे अतिशय प्रिय है। अतः उसे ढूंढनेके लिए मैं यहां लौटकर आया हूं।' पंडुराजाने बीचहीमें उसे पूछा, 'इस अंगुठीके द्वारा कोनसा कार्य सिद्ध किया जाता है?' ॥ १५६-१६३ ॥ विद्याधरने कहा, कि देखो यह सुंदर अंगुठी सौंदर्यको बढानेवाली तथा इच्छितरूप देनेवाली है। तब पाण्डुराजाने वज्रमालीसे प्रार्थना की, कि 'मित्र, यह अंगुठी यदि इच्छितरूप देनेवाली है तो कुछ दिनतक मुझे दे दो। मैं इसे सम्हालकर रक्खूंगा और कार्यसिद्ध होनेपर आपको वापिस दूंगा।' परहित करनेमें श्रेष्ठ विद्याधरने वह उसे दे दी। योग्य ही है, कि श्रेष्ठ मेघकी प्रार्थना करनेपर वह जल देताही है ॥ १६४-१६६॥

[पाण्डुराजाका कुन्तीके महलमें प्रवेश] किसी समय हाथमें अंगुठी धारण कर पाण्डुराजा शूर राजाका निवासस्थानरूप शौरीपुरको त्वरासे गये। तदनंतर कुंतीके रूपको हृदयमें धारण करते हुए अदृश्य शरीरसे अन्तःपुरमें उसके महलमें प्रवेश किया ॥ १६७ ॥ वहां कुन्ती आसनपर बैठी थी। उसने अपने अंगपर वस्त्र धारण किया था। वह दृढ और सुंदर रतिके समान थी। उसका तेजस्वी शरीर कोमल और चारों ओर किरण फैलानेवाला था। वह कुन्ती मानो कामके शरके समान थी ॥१६८॥ मदके उन्मादसे हर्षित, गंभीर चित्तवाली, मदनातुर कुन्ती अपने दण्डके समान बाहुओंसे मदनको दण्डित करके हृदयमें धारण करती थी ॥ १६९ ॥ कुन्तीके पुष्ट स्तनके भारसे तथा नितंबके भारसे शरीरके मध्यमें रहनेवाली उसकी कटी कृश हुई। योग्यही है कि जो कोई किसी कार्यके लिये मध्यस्थ होता है उसे क्या कष्ट नहीं सहन करने पडते हैं? अर्थात् वह कष्ट सहताही है ॥ १७०-१७१ ॥ हम समझते हैं कि हमेशा भ्रमण कर युगपत् जगत्को

यस्याश्च जघनं घ्रात्वा मदनो जीवनं दधे। पद्मवत्पद्मसंचारी तद्रसः षट्पदो यथा॥१७३
चित्रं चित्ररसाप्येषा विचित्राकारधारिणी। विचित्रमृगनेत्राभा नरनेत्रैणबन्धिका॥१७४
विनानया क्षणः क्षीणः क्षीयते मे कथं द्रुतम्। इत्याध्याय बभूवासौ प्रकटाङ्गो गलन्मदः॥
निरूप्य तं निशानाथवदनं सदनं रुचः। कुन्ती कम्पितगाढाङ्गी चकम्पे सपयोधरा॥१७६
यल्ललाटे निविष्टः किमष्टमीमृगलाञ्छनः। यन्मूर्ध्न्ययं धम्मिलाख्यः कामवह्निशिखा ननु॥
यत्कपोललसद्भित्तौ कामोऽचित्रीयत स्फुटम्। अन्यथा वीक्ष्य तौ योषाकाममुद्दीपयेत्कथम्॥१७८
यस्य वक्षःस्थले लक्ष्मी रमते हारसंमिषात्। नो चेत्तद्धृदयं वीक्ष्य लक्ष्मीवान्का कथं भवेत्॥
यद्भुजौ भोज्यनारीणां भुजङ्गाविव पाशकौ। ययोर्लोकनतो लोके बद्धा इव कथं स्त्रियः॥१८०

जीतनेवाला जयशाली मदन कुन्तीके स्तनोंमें स्थिर हुआ है। अन्यथा वह उनके स्पर्शमें प्रकट क्यों होता है ?॥ १७२॥ जैसे पद्म (कमल) में संचार करनेवाला भ्रमर उसके रसका आस्वादन कर जीवन धारण करता है, वैसे पद्मके समान सुंदर कुन्तीके जघनको सूंघ कर मदनने अपना जीवन धारण किया॥ १७३॥ यह कुन्ती चित्र—रसको धारण करनेवाली होकर भी विचित्राकारको धारण करती थी, अर्थात् शृंगारादि नाना रसोंको धारण करती हुई कुन्ती विचित्र विस्मयकारक आकार-शरीरको धारण करती थी। जिसके शरीरपर अनेक काले सफेद आदि रंग हैं ऐसे हिरनके समान कुन्तीकी आंखें थीं। अत एव वह मनुष्योंके नेत्ररूपी हिरनोंको बांधती थी। अर्थात् अपने नेत्रकी शोभासे सर्व लोगोंको अपनी तरफ आकर्षित करती थी॥ १७४॥ इसके बिना छोटासा क्षण भी कैसे बीतेगा: ऐसा विचार कर पाण्डुराजा गर्वरहित होकर शीघ्र प्रकट हुआ॥ १७५॥

[कुन्ती पाण्डुको उसका वृत्त पूछती है] कान्तियुक्त चंद्रमाके समान मुखवाले पाण्डुको देखनेसे पुष्ट स्तनोंको धारण करनेवाली कुन्तीके सर्व अङ्गोंमें कम्प उत्पन्न हुआ। वह मनमें इस प्रकार विचार करने लगी "क्या इसके भालप्रदेशपर अष्टमीका चन्द्र विराजमान हुआ है? क्या इसके मस्तकपर बांधे हुए केश मानो मदनाग्निकी ज्वाला हैं? जिसके कपोलरूपी चमकनेवाली भित्तिमें मानो काम, चित्रके समान स्पष्ट दीख रहा है। यदि यह कल्पना असत्य मानी जाय तो उन कपोलोंको देखकर स्त्री कामसे क्यों उद्दीप्त हो जाती है?" जिसके वक्षःस्थलमें हारके रूपमें मानो लक्ष्मी क्रीडा कर रही है। ऐसा नहीं होता तो इसका वक्षस्थल देखकर पुरुष लक्ष्मीवान् कैसे होता है? इसके दो बाहु भोगनेके लिये योग्य स्त्रियोंको बांधनेके लिये मानो नागपाशही हैं? ऐसा नहीं होता तो इस पुरुषके दो बाहु देखकर जगतमें स्त्रियाँ बद्धकीसी क्यों होती हैं? इस पाण्डुराजाके मुखमें सरस्वती सदा रहती है, लक्ष्मी हमेशा हृदय-मंदिरमें विराज रही है, संपूर्ण शरीरमें सौन्दर्यने स्थान पा लिया है। अब भाग्यसे इसके शरीरमें

यस्यास्ये वाक्सदा शेते इन्दिरा हृत्सुमन्दिरे। सुषमा वपुषि स्थास्याम्यहं कुत्रास्य भागतः ॥
किं सूरः किं शशी किंवा मघवा दर्पदर्पितः। कन्दर्पः सर्पनाथः किमेष किं किन्नरीपतिः॥१८२
ध्यायन्तीति हृदा दध्यौ किमर्थमयमाटितः। मद्धाम्नि सीमसंपन्ने दुर्लङ्घ्ये विघ्नपातिनी ॥
साह साहससंपन्ना साहसिन् सहसा स्वयम्। मत्सद्म छद्मना केन प्रविष्टस्त्वं ककः कथम् ॥
निशम्येति श्रमी चोक्तं परिरम्भणजृम्भणः। उवाच वचनं वाग्मी विदितार्थः कृतार्थवित् ॥
सुश्रोणि श्रोतुमिच्छा चेत् स्वच्छं गच्छ मनोमलात्। वदामि विदिते वीरे वरार्हे त्वां पतिंवरे ॥
कुरुजाङ्गलसद्देशहस्तिनागनरेशिनः। धृतराष्ट्रस्य भ्राताहं क्षितौ ख्यातः शमी क्षमी ॥ १८७
स पाण्डुपण्डितो विद्धि स्वपाण्डुगण्डमण्डलः। अखण्डिताज्ञ ऐश्येनाखण्डलप्रतिमोऽप्यहम् ॥
चित्तं योगीव प्रद्युम्नो रतिं रामां च कामराट्। स्मरन्स्मरातुरश्चाये त्वां त्वदधीनचेतनः ॥
सा जगौ तच्छ्रुतं श्रुत्वा नाथाहमविवाहिता। इत्थं जाते जने याति सापवादापकीर्तिताम् ॥
पितृवाक्यं विना वीरा किं वृणोति स्वयंवरम्। नायुक्तमिति वक्तव्यं वक्तव्यं सर्वसंगतम् ॥

मुझे कहां स्थान मिलेगा ? क्या यह पुरुष सूर्य है ? अथवा चन्द्र है, इंद्र है ? क्या यह गर्वोन्मत्त कामदेव है ? क्या यह शेष-धरणेन्द्र है अथवा किन्नर है ? ऐसे विचार कुन्तीके हृदयमें पाण्डुराजाको देखकर उत्पन्न हुए। मेरा घर सीमायुक्त, दुर्लंघ्य और विघ्नोंका स्थान है। ऐसे मेरे घरमें यह पुरुष किस लिये आया होगा ? साहसी कुन्ती उस पुरुषको अर्थात् पाण्डुराजाको इस प्रकार बोली। हे साहसिन्, अकस्मात मेरे घरमें तुमने स्वयं किसलिये और कैसा प्रवेश किया है ? और तुम कौन हो ? ॥ १७६--१८४ ॥ कुन्तीका भाषण सुनकर वचनचतुर, वस्तुस्वरूपको जानने वाला, कृतार्थज्ञ, श्रमी पाण्डु आलिंगनकी इच्छा करता हुआ इस प्रकार बोलने लगा। " हे सुंदर कमरवाली कुन्ती, यदि तुझे मेरा वृत्तान्त सुननेकी इच्छा है, तो मनोमल हटाकर मनको स्वच्छ करो। वरनेको योग्य, पतिंवरे प्रसिद्ध कुन्ती एकाकिनी सुन ॥१८५--१८६॥ कुरुजांगल नामक उत्तम देशमें हस्तिनापुरके अधिपति जो धृतराष्ट्र राजा है, उसका मैं पृथ्वीमें प्रसिद्ध शान्त और क्षमावान छोटा भाई हूं। मुझे पाण्डुपंडित कहते हैं। मेरे गाल शुभ्र हैं, मेरी आज्ञा कोई खंडित नहीं करता तथा मैं ऐश्वर्यमें इन्द्रके समान भी हूं॥ १८७--८८॥ जैसे योगी अपने शुद्ध चैतन्यका स्मरण करता है, जैसे काम रतीका स्मरता है, और कामी स्त्रीको स्मरता है वैसे कामातुर होकर मैं तुम्हारा स्मरण करता हूं। तुम्हारे अधीन मेरा मन हुआ है। मैं तेरा आदर करता हूं ॥१८९॥ उसका भाषण सुनकर कुन्तीने कहा, कि ' हे नाथ, मैं अविवाहित हूं और यदि आपसे संबंध हो गया तो अपवादके साथ अपकीर्ति होगी। पिताकी आज्ञाके विना वीरा एकाकिनी कन्या स्वयं पतिको नहीं वरती। आप मेरे साथ अयोग्य भाषण न करें। जो सर्वको मान्य है वह भाषण

सोऽवादीद्वेदनाविष्टो मदनस्य तु कामिनि । त्वन्नामाक्षरसन्मन्त्राकृष्टोऽत्रागतवानहम् ॥१९२
कामाज्ञालङ्घनाद्भीरु भीतिर्बेभिद्यते मनः । तद्भीत्या मरणावाप्तिः कामिनां पीडितात्मनाम् ॥
मद्वचो हृदये धत्स्व त्रपावल्लीं च कर्तय । लोकापवादतो भीता मा भूर्भूतार्थवेदिनी ॥१९४
कामदन्तावलः काममुन्मदिष्णुर्मदोद्धतः । सन्नीतिदन्तिपातारमुल्लङ्घ्य स्वेच्छया व्रजेत् ॥
तावत्त्रपालता लोके तावद्धर्ममहीरुहः । तावच्छास्त्रज्ञता यावत्कामदन्ती न कुप्यति ॥१९६
स्वदेहं देहि वा हस्ते मृत्युं मे सुकरे कुरु । वदने वदनं धत्स्व कामिनामीदृशी गतिः ॥१९७
मनो देहि वचो देहि देहं देहि दयानिधे । दत्तं विना न संतुष्टिर्यतोऽर्थी दानतः सुखी ॥
यदीत्थं रोचते तुभ्यं माररोचिष्णुसन्मते । मदनोन्मादनक्रीडां कुरु क्रीडाक्रियोद्यते ॥१९९
दातारं प्रति कामार्थी याति दाता तदर्थिने । दत्ते यतः कृती याच्ञाभङ्गो न शोभते भुवि॥
घूर्णिते घूर्णनं मुक्त्वा प्राघूर्णकविधिं भज । प्राघूर्णकोऽस्म्यहं देवि याच्ञाभङ्गं विधेहि मा ॥
आकर्णाभ्यर्णमर्यादं मारश्चापं च ताडयेत् । पञ्चबाणैर्नरं नारी संताड्य ताडनोद्यतः ॥२०२

आप बोले ' ॥ १९०-९१ ॥ पाण्डुराजा बोला ' हे कामिनी, मैं मदनकी वेदनासे दुःखित हुआ हूं । हे कुन्ती, तुह्मारे नामाक्षररूपी मंत्रमें आकृष्ट होकर यहां आया हूं । कामाज्ञाके उल्लङ्घनमे मुझे भय होता है । भयमे मेरा मन टूट रहा है और कामपीडासे पीडित हुए कामिजनोंको भीतिसे मरणप्राप्ति होती है । हे कुन्ती, तू मेरा वचन मनमें धारण कर, और लज्जावल्लीको जडसे उखाड दे । सत्य परिस्थितिको तू जानती है; अतः लोकापवादसे डरनेकी कोई बातही नहीं है । हे कुन्ती, कामरूपी हाथी अतिशय मदयुक्त होकर मदसे उद्धत हुआ है । वह समीचीन नीतिरूपी महावतको उलंघकर स्वच्छन्दतासे प्रवृत्ति करेगा । जगतमें तबतकही लज्जालता स्थिर रहती है और तबतकही धर्मवृक्ष भी । लोक तबतकही शास्त्रोंकी बातें करते हैं, जबतक कामरूपी हाथी कुपित नहीं होता है । अब तू अपना देह मेरे हाथमें दे अथवा मेरा मृत्यु तू अपने हाथमें ले । मेरे मुखमें तेरा मुख कर अर्थात् तू मुझे चुम्बन दे । क्योंकि कामियोंकी गति ऐसीही हुआ करती है । हे दयानिधे कुन्ती, तू मुझे मन दे, वचन दे और स्वदेहदान भी कर । दिये बिना संतोष नहीं होता क्योंकि याचकको दान मिलनेसे सुख होता है अन्यथा नहीं। काममें रुचि करनेवाली, सुबुद्धिमति कुन्ती, यदि तुझे इसप्रकार मेरा कहना मान्य हो, तो क्रीडामें उद्यत रहनेवाली तू मदनका उन्माद उत्पन्न करनेवाली क्रीडा कर । हे कुन्ती मनोभीष्टवस्तुका इच्छुक याचक दाताके पास जाता है, और वह दाता याचकको इच्छित वस्तु देता है । क्योंकि याचनाभंग करना शोभा नहीं पाता । हे आलस्ययुक्ते, तू आलस्य छोडकर मेरा आतिथ्य कर । मैं तेरा अतिथि होकर आया हूं । हे देवि, मेरी याचनाका भंग मत कर । देखो, वह मदन अपने कानोंतक धनुष्य खींचकर अपने पांच बाणोंसे स्त्रीपुरुषोंको ताडनकर फिर भी ताडन करनेमें उद्युक्त हो रहा है ।

तावत्त्रपा कुलं तावत्तावद्भीतिः परा स्थितिः । तावत्पिता जनस्तावद्यावन्मारो न कुप्यति ॥
त्रपाजवनिकां भित्त्वा तौ प्रमत्तौ मदातुरौ । चेष्टेते चेष्टया युक्तौ वियुक्तौ कालतोऽखिलात् ॥
स तस्याः कण्ठमुद्ग्राहं गृहीत्वा चुम्बनोद्यतः । वदनाम्बुजमारोप्य यथा पद्मं मधुव्रतः ॥२०५
इन्दिन्दिर इवोन्मत्तः पद्माघ्राणनमाग्रतः । तस्या आस्यं समाघ्राय लब्धपूर्वं तुतोष सः॥ २०६
तद्वस्त्राकुञ्चनं कुर्वन्प्रसारणपरायणः । भेजे भोगं भुजाभ्यां स समालिङ्ग्य मुहुर्मुहुः ॥ २०७
कुचकुम्भौ करौ तस्यास्तस्य नागाविवोन्नतौ । सेवेते स्म यथा रक्तौ निधी लब्धसुखौ खलु ॥
स वक्षोजवने तस्या रेमे रामापरायणः । वियोगतार्क्ष्यसंभीतो यथाहिश्चन्दने वने ॥ २०९
वल्गनैश्चुम्बनैर्हासैर्विलासैः क्रीडनैस्ततैः । तौ भावं भजतुर्भक्तौ कमपि प्रीतमानसौ ॥ २१०
कियत्कालं समालिङ्ग्यालिङ्गनैः स्पर्शनैः सुखम् । वदनाघ्राणनोद्युक्तौ तौ लभेतां सुजृम्भणौ ॥
एवं कामसुखेनासौ प्रीणयित्वाथ प्रेयसीम् । पिप्रिये प्रीणितः प्राज्ञः प्रियया को न तुष्यति॥२१२
इत्थं प्रच्छन्नदेहोऽसावसस्थः प्रतिवासरम् । समागत्य तया साकं निःशङ्कः स्थितिमातनोत्॥

जबतक मदन कुपित नहीं होता है तबतक लज्जा, कुल और भीति मानी जाती है । तभीतक मर्यादाका पालन होता है, पिता और अन्य जनको लोक मान्य समझते हैं।' ॥१०२-२०३॥ उस समय उन दोनोंका लज्जारूपी परदा हट गया और वे कामातुर होकर संभोगमें प्रवृत्त हुए, और दीर्घकालसे वियुक्त होनेसे कामचेष्टासे युक्त होकर नानाविध संभोगक्रीडा करने लगे ॥ २०४॥ जैसे भ्रमर कमलको चूसता है वैसे वह पाण्डुराजा उसका कण्ठ ऊपर करके अपना मुखकमल ऊपर रखकर उसके मुखका चुंबन लेने लगा। जैसे उन्मत्त भ्रमर कमलगंध सूंघकर आनंदित होता है वैसे कुन्तीके मुखको सूंघकर अर्थात् चूमकर पाण्डुराजाको अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ । वह उसका वस्त्र संकुचित करता था तथा फिर फैलाता था। तथा अपने दोनों बाहुओंसे उसका आलिंगन करके उसका वह बारबार भोगानुभवन करने लगा। जैसे निधिकुंभोंपर आसक्त बडे नाग उनका सेवन कर सुखी होते हैं, वैसे पाण्डुराजाके दो उन्नत-पुष्ट हाथ कुन्तीके कुचकुम्भोंको आसक्तिसे स्पर्शकर सुखी हुए। जैसे गरुडसे डरनेवाला सर्प चन्दनवनमें रममाण होता है, वैसे वियोगरूपी गरुडसे डरनेवाला पाण्डुराजा कुन्तीके स्तनरूप वनमें रममाण हुआ। भाषण, चुम्बन, हास्य, विलास इत्यादि विस्तीर्ण क्रीडाओंसे आनंदित चित्त होकर अन्योन्यानुरक्त वे दम्पती अपूर्व भावको प्राप्त हुए । वे दोनों अन्योन्य मुखचुंबन करते थे । परस्परालिंगन करते थे, और स्पर्श करते थे। इस प्रकार उत्साह-युक्त वे सुखको प्राप्त हुए । वह चतुर पाण्डुराजा इस प्रकारके कामसुखसे अपनी प्रेयसीको सन्तुष्ट करके स्वयंभी सुखी-सन्तुष्ट हुआ । योग्यही है, कि प्रियाकी प्राप्ति होनेसे किसे संतोष नहीं होता? अर्थात् सभी आनंदित होते हैं । इस प्रकार गुप्तदेही वह पाण्डुराजा कुन्तीमें आसक्त होकर प्रतिदिन उसके महलमें आकर निःशंक होकर उसके साथ आनंदसे रहने लगा ॥२०४-२१३॥

धात्र्या दृष्ट्वान्यदा दृष्टः स कुन्त्या कृतसंगमः। कोऽयं कस्मात्समायातः किमर्थमिति चिन्तितम्॥
गते तस्मिन्समाचष्टे विशिष्टा स्पष्टलोचना। धात्री धृतिविनिर्मुक्ता कुन्तीं कुन्ताग्रमानसा॥२१५
पुत्रि चित्रमिदं ब्रूहि चलचेतोविदारणम्। कोऽयं कुतः समयाति प्रतिघस्रं तव गृहे ॥२१६
इति पृष्टा महाकष्टादनिष्टस्वान्तधारिणी। आचख्यौ सा चलच्चक्षुश्चञ्चला चलदेहिका ॥ २१७
समाकर्णय कर्णाभ्यां कृतिं मे विकृताकृतिम्। कर्मणा कलितः कामी कुरुते किं न दुष्करम्॥
कर्मणा कलिताः के के न नष्टाः क्लिष्टमानसाः। नानानीतिसमायुक्ता यथा प्राग्रावणादयः॥
अघटं घटयत्येव सुघटं घटनातिगम्। कर्मेदं घटयत्येवाचिन्तितं चतुरैर्जनैः ॥ २२०
धात्रि संध्यावसानेऽयमकस्मादागतः पुमान्। मत्सांनिध्यं विधेर्योगाद्विधिः किं न करोति हि॥
एजिता जयनिर्मुक्ता निर्गता खलकर्मगा। जितानेनाजितस्वान्ताहं सुभोगार्थदर्शिना ॥ २२२

[धायको कुन्तीका उत्तर] किसी समय कुन्तीके साथ समागम करते हुए पाण्डु राजाको आंखोंसे देखकर धायने यह पुरुष कौन है ? कहांसे आया है ? और किस प्रयोजनके लिये आया है ? इस बातोंका अपने मनमें विचार किया ॥ २१४ ॥ वह पुरुष (पाण्डुराजा) वहांसे जानेपर गलितधैर्य तथा भालेके अग्रके समान तीक्ष्ण चित्तवाली सज्जन धायने अपनी आंखें बडी २ करके कुन्तीसे भाषण किया। हे पुत्री, कहो चंचल चित्तको विदारण करनेवाली यह अचम्भेकी बात क्या है ? यह पुरुष कौन है और प्रतिदिन तेरे महलमें क्यों आता है ? ॥२१५-२१६॥ धायका यह प्रश्न सुनकर अब अनिष्ट प्रसंग आया ऐसा मनमें विचार करनेवाली, जिसका देह कंप रहा है, जिसकी आखें चञ्चल हो रही हैं, ऐसी कुन्ती महाकष्टसे पीडित होकर इस प्रकार बोलने लगी ॥ २१७ ॥ "हे धाय, तू मेरी विकृत कार्यकी कथा कानोंसे सुन। कर्मके वश होकर कामी-जीव कौनसा दुष्कार्य नहीं करता है ? कर्मके वश होकर क्लेशयुक्त मनवाले कौन कौन प्राणी नष्ट नहीं हुए ? रावणादिक महापुरुष अनेक नीतिओंसे युक्त थे परंतु वे भी क्लेश देनेवाले दुराचारसे नष्ट हुए हैं ॥ २१८-२१९ ॥ यह कर्म बडा विलक्षण है क्योंकि यह नहीं होनेवाला कार्य कराता है। और होनेवाला कार्य नहीं होने देता। चतुर लोगोंसे भी अचिंतित कार्य कर्म सिद्ध कर देता है।" "हे धाय, संध्याकालके बाद कर्मयोगसे यह पुरुष अकस्मात् मेरे पास आया। क्योंकि कर्म क्या नहीं करता है ?। दुष्ट कर्मके उदयसे युक्त मैं इसके आनेसे थरथर कांपने लगी। अच्छे भोगोंको दिखानेवाले इस पुरुषने मेरे न जीते गये चित्तको भी जीत लिया। अत एव मेरा पराजय होगया अर्थात् मैं उसके अधीन हो गयी। जिसकी शरीरकी कान्ति थोडी शुभ्र है, ऐसा यह पुरुष कुरुजांगल देशका स्वामी है अर्थात् व्यास राजाका पुत्र है। मेरे सौन्दर्यका वर्णन

१ ख म संगमः।

कुरुजाङ्गलदेशेशो व्यासराजसुतोऽप्ययम् । मद्रूपाकर्णनासक्तः पाण्डुरापाण्डुरद्युतिः ॥ २२३
मुद्रया रूपमुन्मुच्य लब्धयोद्यानमन्दिरे । आयासीदत्र सांनिध्ये मम भोगार्थमानसः ॥२२४
प्राह धात्री धराकम्पं कम्पयन्तीं निजां तनूम् । विरूपकमिदं पुत्रि किं कृतं कामचेतसा॥२२५
बाला वृद्धा प्रबुद्धा च विकलाङ्गी सयौवना । युवतिर्नरतो वर्ज्याऽन्यथानिष्टसमागमः ॥२२६
बाले बलेन संभुक्तानेनेति मनुजाः किमु । वेत्स्यन्ति कथयिष्यन्त्यनया दुःकर्म ही कृतम्॥
अनेन कर्मणा कन्ये कुलं कुवलयोज्ज्वलम् । निःकलङ्कं तवाद्यापि सकलङ्कं भविष्यति॥२२८
यदि वेत्स्यन्ति वेगेनेदं विदो जनकादयः । विरूपकं तदा काम्यं किं कार्यं च भविष्यति ॥
समङ्गमजया जाता जातनिःश्वासभाजिनी । सगद्गदस्वरा प्राह कुन्ती कुञ्चितविग्रहा ॥ २३०
उपमातर्महामातर्युक्तसर्वार्थकोविदे । करवाणि किमद्याहं कथं कथय कामदे ॥ २३१

सुनकर मेरे ऊपर आसक्त हुआ है । उद्यानके लतागृहमें इसको एक अंगूठी मिली उससे अपना रूप बदलकर भोगमें आसक्त हुआ यह मेरे सन्निध आया है " ॥ २२०-२२४ ॥

[कुन्तीको धायकी फटकार] इस प्रकार कुन्तीसे वचन सुनकर पृथ्वीकंपके समान अपना शरीर कंपित कर धायने कहा, " हे पुत्री, कामाकुल मनसे तुमने यह अकार्य क्यों किया ? ' बालिका, वृद्धी, प्रौढा, अंगविकला-अंगहीन और तरुणी कोई भी स्त्री हो उसे पुरुषसंगति छोडनाही चाहिये, अर्थात् पुरुषसे दूर रहनाही चाहिये । यदि वे दूर न रहेंगी तो अनिष्टप्राप्ति हुए बिना न रहेगी । हे बाले, क्या इसने (पाण्डुराजाने) जबरदस्तीसे इस कन्याका (कुन्तीका) उपभोग लिया है ऐसा लोक समझेंगे ? लोक तो कहेंगे, कि इसनेही दुष्कृत्य किया होगा । अर्थात् हे कुन्ती वह पाण्डुराजा तो निर्दोषही रहेगा और लोग तुझे कलंकित समझेंगे । हे कन्ये, यह तेरे पिताका कुल रात्रिविकासी शुभ्रकमलके समान अद्यापि निष्कलंक है । परंतु तेरे ऐसे कर्मसे वह कलंकित हो जायगा । यदि तेरा यह अयोग्य कार्य ज्ञानी मातापिता आदि शीघ्र जानेंगे तो क्या दुर्दशा होगी कौन जाने ? " । धायके वचन सुनकर कुन्ती शरीरके साथ कम्पित हुई अर्थात् उसका शरीर कांपने लगा और उसकी आत्मामें भी बहुत भय उत्पन्न हुआ । वह दीर्घ निश्वास छोडने लगी । उसका स्वर सगद्गद हुआ और उसका शरीर भी संकुचित हुआ । वह धायसे इस प्रकार बोलने लगी । " हे धाय, तू मेरी बडी माता है, तू युक्तियुक्त सब बातोंको जाननेवाली है । मेरी इच्छा पूर्ण करनेवाली हे माता, अब इस प्रसंगमें मुझे क्या करना होगा तूही बता । हे धाय, निर्दोष शीलसे वंचित हुए मुझे तू उपाय बतला दे । इस दोषको हटाकर मुझे स्वच्छ कर । हे वत्सलमाता, दोषको नहीं चाहनेवाली, मुझपर तुम दया करो । हे जननी, कीर्तिको तोडनेवाला यह मेरा दुःख मृत्युके बिना नष्ट नहीं होगा । अतः मैं स्पष्ट कहती हूं, कि अब मैं शीघ्रही मर जाऊंगी " । कुन्तीके ये दुःखयुक्त वचन सुनकर धायके मनमें दया उत्पन्न हुई । उसका मुख मृत्युके सम्मुख हुआ देख-

वाचं यच्छ कुरु स्वच्छां सच्छीलच्छलितात्मिकाम्। अनिच्छन्तीं हि मां छिद्रं वत्से गच्छ दयां मयि
ऋते मृतेर्न चेयर्ति ममार्तिः कुन्तकीर्तिका। आत्मनोऽतो मृतिं तूर्णं कीर्तयिष्यामि सत्वरम्॥
मृत्यून्मुखं मुखं वीक्ष्य धात्री तस्या धृतात्मिका। जगाद जगदानन्दं ददती सदया द्रुतम्॥
भयं मा भज भोगाढ्ये स्वास्थ्यं गच्छ मनोहरे। यथा ते स्वास्थ्यसंपत्तिः करवाणि तथाप्यहम्॥
समाश्वास्येति तां धात्री विधात्री धृतिसाधनम्। धाम्नि धामसमुद्दीप्तां धारयन्ती स्थितिं व्यधात्॥
दोषस्याच्छादनं धात्री तस्या सर्वत्र बुद्धितः। कुर्वन्ती समयं किंचिन्निनाय नयकोविदा॥
अथ तद्योगतस्तस्या भ्रूणभावो बभूव च। ववृधे क्रमतो भ्रूणो विविधभ्रान्तिभासतः॥२३८
कठिनं जठरं तस्यास्त्रिवलीभङ्गवर्जितम्। गर्भस्य प्रथमं चिह्नं कुर्वन्प्रकटमुद्बभौ॥ २३९
लपनं पाण्डिमोपेतं सन्निष्ठीवननिष्ठुरम्। तुच्छजल्पनसंकल्पमभूत्तस्याः शुभेक्षणम्॥ २४०
स्तनकुम्भौ कञ्चुकाख्यसमाच्छादनच्छादितौ। तत्प्रभावाद्धिरण्याभौ तस्या रेजतुरुन्नतौ॥२४१
सपल्लवा यथा वल्ली संचिता सलिलोत्करैः। तथा सा गर्भभारेण स्तनभारोद्धरा बभौ॥२४२
भ्रूणभारश्रमश्रान्तां कुन्तीं वीक्ष्य कदाचन। जनकौ खेदितस्वान्तौ तां धात्रीं प्रति चाहतुः॥
निष्ठुरे दुष्टतानिष्ठे कनिष्ठेऽनिष्टसंगते। अनिष्टमीदृशं कुन्त्याः कारितं केन च त्वया॥२४४

कर जगतको आनंद देनेवाली, धीर धाय इस प्रकार कहने लगी। 'हे भोगसम्पन्न कुन्ती, तू चिन्ता मत कर, हे मनोहरे, तुझे जैसा सुखलाभ होगा वैसा प्रयत्न मैं करूंगी'। इस प्रकार कुन्तीको धायने आश्वासन दिया। धैर्यका उपाय करनेवाली उस धायने महलमें तेजसे युक्त कुन्तीका आनन्दसे रक्षण किया और मर्यादापालन किया। सभी बातोंमें अपनी बुद्धिसे कुन्तीके दोषका आच्छादन करते हुए नीतिनिपुण धायने कुछ काल बिताया॥ २२५-२३७॥ पाण्डुराजाके संयोगसे कुन्ती गर्भवती हुई। उसका गर्भ क्रमसे बढने लगा। और उसमें कुन्तीको अनेक प्रकारकी भ्रान्ति उत्पन्न होने लगी अर्थात् मस्तक दुखना, चक्कर आना, वमन होना आदि बाधायें उत्पन्न होने लगी। उसका पेट कठिन होने लगा, उदरपरकी त्रिवलीरचना नष्ट हो गई, ये गर्भके प्रथम चिह्न प्रकट शोभने लगे। कुन्तीका मुख सफेत दीखने लगा। उसको कफ होने लगी, किसीके साथ थोडासा बोलनाही उसे पसंद होने लगा और उसकी आंखें सुंदर तेजस्वी दीखने लगी। कंचुकीसे आच्छादित स्तन गर्भके प्रभावसे सुवर्णकान्तिसे सुंदर और उन्नत-पुष्ट दीखने लगे। जैसे जलसिंचित बेल पत्रपुष्पादिकोंसे समृद्ध होकर सुंदर दीखती है, वैसे यह कुन्ती गर्भके भारसे स्तनभारको धारण करती हुई शोभा पाने लगी॥ २३८-२४२॥ गर्भभारके श्रमसे पीडित हुई कुन्तीको देखकर किसी समय मातापिताका मन खिन्न हुआ। वे धायको इस प्रकार बोलने लगे॥ २४३॥ "हे निष्ठुर, दुष्टतामें तत्पर, हे नीच, हे अनिष्ट कार्य करनेवाली धाय, यह कुन्तीका प्रत्यक्ष दीखनेवाला अनिष्ट कार्य तुमने किसके द्वारा कराया है॥ २४४॥ उत्तम कुलमें उत्पन्न

कुलं प्रविपुलं कुल्याः कल्मषीकुर्वते ध्रुवम् । सुता वध्वश्च निःशङ्का विटसंसर्गदोषतः॥२४५
समर्पिता सदा चेयं तव रक्षणहेतवे । दक्षे रक्षा त्वयेदृक्षा समक्षं विहिता लघु ॥ २४६
यद्दोषतो नरेन्द्राणां सदस्सु वयमाकुलाः । अधोमुखा भविष्यामो मषीमार्जितदेहकाः॥२४७
नदी च पातयेत्कूलं नारी पातयते कुलम् । स्त्री नदीवदिदं सत्यं रससंस्कारसंगिनी ॥२४८
नागानां च नखीनां च नारीणां दुष्टचेतसाम् । विश्वासो नैव कर्तव्यो रक्षितानां महाजनैः ॥
स्त्रियः सदा न विश्वास्यास्ता उन्मत्ता विशेषतः । नाग्यः खादन्ति कोपेन यद्वर्तिकं खेदिताः पुनः॥
आत्मजा रक्षणे दत्ता त्वां त्वया चेदृशं कृतम् । दुग्धरक्षाविधौ यद्वन्मार्जारी च पिबेत्पयः ॥
इत्थमुक्ते दराक्रान्ता विक्रान्तिकृतिवर्जिता । सकम्पा स्वेदिला धात्री गतच्छाया जगाविति ॥
अशरण्यशरण्यस्त्वं यादवान्वयपालक । कृपां कृत्वावधानेन विज्ञाप्यं श्रूयतां त्वया ॥ २५३

पुत्री और पुत्रकी स्त्री यदि जारपुरुषका संयोग होगया तो वे निःशंक होकर विशाल निर्मल कुलको निश्चयसे मलिन करती है । हे धाय, हमने रक्षणके लिये हमेशा कुन्तीको तेरे स्वाधीन किया था । परंतु हे दक्षे, तूने हम प्रत्यक्ष होते हुएभी क्या इस प्रकारकी रक्षा की ? इस दोषसे राजाओंकी सभामें हमको दुःखित होकर नीचे मुख कर बैठना पडेगा, और हमारे देहपर अकीर्तिरूपी कालिमा पोती जायगी ॥ २४५-२४७ ॥ नदी किनारेको गिराती है और नारी कुलको गिराती है—कलंकित करती है । स्त्री नदीके समान है यह सत्य है । क्योंकि दोनों 'रससंस्कारसंगिनी' होती हैं । रसके-जलके संस्कारका—स्वच्छतादिकका संग नदीमें होता है, अर्थात् नदीमें स्वच्छ जल होता है और स्त्रीमें कामरसका आधिक्य होता है ॥ २४८ ॥ महापुरुषोंके द्वारा रक्षित होनेपर भी सर्पिणी, व्याघ्री आदि नखवाले प्राणी, और दुष्ट अन्तःकरणकी स्त्रिया इनका विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ २४९ ॥ स्त्रियोंके ऊपर हमेशा विश्वास नहीं रखना चाहिये और उन्मत्त स्त्रियोंपर तो बिल्कुल विश्वास नहीं करना चाहिये । क्योंकि सर्पिणी कोपसे दंशकर प्राणहरण करती है और यदि उन्हें पीडा दी जाय तो कहनाही क्या ! हे धाय हमने हमारी पुत्री रक्षणके लिये तेरे अधीन की थी, और तूने ऐसा अकार्य किया । जिस तरह बिल्लीको दूधकी रक्षाके लिये नियुक्त करनेपर वह हमेशा दूध पिया करती है, वैसे रक्षाके लिये कन्याको स्वाधीन करनेपर तूने अनर्थ कर दिया है " । इस तरह राजाके कहने पर वह धाय धैर्यगलित हुई, वह थर थर कांपने लगी, उसका शरीर पसीनेसे व्याप्त होगया । वह कांतिहीन हो गयी, और इस प्रकार बोलने लगी ॥ २५०-२५२ ॥

[धाय सच्चा वृत्तान्त कहती है]" यादववंशके पालक राजन्, आप दीनोंके अनाथोंके रक्षक हैं । कृपा करके एकाग्रचित्तसे मेरी विज्ञप्ति आप सुनिये ॥ २५३ ॥ हे राजेन्द्र इसमें कुन्तीका दोष नहीं है, और न मेराही परन्तु पूर्व कर्मोंहीका दोष है । वह कर्म नट है और वह सबको

कुन्त्या दोषो न राजेन्द्र न दोषो मम जातुचित् । केवलं कर्मणो दोषस्तत्परः किं न नाटयेत्॥
कुरुजाङ्गलदेशस्य स्वामी कौरववंशजः । पाण्डुराखण्डलाकारोऽखण्डितान्वयपालकः ॥ २५५
कुन्तीप्रार्थनसंलुब्धः क्षुब्धस्तद्रूपचक्षुषा । विश्रब्धः सोऽनया रन्तुं स्तब्धः कामविकारतः ॥२५६
कदाचित्कुन्तिकावेश्म प्रविष्टो विष्टपोन्नतः । करे स मुद्रिकां कृत्वा नानारूपविकारिणीम् ॥२५७
मन्मुक्तयैकया सार्कं कन्यया करपीडनम् । चक्रे कौरवराजेन्द्रो रहस्युरसि दत्तया ॥ २५८
प्रतिवस्रं तया सार्धं स रेमे रमणीयतां । गतो दृष्टो मया पृष्टा सा ब्रूते स्म यथातथम् ॥२५९
एतावत्कालपर्यन्तं रक्षिताच्छादिता मया । अतः प्रभृति नो जाने यद्युक्तं तद्विधेहि भोः ॥२६०
निशम्य दम्पती तौ च विमृश्येति स्वमानसे । आच्छाद्यतामयं दोष इति तावूचतुः स्वयम् ॥
आच्छादिता तथाप्येषा किंवदन्ती क्षितौ गता । तैलबिन्दुर्यथा मुक्तस्तोये विस्तीर्णतां व्रजेत् ॥
अथ सा सुषुवे पुत्रमुद्यन्मित्रसमप्रभम् । पूर्णे मासे महाशोभं शुम्भद्भाभारभूषणम् ॥ २६३

नचाता है ॥ २५४ ॥ कौरववंशमें उत्पन्न हुआ कुरुजांगल देशका स्वामी, इन्द्रके समान सुन्दर आकारवाला पाण्डुराजा अपने अखंडित वंशका पालन करता है। कुन्तीकी याचनामें लुब्ध तथा उसका रूप देखकर क्षुब्ध हुआ, जगतमें उन्नतिशाली वह तीव्र कामविकारसे बेफिक्र होकर किसी समय कुन्तीके महलमें आया। उसने नानारूपोंका विकार उत्पन्न करनेवाली मुद्रिका अपने हाथमें धारण की थी अर्थात् जो रूप प्राप्त करनेकी इच्छा होती है वह रूप तत्काल उससे उसको प्राप्त होता था। अदृश्य रूप धारण कर उसने कुन्तीके महलमें प्रवेश किया। उस समय मैं वहां नहीं थी। अकेली कन्या कुन्तीही वहां थी। उसके साथ राजेन्द्रने पाणिग्रहण किया–गांधर्व विवाह किया। और प्रतिदिन वह रमणीय पाण्डुराजा उसके साथ संभोगक्रीडा करने लगा। एक दिन उसको मैंने देख लिया और कुन्तीको उसके विषयमें पूछने पर उसने यथार्थ वृत्त मुझे कहा है। इतने कालतक मैंने उसका रक्षण किया है, और उसका दोष आच्छादित किया है। अब इसके आगे क्या उपाय किया जाना चाहिये मैं नहीं जानती हूं। जो आपको योग्य जचे वह उपाय आप कीजिए" ॥ २५५-२६० ॥

[कर्णकी उत्पत्ति] धायका कहा हुआ वृत्तान्त राजारानीने सुना। मनमें कुछ विचार कर उन्होंने स्वयं धायसे कहा कि ' इस दोषका आच्छादन कर '। यद्यपि यह वार्ता आच्छादित की थी, तो भी जैसे तैलबिन्दु विस्तीर्ण पानीमें फैल जाता है वैसे वह वार्ता भी जगतमें फैल गयी ॥ २६१--२६२ ॥ नौ महिने पूर्ण होनेपर महाशोभावान्, चमकनेवाला कान्तिसमूहरूपी भूषणसे युक्त, उदित होनेवाले सूर्यके समान, पुत्रको कुन्तीने जन्म दिया। कुन्तीको पुत्र हुआ है यह वार्ता नगरमें फैल गयी। उसे जानकर लोग आश्चर्ययुक्त होगये। और राजाके भयसे लोग उस पुत्रकी वार्ता कानोंमें कहने लगे। कुन्तीके पिता अन्धकवृष्टीने पुत्रकी वार्ता लोगोंके कानोंतक

तदा पुरे जना ज्ञात्वा सुतं जातं सविस्मयाः । राजभीत्या व्यधुर्वार्ता कर्णे कर्णे च तस्य हि॥
कुन्तीपिता तदा ज्ञात्वा किंवदन्तीं सुतस्य च । कर्णजाहं गतां चक्रे कर्णाख्यं तं जनस्य च॥
संमन्त्र्य मन्त्रिभिः सार्धं मञ्जूषास्थमकारयत् । अर्काभं कुण्डलोपेतं सरत्नकवचं नृपः ॥२६६
कर्णाख्याक्षरसद्गर्भपत्रोपेतं सवित्तकम् । मुमोच सूर्यतनयाप्रवाहे वहनत्वरे ॥ २६७
कालिन्दीतीरसंनिष्ठा पुरी चम्पापुरी परा । सौधाग्रलग्नसद्धर्मकुम्भा बाभायते च या ॥ २६८
या केतुहस्तवारेणाह्वयन्तीव सुरासुरान् । नरावतारमुत्कृष्टं वाञ्छतः स्वच्छमानसान् ॥ २६९
पातालवाहिनीसूरतनया परिखाभवत् । यस्याः कृष्णेव संछेत्तुं रुषा पातालवासिनः ॥ २७०
विशिखासख्यसंपन्नो हिमांशुर्यत्र वर्तते । विश्रान्तः स्थितिसिद्ध्यर्थं महान् हि महतः सखा ॥
यस्याः शृङ्गाग्रसंभिन्नश्चन्द्रो धत्ते सुरन्ध्रतः । रन्ध्रं रश्मिकलापाढ्यो निश्छिद्रोऽपि प्रभासुरः॥
यत्प्रासादशिखोत्तम्भिरत्नकुम्भाः सुतामसम् । नैशं च मानसं घ्नन्ति मध्यस्था जिनसत्तमाः॥
श्रीवासुपूज्यसद्गर्भसूतिकल्याणपावनी । योपान्तवनसद्दीक्षाज्ञाननिर्वाणभाजिनी ॥ २७४

पहुंची हुई जानकर उस पुत्रका नाम कर्ण कह दिया । तदनंतर मंत्रियोंके साथ राजाने विचार कर सूर्यके समान कान्तिवाला, कुण्डलोंसे युक्त और रत्नकवच जिसे पहनाया गया है ऐसे उस कर्णबालकको पेटीमें रखवाया । कर्णके वृत्तान्तका निवेदक पत्र, द्रव्यके साथ पेटीमें रख दिया । और वह पेटी त्वरासे बहनेवाले यमुना नदीके प्रवाहमें छोड दी ॥ २६३-२६७ ॥ कालिंदी नदी (यमुना नदी) के तीरपर चम्पापुरी नामक उत्तम राजधानी है। राजप्रासादोंके शिखरपर लगे हुए सुवर्णके कलशोंसे वह अत्यंत शोभा पाती है । उत्कृष्ट मनुष्योंके जन्मकी इच्छा करनेवाले स्वच्छ अन्तःकरणके देवदानवोंको जो चम्पापुरी नगरी ध्वजरूपी हस्तसमूहोंसे मानो बुलाती है । जिस नगरीकी परिखा- (खाई) पातालतक बहनेवाली गंभीर यमुना नदी थी अर्थात् खाईके समान यमुना नदी चम्पापुरीके आसमन्तात् वहती थी। तथा पातालवासि दानवोंका उच्छेद करनेके लिये मानो कोपसे वह काली होगई थी ॥ २६८-२७० ॥ विश्रान्ति लेनेके लिये चन्द्र इस नगरके-महाद्वारसे गोपुरसे मानो सख्य करता था योग्यही है, कि बडे लोगोंके मित्र बडे लोगही हुआ करते हैं । चन्द्र किरणसमूहोंसे परिपूर्ण अतिशय कान्तियुक्त और छिद्ररहित होनेपर भी जिस नगरीके शृङ्गाग्रसे विदीर्ण होनेसे मानो रंध्र धारण करता है । जिस नगरीके महलोंके शिखरोंपर लगे हुए रत्नोंके कुम्भ रात्रीका अंधेरा नष्ट करते हैं तथा लोगोंके अन्तःकरणमें रहनेवाले जिनेन्द्र भगवान् उनके मनके अंधेरेको नष्ट करते हैं । यह चम्पापुरी नगरी वासुपूज्य जिनेश्वरके गर्भकल्याण और दीक्षा कल्याणसे पवित्र हुई थी। तथा समीपके वनमें वासुपूज्य प्रभुके दीक्षाकल्याण, केवलज्ञानकल्यांण तथा मोक्षकल्याणको धारण करती थी । वासुपूज्य जिनेन्द्रके पांचोंहि कल्याण यहांही होनेसे यह नगरी पवित्र हुई थी । यह अंगदेशकी प्रधान राजधानी थी । इसमें अनेक

अङ्गदेशालङ्कृतां प्राप्ता नानाङ्गिगणसंगिनी । अगण्यपुण्यसंगीर्णा रम्भोरूभीरुभासुरा ॥ २७५
भामिनीभासुरास्येन छिन्दन्तीव हिमांशुना । तामसं या सदा भाति सदोद्योतोन्मुखी खलु ॥
दानिनो यत्र सद्दानं दत्त्वा दानार्थमञ्जसा । पात्रेभ्यो रत्नसद्वर्षं लभन्ते लाभभासुराः ॥ २७७
तत्पतिः पालितोनेकसविवेकजनोत्करः । प्रतापपातितागण्यवैगुण्यजनसंश्रयः ॥ २७८
भानुर्नाम्ना गुणैर्भानुर्बभ्रभानुसमद्युतिः । शत्रुदारुक्षये चित्रभानुर्भानुः प्रतापतः ॥ २७९
भानुभानुः क्षयं याति तमिस्रायां कदाचन । नायं दीप्त्या प्रतापेन सदोद्योतितदिङ्मुखः ॥
यद्दानतो जनास्तूर्णं कल्पवृक्षं विसस्मरुः । चिन्तामणौ मतिं तेनुः कामधेनौ न नाप्यहो ॥
वेत्ता शास्त्रविदां मान्यो योद्धा युद्धविदां मतः । योऽभूत्प्रतापपारीणः शत्रुदर्पसुशातनः ॥
तत्पत्नी प्रेमसंपूर्णा राधा याराध्य देवतां । लब्धलक्ष्मीरिवानन्ददायिनी सुखदा शुभा ॥
यस्या रूपं गुणा यस्या यस्याः सौभाग्यमुन्नतम् । यस्या दीप्तिरिदं सर्वं विदुषा केन वर्ण्यते॥

देशोंके लोग निवास करते थे। यह अगणित पुण्योंकी खान थी। केलेके खंभेके समान जिनकी सुंदर जंघायें हैं ऐसी स्त्रियोंसे शोभती थी। चंद्रके समान प्रकाशवाले स्त्रियोंके तेजस्वी मुखसे अंधकारको दूर करनेवाली जो नगरी नित्य प्रकाशयुक्त रहती थी। इस नगरीके दानी जन दान देनाही अपना कर्तव्य समझकर सत्पात्रको सुदान देते थे और पुण्यलाभसे चमकते हुए वे रत्नोंकी वृष्टिको पाते थे ॥ २७१-२७७ ॥

[भानुराजाको कर्णकी प्राप्ति] उस नगरीका राजा अनेक सज्जन विवेकिजनोंके समूहका रक्षण करता था और अपने प्रतापसे उसने अगणित शत्रुओंके आश्रय नष्ट किये थे। उसका नाम भानु था। वह गुणोंसे भी भानु था। उसकी देहकान्ति सूर्यके किरणोंके समान थी। शत्रुरूपी इंधन जलानेमें वह चित्रभानु था--अर्थात् अग्नि था। तथा प्रतापसे वह भानु-सूर्य था। रातमें किरणोंके साथ सूर्य नष्ट होता है परंतु यह अपनी अंगकान्ति और प्रतापसे समस्त दिशाओंके मुख उज्ज्वल करता था। इसके दानसे लोक कल्पवृक्षको शीघ्र भूल गये। अर्थात् राजासे याचकोंको इच्छित दान मिलता था, अत एव वे कल्पवृक्ष, चिन्तामणि और कामधेनुको भूल गये थे। वह विद्वान् था इसलिये उसको शास्त्रके जाननेवाले पण्डित मान देते थे। तथा युद्धकुशल होनेसे योद्धा भी मानते थे। उसने प्रतापका दूसरा किनारा प्राप्त किया था, और शत्रुपक्षको नष्ट कर दिया था ॥ २७८-२८२ ॥ उस भानुराजाकी पत्नीका नाम राधा था। वह अतिशय स्नेह करनेवाली मानो उसकी आराध्यदेवता थी। वह प्राप्त हुई लक्ष्मीके समान आनंद देनेवाली शुभ और सुखी करनेवाली थी। जिसका रूप, जिसके गुण, जिसका उन्नत सौभाग्य तथा जिसकी देहकान्ति ये सर्व किस विद्वानसे वर्णनीय होंगे ? अर्थात् इसके रूप, गुण, सौभाग्य तथा देहकान्ति अनुपम होनेसे उनका वर्णन करनेमें कोई भी विद्वान् समर्थ नहीं था। उपमादिक

नृपस्य हृदये लग्ना वाग्देवीव विराजते । सालङ्कारा सुरीतिज्ञा निर्दोषा या गुणान्विता॥२८५
या रम्भेव परा रम्भा रम्भास्तम्भोरुभासिनी । रंरम्यते शुभाभोगभोगैर्विभ्रमवीक्षणा ॥२८६
पतिसंपत्तिसंपन्ना विपत्तिविमुखोन्मुखा । अरातिसंततित्यक्ता यानपत्यैव केवलम् ॥२८७
अथैकदा धराधीशो दैवज्ञं दैववेदकम् । समाहूय तमप्राक्षीत्सुतो मे भविता न वा ॥ २८८
सोऽप्यष्टाङ्गनिमित्तज्ञो विचार्य निजचेतसि । प्रोवाच वचनं वाग्मी श्रुत्वेति नृपतेर्वचः॥२८९
भानुमान्भानुरद्य त्वं भानो मद्वचनं स्फुटम् । समाकर्णय शब्देन निमित्तेन वदाम्यहम्॥
यदा ते यमुनातीरे मञ्जूषार्भकसंगतिः । ततस्ते भविता नूनं तनूजो जनितादरः ॥ २९१
सार्भका साथ मञ्जूषा वहन्ती यमुनाजले । चम्पाभ्यर्णतटे टंकये टीकते स्म कदाचन॥२९२
तामागतां तटे श्रुत्वा नृपोऽनैषीत्स्वसेवकैः । तां दृष्ट्वाथ समुद्घाट्य ददर्शार्भकमद्भुतम् ॥२९३
तमङ्के स समारोप्य प्रति राधामवीवदत् । नैमित्तिकवचश्चित्ते चिन्तयंश्चतुरोचितम् ॥ २९४

अलंकारोंसे सुशोभित; वैदर्भी, लाटी आदिक पद्धतियोंको जाननेवाली; दोषरहित, ओज, श्लेष, कान्ति, समाधि आदिगुणधारिणी वाग्देवी-सरस्वतीदेवी जैसे राजाके हृदयमें शोभती थी वैसी अलंकारोंसे मंडित, लोकरीतिको जाननेवाली, दुःशीलतादि दोषरहित, और पातिव्रत्यादिगुणसहित वह राधारानी भानुराजाके हृदयसे संलग्न होती हुई शोभने लगी । केलेके स्तंभसमान जंघाओंसे सुंदर दीखनेवाली वह राधारानी रंभाके समानही नहीं, उससे भी अधिक शोभावाली थी । कटाक्षयुक्त आंखें जिसकी है ऐसी वह शुभ रानी विस्तीर्णभोगोंमें आलिंगित थी अर्थात् अनेक प्रकारके भोगपदार्थ उसके पास थे । पतिकी संपत्तिकी वह स्वामिनी थी, विपत्तियोंसे रहित थी । शत्रुओंकी परंपरासे रहित थी, उसका मुख ऊंचा था अर्थात् वह बडी तेजस्विनी थी । परंतु यह सब होनेपर भी वह पुत्ररहित थी ॥ २८३-२८७ ॥ किसी समय भाविदैवको जाननेवाले ज्योतिषीको राजाने बुलाया और पूछा, मुझे पुत्रप्राप्ति होगी अथवा नहीं ? अष्टांगनिमित्तोंको जाननेवाले वचनकुशल ज्योतिषीने मनमें विचार किया और राजाके वचन सुनकर इस प्रकार उत्तर दिया-हे भानु राजन्, " तूं सूर्यके समान तेजस्वी है, हे राजन् तू मेरा वचन सुन, मैं स्पष्ट कहता हूं । शब्द-प्रश्नरूप निमित्तके द्वारा मैं उत्तर कहता हूं । जब यमुनाके किनारेपर तुझे पेटीमें बालककी प्राप्ति होगी तब तुझे जिसका आदर लोक करेंगे ऐसे पुत्रकी प्राप्ति होगी " । किसी समय बालक-सहित वह सन्दूक यमुनाजलमें बहती हुई चम्पानगरीके समीप टांकीसे उत्कीर्ण तटपर आ पहुंची। सन्दूक तटपर आई है यह सुनकर राजा नोकरोंके द्वारा उसे लेगया । उसको देखकर और खोलकर अन्दर अद्भुत बालक उसे दीख पडा । उसे अपनी गोदमें लेकर नैमित्तिकके वचनका मनमें विचार करता हुआ राजा राधाको बोला । शुद्धकार्यको जाननेवाली, समृद्ध और बुद्धिके पारंगत राधे, रूपसे सूर्यको जीतनेवाले इस उत्तम पुत्रको तुम ग्रहण करो । राजाका वचन सुनकर

राधे शुद्धविधानज्ञे समृद्धे बुद्धिपारगे । गृहाणेमं सुतं सारं रूपनिर्जितभास्करम् ॥ २९५
निशम्येति वचस्तस्य कर्णकण्डूयने रता । जग्राह भर्तृवाक्येन सुतं सोत्कण्ठिताशया ॥ २९६
कर्णकण्डूयनं तस्याः सुतसंग्रहणक्षणे । वीक्ष्य बालस्य कर्णाख्यां व्यधात्तत्रापि भूपतिः॥२९७
ववृधे बालकस्तत्र कलया शोभया श्रिया । कौमुद्या तामसातीतः कुमुदो बालचन्द्रवत्॥२९८

इति शुभपरिपाकात्प्राप्तसौभाग्यभारः सकलविबुधसेव्यो दिव्यदेहः सुदीव्यन् ।
विदितसकलशास्त्रो लक्षणैर्लक्षिताङ्गः श्रुतिमतिरतिभायात्कर्णनामा कुमारः ॥ २९९

शास्त्राकर्णनकोविदः किल कलाकीर्तीश्वरः कान्तिमान्
कारुण्याङ्कसमाकुलो कलकृपासंकीर्णचेता यथा ।
कुन्त्याः कोमलकामिनीसुखकरः कम्रः कनीयान्कृती
कानीनः कमलाकरोऽसुपङ्कजे पुत्रः श्रियाऽभाद्रविः ॥ ३००

इति श्रीपाण्डवपुराणे महाभारतनाम्नि भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपाल-
साहाय्यसापेक्षे श्रीकर्णकुमारोत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तमं पर्व ॥ ७ ॥

अपने कानको खुजानेवाली रानीने उत्कंठितचित्त होकर पुत्रको ग्रहण किया॥२८८-२९६॥ पुत्रको ग्रहण करते समय राधाने अपना कान खुजाया यह देखकर वहां भी राजाने उस बालकका नाम 'कर्ण' रखा। जैसे बालचन्द्र कला, शोभा और कान्तिसे बढता है, ज्योत्स्नासे वृद्धिंगत होता है, अंधकारसे दूर रहता है और पृथ्वीको आनन्दित करता है वैसे कर्णकुमार भी कला, शोभा, लक्ष्मीसे बढने लगा। वह अज्ञानरहित अर्थात् पण्डित हुआ। और लोगोंको आनंदित करने लगा ॥२९७-२९८॥ इस प्रकार कर्णको पूर्वजन्मके शुभ कर्मके उदयसे खूब सौभाग्यकी प्राप्ति हुई। सर्व विद्वान उसकी सेवा करने लगे। उसका देह दिव्य था। वह अनेक प्रकारकी क्रीडा करता था, सर्वशास्त्रोंका ज्ञाता था और शुभ सामुद्रिक लक्षणोंसे उसका शरीर संपन्न था। श्रुतमें उसकी बुद्धि संलग्न थी। इस प्रकार वह कर्ण कुमार शोभने लगा॥ २९९ ॥ यह कर्णकुमार शास्त्र सुननेमें निपुण, कला और कीर्तिका स्वामी, कान्तियुक्त, दयाका चिह्न जो दान उससे युक्त था अर्थात् याचकोंको दान देता था। मधुर कृपासे उसका मन व्याप्त हुआ था। वह कुन्तीका पुत्र था। कोमल स्त्रियोंको सुखकर, मनोहर और गुणोंसे ज्येष्ठ, पुण्यवान्, कन्यावस्थामें कुन्तीसे उत्पन्न हुआ, प्राणीरूपी कमलोंको तडागके समान वह कर्ण सूर्यके समान शोभने लगा॥ ३०० ॥

ब्रह्मश्रीपालकी साहाय्यतासे श्रीशुभचन्द्राचार्यके द्वारा विरचित भारत नामक पाण्डवपुराणमें
कर्णकुमारकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला सप्तम पर्व समाप्त हुआ॥

। अष्टमं पर्व ।

शंभवं संभवध्वंसधातारं शंभवं जिनम् । संभवध्वंसिनं वन्दे संभवत्सातसागरम् ॥ १
शृणु श्रेणिक लोकानां महती मूढता मता । ईदृशः कथ्यते कर्णः कर्णेजः कथ्यते जनैः ॥ २
कर्णजाहं गतत्वेन वचसा जन्मसंभवे । मातृन्वये समाख्यातः कर्णः श्रीकर्षणोद्यतः ॥ ३
सुराधाकर्णकण्डूयाक्षणे भूपात्समाददे । बालकं तेन तत्रापि स कर्णः कथितो जनैः ॥ ४
यदि कर्णस्य चोत्पत्तिः कर्णात्संजायते लघुः । अतोऽन्येषां कथं जन्म न संबोभूयते भुवि॥५
कर्णतो नासिकायाश्च मानवानां कथंचन । न दृष्टं न श्रुतं जन्म कर्णस्य च कथं भवेत् ॥ ६
कर्णतो जन्म कालेन नोपनीपद्यते नृणाम् । गोशृङ्गतो भवेद्दुग्धं न कदाचिज्जगत्त्रये ॥ ७
वन्ध्यातः सुतसंभूतिः शिलातः सस्यसंभवः । गगनात्कुसुमोत्पत्तिः शशाच्च शृङ्गसंभवः ॥ ८
पृदाकुवक्त्रतः शुद्धा संपनीपद्यते सुधा । एतत्सर्वं यथा न स्यात्कर्णात्कर्णोद्भवस्तथा ॥ ९

[पर्व आठवां]

जन्मजरामृत्युको नष्ट करनेवाले, तथा सुखसमुद्रको उत्पन्न करनेवाले, सं-उत्तमपद्धतिसे, भव-संसारका, ध्वंसधातारं नाश करनेवाले अर्थात् रत्नत्रयकी पूर्ण प्राप्ति करके जिन्होंने संसारका नाश किया है और जिनसे सुख होता है, ऐसे शंभवनाथ जिनेश्वरको मैं वन्दन करता हूं ॥ १ ॥

[कुन्तीके कानसे कर्ण नहीं उत्पन्न हुआ] हे श्रेणिक, कर्णकी इस प्रकार उत्पत्ति हुई है, तू सुन । लोग कर्णको कुन्तीके कानसे उत्पन्न हुआ कहते हैं । यह उनका कहना महा-मूढतासे भरा हुआ है ॥ २ ॥ लक्ष्मीके आकर्षणमें उद्युक्त हुए कर्णका जन्म कुन्तीसे हुआ । कुन्तीके मातृकुलमें लोग कानको लगकर कर्णकी उत्पत्ति वार्ता कहने लगे इससे कुन्तीका ज्येष्ठ पुत्र कर्ण नामसे प्रसिद्ध हुआ । तथा चम्पापुरके भानुराजासे राधारानीने कानको खुजाते २ बालकको ग्रहण किया था इसलिये भानुराजाके घरमें भी लोग उसे ' कर्ण ' कहने लगे ॥ ३–४ ॥ यदि कर्णकी उत्पत्ति कानसे होती तो अन्य लोगोंकी उत्पत्ति भी कानसे क्यों नहीं होती ? मनुष्योंका जन्म कानसे नाकसे किसी प्रकार होता न देखा न सुना गया है तो कर्णका जन्म इस प्रकारसे कैसा हुआ होगा ? किसी भी कालमें कानसे मनुष्यका जन्म नहीं होता है । त्रैलोक्यमें कभी भी गायके सींगसे दूध उत्पन्न नहीं होता है ॥ ५–७ ॥ वन्ध्यासे पुत्र, शिलासे धान्य, आकाशसे पुष्प और खरगोशसे सींग, और सर्पके मुखसे शुद्ध अमृत ये सब जैसे उत्पन्न नहीं होते हैं वैसेही कानसे कर्णकी उत्पत्ति भी नहीं हुई है । कर्णकी कानसे उत्पत्ति मानना आकाशकमलके सुगन्धका वर्णन करनेके सदृश है । इसलिये हे श्रेणिक, कर्णकी शुद्ध उत्पत्ति जैसी हमने कही

व्योमाब्जसौरभाख्यानसदृशः कर्णसंभवः । ततः कर्णस्य संभूतिः शुद्धा विज्ञायतां त्वया॥१०
सूर्यसेवनतः कुन्त्या जातः पुत्रस्तु कर्णवाक् । तन्मृषात्र नरस्त्रीणां कुतः सूर्येण संगमः ॥११
भानुना पालितो यस्मात्तस्मात्सूर्यसुतोऽप्ययम् । नन्दगोपसुतः कृष्णो यथा गोपाल उच्यते ॥
अथ पाण्डवभूपानां कौरवाणां विशेषतः । यथाशास्त्रं यथालोकमुत्पत्तिः कथ्यते तथा ॥ १३
एकदान्धकवृष्टिश्च तनयैर्नयपेशलैः । सार्धं विचारयामास कुन्त्याः पाणिप्रपीडनम् ॥ १४
यद्यन्येभ्यः प्रदीयेत कुन्ती स्याद्दोषदूषिता । तादृशीं तां परिज्ञाय न ग्रहिष्यन्ति चापरे ॥१५
पटवे पाण्डवे पुत्री प्रदेयातः शुभाप्तये । इति मन्त्रिणमाकृत्य तत्र ते निश्चयं व्यधुः ॥१६॥
भृतमर्त्यान्यसन्नाम्ने व्यासाय वरप्राभृतैः । दूतं संप्रेषयामास सलेखं सुस्वरं क्षमम् ॥१७॥
स गत्वा क्रमतः प्राप्य सदः कौरवभूपतेः । दौवारिकेण संदिष्टो ददर्श दूरतो नृपम् ॥१८॥
मृगेन्द्रासनमारूढं हसन्तमिव भूमिपान् । सोत्कर्षं भावयन्तं वा चलच्चामरवीजनैः ॥१९॥

है वैसी तुम समझो ॥ ८-१० ॥

[सूर्यसे कर्णोत्पत्ति मानना भी मिथ्या है] सूर्यके सेवनसे कुन्तीको कर्ण नामका पुत्र उत्पन्न हुआ यह कथन भी मिथ्या है; क्योंकि मनुष्यस्त्रियोंका सूर्यके साथ संगम होना कैसे संभवनीय है ? भानुराजाने कर्णका पालन किया था, अतः यह कर्ण सूर्यसुत-सूर्यपुत्र नामसे प्रसिद्ध है । जैसे कृष्ण नन्दगोपने पालन किया जानेसे ' नन्दगोपसुत ' ' गोपाल ' इस नामसे कहे जाते हैं ॥ ११-१२ ॥

[पाण्डव-कौरवोंकी उत्पत्ति] पाण्डवभूपाल और कौरवोंकी विशेषतः शास्त्रानुसार और लोकानुसार जैसी उत्पत्ति मानी गई है वैसी हम कहते हैं ॥ १३ ॥ किसी समय अन्धक-वृष्टिराजा नीतिचतुर पुत्रोंके साथ कुन्तीके विवाहका विचार करने लगा । यदि अन्य किसीको कुन्ती दी जायगी तो वह व्यभिचारके दोषसे दूषित मानी जायगी और कुन्तीको सदोष जानकर दूसरे उसका स्वीकार भी नहीं करेंगे ॥ १४-१५ ॥ इसलिये चतुर पाण्डुराजाको अपनी कन्या शुभ- कल्याणके लिये देना चाहिये । इस प्रकार विचार करके मन्त्रीको बुलाकर उन्होंने निश्चय किया ॥ १६ ॥ भृतमर्त्य और व्यास इन दो नामोंको धारण करनेवाले व्यासराजाके पास उत्कृष्ट भेट और लेखके साथ वक्ता और समर्थ दूतको अन्धकवृष्टिने भेज दिया । वह दूत क्रमशः प्रयाण करके कौरवराजा व्यासकी सभाको प्राप्त हुआ, और द्वारपालकी अनुमतिसे व्यासराजाको उसने दूरसे देखा ॥ १७-१८ ॥ व्यासराजा सिंहासनपर बैठे थे । ढुरते हुए चामरोंसे इतर राजाओंको वह हंसते थे, या अपने उत्कर्षकी भावना करते थे । सुंदर छत्रके द्वारा आकाशके भागको भूषित करनेवाले वे सूर्यके सघनप्रकाशको तिरस्कृत कर रहे थे । दिखाये गये निधिके समान लक्षावधि नजरानोंके द्वारा शोभते हुए व्यासराजा मानो भूमिदेवीके प्रकाशमान आभूषणोंके समान सुंदर

भूषयन्तं नभोभागं सदातपनिवारणैः । भानोर्निश्छिद्रमालोकं कुर्वन्तं वा तिरस्कृतम् ॥२०
भान्तं प्राभृतलक्षैश्च निधानैरिव दर्शितैः । भूमिदेव्याः समुद्भासिभूषणैरिव भूषणैः ॥२१॥
जगत्पतेर्जगज्ज्येष्ठं कुण्डलैः कर्णसंगतैः । मण्डितं चन्द्रसूर्याणां मण्डलैरिव संनुतम् ॥२२॥
नानामागधवृन्देन वादिना यशसः श्रुतेः । ब्रुवाणेन यशो राज्ञो दिशान्तस्थितदिग्गजान् ॥२३
क्षरन्तं वाक्षरैः क्षिप्रं सुधाराशिं रसोद्गमम् । वीक्षणैर्वीक्षयन्तं च कटाक्षक्षेपदीक्षितैः ॥२४॥
गृह्णन्तमिव स्वात्मीयाञ्जनान्यदृच्छया स्थितान् । हसन्तमिव हास्येन शत्रून्सेवासमागतान् ॥
बिभ्रतं पाणिपद्मेन कृपाणं कृपणान्परान् । भीषयन्तं मुदा दानं ददतं स्वमहोन्नतिम् ॥२६॥
दर्शयन्तं महोद्योगं युक्तैर्वाक्यैर्विचारणाम् । कुर्वाणं किंचिकीर्षुश्चेति विस्मयकरं नृणाम् ॥
इति दौवारिकेणासौ दर्शितं भूभुजां पतिम् । मुक्त्वा ननाम दूतेशः संपायनमुपायनम् ॥
नाथ शौरिपुरीनाथोऽन्धकवृष्णिरुदीरितः । शास्ति सर्वां प्रजां यद्वन्मरुत्वान्सुरपद्धतिम् ॥
तेनाहं प्रेषितोऽभ्यर्णे तूर्णं ते पाण्डुना सह । सोत्सवं स्नेहयुक्तेन कुन्त्या वीवाहमिच्छता ॥

दीखते थे। जगतमें ज्येष्ठ, श्रेष्ठ और जगत्पति ऐसे व्यासराजा कानोंमें धारण किये हुए कुण्डलोंसे ऐसे शोभते थे, कि मानो चन्द्रसूर्यके मण्डल आकर राजाकी स्तुति कर रहे हों। शास्त्रकी कीर्तिका वर्णन करनेवाले विद्वान वादीके समान स्तुतिपाठक राजाका यशोगान कर रहे थे। दिशाके अन्तमें रहनेवाले दिग्गजोंको राजाका यश सुनाते थे। व्यासराजा बोल रहे थे मानो अमृत पुञ्जके रसको प्रकट कर रहे थे। कटाक्ष फेकनेमें चतुर ऐसी अपनी नजरोंसे वे इधर उधर देखते थे। स्वयं आकर बैठे हुए स्वजनोंके ऊपर मानो अनुग्रह कर रहे थे। सेवाके लिये आये हुए शत्रुओंको देखकर अपने हास्यके द्वारा मानो हंस रहे थे। अपने हस्तकमलसे तरवारको धारण किये हुए वे मानों शत्रुओंको भयभीत कर रहे थे। आनन्दसे दीनोंको दान देते हुए अपने ऐश्वर्यकी महोन्नति दिखानेवाले, योग्य भाषणद्वारा पूछताछ करनेवाले महाराज अब कौनसा कार्य करना चाहते हैं इस विचारसे प्रेक्षकोंके मनको आश्चर्यचकित करनेवाले व्यासराजाको दूतने दूरसे देखा ॥ १९-२७ ॥ इस प्रकार द्वारपालके द्वारा दिखाये हुए राजराज व्यासभूपालके आगे दूतने पत्रके साथ भेट अर्पण कर वंदन किया। अनन्तर वह इस प्रकारसे बोलने लगा। 'हे नाथ, शौरीपुरीके नाथ अन्धकवृष्टि महाराज इन्द्र जैसे सर्व देवोंका रक्षण करता है वैसे प्रजाका रक्षण कर रहे हैं। बडे उत्सवसे कुन्तीके साथ पाण्डुराजाका शीघ्र विवाह करनेकी इच्छा रखनेवाले राजा अन्धकवृष्टिने आपके पास मुझे भेजा है ॥ २८-२९ ॥

दूतका वचन सुनकर व्यास महाराजने कहा कि योग्य बातको कौन नहीं चाहेगा ?

१ ब. मपायनं सपत्रम् ।

श्रुत्वा भूपो वचः प्राह युक्तं कोऽत्र न वाञ्छति। मुद्रिका मणिना योगं यान्ती केन निवार्यते॥
तत्रासक्तं सुतं जानन्पुनः प्रोवाच भूपतिः। यत्र सूरीपुरेशस्य मनस्तत्रोद्यता वयम् ॥३२॥
इति सर्वसमक्षं हि सत्यंकारं व्यधान्नृपः। तयोर्विवाहसिद्ध्यर्थं क्षणेन क्षणसंगतः ॥३३॥
ततो दूतं स संमान्य वस्त्रैराभरणैस्तथा। निर्णीय लग्नदिवसं प्राहिणोत्प्राभृतैः समम् ॥३४
अथ पाण्डुकुमारोऽसौ विवाहाय विनिर्ययौ। नानालङ्करणोपेतो नानाभूपालवेष्टितः ॥३५॥
पाण्डुः पाण्डुरछत्रेणाखण्डाखण्डलसत्प्रभः। वदद्वाद्यसुनादाढ्यो वीजितस्तु प्रकीर्णकैः ॥३६॥
धरामुपरि कुर्वाणस्तुरंगमखुरोत्थितैः। रजोभी रञ्जयन्लोकान् रेजे राजा सुराजवत् ॥३७॥
पप्रथे प्रथिमानं स रथैः सारथिसंयुतैः। सार्थैः समर्थतां नीतैर्मन्दिरैरिव जङ्गमैः ॥३८
दन्तिनो दन्तघातेन घातयन्तो धराधरान्। सार्धं नेतुं तदा नेदुर्नादयन्तो हि दिग्गजान् ॥
मित्राणि छत्रछन्नानि मित्रमण्डलभानि च। मोदान्मुमुदिरे तेन सार्धगामित्वसद्धिया ॥४०
आनकाः कामुका नेदुरिवाच्छादनछादिताः। कराङ्गुलिप्रिया बाढं गाढालिङ्गनतत्पराः ॥४१

अंगुठीका रत्नके साथ संबंध होनेवाला होगा तो उसे कौन दूर करेगा। कुन्तीके ऊपर अपने पुत्रका मन आसक्त हुआ है, यह बात व्यास राजा जानते थे। वे पुनः कहने लगे, कि जिसमें सूरीपुरेश अन्धकवृष्टि महाराजका मन संलग्न है उस कार्यमें हम भी उत्सुक हैं अर्थात् वे जो चाहते हैं हम भी वही चाहते हैं। ऐसा बोलकर सर्व भूपोंके प्रत्यक्ष राजाने आनंदके साथ तत्काल विवाहकी सिद्धिके लिये प्रतिज्ञा की ॥ ३०-३३ ॥ तदनंतर वस्त्रोंसे और आभरणोंसे राजाने दूतका सन्मान किया। तथा लग्नके दिनका निर्णय करके प्राभृतके साथ उसे भेज दिया ॥ ३४ ॥

[विवाहार्थ पाण्डुराजाका प्रयाण] तदनंतर अनेक अलंकारोंसे सजा हुआ, अनेक भूपालोंको साथ लेकर राजा पाण्डु विवाहके लिये प्रयाण करने लगा। उसके मस्तकपर शुभ्र छत्र था। उसकी कान्ति इन्द्रके समान अखंड दीखती थी। उसके आगे नानावाद्योंका ध्वनि हो रहा था। किंकर उसके ऊपर चामर ढोर रहे थे। घोडोंके पादाघातसे धूलि आकाशमें सर्वत्र फैल गई उससे मानो पाण्डुराजाने पृथ्वीको आकाशमें कर दिया है ऐसा भ्रम होता था। राजा पाण्डु लोगोंको उत्तम राजाके समान अनुरंजित करते थे। सारथियोंसे युक्त रथोंके द्वारा पाण्डुराजाने अपना महत्त्व खूब बढाया था। वे रथ शिल्पकारोंसे दृढ बनाये गये चलते हुए घरोंके समान दीखते थे। अपने दांतोंके आघातोंसे पर्वतोंको तोडनेवाले हाथी अपने साथ दिग्गजोंको ले जानेके लिये गर्जना करने लगे थे। पाण्डुराजाके मित्र छत्रोंसे सहित होकर उसके साथ जा रहे थे उस समय वे सूर्यमंडलके समान शोभाको धारण कर रहे थे। पाण्डुराजाके साथ हम जा रहे हैं इस विचारसे वे अतिशय हर्षित हुए थे ॥ ३५-४० ॥ नगारे रूपी कामीपुरुष आच्छादनवस्त्रसे आच्छादित होते हुए गाढालिंगनमें उत्सुक होकर करांगुलिरूपी प्रिय स्त्रिओंको मानो बुला रहे थे। झालरोंसे सुंदर दिखनेवाले नगारे

नेदुर्नटगणा नित्यं नटीभिः पटवस्तदा । रम्भानृत्यं समुत्साहे कोपान्निरसितुं यथा ॥४२॥
जग्रन्थुर्ग्रन्थगीतानि गन्धर्वा गर्वगुण्ठिताः । विवाहसमये जेतुं हाहातुम्बरनारदान् ॥४३॥
मङ्गलानि सुकामिन्यो गायन्ति स्म शुभस्वनैः । विवाहगमने तस्य जेतुं देवाङ्गना इव ॥४४
मात्रा मङ्गलकर्तव्यं सिद्धशेषां समाश्रितः । नीतोऽसौ निर्जगामाशु विवाहार्थं कृतोत्सवः ॥
मार्गे कश्चिदुवाचेदं पश्य भूप प्रियामिव । शालिनीं कमलाकीर्णां नदन्तीं च नदीं पराम् ॥
विलोकय धराधीशमचलं त्वामिवोन्नतम् । सवंशं पार्थिवोपेतं सत्पादाश्रितसद्गणम् ॥४७॥
नाथ नृत्यन्ति मार्गेऽस्मिन्विवाहोत्सविनो मुदा । मयूरीभिर्मयूराश्च सुनटीभिर्यथा नटाः ॥

वस्त्रोंसे भूषित हुए कामी पुरुषोंके समान दीखते थे। और हाथकी अंगुलियां जिनसे नगारे बजवाये जाते थे प्रियस्त्रियोंके समान दिखती थीं। ऐसा मालूम पडता था मानो बजते हुए नगारे अपनी प्रियाओंको आलिंगन देनेको बुला रहे हैं। चतुर नटगण नटियोंके साथ नृत्य करने लगे। मानो विवाहकल्याणके समय रंभाका नृत्य कोपसे दूर करनेके लिएही नाचते हो। गर्वसे भरे हुए गंधर्व-लोक विवाहसमयमें हाहा, तुंबरु, और नारदको जीतनेके लिये स्तुतियोंके गीत रचकर गाने लगे। विवाहके लिये प्रयाणकी वेलामें सुवासिनी स्त्रियां शुभ स्वरोंसे मानो देवांगनाओंको जीतनेके लिये मंगल-गायन गा रही थीं। उस समय सुभद्रा माताने मंगल कर्तव्य समझकर आरती उतारकर पाण्डुराजाको सिद्धपरमेष्ठियोंकी चरणशेषा धारण करवाई। तदनंतर पाण्डुराजा शीघ्र बडे उत्सवसे विवाहके लिये निकला ॥४१–४५॥ मार्गमें पण्डुराजाका कोई मित्र उसे इस प्रकार कहने लगा— हे मित्र देखो कमलोंसे परिपूर्ण, और कलकल शब्द करती हुई यह नदी कमलमालासे शोभनेवाली और मधुर शब्द करनेवाली प्रियाके समान दीखती है। किसी मित्रने कहा कि हे नराधीश, आपके समान यह पर्वत है। आप उन्नत-ऐश्वर्यशाली हैं और पर्वत उन्नत–ऊंचा है। आप सद्वंश–उच्च कुलमें उत्पन्न हुए हैं और पर्वत सद्वंश–उत्तम बाँसके वनसे भरा हुआ है। आप पार्थिवोपेत–राजाओंसे युक्त हैं और पर्वत पार्थिवोपेत–पाषाणोंसे युक्त है। आप सत्पादाश्रितसद्गण हैं अर्थात् आपके उत्तम चरणोंका आश्रय सज्जन समूहने लिया है और पर्वतके भी नीचेके भागका आश्रय शत्रुओंने लिया है। अर्थात् हे राजन् आपसे भयभीत होकर आपका शत्रुगण पर्वतके गुहादिक नीचले भागका आश्रय लेकर रहा है। इस प्रकार पर्वतने आपका अनुकरण किया है। हे नाथ, आपके विवाहका उत्सव मनानेवाले नट जैसे नटियोंके साथ नृत्य करते हैं वैसे इस मार्गमें मयूरियोंके साथ मयूर नृत्य कर रहे हैं। हे नाथ, मार्गके ये वृक्ष आपके समान दीखते हैं। आप महाच्छायः—अतिशय कान्तिसम्पन्न हैं। और वृक्ष महाच्छाया विशाल छायाको धारण करनेवाले दीखते हैं। आप सफल–कार्यकी सिद्धिसे युक्त हैं, पल्लवार्दिनः आप पल्लवोंसे यानी मित्रोंसे युक्त हैं, और वृक्ष पल्लवार्दिनः कोमल पत्तोंसे निबिड हैं। आप समुन्नत–ऊंचे–श्रेष्ठ हैं और वृक्ष समुन्नत

महीरुहा महाच्छायाः सफलाः पल्लवार्दिनः । प्राघूर्ण्यं कुर्वते तेऽद्य भवन्तो वा समुन्नताः ॥४९
कोलं पश्य महापङ्कमग्नं मलकुलाविलम् । तमोमूर्तिं वनान्तस्थं विपक्षमिव तेऽधुना ॥५०॥
एवं पश्यन्कुमारोऽसौ मार्गान्स्वर्गानिवापरान् । सबुधान्सविमानान्सतिलोत्तमांश्चचाल सः ॥
आगच्छन्तं परिज्ञाय कौरवं यादवेश्वरः । सन्मुखं सन्मुखीभूतविधिर्वेगात्समागमत् ॥५२॥
अथ तौ च समाश्लिष्य मिलितौ नम्रमस्तकौ । कुशलालापसंबद्धौ चेलतुः स्वां पुरीं प्रति ॥
या तोरणमहापादा नम्रकेतुसुबाहुका । नटन्तीव महानाट्या मातरिश्वनटादृता ॥५४॥
शातकुम्भमहाकुम्भशुम्भच्छोभाभिराजिता । क्वचिन्मङ्गलसद्गीतिपूर्णपूर्णस्तनी वरा ॥५५॥
रङ्गरङ्गावलीपूर्णस्वस्तिका च क्वचित्क्वचित् । स्वस्तिसंपूर्णसच्चूर्णनरराजविराजिता ॥५६॥
याह्वयन्तीव भूपालान्प्रासादोद्भूतसद्रवैः । गायन्तीव सदा गानं कामिनीगीतसंगमात् ॥५७
हसन्तीव सदा नाकं द्वारबद्धसुमाल्यकैः । चन्द्रकान्तोपला यत्राकाण्डे चन्द्रांशुपीडिताः ॥

अतिशय तुङ्ग हैं । आपके समानहीं वृक्ष होनेसे वे आपका आज मानो अतिथिसत्कार कर रहे हैं । हे मित्र, इस वनमें ये वनभूकर महापङ्कमग्न-विपुल कीचडमें बैठे हैं । और मलकुलाविल-और मलसे भरे हुए हैं, अंधकारके समान काली आकृतिको धारण करनेवाले हैं मानो आपके शत्रुके समान दीखते हैं । क्योंकि आपके शत्रुभी महापङ्कमग्न-महापापसे संयुक्त हैं, मलकुलाविल-मलसे जमीनके धूलसे व्याप्त-भरे हुए हैं, तमोमूर्ति अंधकारके समान काले हैं । इस प्रकार कुमार पाण्डु सबुध, सविमान, सतिलोत्तम मार्गोंको देखता हुआ प्रयाण करने लगा । मार्ग 'सविबुध' विद्वानोंसे भरा हुआ था । 'सविमान' घरोंसहित था । 'सतिलोत्तम' उत्तम तिलोंके खेतोंसे सहित था और स्वर्गभी 'सविबुध' देवों से युक्त, 'सविमान' विमानसहित तथा 'सतिलोत्तम' तिलोत्तमा नामक अप्सरासे युक्त होता है ॥ ४६-५१ ॥ जिसका भाग्य सन्मुख हुआ है ऐसा यादवेश्वर-अंधकवृष्टि राजाभी कौरव-कुरुवंशोत्पन्न पाण्डुराजाको आते हुए देखकर उसके सन्मुख बडे वेगसे चला गया । पाण्डुराजा और यादवेश्वर अंधकवृष्टि दोनोंने समीप आकर नम्र मस्तक होकर अन्योन्यको आलिंगन दिया । तदनंतर कुशल वार्तालाप करते हुए अपनी नगरीके प्रति-शौरी नगरीके प्रति चलने लगे ॥ ५२-५३ ॥

[शौरीपुरीका वर्णन ।] यह शौरीपुरी बहिर्द्वाररूपी बडे पैरोंको धारण करती थी । नम्र ध्वजरूपी बाहुओंको उसने धारण किया था । वायुरूपी नटसे सत्कारको प्राप्त होकर मानो महानृत्य कर रही थी । सुवर्णके महाकुंभोंकी चमकनेवाली कान्तिसे सुंदर दीखनेवाली वह नगरी मानो पूर्ण पुष्ट स्तनोंको धारण करनेवाली स्त्रीही दीखती थी । क्वचित् स्थानमें मंगलगायनसे परिपूर्ण थी, इस नगरीमें क्वचित् स्थानमें नाना रंगावलियोंसे पूर्ण स्वस्तिक थे । यह नगरी स्वस्तिसंपूर्ण-कल्याणपरिपूर्ण ऐसे नरश्रेष्ठोंसे क्वचित्स्थानमें पूर्ण भरी हुई थी । यह नगरी प्रासादोंमें-महलोंमें उत्पन्न

मुञ्चन्ति जलसंघातान्नाटयन्तः शिखावलान् । कुर्वन्तो जनतानन्दं मेघा इव गृहस्थिताः ॥
प्रतिबिम्बं स्वमालोक्य यत्र स्फटिकभित्तिषु । सपत्नीदरतो नार्यो घ्नन्त्यस्तद्धसिता जनैः ॥
हरिन्मणिदृषद्बद्धां कं वीक्ष्य मृगशावकाः । तृणादनधिया यान्तो विलक्ष्याः सन्ति यत्र च ॥
धनेन धनदं धीरास्तर्जयन्त्यन्यथा कथम् । जिनजन्मोत्सवे यत्र श्रीदो रत्नानि वर्षति ॥६२
एवं तौ तां पुरीं प्राप्य यादवेशो जनाश्रये । शुम्भत्स्तम्भमहाशोभे कौरवं चावतारयेत् ॥६३
सुमुहूर्ते शुभे लग्ने विवाहविधिकोविदैः । महाभुजां स्रजोद्दीप्तां वेदीं निन्ये स सोत्सवः ॥६४
सौदार्यं च समाधुर्यं कान्तिकान्तं गुणाकरम् । वव्रे च कौरवं कुन्ती सुकाव्यमिव भारती ॥६५
मद्री कुन्तीमहास्नेहाज्जनकाद्यैः समादृता । कौरवं सोत्सवं वव्रे रामं सीतेव सद्गुणा ॥६६
बहुभिः पूजितः पाण्डुरखण्डैर्वस्त्रभूषणैः । दन्तावलै रथैरश्वैः सुवर्णैः शस्त्रसंचयैः ॥६७॥
ततः कन्याद्वयं लात्वा सभोगो भोगिवद्ययौ । पुरं नागपुरं श्रीकं कुमारः कौरवाग्रणीः ॥६८

हुए मधुर स्वरसे मानो राजसमूहको बुला रही थी। स्त्रियोंके गीतके संगमसे मानो गायन गा रही थी। द्वारोंपर बंधे हुए पुष्पमालाओंसे यह नगरी मानो स्वर्गको हंस रही थी। इस नगरीके घरोंको लगे हुए चन्द्रकान्तमणि चन्द्रके किरणोंसे अकालमें पीडित होकर मयूरोंको नचाते हुए मेघोंके समान पानीके समूह–प्रवाह उत्पन्न करते थे। जिस नगरीमें स्फटिकमणियोंकी भित्तीमें अपनाही प्रतिबिम्ब देखकर सौतके भयसे उसके ऊपर जब आघात करती थी तब लोगोंके द्वारा उनका उपहास किया जाता था। इस नगरीमें पन्नारत्नोंसे खचित जमीनको देखकर हरिणोंके बच्चे तृणभक्षणकी बुद्धिसे उनके पास जाते थे परंतु उनको खिन्न होना पडता था। इस नगरीके धीर धनिक पुरुष अपनी धनसम्पत्तिसे कुबेरकी भी खबर लेते थे। यदि ऐसा नहीं होता तो इस नगरीमें जिनजन्मोत्सवके समय कुबेर रत्नोंकी वृष्टि क्यों करता? ऐसी सुंदर नगरीमें उन दोनोंने प्रवेश किया। अनंतर अंधकवृष्टिने चमकीले स्तंभवाले अत्यंत रमणीय प्रासादमें कौरवराज पाण्डुकुमारको ठहराया ॥ ५४–६३ ॥ विवाहविधिको जाननेवाले पुरोहित मालाओंसे सुशोभित और विस्तृत वेदीपर पांडुकुमारको उत्सवपूर्वक ले गये ॥ ६४ ॥ वहां सरस्वतीके समान कुन्तीने औदार्य, माधुर्य, कान्ति आदि गुणोंसे मनोहर काव्यके समान श्रीपाण्डुकुमारको वर लिया। पाण्डुकुमार उदार चित्त मधुरभाषी और सुंदर थे। तथा सत्य बोलना आदि अनेक गुण उनमें थे। ऐसे पाण्डुकुमारके साथ कुन्तीका विवाह हो गया। कुन्तीके ऊपर मद्रीका गाढ प्रेम था। मातापिताके द्वारा जिसका आदर किया गया ऐसी मद्रीकन्याने भी हर्षसे सद्गुणी सीताने जैसे रामको वर लिया था वैसे कुन्तीके महास्नेहसे वश होकर पाण्डुराजको वर लिया। अनेक अखण्ड वस्त्र, अलंकार, हाथी, घोडे, रथ, सुवर्ण और शस्त्रसमूह देकर अंधकवृष्टिने पाण्डुराजाका–जामाताका आदर सत्कार किया ॥६५–६७॥

[स्त्रियोंकी चेष्टायें] विशालदेही धरणेन्द्र जैसा अपने लक्ष्मीसंपन्न नगरमें प्रवेश करता

प्रविशन्पुरनारीभिः पुरं पाण्डुः प्रवीक्षितः । मुक्तनिःशेषकार्याभिर्वर्याभिर्निजकर्मणि ॥६९
काचित्पृच्छति भो भद्रे क पाण्डुः क च गच्छति । भूत्या च कीदृशा सम्यक्प्रविष्टः पत्तनं शुभम् ॥
काचिज्जगाद सुभगे एह्येहि शुभमङ्गले । तं द्रष्टुं कौतुकं तेऽद्य यदि त्वां दर्शयाम्यहम् ॥७१
काचिच्च मज्जने सक्ता श्रुत्वा यान्तं महीपतिम् । दधाव धावनं मुक्त्वार्द्धवस्त्रपरिधानका ॥७२
काचिद्भोजनवेलायां स्थिता भोजनभाजने । पाण्डोः समटनं श्रुत्वा मुक्त्वा तन्निर्गता गृहात् ॥
रुदन्तं स्वार्भकं हित्वा काचिदन्यार्भकं हठात् । अयासीच्च समादाय विचारपरिवर्जिता ॥७४
काचिच्च दर्पणे वक्त्रं लोकयन्ती लसद्द्युति । यान्ती प्रवृद्धहस्तेव सादर्शा दृश्यते जनैः ॥७५
वल्भमानं पतिं हित्वा प्रागल्भ्यादभ्रविभ्रमा । बभ्राम वीक्षितुं काचित्तं पुरीं ग्रथिलेव च ॥७६
अलङ्कारविधौ सक्ता सालङ्कारकरण्डकान् । हित्वा गतेर्भयाद्द्रष्टुं काचित्तमचलत्तदा ॥७७
कण्ठस्य भूषणं कट्यां कण्ठे च श्रोणिभूषणम् । दधाव दधती काचित्को विवेको हि कामिनाम् ॥

है वैसे भोगसंपन्न पाण्डुकुमारने अपनी दो पत्नीयोंको साथ लेकर वैभवपरिपूर्ण हस्तिनापुरमें प्रवेश किया। अपने गृहकृत्योंमें चतुर नगरनारियां अपने स्नानादि-कार्य छोडकर नगरमें प्रवेश करनेवाले पाण्डुकुमारको देखनेके लिये दौडने लगीं ॥६८–६९॥ कोई स्त्री अपनी सखीको पूछती है— " हे भद्रे, पाण्डुकुमार कहां है ? वह कहां जाता है ? और वह कैसे ऐश्वर्यके साथ इस शुभ नगरमें प्रवेश कर रहा है मुझे उसका सब हाल कहो ? " तब उसकी किसी सखीने इस प्रकार कहा— " हे सुभगे, हे शुभमंगले तुम आओ, आओ यदि तुम्हें आज उसको देखनेका कौतुक होगा तो तुम्हें मैं अवश्य दिखाऊंगी " ॥ ७०–७१ ॥ कोई स्त्री स्नान कर रही थी इतनेमें उसने राजा आ रहा है ऐसी वार्ता सुनी की झट स्नान करना छोडकर और आधाही वस्त्र पहिनकर वह उसे देखनेके लिये दौडी ॥ ७२ ॥ कोई स्त्री भोजनके समय भोजनका पात्र लेकर भोजन कर रही थी, परंतु पाण्डुराजाका आगमन सुनकर भोजन छोडकर उसे देखनेके लिये घरसे निकल पडी ॥७३॥ किसी स्त्रीने रोते हुए अपने बालकको छोडकर किसी दूसरीकेही बालकको उठा लिया और विचार-रहित होकर वह राजाको देखनेके लिये गई अर्थात् यह बालक मेरा है या अन्यका है इतना भी विचार उसने नहीं किया ॥ ७४ ॥ कोई स्त्री अपने तेजस्वी मुखकी कान्ति दर्पणमें देख रही थी, परंतु राजाका आगमन सुनकर हाथमें दर्पण लेकरही वह निकली। दर्पणके साथ उसे देखकर मानो उसका हाथ बढ गया है ऐसा लोग समझने लगे ॥७५॥ कोई स्त्री भोजन करते हुए पतिको छोडकर तारुण्यसे अपना भ्रूविलास दिखाती हुई राजाको देखनेके लिये चल पडी और पगलीसी नगरमें घूमने लगी ॥ ७६ ॥ कोई स्त्री अपने शरीरपर अलंकार धारण कर रही थी, परंतु राजा जल्दी जावेगा इस भीतिसे वह अलंकारके करंडे वैसेही छोडकर राजाको देखनेके लिये गई ॥७७॥ किसी स्त्रीने कंठका भूषण (हार) कमरमें और कमरका भूषण गलेमें धारण किया और वह राजाको

कज्जलेनापरा भाले तिलकं तिलकेन च । अञ्जनं नेत्रयोः काचित्कुर्वाणा पथि निर्गता ॥७९
प्रकटस्तनकुम्भाभा विपरीतात्तकञ्चुका । हसितागात्परैः काचित्का लज्जा कामिनां किल ॥८०
काचिज्जगाद सद्वृद्धा स्थूला च शकटावहा । सखि मां वीक्षितुं लात्वा त्वं याहि गमनोत्सुका ॥
भ्रूणभारपरिभ्रष्टा विसंभ्रमा भ्रमातिगा । बभ्राम भ्रान्तितः काचित् स्त्रीणां हि गतिरीदृशी ॥
अलब्धमार्गा गच्छन्ती परा मार्गविरोधिकाम् । प्रत्युवाच सुपन्थानं देहि देहीति भाषिणी ॥
तरुणीं तरुणी काचित्पातयन्ती पुरःस्थिताम् । चचाल चलचित्तापि चञ्चला जलवीचिवत् ॥८४
बभाण भामिनी काचित् दृष्ट्वा तं नृपनन्दनम् । ताभ्यां युतं ततं श्रीभिरिति हर्षसमाकुला ॥
सखि केनात्र पुण्येनैताभ्यां योगं समाप च । पाण्डुः पाण्डुरछत्रेण लक्षितो लक्ष्यलक्षणः ॥
लक्ष्मीकान्तिकलापाभ्यामाभ्यां योगेन रञ्जितः । अयं चार्योविपाकेन समाप्नोति परां श्रियम् ॥

देखनेके लिये दौडी। योग्यही है कि कामिजनोंको विवेक कैसे रहेगा? ॥ ७८ ॥ किसी स्त्रीने राजाको देखनेकी अभिलाषासे गडबडीमें अंजनका तिलक भालमें किया और कुंकुमसे नेत्र आंजे। और मार्गमें राजाको देखनेके लिये आकर वह खडी हो गई ॥७९॥ कोई स्त्री, जिसने गडबडीसे उलटी कंचुकी पहिनी थी, जब राजाको देखनेके लिये आई तब उसके प्रगट स्तनकलशोंकी कान्ति देखकर लोग हँसने लगे। योग्यही है, कि कामियोंको लज्जा कैसी? अर्थात् वे तो निर्लज्ज होते हैं ॥ ८० ॥ गाडीमें बैठाकर ले जाया सकेगी इतनी स्थूल कोई वृद्ध स्त्री किसी स्त्रीको कहने लगी कि हे सखि, तुम जानेके लिये उत्सुक दीखती हो मुझे लेकर तुमभी जाओ ॥ ८१ ॥ गड-बडीसे जानेसे कोई स्त्री गर्भके भारसे मार्गमें गिर पडी प्रथम तो वह भ्रमरहित थी परंतु गिर पडनेसे उसको चक्कर आने लगा तब वह इधर उधर भ्रमण करने लगी। ठीकही तो है– स्त्रियोंकी ऐसीही गति होती है ॥ ८२ ॥ एक स्त्री जा रही थी परंतु दुसरीने उसका मार्ग रोक रखा था। तब मार्ग न मिलनेसे वह रोकनेवालीको कहने लगी सखि, मुझे मार्ग दे दो, देदो ऐसा वह बोलने लगी ॥ ८३ ॥ पानीकी लहरीकी समान चंचल तथा चंचल चित्तवाली कोई तरुण स्त्री अपने आगे खडी हुई दुसरी तरुण स्त्रीको गिराकर आगे चलने लगी ॥ ८४ ॥ कुन्ती और मद्रीसे युक्त तथा लक्ष्मीसंपन्न ऐसे व्यासपुत्र पाण्डुराजाको देखकर हर्षित हुई कोई स्त्री इस प्रकार बोलने लगी— " जिसके शारीरिक सामुद्रिक उत्तम लक्षण देखने लायक हैं तथा जो शुभ्र छत्रसे पहिचाना जाता है ऐसे पाण्डुकुमारके साथ किस पुण्यसे हे सखि, इन दोनोंने योग प्राप्त किया है? कहो ॥ ८५–८६ ॥ लक्ष्मी और कान्तिसमूह इनके योगसे तथा कुन्ती और मद्रीके योगसे रंजित हुआ यह पाण्डुकुमार पुण्योदयसे उत्तम शोभाको प्राप्त हो रहा है ॥ ८७ ॥ हे सखि, कुन्ती और मद्रीने पूर्व-

---

१ प पुण्यवि°, ब चार्यवि° ।

आभ्यां द्वाभ्यां सखि ब्रूहि किं कृतं सुकृतं द्रुतम् । पूर्वजन्मनि येनायं वरो लब्धो विचक्षणः ॥
दत्तं दानं सुपात्रेभ्यस्तपस्तप्तं सुदुःकरम् । किं वाभ्यां भक्तिभारेण सेवितः श्रीगुरुर्महान् ॥८९
चैत्यालयेऽथवा बाले वर्यया च सपर्यया । चेकीयितो जिनो देव आभ्यां सभ्यसमक्षकम् ॥
अहार्याचर्यचर्या च चरिताभ्यां शुभेच्छया । अन्यथा कथमीदृक्षं मृगाक्षं वरमाप्नुयात् ॥९१
अखण्डमण्डलं ग्लौवत्पाण्डोश्छत्रं सुपाण्डुरम् । पिण्डीकृतं यशोवृन्दमिव संशोभते शुभम् ॥९२
अनेन पाण्डुनाखण्डखण्डं नीताश्च दस्यवः । शस्त्रसंघातघातेन घातिनाद्य सुघस्मराः ॥९३॥
इत्थं संस्तूयमानोऽसौ जनैः प्राभृतहस्तकैः । सुन्दरं मन्दिरं प्राप पाण्डुः प्रबलशासनः ॥९४
तयोः स्वमन्दिराभ्यर्णमाकीर्णे पूर्णसंपदा । निकेतने सुकेत्वाढ्ये ददौ वासाय भूपतिः ॥९५
ताभ्यां भोगान्परान्भूपो बुभुजे भोगवित्सदा । गरीयः सुकृतं यस्य किं तस्य स्याद्दुरासदम्॥
सुकुन्तीस्तनसंस्पर्शात्सदास्याब्जसुपानतः । तस्याभून्महती प्रीतिः प्रेम्णे वस्त्विष्टमानसम्[1] ॥

जन्ममें शीघ्र कौनसा पुण्य किया था; जिससे इन दोनोंको यह चतुर वर-पति प्राप्त हुआ है। इन दोनोंने सुपात्रोंको दान दिया होगा, दुष्कर तप तपा होगा। अथवा इन दोनोंने अतिशय भक्तिसे महान् श्रीगुरुकी सेवा की होगी, अथवा इन दो कन्याओंने जिनमंदिरमें उत्तम प्रभावक पूजाके द्वारा जिनदेवकी आराधना सभ्योंके समक्ष बारंबार की होगी। अथवा अहार्य-दृढ और आचर्य-आचरने योग्य ऐसी चर्या-आर्यिकाका चरित्र इन दोनोंने शुभ-पुण्यकी इच्छासे पाला होगा अन्यथा इस प्रकारका हरिणनेत्र वर इनको कैसे प्राप्त होता? ॥८८-९१॥ यह पाण्डुराजाका शुभ्र छत्र चंद्रके समान अखंडमंडल है, और मानो इकट्ठा हुआ उसहीका शुभ यशःसमूह शोभने लगा है। घात करनेवाले इस पाण्डुराजाने शस्त्रोंके आघातसे पापी भक्षक शत्रुओंके टुकडे टुकडे कर दिये हैं। इस प्रकार हाथोंमें भेट लिए हुए लोगोंके द्वारा प्रशंसित हुआ, जिसकी आज्ञा कठोर-अनुल्लंघनीय है ऐसा पाण्डुराजा अपने सुन्दर महलको प्राप्त हुआ ॥ ९२-९४ ॥ पाण्डुराजाने अपने महलके समीपही पूर्ण संपदासे भरे हुए उत्तम ध्वजोंसे भूषित ऐसे दो महल कुन्ती और मद्रीके निवासार्थ दिये। भोगोंका स्वरूप जाननेवाला पाण्डुराजा उन दोनों रानियोंके साथ हमेशा उत्कृष्ट भोग भोगने लगा। योग्यही है, कि जिसका विशाल पुण्य है उसको कौनसी वस्तु या भोगसामग्री दुर्लभ होगी? ॥ ९५-९६ ॥ कुन्तीके स्तनस्पर्शसे, और उसके मुखकमलके प्राशन करनेसे उसको अत्यंत हर्ष हुआ। मनकी इष्ट वस्तु प्राप्त होनेपर वह प्रीतिके लिये होती है अर्थात् इष्ट वस्तु प्राप्त होनेपर मन अतिशय हर्षित होता है। भौंरा जैसे कमलके सुगंधसे तृप्त नहीं होता है, वैसे कुन्तीके मुखकमलसे रसका सुगंध ग्रहण करनेवाला पाण्डुराजा तृप्त नहीं हुआ। योग्यही

[1] ग प्रेम्णे वास्त्विष्टमानसम्, ख प्रेम्णेव श्लिष्टमाश्रितम्।

तद्वक्त्राब्जाद्रसामोदं संहरन्नातृपन्नृपः। चञ्चरीक इवाम्भोजान्मारसेवा न तृप्तये ॥ ९८
कटाक्षवीक्षणै रम्यैः स्मितैश्च कलभाषणैः। बबन्ध सा मनस्तस्य स्वस्मिन्नत्यन्तसुन्दरैः ॥
मनस्विनी मनोऽबध्नात्कामपाशायिते लघु। कण्ठे बाहुलते तस्य गाढमासज्य कामिनी॥
स्पर्शं च कोमले पाणौ सौगन्ध्यं च मुखाम्बुजे। शब्दमालपिते तस्या देहे रूपं न्यरूपयत्॥
तर्पयामास निःशेषं सोऽक्षग्रामं विशेषवित्। प्रेप्सोरैन्द्रियिकं सातं गतिर्नातः पराङ्गिनः ॥
तद्वध्वमृतमासाद्य रोगीव दिव्यभेषजम्। सेवमानः स कालेऽभूत्सुखी निर्मदनज्वरः ॥१०३
कदाचित्सदनोद्याने रेमेऽसौ युवतीयुतः। कदाचिद्बहिरुद्याने वल्लीवेश्मविराजिते ॥ १०४
क्रीडाद्रौ स कदाचिच्चाक्रीडयत्कामिनीद्वयम्। कदाचिद्विजहाराशु नदीपुलिनभूमिषु ॥
दीर्घिकासु कदाचित्स ताभ्यां चिक्रीड वारिभिः। कदाचिद्विन्दुकक्रीडां चकार क्रीडितप्रियः॥
एवं तथाविधैर्भोगैर्जिनेन्द्रमहिमोत्सवैः। सत्पात्रदानतो निन्ये कालस्तेषां महान्किल ॥
अथ भोजकवृष्णेश्च सुता सच्छीलशालिनी। गान्धारी गुणगांधारी बुधबोधितमानसा॥१०८

है कि कामसेवा कभीभी तृप्ति उत्पन्न नहीं करती है ॥ ९७-९८ ॥ सुंदर कटाक्ष, मधुर हास्य मधुर भाषण, इन अत्यंत मोहक उपायोंसे कुन्तीने अपने विषयमें पाण्डुराजाका मन बांध लिया। पाण्डुराजाके गलेमें कामपाशके समान अपने दो बाहुपाश कुन्तीने गाढ बांधकर उसका मन शीघ्र बांध दिया। अर्थात् अपने बाहुपाशोंसे पाण्डुराजाके गलेको आलिंगन देकर उसके मनको अपनेमें कुन्तीने अत्यंत अनुरक्त किया। उस पाण्डुराजाने कुन्तीके कोमल हस्तोंमें स्पर्श, उसके मुखकमलमें सुगंध, उसके मधुरस्वरमें शब्द, और उसके देहमें रूपका अनुभवन किया। इस प्रकार कामका विशेष स्वरूप जाननेवाले पाण्डुराजाने अपनी दो पत्नीओंके साथ भोग भोगकर अपने संपूर्ण इन्द्रियोंको तृप्त किया। योग्यही है कि ऐन्द्रियिक सुखको प्राप्त करनेकी उत्कट इच्छावाले प्राणीको इससे दूसरा उपाय नहीं है ॥ ९९-१०२ ॥ जैसे रोगी मनुष्य दिव्य औषधका सेवन कर योग्य कालमें ज्वररहित होकर सुखी होता है वैसे उन दो वल्लभारूपी अमृतको पाकर और उसका योग्य कालमें सेवन कर वह मदनज्वररहित और सुखी हुआ ॥ १०३ ॥ पाण्डुराजा कभी अपने महलके बगीचेमें अपनी प्रियाके साथ क्रीडा करता था और कभी नगरके बाह्य उद्यानके सुंदर लतागृहोंमें रममाण होता था। कभी कभी क्रीडापर्वतपर अपनी दोनों वल्लभाओंको रमाता था। और कभी नदीके सिकतास्थलोंमें वह क्रीडा करता था ॥ १०४-१०५ ॥ वह पाण्डुराजा कभी उन वल्लभाओंके साथ जलक्रीडा करता था, और कभी कभी अपनी स्त्रियोंके साथ वह कंदुकक्रीडा करता था। इस प्रकार अनेक भोग भोगते हुए जिनेन्द्रके प्रतिष्ठोत्सव करते हुए उन्होंने दीर्घकाल व्यतीत किया ॥ १०६-१०७ ॥

[धृतराष्ट्र और विदुरका विवाह]— भोजकवृष्टि राजाकी गुणोंसे श्रेष्ठ और उत्तम

या जिगाय निशानाथं वक्त्रेण नेत्रतो मृगीम्। रतिं रूपेण गत्या च दन्तावलवधूं सदा ॥
धृतराष्ट्रेण गान्धारी विवाहविधिना वृता। यशस्वतीव पुरुणा शतपुत्रा भविष्यति ॥ ११०
अथो कुमुद्वती नाम देवकक्षितिपात्मजा। विदुषा विदुरेणापि प्रेमतः पर्यणीयत ॥ १११
अथैकदा मुदा सुप्ता शयनीये निशान्तिमे। यामे ददर्श सुस्वप्नानिति कुन्ती सुमानसा ॥११२
मातङ्गमदसंलिप्तगण्डमुद्दण्डमुत्करम्। वार्द्धिं गम्भीरनादाढ्यं जलकल्लोलशालिनम् ॥ ११३
जैवातृकं सज्ज्योत्स्नं च जगदानन्ददायकम्। कल्पवृक्षं चतुःशाखं ददतं चार्थिने धनम् ॥
प्रबुद्धा वीक्ष्य सुस्वप्नान्गता पाण्डुं सुमण्डिता। मण्डनैर्वरवस्त्रैश्च कुन्ती सत्कुन्तलावहा ॥११५
नत्वार्द्धासनमारूढा पृच्छन्ती स्वप्नजं फलम्। तेनोचे गजतः पुत्रो भविता ते वरानने ॥
सागरादतिगम्भीरो गभीरधिषणाधरः। हिमांशोर्जगदानन्दं दास्यतीति स्फुटं प्रिये ॥११७
कल्पशाखिफलं विद्धि सुतस्ते वाञ्छितार्थदः। चतस्रो वीक्षिताः शाखास्त्वया तत्र सुशोभनाः ॥
तद्भ्रातरस्तु चत्वारो भवितारः सुजित्वराः। एवं श्रुत्वा सती कुन्ती मुमुदे मुग्धमानसा ॥

शीलको पालनेवाली, विद्वानों द्वारा सुशिक्षित मनवाली गांधारी नामक कन्या थी। वह सदा अपनी मुखशोभासे चन्द्रको, अपने नेत्रोंसे हरिणीको, रूपसे रतीको, और गतीसे गजवधूको अर्थात् हथिनीको जीतती थी। आदिभगवानने जैसे यशस्वतीके साथ विवाह किया था और उनको सौ पुत्र हुए थे वैसे धृतराष्ट्रने गांधारीके साथ विवाहविधिके अनुसार विवाह किया और धृतराष्ट्रके संगसे उसको सौ पुत्र उत्पन्न होंगे। धृतराष्ट्रके विवाहानंतर देवकराजाकी कन्या कुमुद्वतीके साथ विदुरका प्रेमसे विवाह हुआ ॥ १०८-१११ ॥ किसी समय शुभ विचारवाली कुन्ती शय्यापर सोयी थी। उसने रात्रीके पश्चिम प्रहरमें शुभ स्वप्न देखें। वे इस प्रकार थे- मदसे जिसका गण्डस्थल लिप्त हुआ है और जिसने अपनी बडी शुण्डा ऊपर उठाई है ऐसा हाथी, गंभीर गर्जना करनेवाला और जलकी लहरियोंसे शोभनेवाला समुद्र, जगतको आह्लादित करनेवाला ज्योत्स्नापूर्ण चंद्र, याचकोंको धन देनेवाला चार शाखाओंसे युक्त कल्पवृक्ष इन चार स्वप्नों को देखने पर वह जागृत हुई। तदनंतर सुकेशी, उत्तम अलंकार और वस्त्रोंसे भूषित कुन्ती पाण्डुराजाके पास गई। राजाको उसने नमस्कार किया, उसने कुन्तीको अर्द्धासनपर बैठाया। तब उसने राजाको स्वप्नोंके फल पूछे। राजाने कहा हे सुमुखि, गजस्वप्नसे तुझे पुत्र होनेवाला है। समुद्रस्वप्नसे वह अतिशय गंभीर प्रकृतिका विद्वान् होगा, और चंद्रस्वप्नसे होनेवाला पुत्र निश्चयसे हे प्रिये, जगतको आनंद देनेवाला होगा। कल्पवृक्ष देखनेका फल यह है, कि जो तुझे पुत्र होगा वह इच्छित पदार्थों को देनेवाला होगा और उसकी जो चार सुंदर शाखायें देखी गई हैं उनसे होने वाले पुत्रके चार भ्राता जो शत्रुको जीतेंगे, उत्पन्न होनेवाले हैं। स्वप्नके ये फल सुनकर मुग्धचित्त-वाली पतिव्रता कुन्ती आनंदित हुई ॥११२-११०॥

अच्युताद्विच्युतं देवं सा दधे गर्भपङ्कजे। पुण्यतः किं दुरापं स्यात्सुतोत्पत्त्यादिकं सदा॥
ववृधेऽथ क्रमाद्गर्भस्तस्या हर्षकरो नृणाम्। विपक्षपक्षक्षेपिष्ठः स्वजनानन्ददायकः॥ १२१
वीक्ष्याथ पाण्डुरां पाण्डुः सभ्रूणां शुभमावहाम्। मुमुदे तां यथा खानिं रत्नरञ्जितभूमिकाम्॥
·त्रिवलीभङ्गभावेन या वक्तीव सुगर्भतः। अरीणां भङ्ग एवात्र भविता नान्यथा गतिः॥१२३
मृत्सादनसमीहातस्तस्या गर्भे स्थितः पुमान्। भूमिं भोक्ष्यति सर्वां च साधयित्वाखिलान्नृपान्॥
उन्नतौ तत्कुचौ नूनं कृष्णचूचुकसंयुतौ। वदतः स्वजनौन्नत्यं कृष्णतां परपक्षके॥ १२५
निष्ठीवनं मुखे तस्या वक्तीवेति जनान्प्रति। निष्ठां न यास्यति क्वापि वैरिवर्गः सुगर्भतः॥
एवं सुगर्भचिह्नेनालङ्कृतेः शयनासने। भोजने भूषणे वाण्यां तस्याः प्रीतिर्नचाभवत्॥१२७
जिनार्चनविधौ तस्या धर्मे धर्मफलेऽपि च। प्रीतिर्दोहदभावेन संपनीपद्यते स्म वै॥ १२८
जिनार्चनं विधत्ते सा सव्रता व्रतिवत्सला[1]। युधि स्थितान्महाशत्रून् हन्मीति च सदोहदा॥

[धर्म, भीम तथा अर्जुनका जन्म]– अच्युतस्वर्गसे च्युत हुए देवको कुन्तीने अपने गर्भकमलमें धारण किया। पुण्यके प्रभावसे कौनसी वस्तु दुर्लभ है? सभी वस्तु पुण्यसे सुलभ होती है। पुत्रोत्पत्ति, धनलाभ, शत्रुके ऊपर विजय प्राप्त करना इत्यादि सब जीवको पुण्योदयसे प्राप्त होते हैं। इसके अनंतर शत्रुपक्षका नाश करनेवाला, स्वजनोंको आनंददायक, प्रजाको हर्षित करनेवाला कुन्तीका गर्भ क्रमसे वृद्धिंगत होने लगा॥१२०–१२१॥ भ्रूविलास को धारण करनेवाली, गर्भवती, शुभशरीरवाली कुन्तीको रत्नोंसे भूमिको प्रकाशित करनेवाली रत्नखानी के समान देखकर पाण्डुराजा आनंदित हुआ॥१२२॥ पुण्यवान् गर्भसे, त्रिवली का भंग हुआ। इस जगतमें शत्रुओंका भंग होगाही, इसे रोकनेका दुसरा उपाय नहीं है ऐसा ही मानो त्रिवलीके भंगसे रानी कुन्ती कहती थी। कुन्तीको उत्तम मृत्तिकाभक्षणकी इच्छा हुई थी। इससे उसके गर्भमें रहा हुआ पुत्र संपूर्ण राजाओंको जीतकर संपूर्ण भूमिको भोगनेवाला होगा। काले अग्रको धारण करनेवाले उसके दो पुष्ट स्तन मानो स्वजनोंकी उन्नति और शत्रुपक्ष का मुख काला होगा ऐसाही कह रहे थे। कुन्ती के मुखमें थूक बहुत आती थी मानो वह लोगोंको कहती थी कि इस गर्भके प्रभावसे वैरिवर्ग की कहीं भी स्थिरता अब नहीं रहेगी। इस प्रकारके गर्भचिह्नों से उसका देह अलंकृत होनेसे उसे भोजनमें, अलंकारोंमें, भाषणोंमें किसीमें भी प्रीति नहीं रही। परंतु जिनपूजाविधिमें, धर्ममें, धर्मके फलोंमें, इच्छा होनेसे प्रीति उत्पन्न होती थी। व्रत धारण करनेवाली वह कुन्ती व्रतिलोगोंमें वात्सल्य-प्रेम धारण करती थी। तथा युद्धमें खडे हुए शत्रुओंको मैं मारूंगी ऐसा दोहद वह धारण करती थी॥१२३–१२९॥ जिसके संपूर्ण दोहद पूर्ण हुए हैं ऐसी कुन्तीने नवमास पूर्ण होनेपर उत्तम

---

१ स प ब धर्माभिलाषं धत्ते स्म।

संपूर्णदोहदाप्येवं पूर्णे मासि सुतोत्तमम्। सुषुवे सा समीचीनं यथा च सुमनोरथम् ॥१३०
विस्तीर्णनयनाब्जोऽसौ वक्त्रचन्द्रसमप्रभः। सनयस्तनयस्तस्या राजराजकुलोद्भमः॥ १३१
उत्पत्तिसमये तस्य निःशान्तस्थं सुतामसम्। विलयं क्वापि संयातं यथा सूर्योद्गमे भुवि॥१३२
सा शर्वरीव सौम्येन सुतसोमेन व्यद्युतत्। दीप्तिता दिवसस्येवासीत्पितुर्बालभानुना॥१३३
तदानन्दमहाभेर्यो दध्वनुः कोणकोटिभिः। प्रहता ध्वनदम्भोधिगम्भीरं नृपसद्मनि ॥ १३४
पटत्पटहझल्लर्यः पणवाः शंखकाहलाः। ताला वीणा मृदंगाश्च प्रमोदादिव दध्वनुः॥ १३५
नृत्यं जिताप्सरोनाट्यमारभ्यत महालयैः। यकाभिः सुरनर्तक्यो हेलया निर्जिता द्रुतम्॥
तदा रेजुः पुरे वीथ्यश्चन्दनाम्भश्छटाश्रिताः। कृताभिर्वरशोभाभिर्हसन्त्यो वा दिवःश्रियम्॥
गृहे गृहे पुरे रेजू रत्नतोरणमण्डपाः। रत्नचूर्णैर्बभुर्भूमौ रत्नावल्यः सुरञ्जिताः॥ १३८
महोदरा महाकुम्भाः स्वार्णा रेजुर्गृहे गृहे। उत्तम्भिता नभोभागे भानवो वा समागताः॥
श्रुत्वा पुत्रप्रसूतिं स नृपमेघो ववर्ष च। दानधारां सुलोकानां यथेष्टमिष्टवृष्टिवत्॥ १४०

मनोरथके समान अनेक पुत्रोंमें श्रेष्ठ सुपुत्रको जन्म दिया। पुत्रके नेत्रकमल विस्तीर्ण थे। मुख चंद्रके समान आह्लादक कान्तिसे परिपूर्ण था। वह नीतियुक्त और महानृपति—पाण्डुराजाके कुलकी उन्नति करनेवाला था। उसकी उत्पत्तिके समय सूर्योदयके समान भूतलमें सर्व अंधकार नष्ट होकर कहीं चला गया। रात्री जैसे चन्द्रसे शोभती है, वैसे वह कुन्ती पुत्ररूपचन्द्रसे शोभने लगी। जैसे बालसूर्यसे दिवस प्रकाशसे उद्दीप्त होता है वैसे उसके पिता पाण्डुराज बालकरूप सूर्यसे उद्दीप्त हो गये ॥१३०–१३३॥ उस समय राजाके घरमें डंडोंके अग्रभागसे ताडित बडे आनंदनगारे गर्जना करनेवाले समुद्रके समान शब्द करने लगे। पटह [पडघम] झल्लरी [झांज] पणव, शंख, काहल ताल, वीणा और मृदंग आदि वाद्यसमूह मानो आनन्दसे राजाके घरमें शब्द करने लगे ॥१३४–१३५॥ जिन्होंने देवनर्तकियोंको पराजित किया है, ऐसी नटियोंने महा लयके साथ अर्थात साम्यके साथ नृत्य करना प्रारंभ किया, जो देवाङ्गनाओं के नृत्यको तिरस्कृत करता था ॥१३६॥ पुत्रजन्मोत्सवके समय नगरकी प्रत्येक गलीमें चंदनजलकी छटाओंसे मार्गका सिंचन किया गया। तथा तोरणादिकोंसे सुशोभित की गई वे गलियां मानो स्वर्गकी शोभाको हंस रही थीं। नगरमें प्रत्येक घरमें रत्नतोरणोंसे मंडप सुंदर दीखते थे, और जमीनपर रत्नचूर्णोंसे रंगित रत्नावलीकी खूब शोभा दीखती थी ॥१३७–१३८॥ प्रत्येक धनिकके गृहद्वारपर विशाल उदरवाले, सुवर्णकुंभ सौंदर्य बढा रहे थे, आकाश मार्गमें जिनकी गति स्थगित हुई है ऐसे सूर्यही मानो यहां आये हुए हैं ॥१३९॥ पुत्र-जन्मकी वार्ता सुनकर वर्षाकालकी प्रियजलवृष्टिके समान राजारूपी मेघने लोगोंकी इच्छानुसार धनदानधाराकी खूब वर्षा की। अंतःपुरसहित समस्त नगरमें आनंद उत्पन्न कर यह महा उदार-चित्त बालक कौरववंशरूपी समुद्र को वृद्धिंगत करनेके लिये शीतकान्ति धारण करनेवाले चन्द्र

कौरवाम्भोरसौ बालो हिमद्युतिः समुद्ययौ। पुरे सान्तःपुरे मोदमित्युत्पाद्य महामनाः ॥
बन्धुता युधि संस्थैर्या युधिष्ठिरं तमाह्वयत्। गर्भस्थे धर्महेतुत्वात्तस्मिंस्तं धर्मनन्दनम् ॥१४२
बन्धुताकैरवानन्दं स तन्वन्कौरवाग्रणीः। वैरिवंशतमो धुन्वन्ववृधे बालचन्द्रमाः ॥१४३
असौ स्तनन्धयस्तन्यं मातुर्गण्डूषितं यशः। समुद्गिरन्भजन्दिक्षु यथा दीप्त्या च दिद्युते ॥
हसितैः सस्मितैर्मुग्धै रिङ्खणैर्मणिकुट्टिमे। मन्मनाभाषणैः प्रीतिं पित्रोः सममजीजनत् ॥१४५
वृद्धौ तस्याभवद्वृद्धिर्गुणानां सहजन्मना। सोदर्यात्तस्य ते नूनं तद्वृद्ध्यनुविधायिनः ॥ १४६
अन्नाशनसुचौलोपनयनादीन्क्रियाविधीन्। अनुक्रमाद्विधानज्ञो जनकोऽस्य व्यजीजनत् ॥१४७
ततः क्रमेण संलङ्घ्य लङ्घिताखिलदिग्यशाः। बाल्यकौमारकावस्थां यौवनस्थो बभूव सः ॥
सैव वाणी कला सैव विद्या सा द्युतिरेव सा। शीलं तदेव विज्ञानं सर्वमस्य तदेव तत् ॥ १४९
तस्य मूर्धा समुत्तुङ्गो मौलिमण्यंशुनिर्मलः। सचूलिक इवाद्रीन्द्रकूटो भृशं समद्युतत् ॥ १५०

के समान उदित हुवा ॥१४०-१४१॥ जब यह बालक गर्भमें था तब बंधुवर्ग युद्धमें स्थिर हुआ, अतः उसने इसका नाम युधिष्ठिर कर दिया और गर्भावस्थामें आतेही इसने बंधुवर्गमें धर्माचरणबुद्धि निर्माण की अतः उसने इसका 'धर्मपुत्र' यह नाम रक्खा ॥१४२॥ बंधुरूपी कमलोंके आनंद को वृद्धिंगत करनेवाला कौरववंशका अग्रणी यह बालचन्द्र शत्रुवंशरूपी अंधकारको नष्ट करता हुआ बढने लगा ॥१४३॥ माताका स्तनपान करनेवाला यह बालक उसका स्तनदुग्ध अपने मुखमें लेकर जब बाहर निकालता था तब ऐसा प्रतीत होता था मानो सब दिशाओंमें अपना यशही विभक्त कर रहा है तथा अपनी कान्तिसे भी वह शोभने लगा। स्पष्ट हंसना, गालमें हंसना, रत्नजडित जमीनपर घुटनोंसे मधुर चलना, अस्पष्ट तुतली वाणीसे बोलना इत्यादि क्रीडाओंसे उस बालकने मातापिताको एकसाथ आनंदित किया ॥ १४४-१४५ ॥ उस बालककी शरीरवृद्धिके साथ उसके सहज गुणोंकीभी वृद्धि होने लगी; क्योंकि वे गुण शरीरवृद्धिके सोदर अर्थात् भाईही थे। इसलिये शरीरवृद्धिका अनुसरण करके वे भी बढने लगे ॥१४६॥ उसका पिता अर्थात् पाण्डुराजा संस्कारविधिका ज्ञाता था अतएव उसने उस बालकके अनुक्रमसे अन्नाशन, चौल, उपनयनादिक संस्कार पुरोहितके द्वारा करवाये ॥१४७॥ जिसके यशने संपूर्ण दिशाओंका उलंघन किया है, ऐसे उस बालकने (युधिष्ठिरने) बाल्यावस्था और कौमारावस्थाको लांघकर यौवनावस्थामें प्रवेश किया ॥१४८॥ उस युधिष्ठिरको यौवनावस्था प्राप्त होनेपरभी वाणी वही थी, कला वही थी, विद्या और कान्तिभी वही थी, शीलभी वही था और विज्ञानभी वही था अर्थात् उसके साथ मदअभिमानादिक दुर्गुणोंका आगमन नहीं हुआ। वाणी वगैरे जो सुगुण पूर्वमें थे वेही अबभी उसमें थे। दोषोंका आगमन नहीं हुआ था ॥१४९॥ किरीटकी मणिकिरणोंसे निर्मल कान्तिवाला उसका उन्नत मस्तक चूलिकायुक्त मेरुपर्वत के शिखरसमान अतिशय सुंदर दीखता था ॥१५०॥ पूर्ण शोभाको धारण करे-

मुखमस्य सुखालोकं शशाङ्कपरिमण्डलम्। अधः कुर्वद्राजेदमखण्डपरिमण्डलम् ॥ १५१
कर्णौ कुण्डलशोभाढ्यौ कपोलौ दर्पणोज्ज्वलौ। नयने सूक्ष्मदर्शित्वाद्दीप्रे तस्य बभूवतुः ॥१५२
नासा वंशसमाभासीत्सद्गन्धग्रहणक्षमा। विलसद्विद्रुमाकारौ तस्योष्ठौ रेजतुस्तराम् ॥ १५३
ललिते भ्रूलते तस्य लीलां बभ्रतुरुन्नताम्। कामेन वैजयन्त्यौ वा समुत्क्षिप्ते जगज्जये ॥ १५४
कण्ठोऽस्य कण्ठिकाहारभूषणैर्भूषितो व्यभात्। स्वर्णाद्रिशिखरं यद्वज्ज्योत्स्नया परिवेष्टितम् ॥
वक्षस्थलं च विपुलं सहारं तस्य भात्यरम्। सनिर्झरं यथा क्ष्माभृत्तटं सुघटसङ्कटं ॥१५६
भुजस्तम्भौ महास्तम्भाविव तस्य जगद्धृतेः। रेजतुर्हस्तिहस्ताभौ जयलक्ष्म्याः सुलक्षितौ ॥१५७
तस्य हस्ततलं रेजे खाङ्गणं वा महोडुभिः। मीनकूर्मगदाशङ्खचक्रतोरणलक्षणैः ॥ १५८
कटकाङ्गदकेयूरमुद्रिकाद्यैर्विभूषणैः। व्यद्योतिष्टास्य सत्कायः सुभूषाकल्पवृक्षवत् ॥ १५९
स नाभिकूपिकां दध्रे लावण्यरसवाहिनीं। रसत्सरससंपृक्तां श्रोणिं योषामिवापराम् ॥ १६०
सघनं जघनं तस्य दुकूलकुलसंकुलं। रेजे यथा नदीकूलं फेनिलं जलराजितम् ॥ १६१

नेवाला इस राजकुमारका मुख सुखदायक कान्तिसे युक्त था, जिससे इसने चन्द्रका मण्डल तिरस्कृत किया था। अर्थात् पूर्णचंद्रसे भी युधिष्ठिरका मुख अखण्ड कान्तियुक्त था अतः चन्द्रको तिरस्कृत करता हुआ यह शोभने लगा ॥१५१॥ इसके दो कान कुण्डलशोभासे पूर्ण थे, इसके दो गाल दर्पण के समान उज्ज्वल थे। और दो आँखें सूक्ष्म पदार्थ को देखनेवालीं होनेसे तेजस्विनी थीं ॥१५२॥ उसकी नासा [नाक] बांस के समान सीधी और मधुरगंध ग्रहण करनेमें समर्थ थी। उसके दो ओठ मनोहर प्रवालके समान अधिक सुंदर दीखते थे ॥१५३॥ उसकी मनोहर दो भौंएँ उन्नत लीलाको यानी उत्कृष्ट शोभाको धारण कर रही थी। मानो जगत् को जीतने पर कामदेवने दो जयपताकायेंही ऊंची की हैं ॥१५४॥ इस कुमारका कंठ कंठिका, हार आदि भूषणोंसे भूषित होकर विशेष शोभा युक्त हुआ। मानो वह चन्द्रिकासे वेष्टित मेरुपर्वत का शिखरही है ॥१५५॥ उसका विशाल और हारयुक्त वक्षःस्थल अधिक शोभायुक्त हुआ था। मानो वह झरनेसे युक्त सुरचित कटकसे युक्त पर्वततट ही है ॥१५६॥ जयलक्ष्मीसे सुशोभित उसके दो बाहुस्तंभ हाथीकी सूंडके समान थे। मानो जगत्को धारण करनेवाले वे महास्तंभही हैं ॥१५७॥ युधिष्ठिरके हाथका तलभाग आकाशांगण के समान दीखता था। क्योंकि नक्षत्र, मीन—मत्स्य (मीन राशि), कूर्म—कछुआ, गदा, शंख, चक्र, तोरण आदि लक्षणोंसे युक्त था ॥१५८॥ राजकुमारका सुंदर शरीर कटक—कडे, अंगद केयूर, अंगुठी इत्यादि अलंकारोंसे भूषणांग कल्पवृक्षके समान शोभता था ॥१५९॥ लावण्यरसको धारण करनेवाली नाभिरूपी बावडी उसने धारण की थी। तथा शोभनेवाले सुरससे—श्रृंगारादिक रसोंसे युक्त ऐसी कटि—कमर दूसरी स्त्रीके समान कुमारने धारण की थी। उसका मजबुत कटिभाग सूक्ष्म शुभ्रवस्त्रसे युक्त होनेसे फेनयुक्त जलसे शोभनेवाले नदीके किनारे समान शोभने लगा।

बभारोरू वरौ सोऽत्र पीवरौ कनकद्युती। कामेन कल्पितौ स्तम्भौ स्वावासस्थितये यथा॥१६२
जङ्घे अघघनाघातघस्मरे लङ्घिके जगत्। अस्य रेजतुरुन्निद्रे कामस्य शरधी इव ॥ १६३
क्रमौ च क्रमतः क्रान्तौ विक्रमाक्रान्तसंक्रमौ। जगन्नतौ स्तुतौ तस्य भातः स्म कौरवेशिनः ॥
नखा नक्षत्रसंकाशाः क्षत्रसेव्या बभुर्भृशम्। दर्पणा इव संन्यस्तास्तस्य रूपनिरीक्षणे ॥ १६५
अनौपम्यं महारूपं तस्य वर्णयितुं क्षमः। कः क्षितौ क्षितिपालानामीशितुः कौरवेशिनः॥१६६
ततः कुन्ती सुतं भीममसौष्ट सौष्ठवान्वितम्। युधिष्ठिरसमं शिष्टं विशिष्टं गुणगौरवैः ॥१६७
यस्माद्भीतिर्भवेद्भूमावरीणां रणशालिनाम्। तस्मादाख्यायि लोकेन स भीमो भीमदर्शनः ॥
महाकायो महाकान्तिर्महावीर्यो महागुणः। महामना महारूपी भीमोऽभाद्भूमिभूषणः ॥ १६९
ततो धनंजयो जज्ञे धनंजयो महौजसा। धनं जयं च संप्राप्तः शत्रुदारुधनंजयः ॥ १७०
अर्जुनोऽर्जुनसंकाशो सद्भिसर्जनसज्जनः। अर्जको यशसां लोके तस्याभूत्तृतीयः सुतः ॥ १७१

इस राजकुमारने सुवर्णकान्तिके धारक सुंदर और पुष्ट दो जांघें धारण की थीं मानो मदनने अपने महलकी दीर्घ कालतक स्थितिके लिये बनाये हुए दो खंबे ही खडे किये हो ॥१६०-१६२॥ पापके निबिड आघातको नष्ट करनेवाली और जगतको उल्लंघनेमें समर्थ ऐसी इस राजकुमारकी उन्निद्र-कान्तियुक्त दो जांघें मदनके बाण रखनेके शरधी-तरकसके समान दीखती थीं ॥१६३॥ कौरवोंके स्वामी युधिष्ठिरके सुंदर दो चरण क्रमपूर्वक अपने पराक्रमसे सर्वत्र प्रवेश करनेवाले, जगद्वंद्य, और स्तुत्य थे। अतएव वे शोभायुक्त थे ॥१६४॥ उसके नख नक्षत्रके समान सुंदर और क्षत्रियोंसे सेवनीय थे। भूपालोंको अपना रूप देखनेके लिये मानो वे दर्पणके समान थे। अर्थात् रूप देखनेके लिये चरणके अंगुलियोंपर वे नख स्थापन किए हुए दर्पणके समान दीखते थे। पृथ्वीके पालन करनेवाले भूपालोंकेभी स्वामी ऐसे कौरवेश युधिष्ठिरका महारूप अनुपम था। इस लिये उसका वर्णन करनेमें कोई समर्थ नहीं था ॥१६५-६६॥ तदनंतर कुन्तीने सौंदर्यसे युक्त भीम पुत्रको जन्म दिया। वह भीम भी युधिष्ठिरके समान विशिष्ट गुणोंसे गौरवयुक्त व शिष्ट-सज्जन था ॥१६७॥ इसका 'भीम' नाम अन्वर्थक था। क्यों कि रणमें पराक्रमसे लढनेवाले शत्रुवीरोंको भी इससे भय होता था इसलिये लोगोंने भयंकर दर्शनवाले द्वितीय कुन्तीपुत्रका 'भीम' नाम प्रसिद्ध किया। यह भीम पुत्र पुष्ट शरीरवाला, महाशक्तिमान्, महाकान्तिवान्, अतिशय उदार, महागुणी, महासुंदर और पृथ्वीका भूषण था ॥१६८-१६९॥ तदनंतर कुन्तीसे धनंजय-'अर्जुन' नामक पुत्र हुआ। यह महान् तेजस्वी होनेसे धनंजय-अग्निके समान दीखता था। युद्धमें इसे धन और जय मिलता था इसलियेभी यह 'धनंजय' कहा जाता था। और शत्रुरूपी इन्धनको जलानेमें यह धनंजय-अग्नि समान था इत्यादि कारणोंसे इसे 'धनंजय' यह अन्वर्थक नाम था। इसको 'अर्जुन' नाम भी था। अर्जुनके समान-चांदीके समान शुभ्र वर्णका होनेसे इसे अर्जुन नाम था। यह पुत्र उत्तम लोगोंको धन देनेवाला

स्वप्ने संदर्शनान्मात्रा पुरुहूतस्य सज्जनैः। सर्वैः स गदितः शक्रसूनुर्नाम्नेति निश्चितम् ॥१७२
यस्य रूपं गुणा यस्य यस्य तेजश्च यद्यशः। बलं यस्य कथं वर्ण्यं यदि जिह्वाशतं भवेत् ॥
ततो मद्री सुमुद्राढ्या नकुलं कुलकारिणम्। लेभे च जनितानन्दं कुर्वाणमरिसंक्षयम् ॥ १७४
सहदेवं महादेवं सा सूते स्म सविस्मया। सह देवैः प्रकुर्वाणं क्रीडां संक्रीडनोद्यतम् ॥ १७५
एवं पञ्चसुतैः पाण्डुः प्रचण्डो वैरिखण्डनः। सातं ततान सद्देहो यथा पञ्चभिरिन्द्रियैः ॥१७६
कुन्ती सुतवती सत्या मद्री सन्मुद्रयान्विता। पाण्डुः प्रचण्डः संभुङ्क्ते पञ्चभिस्तनुजैः सुखम् ॥
धृतराष्ट्रप्रिया प्रीता परमप्रेमपूरिता। गान्धारी बन्धुभिः सार्धं ववृधे धृतिधारिणी ॥ १७८
गान्धारीवक्त्रनलिनचञ्चरीकेण चेतसा। धृतराष्ट्रश्च नो लेभे रतिं चान्यत्र तां विना ॥ १७९
गान्धार्या स समं तेने सातं संसारसम्भवम्। कामिनः कामिनीं मुक्त्वा लभन्ते शं न हि क्वचित् ॥
गान्धारी रमयामास भर्तारं भर्तृभक्तिका। हास्यैः कटाक्षविक्षेपैर्विनोदैर्मदनप्रियैः ॥१८१

सज्जन था। और जगतमें यशको कमानेवाला था। कुन्तीका यह तीसरा पुत्र था। कुन्तीने स्वप्नमें इन्द्रको देखा था इसलिये सर्व सज्जन इसको 'शक्रसूनु' इन्द्रपुत्र कहने लगे। जिसका रूप, जिसके गुण, जिसका तेज, और जिसका यश और जिसका बल सब बातें कैसी वर्णन की जायेंगी? कवि कहते हैं-जिसके मुहमें सौ जिह्वायें होंगीं वह ही अर्जुनके इन गुणोंका वर्णन करेगा अन्यसे इसका वर्णन नहीं होगा ॥१७०-१७३॥

[मद्रीसे नकुल और सहदेवका जन्म] तदनंतर सुमुद्राढ्या-उत्तम सुंदर शरीराकृतिवाली मद्रीने कुलवृद्धि करनेवाला, शत्रुओंका क्षय करनेवाला और सबको आनंददायक ऐसे नकुल पुत्रको जन्म दिया। नकुल पुत्रका लाभ होनेके अनंतर आश्चर्ययुक्त मद्रीने देवोंके साथ क्रीडा करनेवाला, और हमेशा क्रीडामें आसक्त रहनेवाला, महादेव-महातेजस्वी, ऐसे सहदेव नामक पुत्रको जन्म दिया ॥१७४-१७५॥ जैसे पांच इंद्रियोंसे उत्तम देहवाला आत्मा सुखका उपभोग लेता है वैसे शत्रुओंका खंडन करनेवाला, यह प्रचंड पाण्डव अपने पांच पुत्रोंके साथ सुख भोगने लगा ॥१७६॥ सत्यधर्मको धारण करनेवाली, पुत्रवती कुन्ती, उत्तम मुद्रासे युक्त मद्री और प्रचंड पाण्डुराजा ये अपने पांच पुत्रोंके साथ सुखोपभोग लेते हुए कालयापन करने लगे ॥१७७॥

[धृतराष्ट्र और गांधारीको दुर्योधन पुत्रकी प्राप्ति] अतिशय प्रेमसे भरी हुई, संतोषको धारण करनेवाली, प्रसन्न, धृतराष्ट्रकी प्रियपत्नी गांधारी अपने बंधुवर्गके साथ उन्नतियुक्त हुई अर्थात् सुखयुक्त हुई ॥१७८॥ धृतराष्ट्रका मन गांधारीके मुखकमलपर भौंरे के समान लुब्ध हुआ था। उसके मनको गांधारीके विना अन्यत्र आनंद प्राप्त नहीं होता था। धृतराष्ट्रराजा गांधारीके साथ सांसारिक सुखोंका अनुभव लेने लगा। योग्यही है कि, कामी पुरुषको कामिनीके विना अन्यत्र कहीं भी सुख नहीं मिलता है। पतिभक्ता गांधारी हास्य, कटाक्ष फेंकना, और संभोगके प्रिय

रेमाते दम्पती दीप्रौ स्फुरद्रससमन्वितौ। विद्युद्धनाघनौ यद्वद्रेजाते जनरञ्जकौ ॥ १८२
गान्धारीं च कदाचित्स व्रीडामुक्तैश्च क्रीडनैः। महाभोगैर्वराभोगैः क्रीडयामास सक्रियः॥
गान्धार्यथ शुभं गर्भं दधौ धर्मानुभावतः। तत्किं न लभते पुण्याद्यल्लोके हि दुरासदम् ॥१८४
पूर्णे मासेऽथ सुषुवे सुतं सा सुखसंगता। जनयित्री जनानन्दं परमप्रीतिदायिका ॥ १८५
पुरन्ध्रिकास्तदाशीर्भिर्नन्दयन्ति स्म तामिति। सुषूष्व सुसुतानां हि शतं शतसुखानि वा॥
दुःखेन योध्यते यस्माद्दुर्योधन इतीरितः। स सुतः स्वजनैः शीघ्रं संपन्नपरमोदयः॥ १८७
पितुः सुतसमुद्भूतिसूचकाय नराय च। अदेयं न किमप्यासीच्छत्रसिंहासनादृते ॥ १८८
निगडाकलितान्लोकान्पञ्जरस्थांश्च पक्षिणः। बन्दिसद्मस्थिताञ्शत्रून्मुमोच नृपतिस्तदा ॥ १८९
वाद्यवादनभेदेन विदितो जननोत्सवः। तस्य प्रशस्यतां नीतः सुनीतेः सातवारिधेः॥ १९०
वर्धमानो बुधो युद्धे दुर्योध्यो युद्धधारिभिः। दुर्योधनोऽवधीद्वैर्यात्परान्योद्धृन्महायुधान् ॥
ततः क्रमेण गान्धारी सुतं दुःशासनाभिधम्। असौष्ट स्पष्टताविष्टं वरिष्ठं शुभचेष्टितम् ॥ १९२

विनोदोंके द्वारा अपने पतिको रिझाती थी। वृद्धिंगत हुए श्रृंगारादिरसोंसे युक्त ऐसे वे कामसे उद्दीप्त दंपती-धृतराष्ट्र और गांधारी लोगोंके मनको हरण करनेवाले बिजली और मेघके समान शोभते थे। ॥१७९-१८२॥ सदाचारी धृतराष्ट्रने किसी समय उत्तम और विस्तीर्ण महाभोगोंके साथ लज्जारहित ऐसी क्रीडा करके गांधारीको रमाया। तब पुण्यके प्रभावसे गांधारीने शुभ गर्भको धारण किया। इहलोकमें पुण्यसे नहीं प्राप्त होनेवाली ऐसी कोनसी दुर्लभ वस्तु है? अर्थात् पुण्योदयसे सब सुलभ ही है। अतिशय प्रीति करनेवाली जनोंको आनंद उत्पन्न करनेवाली सुखी गांधारीने नौ महिने पूर्ण होनेपर पुत्रको जन्म दिया। सदाचारी स्त्रियोंने उस समय उसका "सैंकडों सुखोंके समान सौ पुत्रोंको तू जन्म देनेवाली हो" इन आशीर्वचनोंसे अभिनन्दन किया। गांधारीको जो प्रथम पुत्र हुआ उसके साथ लडना बडाही कठिन था इसलिये उसको स्वजनोंने 'दुर्योधन' नाम दिया। उसने उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया। अर्थात् वह पाण्डवोंके समान ऐश्वर्यशाली हुवा। पुत्रकी उत्पत्तिकी सूचना देनेवाले मनुष्यको राजा धृतराष्ट्रने छत्र, सिंहासनके व्यतिरिक्त सब कुछ दिया। राजाने पुत्र-जन्मोत्सवके समय कैद किये गये लोगोंको, पिंजरेमें बंद किये हुए पक्षियोंको और कारागृहमें डाले हुए शत्रुओंको छोड दिया। सुनीतियुक्त, सुखका समुद्ररूप और प्रशंसाको प्राप्त हुए दुर्योधनका जन्मोत्सव अनेकप्रकारके वाद्यवादनके द्वारा लोगोंको ज्ञात हुआ। योधाओंसे जो युद्धमें कठिनाईसे युद्ध करने योग्य था। अर्थात् उसके साथ लढना बडा कठिनाईका कार्य था ऐसा वह दुर्योधन विद्वान् था। उसने महायुध धारण करनेवाले उत्तम योद्धाओंको युद्धमें मार डाला था ॥ १८३-१९१ ॥ तदनंतर क्रमसे गांधारीने दुःशासन नामक पुत्रको जन्म दिया। यह श्रेष्ठ, और स्पष्ट बोलनेवाला था। तदनंतर गांधारीको और अठ्ठानवे पुत्र-

ततो दुर्धर्षणो धीमान्सुतो दुर्मर्षणस्ततः। रणश्रान्तः समाघश्च विंदः सर्वसहोऽपि च ॥ १९३
अनुविन्दः सुभीमश्च सुबाहुरथ दुःसहः। दुःशलश्च सुगात्रश्च दुःकर्णो दुःश्रवास्तथा ॥ १९४
वरवंशोऽवकीर्णश्च दीर्घदर्शी सुलोचनः। उपचित्रो विचित्रश्च चारुचित्रः शरासनः ॥१९५
दुर्मदो दुःप्रगाहश्च युयुत्सुर्विकटाभिधः। ऊर्णनाभः सुनाभश्च तदा नन्दोपनन्दकौ ॥१९६
चित्रवाणिश्चित्रवर्मा सुवर्मा दुर्विमोचनः। अयोबाहुर्महाबाहुः श्रुतवान्पद्मलोचनः ॥ १९७
भीमबाहुर्भीमबलः सुसेनः पण्डितस्तथा। श्रुतायुधः सुवीर्यश्च दण्डधारो महोदरः ॥१९८
चित्रायुधो निषङ्गी च पाशो वृन्दारकस्तथा। शत्रुंजयः शत्रुसहः सत्यसंधः सुदुःसहः ॥१९९
सुदर्शनश्चित्रसेनः सेनानी दुःपराजयः। पराजितः कुण्डशायी विशालाक्षो जयस्तथा ॥२००
दृढहस्तः सुहस्तश्च वातवेगसुवर्चसौ। आदित्यकेतुर्बह्वाशी निबन्धो विप्रियोद्यपि ॥२०१
कवची रणशौण्डश्च कुण्डधारी धनुर्धरः। उग्ररथो भीमरथः शूरबाहुरलोलुपः ॥२०२
अभयो रौद्रकर्मा च तथा दृढरथाभिधः। अनादृष्टः कुण्डभेदी विराजी दीर्घलोचनः ॥२०३
प्रथमश्च प्रमाथी च दीर्घालापश्च वीर्यवान्। दीर्घबाहुर्महावक्षा दृढवक्षाः सुलक्षणः ॥२०४
कनकः काञ्चनश्चैव सुध्वजः सुभुजोऽरजः। एवं शतं सुतानां हि तयोर्जातमनुक्रमात् ॥२०५
वर्धमानाः सुताः सर्वे वर्धमानयशोलताः। शोभन्ते शोभनाकाराः शस्त्रशास्त्रविशारदाः ॥
पाण्डवाः कौरवाश्चैवं वर्धन्ते स्म यथा यथा। तथा तथा विवर्धन्ते संपदो मोददायकाः ॥

क्रमसे हुए। उनके नाम इस प्रकार थे दुर्धर्षण, दुर्मर्षण, रणश्रान्त, समाघ, विंद, सर्वसह, अनुविंद, सुभीम, सुबाहु, दुःसह, दुःशल, सुगात्र, दुःकर्ण, दुःश्रव, वरवंश, अवकीर्ण, दीर्घदर्शी, सुलोचन, उपचित्र, विचित्र, चारुचित्र, शरासन, दुर्मद, दुःप्रगाह, युयुत्सु, विकट, ऊर्णनाभ, सुनाभ, नंद, उपनंदक, चित्रवाणि, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विमोचन, अयोबाहु, महाबाहु, श्रुतवान्, पद्मलोचन, भीमबाहु, भीमबल, सुसेन, पंडित, श्रुतायुध, सुवीर्य, दण्डधार, महोदर, चित्रायुध, निषङ्गी, पाश, वृन्दारक, शत्रुंजय, शत्रुसह, सत्यसन्ध, सुदुःसह, सुदर्शन, चित्रसेन, सेनानी, दुःपराजय, पराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष, जय, दृढहस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्चस्, आदित्यकेतु, बह्वाशी, निबन्ध, विप्रियोदि, कवची, रणशौंड, कुण्डधार, धनुर्धर, उग्ररथ, भीमरथ, शूरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढरथ, अनादृष्ट, कुण्डभेदी, विराजी, दीर्घलोचन, प्रथम, प्रमाथी, दीर्घालाप, वीर्यवान्, दीर्घबाहु, महावक्षा, दृढवक्षा, सुलक्षण, कनक, कांचन, सुध्वज, सुभुज, अरज। इसप्रकार गांधारी और धृतराष्ट्रको अनुक्रमसे सौ पुत्र हो गये ॥ १९२-२०५ ॥ ये सौ पुत्र जैसे जैसे बढने लगे वैसे वैसे उनकी यशोलताभी बढने लगी। वे सब शस्त्रशास्त्रोंमें निपुण थे। और उनका रूप अतिशय सुंदर था। पांडव और कौरव जैसे जैसे बढने लगे वैसी वैसी उनकी आनंददायक संपत्तिभी बढने लगी ॥ २०६-२०७ ॥ उत्तम सोनेके समान तेजको धारण करनेवाले, निर्मल ज्ञान

गाङ्गेयेन सुगाङ्गेयतेजसामलचक्षुषा। पितामहेन तेषां हि शीललीलाविलासिना ॥२०८
रक्षिताः शिक्षिताः सर्वे परां वृद्धिमवापतुः। वृद्धेन पालिताः के हि न यान्ति परमोदयम् ॥
द्रोणाख्येन द्विजेशेन पालिताः परमोदयाः। भेजुर्वृद्धिं शुभाकाराः पाण्डवाः कौरवाः पुनः॥
द्रोणायितं च द्रोणेन धनुर्वेदसरित्पतेः। तरणे च शरण्येन कारुण्यपण्यवाहिना ॥२११
द्रोणस्तु सर्वपुत्राणां चापविद्यामशिक्षयत्। ते तस्य विनयं चक्रुर्विद्या विनयतो यतः ॥२१२
सार्जवायार्जुनायासौ व्यपेताय विकर्मतः। कार्मुकी कार्मुकीं विद्यां पितृव्यः समुपादिशत् ॥
शब्दवेधिमहाविद्यां द्रोणात्पार्थः समासदत्। गुरोर्विनीतेः किं न स्याद्विनयो हि सुकामसूः।
प्रचण्डाखण्डकोदण्डलक्षणं लक्ष्यलक्षणम्। वेध्यवेधकभावेनाशिक्षयद्गुरुतः स च ॥२१५
पार्थो न्यर्थीकृताशेषचापविद्याविशारदः। रराज राज्यरङ्गेऽस्मिन्नभसीव निशापतिः ॥२१६
एवं तेषां महान्कालो लिप्सूनां सातमुल्बणम्। अटितः सुसुखानां हि वत्सरोऽपि क्षणायते ॥

इति सुपाण्डुरखण्डसुपण्डितः सुघटघोटकटङ्कितसद्भटः।
घटयति स्म घटां वरदन्तिनां प्रकटसङ्कटसाध्वसहारिणीम् ॥२१८

नेत्रके धारक, शीललीलासे शोभनेवाले पितामह भीष्माचार्यने इन सब पुत्रोंका रक्षण किया। उनको शिक्षण दिया, और उनको वृद्धिंगत किया। योग्यही है कि वृद्धज्ञानी पुरुषसे पालन किये जानेपर किनका अभ्युदय नहीं होता? अर्थात् सर्व जनोंका अभ्युदय होगा ही ॥ २०८-२०९ ॥ द्रोण नामक किसी द्विजश्रेष्ठने उनका पालन किया। वे परम वैभवको प्राप्त हुए। इसप्रकार शुभरूप धारण करनेवाले पाण्डव और कौरव बढने लगे। धनुर्वेदरूपी समुद्रमें द्रोणाचार्य नौकाके समान थे। वह आचार्यनौका धनुर्वेदरूपी समुद्रमें तैरनेके लिये परम सहायक थी और दयारूपी विक्रेय वस्तुओंको धारण करती थी। द्रोणाचार्यने सम्पूर्ण पुत्रोंको चापविद्याका शिक्षण दिया। वे सब पुत्र उनका विनय करते थे, क्यों कि विद्या विनयसे प्राप्त होती है ॥ २१०-२१२ ॥ ऋजुभाव- निष्कपटपनेको धारण करनेवाले, अशुभ-पापकर्मरहित अर्जुनको धनुर्वेदी द्रोणाचार्यने धनुर्विद्याका दान दिया। शब्दवेधि महाविद्या अर्जुनने द्रोणाचार्य-गुरुका विनयकर प्राप्त की थी। क्यों कि विनय इच्छित पदार्थको देता है ॥ २१३-२१४ ॥ अर्जुनने गुरुसे प्रचंड और अखंड धनुर्विद्याका स्वरूप जान लिया। तथा वेध्य और वेधकभावसे लक्ष्यका स्वरूप जान लिया ॥२१५॥ चापविद्यामें जो जो प्रवीण पुरुष थे उन सबको अर्जुनने अपने धनुर्विद्याके कौशल्यसे नीचे कर दिया। आकाशमें जैसा चंद्र शोभता है वैसा वह राज्यरंगमें शोभने लगा ॥ २१६ ॥ इसप्रकार उत्तम सुखकी इच्छा करनेवाले उन सुखी पाण्डव और कौरवोंका महान् काल व्यतीत हुआ। योग्यही है कि सुखी लोगोंका वर्षकालभी क्षणके समान व्यतीत हो जाता है ॥ २१७ ॥ उत्तम शिक्षण जिनको मिला है ऐसे घोडोंपर जिसके योद्धालोगोंने आरोहण किया है ऐसा अखंड

युद्धे यो जितवान् रिपूञ्जनमनोह्लादी जनालङ्कृतो
दुर्वारारिविघातनैकसुकृतिः श्रीधर्मराजात्मजः ।
भीमो भीतिहरो विपक्षतिमिरश्रीभानुमान्भास्वरः
पार्थः स्वार्थकरः समर्थमहितो भानुप्रभाभासुरः ॥ २१९
अतुलविपुललीलालक्षिता लक्षणाङ्काः सकलबलविलासालङ्कृता निर्मलास्ते ।
चटुलकमलताराहारिहारावतंसा जिनवरपदलीनाः कौरवा वै जयन्तु ॥ २२०
इति श्रीपाण्डवपुराणे महाभारतनाम्नि भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपाल-
साहाय्यसापेक्षे पाण्डवकौरवोत्पत्तिवर्णनं नामाष्टमं पर्व ॥ ८ ॥

। नवमं पर्व ।

अभिनन्दनमानन्ददायकं दरदारकम् । विशदप्रमदोदारं दधामि हृदये जिनम् ॥१

विद्वान् पाण्डु प्रगट संकटकी भीति दूर करनेवाले उत्कृष्ट हाथियोंकी पंक्तियोंको शिक्षण देता था ॥२१८॥
युद्धमें शत्रुको जीतकर जिसने जनमनको आह्लादित किया था, दुर्वार शत्रुओंका नाश करनाही जिसका मुख्य कर्तव्य था ऐसा धर्मराज अर्थात् युधिष्ठिर सज्जनोंसे शोभता था। विपक्ष– शत्रुरूपी अंधकारको नष्ट करनेके लिये भीम शोभायुक्त–किरणवाले सूर्यके समान था। और अर्जुन स्वार्थकर– अपने अर्थको करनेवाला था अर्थात् वह अर्जुन– निष्कपटी था। अथवा अर्जुन धनंजय नामसेभी प्रसिद्ध था इसलिये स्वार्थकर–धन और जयको प्राप्त करनेवाला था। समर्थ लोगोंकेद्वारा आदरणीय था और भानुप्रभा– सूर्यकान्तिके सदृश तेजस्वी था ॥ २१९ ॥ धृतराष्ट्रके सौ पुत्र और पाण्डुराजाके पांच पुत्र कुरुवंशमें उत्पन्न होनेसे कौरव कहे जाते हैं। वे सब कौरव हमेशा अनुपम और अनेक प्रकारकी क्रीडायें करते थे। शंख, चक्र, मत्स्यादि शुभ–लक्षणोंसे उनके देह शोभते थे। अन्तःकरणसे निर्मल–निष्कपटी थे। उनके गलोंमें चंचल कमलोंकी शोभा हरण करनेवाले हार थे और कानोंमें नक्षत्रोंकी कान्तिको हरण करनेवाले कुण्डल थे। ऐसे वे जिनेश्वरके पदमें भक्ति करनेवाले कौरव हमेशा जयवंत रहें ॥ २२० ॥

श्रीब्रह्मचारी श्रीपालजीने जिसमें साहाय्य किया है ऐसे श्रीशुभचन्द्र विरचित महाभारत नामक पाण्डवपुराणमें पाण्डव–कौरवोंकी उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला आठवा सर्ग समाप्त हुआ ॥८॥

[पर्व नववा]

संसारभय निवारक, निर्मल आनंद अर्थात् अनन्त सुख प्राप्त होनेसे जो अत्यंत महान् हुए हैं, जो भव्योंको आनन्द देते हैं ऐसे अभिनन्दन जिनको मैं हृदयमें धारण करता हूं ॥ १ ॥

अथैकदा नृपः पाण्डुः पाण्डुरातपवारणः। वनं जिगमिषू रन्तुं दापयामास दुन्दुभिम् ॥२
घटद्घोटकसंघातैश्चलच्चामरचारुभिः। द्वादशात्माश्वसंकाशैश्चश्चलैरचलन्नृपः ॥३
दन्तावला बलोपेता दन्तदारितपर्वताः। पर्वता इव तस्याग्रे नदन्ति स्म महाजवाः ॥४
रथा व्यर्थीकृताशेषपादाः सत्पादसङ्कुलाः। वव्रिरे च महीपालं रन्तुं जिगमिषुं वनम् ॥५
पत्तयो विस्फुटाटोपाः[1] सकोपघनगर्जिताः। समारोपितकोदण्डाश्चण्डास्तत्पुरतो ययुः ॥६
नृपाज्ञया तदा मद्री विनिद्रनयनोत्पला। पूर्णचन्द्रानना रम्या समुद्रा मुद्रिकान्विता ॥७
अहस्करं हसन्तीव कर्णभूषणतो भुवम्। सुदन्तज्योत्स्नया कृत्स्नं क्षिपन्तीव निशाकरम् ॥८
कटाक्षबाणक्षेपेण[2] भिन्दन्ती मानसं नृणाम्। स्तनभारभराक्रान्ता चेले सा शिबिकाश्रिता ॥९
वनं समाट विटपिसुघाटघटितं स्फुटम्। पाण्डवानां पिता प्रीत्या मद्रीमुद्रितमानसः ॥१०
यत्र सालद्रुमाः साराः सरलाश्च क्वचित् क्वचित्। सहकारद्रुमा मञ्जुमञ्जर्यामोदमोदिताः ॥११

[पाण्डुराजाका मद्रीके साथ वनविहार] शुभ्र छत्र जिसके मस्तकपर शोभता है ऐसे पाण्डुराजाको वनमें क्रीडा करनेके लिये जानेकी इच्छा हुई और उसने दुंदुभि–भेरी बजवाई ॥ २ ॥ चंचल चामरोंसे सुंदर और सूर्यके घोडोंके समान चंचल घोडोंके साथ पाण्डुराजा वनके प्रति चलने लगा। महाशक्तिके धारक, अपने दांतोंसे पर्वतको फोडनेवाले, महावेगवान् पर्वतप्राय हाथी पाण्डुराजाके आगे गर्जना करने लगे ॥ ३–४ ॥ सर्व मनुष्योंके चरणोंकी व्यर्थता दिखानेवाले, उत्तम चरणोंसे (चक्रोंसे) युक्त रथ वनमें क्रीडार्थ जानेके इच्छुक राजाके पास लाये गये ॥ ५ ॥ जिनका आडंबर–प्रभाव प्रगट है, ऐसे क्षुब्ध मेघोंके समान गर्जना करनेवाले प्रचंड पयादोंके समूह धनुष्य सज्ज करके पाण्डुराजाके पास आये ॥ ६ ॥ प्रफुल्ल कमलके सदृश आंखोंवाली, पूर्ण चन्द्रके समान मुखवाली, करांगुलियोंमें अंगुठियाँ धारण करनेवाली, उत्तम आकारकी धारक, सुंदर मद्री रानीभी राजाकी आज्ञासे उसके साथ चलनेके लिये उद्युक्त हुई। रानी मद्री कर्णभूषणोंसे मानो। सूर्यको हंसती थी और अपनी दन्तकान्तिसे पूर्ण निशाकरको-- चन्द्रको तिरस्कृत करती थी। कटाक्ष बाणोंको फेंककर वह लोगोंके चित्तको घायल करती थी। पुष्टस्तनके भारसे किंचित नम्र हुई वह शिबिकामें बैठकर पाण्डुराजाके साथ चली ॥ ७–९ ॥ प्रीतिसे मद्रीमें अनुरक्त चित्त होकर पाण्डवोंके पिताने अर्थात् पाण्डुराजाने वृक्षोंकी पंक्तिबद्ध रचनावाले वनमें प्रवेश किया ॥१०॥ इस वनमें उत्तम सालवृक्ष थे और क्वचित् २ सरल नामक वृक्ष भी थे। तथा सुंदर मञ्जरीयोंके सुगन्धसे दिशाओंको सुगंधित करनेवाले आम्रवृक्षभी थे ॥ ११ ॥ शोकसे सन्तप्त हुए अशोक वृक्ष सुन्दर-

१ ब विस्फुटाःसर्वे।
२ प कटाक्षबाणक्षेपेण, स कटाक्षपक्षिक्षेपेण।

अशोकाः शोकसंतप्ता भामिनीपादताडिताः। बकुलाः सफला योषामधुगण्डूषसिञ्चिताः ॥१२
आलिङ्गिताः कुरबका भीरुभिर्विकसन्ति च। भ्रमरा भ्रमरीवृन्दैर्गायन्ति मदनेशितुः ॥१३
यशो जगज्जयेनैव संभवं सुमहीपतेः। सुरासुरासुरीनारीसुरीसंघस्य पालिनः ॥१४
कोकिलाः कलनिःस्वाना अनुकुर्वन्ति गर्विताः। कामिनीनां स्वरांस्तन्त्रीयन्त्रितान्काममन्त्रिणः॥
कामिनीकलगीतानि श्रूयन्ते च पदे पदे। किंनरीनादजेतॄणि सरसानि रसोत्करैः ॥१६
रंरम्यते स्म भूपालो वने तत्र प्रियासखः। नृत्यानि पक्ष्मलाक्षीणां प्रेक्षमाणः पदे पदे ॥१७
स तां च रमयामास रम्यैर्भोगै रतोद्भवैः। हासै रसैर्विलासैश्च क्रीडयालिङ्गनादिभिः ॥१८
क्वचिच्चन्दननिर्यासैरगुरुद्रवमर्दनैः। सुगन्धिचूर्णनिक्षेपैः क्वचित्कान्तानिरीक्षणैः॥ १९
स सुखं सुभगालापैः कलापैः स्त्रीजनस्य च। रममाणस्तदा लेभे न तृप्तिं तृष्णयान्वितः ॥२०
जलक्रीडारतः क्वापि वापिकायां स्त्रिया समम्। स चन्दनजलोद्गच्छत्पृषद्भिः कुसुमैरिव ॥२१
आकण्ठं च जले मग्नो नृप उद्भासिसन्मुखः। स्वर्भानुरिव स्त्रीवक्त्रचन्द्रं गिलितुमागमत्॥ २२
भूपः संक्रीड्य क्रीडार्तो विहर्तुं पुनरुद्ययौ। प्रतानिनीपरान्देशान्लुलोके लोकनोद्यतः ॥२३

स्त्रियोंके चरणसे ताडित होकर विकसित हुए। स्त्रियोंके मद्यकी कुल्लोंसे सिञ्चित बकुल वृक्ष फल-सहित हुए। भीरु स्त्रियोंकेद्वारा आलिङ्गित कुरबक नामक वृक्ष उस वनमें विकसित हुए। और भ्रमर भ्रमरियोंके साथ गुंजारव कर रहे थे; मानो पृथ्वीके पति मदनका जगत्को जीतनेसे प्राप्त हुआ यश गा रहे थे। अर्थात् सुर, असुर, असुरी नारी– अर्थात् असुरोंकी देवांगना, और सुरी– देवोंकी स्त्रियां इन सबोंके पालक मदनका यश भौंरे और भ्रमरी गाने लगे॥ १२--१४॥ उस वनमें गर्वयुक्त, मधुर शब्द करनेवाली कामरूपी राजाकी मंत्री कोकिलायें वीणाके ध्वनिका अनुसरण करनेवाले कामिनियोंके स्वरोंका अनुकरण करती थीं। उस वनमें किन्नरीके ध्वनिका पराजय करने-वाले और अनेक रसोंसे भरे हुए स्त्रियोंके मधुर गान पदपदपर सुने जाते थे॥ १५–१६॥ वनमें सुंदर स्त्रियोंके नृत्य पदपदपर देखता हुआ राजा पाण्डु अपनी पत्नी मद्रीके साथ विहार करने लगा। नानाविध रम्य भोगोंसे, और संभोगसे उत्पन्न हुए हास्य, रस और विलासोंसे, तथा क्रीडासे, और आलिङ्गनादिकोंसे राजाने मद्रीको खूब रमाया॥ १७-१८॥ उस वनमें क्वचित् चन्दनरससे, क्वचित् अगुरुरसको अंगमें चर्चित करनेसे, क्वचित् सुगंधिचूर्ण अन्योन्यपर फेंकनेसे और क्वचित् अपनी प्रिय पत्नीके मधुर कटाक्षविलोकनोंसे और क्वचित् स्थानमें स्त्रियोंके कर्णमधुर व मनोज्ञ ध्वनियोंके कारण सुखसे रममाण होनेवाला पाण्डुराजा उत्तरोत्तर भोगोंकी चाह बढनेसे तृप्त नहीं हुआ॥ १९–२०॥ किसी वापिकामें जलक्रीडामें तत्पर होकर चन्दनजलके ऊपर उडनेवाले शुभ्र पुष्पके समान बिन्दुओंसे क्रीडा करने लगा। वापिकामें कण्ठतक पानीमें डूबे हुए राजाका शोभने-वाला उत्तम मुख मानो स्त्रीके मुखचन्द्रको निगलनेके लिये आये हुए राहूके समान दिखता था।

लतामण्डपमासाद्य क्वचिन्मधुकरस्वरैः। वृतं वर्तुलसंकाशं तस्थौ स्थिरमनाः स्थिरः ॥२४
स तत्र मण्डपे वल्ल्याः पुष्पशय्यामकारयत्। तत्र मद्र्या समं श्रीमांस्तस्थौ भोगार्थलालसः॥
रममाणः स्त्रिया सक्तः समासक्तमुखाम्बुजः। घनपीनस्तनाभोगां स भोगी बुभुजे च ताम्॥
स भोगभरनिर्भिन्नः संभिन्नमदनज्वरः। तावता मृगमैक्षिष्ट क्रीडन्तमुपमण्डपम् ॥२७
हरिणीभोगसंलुब्धं कुरङ्गं वीक्ष्य तत्क्षणात्। स च कोदण्डसंधानं शरेण समकल्पयत् ॥२८
जघान शरघातेन चापमुक्तेन भूमिपः। कुरङ्गं मारसंसक्तं कुरङ्गीलुब्धमानसम् ॥२९
पपात पृथिवीपीठे रटन्संकटसंगतः। ममार स च धिग्भोगान्लुब्धस्य गतिरीदृशी ॥३०
ततो नभोऽङ्गणाद्दैवो जजृम्भे ध्वनिरित्यरम्। भूपाल तव नो युक्तमीदृशं कर्म दुःखदम्॥
निरपराधिनो भूपा मृगान्घ्नन्ति वनस्थितान्। यदि रक्षां करिष्यन्ति तदान्ये केऽत्र भूतले॥
सापराधा अपि प्राज्ञैर्न हन्तव्या मृगादयः। जेघ्नीयन्ते स्म दैवेन यतो निरपराधिनः ॥३३
सतां प्रपालका भूपा असतां च निवारकाः। इत्युक्तिं युक्तितस्तूर्णं विफलां कुरुषे कथम्॥३४
मृगोऽयं न परान्हन्ति न स्वं चोरयति स्वयम्। परकीयं न चात्त्येव सस्यं वा रक्षितं नृणाम्॥

राजाने क्रीडा की, तोभी क्रीडाकी इच्छा पूर्ण न हुई। अतः वह पुनः विहार करनेके लिये उद्युक्त हुआ। उद्यानके प्रदेश देखनेमें उद्यत हुए पाण्डुराजाने वल्लियोंसे घिरे हुए अनेक स्थान देखे। किसी प्रदेशमें भौंरोंके मधुरस्वरोंसे घिरे हुए वर्तुलाकार लतामण्डपमें जाकर स्थिरचित्त होकर राजा स्थिर बैठा। उस लतामण्डपमें उसने पुष्पोंकी शय्या बनवाई। भोगपदार्थोंका अभिलाषी वह श्रीमान् राजा मद्रीरानीके साथ उसपर बैठ गया। मद्रीके मुखकमलमें आसक्त वह स्त्रीलंपट भोगी राजा कठिन और पुष्ट-स्तनवाली मद्रीके साथ खूब भोग भोगने लगा। इसप्रकार क्रीडा करनेसे उसकी भोगेच्छा मन्द हो गई और मदनज्वर नष्ट हुआ। इतनेमें मण्डपके समीप क्रीडा करनेवाले एक हरिणको उसने देखा। वह हरिणीके भोगमें लुब्ध हुआ था। उसको देखकर तत्काल उसने बाणसे धनुष्यका संधान कर दिया ॥ २१-२८ ॥ हरिणीके ऊपर लुब्धचित्त कामपीडित हरिणको राजाने धनुष्यसे छोडे हुए बाणके आघातसे मार डाला। बाणके लगनेसे आर्त चिल्लाता हुआ वह हरिण जमीनपर गिर पडा और मर गया। जो भोगलुब्ध होता है उसकी ऐसी गति होती है अतः ऐसे भोगोंको धिक्कार हो। ॥ २९-३० ॥ इसके अनंतर आकाशमेंसे देवकी वाणी इस प्रकारसे प्रगट हुई। " हे राजन्, तेरा इस प्रकारका दुःखदायक कर्म योग्य नहीं है। हे राजन्, यदि वनमें निरपराधी प्राणियोंको राजा मारेंगे तो इस भूतलमें कौन उनका रक्षण करेंगे? हे राजन्, अपराधयुक्त प्राणीको भी मारना विद्वान् लोगोंको योग्य नहीं है। परंतु दुर्दैवसे निरपराधी प्राणी हमेशा मारे जाते हैं। राजा सज्जनोंके रक्षक और दुष्टोंके निवारण करनेवाले होते हैं यह जो उक्ति-वचन प्रसिद्ध है उसे क्यों विफल कर रहा है। ॥ ३१-३४ ॥ यह मृगप्राणी दूसरोंको न मारता है और न किसीके धन को लूटता है।

ये नृपाः कृपयोन्मुक्तास्तंहन्ति बृहतः पशून् । निरपराधिनो नूनं तेऽद्य यास्यन्ति कां गतिम् ॥
पिपीलिकास्तनौ लग्नास्तन्व्योऽपि यदि दुःखदाः । जानद्भिरिति बाणेन कथं जेघ्नीयते मृगः ॥
मृगयामृगघातेन मृग्यं पापं हि केवलम् । अतो हिंसा न कर्तव्या हिंसा सर्वत्र दुःखदा ॥ ३८
ये हिंसातः समिच्छन्ति वृषं वृषविवर्जिताः । ते गोशृंगात्पयः पूर्णमग्नितः कमलोद्गमम् ॥३९
विषाच्च जीवितं जीव्यमहिवक्त्रात्परां सुधाम् । अस्तं प्राप्ताद्रवेर्घस्रं शिलातः सस्यसंभवम् ॥
इत्थं विज्ञाय भूपेन दया कार्या सुखावहा । कृपया प्राप्यते पारः संसारजलधेर्यतः ॥४१
इत्युक्तियुक्तिसंपत्तिं समाकर्ण्य कृपापरः । विरराम भवाद्भोगादेहतो भङ्गुरान्नृपः ॥४२
सुधा बुधा न कुर्वन्ति किल्बिषं कामवाञ्छया । ततः केवलकालुष्यादाप्नुवन्ति च दुर्गतिम् ॥
मुधा प्राणिवधेनाहो किं साध्यं मे सुखार्थिनः । किं राज्येन च सज्जन्तुघातोत्थकिल्बिषात्मना ॥
त्वयैव विषयार्थं हि प्राप्तं दुःखमनेकशः । विषयामिषदोषोऽयं प्रत्यक्षं किं न चेक्ष्यते ॥४५

परकीय तृण अथवा मनुष्यरक्षित तृणको वह स्पर्श नहीं करता है। जो निर्दय राजा निरपराध बडे पशुओंको मारते हैं अरेरे, न जाने वे कौनसी गतिको जायेंगे ? छोटी छोटी चींटियाभी शरीरपर दंश करनेसे दुःख होने लगता है यह जाननेवालेका बाणकेद्वारा हरिणको मारना कैसे न्यायसंगत हो सकता है ? शिकारमें हरिणके मारनेसे क्या प्राप्त होता है इसका अन्वेषण करनेसे सिर्फ पापही लगता है यह दीख पडेगा। इस लिये हिंसा नहीं करना चाहिये। क्यों कि हिंसा सर्वत्र दुःख देनेवाली होती हैं॥ ३५-३८॥ जो अधार्मिक लोग हिंसासे पुण्य या धर्म होता मानते हैं, समझना चाहिये कि वे गायके सींगसे दूध, अग्निसे कमलकी उत्पत्ति, विषसे जीवन-प्राप्ति, सर्पके मुखसे उत्तम सुधा, अस्तको प्राप्त हुए सूर्यसे दिन और शिलासे धान्यांकुरका संभव समझ लेते हैं। इसलिये राजाको सुखदायक दयाका अंगीकार करना चाहिये। क्योंकि, दयासे संसारसमुद्रका दूसरा किनारा प्राप्त किया जा सकता है" ॥ ३९-४१ ॥ इस प्रकार आकाशकी युक्तियुक्त देववाणी सुनकर दयालु पाण्डुराजाका मन नश्वर संसार, देह और भोगसे विरक्त हुआ ॥४२॥

[पाण्डुराजाका वैराग्यचिन्तन] विद्वान् लोक कामवासनाके वशीभूत होकर व्यर्थ पाप नहीं करते हैं। कामवासनासे केवल कालुष्य भावही उत्पन्न होता है। जिससे दुर्गतिकी प्राप्ति होती हैं। मैं सुखकी इच्छा करता हूं। मुझे व्यर्थ प्राणिवध करनेसे वह कैसा प्राप्त हो सकेगा ? और प्राणियोंका घात करनेसे उत्पन्न हुआ जो पातक तत्स्वरूप राज्य है। अर्थात् राज्य प्राणियोंके घातके विना प्राप्त नहीं होता है। अत एव वह प्राणिघातरूप होनेसे पापरूप है ॥ ४३ ॥ हे आत्मन्, तूनेही विषयोंके लिये अनेकवार दुःख प्राप्त किये हैं। जीवोंको जो दुःख प्राप्त होते हैं उनका उपादान कारण विषय हैं। हे आत्मन् यह बात प्रत्यक्ष होनेपरभी तुझे नहीं दीखती है, हे जीव, ये सब राज्यादिक पदार्थ तुझसे पहले अनेकवार भोगे गये हैं। वही उच्छिष्टराज्यादिक

इदं सर्वं त्वया भुक्तपूर्वं जन्तो ह्यनेकशः। पूर्वं तदेव स्वोच्छिष्टं को भुनक्ति सुधीर्भुवि ॥४६
विषयैर्भुज्यमानैर्हि न तृप्तिं यान्ति देहिनः। स्वकायमथनोद्भूते रतिस्तत्र कथं नृणाम् ॥४७
भुज्यमानाः सुखायन्ते विषया दुःखदायिनः। अन्ते स्वर्णफलानीव मिष्टान्यादौ स्वहान्यथ ॥
नश्यन्ति विषयाः स्थित्वा चिरं नूनं यदि स्वयम्। हीयन्ते न कथं सद्भिस्त्यक्ता मुक्तिकरा यतः ॥
सुरासुरनरेन्द्राणां तृप्तिर्नो विषयैः क्वचित्। नरदेहसमुद्भूतैः कथं तृप्यन्ति ते नराः ॥५०
यः सागरसुपानीयैर्वाडवस्तृप्तिमुन्नताम्। इयर्ति स्म न किं याति तृणाग्रबिन्दुतः स च ॥५१
पूर्वं भुक्तास्त्वयानन्तकालं ते तैश्च पूर्यताम्। इदानीमात्मसौख्येन तृप्तोऽहमस्मि सस्मयः॥५२
रागोऽधिस्त्रि निजान्प्राणान्हन्ति राज्यं च रागिणः।
दुर्नयाः किं न कुर्वन्ति स्वकृत्यं भोगभागिनः ॥ ५३
वक्त्रं श्लेष्माकरं स्त्रीणां दूषिकादूषिते पुनः। नेत्रे नासापुटं पूतिगन्धद्रव्यभरावहम् ॥५४
ईदृशे वदने मूढाश्चन्द्रबुद्धिं प्रकुर्वते। तिमिराक्षनराः किं न रज्यन्ति शुक्तिकापुटे ॥५५
बालभारवहे मूढा धम्मिल्ले योषितामिति। प्रकीर्णकप्रकृत्यार्ता मोमुह्यन्ते मदावहाः ॥५६

कौनसा बुद्धिमान भोगना चाहेगा? भोगे जानेवाले विषयोंसे प्राणियोंको तृप्ति नहीं होती है। समझमें नहीं आता है कि, अपने शरीरको स्त्रीके शरीरसे घिसनेपर उत्पन्न होनेवाले सुखमें मनुष्योंको क्यों आसक्ति उत्पन्न होती है? वास्तविक वह सुख नहीं है ॥ ४४-४७ ॥ भोगे जानेवाले ये विषय दुःख देनेवाले हैं परन्तु मनुष्योंको सुखके समान मालूम पडते हैं। ये विषय प्रथम मिष्ट मालुम पडते हैं परन्तु धत्तूरके फलके समान अन्तमें जीवका घात करते हैं। जब कि ये विषय दीर्घकालतक रहकर भी निश्चयसे स्वयं नष्ट होते हैं तो सज्जन इनका त्याग क्यों नहीं करते हैं? इनका त्याग तो जीवको मुक्तिप्रदान करनेवाला होता है। देवेन्द्र, असुरेन्द्र और चक्रवर्ति भी विषयोंसे तृप्त नहीं हुए हैं अतः मनुष्यदेहसे उत्पन्न हुए इन विषयोंसे मनुष्य कैसे तृप्त होंगे? ॥४८-५०॥ समुद्रमें रहनेवाला वाडवाग्नि समुद्रके पानीसेभी तृप्त नहीं होता है वह तिनकेके अग्रपर रहनेवाले जलबून्दसे तृप्त कैसे होगा? ॥ ५१ ॥ हे आत्मन्, पूर्वमें अनन्तकालतक तूने इन विषयोंका उपभोग लिया है। अब इनसे विराम लेनाही अच्छा है। इस समय मैं आश्चर्ययुक्त होता हुआ आत्मसौख्यसे तृप्त हुआ हूं। स्त्रीविषयके प्रेमसे कामी लोग अपने प्राण और राज्य गमाते हैं। भोगोंको भोगनेवाले स्वैराचारी कामी लोग कौनसा अकृत्य नहीं करते हैं? ॥ ५२-५३ ॥ स्त्रियोंका मुख लाला-थूक वगैरहका खजाना है। पुनः नेत्रभी मलसे भरे हुए हैं और नाकके दो रन्ध्र दुर्गंध पदार्थसे भरे हुए हैं। इसप्रकारके स्त्रीमुखमें-मूढ लोग चन्द्रकी बुद्धि करते हैं जैसे पीलिया रोगसे मनुष्य सींपमें सुवर्ण समझकर प्रेम करते हैं। स्त्रियोंके केशसमूहमें अर्थात् बांधे हुए केशोंको चामर मानकर काममत्त पुरुष मोहित होते हैं। स्त्रियोंके स्तन मांसके पिण्ड हैं परन्तु उनमें-मांसभक्षक कौवे जैसे

मांसपिण्डे कुचे स्त्रीणां सुधाकुम्भं नरा इति । रारज्यन्ते यथा काकाः पिशिते पिशिताशनाः ॥
सुघने जघने स्त्रीणां सुखायन्ते च कामिनः । रक्ता विड्निवहे किं न यतन्ते सूकरा भुवि ॥
कीदृशं किं कियत्कुत्र जातं नारीभवं सुखम् । इत्यूहेन स्थितं सर्वं कर्दमक्षालनं यथा ॥५९
सप्तधातुमये काये स्वपाये बहुमायके । रारज्यन्ते कथं स्त्रीणां रामान्धा रङ्कवत्सदा ॥६०
निवारितापि जन्तूनां दुःफला धीः प्रवर्तते । अकृत्येऽपि न कृत्ये हि यत्नेन यतते सताम् ॥
विषयत्वं विजानाति पङ्कहेतुं सतां मतिः । तथापि तत्र वर्तेत धिङ्मोहस्य विचेष्टितम् ॥६२
मोमुह्यन्ते नरा मोहात्सीमन्तिन्याः शरीरके । असद्वस्तुनि सद्बुद्ध्या प्रतार्यन्ते हताशयाः ॥
दशाननादिभूपानां स्त्रीनिमित्तं हि केवलम् । मरणं राज्यनिर्णाशश्चासीद्दुर्गतिरुत्तरा ॥६४

क यामः किं वयं कुर्मः क तिष्ठामः कुतः सुखम् ।
कुतो लभ्या मया लक्ष्मीः कः सेव्यो नृपतिः पुनः ॥६५

का स्त्री स्वरूपसौभाग्या किं भोग्यं भोगभूतये । को रसो रसनास्वाद्यः किं वस्तु मम कार्यकृत् ॥

मांसमें अनुरक्त होते हैं वैसे कामी पुरुष उनमें सुधाके कुंभ समझ अतिशय अनुरक्त होते हैं। जैसे सूअर विष्ठाके समूहमें लुब्ध होते हैं, वैसे कामी पुरुष स्त्रियोंके सघन जघनमें अनुरक्त होकर उससे अपनेको अतिशय सुखी समझते हैं ॥५४–५८॥ स्त्रीसे प्राप्त होनेवाला सुख क्या है? कैसा है? कितना है? कहांसे उत्पन्न होता है? इन बातोंका यदि विचार किया जायगा, तो यह कीचड धोनेके समान होगा। यह स्त्रीका देह सात धातुओंसे भरा हुआ है, और अपाययुक्त है, नाशवन्त है। मायासे भरा हुआ है। इसमें रागान्ध हुए पुरुष दीनके समान अतिशय आसक्त हो रहे हैं ॥५९–६०॥ प्रयत्नसे बुद्धिका निवारण करनेपर भी वह अकृत्यमें प्रवृत्त होती है और आत्माको अपना दुष्टफल चखाती है। बुद्धिको सत्कृत्यमें यत्नसे प्रेरणा करनेपरभी वह उसमें प्रवृत्त नहीं होती है। सज्जन प्रयत्न करके लोगोंकी बुद्धिको सत्कृत्यमें लगाते हैं तोभी वह उसमें प्रवृत्त नहीं होती है ॥ ६१ ॥ सज्जनोंकी बुद्धि विषयोंको पापका कारण समझती है तथापि लोगोंकी बुद्धि उन विषयोंहीमें प्रवृत्त होती है, मोहकी चेष्टाको धिक्कार है ॥ ६२ ॥ मनुष्य मोहसे नारीके शरीरमें अतिशय लुब्ध होते हैं। उनका ज्ञान मारा जाता है, और वे असद्वस्तुमें सद्वस्तुकी बुद्धिसे फँस जाते हैं ॥ ६३ ॥ दशाननादिक अनेक राजा स्त्रीके निमित्तहीसे मर गये, उनका राज्य नष्ट हुआ और बाद वे दुर्गतिको प्राप्त हुए ॥ ६४ ॥ नानाविध विकल्पसमूहसे फँसाए गये मोहयुक्त दुष्ट बुद्धिवाले लोग इसप्रकार विचार करते हैं— कहां जाना चाहिये? क्या कार्य करना चाहिये? कहां रहना चाहिये और किससे सुखलाभ होगा? मुझे कौनसे उपायोंसे लक्ष्मी प्राप्त होगी? कौनसे राजाकी सेवा करना चाहिये? कोनसी स्त्री स्वरूपसुंदर और भाग्यशालिनी है? भोगके वैभवके लिये कोनसी वस्तु भोग्य है? जिह्वासे कोनसा रस ग्रहण करने योग्य है? किस वस्तुसे मेरा इच्छित कार्य सिद्ध होगा?

हनिष्यामि कदा शत्रुं मोहेनेति महीयसा। चिन्तन्ति दुर्मतिं नीता विकल्पव्रातवञ्चिताः॥
एणः क्षीणः क्षणेनायं स्वैणीप्राणप्रियो मया। हतात्मना हतो हन्त करिष्ये किमहं शुभम्॥
चिन्तयन्निति दुश्चिन्ताश्चिन्त्यचेतनमुक्तधीः। यावदास्ते समासीनो दिशां पश्यन्विशांपतिः॥
तावता सुव्रतो योगी व्रतव्रातविराजितः। इद्धावधिपरिज्ञातनानालोकस्थितिः स्थिरः॥७०
गुप्तिगुप्तः सुगुप्तात्मा समितिस्थितिसंगतिः। षट्सुजीवनिकायानां पालकः परमोदयः॥७१
चिदात्मचिन्तनासक्तो विमुक्तो भवभोगतः। अनुप्रेक्षाक्षणासक्तो निर्विपक्षः समक्षधीः॥७२
अक्षूणलक्षणैर्लक्ष्यः क्षपणाक्षीणविग्रहः। निर्जिताक्षः क्षमाकांक्षी सुपक्षोऽक्षयसौख्यभाक्॥
दुर्लक्ष्यः स्त्रीकटाक्षेण क्षान्त्या क्षोणीं क्षिपन्नपि। मोक्षाक्षयसुक्षेत्रस्य कांक्षकः क्षिप्तकल्मषः॥
क्षणे क्षणे क्षयं कुर्वन्कर्मणां क्षपिताक्षकः। दक्षः क्षेमंकरोऽक्षोभ्याक्षीणो रक्षाक्षराढ्यवाक्॥
अक्षेमक्षेपको मङ्क्षु साक्षाद्भिक्षुः क्षितीशनुत्। क्षप्यपक्षक्षयोद्युक्तो दीक्षितः क्षणलक्षणः॥७६

मैं शत्रुको कब नष्ट कर सकूंगा॥६५-६७॥ हरिणीको प्राणके समान प्रिय हरिण दुष्ट बुद्धिसे मैंने मारा और वह एक क्षणमें क्षीण होकर मर गया। अरेरे! मैं अब कौनसा शुभ कार्य करूं, जिससे मेरा यह पाप नष्ट होगा! इसप्रकार पाण्डुराजाने विचार किया। यह कार्य मैंने दुःखदायक किया ऐसा वह विचारने लगा। तथा थोडी देरतक चिन्ता करने योग्य ज्ञानसे रहित हुआ। उसकी अवस्था कुछ कालतक ऐसी रही। तदनंतर वह इधरउधर दिशाओंको देखने लगा॥६८-६९॥

[सुव्रत मुनिका उपदेश] पाण्डुराजाको सुव्रत नामक योगी दृष्टिगोचर हुए। वे अहिंसादि पांच महाव्रतोंके धारक थे। उत्कृष्ट अवधिज्ञानसे लोगोंके अनेक व्यवहारोंको वे जानते थे। और अपने व्रतोंमें वे स्थिर रहते थे। तीन गुप्तियोंका उन्होंने रक्षण किया था। वे उत्तमरीतिसे आत्माका रक्षण करते थे अर्थात् संयमी थे। पांच समितियोंका पालन करते थे। पांच स्थावर और त्रस जीव ऐसे जीवसमूहोंके वे पालक थे। अर्थात् दयाभावसे उनका रक्षण करते थे। चैतन्यरूप आत्मस्वरूपके चिन्तनमें तत्पर होकर संसारभोगोंसे विरक्त रहते थे। अनुप्रेक्षाओंके चिन्तनमें तत्पर थे। वे शत्रुरहित और प्रत्यक्षज्ञानी थे। उत्तम सामुद्रिक चिह्नोंसे वे महापुरुष दीखते थे। उपवासोंसे उनका देह कृश हुआ था। वे जितेन्द्रिय, क्षमाधारी, अनेकान्त पक्षके धारक, और अक्षयसौख्यके अनुभवी थे। वे कभी स्त्रियोंके कटाक्षोंसे विद्ध न होते थे। क्षमाके द्वारा पृथ्वीको तिरस्कृत करते हुए भी मोक्षके अक्षय क्षेत्रकी इच्छा रखनेवाले, पापविनाशक, और प्रत्येक क्षणमें कर्मोंका क्षय करनेवाले थे। इन्द्रियोंका दमन करनेवाले, अपने ध्यानादिकार्योंमें तत्पर, प्राणियोंका हित करनेवाले, कोपादिकोंसे अक्षुब्ध, क्षमादि गुणोंसे पुष्ट, प्राणिरक्षणका उपदेश देनेवाले, लोगोंको अहितसे तत्काल दूर रखनेवाले थे। उनकी मुनि और राजा स्तुति करते थे। क्षपण करने योग्य ऐसे ज्ञानावरणादि कर्मोंका नाश करनेमें वे उद्युक्त रहते थे। वे दीक्षित और उत्साहके लक्षणोंसे

ईदृक्षस्तु क्षितीशेन वीक्षितः क्षणदाक्षये। पूषेव पुष्टिमाप्तेन धराक्षिप्तास्त्रकेन च ॥७७
चतुर्विधेन संघेन युक्तस्य च महामुनेः। पादपद्मं ननामाशु प्रचण्डः पाण्डुपण्डितः ॥७८
धर्मवृद्ध्याशिषाशास्य संयमी नृपसत्तमम्। धराधीशं धरायां च निविष्टं पुरतो जगौ ॥७९
राजन्संसारकान्तारे संसरन्ति शरीरिणः। न लभन्ते स्थितिं क्वापि परां पयोरघट्टवत् ॥८०
वृषो वृषार्थिभिः सेव्यः स तत्र द्विविधो मतः। अनगारसुसागारभेदेन भवभङ्गकृत् ॥८१
महाव्रतानि पञ्चैव गुप्तयस्त्रिविधाः स्मृताः। सत्यः समितयः पञ्च यतिधर्म इति स्फुटम् ॥८२
प्राणिनां तत्र षण्णां च रक्षणं मनसा तथा। वचसा वपुषाख्यातं प्रथमं स्यान्महाव्रतम् ॥८३
असत्यं वचनं क्वापि न वक्तव्यं शुभार्थिभिः। हितं मितं च द्वितीयं वक्तव्यं स्यान्महाव्रतम् ॥८४
अदत्तं परकीयं च न ग्राह्यं वस्तु सद्धिया। तृतीयव्रतयुक्तेन यतोऽनर्थः परार्थतः ॥८५
देवमानुषसंतिर्यक्कृत्रिमाश्च स्त्रियो मताः। चतुर्धातो निवृत्तिर्या चतुर्थं तन्महाव्रतम् ॥८६
दशबाह्योपधेश्चान्तश्चतुर्दशपरिग्रहात्। निवृत्तिः क्रियते या तत्पञ्चमं स्यान्महाव्रतम् ॥८७
रौद्रार्त्तसुरताहारपरलोकविकल्पनम्। यच्चेतसि न चिन्त्येत मनोगुप्तिस्तु सा मता ॥८८

युक्त थे। वे मुनिराज सूर्यके समान तेजस्वी थे। उनके साथ चार प्रकारका संघ था। जिसने शस्त्रका त्याग किया है ऐसे पुष्ट शरीरके राजाने सूर्योदयके समय उन मुनिराजको देखा। उनके पास जाकर प्रचण्ड पाण्डुपण्डितने उनको वन्दन किया ॥७०-७८॥ राजाओंमें श्रेष्ठ, पृथ्वीके अधिपति, अपने आगे बैठे हुए राजाको संयमी सुव्रत मुनीश्वरने 'धर्मवृद्धिर्भवतु' ऐसा आशीर्वाद दिया और इसप्रकारका धर्मोपदेश देने लगे ॥ ७९ ॥ हे राजन् इस संसारवनमें प्राणी हमेशा भ्रमण करते हैं घटीयन्त्रके समान वे कहींभी स्थिर नहीं रहते हैं ॥ ८० ॥ धर्मका पालन करनेकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको धर्मका सेवन करना चाहिये, धर्मके अनगार धर्म और सागार धर्म ऐसे दो भेद हैं। वे दोनों संसारके नाशक हैं। यतिधर्म तेरह प्रकारका है-पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति इनका पालन करना यतिधर्मका स्वरूप है ॥ ८१-८२ ॥ मनसे, वचनसे और शरीरसे षट्काय जीवोंका रक्षण करना पहिला अहिंसा नामक महाव्रत है। हितेच्छु मुनि असत्यवचन कदापि नहीं बोलते हैं। हमेशा हितकर और अल्प भाषण करते हैं यह उनका दूसरा सत्यनामक महाव्रत है। शुभबुद्धिसे न दी हुई दूसरेकी वस्तु नहीं लेना यह तीसरा अचौर्य महाव्रत है। दूसरेकी वस्तु लेनेसे राजदण्ड, सर्वस्वहरणादि अनेक अनर्थ होते हैं। देवांगना, मनुष्यस्त्रियाँ, पशुस्त्रियाँ और कृत्रिम स्त्रियाँ अर्थात् स्त्रियोंके चित्र इन चारप्रकारकी स्त्रियोंसे पूर्ण विरक्त होना ब्रह्मचर्य महाव्रत है। बाह्य-परिग्रह दश प्रकारका है और अन्तरंग परिग्रह चौदह प्रकारका है। ऐसे चोवीस प्रकारके परिग्रहोंसे विरक्त होना पांचवा परिग्रहत्याग नामक महाव्रत है ॥ ८३-८७ ॥ रौद्रध्यान, आर्त्तध्यान, मैथुन-सेवन, आहारकी अभिलाषा इहलोक और परलोकके सुखोंकी चिन्ता इत्यादि विकल्पनाओंका त्याग

स्त्रीकथादिविभेदेन विकथा वाग्विचक्षणैः। उक्ता ततो निवृत्तिर्या सा वचोगुप्तिरिष्यते ॥८९
चित्रादिकर्मणा कायो विकृतिं याति न क्वचित्। कायगुप्तिस्तु सा ख्याता क्षिप्तदुःकर्मशत्रुभिः॥
सूर्योदये पथि क्षुण्णे वीक्षिते जन्तुमर्दिते। युगमात्रं गतिर्या तु सेर्यासमितिरुच्यते ॥९१
कर्कशादिविभेदेन दशधा वचनं स्मृतम्। तन्निवृत्तिः क्षितौ ख्याता भाषासमितिरुच्यते ॥९२
षट्चत्वारिंशता दोषैर्मुक्तो न्यादपरिग्रहः। विधीयते मुनीन्द्रैर्या सैषणासमितिर्मता ॥९३
आदानं क्षेपणं यद्वोपधीनां संविधीयते। सन्मार्ज्य वीक्ष्य सादाननिक्षेपसमितिर्मता ॥९४
श्लेष्ममूत्रमलादीनां क्षेपणं यद्विधीयते। निर्जन्तुके प्रदेशे च सा प्रतिष्ठापना भवेत् ॥९५
एवं विस्तरतो वाग्मी यतिधर्ममुवाच च। तथैवोपासकाचारं चरतां तं च नाकिताम् ॥९६
पुनर्योगी जगौ राजंस्तस्मिन्धर्मे रतिं कुरु। यतः स्वर्गसुखावाप्तिर्निर्वाणं क्रमतो भवेत् ॥९७
किंचायुस्तव सुस्वल्पं त्रयोदशदिनावधि। सावधानो विधानज्ञो विधेहि विधिवद्वृषम् ॥९८
विशुद्धया धिया धत्ते धर्मं यो विधिवद्ध्रुवम्। धृतियुक्तः सुधीः प्रोक्तो विशुद्धः सोऽवधारितः॥

करना पहिली मनोगुप्ति है। स्त्रीकथा, राजकथा, आहारकथा और चोरकथा ऐसे विकथाके चार भेद वचनचतुर विद्वानोंने कहे हैं। इन विकथाओंसे विरक्त होना वचनगुप्ति माना जाता है। चित्रादिक्रियासे शरीरका बिलकुल विकारको प्राप्त नहीं होना यह कायगुप्ति हैं ऐसा कर्मशत्रुको जीतनेवाले जिनेश्वरोंने कहा है॥ ८८-९० ॥ सूर्योदय होनेपर मार्ग साफ दीखता है, लोग आने-जाने लगते हैं। तथा प्राणियोंके आनेजानेसे वह मार्ग मर्दित होता है और लोगोंकी रहदारीसे वह संचारयोग्य होता है और ऐसे मार्गमें सूक्ष्म चिऊंटी आदिक जन्तु नहीं रहते हैं। चार हाथ आगे देखकर सावधानतासे यतियोंका चलना ईर्यासमिति है॥ ९१ ॥ कर्कशादिक भेदसे वचन दश प्रकारका है। उससे जो विरक्त होना वह भाषासमिति है॥ ९२ ॥ मुनींद्र छियालीस दोषोंसे रहित आहार लेते हैं वह एषणासमिति है॥ ९३ ॥ कमण्डलु, पुस्तक आदि जमीनपर रखना अथवा उठा लेनेके समय जमीन और पुस्तकादि पदार्थ पिंछीसे स्वच्छ करना और देखभाल कर लेना यह आदाननिक्षेपण समिति है॥ ९४ ॥ कफ, मल, मूत्र आदिक पदार्थ निर्जन्तुक जमीनपर छोड देना यह प्रतिष्ठापना समिति है॥ ९५ ॥ इसप्रकार युक्तिसे भाषण करनेवाले सुव्रत मुनीशने विस्तारसे मुनिधर्मका कथन किया तथा श्रावकोंका धर्म आचरनेवालोंको स्वर्गप्राप्ति होती है, ऐसा कहकर श्रावकधर्मका भी विस्तारसे कथन किया और कहा हे राजन् इसप्रकारके द्विविध धर्ममें तू प्रेम कर। इन धर्मोंसे स्वर्गसुख मिलता है और क्रमसे निर्वाणकी प्राप्ति होती है॥ ९६-९७ ॥ हे राजन् तेरी आयु अब तेरह दिनकी रही है; अतः तू सावधान हो। धर्माचारको जाननेवाला तू योग्य विधिसे धर्माचरण कर। यह निश्चित है कि निर्मल बुद्धिसे जो विधिपूर्वक दृढतासे धर्म धारण करता है, मनमें संतोष रखता है वह विद्वान् विशुद्धिको-निर्मल परिणामको धारण करता है॥ ९८-९९ ॥

निशम्येति यतेर्वाचं चलचेताश्चलात्मकः । चकम्पूर्यमाणोऽसातेन पाण्डुरासीद्भयातुरः ॥१००
क्षणं क्षणिकमावीक्ष्य जीवितं जीवनोत्सुकम् । नृपः स्वसंपदं मेने क्षणिकां ह्रादिनीमिव ॥
ततश्चित्ते समालम्ब्य स्थैर्यं स्थिरमना मुनिम् । नत्वा स्तुत्वा चचालासौ चालयन्नचलां चिरम्॥
पाण्डुस्तु पाण्डुराकारः सम्राट सदनं निजम् । पापभीतिः परां प्रीतिं कुर्वञ्श्रेयसि संमतः ॥
धृतराष्ट्रादयस्तेन समाहूताः स्वमन्दिरे । ततः स मुनिवक्त्रोत्थं वृत्तान्तं समचीकथत् ॥१०४
निशम्य ते महादुःखा रुरुदुर्हृदि ताडिताः । असिनेव हता हन्त विलापमुखराननाः ॥ १०५
मुमूर्च्छुर्मङ्गलातीता बाष्पप्लावितलोचनाः । कुन्त्यादयोऽखिला बाला मुक्ताश्चेतनया यथा ॥
शीतोपचारतो लब्धचेतनाश्चिन्तयाकुलाः । इतिकर्तव्यतामूढा गूढासातसमन्विताः ॥ १०७
ततः पाण्डुरभाणीत्तान्समाश्वास्य वचोभरैः । श्रूयतामवधानेन भवद्भिर्वचनं मम ॥ १०८
संसारे सरतां पुंसां जननं मरणं तथा । संबोभोति च किं दुःखं मरणे समुपस्थिते ॥ १०९

इसप्रकारसे मुनिका भाषण सुनकर श्रीपाण्डुराजका मन चञ्चल हुआ। उसकी आत्मामें भी कंप उत्पन्न हुआ। वह दुःखसे अत्यंत पीडित होकर भयसे खिन्न हुआ। मनुष्यका जीवित जीवनके लिये हमेशा उत्सुक रहता है, परंतु वह स्थिर नहीं है। प्रत्युत क्षणिक है ऐसा राजाने निश्चय किया और अपनी सम्पत्तिको बिजलीके समान क्षणिक जाना ॥ १००-१०१ ॥ तदनंतर स्थिर चित्त राजाने चित्तमें स्थिरताका अवलम्ब कर मुनिको वंदन किया और उनकी स्तुति कर पृथ्वीको कम्पित करते हुए हस्तिनापुरके प्रति प्रयाण किया। शुभ्र शरीरका धारक पाण्डुराजा अपने घरको चला गया। पापसे डरनेवाला और मोक्षमें अथवा आत्महितमें अतिशय प्रेम करनेवाला वह राजा विद्वानोंको मान्य था ॥ १०२-१०३ ॥

[पाण्डुराजाका उपदेश] धृतराष्ट्रादिकोंको पाण्डुराजाने अपने घरमें बुलाया और मुनिके मुखसे निकली हुई अपनी मृत्युवार्ता उन्हें निवेदन की। वह वार्ता सुनकर उनको महादुःख हुआ। उनके हृदयपर उस वार्ताका तीव्र आघात हुआ। वे रोने लगे मानो किसीने उनके ऊपर तरवारका प्रहार किया हो। उनके मुखसे विलापके शब्द निकलने लगे। वे मूर्च्छित हो गये। उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। उन्हें यह प्रसंग बहुत अमंगल मालूम हुआ। कुन्ती आदिक स्त्रियाँ मानो चेतनारहित होगयी अर्थात् वे गाढ मूर्च्छित हुई। जब शीतोपचार किया गया तब उनको चेतना फिर प्राप्त हो.गई। परंतु उनको चिन्ताने पकड लिया। वे किंकर्तव्यमूढ हुईं। गाढ दुःखसे वे पीडित हुई ॥ १०४-१०७ ॥ तदनंतर अनेक वचनोंसे पाण्डुराजाने सबका समाधान करते हुए कहा, आप लोग मेरा वचन सावधानतासे सुनो—संसारमें भ्रमण करनेवाले प्राणियोंको जन्म और मरण वारंवार प्राप्त होतेही हैं। इसलिये मरण प्राप्त होनेपर क्यों दुःखित होते हो? ॥१०८-१०९॥ इस षट्खण्ड पृथ्वीका भरतने उपभोग लिया। जीतने योग्य शत्रु जयसे उन्मत्त होकर उसने

भूभारं भरतो भुक्त्वा जित्वा जेयाञ्जयोद्धुरः । कालेन कलितः सोऽपि कालोऽयं बलवानिह ॥
जयो जयञ्जनान्युक्त्या मेघेश्वरसुरानपि । सोऽपि कालकलातीतो मुक्त्वा प्राणाञ्शिवं ययौ ॥
कुरुः कवलयन्सर्वं कुरुवंशनभोमणिः । कवलीकृत्य कालेन कलितः सोऽपि कर्मणा ॥ ११२
संसरन्तः सदा सन्तः संसारेऽसातसागरे । सनातना न दृश्यन्तेऽप्येवं शोकेन तत्र किम् ॥
के के गता न संभुज्य भुवं भोगहताशयाः । कास्था ममात्र भोगादौ निःशेषविगतायुषः ॥
इन्दिरामन्दिराण्यत्र सुन्दराणि सुदन्तिनः । सुदत्य इन्दुवदनाश्चन्दनादीनि वीतयः ॥११५
सर्वमेतद्धिनिश्चेयं निश्चयेन चलात्मकम् । कात्र स्थितमतिः प्रातस्तृणाग्रलग्नबिन्दुवत् ॥११६
एवं संबोध्य बोधात्मा बुद्धः संशुद्धमानसः । बुधांस्तान्संदधे धर्मे बुद्धिं धीधनवर्धितः ॥११७
जिनपूजनसंसक्तस्ततः श्रीजिनपुङ्गवान् । पाण्डुः संपूजयामास भक्तिनिर्भरमानसः ॥११८
अष्टधार्चनमादायापूजयत्पापभीतधीः । जिनान्संगीतनृत्याद्यैः कृत्वा क्षणभरं क्षणात् ॥११९

जीते, परंतु वह भी कालसे ग्रस्त हुआ। इस भूमंडलपर काल बलवान है। जयकुमारने शत्रु-ओंको तो जीताही परंतु मेघेश्वरदेवोंको भी उसने वश किया था। परंतु वह भी कालकी कलासे उल्लंघित हुआ। अर्थात् प्राण छोडकर मुक्त हुआ। संपूर्ण कुरुजांगल देशको अपने अधीन रखनेवाला, कुरुवंशरूपी आकाशको भूषित करनेवाला मानो सूर्य ऐसा जो कुरुराजा वह भी कर्मरूप कालका ग्रास बन गया है। दुःखसागररूप संसारमें नित्य घूमनेवाले सज्जन चिरकाल इस भूलोकमें वास्तव्य नहीं करते हैं। जब ऐसा वस्तुका स्वरूपही है, तो इस विषयमें शोक करना निष्प्रयोजन है। भोगमें लुब्ध होनेसे जिनके परिणाम मलिन हुए हैं अथवा भोगोंसे जिनकी बुद्धि मारी गयी है ऐसे कौन कौन राजा पृथ्वीका उपभोग लेकर नष्ट नहीं हुए हैं? मेरा आयुष्य संपूर्ण नष्ट हो चुका है अब इहलोकके भोगोंमें मेरी कुछ आस्था-अभिलाषा नहीं रही है। इस मेरी राजधानीमें लक्ष्मीके निवासस्थान ऐसे अनेक महल हैं। अनेक अच्छे हाथी हैं। अनेक चंद्रमुखी स्त्रियाँ, चन्दनादिक सुगंधित पदार्थ, उत्तम घोडे, सब कुछ हैं लेकिन यह सब वैभव निश्चयसे चंचल है, नष्ट होनेवाला है। यह स्थिर है ऐसी भावनाही अज्ञान है। यह सब प्रातःकालमें तृणाग्रमें स्थित जलबिन्दुके समान है॥ ११०-११६॥ बुद्ध-विरक्त निर्मल हृदयी, बुद्धिरूपी धन जिसका बढ गया है ऐसे पाण्डुराजाने इस प्रकारका उपदेश देकर धृतराष्ट्रादिकोंको धर्ममें स्थिर किया॥ ११७॥ तदनंतर भक्तिमें अतिशय तत्परचित्त, जिनपूजनमें तल्लीन पाण्डु-राजाने जिनेश्वरकी पूजा की। पापोंसे भययुक्त बुद्धिवाले पाण्डुराजाने अष्टप्रकारका पूजनद्रव्य लेकर संगीत नृत्यादिकोंसे आनंदित होकर कुछ कालतक जिनेश्वरकी पूजा की। चार प्रकारके दान देनेमें तत्पर पाण्डुराजाने साधर्मिक लोगोंको धन दिया। सर्वप्रकारसे सब लोगोंको उसने सन्तुष्ट किया। इसप्रकार वह भवविनाश करनेवाला हुआ। उसने उस समय अपने धर्म आदिक पांच पुत्रोंको

सधर्मिभ्यो ददद्विधं चतुर्धा दानतत्परः । संतोष्य सर्वतः सर्वानभवद्भवभेदकः ॥१२०
समाहूय सुतान्पञ्च धर्मपुत्रादिकांस्तदा । दत्तराज्यभराक्रान्तान्धृतराष्ट्राय सोऽर्पयत् ॥१२१
पालनीयाः सुता मेऽद्य त्वत्पुत्रसुधिया त्वया । युधिष्ठिरादयो नूनं कुरुवंशं सुरक्षता ॥१२२
कुन्त्याः सोऽदाच्छुभां शिक्षां पुत्रपालनहेतवे । निर्विण्णो भवभोगेषु परलोकहितोद्यतः ॥१२३
युधिष्ठिरादिसूनूनां रुदतामतिमोहिनाम् । स्वराज्यस्थितये शिक्षां ददौ पाण्डुरखण्डवाक् ॥
कुरुजान् गोत्रिणो वंश्यान्क्षान्त्वा पाण्डुः क्षमापयन् । निर्ययौ गेहतो हित्वा गेहस्नेहपरिग्रहान् ॥
इयाय जाह्नवीतीरमजिह्मब्रह्मवेदकः । तत्र स प्रासुके देशे संन्यस्यास्थात्स्थिरव्रतः ॥१२६
यावज्जीवं कृताहारशरीरत्यागसंगतः । वीरशय्यां समारुक्षदमूढो गुरुसाक्षिकम् ॥१२७
आरुह्याराधनानावं भवाब्धिं तर्तुमिच्छुकः । सर्वसत्त्वेषु समतां भावयन्भावतत्परः ॥१२८
मैत्रीं सर्वत्र जीवेषु प्रमोदं गुणिषु व्यधात् । माध्यस्थ्यं विपरीतेषु कृपां क्लिष्टेषु भूपतिः ॥

बुलाकर और उनको राज्यभार सौंपकर उनको धृतराष्ट्रके अधीन किया। हे धृतराष्ट्र, कुरुवंशाकी उत्तम रक्षा करनेवाला तू आज अपने पुत्रके समान समझकर युधिष्ठिरादिक मेरे पुत्रोंका पालन कर ॥ ११८-१२१ ॥ पुत्रपालनके लिये कुन्तीको उसने शुभ उपदेश दिया और वह पारलौकिक हितमें उद्युक्त होकर संसार और भोगोंसे विरक्त हुआ। अतिशय मोहवश होकर रोनेवाले युधिष्ठिरादिक पुत्रोंको स्वराज्यकी स्थिरताके लिये अखंडिताज्ञा जिसकी है ऐसे पाण्डुराजाने उपदेश दिया॥ १२२-१२३ ॥ कुरुवंशमें उत्पन्न हुए गोत्री और वंशजोंको क्षमा करते हुए उसने क्षमा याचना की। घर, स्नेह और परिग्रहोंको छोडकर वह पाण्डुराजा घरसे निकला। निर्मल ब्रह्म जाननेवाला वह गंगाके किनारेपर गया। वहां एक प्रासुक स्थानपर दृढव्रतोंका धारक वह राजा संन्यास धारणकर स्थिर बैठा ॥ १२४-१२६ ॥

[पाण्डुराजाका समाधिमरण] विद्वान् पाण्डुराजाने आजन्म शरीर और आहारका त्याग किया और गुरुसाक्षीसे वीरशय्यापर आरोहण किया। दर्शनाराधना, ज्ञानाराधना, चारित्राराधना और तपआराधना इन चार आराधनारूपी नौकापर आरोहण कर संसारसमुद्रको पार करनेकी इच्छा रखनेवाले पाण्डुराजाने अपने आत्मामें तत्पर रहकर संपूण प्राणियोंमें समताभाव रखा अर्थात् किसीभी प्राणिमें उसको न राग था न द्वेष था। ऐसी मनोवृत्तिसे वह कालयापन करने लगा ॥१२७-१२८॥ उसने संपूर्ण जीवोंपर मैत्रीभाव धारण किया अर्थात् किसी भी प्राणिको दुःखोत्पत्ति न हो ऐसी अभिलाषा उसके मनमें उत्पन्न हुई। गुणियोंको देखकर उसके मनमें प्रमोद-आनंद होता था। जो विपरीत विचारके-मिथ्यादृष्टि थे उनके विषयमें मध्यस्थभाव उसने धारण किया। तथा उसने दुःखी जीवोंके विषयमें दयाभाव मनमें रखा ॥ १२९ ॥ उस वीरने प्रायोपगमन धारण किया अर्थात् अपने शरीरकी सेवा न उसने की न किसीको करने दी। इसतरह उसकी शरीरके

प्रायोपगमनं कृत्वा वीरः स्वपरगोचरान् । उपकाराञ्शरीरेऽसौ नैच्छत्स्वच्छशुमानसः ॥
तीव्रं तपस्यतस्तस्य तनुत्वमगमत्तनुः । तस्यावर्धिष्ट सद्भावो ध्यायतः परमेष्ठिनः ॥१३१
सोपवासस्य गात्राणां परं शिथिलताजनि । न कृतायाः प्रतिज्ञाया व्रतं हि महतामिदम् ॥
रसक्षयादभूत्कार्श्यं तस्य देहे शरद्घने । यथा स मांसनिर्मुक्तदेहः सुर इवाबभौ ॥१३३
त्वगस्थीभूतकायोऽसौ व्यजेष्ट यत्परीषहान् । व्यक्तं महाबलं तस्य तदासीद्ध्यानयोगतः ॥
मूर्ध्नि सिद्धाञ्जिनांश्चित्ते मुखे साधून्स्वचक्षुषि । दधौ स परमात्मानं सद्ध्यानी ध्यानयोगतः ॥
अश्रौषीच्छ्रवणे मन्त्रं जिह्वया स तमापठत् । चेतोगर्भगृहे हन्त निधायाशु निरञ्जनम् ॥१३६
असेः कोशादिवान्यत्वं कायाज्जीवस्य चिन्तयन् । चिन्तितात्मा निजान्प्राणानौज्झत्स मन्त्रवेदकः
देहभारमथो मुक्त्वा लघूभूत इवोन्नतः । स धर्मी कल्पसौधर्मं प्राग्दृष्टमिव चागमत् ॥१३८
तत्रोपपादशय्यायामुदपादि महोद्यमः । निरभ्रे गगने सोऽपि तडित्वानिव सोद्यमः ॥१३९
नवयौवनसंपूर्णः सर्वलक्षणलक्षितः । सुप्तोत्थित इवाभाति स तथान्तर्मुहूर्ततः ॥१४०

विषयमें निःस्पृहता बढ गई । तीव्र तपश्चरण करते हुए उसका शरीर कृश हो गया परंतु अर्हदादि परमेष्ठियोंका चिन्तन करनेवाले उसके मनमें शुभभावोंकी वृद्धि हो गई । आमरण तीव्र तप करनेवाले राजाका शरीर कृश हुआ; परंतु उसने जो समाधिमरणकी प्रतिज्ञा की थी, वह शिथिल नहीं हुई। क्यों कि पाण्डुराजा महापुरुष था और यह व्रत महापुरुषहीका होता है ॥ १३०-१३२ ॥ जैसे शरत्कालका मेघ रसक्षय-जलक्षय होनेसे कृश होता है वैसे राजाके देहमें रसक्षय-वीर्यक्षय-शक्तिक्षय होनेसे कृशता आ गई । उसके देहमें मांस नष्ट होनेसे वह देवके समान शोभता था । अब राजाका शरीर चर्म और अस्थिही जिसमें अवशिष्ट रही है ऐसा हुआ । तथापि क्षुधा, तृषा आदि परीषहोंको उसने जीता था । इससे ध्यानद्वारा उसका महाबल व्यक्त हुआ ॥१३३-३४॥ शुभ-ध्यान-धर्मध्यान धारण करनेवाले पाण्डुराजाने अपने मस्तकमें सिद्धपरमेष्ठीको, चित्तमें जिनेश्वरको, मुखमें साधुपरमेष्ठिको और अपने नेत्रोंमें परमात्माको धारण किया । मनरूपी गर्भगृहमें उसने कर्मरूपी अंजनसे रहित परमात्माको धारणकर कानोंमें पंचपरमेष्ठि-मंत्र सुना और जिह्वाके द्वारा सतत पठण किया ॥१३५-१३६॥ जैसे कोशसे-म्यानसे तरवार भिन्न होती है वैसे देहसे अपने आत्माकी भिन्नताका विचार करनेवाला, आत्मस्वरूपकी चिन्तामें तत्पर और पंचपरमेष्ठिमंत्रका स्वरूप जाननेवाला ऐसे पाण्डुराजाने अपने प्राण छोड दिये ॥१३७॥ वह उन्नत धर्माचरणतत्पर पाण्डुराजा देहभार छोडकर हलका हो गया। और मानो पूर्वमें देखे हुए ऐसे सौधर्मकल्पको गया । अर्थात् पाण्डुराजा सौधर्मस्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥ १३८ ॥ निरभ्र आकाशमें मेघ जैसा उत्पन्न होता है वैसे महान् उत्कर्षशाली और समाधिमरणमें जिसने उद्यम किया है ऐसा वह पाण्डुराज उपपादशय्याके ऊपर उत्पन्न हुआ । अन्तर्मुहूर्तमें वह वहां नवयौवनसे परिपूर्ण, सर्व शुभलक्षणोंसे युक्त हुआ। वह मानो निद्रा लेकर अभी उठे हुए

केयूरकुण्डलोपेतो मुकुटाङ्गदभूषणः । सदंशुकवरः स्रग्वी समभूत्स घनद्युतिः ॥१४१
तदा कल्पद्रुमैर्मुक्ता पुष्पवृष्टिर्वरापतत् । तथा दुन्दुभयो मेणुर्नादान्संरुद्धदिक्तटान् ॥१४२
सुगन्धः शीतलो वायुर्ववावम्बुकणान्किरन् । दिक्षु व्यापारयन्दृष्टिं ततोऽसौ वलितां दधौ ॥
किमेतत्परमाश्चर्यं कोऽस्मि के मां नमन्त्यहो । नरीनृतति का एता इत्यासीद्विस्मितः क्षणम् ॥
आयातोऽस्मि कुतः किं वा स्थानमेतत्प्रसीदति । मनो ममाश्रमः कोऽयं शय्यातलमिदं किमु॥
इति संध्यायतस्तस्यावधिबोधः समुद्ययौ । तेनाबुद्धामरः सर्वं क्षणात्पाण्ड्वादिवृत्तकम् ॥
अये तपःफलं दिव्यमयं लोकोऽमरालयः । प्रणामिन इमे देवा विमानमिदमुन्नतम् ॥१४७
देव्यो मञ्जुगिरश्चैता मणिभूषणभूषिताः । एता अप्सरसः स्फारं स्फुरन्ति स्फुटनाटकाः ॥
गायन्ति कलगीतानि मन्द्रोऽयं मुरजध्वनिः । इति निश्चितवान्सर्वं भवप्रत्ययतोऽवधेः ॥१४९
ततो नियोगिनो नम्रा अमर्त्या मौलिपाणयः । ते तं विज्ञप्तिमुन्निद्राश्चरीकृति कृतोन्नतिम् ॥
मजस्व प्रथमं नाथ सज्जं मज्जनमुत्तमम् । ततोऽर्चां श्रीजिनेन्द्राणां विधेहि विधिना बुध ॥१५१

मनुष्यके समान दीखने लगा। उसने केयूर और कुण्डल, मुकुट और बाजुबंद आदि भूषण तथा उत्तम वस्त्र और पुष्पहार धारण किए थे। वह देव विशाल कान्तिका धारक था। उस समय कल्पवृक्षोंके द्वारा छोडी हुई उत्तम पुष्पवृष्टि होने लगी। तथा दिशाओंके तट जिन्होंने व्याप्त किये हैं ऐसे भेरीयोंके शब्द होने लगे। सुगंधित, शीतल वायु जलकणोंकी वृष्टि करता हुआ बहने लगा। उस देवने चारोंतरफ देखा और बाद यह कैसी अद्भुत बात है? मैं कौन हूं? मुझे कौन नमस्कार कर रहे हैं? ये कौन स्त्रियाँ पुनः पुनः नृत्य कर रहीं हैं? ऐसे विचारसे क्षण-पर्यंत आश्चर्यचकित हुआ। मैं कहांसे यहां आया हूं? अथवा यह कौनसा स्थान है? मेरा मन आज क्यों प्रसन्न हो रहा है? यह आश्रम कोनसा है और यह शय्यातल कौनसा है? इस प्रकारसे विचार करनेवाले उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ। उससे उस देवको क्षणमें पाण्डुराजादिकका संपूर्ण वृत्तान्त ज्ञात हुआ ॥१३९-१४६॥ अहो यह दिव्य तपका फल है। यह लोक देवोंका निवासस्थान है। मुझे नमस्कार करनेवाले ये देव हैं। यह स्थान उन्नत—ऊंचा विमान है। ये मधुर भाषण करनेवाली स्त्रियाँ रत्नभूषणोंसे भूषित देवांगनायें हैं। स्पष्ट नृत्य करनेवाली ये अप्सरायें उत्साहयुक्त हैं और मधुर गाने गा रही हैं। यह मृदंगका ध्वनि गंभीर है। इसप्रकारसे उस देवने अवधिज्ञानसे स्वर्गका स्वरूप जाना॥ १४७—१४९॥ तदनंतर विशिष्टकार्यके लिये नियुक्त सेवक देव अपने मस्तकपर हाथ जोडकर, जिसने पुण्यसे अपनी उन्नति की है ऐसे उस महर्द्धिक देवको प्रफुल्ल मनसे विज्ञप्ति करने लगे। वे नियोगी देव स्वर्गीय आचारोंका उपदेश इसप्रकार करने लगे। हे नाथ, स्नानकी यह उत्तम तयारी है। आप प्रथम स्नान कीजिए। तदनन्तर हे बुद्धिमन्, विधिपूर्वक जिनेन्द्रकी पूजा कीजिए। इसके अनन्तर यह हर्षयुक्त देवसैन्य देख लीजिये और जिसके ऊपर ध्वज हैं ऐसा प्रेक्षा-

इदं दैवं बलं देव वीक्षस्व क्षणसंकुलम् । प्रेक्षागृहं च वीक्षस्व ततः संप्रेक्ष्यपुङ्गवजम् ॥१५२
विलोकयामराधीश नर्तकीर्नृत्यसंगताः । सभासा भूषणाभासा देवीर्देवाद्य सत्कुरु ॥१५३
देवत्वस्य फलं चैतत्संप्राप्तं हि त्वयाधुना । इति तद्वचसा सर्वमेतत्तूर्णं व्यधात् बुधः ॥१५४
इति सातं भजन्भोगान्भेजेऽसौ सुरभूमवान् । भव्यो भक्तिं जिनेन्द्राणां तन्वानः सुखसंश्रितः ॥
अथ मद्री धवस्नेहाद्विरक्ता भवभोगतः । भर्त्रा साकं सुसंन्यासे मतिं तेने सुमानसा ॥१५६
कुन्त्याः सुतौ समर्प्यासौ वेश्मभारं विशेषतः । संन्यासं कर्तुकामासौ वारितापि विनिर्गता ॥
गङ्गातटे स्थितिं तेने संन्यस्याहारपानकम् । सा दृष्टिज्ञानचारित्रतपआराधनां व्यधात् ॥१५८
तपःप्रभावतस्तस्याश्चक्षुषी लयमागते । भीते इव क्षुधादोषाद्भीतानामीदृशी गतिः ॥१५९
अङ्गं भङ्गं गतं तस्याः स्तिमितेन्द्रियसंश्रयः । असवोऽपि गताः सार्धं धवेन धवलात्मना ॥१६०
तत्रैव प्रथमे कल्पे सोदपादि शुभाश्रयात् । पुण्यं पचेलिमं चेद्धि का वार्ता नाकसंनिधेः ॥१६१
अथ कुन्ती शुचाक्रान्ता ज्ञात्वा मृत्युं महेशिनः । विलपल्लपना तत्र गत्वा सा विललाप च ॥

गृहभी देखिए। हे देवेश, नृत्य करनेवाली नर्तकियोंका विलोकन कर भूषणोंकी कान्तिसे चमकने-वाली देवियोंका आज आप आदरसे स्वीकार कीजिए। आपने आज देवत्वका फल प्राप्त कर लिया है। इसप्रकारके उनके भाषण सुनकर उस देवने ये सर्व कार्य शीघ्र किये॥ १५०–१५४ ॥ इस-प्रकार सुख भोगनेवाला वह देव स्वर्गभूमिके भोग भोगने लगा और जिनेन्द्रकी भक्ति करनेवाला वह भव्य वहां सुखसे रहने लगा ॥ १५५ ॥

[मद्रीकाभी स्वर्गवास] पतिके स्नेहसे मद्रीभी संसारभोगसे विरक्त हुई। शुद्ध मन-वाली उसने अपने पतिके साथ संन्यासमें अपनी बुद्धिको लगाया। मद्रीने अपने पुत्र (नकुल और सहदेव) कुन्तीको सम्हालनेके लिये समर्पण किये और विशेषतः गृहभार भी। निवारण करनेपर भी संन्यास धारण करनेकी इच्छासे वह घर छोडकर निकली। आहार पानीका त्याग कर गंगाके तटपर रहने लगी और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार आराधनाओंकी आराधना करने लगी। तपके प्रभावसे उसके दोनों नेत्र भीतर घुस गये। मानो क्षुधाके दोषसे वे भयभीत हुए हैं। योग्यही है कि भययुक्त व्यक्तियोंकी परिस्थिति ऐसीही होती हैं। इंद्रियोंका आधारभूत उसका शरीर नष्ट हो गया– और निर्मल स्वभाववाले अपने पतिके साथ उसके प्राण भी चले गये। पुण्यके आश्र-यसे वह मद्रीभी पहिले स्वर्गमें उत्पन्न हुई। यदि पुण्य पक जाता है अर्थात्– उदित होकर फल देने लगता है तब स्वर्ग समीप आनेकी वार्ता आश्चर्यकी नहीं है। अर्थात् पुण्योदयसे स्वर्गप्राप्ति होना कोई बडी बात नहीं है। पुण्यसे सब कुछ मिल जाता है ॥ १५६–१६१ ॥

[कुन्तीका शोक] महाराजा पाण्डुकी मृत्यु जानकर शोकाकुल कुन्ती मुखसे विलाप करती हुई गंगाके तटपर जहां पाण्डुराजाकी मृत्यु हो गई, वहां गई और अपने मस्तकके केश

लुञ्चयन्ती निजान्केशांस्त्रोटयन्ती निजोरसः । मणिमुक्ताफलोपेतं हारं हाटकसंभवम् ॥१६३
कङ्कणं करघातेन कृन्तन्ती करतः शुचा । विललापेति दुःखार्ता कर्तव्यरहिता च सा ॥१६४
हा नाथ हा प्रियाधार हा कौरवनभोंशुमन् । हा हर्तः सर्वदुःखानां हा कर्तः शुभकर्मणाम् ॥१६५
हा वीरवक्त्रशुभ्रांशो सर्वश्रोतृशुभावन । कुण्डलोद्भासिसत्कर्णाभ्यर्णस्वर्णसमद्युते ॥१६६
स्वरसंक्षिप्तसद्वीणानाद पाथोदनादभृत् । हा कम्बुकण्ठ सत्कण्ठसमुत्कण्ठितकोकिल ॥१६७
विकुण्ठीकृतदुर्वारवैर्युत्कण्ठ सुमण्डन । विस्तीर्णवक्षसा व्याप्तजगत्कीर्तनकीर्तिभृत् ॥१६८
दुःखिनीं मां विहायाशु हारिणीं क गतो भवान् । दास्यते त्वां विहायाद्य मह्यं को मानमुत्तमम् ॥
त्वया विनाद्य सर्वत्र शून्यं वेश्म न शोभते । अहं कर्तव्यतामूढा गूढदुःखा त्वया विना ॥
अद्य मे मस्तकेऽपप्तन्नभो निर्भिन्नसंभ्रमम् । अद्याङ्गुष्ठे स दुष्टेऽत्र मुक्तो वह्निः सुदाहकः॥ १७१
करवाणि किमत्राहो त्वदृतेऽमृतवत्सल । ज्वलते निखिलो देहो मदीयो मदनाहतः ॥१७२

तोडती हुई तथा अपने वक्षःस्थलका रत्न और मोति जिसमें गूँथे हैं ऐसा सुवर्णका हार तोडकर विलाप करने लगी। हाथके आघातसे हाथके कंकण तोडती मरोडती हुई दुःख पीडित तथा कर्तव्य-रहित होकर शोकसे उसने इस प्रकार विलाप किया॥ १६२-१६४॥ " हा नाथ, हा प्रिय, हा आधार, आप कौरववंशरूप आकाशमें सूर्य थे। आप सर्वदुःखोंको हरण करनेवाले और शुभ-कार्योंके कर्ता थे। हे नाथ, आप वीरोंके मुखको चन्द्रके समान आनंदित करनेवाले थे। सर्व श्रोता-ओंकी आपके विषयमें शुभ भावना थी। हे प्रिय, आपके सुंदर कर्ण कुण्डलोंसे चमकते थे। और आपकी देहकान्ति नये–तपाये हुए सोनेके समान थी। आपने अपने स्वरसे वीणाकी ध्वनिको तिर-स्कृत किया था। मेघकी ध्वनिको आपने धारण किया था अर्थात् आपकी ध्वनि वीणानादसेभी सुंदर थी और मेघध्वनिके समान गंभीर थी। हा शंखतुल्य कंठ, आपने अपने सुन्दर कण्ठसे कोकिलाओंको भी उत्कंठित किया था। हे प्राणनाथ, आपने मदसे ऊंचे हुए दुर्वार वैरियोंके मस्तकको नीचा कर दिया था। आप मेरे उत्तम भूषण थे। जगत् जिसकी प्रशंसा कर रहा है ऐसी व्यापक कीर्तिको आपने अपने विशाल वक्षःस्थलपर धारण किया था। हे राजन्, दुःखी हुए मुझे छोडकर आप कहां चले गये। आपके बिना मुझे उत्तम मान कौन देगा? आप नहीं होनेसे सर्वत्र शून्य यह महल नहीं शोभता है। आज मैं कर्तव्यमूढ हो गई हूं, आपके बिना मैं गूढ दुखिनी हो गई हूं। आज मेरे मस्तकपर आदररहित होकर आकाश टूटकर पडा है। आज मेरे व्रणयुक्त अंगुठेपर किसीने खूब जलानेवाला अग्नि गिरा दिया है। अमृतके समान प्रिय हे नाथ, आपके बिना मैं क्या करूं? मदन-पीडित यह मेरा संपूर्ण देह जल रहा है। कहीं भी जानेपर मुझे बिलकुल चैन न पडेगी। पुरुष-पुङ्गव, मेरे ऊपर आप प्रसन्न होकर मुझसे एकवार उत्तम भाषण बोलो। आपके बिना मुझे आहार लेनेमें रुचिही नहीं है। उत्कृष्ट राज्य छोडकर आपने यह क्या कर डाला? मुझपर आपका अत्यंत

यत्र तत्र गता नाथ न लेभे रतिमुत्तमाम् । प्रसीद पुरुषश्रेष्ठैकदा च देहि सद्वचः ॥१७३
त्वां विना वल्लभने वाञ्छा मदीयापि न विद्यते । राज्यं प्राज्यं विमुच्याशु किं कृतं त्वयका विभो ॥
दुरवस्थेदृशी केन प्रापिताहं महाप्रिय । पवित्रास्तव पुत्रास्ते किं करिष्यन्ति त्वां विना ॥१७५
निराधारा धराधीश धारयामि कथं धृतिम् । वल्ली विटपिनं वेगाद्विहायास्ते कथं विभो ॥१७६
शुभाकर कथं शोभां लभेय वल्लभाधुना । त्वां विना च यथा नाथ निशानाथादृते तमी ॥१७७
विरसां त्वां विना देव मानयन्ति न जातुचित् । जना मां सुरसैर्मुक्तां सरसीमिव सद्रसाम् ॥
विनेशेन वरा नारी रतिं न लभते क्वचित् । मणिना हि विनिर्मुक्ता यथा हारलता विभो ॥
एवं तस्यां रुदन्त्यां हि रुरुदुः कौरवा नृपाः । युधिष्ठिरादयः क्षिप्रमिति बाष्पाविलाननाः ॥
प्राज्यं राज्यं त्वया मुक्तं राजते न नराधिप । लवणेन विना भुक्तं भोज्यं स्वादकरं न हि ॥
त्वया मुक्ता वयं देव कथं शोभां लभामहे । दन्तावला यथा दन्तमुक्ता मान्याः कथं नृपैः ॥
त्वया मुक्तमिदं राज्यं न शोभाहेतवे भवेत् । यथा गन्धविनिर्मुक्तं कुसुमं सुषमाहरम् ॥१८३
एवं शुचं प्रकुर्वाणान्वारयन्ति स्म तान्बुधाः । इति वाक्येन शोको हि सर्वेषां दुःखदायकः ॥
तपःस्था योगिनो भव्या न शोच्या मृतिमागताः । प्रेतां गतिं गताः सन्तो यतः सद्गतिभाजिनः ॥
वारयित्वेति ते शोकं सर्वे धर्मसुतादिजम् । कुर्वाणाः कौरवं वंशं प्रोन्नतं विविशुः पुरम् ॥१८६

प्रेम होकर भी मेरी ऐसी दुर्दशा किसने की है ? आपके विना आपके पवित्राचारवाले पुत्र क्या कर सकेंगे ? हे नाथ, मैं निराधार हुई हूं। ऐसी अवस्थामें मैं कैसे धैर्य धारण करूंगी। नाथ, लता वृक्षको छोडकर कैसी रह सकती है ? ॥ १६५-१७६ ॥ हे वल्लभ, हे शुभाकर, आपके विना मुझे कैसी शोभा प्राप्त होगी? क्या चन्द्रके विना रात्री शोभती है? आपके विना मैं विरसा-शृंगार रहित हुई हूं। मुझे अब कौन मानेगा? शृंगारादिरसोंसे रहित मुझे रसरहित सरसीके समान कौन मानेगा? हे विभो नायकमणिके विना जैसे हार शोभा नहीं पाता है, वैसेही पतिके विना उत्तम स्त्री कहांभी रममाण न होगी ॥ १७७-१७९ ॥ इसप्रकार विलाप कर कुन्ती जब रोने लगी तब सब कौरव राजाभी रोने लगे। युधिष्ठिरादिकोंके मुख अश्रुओंसे भीग गये। हे नरपते, आपसे छोडा गया यह राज्य शोभा नहीं पाता है। नमकके विना खाया जानेवाला भोजन रुचिकर नहीं होता है। हे देव, आपके विना हम शोभाको कैसे प्राप्त हो सकते हैं? दान्तोंसे रहित हाथी राजाओंको कैसे मान्य होंगे? हे राजन् आपका छोडा हुआ यह राज्य शोभाका कारण नहीं होगा अर्थात् जैसे गंध-रहित पुष्प शोभारहित होता है वैसे आपके विना यह राज्य शोभाहीन है ॥ १८०-१८३ ॥ इस प्रकार शोक करनेवाले कौरवोंको समझाकर विद्वानोंने शोकरहित किया। उन्होंने कहा--- जो तपमें स्थिर रहते हैं ऐसे योगियोंके मरनेपर शोक नहीं करना चाहिये क्यों कि परलोककी गतिको गये हुए वे सत्पुरुष सद्गतिहीको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार बोलकर विद्वानोंने धर्मसुतादिक-युधिष्ठिरादिकोंका

धृतराष्ट्रो महाराष्ट्रो राष्ट्रे राष्ट्रविरोधिनः । निर्वासयन्प्रकुर्वाणो राज्यं रेजे महेन्द्रवत् ॥१८७
गान्धार्यां गन्धसंलुब्धो मधुव्रत इवाभवत् । धृतराष्ट्रो रतो वल्ल्यां सुमनोनिचयप्रियः ॥१८८
सुतानां शिक्षयामास स शतं क्षितिपालकः । राजनीतिं सुनीतिं च प्रीतिं पौरजनैः सह ॥१८९
प्रचण्डाखण्डकोदण्डपटुपाण्डित्यपण्डिताः । पाण्डवाः संकटातीता विकटास्तत्र रेजिरे ॥१९०
गाङ्गेयसंगताः सद्यो गाङ्गेयसमसत्प्रभाः । अगं नगं सुगां चैव पालयन्ति स्म पाण्डवाः ॥
द्रोणं विद्रावणे दक्षं विपक्षाणां सुपक्षकाः । धनुर्विद्यार्थमाभेजुः पाण्डवाः पञ्च पावनाः ॥१९२
कदाचिद्धृतराष्ट्रोऽपि वनं गन्तुमियाय च । दुन्दुभीनां निनादेन भासयन्निखिला दिशः ॥
विपिने विपिनाधीशैः संस्तुतः कौरवाग्रणीः । प्राभृतैः फलपुष्पाणां सेवितः सुखसिद्धये ॥१९४
अशोकानोकहाख्यं च शोकशङ्कानिवारकम् । लुलोके लोकपालानामधीशो लोकपालवत् ॥
तत्र स स्फाटिकीं स्पष्टां निर्मलां मुकुरुन्दवत् । शिलामैक्षिष्ट राजेशो वरां सिद्धशिलामिव ॥
यदन्तर्भासितानेकानोकहाभोग आबभौ । स भित्तौ लिखितश्चित्रं चित्रव्यूह इवामलः ॥१९७
तत्रोपरिस्थितं धीरं निर्मलं गुणसंगमम् । विपुलं बोधसंपन्नं विशुद्धं चिन्मयं परम् ॥१९८

शोक दूर किया। तब कौरववंशको उन्नत बनानेवाले उन विद्वानोंने नगरमें प्रवेश किया ॥१८४-१८६॥ बडे राष्ट्रका अधिपति धृतराष्ट्र राजाने राष्ट्रमें जो राष्ट्रके विरोधी थे उनको देशसे निकाला और राज्य करनेवाला वह महेन्द्रके समान शोभने लगा। पुष्पोंके समूह जिसको प्रिय लगते हैं ऐसा भौंरा गंधलुब्ध होकर जैसे वल्लीमें तल्लीन होता है वैसे विद्वान लोगोंके समूहको प्रिय धृतराष्ट्र राजा गांधारीमें अतिशय आसक्त हुआ ॥ १८७-१८८ ॥ राजाने अपने सौ पुत्रोंको राजनीति, सुनीति और प्रजाजनोंमें प्रीति करनेका शिक्षण दिया। प्रचण्ड और अखण्ड धनुष्यके पूर्ण पांडित्यमें जो निपुण थे ऐसे विशाल पाण्डव संकटरहित होकर उस नगरीमें शोभने लगे। नूतन तपाये हुए सोनेके समान सुंदर कान्तिवाले वे पाण्डव गांगेयके-भीष्मके साथ रहते हुए वृक्ष, पर्वत और उत्तम पृथ्वीको पालने लगे। शत्रुओंको भगानेमें दक्ष द्रोणाचार्यका आश्रय सज्जनपक्षके पवित्र पांच पाण्डवोंने धनुर्विद्याके लिये लिया था ॥१८९-१९२॥ किसी समय दुन्दुभियोंके शब्दसे सर्व दिशायें प्रतिध्वनियुक्त करनेवाला धृतराष्ट्र वनको जानेके लिये निकला। जंगलमें जंगलके अधिपतियोंने कौरवोंके अगुआ धृतराष्ट्रकी स्तुति की और सुखप्राप्तिके लिये फलपुष्पोंकी भेट उन्होंने राजाके आगे रख दी ॥ १९३-१९४ ॥ लोकपालोंके अधीश राजा धृतराष्ट्रने शोककी भीति नष्ट करनेवाले अशोक वृक्षको लोकपालके समान देखा। उस बगीचेमें निर्मल दर्पणके समान स्वच्छ स्फटिक-शिला, जो कि उत्तम सिद्धशिलाके समान थी, राजाने देखी। उस स्फटिकशिलामें अनेक वृक्षोंका विस्तार शोभता था। मानो भित्तिमें लिखा हुआ निर्मल चित्रसमूहही है। उस स्फटिकशिलाके ऊपर बैठे हुए धीर निर्मल गुणी, विशालज्ञान-पूर्ण, विशुद्ध उत्तम चैतन्यमय, मान्य लोगोंद्वारा

मुनीन्द्रं महितं मान्यैः संगसंसर्गदूरगम् । सोऽनमद्वीक्ष्य शुद्धं वा सिद्धं सिद्धशिलोपरि ॥
दत्ताशिषा मुनीन्द्रेण नृपोऽवादि स्थिरस्थितः । राजन् संसारकान्तारे भ्रमतां न सुखं क्वचित्॥
यथाब्धौ जलकल्लोला लीयन्ते संभवन्ति च । म्रियन्ते च तथा जीवा जायन्ते जगतीतले ॥
क्वचित्सौख्यं क्वचिद्दुःखं बोबुध्यन्ते विबुद्धयः । संसारे सर्वदा दुःखं विद्धि विद्वन्महीपते ॥
भवे धावन्ति सज्जीवाः साताय सततोद्यताः । तन्नाप्नुवन्ति तोयाय मृगा वा मृगतृष्णया ॥
बन्धो न बन्धुरं किंचिद्विद्धि संपद्धरादिकम् । योयुध्यन्ते तदर्थं हि बुधा अपि मुधोद्यताः ॥
स्पर्शनेन्द्रियसंलुब्धाः क्षुब्धा बोधविवर्जिताः । न लभन्ते परं शर्म मातङ्गा इव सद्वने ॥२०५
रसनेन्द्रियलाम्पट्याद्रसास्वादनतत्पराः । विपत्तिं यान्ति जीवा वा बडिशेन यथा झषाः ॥
घ्राणेन गन्धमाघ्राय विदग्धा इव बन्धुरम् । इयतीव मृतिं मत्ता द्विरेफाः सरसीरुहे॥२०७
प्रतीपदर्शिनीरूपरञ्जिताश्चक्षुषा नराः । दुःखायन्ते यथा वह्नौ पतङ्गाः पतनोन्मुखाः ॥ २०८

आदरणीय, परिग्रहोंके संसर्गसे रहित, सिद्धशिलाके ऊपर बैठे हुए शुद्ध सिद्धके समान मुनिको देखकर धृतराष्ट्र राजाने उनको वन्दन किया ॥ १९५–१९९ ॥

[धृतराष्ट्रको मुनिराजका उपदेश] स्थिर बैठे हुए राजाको मुनीन्द्रने 'धर्मवृद्धिरस्तु' ऐसा आशीर्वाद दिया और वे इस प्रकार कहने लगे 'हे राजन् इस संसारवनमें भ्रमण करनेवाले प्राणियोंको कहांभी सुख नहीं मिलता है। जैसे समुद्रमें पानीके तरङ्ग नष्ट होते हैं और उत्पन्न होते हैं वैसे संसारमें जीव मरते हैं और जन्म लेते हैं। मूर्ख लोग कहीं सुख और कहीं दुःख मानते है; परंतु संसारमें सदैव दुःखही है ऐसा हे राजन्, तूं समझ। हरिण जैसे मृगतृष्णाको जल समझकर उसके पीछे दौडते हैं परंतु उनको जैसा पानी नहीं मिलता वैसे इस संसारमें सुखके लिये जीव नित्य प्रयत्न करते हुए भ्रमण करते हैं परंतु सच्चा सुख उनको मिलताही नहीं है ॥ २००–२०३ ॥ हे बंधो, संपत्ति, पृथ्वी आदिक कोईभी पदार्थ सुंदर–हितकर नहीं है क्यों कि विद्वान लोग भी प्रयत्न करते हुए उनके लिये व्यर्थही लडते हैं। जैसे वनमें उन्मत्त हाथी स्पर्शनेन्द्रिय–जन्य सुखमें लुब्ध होकर विवेकरहित होते हैं उनको सच्चा सुख नहीं मिलता है, वैसे बोधरहित मनुष्य क्षुब्ध होकर स्पर्शनेन्द्रियमें लुब्ध होते हैं परन्तु उनको उत्तम सुखकी प्राप्ति नहीं होती है। जैसे मत्स्य रसनेन्द्रिय–लम्पट होकर रसके आस्वादन करनेमें तत्पर होते हैं और मांस लगे हुए काटेसे मरणको प्राप्त होते हैं, वैसेही मनुष्यभी जिह्वेन्द्रियकी लंपटतासे नानाप्रकारके रसोंके आस्वादनमें तल्लीन हो जाते हैं और उससे संकटमें फँसकर मर जाते हैं। जैसे मत्त भौरे नाकसे सुंदर गंध सूंघकर कमलमें अटक जाते हैं और मरते हैं वैसे विद्वान लोगभी नाकसे सुगंधका सेवन कर उसमें आसक्त होकर मरण पाते हैं। जैसे पतङ्ग अग्निमें रूपलुब्ध होकर गिरते हुए दुःखको प्राप्त होते हैं, वैसे आँखोंकेद्वारा स्त्रियोंके रूपमें लुब्ध होकर पुरुष दुःखी होते हैं। जैसे हरिण कर्णसे

कर्णेनाकर्णनोत्कीर्णा गीतिसंकीर्णमानसाः। विपद्यन्ते विपत्पूर्णा यथा वाजिनयोनयः ॥२०९

निशम्येति नृपोऽपृच्छत्स्वामिन् राज्यं हि कौरवम्।
भोक्तारो वा भविष्यन्ति धार्तराष्ट्राश्च पाण्डवाः ॥ २१०

यद्दृष्टमिष्टमुत्कृष्टं विशिष्टं वस्तु वस्तुतः। विनश्यते विनाशो हि स्वभावो वस्तुनः स्फुटम् ॥
अश्रौषं श्रवसा शश्वं सतः सर्वार्थवेदिनः। पूर्वं पुंसो विपद्यन्ते स्म ते कालेन मानवाः ॥२१२
इदानीं ये च दृश्यन्ते दृश्या दृष्टिगता नराः। विपत्स्यन्तेऽत्र कालेन के स्थिराः सन्ति भूतले॥
भाविनो भूतले लोकाः श्रूयन्ते शास्त्रकोविदैः। भविष्यन्ति स्थिरा नो वा ब्रूहि ते च दयां कुरु॥
कीदृशी पाण्डवानां हि भाविता स्थितिरुत्तमा। धार्तराष्ट्रा नरेन्द्राः किं भवितारो धरेश्वराः॥
नाथ सुव्रत योगीन्द्र योगयोगाङ्गपारग। अगम्यं गम्यते किंचिन्न ते वस्तु विशेषतः॥
मगधः सुबुधो नीरुद्रम्भाभाभारभूषितः। सुपर्वपालितो रेजे नाकलोक इवापरः॥ २१७

गायन सुननेमें आसक्त होते हैं और विपत्तिमें फँसकर मर जाते हैं, वैसे कर्णेन्द्रियसे शब्द-मधुर गायनादि सुनकर विपत्तिमें पडकर मरणको प्राप्त होते हैं॥ २०४-२०९॥ इस प्रकारका उपदेश सुनकर राजा धृतराष्ट्रने पूछा "हे स्वामिन्, कौरवोंका राज्य मेरे पुत्र दुर्योधनादिक करेंगे या पाण्डव उसके भोक्ता होंगे? जो इष्ट, प्रिय, उत्कृष्ट और विशिष्ट वस्तु देखी जाती है वस्तुतः वह नष्ट होती है क्यों कि विनाश होना वस्तुका स्वभाव है यह बात स्पष्ट है। हे प्रभो, मैंने सर्व पदार्थोंके ज्ञाता सत्पुरुषसे सुना है, कि पूर्वकालमें मनुष्य कुछ कालतक रहकर मर जाते थे। इस कालमें जो देखने लायक पुरुष दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे भी इस भूतलपर कुछ कालके बाद मरेंगे। इस भूतलपर कौन स्थिर है? अर्थात् कोईभी स्थिर नहीं दीखता है॥ २१०-२१३॥ इस भूतलमें शास्त्रज्ञ विद्वानोंद्वारा जो सुना जाता है कि जो भावी महापुरुष हैं वे स्थिर रहेंगे या नहीं मुझपर दया करके आप कहिये। आगे-पाण्डवोंकी उत्तम स्थिति किस प्रकारकी होगी और मेरे पुत्र दुर्योधनादिक क्या पृथ्वीके स्वामी राजा होंगे?॥२१४-२१५॥ हे सुव्रत मुनीन्द्र, आपके ज्ञानमें न झलकनेवाली कोई वस्तु नहीं है अर्थात् प्रत्येक वस्तुकी विशेषता आपके ज्ञानमें प्रतिभासित होती है। आप योगीन्द्र हैं आपको योग और उसके अङ्गोंका-साधनोंका ज्ञान है॥ २१६॥ हे प्रभो, मगधदेश मानो दुसरा स्वर्गही है। स्वर्ग सुबुध-देवोंसे सहित और रंभानामक अप्सराके सौंदर्यसे भूषित होता है और सुपर्वपालित-अर्थात् देवोंसे रक्षित है। वैसे मगधदेश सुबुधोंसे-सम्यग्ज्ञानी विद्वानोंसे सहित, रंभाभारभूषित-केलेके पेडोंकी शोभासे सुंदर, सुपर्वपालित-उत्तम वंशोंके राजाओंसे पालित है। वहां अलकानगरीके समान राजगृह नगर है अलका-नगर राजराजगृहोन्नत-कुबेरके प्रासादोंसे ऊंचा होता है और धनदामरलोकाढ्य-कुबेर और उसके देव-यक्षोंसे परिपूर्ण होता है। यह राजगृहनगरभी राजराजगृहोन्नत-राजाओंका राजा-अधिपति जरासंध प्रतिनारायणके

राजगृहं पुरं तत्र राजराजगृहोन्नतम् । धनदामरलोकाढ्यमलकानगरं यथा ॥ २१८
जरासंधो नरेन्द्राणां मान्यो वैरिमदापहः । नवमः प्रतिविष्णूनां राजते तत्र पत्तने ॥ २१९
तस्य कालिन्दसेनाख्या कालिन्दीव रसावहा । विशाला कमलाकीर्णा विमलाभूत्सुभामिनी॥
भ्रातरः सुतरां तस्य न केनापि पराजिताः । अपराजितमुख्याश्च सन्ति सन्तो महोद्यताः ॥
सनयास्तनयास्तस्य विनयोन्नतमानसाः । सुकाला इव संरेजुस्ते कालयवनादयः ॥ २२२
इत्थं राजगृहाधीशो राजते राजसिंहवत् । भूचरैः खेचरैः सेव्यो विजितारातिमण्डलः ॥२२३
विपत्तिस्तस्य सहजा भविता परतोऽथवा । आख्याहि ख्यापने शक्त इति मन्निश्चयाय च ॥
निशम्येति वचोऽवादीच्छृणु तेऽद्य मनोगतम् । धृतराष्ट्र धराधीश धृतिं धृत्वा विशुद्धधीः ॥

महलोंसे अतिशय उन्नत दीखता है। तथा धनदामरलोकाढ्य-धनद-श्रीमन्त और अमर दीर्घजीवी लोगोंसे परिपूर्ण है। उस नगरीमें राजाओंको मान्य, शत्रुओंके गर्वका नाश करनेवाला प्रति-नारायणोंमें नौवा जरासंध नामक राजा विराजमान है ॥ २१७-२१९ ॥ श्रीजरासंध राजाकी रानी कालिंदसेना नामकी है। वह कालिन्दी नदीके समान-यमुनानदीके समान है। यमुनानदी रसावहा-जलको धारण करनेवाली होती है और यह रानी रसावहा शृंगारादिरसोंको धारण करती है। नदी कमलाकीर्णा-कमलोंसे व्याप्त होती है, और रानी कमला-लक्ष्मीसे आकीर्ण-भरी हुई संपत्तिशालिनी है। यमुनानदी विशाल-बडी है और यह रानी भी बडी-स्त्रियोंमें मान्य है। यमुनानदी विमला-स्वच्छजल धारण करनेवाली है। रानीभी विमला-मल-दोषोंसे रहित है ॥ २२० ॥ जरासंधके जिनमें अपराजित मुख्य है ऐसे अनेक भ्राता हैं। वे सब महान् उद्यमी-पराक्रमी हैं। अत एव वे किसके द्वारा पराजित नहीं किये जाते हैं। राजाके कालयवनादि नामके अनेक पुत्र हैं। वे नीतिसंपन्न है, विनयादि गुणोंसे उनका मन उन्नत हुआ है और वे उत्तम कालके समान हैं। अर्थात् उत्तम कालमें जैसे धनधान्यसंपन्नता होती है वैसे इन काल-यवनादि पुत्रोंमें गुणसंपन्नता है। इस प्रकार राजगृहनगरके स्वामी जरासंधराजा राजाओंमें सिंहके समान शोभता है। उसकी भूगोचरी राजा अर्थात् भूतलपर राज्य करनेवाले राजा और खेचर-विजयार्ध पर्वतपरके देशोंमें राज्य करनेवाले विद्याधर राजा ऐसे दोनों प्रकारके राजा सेवा करते हैं। उसने शत्रुओंके देशपर विजय प्राप्त की है ॥ २२१-२२३ ॥ ऐसे जरासंध राजाकी मृत्यु अपने आप होगी अथवा अन्यसे होगी? इन प्रश्नके उत्तर देनेमें हे योगीश आप समर्थ हैं। अतः मुझे निर्णयके लिये आप उत्तर कहिये ॥ २२४ ॥

[मुनीश्वरने भविष्यकथन किया] यह धृतराष्ट्र राजाका प्रश्न सुनकर मुनीश्वरने कहा- हे पृथ्वीप्रति धृतराष्ट्र, तूं निर्मल बुद्धिवाला है, तू धैर्य धारण कर सुन। आज तेरे मनके अभि-प्रायका खुलासा मैं करता हूं ॥ २२५ ॥ दुर्योधनादिक भूपाल और पाण्डवोंका राज्य प्राप्तिके लिये

दुर्योधनादिभूपानां पाण्डवानां विशेषतः। विरोधः कलहश्चैव भविता राज्यसिद्धये ॥२२६
कुरुक्षेत्रे मरिष्यन्ति धृतराष्ट्र सुतास्तव। आहवे विहितानेकवधे संनद्धयोध्दके॥ २२७
अखण्डाखण्डलोल्लासाः पालयिष्यन्ति पाण्डवाः। विश्वम्भरां भयातीतां हस्तिनागपुरे स्थिताः॥
यः पृष्टो मगधाधीशवधो विविधदुःखदः। तमाकर्णय संकृत्यावधानोध्दुरमानसम्॥ २२९
तत्र क्षेत्रे विकुण्ठेन वैकुण्ठेन हठात्मना। जरासंधमहीशस्य संगरः संजनिष्यति॥ २३०
अवेह्यहितकृत्तस्य मरणं तत ईशितुः। आकर्ण्येति सचिन्तोऽभूद्धृतराष्ट्रः सराष्ट्रकः॥२३१
ज्ञात्वा वृत्तमिदं सर्वं नत्वा योगीन्द्रमुत्तमम्। प्रपेदे पुरमुल्लोलललनालोचनं नृपः॥२३२

श्रुत्वासौ श्रुतिसंमतः श्रुतवरः श्रीमान् श्रियालङ्कृतः
ऐश्वर्यापहतारिवारविकसत्पुण्यः सुगण्यो गुणैः।
धुन्वन्श्रीधृतराष्ट्रनामनृपतिः कामं कलङ्कं कृपा-
संक्रान्तो विरराज कौरवकुलं चिन्वंश्चिरं चारुधीः॥ २३३
धर्मोऽयं कुरुते सुधर्ममयनं धर्मेण लक्ष्मीलताम्
लब्ध्वा धर्मकृते चिनोति चरितं सर्वं शिवं धर्मतः।

विरोध और कलह विशेषस्वरूप धारण करेगा अर्थात् उन दोनोंमें उत्तरोत्तर विरोध—कलह बढ जानेवाला है। हे धृतराष्ट्र, कुरुक्षेत्रमें योद्धा जिसमें सन्नद्ध होकर आये हैं, तथा अनेकोंका वध जिसमें होगा ऐसे युद्धमें तेरे पुत्र मरेंगे॥२२६—२२७॥ इन्द्रके तुल्य अखंड उल्लास—उत्साह धारण करनेवाले निर्भय पाण्डव हस्तिनापुरमें रहकर निर्भय पृथ्वीको पालेंगे॥ २२८॥ हे धृतराष्ट्र, जरासंधके मरणविषयमें तुमने प्रश्न किया है उसका उत्तर मनको सावधान कर सुनो। जरासंधका मरण अनेक दुःखोंको देनेवाला होगा॥ २२९॥ कुरुक्षेत्रमें चतुर और हठी कृष्णके साथ जरासंध राजाका युद्ध होगा। और त्रिखण्डके प्रभु जरासंधका मरण उस कृष्णराजासे होनेवाला है। यह बात तुम निश्चयसे समझो, सुव्रत मुनीन्द्र के मुखसे यह वार्ता सुनकर राष्ट्र के साथ धृतराष्ट्र राजा सचिन्त हो गया॥ २३१॥ यह सब वृत्त जानकर और उत्तम योगीश्वर को वन्दनकर राजाने स्त्रियों के चंचल लोचनोंसे सुंदर दीखनेवाली नगरीमें—हस्तिनापुरमें प्रवेश किया॥ २३२॥ आगमके वाक्यों को प्रमाण माननेवाला, श्रुतज्ञानसे श्रेष्ठ, श्री—कान्ति—शोभासे युक्त, राज्यलक्ष्मीसे भूषित, ऐश्वर्य के द्वारा शत्रुसमूहका विकसनेवाला पुण्य नष्ट करनेवाला, सब लोगोंको मान्य, और शुभ—बुद्धिवाला, दयासे व्याप्त अर्थात् अतिशय दयालु, और कौरववंश को वृद्धिंगत करनेवाला ऐसा धृतराष्ट्र भूपाल यथेष्ट पापों को धोता हुआ दीर्घ कालतक शोभने लगा॥ २३३॥ यह धर्मराज अर्थात् युधिष्ठिर मोक्षमार्गरूप धर्मका पालन करते हैं। धर्म के द्वारा लक्ष्मीरूपी लता को पाकर धर्म के लिये चारित्र को बढ़ाते हैं। धर्म से सर्व प्रकार का कल्याण होता है। इस धर्मसेही धर्मको—युधिष्ठिरको

धर्मस्यापि गुणा भवन्ति विपुला भूपस्य धर्मे मतिम् ।
कुर्वन्तं गुरुसत्तमं गुणगुणं हे धर्म तं पालय ॥ २३४

इति श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपाल साहाय्य सापेक्षे पाण्डुमद्रीपरलोकप्राप्तिधृतराष्ट्रप्रश्नवर्णनं नाम नवमं पर्व ॥ ९ ॥

। दशमं पर्व ।

सुमतिं मतिकर्तारं सुमतिश्रितपङ्कजम् । मतये नौमि निःशेषनम्रामरनरेश्वरम् ॥ १
एकदातर्कयत्तर्क्यमुदर्कफलभाङ्नृपः । सवितर्कोऽर्कवद्भासा भूषितो भूभराश्रितः ॥ २
हंहो मम सुता युद्धशौण्डीराः शुद्धमानसाः । प्रबुधा बुधसंसेव्या बुद्ध्या धिषणसंनिभाः ॥
आर्या जयसमावर्यावार्याः सद्वीर्यसंगताः । धैर्यगाम्भीर्यसंवर्याः सपर्याश्रितसंक्रमाः ॥४[1]

विपुल गुणों की प्राप्ति हुई है। और राजा युधिष्ठिर की धर्म में बुद्धि हुई है। पुरुषों को गुरु और अतिशय श्रेष्ठ बनानेवालें गुणसमूह को धारण करनेवाले युधिष्ठिरका हे धर्म तू रक्षण कर ॥ २३४ ॥

ब्रह्मचारी श्रीपालजीने जिसमें सहाय्य किया है ऐसे श्रीशुभचन्द्रविरचित महाभारत नामक पाण्डवपुराणमें पाण्डु और मद्री को परलोक प्राप्ति और धृतराष्ट्रके प्रश्नोंका वर्णन करनेवाला नौवा पर्व समाप्त हुआ ॥

[पर्व दसवा]

सुमतिवालोंने अर्थात् गणधरादि महाज्ञानियोंने जिनके पद कमलोंका आश्रय लिया है तथा जो बुद्धिके कर्ता है अर्थात् जिनसे आराधकों को सम्यग्ज्ञान प्राप्त होता है, जिनके चरणोंमें संपूर्ण देवेन्द्र और नरेन्द्र नम्र होते हैं ऐसे श्रीसुमति प्रभुकी मैं मति प्राप्त होने के लिये स्तुति करता हूं ॥ १ ॥ पूर्वापर विचार करनेवाला सूर्य की समान कान्तिसे भूषित, पृथ्वी का भार अपने कंधोंपर धारण करनेवाला, भाविफल को सोचनेवाला, धृतराष्ट्र राजा किसी समय योग्य बातों का विचार करने लगा ॥ २ ॥ अहो, मेरे पुत्र–दुर्योधनादिक युद्धमें प्रवीण, शुद्ध अन्तःकरणवाले विशिष्ट बुद्धके धारक, विद्वानोंसे सेवनीय, बुद्धिसे बृहस्पति के समान, आर्य, जय को प्राप्त करनेवाले, युद्ध में जो किससे नहीं रोके जानेवाले, अर्थात् किसीसे पराजित नहीं होनेवाले, उत्कृष्ट

१ स ब आर्याजयसमावर्ज्या वर्याः सद्वीर्यसंगमाः । धैर्यगाम्भीर्यसंचर्याः सपर्याश्रितसंक्रमाः ॥

दुर्योधनादयो धीरा राज्यभर्तार इत्यपि । कृत्वा राज्यस्य चोच्छित्तिं मरिष्यन्ति महाहवे ॥५
धिगिदं राज्यमुत्कृष्टं धिक्सुतान्भाविसन्मृतीन् । धिग्जीवितं ममाद्यापि पराकृतविसारिणः ॥६
राज्यं रजोनिभं प्राज्यं विषया विषसंनिभाः । चञ्चला चपलेवाश्विन्दिरा च मन्दिरं शुचः ॥
जाया जीवनहारिण्य आत्मजा निगडप्रभाः । काराघटनसंघट्टा घोटका विकटाः खलु ॥ ८
गजा जन्मजराकारा रथाश्चानर्थकारिणः । पदातयो विपत्तीनां पत्तनं संपदापहाः ॥ ९
गोत्रिणः शत्रुसंकाशाः सचिवाः शोकशासनम् । मित्राणि चित्ररूपाणि स्वकार्यकरणानि च ॥
इत्याध्याय धरित्रीशो विरक्तो भवभोगतः । समाहूय च गाङ्गेयं स्वाकूतमगदीदिति ॥ ११
गाङ्गेय जीवितं गन्तृ गगने चन्द्रबिम्बवत् । अतः सुताय संदेयं हेयं राज्यं मया पुनः ॥१२
इत्युक्त्वा स स्वपुत्रेभ्यः पाण्डवेभ्यश्च सत्वरम् । गाङ्गेयद्रोणसांनिध्ये प्रददौ राज्यसञ्चरम् ॥१३
जनन्या सह भूपालो वनमित्वा महागुरुम् । नत्वा निर्लुच्य सत्केशान्प्राव्राजीद्विनयोद्यतः॥१४
चचार चरणं चारु विचारचरणाश्चिरम् । चेतनं चिन्तयंश्चित्ते निश्चलश्चाचलोपमः ॥ १५

वीर्यशाली, धैर्य और गांभीर्य गुणोंके धारक, जिनके चरणोंकी लोक पूजा करते हैं, ऐसे धीर और राज्य के स्वामी होकर भी राज्य का नाश करके महायुद्ध में मरेंगे । यह भावी परिस्थिति नितान्त कष्टद है ॥ ३–५ ॥ इस वैभवशाली विशाली राज्यको धिक्कार हो, जिन का भविष्यकालमें मरण होनेवाला है ऐसे मेरे पुत्रोंको भी धिक्कार हो तथा दूसरों के विचारोंका अनुसरण करनेवाले मुझे भी धिक्कार हो ॥ ६ ॥ यह उत्तम राज्य धूल के समान तुच्छ है, पंचेन्द्रियोंके विषय विषतुल्य हैं, चंचल बिजली के समान लक्ष्मी शोकका मन्दिर है, स्त्रियाँ जीवन हरण करनेवालीं, और पुत्र बेडी के समान हैं । निश्चयसे विशाल घोडे कैदखाने के बंधन समान हैं । हाथी जन्म और जराके आकार हैं । रथ अनर्थ के जनक हैं और प्यादोंके समूह सम्पदाके विनाशक और आपदाओंके घर हैं । अपने गोत्रज लोक शत्रुके समान हैं और अमात्यगण शोकको देनेवाले हैं । भिन्न भिन्न स्वभाव के धारक मित्र अपने कार्य करनेवाले अर्थात् स्वार्थी है । ऐसा मनमें विचार कर पृथ्वीपति धृतराष्ट्र संसार और भोगोंसे विरक्त हुआ । तथा भीष्म पितामह को बुलाकर अपना मनोऽभिप्राय इस प्रकार कहने लगा ॥ ७–११ ॥ हे गांगेय–भीष्मपितामह, यह मनुष्यका जीवित आकाशमें गमनशील चन्द्रमाके समान है । इसलिये पुत्रको राज्य देकर मैं इसे छोडता हूं । ऐसा बोलकर गांगेय और द्रोणके सान्निध्यमें दुर्योधनादिक पुत्रोंको और पाण्डवों को तत्काल बुलाकर धृतराष्ट्रने उनको राज्यका भार अर्पण किया । इसके अनंतर अपनी सुभद्रा माताके साथ वनमें जाकर विनयशील राजाने महागुरुको वन्दन किया । और केशलोच कर दीक्षा ग्रहण की। आगम के विचार से अविरुद्ध चारित्रके धारक धृतराष्ट्र मुनि सुंदर–निरतिचार चारित्र पालने लगे । पर्वत के समान स्थिर होकर वे मनमें अपने चैतन्यका चिन्तन करने लगे । धृतराष्ट्र मुनीश्वर आगमार्थ

आगमार्थं पपाठाशु संगमं सह साधुभिः । जगाम सुमतिः साधुर्धृतराष्ट्रमुनीश्वरः ॥ १६
एतस्मिन्नन्तरे राज्यं धृतराष्ट्रसुतैः समम् । युधिष्ठिराय योधाय श्रीगाङ्गेयः समार्पयत् ॥१७
धर्मपुत्रः सुधर्माणं लोकं कुर्वन् रराज च । पालयन्परमां पृथ्वीं न्यायेन नयकोविदः ॥ १८
यस्मिन्राज्यं प्रकुर्वाणे चौर इत्यक्षरद्वयम् । शास्त्रेऽश्रावि न कुत्रापि पत्तने नीवृति स्फुटम् ॥
भयं न विदितं लोकैर्यस्मिन्पाति धरातलम् । बिभ्यत्यत्र युवानो हि केवलं कामिनीक्रुधः ॥२०
यस्मिन्राज्ये न हरणं लक्ष्मीणां लक्षितात्मनाम् । हर्ता चेत्केवलो वायुः सौगन्ध्यस्य परास्थितेः ॥
नान्योन्यमारणं यत्र विद्यते श्रीयुधिष्ठिरे । मारकस्तु कदाचिच्चेत् समवर्ती विवृत्तिमान् ॥२२
ददौ दानं सुपात्रेभ्यो धर्मपुत्रः पवित्रवाक् । विचित्राणि च कार्याणि परेषां विदधाति च ॥
समर्च्यः सर्वलोकानां वरार्चा श्रीजिनेशिनः । कुरुते विजयोद्युक्तो वृषार्थं स वृषो नृपः ॥२४
षड्वैरिविजयं कुर्वन्कृपासागरपारगः । परमार्थं विजानानः क्षमावान्योगिवद्बभौ ॥ २५
अथ द्रोणस्तु सर्वेषां पाण्डवानां बलात्मनाम् । धृतराष्ट्रसुतानां च बभूव गुरुसत्तमः ॥२६

का पठन करने लगे, वे साधुओंके साथ हमेशा रहते थे । उनकी बुद्धि निर्मल थी और वे रत्नत्रय को साधनेवाले साधु थे ॥ १२-१६ ॥

[भीष्मने कौरवपाण्डवों को राज्य दिया] इसके अनन्तर श्रीगांगेयने धृतराष्ट्र सुत-दुर्योधनादिकों के साथ योधा श्रीयुधिष्ठिर को राज्य अर्पण किया । नीतिनिपुण धर्मराज न्यायसे पृथ्वीका पालन करने लगे । वे लोगों को धर्म में तत्पर कर शोभने लगे । उनके राज्यमें ' चौर ' ऐसा दो अक्षरों का शब्द शास्त्र में ही सुना जाता था । किसी भी नगर तथा देशमें ' चौर ' बिलकुल नहीं थे । धर्मराज पृथ्वी का पालन करते थे उस समय तरुण पुरुषोंको कामिनीके कोपसे ही केवल भय माछम होता था । लोगोंको 'भय' क्या चीज है यह भी माछम नहीं था । धर्मराजा के राज्यमें जिसका स्वरूप जाना गया है ऐसी लक्ष्मी को कोई हरण नहीं करता था । परंतु दूसरे के सुगंधित पदार्थ के सुगंध को वायुही हर लेता था । युधिष्ठिर राज्य पालन करते थे उस समय अन्योन्यका ' मारण ' नहीं था । एक दूसरे को नहीं मारता था । परन्तु यदि कोई कदाचित् मारता था तो यम ही परिवर्तनशील होनेसे लोगोंको क्वचित् कदाचित् मारता था ॥१७-२२॥ पवित्र वचनवाला धर्मराज हमेशा सुपात्रोंका दान देता था । और अन्यलोगोंके अनेक कार्य करता था । सर्व लोगों को मान्य धर्मराज दररोज श्रीजिनेश्वर की उत्तम पूजा करता था । विजय पानेमें उद्यमशील तथा धर्मतत्पर धर्मराजा धर्म के लिये धर्म सेवन करता था । काम, क्रोध, इत्यादि अन्तरंग छह वैरियोंपर विजय पानेवाला, दयासमुद्रके दूसरे किनारेपर पहुंचा हुआ, परमार्थज्ञाता युधिष्ठिर क्षमाधारक योगिके समान दीखता था, योगीभी क्षमावान, दयालु, आत्मस्वरूप जाननेवाले तथा कामादिशत्रुओंको परास्त करनेवाले होते हैं ॥ २३-२५ ॥ बलशाली सर्व पाण्डवोंके तथा धृत-

धनुर्वेदं च सर्वेषां स द्रोणः समशिक्षयत् । बाणनिक्षेपणं लक्ष्यं कोदण्डाकर्षणं तथा ॥२७
तत्र पार्थः समर्थस्तु धनुर्वेदं सुसार्थकम् । विवेद द्रोणतः पुण्याद्विद्या याति द्रुतं जने ॥ २८
धनंजयो भजन् भक्त्या द्रोणाचार्यं समाप च । धनुर्वेदं विनिःशेषं गुरुसेवा हि कामसूः ॥२९
तद्भक्तितस्तु स द्रोणस्तस्मै विद्यां समार्पयत् । निःशेषां धनुषो व्यक्तं गुरौ भक्तिस्तु कामदा ॥
पार्थो व्यर्थांप्रकुर्वाणोऽन्येषां विद्या विदांवरः । रराज तेषु हेमाद्रिः कुलाद्रीणामिवोत्तमः ॥
कौरवाः पाण्डवाः सर्वे धनुर्वेदं यथायथम् । द्रोणतोऽशिक्षयन्क्षिप्रं स्वस्वकर्मानुरूपतः ॥३२
क्रीडन्तो लीलया सव रमन्ते च परस्परम् । धनुर्वेदेन विद्वांसो धनुर्विद्याविशारदाः ॥ ३३
दुर्योधनादयः सर्वे तद्राज्यं न हि वीक्षितुम् । क्षमा विरोधिनः सर्वे पाण्डवैः सह चोद्धताः ॥३४
वर्धमानविरोधेन वर्धमानमहेर्ष्यया । वैरं विशेषतस्तेषां बभूव बहुदुःखदम् ॥ ३५
गाङ्गेयाद्यैर्गभीरैश्च तद्वैरविनिवृत्तये । अर्धमर्धं ददे ताभ्यां राज्यं विभज्य युक्तितः ॥ ३६
पाण्डवानां प्रचण्डानां कौरवाणां सुराविणाम् । तथापि ववृधे वैरमेकद्रव्याभिलाषिणाम् ॥ ३७
कौरवा हृदये दुष्टा वाचा मिष्टा निसर्गतः । पाण्डवान्सकलान्हन्तुमीहन्ते हन्त रोषतः ॥ ३८
तथापि स्नेहतस्ते स्म बाह्यतः प्रीतिमागताः । रमन्ते रम्यदेशेष्वन्योन्यं कौरवपाण्डवाः ॥ ३९

राष्ट्रके पुत्रोंको धनुर्वेद विद्याको पढानेवाले द्रोणाचार्य उत्तम गुरु थे । वे सब कौरव–पाण्डवोंको धनुर्वेदके पाठ पढाने लगे । बाणको फेकना, लक्ष्यको छेदना, धनुष्यका आकर्षण करना, इत्यादि बातें उन्होंने उनको पढाई । उन अनेक विद्यार्थियोंमें अर्जुनने द्रोणाचार्यसे धनुर्वेदको सार्थ जान लिया । योग्य ही है कि, पुण्यसे शिष्यमें विद्या प्रवेश करती है। भक्तिसे द्रोणाचार्य की सेवा करनेवाले अर्जुनने सम्पूर्ण धनुर्वेद उनसे प्राप्त कर लिया । योग्य ही है कि गुरुसेवा इच्छित पदार्थ देनेवाली कामधेनु होती है ॥ २६–२९ ॥ द्रोणाचार्यने अर्जुनकी भक्तिसे उसे संपूर्ण धनुर्विद्या प्रदान की । व्यक्त ही है कि, गुरुमें की गई भक्ति इच्छित पदार्थ देनेवाली होती है। अन्य लोगोंकी विद्याको व्यर्थ करनेवाला विद्वच्छ्रेष्ठ अर्जुन कुलपर्वतोंमें उत्तम सुवर्णमेरुके समान विद्वानोंमें शोभता था ॥ ३०–३१ ॥ सभी कौरव और पाण्डवोंने अपने क्षयोपशमके अनुसार द्रोणाचार्य से यथाविधि धनुर्वेद का शिक्षण लिया, धनुर्विद्यामें निपुण, लीलासे क्रीडा करनेवाले वे विद्वान् धनुर्वेदसे आपसमें रमते थे ॥ ३२–३३ ॥ दुर्योधनादिक सर्व कौरवोंको उनके राज्य का अवलोकन करना सहन नहीं होता था । इसलिये वे सब उनके विरोधी बने । उनका विरोध बढनेसे उनमें ईर्ष्याभी बढगई, जिससे उनका विशेषवैर आतिशय दुःखद हो गया । गांगेय–भीष्म आदि वृद्ध गंभीर पुरुषोंने उनका वैर नष्ट करनेके लिये युक्तिसे आधा आधा राज्य विभक्त कर कौरवपाण्डवोंको दिया । तथापि एक पदार्थ की (राज्यकी) अभिलाषा करनेवाले प्रचंड पाण्डव और मधुर भाषण करनवाले कौरवोंमें वैर बढने ही लगा । स्वभावतः कौरव हृदयमें दुष्ट और वाणीसे मिष्ट थे । वे क्रोधसे सर्व

अथैकदा महाभीमो भीमसेनो यदृच्छया । वने रन्तुं ययौ सर्वैः कौरवैः सह संगतः ॥ ४०
तत्र धूलौ निजात्मानं पिधायोवाच पावनिः । मां समुद्धरते यस्तु बलिनां स बली मतः ॥ ४१
तच्छ्रुत्वा कौरवाः सर्वे तमुद्धर्तुं समुद्ययुः । साभिमानाः प्रकुर्वन्तस्तदुद्धरणसंगरम् ॥ ४२
ते तं चालयितुं नैव क्षमा देशेन कौरवाः । आखुभिः किं प्रचाल्येत बहुभिर्मन्दरो महान् ॥४३
विपक्षास्तु विलक्षास्ते मन्दीभूतसुमानसाः । अस्थेयांसः स्थितिं चक्रुर्निलये समलाननाः ॥४४
अथैकं विपिनं भाति वृक्षलक्षविराजितम् । शाखाशिखरसंलग्नं पत्रपुष्पफलाञ्चितम् ॥ ४५
यत्राम्राः फलभारेण नम्रा यत्र फलार्थिनः । परपुष्टनिनादेनाहूयन्ते स्म च सज्जनाः ॥ ४६
कङ्केलिपल्लवाः प्रान्तरक्ता विद्रुमवीरुधः । हसन्ति युक्तमेतद्धि सादृश्यं हास्यकारणम् ॥ ४७
खर्जूरा जर्जरां जेतुं जरां खर्जूरसत्फलाः । राजन्ते क्षीरिकां जेतुं फलशोभापहारिणः ॥ ४८
तिन्तिण्यः किङ्किणीरावाः सूक्ष्मपल्लवपावनाः । आम्लं रसं समुद्धर्तुं रेजिरे यत्र पावनाः ॥४९

पाण्डवोंके प्राण लेनेकी इच्छा करते थे । तथापि बाह्य स्नेहसे वे प्रीति दिखाते थे और वे कौरव-पाण्डव रम्य प्रदेशोंमें एक दूसरे के साथ क्रीडा करते थे ॥ ३४-३९ ॥

[भीम और कौरवोंकी क्रीडा] एक समय महाभयंकर भीमसेन सर्व कौरवोंको साथ लेकर अपनी इच्छासे वनमें क्रीडा करनेके लिये निकला । उस वनमें धूलिमें अपने को ढककर भीमने कहा मुझे जो यहांसे उठावेगा वह बलवान पुरुषोंमें बली माना जायगा । उसकी यह बात सुनकर सर्व कौरव उसको उठानेके लिये उद्युक्त हुए । अभिमानी कौरवोंने उसको उठानेकी प्रतिज्ञा की परंतु वे उसको थोडासा हिलानेमें भी समर्थ नहीं हुए। क्या बहुतसे चूहोंसे बडा मन्दर पर्वत हिलाया जा सकता है? वे शत्रु खिन्न हुए, उनका मन मन्दोत्साह हुआ, उनके मुख काले पड गये और वे अस्थिर होकर अपने घरमें जाकर बैठ गये ॥ ४०-४४ ॥ एक वन था, उसमें लाखो वृक्ष शोभते थे। वह वन शाखाके अग्रभागपर लगे हुए पत्र, पुष्प और फलोंसे सुंदर दीखता था । वनमें आमके पेड फलोंसे नम्र हुए थे । फलोंकी अभिलाषा जिनको है ऐसे सज्जनोंको वह कोकिलोंके शब्दोंसे मानो बुलाता था । अशोकवृक्षके लाल पल्लव थे वे मूंगा के बेलों को हंसने लगे । युक्त ही है कि उन दोनोंमें जो सादृश्य था वह हास्य का कारण है । खजूराके पेड जर्जर जरा को-वृद्धावस्थाको जीतनेके लिये उत्तम खजूरफलको धारण करते थे । फलोंकी शोभा को नहीं धारण करनेवाले वृक्षोंको जीतनेवाले खिरनीके वृक्ष सुंदर दीखते थे । जिनके पत्ते सूक्ष्म होते हैं और जिनके फलोंका ध्वनि घुंगरुओंके समान होता है ऐसे इमलीके पेड आम्लरसको धारण करके शोभते थे । उस उद्यानमें

१ स. म. चोत्कटाः ।

कदल्यो यत्र विपुलसुदला विमला बभुः । फलानि कल्पवृक्षाणां या जेतुं कदलीफलाः ॥५०
यत्रैवामलकीवृक्षाः कषायरससत्फलाः । मुनिना निर्जितास्तत्र कषाया इव संस्थिताः ॥ ५१
तत्र ते सकला रन्तुं भीमसेनेन कौरवाः । ईयुरायासविन्यासाः खेलायै स्खलितोद्यमाः ॥ ५२
तत्रैकं विपुलं फुल्लं ददर्शामलकीद्रुमम् । वायविर्विपुलस्कन्धं सफलं पल्लवाश्रितम् ॥ ५३
तत्र क्रीडां समारेभे कौरवैः सह पावनिः । सर्वगर्वसमाक्रांतैरारोहणावरोहणैः ॥ ५४
कश्चिच्चटति चातुर्यात्कश्चिदुत्तरति स्वयम् । धुनोति तं द्रुमं कश्चित्कश्चिदालिङ्गति स्फुटम् ॥
हृदा संपीड्य कश्चित्तं कुरुते कम्पनाकुलम् । तत्फलापचयं कश्चिद्विदधाति कुरूत्तमः ॥ ५६
चटितुं तं समुत्तुङ्गं न क्षमः कश्चन ध्रुवम् । दुर्लङ्घ्यं वीक्ष्य वेगेनारुरोह च सुपावनिः ॥ ५७
समला निर्मलं तं च कौरवाः पावनिं तदा । समुत्पातयितुं चेतोविकारं जग्मुरुध्दुरम् ॥ ५८
सरावाः कौरवाः सर्वे तमालिङ्ग्य महाद्रुमम् । कंपयामासुरौद्धत्यात्समुत्पातयितुं हि तम् ॥५९
अकम्पो मारुतिस्तत्र कम्पमानद्रुमे स्थितः । न चकम्पे नदीक्षोभात्किं क्षुभ्यति महार्णवः ॥६०
अवादिषत भीमेन ते भवन्तो यदि क्षमाः । उद्धर्तुं विपुलं वृक्षमुद्धरन्तु धरेश्वराः ॥ ६१

केलेके विमल वृक्ष बहुत थे । उनके पत्र सुंदर थे और वे अपने फलोंसे कल्पवृक्षके फलोंको जीतनेके लिये उद्युक्त थे । उस वनमें कसैला रस धारण करनेवाले, उत्तम फलोंसे युक्त आमलेके पेड मुनिके द्वारा पराजित किये हुए कषायोंके समान दीखते थे । ॥ ४५–५१ ॥ वहां वे सर्व कौरव भीमसेनके साथ क्रीडा करनेके लिये आये । परंतु उनको वहां बहुत परिश्रम हुआ । वे खेलनेके लिये असमर्थ हुए, वहां एक बडा आमलेका वृक्ष था । वह पुष्पोंसे युक्त था, उसकी शाखायें मोटी और दीर्घ थीं, फलभी उसको बहुत लगे थे और पत्तोंसे वह सुंदर दीखता था । भीमने उसको देखा । उस वृक्षपर अभिमानी सर्व कौरवोंके साथ ऊपर चढना और नीचे उतरना इत्यादि प्रकारसे वायुपुत्र भीम क्रीडा करने लगा । कोई उसके ऊपर चातुर्यसे चढते थे और कोई उससे नीचे उतरते थे। कोई कौरव बालक उसको हिलाते थे और कोई उसे दृढ आलिंगन देते थे । कोई कौरवबालक अपनी छातीसे उसे दबाकर खूब हिलाता था । कोई उत्तम कुरुबालक उसके फल [आमले] गिराता था । परंतु उस ऊँचे वृक्षपर चढनेमें निश्चयसे कोईभी समर्थ न था । उस दुर्लंघ्य वृक्षको देखकर वायुपुत्र [भीम] धडाके से ऊपर चढ गया। उस समय निर्मल—कपटरहित भीमको ऊपरसे नीचे गिराने का तीव्र विचार कपटी कौरवों के मनमें उत्पन्न हुआ । जोरसे चिल्लाते हुए वे सर्व कौरव उस बडे वृक्षको चारों तरफसे पकडकर भीमको गिरानेके लिये जोरसे उसे हिलाने लगे । हिलनेवाले पेडपर भीम निश्चल होकर बैठा । उसे किसीभी तरहका भय नहीं था । योग्य ही है, कि नदी के क्षोभसे क्या समुद्र क्षुब्ध होता है? ॥ ५२–६० ॥ भीमने उनको कहा, कि पृथ्वीके

तथापि ते न किं कर्तुं क्षमाः संक्षुब्धमानसाः । वराकैश्चाल्यते किं हि स्वल्पतुङ्गोऽपि पर्वतः ॥
तदाकूतं परिज्ञाय भीमो भवनमासदत् । एकदा कौरवैः सार्धं भीमस्तं द्रुं पुनर्ययौ ॥ ६३
आरोहिता हठात्तेऽपि तेन तं द्रुमसत्तमम् । आक्रम्य स्वभुजाभ्यां च कम्पितस्तरुसत्तमः ॥६४
उन्मूल्य मूलतो मानी तरुं कौरवसंयुतम् । दधाव मूर्ध्नि सच्छत्रं दधान इव शोभते ॥ ६५
धार्तराष्ट्रास्तदा पेतुरुन्मूलिते महाद्रुमे । केचिदूर्ध्वमुखाः केचिदधोवक्त्रास्तथा पुनः ॥ ६६
केचिच्छाखां समालम्ब्य पद्भ्यां चाधोमुखस्थिताः।भुजाभ्यां च खलीकृत्य शाखां तत्र पुरे स्थिताः
केचिच्छाखां समाश्रित्य सुप्तास्तत्र महाभयाः । केचित्तस्थुश्च शाखायामेकहस्तावलम्बिनः ॥
केचिच्च जठरापीडं भजन्ते स्थितिमत्र च । मूर्च्छया मूर्च्छिताः केचिज्जना मरणमित्रया ॥६९
एवं ते पावनेः पुण्यादिव तस्मात्समाकुलाः । एवं भीमे प्रकुर्वाणे दुस्स्थीभूते च कौरवे ॥ ७०
हाहारवमुखे तत्र कश्चिद्भीममुवाच च । पावने पावनात्मा त्वं गम्भीरश्च सहोदरः ॥ ७१
न युक्तमिति कर्तव्यं तव गोत्रविडम्बनम् । निषिद्ध इति सोऽस्वस्थान्स्वस्थीकृत्य स्थितश्च तान्॥

पति आप यदि कुछ ताकत रखते हैं तो इस बडे वृक्षको उखाडो । उनके मनमें वृक्षको उखाडने का आवेश उत्पन्न हुआ, फिरभी वे कुछ कार्य न कर सके । जो असमर्थ हैं वे स्वल्प ऊंचीका पर्वतभी उखाड नहीं सकते हैं । उनका मनोगत जानकर भीम अपने घरको चला गया । फिर किसी समय भीम कौरवोंके साथ उस पेडके पास गया । उसने हठसे उनको उत्तम वृक्षपर चढाया, और अपने दो बाहुओंसे उस वृक्षको आलिंगन कर उसने उसको जोरसे हिलाया । सब कौरव जिसपर बैठे हैं ऐसे उस वृक्षको मूलसे उखाड कर वह भागने लगा उससमय अपने मस्तकपर मानो छत्र धारण किया है ऐसा वह शोभने लगा । जब उसने वह बडा पेड उखाड डाला तब वे कौरव जमीनपर गिर गये । कईक ऊपर मुख किये हुए गिर गये और कईक नीचे मुख करके पड गये । कईक अपने दो पावोंसे शाखा को पकड कर और नीचे मुख किये हुए लटकने लगे । और कईक हाथोंसे शाखाको पकड कर नीचे लटकने लगे । कईक शाखाको दृढ पकड कर वहां ही महाभयसे सोगये और कईक कौरव एक हाथसे शाखाको पकड कर उसपर ठहर गये । कई कौरव अपने पेटसे पेडके साथ चिपक कर वहां ठहर गये । और कईक मानो मरण की सखी ऐसी मूर्च्छासे मूर्च्छित हो गये । इस प्रकार वे भीमके पुण्यसे वहाँ कष्टी हुए । इस प्रकार भीमने क्रीडा की और सब कौरव दुःखी हुए । वे हाहाकार करने लगे । उनमेंसे कोई कौरव भीमसे अनुनय करने लगे । " हे भीम तुम पवित्रात्मा हो और हमारे गंभीर स्वभाववाले भाई हो । तुमसे वंशजोंको पीडा होना क्या योग्य है ? कभी भी योग्य नहीं है " इस प्रकार जब भीमका उन्होंने अनुनय किया तब उन दुःखी कौरवोंको भीमने स्वस्थ किया तथा स्वयं शान्ततासे रहने लगा ॥ ६१–७२ ॥

तत्प्रपेदे निजं पस्त्यं पौरस्त्योद्भूतशोभनः । भ्रातृभिः सततं रेमे भीमो भूरिबलोद्धुरः ॥ ७३
एकदा कौरवा नीत्वा भीमं पद्माकरं प्रति । मिषाज्जलेऽक्षिपन्क्षिप्रं तं हन्तुं मूढमानसाः ॥७४
स बली नाब्रुडच्चीर उपायैर्बहुभिः कृती । ततार तरणोद्युक्तो जलाशयगतं जलम् ॥ ७५
तं वीक्ष्य कौरवाः क्षुब्धास्तरन्तं गतमत्सराः । किं कर्तव्यमिति स्पष्टं चिन्तयामासुराकुलाः ॥
अथैकदा महाधीरो जले क्षेप्तुमनास्तकान् । केनापि छद्मना सर्वान्सरस्यां सहसाक्षिपत् ॥ ७७
जलाशये ब्रुडन्ति स्म ब्रुडन्तः करुणस्वरान् । रक्षरक्षेति वाचालाः प्रापुर्दुःखं हि कौरवाः ॥७८
रुरुदुर्दुःखवृन्देन जलकल्लोललालिताः । धार्तराष्ट्रा धृतिं नापुर्भीमहस्तेन मर्दिताः ॥ ७९
कथं कथमपि प्रायो दुष्टाः संक्लिष्टमानसाः । निर्गतास्तोयतस्तूर्णं जग्मुर्वेश्म महाभयाः ॥ ८०
दुर्योधनो बुधो धीरान्मन्त्रिणः स्वानुजांस्तथा । समाहूयाकरोन्मन्त्रमिति भीमात्सुभीतधीः ॥
दुर्जयोऽयं महाभीमः पराजेता महाभुजः । भीमो भीतिप्रदो नूनं संगरे कृतसंगरः ॥ ८२
समर्थो बलसंपन्नः शौर्यशाली सुधीरधीः । वैरिवर्गविनाशार्थमुद्युक्तो युक्तिसंयुतः ॥८३

[कौरवोंसे डुबाये गये भीमका सरोवरसे निर्गमन] तदनन्तर पूर्वसे भी अधिक शोभनेवाला और अत्यन्त बलवान् भीम अपने घरको गया और वहां अपने भाइयोंके साथ क्रीडा करने लगा। किसी समय कौरव भीमको तालाव के समीप ले गये। और कुछ निमित्तसे उन मूर्खोंने उसको मारनेके लिये पानी में ढकेल दिया। परंतु वह पानीमें नहीं डुबा। अनेक उपायोंसे वह पुण्यवान तैरता हुआ तीरपर आया। तैरते हुए भीमको देखकर उनका मत्सर नष्ट हुआ, वे क्षुब्ध हो गये। अब इसको मारने के लिये स्पष्ट उपाय क्या है इसका वे आकुल होकर विचार करने लगे ॥ ७३-७६ ॥

[भीमने जलमें फेके हुए कौरवोंका भयसे घरको भाग जाना] किसी समय कौरवोंको जलमें फेकनेकी इच्छा करते हुए महावीर भीमने किसी निमित्तसे सरोवरमें कौरवोंको सहसा फेक दिया। तब वे जलमें डुबने लगे। जलमें डुबते हुए तथा करुणस्वरसे हमको बचाओ २ इसतरह कहते हुए अतिशय कष्टी हुए। पानीकी तरङ्गोंसे लालित और दुःखसमूहसे पीडित होकर वे रोने लगे। भीमके हाथोंसे मर्दित होनेसे उनका धैर्य नष्ट हुआ। वे दुष्ट कौरव क्लेशयुक्त मनसे जैसे तैसे पानीमें से जल्दी निकले और अत्यंत भयभीत होकर अपने घरको गये ॥ ७७-८० ॥

[भीमको मारनेका दुर्योधनका विचार] भीमसे जिसकी बुद्धि भययुक्त है ऐसे बुद्धिमान दुर्योधनने धीर मंत्रियोंको और अपने छोटे भाईयों को बुलाकर इस प्रकार विचार किया। " यह भीम दुर्जय है, महाभुजवाला, महाभयंकर तथा शत्रुको जीतनेवाला है। यह शत्रुको भीतिदायक और युद्धमें अपनी प्रतिज्ञामें निश्चल रहता है। यह समर्थ, शक्तिसम्पन्न, पराक्रमी और धैर्ययुक्त है। वैरियों के समूहका नाश करनेमें उद्युक्त रहता है और युक्तिसे संगत है। अर्थात्

अस्मिन्नहो महाभीमे भीमे जीवति जीवितम् । नास्माकं शतसंख्यानां वर्तते विधिवेदिनाम् ॥
हन्तव्योऽयं दुरात्माथास्माभिर्विस्मितमानसैः । येन केनाप्युपायेन छद्मना वा महोत्कटः ॥
अस्मिन्सति सतां नूनमस्माकं राज्यपालनम् । भविता नास्ति कर्तव्ये कर्तव्या हि प्रतिक्रिया॥
यावन्न वर्धते वैरी तावदुच्छेद्य इत्यलम् । वर्धितो व्याधिवन्नूनं ध्वंसयत्यखिलं बलम् ॥ ८७
व्याधयो दस्यवो वैरिव्रजा दुष्टाश्च श्वापदाः । उत्पत्तिमात्रतश्छेद्या दुर्द्रुमा भीतिदा यथा ॥८८
वर्धमाना इमे नूनं दुःखं ददति दारुणम् । वृद्धेष्वेतेषु नो सातं शरीरे विषवृद्धिवत् ॥ ८९
समुच्छेद्यः समुच्छेद्यो भीमोऽयं भीतिदायकः । अन्यथा ज्वलयत्यस्मान्यतो वृद्धोऽत्र वह्निवत्॥
इति संमन्त्र्य मन्त्रीशैस्तं हन्तुं स कृतोद्यमः । दुर्योधनो धराधीशो दुर्ध्यानाहतमानसः ॥९१
अन्यदा पावनिं सुप्तं ज्ञात्वा दुर्योधनो नृपः । छद्मना बन्धयामास बन्धुबन्धुरस्नेहहा ॥ ९२
नीत्वा तं जाह्नवीतीरमप्रुअत्तज्जले रुषा । तदा भीमो जजागार सुखसुप्तोत्थितो यथा ॥ ९३
तत्कर्तव्यं परिज्ञाय भीमस्तद्बन्धमाच्छिदत् । प्रसारितभुजोऽप्यस्थाच्छय्यायामिव तज्जले ॥

शत्रुके नाशार्थ अनेक युक्तियां सोचता है । यह महाभयंकर भीम जबतक जीवित रहेगा तबतक दैवका स्वरूप जाननेवाले हम सौ भाईयोंका जीवित नहीं रहेगा । विस्मित मनवाले हमारे द्वारा जिस किसी उपायसे अथवा निमित्तसे यह महातीव्र शत्रु मारने योग्य है । यह जबतक रहेगा तबतक हम सज्जनों का राज्यरक्षण निश्चयसे नहीं होगा, क्योंकि किसी आवश्यक कार्यमें बाधा उपस्थित होने पर इलाज करनाही पडता है । जबतक वैरी वृद्धिंगत नहीं होता है तबतक उसका घात करना चाहिये । अधिक रोग बढनेपर मनुष्यका सर्व बल नष्ट होता है वैसे शत्रु पूर्ण बढनेपर वह सर्व बलका नाश करता है । जैसे बुरे वृक्ष उत्पन्न होते ही नष्ट करना चाहिये क्यों कि वे भीतिदायक होते हैं वैसे उनके समान रोग, चोर, शत्रुसमूह और दुष्ट हिंस्र सिंहादिक प्राणी भी भीतिदायक हैं अत एव उनका भी उत्पत्ति होते ही नाश करना चाहिये । पाण्डव यदि बढते जायेंगे तो भयंकर दुःख देंगे। शरीरमें विषवृद्धि होनेसे जैसे सुख नहीं होता है वैसे इनके बढनेसे भयंकर दुःख उत्पन्न होगा ॥ ८१-८९ ॥ इस भीतिदायक भीमका अवश्य नाश करनाही चाहिये अन्यथा धधकती हुई आगके समान यह भीम हमें जला देगा। दुर्ध्यानसे जिसका चित्त मारा गया है ऐसे पृथ्वीपति दुर्योधनने मंत्रियोंके साथ विचारकर भीमको मारनेका निश्चय किया ॥ ९०-९१ ॥

[भीमको विषादिसे मारने का प्रयत्न] किसी समय वायुपुत्र [भीम] सोया हुआ है ऐसा जानकर बन्धुके सुन्दर स्नेहका नाश करनेवाले दुर्योधनने कपटसे उसे गंगाके किनारेपर लेजाकर क्रोधसे गंगाके जलमें फेक दिया । तब भीम मानो सुखसे सोये हुए मनुष्य के समान जग गया। यह कौरवों का कार्य है ऐसा समझकर उसने अपना बंधन तोड दिया और अपने हाथ फैलाकर

लीलया ललिताङ्गोऽसौ सलिलं पावनिस्तदा । तस्यास्ततार संतृप्तः शर्मणा विगतश्रमः ॥९५
उत्तीर्य तज्जलं जिह्मवर्जितः पावनिस्तदा । आजगाम गृहं सार्धं कौरवैर्दुष्टकौरवैः ॥ ९६
मन्त्रयित्वान्यदा तस्य कौरवैर्मारणकृते । भेजे मैत्रीं प्रकुर्वाणैः स्पर्धां तेन महौजसा ॥९७
एकदा भोजनार्थं स आहूतः कौरवैः कृती । आमन्त्रणेन सद्भक्त्या पावनिः परमोदयः ॥९८
दुर्योधनेन दुष्टेन तस्मै भोजनमध्यगम् । ददे हालाहलं तूर्णं तत्कालप्राणहारकम् ॥९९
श्रेयसः परिपाकेनासुधायत महाविषम् । भुञ्जानस्य तदा भोज्यं तस्य सद्रुचिकारकम् ॥१००
तस्य श्रेणिक माहात्म्यं पश्य पुण्यसमुद्भवम् । हालाहलमपि प्रान्तकारकं चामृतायत ॥१०१
विषं निर्विषतां याति शाकिनीराक्षसादयः । प्रभवन्ति न भूतेशा धर्मयुक्तस्य देहिनः॥ १०२
रक्तनेत्रो महानागः फणाफूत्कारभीषणः । धर्मतो धर्मयुक्तस्य सदा किञ्चुलकायते ॥ १०३
ज्वलनो ज्वालयन्विश्वं ज्वालाजालसमाकुलः । भीषणो दुःखदो धर्मात्सत्वरं सलिलायते ॥
मृगालीयति सत्सिंहः स्तभति द्विरदोत्तमः । स्थलायते नदीशश्च धर्मतो धर्मिणां सदा ॥ १०५
महीभुजां महाराज्यं प्राज्यं प्राञ्जलिधारिभिः । महीशैर्महितं मान्यं धर्मात्संजायते नृणाम् ॥
कुचभारभराक्रान्ता भ्रमद्भ्रूनेत्रपङ्कजाः । लावण्यरसवारीशा वृषाद्रामा भवन्त्यहो ॥ १०७

वह मानो शय्याके समान गंगाके जलमें रहा । सुखतृप्त, श्रमरहित, सुंदर शरीरवाला यह भीम लीलासे गंगानदीका पानी तैरकर गया । कपटरहित भीम वह गंगाजल तैर कर मानो दुष्ट कौवे ऐसे कौरवों के साथ अपने घर आगया ॥ ९२–९६ ॥ किसी समय उसको मारनेके लिये उस महातेजस्वी के साथ स्पर्द्धा करनेवाले कौरवोंने विचार करके मैत्री संपादन की । अन्य समयमें कौरवोंने भक्तिसे उत्तम उन्नति-वैभवके धारक भीमको आमंत्रण देकर भोजनके लिये बुलाया । दुष्ट दुर्योधनने उसको भोजनमें तत्काल प्राणहारक हालाहल विष दिया । परंतु पुण्यके उदयसे महाविष भी अमृत हो गया । महाविषको खानेवाले भीम को वह उत्तम रुचिकारक अन्न बन गया ॥ ९९–१०० ॥ हे श्रेणिक, उस भीमके पुण्यका माहात्म्य देख । मरण करनेवाला हाला-हलभी अमृत हो गया । जो धर्मयुक्त प्राणी है उसके लिये विषभी निर्विष होता है । शाकिनी, राक्षस आदिक भी प्रभावयुक्त नहीं होते हैं और भूतों के स्वामी भी असमर्थ हो जाते हैं । फणा के फूत्कारसे भयंकर, लाल नेत्रवाला महानाग धर्मयुक्त प्राणिके धर्मसे हमेशा गण्डूपद के समान हो जाता है । ज्वालाओंके समूहसे युक्त जगत्‌को जलानेवाला भयंकर और दुःखद अग्नि धर्मसे शीघ्र पानी हो जाता है । धार्मिकोंके धर्मप्रभावसे ही सिंह स्यार होता है । अतिशय बडा हाथी भी स्तब्ध होता है । समुद्र स्थल बन जाता है । मान्य राजोंओंसे पूजनीय, तथा जिसे हाथ जोडकर राजा नमस्कार करते हैं ऐसा राज्य मनुष्योंको धर्मसे प्राप्त होता है । स्तनभार को धारण करनेवाली, चंचल भोंहें और नेत्रकमलोंसे सुंदर, लावण्य और शृङ्गारादिरस के मानो समुद्र ऐसी

महाकरा महावंशाः कपोलफलपालिनः । सुदन्ता भान्ति भूत्याढ्या नरा इव सुवारणाः ॥१०८
धनराशिस्तथा धान्यराशिर्धर्माच्च जायते । पुत्रवारः पवित्रात्मा सत्रिवर्गश्च सर्गतः ॥ १०९
सुशिक्षिताः सुगमनाः स्वामिभक्तिपरायणाः । ससंस्कारा भवन्त्यत्र सुभृत्या इव वाजिनः ॥
रथा रथाङ्गसंगेन चीत्कुर्वन्तो महार्थकाः । अर्थयन्ति समर्थं हि धर्मिणां धृतिधारिणाम् ॥ १११
हारकुण्डलकेयूरमुद्रिकाकङ्कणादिकम् । वस्त्रताम्बूलकर्पूरं लभन्ते धर्मतो नराः ॥ ११२
गवाक्षाक्षपरिक्षिप्ता रक्षकै रक्षिताः खलु । अक्षयाः सत्क्षणाः क्षिप्रं लभ्यन्ते धर्मतो गृहाः ॥
सुकृतस्येति विज्ञाय फलं प्रविपुलं कलम् । कलयन्तु कलाभिज्ञाः सकलं तत्सुनिर्मलाः ॥ ११४
अथ भीमो भ्रमन्भूमौ निर्भयः कौरवैः समम् । रेमे भुजङ्गसक्रीडाखेलनैः स्खलितात्मभिः ॥
दर्शयांचक्रिरे भीमं भुजंगेन विषाङ्कुरान् । मुञ्चता कौरवाधीशा विश्वकापट्यपण्डिताः ॥ ११६
तस्य तद्गरलं तूर्णममृताय प्रकल्पितम् । तत्प्रभावाच्च बभ्राम तद्देहोऽदग्धवेदनः ॥ ११७

स्त्रियाँ धर्मसे जीवोंको प्राप्त होती हैं। जिनके हाथ पुष्ट हैं, जिनका महावंशमें जन्म हुआ है, कपोल फलको धारण करनेवाले,–अर्थात् विस्तृत गाल को धारण करनेवाले, सुंदर दांतवाले ऐश्वर्य परिपूर्ण मनुष्य के समान हाथी धर्मसे प्राप्त होते हैं । जिनकी शुंडा पुष्ट हैं, जिनके पृष्ठास्थि बडे ऊंचे हैं, फलकके समान विस्तृत गण्डस्थलवाले हाथी शृंगारसे शोभते हैं । विपुल धनराशि तथा धान्यराशि, प्राणियोंको धर्मसे प्राप्त होती है । धर्मार्थ–काम-पुरुषार्थके पालक, पवित्र आचरणवाले अर्थात् सदाचारी पुत्रसमूह जीवोंको धर्मसे प्राप्त होते हैं । धर्मसे सुशिक्षित, उत्तम गतिवाले सदाचारके मार्ग में चलनेवाले स्वामिभक्तिमें तत्पर और अच्छे संस्कारवाले नौकरोंके तरह सुशिक्षित, सुंदर गतिवाले, अपने मालिकमें स्नेह रखनेवाले और सुसंस्कारवाले, घोडे मनुष्योंको धर्मसे प्राप्त होते हैं। चक्रोंके संगसे चीत्कार शब्द करनेवाले मौल्यवान रथ संतोष धारण करनेवाले धार्मिक लोगों को धनके साथ प्राप्त होते हैं । हार, कुण्डल, केयूर–बाजुबंद, अंगुठी, कडे आदिक अलंकार, वस्त्र तांबूल, कर्पूर आदिक उत्तम पदार्थ धर्मसे मनुष्योंको प्राप्त होते हैं । खिडकियां रूपी इंद्रियोंसे युक्त, रक्षकों के द्वारा रक्षण किये गये, दीर्घकालतक रहनेवाले, उत्तम उत्सवोंसे पूर्ण अथवा उत्तम खनोंसे युक्त, ऐसे गृह धर्मसे मनुष्योंको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार पुण्यका यह विपुल मधुर फल समझकर कलाओंके ज्ञाता निर्मल पुरुष वह सकल पुण्य प्राप्त करें॥ १०१–११४ ॥ इसके अनंतर भूतलपर निर्भय होकर भ्रमण करनेवाला भीम जिनका चित्त कुण्ठित हुआ है ऐसे कौरवों के साथ भुजंगक्रीडा करने लगा। संपूर्ण कपटों में चतुर, ऐसे कौरव राजाओंने विषांकुरोंको बाहर फेकने वाले सर्प के द्वारा दंश कराया। परंतु उसका तीव्र विषभी अमृत के समान हो गया। उसके प्रभावसे भीम के शरीरमें भ्रान्ति नहीं उत्पन्न हुई और उसका ज्ञानभी नष्ट नहीं हुआ ॥ ११५–११७ ॥ किसी समय भीष्माचार्य, द्रोणाचार्य, पाण्डु राजाके पुत्र और कौरव ये सब

अथैकदा च गाङ्गेयो द्रोणः पाण्डोश्च नन्दनाः। कौरवाः सह सेचलु रन्तुं विपिनमुत्तमम् ॥११८
कन्दुकं गुण्ठितं गम्यं मण्डितं हेमतन्तुभिः। भजन्तस्ते रमन्तेऽत्र स्वर्णयष्टिभिरादरात् ॥११९
कन्दुकं चालयन्तस्तेऽन्योन्यं विस्मितमानसाः। रममाणास्तदा रेजुः सुपर्वाण इवापराः ॥१२०
यष्टया विशिष्टयाभीष्टो गेन्दुकश्चेन्दुदीपनः। बभ्राम ताडितो भूमौ भयादिव सुभूभुजाम् ॥१२१
यष्टिताडनतोऽपप्तदन्धकूपे विपारके। अतलस्पर्शगे रम्ये जलयुक्ते स कन्दुकः ॥१२२
तदा हाहारवाकीर्णा भूपाः कूपतटस्थिताः। पतितं कन्दुकं वीक्ष्यान्धकूपे पारवर्जिते ॥१२३
तदेति भूमिपैः प्रोक्तं नरः कोप्यस्ति शक्तिमान्। स यः संपतितं कूपे गेन्दुकं चानयत्यहो ॥
ब्रुवते स्म सुवाचालाः केचनौचित्यवर्जिताः। आनयामो वयं वेगादिमं पातालसंस्थितम् ॥१२५
कश्चिद्वावक्ति वेगेन का वार्तास्य महीभुजः। तथा चानयने क्षिप्रमानयामीह कन्दुकम् ॥१२६
लालपीति नृपः कश्चिद्दोर्भ्यामुद्धृत्य चान्धुकम्। आनयाम्यस्य का वार्ता पातालहरणे क्षमः॥
कश्चिदाह समिच्छा चेत् मरुत्वतो महासनम्। गृहीत्वा तेन सत्सार्धं नयामि नयतो बलात् ॥
पातालमूलतः पान्तं पातालं तं फणीश्वरम्। पद्मावत्या सहाबध्यानयामि भवतः पुरः ॥१२९

मिलकर सुंदर वनमें क्रीडा करने के लिये चले। वे उस वनमें गूँथा हुआ, दूर जानेवाला, और सुवर्ण तन्तुओंसे मण्डित ऐसा कन्दुक-गेंद लेकर सुवर्णयाष्टि के द्वारा खेलने लगे। एक दूसरे के तरफ कन्दुक फेकने वाले आश्चर्ययुक्त चित्तके साथ क्रीडा करने वाले वे कौरवादिक मानो दूसरे देव हैं ऐसे शोभने लगे। चंद्रके समान चमकनेवाला उनका प्रिय कन्दुक विशिष्ट यष्टिसे ताडित होकर मानो राजाओंके भयसे भूमिपर इधर उधर भागने लगा। जिसका पार नहीं है,जिसके तलभागका स्पर्श नहीं होता है, ऐसे पानीसे भरे हुए सुंदर अन्धकूपमें यष्टिके ताडनसे वह कन्दुक जाकर गिर गया। तब पाररहित अन्धकूपमें पडा हुआ कन्दुक देखकर कुँएके तटपर खडे हुए राजा हाहाकार करने लगे। तब राजाओंने कहा कि क्या ऐसा कोई सामर्थ्यवाला मनुष्य है, जो इस कूपमें पडे हुए कुन्दकको लावेगा। विचार-रहित और वाचाल कितनेक लोक पातालमें पडे हुए कन्दुककोभी वेगसे हम ला सकते है ऐसा कहने लगे। कोई कहने लगा पातालके कन्दुकको भी मैं ला सकता हूं फिर इस पृथ्वीतलमें पडे हुए कन्दुकको लानेकी क्या बात है? मैं जल्दीसे लाकर आपके पास हाजिर करता हूं। कोई राजा इस तरह बोला-मैं अपने दो बाहुओंसे इस कुएको उठाकर ला सकता हूं क्योंकि मैं पातालको उठाकर लानेमें समर्थ हूं फिर इस गेन्दके लाने-की क्या बडी बात है? कोई राजा बोला-यदि मेरे मनमें आया तो मैं इन्द्रका बडा आसन उठाकर इन्द्रके साथ उसे युक्तिसे और बलसे ला सकता हूं। कोई राजा बोला-पातालका रक्षण करनेवाले फणीश्वरको अर्थात् धरणेन्द्रको पद्मावती के साथ बांधकर मैं आपके आगे लाता हूं। इस प्रकार क्षुब्धजनोंमें बहुत वाचाल और चंचल लोग थे परंतु कोई नीतिवान मनुष्य उस कन्दुकको लानेमें

इति क्षुब्धजनेष्वेवं वाचालेषु घनेषु च। चञ्चलेषु न चानेतुं तं कोऽपि नयवान् क्षमः ॥१३०
द्रोणो विद्रावणे दक्षो रिपूणां वीक्ष्य तत्क्षणम्। लोकान्संलोकितास्यांश्चान्योन्यं चञ्चलचक्षुषः॥
कोदण्डदण्डमापीड्य ज्यया‍टनिप्ररूढया। रराजास्फालयन्स्फारो विस्फारितनिजेक्षणः ॥१३२
मूर्तिमांश्चापधर्मो वा स्थितो द्रोणः समुद्रसः। उत्कर्णान्दिग्गजान्कुर्वन्बधिरीकृतसुश्रुतीन् ॥१३३
कोदण्डेन प्रचण्डेनाखण्डेन चण्डरोचिषा। उर्वी च दधता रेजे पुरंदरधनुःश्रिया ॥१३४
कोदण्डचण्डनादेन त्रासमीयुर्महागजाः। बभ्रमुर्भीतितो गन्तुं पार्श्वे दिग्दन्तिनामिव ॥१३५
गन्धर्वा बन्धनातीता गन्धर्वा गानवर्जिताः। गन्धर्वाः कंपनासक्ता बभूवुश्चापशब्दतः ॥१३६
तदा नागरिकाः सर्वे श्रुत्वा कोदण्डजं स्वरम्। कोऽत्र शत्रुः समायासीद्विचेलुरिति भाषिणः॥
स्थालीकराः सुकामिन्यो निशम्य धनुषः स्वनम्। तत्रत्या विगलद्वस्त्रा बभूवुर्भीतितो न किम्॥
इति चापल्यमुत्पाद्य जनानां चञ्चलात्मनाम्। तं वेध्यं विधिवद्द्रोणो विव्याध संविधाय च ॥
शरेण शिरसं द्रोणः समुत्क्षिप्य समानयत्। कन्दुकं कौरवैर्नेतुमशक्यं सकलैरपि ॥१४०
तदा सुरनरा वीक्ष्य तत्कौशल्यमवर्णयन्। किंनरास्तद्यशोराशिं गायन्ति स्माद्रिकन्दरे ॥१४१

समर्थ नहीं था॥११८–१३०॥ जिनकी आंखें चंचल हुई हैं तथा जो एक दूसरेके मुखको देख रहे हैं ऐसे लोगोंको देखकर शत्रुको भगानेमें चतुर, जिसने अपनी आखें बडी की है, ऐसे महान् द्रोणाचार्य धनुष्यके अग्रभागपर जोडी हुई दोरीसे धनुष्यको नम्र कर उसका टंकार करते हुए शोभने लगे॥१३१–१३२॥ जिसका वीररस उमड आया है, ऐसा मूर्तिमंत चापधर्म ही लोगोंके आगे खडा हुआ है ऐसे द्रोणाचार्य दीखने लगे। उनके धनुष्यके टंकारसे लोगोंके कान बहिरे हो गये और दिग्गजोंने अपने कान खडे किये। जिसकी कान्ति तीव्र है और जिसने पृथ्वी धारण की है ऐसे अखण्ड प्रचण्ड धनुष्यने इन्द्रधनुष्यकी शोभा धारण की थी। उस धनुष्यके प्रचण्ड ध्वनिसे बडे हाथी त्रस्त हो गये और भयसे दिग्गजोंके पास जानेके लिये मानो भ्रमण करने लगे। धनुष्यके प्रचण्ड शब्दसे गन्धर्व-घोडे बन्धनको तोडकर भागने लगे और गन्धर्व–गानेवाले देव भयसे गानरहित होकर थरथर कांपने लगे॥१३३–१३६॥ उस समय सब नागरिकोंने धनुष्यसे उत्पन्न हुआ शब्द सुना और कोई शत्रु आया होगा ऐसा कहकर वे भागने लगे। धनुष्यका शब्द सुनकर भीतिसे जिनके हाथमें थाली है ऐसी स्त्रियोंका वस्त्र गिरने लगा सच है कि भयसे क्या नहीं हो जाता? इस प्रकार चंचल चित्तवाले लोगोंमें चपलता उत्पन्न करके द्रोणाचार्यने बाणके द्वारा उस वेध्यका–कन्दुकका वेध यथाविधि किया। अर्थात् पूर्व बाणके मस्तक में दूसरा बाण अटक गया उसके मस्तकपर तिसरा इस प्रकारसे बाणोंकी पंक्तिके द्वारा सभी कौरव जिसे नहीं ला सके ऐसे गेंदको द्रोणाचार्यने ऊपर उठाकर अपने हाथमें लिया॥१३७–१४०॥ उस समय सर्व मनुष्य और देव द्रोणाचार्यका कौशल्य देखकर उनकी प्रशंसा करने लगे और किन्नर देव पर्वतोंकी कन्दरामें उनकी यशोराशि

ईदृशं शरकौशल्यं न दृष्टं नापि दृश्यते। अतोऽन्यत्रेति भूपालाः शशंसुस्तद्गुणोत्करम् ॥१४२
तत्र ते क्षणमास्थाय पाण्डवाः कौरवा नृपाः। अन्योन्यप्रीतिचेतस्का विविशुर्निजपत्तनम् ॥
कौरवा अपि भीमस्य पुण्यं शक्तिं निरीक्ष्य च। विलक्षाः क्षान्तिमाभेजुरशक्तानां क्षमा वरा॥
एवं राज्यं प्रकुर्वत्सु तेषु कालो महान्गतः। अहो तत्र सपुण्यानां महान्कालः क्षणायते ॥१४५
अथैकदा च द्रोणाय प्रार्थना विहितामुना। गाङ्गेयेन विवाहस्य सिद्ध्यर्थं विधिवेदिना ॥१४६
स प्रार्थितो नृपैः सर्वैस्तथेति प्रतिपन्नवान्। ततो विवाहसंक्षोभो गाङ्गेयस्याजनि स्फुटम्॥१४७
ततो गौतमसत्पुत्री साक्षाद्रतिरिवापरा। जनानन्दकरा तेनाभ्यर्थिता द्रोणहेतवे ॥१४८
तया तस्याथ संजातं विवाहवरमङ्गलम्। नदत्सु वाद्यवृन्देषु गायन्तीषु सुभीरुषु ॥१४९
विवाहानन्तरं तौ द्वौ दम्पती दीप्तमन्मथौ। रेमाते रतियोगेन सुरतौ सुरतोत्सवौ ॥१५०
ततस्तयोः क्रमात्पुत्रोऽश्वत्थामा नामतोऽभवत्। महाधामा सुधीर्धीरो धर्मभृद्व्रतिसेवकः ॥
कोदण्डविद्यया सोऽभूत्सर्वधन्विमहेश्वरः। सुप्रेमप्रेरितानन्दो नन्दयन्सकलाञ्जनान् ॥१५२
एकदा तेन द्रोणेन भणिता नृपनन्दनाः। पार्थादयः पृथुप्रीताः सुशिष्यीभूतमानसाः ॥१५३

गाने लगे। इस प्रकारका बाण–कौशल्य द्रोणाचार्यही में देखा गया। वह अन्यत्र न देखा गया, न दीखता है। राजसमूह इस प्रकार उनके गुणोंके समूहकी प्रशंसा करने लगा। कन्दुकक्रीडाके स्थानपर थोडी देर तक ठहर कर पाण्डव और कौरवराजसमूहने अन्योन्य प्रेममें आसक्तचित्त होकर अपने नगरमें प्रवेश किया॥१४१–१४३॥ कौरवभी भीमका पुण्य और शक्ति देखकर खिन्न हुए और उन्होंने क्षमा धारण की। योग्यही है कि, अशक्तोंको क्षमा धारण करनाही हितकर है। इस प्रकार राज्य करते हुए उन पाण्डव–कौरवोंका महान् काल बीत गया। योग्यही है कि पुण्यवंतोंका महान् कालभी क्षणके समान बीतता है ॥१४४–१४५॥ किसी समय ज्योतिषविद्या जाननेवाले गांगेयने विवाह करने के लिये द्रोणसे प्रार्थना की। सर्व राजाओंनेभी प्रार्थना करनेपर द्रोणाचार्यने उनकी प्रार्थना मान्य की। तदनंतर गांगेयने विवाहकी सर्वसिद्धता प्रगटपनेसे की। गांगेयने– भीष्माचार्यने साक्षात् दूसरी रतिके समान गौतम ब्राह्मणकी जनानन्ददायक सत्कन्या द्रोणके लिये निश्चित की। गौतमपुत्रीके साथ द्रोणाचार्यका विवाहमंगल हुआ। उस समय अनेक वाद्योंका समूह बजने लगा और सुवासिनी स्त्रियाँ गाने लगीं। १४६–१४९ ॥ विवाहके अनंतर जिनका काम प्रदीप्त हुआ है, सुरतोत्सव करनेवाले, वे दम्पती प्रेमसे सुरतमें रमने लगे। तदनंतर उन दोनोंको क्रमसे अश्वत्थामा नामक पुत्र हुआ। वह महान् तेजस्वी, विद्वान्, धीर, धर्म धारण करनेवाला, और सन्तोषका सेवक था अथवा व्रतियोंका सेवक था। वह धनुर्विद्यासे संपूर्ण धनुर्धारियोंका प्रभु तथा सुप्रेमसे आनन्दकी प्रेरणा करनेवाला और सर्व लोगोंको उन्नत बनानेवाला था॥ १५०– १५२ ॥ किसी समय अतिशय प्रीति करनेवाले, जिनका मन सुशिष्य हुआ है अर्थात् जो शिष्य

अहो शिष्याः सुकर्तव्यं मद्वचो बहुविस्तरम्। धनुर्विद्याविधौ दीप्तं समस्तविधिपारगम् ॥१५४
कृपापारमितो द्रोणो धनुर्विद्याविशारदः। तद्वाक्यमवकर्ण्याशु चिचेलुः कौरवाः स्वयम् ॥१५५
पार्थः सार्थः समर्थस्तु तद्वाक्ये स्थितिमादधौ। गुरुवाक्ये रतानां हि विद्याः स्युः करसंगताः॥
ततो धनंजयस्याशु गुरुणा वर उत्तमः। अदायीति प्रदातव्या धनुर्विद्या हि ते मया ॥१५७
मत्समस्त्वं प्रकर्तव्यः शुद्धया चापविद्यया। गुरुणेत्युदिते तावत्पार्थः स्वस्थः सुसार्थकः॥
धनुर्वेदरतः पार्थः परमार्थविशारदः। चचार चापचातुर्यं तच्चिन्ताहृतिचेतनः ॥१५९
घस्रे निशीथिनीकाले भक्तिमान्स धनंजयः। गुरावगणयन्दुःखं सिषेवे तत्पदाम्बुजम् ॥१६०
तदान्यदा गुरुर्द्रोणः पाण्डवैः कौरवैः समम्। शिक्षयितुं धनुर्वेदं वनमाप सुशिष्यकान् ॥१६१
तत्रैकं तुङ्गशाखाढ्यं शाखिनं सुफलान्वितम्। सपलाशं खगाकीर्णं ददृशुस्ते महोद्धताः ॥१६२
शाखामध्यगतं वीक्ष्य द्रोणं काकं सुपक्षिणम्। द्रोणोऽवादीद्धनुर्वेदी पाण्डवान्कौरवान्प्रति ॥
यः पक्षिदक्षिणं चक्षुर्लक्षीकृत्य च विध्यति। स विद्वान्कार्मुकी दक्षो धनुर्वेदविदग्रणीः ॥१६४

हुए हैं ऐसे अर्जुन आदिकोंको द्रोणाचार्यने कहा, कि "हे शिष्यों, धनुर्विद्याके विषयमें बहुविस्तार युक्त, उज्ज्वल और संपूर्ण विधि–उपायोंके किनारेपर पहुंचा हुआ अर्थात् और सर्व उपायोंसे परिपूर्ण ऐसा मेरा वचन तुम्हें अवश्य मान्य करना चाहिये। अर्थात् मैं जो जो बातें धनुर्विद्याके विषयमें कहूंगा वे ध्यानमें रखने लायक हैं। द्रोणाचार्य कृपाके दुसरे किनारेको पहुंच गये हैं अर्थात् सर्पूण शिष्योंपर वे अत्यंत दयालु हैं, धनुर्विद्यामें निपुण हैं, ऐसा विश्वास रखकर शीघ्र उनके वाक्यानुसार कौरव चलने लगे ॥ १५३–१५५ ॥ धनुर्विद्याका प्रयोजन सिद्ध करनेकी इच्छा रखनेवाले समर्थ अर्जुनने द्रोणाचार्य के वाक्यमें स्थिरश्रद्धान किया। योग्य ही है, कि गुरुके उपदेशमें तत्पर रहनेवालोंके हाथमें विद्यायें स्वयं आकार ठहरती हैं। तदनंतर गुरुने मैं तुझे धनुर्विद्या देता हूं तू उसको ग्रहण करनेमें योग्य है ऐसा कहकर उत्तम वर दिया। मेरे समान मैं तुझे निर्दोष चापविद्यासे युक्त करूंगा, इसतरह गुरुने जब कहा तब उत्तम चित्तवाला पार्थ (अर्जुन) स्वस्थ हो गया। परमार्थमें निपुण, धनुर्वेदका अभ्यास करनेमें तत्पर और गुरुकी चिन्ता करनेमें आकृष्ट हुआ है मन जिसका ऐसे अर्जुनने धनुर्विद्याका चातुर्य धारण किया ॥ १५६–१५९ ॥ भक्तिमान् धनंजय दिन रात गुरुकी आराधना करता था। उसमें होनेवाले कष्टोंकी वह पर्वाह नहीं करता था। हमेशा गुरुके चरणकमलोंकी वह सेवा करता था ॥ १६० ॥ किसी समय द्रोणाचार्य पाण्डव कौरवोंको अपने साथ लेकर शिष्योंको धनुर्वेदका शिक्षण देनेके लिये वनमें आये। वहां ऊंची शाखाओंसे तथा पूर्ण फलोंसे लदा हुआ, पत्रोंमे पूर्ण और अनेक पक्षियोंसे युक्त वृक्षको उन शक्तिशालियोंने देखा। उस वृक्षकी एक शाखाके मध्यमें अच्छा द्रोणजातिका कौवा बैठा था उसे देखकर धनुर्वेदी द्रोणाचार्यने पाण्डव और कौरवोंको इस प्रकार कहा "जो इस पक्षीके दक्षिण

निशम्य कौरवाः सर्वे दुर्योधनपुरस्सराः। विषमं वेधमाज्ञाय तूष्णीत्वमगमंस्तदा ॥१६५
केनेदं दक्षिणं चक्षुः क्षणस्थिति च पक्षिणः। चञ्चलं चञ्चलस्याशु वेध्यं क्व चेति वादिनः ॥
पाण्डवान्कौरवान्द्रोणोऽवादीचापविशारदः। तथास्थांल्लक्ष्यविद्वीक्ष्य गिरा गम्भीररूपया॥१६७
अहं हन्मीति संधानं दधौ धनुषि पत्रिणः। सपत्रस्य गुणास्य पत्रिदक्षिणवीक्षणम् ॥१६८
तदा धनंजयो धन्वी धनुःसंधानबुद्धिमान्। सधन्वानं गुरुं नत्वा विज्ञप्तिमिति चाकरोत् ॥
विशिखाक्षेपविद्द्रोण शुशाखापक्षिचक्षुषः। लक्ष्यस्य च क्षमोऽसि त्वं वेधनं कर्तुमुद्यमी ॥१७०
विस्मयः कोऽत्र गोत्रेश मित्रस्य दीपदीपनम्। रसाले तोरणस्यापि बन्धनं यादृशं भवेत् ॥
अथवागुरुधूपित्वं मृगनाभिभवस्य च। तादृशं धन्वसंधानं तातपाद तवाधुना ॥१७२
अन्तेवासिनि मादृक्षे सति त्वयि न युज्यते। ईदृशं कर्म संकर्तुं धनुःसंधानधारिणि ॥१७३
ममाज्ञां देहि ताताद्य वेधस्य विषमस्य च। वेधने त्वत्प्रसादेन लब्धविद्यस्य धन्विनः ॥१७४
तदा तेन समुद्दिष्टो गरिष्ठो वेध्यवेधने। कोदण्डं स करे कृत्वा समुत्तस्थे स्थिरक्रियः ॥१७५

चक्षुको लक्ष्य करके विद्ध करेगा वह विद्वान्, धनुर्धारी चतुर और धनुर्वेद जाननेवालोंमें अग्रणी--अगुआ माना जायगा।" यह गुरुजी का वचन सुनकर दुर्योधनादिक सब कौरव कौवेकी आंखको विद्ध करना कठिन है ऐसा समझकर चुप रह गये। इस चञ्चल पक्षीकी यह चंचल दक्षिण आँख क्षणतक स्थिर रहती है इसलिये किसके द्वारा और कब विद्ध की जावेगी? अर्थात् इसकी आँख कोई विद्ध नहीं कर सकेगा ऐसा दुर्योधनादिक आपसमें बोलने लगे। तब लक्ष्यका स्वरूप जाननेवाले चापविद्याचतुर द्रोणाचार्य आपसमें बोलनेवाले कौरव पाण्डवोंको गंभीर वाणीसे इस प्रकार बोलने लगे, "हे पाण्डवकौरवों, मैं उस पक्षीकी दाहिनी आंख विद्ध करता हूं" तदनंतर पक्षसे युक्त, धनुषकी दोरीपर चढा हुआ ऐसे बाणको धनुष्यपर आरोपित कर पक्षीकी दाहिनी आँखके प्रति उन्होंने संधान लगाया। इतनेमें धनुष्यसे संधान करनेमें चतुर धनुर्धारी अर्जुनने धनुर्धारी गुरुजीको इस प्रकार विज्ञप्ति की ॥ १६१-१६९ ॥ "हे गुरुजी आप बाण फेकनेमें चतुर हैं, आप शाखापर बैठे हुए लक्ष्यभूत पक्षीके चक्षुका वेध करनेमें समर्थ हैं और वेधन करनेमें अब उद्युक्त हुए हैं, इसमें क्या आश्चर्य हैं। हमारे गोत्रके--वंशके आप ईश स्वामी हो। आपका यह कार्य सूर्यको दीपसे प्रकाशित करनेके समान है, अथवा आम्रवृक्षपर तोरण बांधने के समान है, अथवा कस्तूरीको अगुरुचन्दनकी धूपसे धूपित करनेके सदृश है। अर्थात् हे पूज्यपाद, आपका यह धनुःसंधान इस समय शोभा नहीं देता है ॥ १७०-१७२ ॥ हे पूज्य, धनुःसंधान धारण करनेवाला मुझसरीखा विद्यार्थी आपके पास होने पर आपका यह कार्य मुझे योग्य नहीं जँचता है ॥ १७३ ॥ आपके प्रसादसे मुझे धनुर्विद्या प्राप्त हुई है, मैं धनुर्धारी हो गया हूं। इस विषम वेध्यके वेधनमें आप मुझे आज्ञा दीजिये। इस प्रकारकी अर्जुनकी विज्ञप्ति सुनकर वेध्यके

चापमास्फाल्य चापेशो मौर्वीसंधानमावहन्। जगर्ज स्फूर्जथुर्यद्वत्समर्जितयशश्चयः ॥१७६
सक्षणं क्षणिकं वीक्ष्य पक्षिणो दक्षिणेक्षणम्। अक्षमं लक्षितुं यद्वत्संदधे क्षणिकं मतम् ॥
चञ्चलं चञ्चलग्रीवं चलनेत्रं चलन्मुखम्। पक्षिणं वीक्ष्य स स्वान्ते दधे लक्ष्याय शेमुषीम् ॥
स्वोरुं संस्फालयामास तदधोवीक्षणकृते। तावताधोमुखं पक्षी लुलोके स्फालनश्रुतेः ॥१७९
लोकयन्तमधोवक्त्रं पक्षिणं वीक्ष्य लक्ष्यवित्। जघान दक्षिणं चक्षुस्तस्य बाणेन बाणवित् ॥
तत्कुर्वाणं समावीक्ष्य द्रोणदुर्योधनादयः। तं शशंसुरिति स्पष्टं चापविद्याविशारदम् ॥१८१
चापविद्याचणाश्चित्रं दृष्टाः पूर्वमनेकशः। धानुष्को नेदृशो दृष्टो वेध्यविद्याविशारदः ॥१८२
पारंगतोऽसि वेध्यस्य विद्याया विबुधाग्रणीः। क्व गुणी गुणसंधिज्ञं शशंसुरिति ते तकम् ॥
ततस्ते तत्कथां सार्थां कुर्वाणा धृतराष्ट्रजाः। सद्मासेदुश्च सीदन्तो विशदं वीक्ष्य तद्बलम् ॥१८४
कदाचित्पृथु पार्थेशः समर्थो व्यथयन्रिपून्। शरासनं करे कृत्वा जगाम विपिनं वरम् ॥
भ्रमन्भीतिं प्रकुर्वाणो वन्यानां स धनंजयः। श्वापदापदसंभेदी गहनं निरगाल्लघु ॥१८६

वेधनमें अतिशय प्रवीण अर्जुनको गुरुजीने आज्ञा दी। अर्जुनने अपने हाथमें धनुष्य लिया और चंचलता छोडकर वह निश्चल अर्थात् एकाग्रचित्त हुआ। चापके प्रभु, यशःसमूहको प्राप्त किये हुए अर्जुनने धनुष्यसे टंकार शब्द किया, दोरीपर बाण जोड दिया और वज्रके समान गर्जना की। जैसे क्षणिकमतका विचार करना अशक्य होता है वैसे पक्षीका चञ्चल दक्षिण नेत्र क्षणतक देखकर अर्जुनने उससे संधान किया ॥ १७४–१७७ ॥ वह पक्षी चञ्चल था, उसके नेत्र चञ्चल थे और वह अपना मुख इधर उधर हिलाता था। ऐसे पक्षीको देखकर अर्जुनने अपने मनमें लक्ष्यवेध करनेका निश्चय किया। वह पक्षी नीचे देखे इसलिये उसने अपनी जंघाको हाथसे पीटा पक्षीने नीचे मुख करके जंघाके पीटनेका शब्द सुना। नीचे मुख करके देखनवाले पक्षीको देखकर लक्ष्यके ज्ञाता, बाण–विद्याको जाननेवाले, अर्जुनने उस पक्षीके दाहिने नेत्र को विद्ध किया ॥ १७८–१८० ॥ नेत्रवेधन कार्य देखकर धनुर्विद्याविशारद अर्जुनकी द्रोण और दुर्योधनादिक स्पष्टरीतिसे स्तुति करने लगे। चापविद्यामें चतुर अनेक लोक पूर्वकालमें हमने देखे हैं, परंतु वेध्यविद्यामें चतुर ऐसा धनुर्धर हमने कभी नहीं देखा " हम इसका कार्य देखकर आश्चर्यचकित हुए हैं। अर्जुन तू वेध्य की विद्यामें पारंगत हुआ है। तू विद्वानोंका अगुआ है। तेरे समान गुणी कौन है ? दोरीके ऊपर बाण जोडनेमें तू चतुर है " ऐसी सबोंने उसकी स्तुति की। तदनंतर अर्जुनकी अन्वर्थक कथा करनेवाले वे धृतराष्ट्रपुत्र उसका निर्मल बल देखकर दुःखी होते हुए अपने घर आगये ॥ १८१–१८४ ॥ किसी समय समर्थ महाप्रभु अर्जुन शत्रुओंको पीडित करता हुआ हाथमें धनुष्य लेकर उत्तम वनमें गया। वहां जब वह अर्जुन घूमने लगा तो वन्यपशुओंको भीति उत्पन्न हुई। श्वापदोंसे लोगोंको जो आपत्तियां होती थी वे उसने दूर की और वह

तत्रैकं मृगदंशं स मृगारिमिव सून्नतम्। शरप्रहारसंरुद्धवदनं वीक्षते स्म च ॥१८७
बाणप्रहारसंरुद्धतुण्डः सखण्डमानसः। केनाकारि स्वयं श्वायं धनुर्विद्याविदात्मना ॥१८८
नरो न दृश्यते कश्चिदत्रास्यास्यप्रहारकृत्। शब्दवेधविदो नान्यो विधातुमीदृशं क्षमः ॥१८९
बाणप्रहारसंरुद्धवदनं वीक्ष्य कुक्कुरम्। शरराशिसमाकीर्णतूणं वा स व्यचिन्तयत् ॥१९०
अहो द्रोणो महाप्राज्ञो मद्गुरुः प्रकटो भुवि। ध्वनिवेधविधानेन सदा मान्यो धनुष्मताम् ॥
शब्दवेधं दुराराध्यं सर्वागोचरसंचरम्। जानाति चेदयं द्रोणो नान्यः कोऽपि श्रुतौ श्रुतः॥१९२
अहं तिष्ठामि तत्पार्श्वे शब्दवेधं सुशिक्षितुम्। गुरुणाधिष्ठितः प्राज्ञश्चापचञ्चुत्वमागतः॥१९३
तेन प्रसादतो मह्यं धनुर्विद्या सुशब्दगा। अदायि क्वापि नान्येभ्योऽन्तेवासिभ्यो विशारदा ॥
शुनको भाषमाणोऽयं ध्वनिवेधविदा हतः। केनेति विस्मयः श्रीमान्सस्मार स्मेरमानसः ॥
आश्चर्यं धैर्यवीर्यार्यपर्युपासितशासनः। वर्यः स्मरन्स्मयेनासौ बभ्राम विपिनं तदा ॥१९६
स तं द्रष्टुमनाः शब्दवेधिनं विशिखायुधम्। लोकयन्निखिलां क्षोणीं बभ्राम विगतश्रमः ॥

वनमेंसे जल्दी जल्दी जाने लगा। उस वनमें एक जगह सिंहके समान ऊंचा और बाणके प्रहारसे जिसका मुख भरा है ऐसे कुत्तेको अर्जुनने देखा। जिसका चित्त क्रूर है ऐसे इस कुत्ते का मुख बाणप्रहार करके किसने भर दिया है, धनुर्विद्या जाननेवाले किसी व्यक्तिने भूँकनेवाले कुत्तेके मुँहमें ये बाण भर दिये होंगे? इसको जिसने प्रहार किया है ऐसा मनुष्य यहां नहीं दीखता। तथा शब्दवेधको जाननेवालेके बिना ऐसा कार्य करनेमें अन्य कोई समर्थ नहीं है। बाणके प्रहारसे जिसका मुख भर गया है ऐसे उस कुत्तेको देखकर क्या बाणोंके समूहसे भरा हुआ यह तरकस है? ऐसा विचार अर्जुनके मनमें आया। अहो महाविद्वान् द्रोणाचार्य मेरे गुरु हैं। वे भूमण्डल में प्रसिद्ध हैं। शब्द-वेधके कार्यसे वे धनुर्धारियोंमें हमेशा मान्य हुए हैं। शब्द-वेध विद्या बडे कष्टसे आराधी जाती है। वह सर्व धनुर्धारियोंमें नहीं पायी जाती है। यदि कोई जानते हैं तो अकेले द्रोणाचार्य ही इसे जानते हैं दूसरा कोई जानता है ऐसा मैंने कानोंसे नहीं सुना है। मैं द्रोणाचार्यके पास शब्द-वेध पढनेके लिये रहता हूं। गुरुसे अधिष्ठित होकर मैं चतुर और धनुर्विद्यामें निपुण हुआ हूं। द्रोणाचार्यने प्रसन्न होकर मुझे शब्दमें प्रवेश करनेवाली धनुर्विद्या दी है। वह अन्य किसी विद्यार्थियोंको नहीं दी है॥ १८५-१९४ ॥ भूँकनेवाला यह कुत्ता शब्द-वेध जाननेवाले किस मनुष्यने मारा है, यह आश्चर्य है। कुछ समझमें नहीं आता है। ऐसा विचार कर कुतूहलयुक्त चित्तसे लक्ष्मीसंपन्न अर्जुन स्मरण करने लगा ॥ १९५ ॥ धैर्य और वीर्य से युक्त आर्योंके द्वारा जिस के शासनकी उपासना की जाती है अर्थात् जिस की आज्ञा मानी जाती है, जो श्रेष्ठ है ऐसा अर्जुन आश्चर्य युक्त होकर उस अद्भुत बातका स्मरण करता हुआ वन में भ्रमण करने लगा ॥ १९६ ॥ शब्द-वेधी और बाणरूपी शस्त्र धारण करनेवाले उस व्यक्तिको देखनेकी इच्छासे

कन्दरे सुन्दरे देशे निकुञ्जे च शिलोच्चये। तं पश्यन्नप्रये पार्थः परार्थसार्थकोविदः ॥१९८
तावता हस्तसंरुद्धश्वानं वीरं वनेचरम्। करोत्क्षिप्तशरं तूणसंबद्धपार्श्वभागकम् ॥१९९
करालास्यं गतालस्यं वेगनिर्जितमारुतम्। विकटाक्षं च ध्वांक्षाभपक्षभागमधोमुखम् ॥२००
काकतुण्डस्वनासाग्रं कोलकेशं च केशिनम्। ददर्श दारुणं भिल्लं धनुस्स्कन्धं धनंजयः ॥२०१
सोऽभाणीत्तं समावीक्ष्य प्रचण्डः पाण्डुनन्दनः। कस्त्वं सुहृत् क संवासी का विद्या त्वयि वर्तते ॥
इति पृष्टः समाचष्टे शबरः स स्मयावहः। दुर्निरीक्ष्यः क्षमामुक्तः कोपारुणितलोचनः ॥२०३
समाकर्णय सत्कर्ण व्याकर्णाकृष्टकार्मुकः। अभीर्भीतिंकरोऽन्येषां परमप्रीतिदायकः ॥२०४
शबरोऽहं वनेवासी धनुर्विद्याविशारदः। शरासनशरेणाशु भेत्तुं शक्नोमि देहिनः ॥२०५
शब्दवेधविधौ शुद्धः समृद्धो वेध्यवेधकः। मादृक्षः कोऽपि भूपीठे न लक्ष्यो लक्ष्यहृज्जनैः ॥
श्रुत्वेति पिप्रिये पार्थः पराक्रान्ति सुचापिनः। भिल्लस्य भालभ्रूभङ्गपरिक्षिप्तपरात्मनः ॥२०७

ढूंढता हुआ अर्जुन श्रमरहित होकर उस जंगलकी संपूर्ण पृथ्वीपर भ्रमण करने लगा। पर्वतोंकी सुंदर गुफा, लतागृहके प्रदेश, पर्वत इत्यादि स्थानोंमें उस शब्द-वेधी व्यक्तिको ढूंढनेवाला परोपकारके कार्यसमूहमें चतुर अर्जुन घूमने लगा ॥ १९७-१९८ ॥ इतनेमें अपने हाथसे कुत्तेको पकडा हुआ, एक हाथसे जिसने बाणको उठाया है, जिसके पार्श्वभागमें बाणोंका तरकस बंधा है, जिसका मुख भयंकर है, आलस्यसे जो दूर है, वेगसे वायुको जीतनेवाला, जिसकी कान आँखे आदि इंद्रियाँ भयंकर हैं। जिसके देहके विभाग दो पसवाडे कौवेके समान काले थे अर्थात् जिसका संपूर्ण देह काले रंगका था। जिसका मुख नीचा था, कौवेके मुहके समान जिसकी नाक थी, जिसके केश सूकरके केशसमान थे। जिसका सर्वांग केशोंसे भरा हुआ था, जिसके कंधेपर धनुष्य था, ऐसे वनमें घुमनेवाले भयंकर वीर भिल्लको देखा ॥ १९९-२०१ ॥ प्रचण्ड अर्जुनने भिल्लको देखकर पूछा कि, हे मित्र, तुम कौन हो, कहां रहते हो और तुममें कौनसी विद्या है? ऐसा पूछनेपर गर्वयुक्त, जिसको देखनेमें लोगोंको डर लगता है, जो क्षमासे रहित और क्रोधसे लाल आखोंवाला वह भिल्ल बोलने लगा—सुंदर कर्णवाले मित्र, कानतक धनुष्यको खीचनेवाला, भय रहित परंतु अन्य को भययुक्त करनेवाला, आप लोगोंपर अतिशय प्रीति करनेवाला मैं, आपको मेरा परिचय देता हूं, सुनो ॥ २०२-२०४ ॥ मैं वन में रहनेवाला धनुर्विद्यामें चतुर भील हूं, धनुष्यसे छोडे गये बाणसे मैं प्राणीको तत्काल विद्ध करता हूं। शब्द-वेध-विद्यामें मैं शुद्ध-निर्दोष हूं। उस विद्यामें समृद्ध हूं अर्थात् उस विद्यामें मुझे कुछभी जानना अवशिष्ट नहीं रहा है। लक्ष्यको विद्ध करनेवाले जनोंने मुझ सरीखा कोई भी वेध्यको विद्ध करनेवाला नहीं देखा है। भालप्रदेशकी भौंओके टेढेपनसे शत्रुओंको जिसने भीति उत्पन्न की है ऐसे उत्तम धनुर्धारी भीलका पराक्रम सुनकर अर्जुन आनन्दित हुए और बोलने लगे, हे शब्दवेधिन् तुमने सिंह के समान कुत्ता अपने सामर्थ्यसे

शब्दवेधिन् त्वया ध्वस्तो मृगदंशो मृगारिभः । बाणेन बलतस्तूर्णं पार्थस्तमित्यबीभणत् ॥
सोऽब्रवीच्छृणु सुश्रोतः काममर्त्य सुकामद । कम्राङ्ग कमलाक्षस्त्वं कोमलः कमलालयः ॥
कामिनीकमनीयोऽसि करुणावान् क्रियाग्रणीः। कलाकेलिकृतावास समाकर्णय मत्कृतिम् ॥
गच्छताथ श्रुतः शब्दः शुनः सुश्रान्तचेतसा । शरेण स हतः शब्दवेधिना शब्दतो मया॥२११
तं शब्दवेधिनं मत्वा विस्मितः कौरवाग्रणीः । अप्राक्षीत्क्षिप्तसंशोभं सलोभं तं वनेचरम् ॥२१२
किरात क्व त्वया विद्या लब्धेयं शब्दवेधिनी । विद्यमाना फलं विद्या दत्ते च महती महत् ॥
को गुरुर्भवतामस्या विद्यायाः सुगुणाग्रणीः । शब्दविद्याप्रदातारो न दृश्या गुरवः क्वचित् ॥
इत्युक्तियुक्तिमाकर्ण्य किरातः किरति स्म च । कृतज्ञः सुकृती वाक्यं विकसद्वक्त्रपङ्कजम् ॥
रिपुविद्रावणे दक्षो द्रोणोऽस्ति मम सद्गुरुः । तत्प्रसादान्मया लब्धा विद्या सच्छब्दवेधिनी ॥
द्रोणस्तु गुणसंधानः सद्गुरुर्मे महामनाः । ततो विद्या मया लब्धा परेयं शब्दवेधिनी ॥२१७
शब्दवेधित्वविज्ञानमतो नान्यत्र वर्तते । अतो गुरुरयं मेऽद्य तद्विद्याविधिनायकः ॥२१८
निशम्येति वचस्तस्य पार्थः सार्थमनोरथः । अचिन्तयदिति स्वान्ते स्वच्छचेताश्च सूक्ष्मधीः ॥

बाणके द्वारा मार दिया है। अर्जुनका भाषण सुनकर भील बोला हे शुभकर्णवाले मदनसमान सुंदर पुरुष, इच्छित देनेवाले, सुंदर शरीर--धारक, कमलनेत्र, कोमल, लक्ष्मीके निवास, आप स्त्रियोंके मनको हरण करनेवाले, दयालु और कार्य करनेमें चतुर हैं । आप धनुर्विद्यादि कलाओंके क्रीडा--गृह हैं । मेरी कृतिका--कार्यका वर्णन सुनो ॥ २०५--२१०॥ मैं वन में घूमता था, मेरा मन थोडासा थका हुआ था, इतनेमें मैंने कुत्तेका शब्द सुना। तब शब्दके अनुसार शब्दवेध जाननेवाले मैंने वह कुत्ता बाणसे मार दिया। उस भीलको शब्दवेधी जानकर कौरवोंके अगुआ अर्जुन आश्चर्यचकित हुए। उन्होंने जिसका सौंदर्य नष्ट हुआ है अर्थात् जो कुरूप है तथा लोभी ऐसे भीलको कहा कि, हे किरात,यह शब्दवेधिनी विद्या तुमने कहां प्राप्त की है? यह महान् विद्या जिसके पास होती है उसे विशाल फल देती है। उत्तम गुणधारियोंमें अगुआ ऐसे कौन महात्मा इस विद्याके दान करनेमें आपके गुरु हैं? शब्द--विद्या देनेवाले गुरु कहा भी नहीं दीखते हैं ॥ २११--२१४ ॥ अर्जुनकी भाषण--युक्ति सुनकर कृतज्ञ, विद्वान् भील जिसका मुखकमल प्रफुल्लित है ऐसे अर्जुनको इस प्रकार वचन कहने लगा। शत्रुओंको भगानेमें चतुर द्रोण मेरे सद्गुरु हैं, उनके प्रसादसे मैंने उत्तम शब्दवेधिनी विद्या प्राप्त की है। मेरे गुरु द्रोणाचार्य गुणोंका संग्रह करनेवाले और उदारचित्त हैं, उनसे मैंने यह उत्कृष्ट शब्दवेधिनी विद्या प्राप्त की है। शब्दवेधका ज्ञान उनके सिवा अन्य स्थानमें नहीं पाया जाता है। मुझे उस विद्याका विधि बतानेवाले द्रोणाचार्य मेरे स्वामी और गुरु हैं ॥२१५-२१७॥ यह किरातका भाषण सुनकर जिसके मनोरथ सफल हुए हैं,जो स्वच्छ मनवाला और सूक्ष्मबुद्धिका धारक है ऐसे अर्जुनने मनमें इस प्रकारका विचार किया-- द्रोणाचार्य परिवारसे सदा घिरे हुए, राजमान्य

परिवारयुतो द्रोणो राजमान्यो विदांवरः। क द्रङ्गरङ्गसंभोगी संगतो वरया गिरा ॥२२०
क किरातः कृपाहीनो देहिसंघातघातकः। पाकसत्त्वैः समं युद्धं कुर्वाणो दृश्यते जनैः॥ २२१
अनयोर्दुर्धरो योगो दृश्यते पूर्वनस्थयोः। पूर्वापरसमुद्रस्थकीलिकाहलयोगवत् ॥२२२
विचिन्त्येति बभाणासौ किरातं पाण्डुनन्दनः। क दृष्टः स गुरुः शिष्टो गरिष्ठः सुगुणैस्त्वया ॥
सोऽवादीत्ककुभः सर्वा बधिरा जनयंस्त्वरा। अत्र स्तूपे लसद्रूपे मया दृष्टो गुरुर्गुणी ॥२२४
तं स्तूपं दर्शयामास पार्थस्य शबरोत्तमः। वदन्निति विनीतात्मा विज्ञातगुरुगौरवम् ॥२२५
अयं स्तूपः पवित्रात्मा परमो गुरुसंश्रयात्। लोहधातुर्व्रजेद्यद्वत्स्वर्णतां रसयोगतः ॥२२६
नंनमीमि नराधीश प्रबुद्धो गुरुसद्धिया। इमं प्रविपुलं स्तूपं पावनं पवनावृतम् ॥२२७
अस्य प्रसादतो लब्धा विद्या सा शब्दवेधिनी। मयेति मन्यमानोऽहं भजामीमं स्वबुद्धितः ॥
परोक्षं विनयं तन्वन् गुरोस्तस्याप्यहर्निशम्। आसे स्थिरमना स्थेयांश्चिन्तयन्स्वगुरोर्गुणान् ॥
दृष्ट्वेमं स्नेहसंयुक्तं चित्तं बोभूयते मम। गुरुवद्गणनातीतगुणस्य स्वगुरोः स्मरन् ॥२३०
गुरुवत्पदविन्यासस्थानस्य सेवनं यके। कुर्वते ते लभन्तेऽत्र सुखसंदोहमुल्बणम् ॥२३१

और विद्वच्छ्रेष्ठ हैं। नगरके रंगका उपभोग लेनेवाले, उत्तम वचन बोलनेवाले मेरे गुरु कहां ? और दयारहित, प्राणिसमूहका घात करनेवाला, हमेशा क्रूर प्राणिओंसे लडनेवाला यह भील कहां ? द्रोणाचार्य तो नगरमें रहते हैं और यह भिल्ल वनमें रहनेवाला है; जैसे पूर्वसमुद्र और पश्चिम-समुद्रमें क्रमशः पडे हुए कील और हलका संयोग होना शक्य नहीं है वैसेही इन दोनोंका संबंध होना असंभव है॥ २१८-२२२ ॥ इस प्रकारसे विचार कर पाण्डुनन्दनने-अर्जुनने ऐसा भाषण किया-वह सभ्य और सुगुणोंसे श्रेष्ठ गुरु तुमने कहां देखा ? सर्व दिशाओंको जल्दी बधिर करते हुए भीलने कहा कि हे महापुरुष, जिसकी आकृति सुंदर है ऐसे स्तूपपर मैंने गुणवान् गुरुको देखा। ऐसा कह कर उसे श्रेष्ठभीलने गुरुका माहात्म्य जिसने जाना है ऐसे अर्जुनको वह स्तूप दिखाया। यह स्तूप अतिशय पवित्र है क्यों कि गुरुने इसका आश्रय लिया है अर्थात् इस स्तूपमें मैंने गुरुका संकल्प किया है। अतः इसे मैं गुरु समझता हूं। इसके योगसे जैसा लोहधातु सुवर्ण बनता है वैसे गुरुके संपर्कसे यह स्तूप गुरु बना है। हे राजन्, इसे गुरु माननेसे मैं चतुर हुआ हूं। इस विशाल पवित्र और वायुसे वेष्टित स्तूपको मैं बार बार वंदन करता हूं। इसके प्रसादसे मैंने शब्दवेधी विद्या प्राप्त की है ऐसा समझकर मैं अपनी बुद्धिसे इसकी उपासना करता हूं। उस गुरुका हमेशा परोक्ष विनय करनेवाला और उसके गुणोंका चिन्तन करता हुआ मैं स्थिरचित्त होकर यहां रहता हूं। गणनारहित गुणोंके धारक ऐसे गुरुका स्मरण करनेवाला मेरा मन गुरुके समान इसे देख स्नेहयुक्त होता है। गुरुके पद जहां हैं ऐसा स्थान गुरुके समान समझकर जो मनुष्य उसका सेवन करता है वह इस जगतमें उत्तम सुखसमूह को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार उसका भाषण सुनकर शुद्ध

श्रुत्वेति तद्वचः पार्थस्तं शशंसेति शुद्धवाक्। सन्तो गुणान्न मुञ्चन्ति दूरीभूतेऽपि सज्जने॥
त्वं महान्महतां मान्यो गुरुभक्तिपरायणः। गुणाग्रणीरिति स्तुत्वा किरातं सोऽगमत्पुरम्॥
साश्चर्यहृदयो लब्ध्वा गुरुं द्रोणं व्यजिज्ञपत्। नत्वा स्थित्वा क्षणं तत्र सार्जुनोऽर्जुननामभाक्॥
भो गुरोऽद्य महारण्यं गतेन रिपुघातिना। किरातो वीक्षितः क्षिप्रं तत्र तूणीरसंगतः॥२३५
कुण्डलीकृतकोदण्डः सेषुधिं सशरासनम्। तं वीक्ष्य समुवाचाहं कस्त्वं किं वेत्स्यरण्यजः॥
स ब्रूते स्म किरातोऽहं द्रोणाचार्योपदेशतः। शब्दवेधित्वमापन्नो भ्रमंस्तिष्ठामि सद्वने॥२३७
इत्युक्तिं तस्य चाकर्ण्य द्रोणाहं गतवानिह। त्वदग्रे कथितुं सर्वमित्यवादीद्धनंजयः॥२३८
स्वामिन्स निष्ठुरो दुष्टो दुरात्मानिष्टचेष्टितः। निरपराधिनो जीवान्प्रहन्ति हतमानसः॥२३९
स्वामिंस्त्वदुपदेशेन मायावेषेण मायिकः। जीवराशिं हरन्पङ्कं किरातः कुरुते सदा॥२४०
द्रोणः पार्थवचः श्रुत्वा दधौ दुःखं स्वमानसे। वने वनचरोऽवार्यः कथं पाप्मेति चिन्तयन्॥
तद्वारणकृते द्रोणः सपार्थः पृथुमानसः। ततः स्थानाच्चचालाशु वनं गन्तुं समुद्यतः॥२४२
मायावेषधरो द्रोणः समियाय वनं क्षणात्। पश्यन्पथिकसंघातं शाबरं सशरासनम्॥२४३

वचनवाले अर्जुनने उसकी प्रशंसा की। योग्य ही है कि सज्जन परोक्ष–दूर होनेपरभी उसके गुणोंको नहीं छोडते हैं। हे भील, तू महापुरुष है और महापुरुषोंको मान्य है। तू गुरुभक्तिमें तत्पर है, गुणिओंका अग्रणी है ऐसी स्तुति कर वह अर्जुन अपने हास्तिनापुरको चला गया। आश्चर्ययुक्त हृदयसे धवलवर्णका अर्जुन क्षणतक ठहरकर गुरु द्रोणको नमस्कार कर विज्ञप्ति करने लगा॥ २२३–२३४ ॥ " हे गुरो शत्रुका घात करनेवाला मैं आज महारण्यमें गया था। वहां तरकसके साथ एक भील मेरे देखनेमें आया। उसने अपना धनुष्य कुंडलाकार किया था अर्थात् धनुष्य सज्ज किया था। बाण और धनुष्यसहित उसे देखकर मैंने अरण्यमें उत्पन्न हुआ तू कौन है? और तुझे किस विषयका ज्ञान है?" इसतरह पूछनेपर वह बोला कि " मैं किरात हूं द्रोणाचार्यके उपदेशसे मैंने शब्दवेधका ज्ञान प्राप्त किया है। मैं इस वनमें घूमता हुआ रहता हूं "। यह उसका भाषण सुनकर " मैं यह सर्व वृत्त कहनके लिये आपके पास आया हूं " ऐसा अर्जुनने कहा ॥ २३५–२३८॥ हे स्वामिन् वह भील दुष्ट है, निष्ठुर है। दुष्ट स्वभावका और अनिष्ट आचरण करनेवाला है। जिसका मन मर गया है अर्थात् जिसके हृदयमें दया नहीं है ऐसा वह कपटी भील मायावेष धारण कर आपके उपदेशसे निरपराधी प्राणियोंको मारता है। प्राणियोंको नष्ट कर हमेशा पाप कमाता है। द्रोणाचार्य अर्जुनका वचन सुनकर मनमें दुःखित हुए। वनमें फिरनेवाला पापी भील कैसा रोका जायगा इसका वे विचार करने लगे। उदार मनवाले द्रोणाचार्य उस भीलको रोकनेके लिये उद्युक्त होकर वेष बदलकर अर्जुनके साथ उस स्थानसे वनमें गये। मार्गमें धनुष्योंको धारण करनेवाले भील लोगोंको देखते हुए अर्जुनके गुरुने जाते हुए भीलको देखा। वह अपने गुरुको अर्थात् द्रोणाचार्यको नहीं

ईक्षाञ्चक्रे चरन्तं तं किरातं पार्थसद्गुरुः। नमन्तं तं गुरुं शान्तमजानन्तं निजं गुरुम् ॥२४४
तावता गुरुणा पृष्टः शबरश्चरणाश्रितः। निविष्ट इति कस्त्वं हि को गुरुर्भवतः सतः ॥२४५
सोऽवोचद्वरवाक्येन प्रीणयन्सार्जुनं गुरुम्। किरातोऽहं कलाकीर्णो द्रोणो मेऽस्ति गुरुर्महान् ॥
यस्य प्रसादतो लब्धा विद्या सर्वार्थसाधनी। मया पश्याम्यहं तं चेद्भजे तस्य सुशिष्यताम् ॥
परोक्षोऽपि मया द्रोणः प्रत्यक्षीकृत्य भक्तितः। आराध्यते विशुद्धात्मा समृद्धिसिद्धिबुद्धिमान् ॥
श्रुत्वा द्रोणोऽगदीद्भिल्ल यदीदानीं च पश्यसि। साक्षाल्लक्षणसंपूर्णं तर्हि तं किं करिष्यसि ॥
समाचख्यौ किरातः स पश्यामि यदि सांप्रतम्। तत्तस्याहं करिष्यामि दासत्वं दासतो लघुः
परोपकारकरणे सामर्थ्यं मम नास्ति च। मादृशां शक्तिहीनानां पर्याप्तं गुरुसेवया ॥२५१
वीक्षितं तं विजानासि साभिज्ञानपरं गुरुम्। जानामीति वचः प्रोक्ते तेन द्रोण इदं जगौ ॥
सोऽहं गुरुस्तवास्मीति द्रोणनामा मनोहरः। सिद्धविद्यो विदां मान्यः सर्वलोकहितंकरः ॥
निशम्येति वचस्तस्य किरातश्चोत्सवाश्रितः। साभिज्ञानं गुरुं मत्वा जहर्ष हसिताननः ॥२५४
ततोऽष्टाङ्गं क्षितौ क्षिप्रं मिलन्मूर्ध्ना ननाम सः। गुरुमिष्टे चिरं लब्धे यत्नवान्न हि को भवेत् ॥
विनयी विनयोद्युक्तो विनयं विततान सः। को हि लब्धे गुरौ धीमान्विनयाद्रहितो भवेत् ॥

जानता था। उसने शान्त ऐसे गुरुको नमस्कार किया ॥ २३९–२४४ ॥ चरणका आश्रय लेनेवाले भीलको गुरुने पूछा, कि हे भील, तू कौन है ? और तेरा गुरु कौन है ? तब अर्जुनसहित आये हुए गुरुको उत्तम भाषणसे सन्तुष्ट करता हुआ भील बोलने लगा। मैं भील हूं अनेक कलाओंसे पूर्ण द्रोणाचार्य मेरे गुरु हैं। उनके प्रसादसे मैंने सर्व इष्ट वस्तुओंको देनेवाली विद्या प्राप्त की है। यदि वे गुरु मुझे देखनेको मिलेंगे तो मैं उनका शिष्य होऊंगा। यद्यपि द्रोणाचार्य मुझे परोक्ष हैं तोभी उस निर्मल आत्माको मैं भक्तिसे प्रत्यक्ष करके उसकी आराधना करता हूं। वे मेरे गुरु समृद्धिशाली, कार्यसिद्धि करनेवाले और बुद्धिमान हैं. ॥ २४५–२४८ ॥ इसके अनंतर द्रोणाचार्य उसे कहने लगे, हे भील तू सर्वलक्षण–सम्पूर्ण गुरुको यदि देखेगा तो तू उसे क्या करेगा? भिल्लने कहा यदि मैं उनको इस समय देख लूंगा तो मैं उनका दास हो जाऊंगा। मैं उनके दाससे भी छोटा हूं। परोपकार करनेमें मुझे सामर्थ्य नहीं है। शक्तिहीन जो मुझ सरीखे पुरुष हैं उनको गुरुसेवाही पर्याप्त है। यदि वे गुरु तुझे दीख पडेंगे तो क्या कुछ चिह्नोंसे युक्त उनको तू जान सकेगा? मैं उनको जानूंगा, ऐसा कहनेपर द्रोणने इस प्रकार कहा—हे भील, जिसको सर्व विद्याओंकी सिद्धि हुई है, जो विद्वानोंको मान्य है, सर्व लोगोंका हित करनेवाला और मनोहर है वह द्रोणगुरु मैं हूं ऐसा कहनेपर किरातको बडा आनंद हुआ। उपर्युक्त चिन्होंसे युक्त गुरुको समझकर हसितमुख भील हर्षित हुआ। तदनंतर पृथ्वीपर अपना मस्तक नम्र करके भीलने गुरुको अष्टाङ्ग नमस्कार किया। अपना प्रिय गुरु बहुत दिनसे प्राप्त होनेपर कौन बुद्धिमान् यत्नवान् नहीं होगा। विनय

द्रोणः स्पष्टं समाचष्टे कुशली कुशलं तव। विद्यते सोऽब्रवीन्नाथ त्वत्प्रसादात्कुशल्यहम् ॥
शबरं गुरुसंगेन समग्रप्रीतिमानसम्। स बभाण वचो वाग्मी प्रमाणपथपारगः ॥२५८
भो किरात सुकान्तारवासिन् विघ्नौघघातक। मत्सेवासंविधानज्ञ मदाज्ञाप्रतिपालक ॥२५९
त्वत्सदृक्षो मया दृष्टो भुजिष्यो न हि भूतले। वल्लभश्च समालोक्यो लोकलोकनतत्पर॥२६०
किंचिद्याचयितुं त्वां च समीहेऽहं हितावह। यदि दास्यसि याचे तद्याञ्चाभङ्गो हि दुःखदः॥
सोऽभाणीद्भयतो भिल्लः कम्प्रः संक्षुब्धमानसः। स्वामिन्निदं किमुक्तं ह्यहं त्वदाज्ञाप्रपालकः॥
मादृशां शक्तिमुक्तानां संपत्त्यंशासहात्मनाम्। तत्किमस्ति च यद्देयं न स्याल्लोके भवादृशाम् ॥
शृणु सेवक स प्राह तद्देयं विद्यते तव। दित्सा चेद्देहि मे हस्ते वचो वृणोमि यद्वरम् ॥२६४
दित्सामीति च भिल्लेन समुक्ते सोऽब्रवीद्गुरुः। देहि दक्षिणसद्धस्ताङ्गुष्ठं संछेद्य मूलतः॥२६५
श्रुत्वा स गुरुसद्भक्त्या गुर्वाज्ञाप्रतिपालकः। तथेति प्रतिपन्नोऽभूत्तद्गुणग्रामरञ्जितः ॥२६६
विच्छिद्य दक्षिणाङ्गुष्ठं भिल्लस्तस्मै समार्पयत्। अङ्गुष्ठस्य च का वार्ता दत्ते भक्तः स्वजीवितम् ॥

करनेमें उद्युक्त वह विनयवान् भील उनका विनय करने लगा। गुरु प्राप्त होनेपर कौन बुद्धिमान विनय रहित होगा। कुशलयुक्त द्रोणने "हे भील, तेरा कुशल है न ? ऐसा स्पष्ट पूछा। शिष्यनेभी हे नाथ आपके प्रसादसे मैं सकुशल हूं" ऐसा उत्तर दिया। वह भील गुरुके समागमसे अतिशय हर्षितचित्त हुआ। प्रमाणमार्गके अन्तको पहुंचनेवाले युक्तियुक्त वचन बोलनेवाले द्रोणाचार्य बोले-जंगलमें रहने वाला, विघ्नोंका नाशक,मेरी आज्ञाका पालक, सेवाके उपाय जाननेवाला,तुझसा शिष्य इस भूतलपर मैंने नहीं देखा। तू मुझे प्रिय है; तू बारबार आकर हमसे देखने लायक है और लोगोंको देखनेमें तू तत्पर रहता है ॥ २४९-२६० ॥ हे हितकार्य करनेवाले भील, मैं तुझसे कुछ याचना करना चाहता हूं। यदि तू देगा तो मैं याचना करूंगा क्यों कि याचनाका भङ्ग होनेसे याचना करनेवालेको दुःख होता है ॥ २६१ ॥ जिसका मन क्षुब्ध हुआ है ऐसा वह भील कांपता हुआ कहने लगा, कि हे स्वामिन्, आप यह क्या कह रहे हैं ! मैं आपकी आज्ञाका अवश्य पालन करूंगा। मैं संपत्तिका अंश भी सहन नहीं करता हूं अर्थात् मैं दरिद्री हूं, संपत्ति देनेमें मुझ सरीखे आदमी असमर्थ होते हैं। हे गुरु, आप सरीखे पूज्य पुरुषोंको जगतमें ऐसी कोनसी वस्तु है जो देने लायक नहीं है। अर्थात् पूज्योंको अदेय वस्तुही नहीं है। अपने प्राणभी पूज्योंके लिये देना चाहिये। जो वर मैं मांगता हूं उसका वचन यदि तुझे देनेकी इच्छा है तो दे। मेरी देने की इच्छा है ऐसा भील ने कहा, तब गुरुने कहा, कि दाहिने उत्तम हाथका अंगुठा मूलसे तोडकर मुझे दे ॥२६२-२६५॥ गुरु-विषयक उत्तमभक्तिसे उनका वचन सुनकर उनके गुणसमूहसे अनुरक्त होकर उसने अंगुठा देने-का स्वीकार किया। उस भीलने दक्षिण अंगुठा तोडकर द्रोणाचार्यको दिया। जो भक्त हैं उसने अंगुठा दिया तो क्या वह बडी बात है वह तो स्वजीवितभी अर्पण करता है। जिसका अंगुठा

छिन्नाङ्गुष्ठो न ना यस्माद्ग्रहीष्यति शरासनम्। जीवघातकरं पापमतो न भविता ध्रुवम् ॥२६८
पापिने न हि दातव्या विद्या शब्दार्थवेधिनी। विमृश्येति स पार्थाय समग्रां तां समार्पयत् ॥
ततः पार्थेन स द्रोणः संप्राप्य स्वपुरं परम्। विश्रान्तः सातमाभेजे भुञ्जन्भोगान्सुभावजान् ॥
पाण्डवाः कौरवा वक्त्रमिष्टाश्चान्तर्विरोधिनः। नयन्ति सुखतः कालं तत्र कौटिल्यधारिणः ॥

भीमो हेमनिभः सुविघ्नहरणो दत्तं विषं चामृतम्
जातं जातमनेकधा च भुजगा गण्डूपदाश्चाभवन्।
जातं यस्य पयः प्रमाणरहितं वै जानुदघ्नं महत्
पुण्यस्यैव विजृम्भितेन भविनां किं किं न संपद्यते ॥२७२
पार्थः स प्रथमानकीर्तिरतुलो व्यर्थीकृतानर्थकः
सार्थः शुद्धमनोरथः शुभपथः स्वार्थे परार्थेऽपि च।
एकार्थेन समर्थतामित इहाभाति प्रसिद्धार्थदृक्
मुख्यत्वेन सुधन्विनां गतरिपुर्यो धर्मतो धर्मधीः ॥२७३

इति श्रीपाण्डवपुराणे महाभारतनाम्नि भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपालसाहाय्य-सापेक्षे भीमविघ्नविनाशार्जुनशब्दवेधविद्याप्राप्तिवर्णनं नाम दशमं पर्व ॥१०॥

टूट गया है वह पुरुष धनुष्य धारण नहीं कर सकता और उससे जीवहत्या करनेका पाप निश्चयसे न होगा। पापी पुरुषको शब्दार्थवेधिनी विद्या नहीं देना चाहिये ऐसा विचार कर द्रोणाचार्यने अर्जुनको वह संपूर्ण विद्या अर्पण की। तदनंतर अर्जुनके साथ वे द्रोणाचार्य अपने उत्तम पुरको जाकर विश्रान्त होकर शुभ वस्तुओंसे प्राप्त हुए भोगोंको भोगते हुए सुखको प्राप्त हुए ॥२६६-२७०॥ पाण्डव और कौरव मुखसे एक दूसरेके साथ मधुर बोलते थे परंतु मनमें वे एक दूसरेका विरोध करते थे। कपट धारण करनेवाले वे उस हस्तिनापुरमें सुखसे काल व्यतीत करने लगे ॥ २७१ ॥ भीम सुवर्णवर्ण का था। वह लोगोंके विघ्न दूर करता था। कौरवोंने अन्नमें विष मिश्रित करके उसे खानेको दिया था, तो भी उसका अमृतमें परिणमन हुआ। कईबार ऐसा ही विषका परिणमन अमृतमें हुआ। सर्पभी केंचुवेसे हुए। गंगानदीका अगाध विशाल पानी उसके घुटनोंतक हुआ। पुण्यके प्रबल उदयसे संसारी प्राणियोंको क्या क्या प्राप्त नहीं होता है। अर्थात् सब इष्ट भोगोपभोग मिलते हैं और अनिष्टोंका नाश होता है ॥२७२॥ वह अर्जुन अनुपम और जिसकी कीर्ति बढ रही है ऐसा है। सब अनर्थोंको व्यर्थ करनेवाला, भोग्यपदार्थोंसे युक्त, शुद्ध मनोरथोंका धारक, स्वार्थ और परार्थमेंभी शुभमार्गसे चलनेवाला, एकही अभिप्रायसे चलनेमें समर्थ, प्रमाणप्रसिद्ध जीवादि पदार्थोंपर श्रद्धान करनेवाला, जो मुख्यतया धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ हैं जिसने सब

। एकादशं पर्व ।

पद्मप्रभं सुपद्माभं पद्माङ्कं प्रणमाम्यहम्। पद्मसंचारिचरणं पद्मालिङ्गितवक्षसम् ॥१
अथाप्राक्षीद्गणाधीशमिति मागधनायकः। तदानीं यादवेशानां का भूतिः क्व स्थितिर्वद ॥२
तदाकर्ण्य गणाधीशोऽवादीद्गम्भीरया गिरा। शृणु श्रेणिक वक्ष्यामि यदूनां चरितं वरम् ॥३
प्रबुद्धोऽन्धकवृष्णिस्तु दत्त्वा राज्यं स्वसूनवे। समुद्रविजयाख्याय प्राव्राजीद्गुरुसंनिधौ ॥४
समुद्रविजयो यावत्पाति राज्यं जयोद्धरः। वसुदेवस्तदा क्रीडां कर्तुकामोऽभवन्मुदा ॥५
गन्धवारणमारुह्य चलच्चामरवीजितः। वदद्वाद्यः स्वसैन्येन स रन्तुं याति कानने ॥६
नानाभरणभाभारभूषितोदारविग्रहाः। निर्विशन्तं विशन्तं च कामिन्यो वीक्ष्य व्याकुलाः ॥७

शत्रुओंको नष्ट किया है, जो पुण्यसे धर्मबुद्धिका धारक है ऐसा अर्जुन पुण्यसे शोभता है ॥२७३॥

ब्रह्मचारी श्रीपालजीने जिसमें साहाय्य किया है ऐसे भट्टारक शुभचन्द्रविरचित भारत-
नामक पाण्डवपुराणमें भीमके विघ्नोंका विनाश, अर्जुनको शब्दवेधिविद्याकी
प्राप्ति इन विषयोंका वर्णन करनेवाला दसवां पर्व समाप्त हुआ।

[पर्व ११ वा]

जिनका पद्म–कमल लांछन है, जिनके देहका वर्ण उत्तम पद्मके समान है, सुवर्णपद्मोंके ऊपर जिनके चरण संचार करते हैं, जिनका वक्षःस्थल पद्मासे–लक्ष्मीसे आलिङ्गित है, ऐसे पद्मप्रभ जिनेश्वरको मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

मगध देशके राजा श्रीश्रेणिकने गणाधीश गौतम मुनीश्वरको उस समय यादववंशके राजाओंकी कैसी विभूति थी और वे कहाँ रहते थे ऐसा प्रश्न पूछा तब वह सुनकर गणेशने गंभीर वाणीसे हे श्रेणिक, मैं यादवोंका उत्तम चरित्र कहता हूं तू सुन ऐसा कहा ॥ २–३ ॥ अन्धकवृष्णिने संसारसे विरक्त होकर अर्थात् वैभवादिक क्षणनश्वर हैं ऐसा समझकर अपने ज्येष्ठ पुत्र समुद्रविजयको राज्य दिया और गुरुके समीप जाकर मुनिदीक्षा धारण की। जिस समय जयोत्साही समुद्रविजय राज्य–पालन कर रहे थे उस समय वसुदेवकुमार उनका सबसे छोटा भाई होनेसे आनंदसे क्रीडा करनेमें अपने दिन बिताता था। चंचल चामर उसके ऊपर ढुरते थे, उसके आगे वाद्य बजते थे, वह उन्मत्त हाथीपर चढकर अपने सैन्यके साथ उपवनमें क्रीडाके लिये जाता था। उस समय अनेक अलंकारोंके कान्तिसमूहसे भूषित, सुंदर शरीरवाली नगरकी – शौरिपुरकी स्त्रियां क्रीडाका अनुभव करनेवाले और नगरमें प्रवेश करनेवाले वसुदेवको देखकर व्याकुल हो जाती थीं। अर्थात् जब वसु-देव क्रीडा करनेके लिये नगरसे उपवनमें जाते थे और वहांसे फिर नगरमें आते थे तब सर्व तरुण स्त्रियाँ उनका सौन्दर्य देखकर मोहित हो जाती थीं ॥ ४–७ ॥ व्याकुल होकर वे पतिको भोजन

गृहकार्यं परित्यज्य ता भर्तृभोजनादिकम्। स्तन्यदानं शिशूनां च यान्ति तं द्रष्टुमाकुलाः॥
इति लोकाः समावीक्ष्य सर्वं भूपं न्यवेदयन्। नृपोऽप्येतत्समाकर्ण्य तद्रक्षामकरोत्कृती॥९
यथेष्टं निःकुटे क्रीडां कर्तुं संस्थाप्य भूपतिः। कुमारं बहिरुद्याने गच्छन्तं च न्यवारयत्॥१०
क्रीडन्तं निःकुटे तं च समाख्यात्क्षुब्धमानसः। दासो निपुणमत्याख्यो बहिर्याननिषेधनम्॥
श्रुत्वावादीत्स केनाहं निषिद्ध इति चेटकम्। सोऽवोचत्तव निर्याणकाले त्वद्रूपवीक्षणात्॥१२
योषाः शिथिलचारित्राः कामेन कवलीकृताः। तत्र लज्जाविमुक्ताङ्गा विपरीतविचेष्टिताः॥१३
पीतासवसमाः कन्याः सधवा विधवाश्च ताः। लोकैर्वीक्ष्येति विज्ञप्तो भूपालः स तथाकरोत्॥
कुमारो बन्धनं ज्ञात्वा स्वस्य तद्वाक्यतो निशि। निर्ययौ नगरात्साश्वः सुविद्यासाधनच्छलात्॥
स एकाकी श्मशानेऽथ शवं संभूष्य भूषणैः। प्रज्वाल्य वह्निना तं चालक्ष्योऽगाद्रूपसागरः॥
क्रामन् क्रमेण स क्षोणीं क्रमाभ्यां विजयं पुरम्। प्राप्य मूले स मंतस्थे श्रान्तोऽशोकतरोः परे॥
निमित्तसूचितं मत्वा वनेट् तं मगधाधिपम्। अबूबुधन्नृपस्तस्मै सोमलाख्यां सुतां ददौ॥१८

परोसना, बालकको स्तनपान कराना इत्यादिक गृहकार्य छोडकर वसुदेवको देखनेके लिये जाती थीं। स्त्रियोंकी ऐसी उच्छृंखल परिस्थिति देखकर लोग-प्रजाके मुखिया पुरुष समुद्रविजय राजाके पास जाकर सर्व बातें कहने लगे। उनकी बातें सुनकर विद्वान् राजानेभी उनका रक्षण किया अर्थात् योग्य व्यवस्था की॥ ८-९॥ राजाने अपने घरके बगीचेमें वसुदेवको यथेष्ट क्रीडा करनेके लिये रख लिया और बाहरके बगीचेमें जानेसे उसे रोका। घरके बगीचेमें क्रीडा करनेवाले वसुदेव-को निपुणमति नामक एक क्षुब्धचित्त नौकरने आपको बाहर जानेका निषेध है ऐसा कह दिया। तब नौकरको वसुदेवने पूछा कि मुझे बाहर जानेका निषेध किसने किया है? नौकरने कहा कि, कुमार जब आप क्रीडा करनेके लिये निकलते हैं, उस समय आपके रूपावलोकनसे शिथिल चारित्रवाली स्त्रियाँ कामसे ग्रस्त होती हैं। वे लज्जाको छोडकर विपरीत चेष्टा करती हैं। कन्या, सधवा और विधवा स्त्रियाँ मानो मदिरापान किये जैसी हो जाती हैं। लोगोंने स्त्रियोंकी ऐसी अवस्था देखकर श्रीसमुद्रविजय महाराजको निवेदन किया, जिससे उन्होंने आपको बाहर जानेका निषेध किया है॥१०-१४॥ दासके भाषणसे अपनेको बंधनमें रखा जानकर रातमें विद्यासाधनके निमित्तसे कुमार एक घोडा साथ लेकर नगरसे बाहर चला गया। श्मशानमें एक प्रेतको अलंकारोंसे भूषित करके तथा उसको अग्निके द्वारा जलाकर वह सौन्दर्यसमुद्र कुमार अकेलाही अज्ञातरूपसे वहांसे चला गया॥ १५-१६॥ वह वसुदेवकुमार पादचारी होकर अर्थात् क्रमसे पृथ्वीपर पावोंसे चलता हुवा विजयपुरको प्राप्त होकर थक गया और उत्तम अशोकवृक्षके मूलमें बैठ गया। निमित्तोंके द्वारा सूचित हुए उस कुमारको मालाकारने जान लिया और मगधाधिपति-मगधदेशके राजाको कुमारकी वार्ता उसने निवेदन की, तब राजाने अपनी सोमला नामक कन्याके साथ कुमारका विवाह किया

विश्रम्य कानिचित्तत्र दिनानि गतवांस्ततः। पुष्परम्ये वने तत्र विमदीकृत्य वारणम् ॥१९
चिक्रीड स तमालोक्य क्रीडन्तं गजतः खगः। जहार विजयार्धाद्रौ नीतः स तेन तत्क्षणे॥
तत्र किंनरगीताख्ये पुरे चाशनिवेगतः। जातां पवनवेगायां सुतां स परिणीतवान् ॥२१
दिनानि कति चित्तत्र स्मरस्मारणतत्परः। तया स्थितं जहाराशु तं खगोऽङ्गारकः खलः॥२२
दत्तान्तशाल्मलिर्ज्ञात्वा हृतं तमसिपाणिका। अन्वियाय खगं वीक्ष्य सा तस्मादमुचद्यदुम् ॥
विद्यया पर्णलघ्व्यासौ तया प्रहितया धृतः। चम्पापुरीसरोमध्ये पपात जिनमानसः॥२४
ततो निर्गत्य चम्पायां गतो गन्धर्वविद्यया। प्रसिद्धां श्रुतवान्कर्णे कन्यां गन्धर्वदत्तिकाम् ॥
प्राप्य गन्धर्वदत्तायाः स्वयंवरसुमण्डपम्। तत्र स्थितवतीं कन्यां कुमारो वीक्ष्य चागदीत् ॥२६
देहि वीणां च निर्दोषां सुतन्त्रीकां सुमानजाम्। यतस्ते वाञ्छितं वाद्यं वादयामि सुपण्डिते॥
तया तिस्रश्चतस्रश्च दत्ता वीणाः स निन्दयन्। प्राप्य घोषवतीं वीणां निर्दोषां वीक्ष्य संजगौ॥
संताड्य तां सुमानेन गेयं तद्वाञ्छितं जगौ। जित्वा तां चारुदत्तेन दत्तां सोऽप्यवृणोत्तदा॥

॥ १७-१८ ॥ कुमारने वहां कुछ दिन विश्राम लिया। तदनंतर वहांसे निकलकर पुष्परम्य नामक वनमें गया, वहां उसने उन्मत्त हाथीको मदरहित कर वश किया। उसके साथ उसने क्रीडा की और उसके ऊपर बैठ गया तब किसी विद्याधरने आकर उसे उठा लिया और विजयार्द्ध पर्वतपर तत्काल ले गया ॥ १९-२० ॥ किंनरगीत नगरमें अशनिवेग नामक विद्याधर राजा राज्य करता था, उसके रानीका नाम पवनवेगा था। उन दोनोंको श्यामा नामक कन्या थी उसके साथ उसका विवाह हो गया। कामसुखको भोगनेमें तत्पर कुमार उसके साथ कुछ दिन रहा। अङ्गारक नामक दुष्ट विद्याधरने उसके साथ बैठे हुए कुमारका हरण किया। शाल्मलिदत्ता कुमारको हरण किया हुआ जानकर हाथमें तरवार लेकर विद्याधरके पीछे दौडी उसको देखकर उससे उसने कुमारको छुडाया। भेजी गई पर्णलध्वी विद्याके द्वारा धारण किया हुआ, जिनेश्वरको मनमें स्मरण करनेवाला वह वसुदेव चम्पापुरीके सरोवरके बीचमें पडा। उससे निकलकर वह चम्पापुरीमें गया। गंधर्वविद्यासे प्रसिद्ध हुई गंधर्वदत्ता नामक कन्याकी वार्ता उसके कानमें पडी तब वह गंधर्वदत्ताके स्वयंवर मंडपमें गया। उसमें खडी हुई कन्याको कुमारने देखकर कहा कि-हे कन्ये निर्दोष, उत्तम तन्तुओं-से बनी हुई और सुप्रमाणयुक्त वीणा मुझे दे जिससे हे सुपण्डिते, मैं तुझे जो रुचता है वह बजा कर सुनाऊंगा ॥ २१-२७ ॥ उसने-कन्याने तीनचार वीणायें वसुदेवको दी परंतु उसने उनमें दोष दिखाकर उनकी निन्दा की तब घोषवती नामक निर्दोष वीणा उसने दी। उसे लेकर यह वीणा निर्दोष है ऐसा उसने कहा। उसको बजाकर उसने उस कन्याको जो प्रिय था ऐसा गाना गाया। इस प्रकारसे कुमारने गंधर्वदत्ताको जीता, चारुदत्तने कुमारको वह दी और उसनेभी उसको वर लिया ॥ २८-२९ ॥ इस प्रकार विद्याधर पर्वतपर-विजयार्धपर्वतपर विद्याधरोंकी सातसौ

एवं खगाचले सप्त शतानि सुखगेशिनाम्। कन्याः प्राप स पुण्येन पुण्यात्किं दुर्लभं भुवि॥
ततो निवृत्य भूभागेऽरिष्टनाम्नि पुरे प्रभोः। हिरण्यवर्मणः पुत्री पद्मावत्यां च रोहिणी॥३१
रोहिणीवाभवत्तस्याः स्वयंवरकृते नृपान्। समाहूतान्विमुच्यासौ गतं तत्रावृणोच्च ताम् ॥३२
सोत्कण्ठिताऽकरोत्कण्ठे मालां तस्य विकुण्ठहृत्। तथा वीक्ष्य स भूपालाः क्षोभं भ्रान्ताश्च लेभिरे॥
समुद्रा इव संहारे समुद्रविजयादयः। तदा विभिन्नमर्यादा आहर्तुं तं समुद्ययुः ॥३४
योद्धुं हिरण्यवर्मापि वसुदेवः समुद्ययौ। सोऽपि स्वनामसंयुक्तं बाणं भ्रातरमक्षिपत्॥३५
समुद्रविजयो लब्ध्वा शरमक्षरसंयुतम्। वाचयित्वा कुमारं तं निश्चिकायानुजानुजम् ॥३६
संगरं वारयित्वा स कनीयांसं सहानुजैः। आश्लिष्य परमां प्रीतिं समुद्रविजयोऽगमत् ॥३७
दशार्हास्तद्विवाहस्योत्सवं चक्रुर्मुदावहाः। ततस्तौ प्रौढरङ्गेण दम्पती निन्यतुः सुखम् ॥३८
सुस्वप्नसूचितं देवी रोहिणी च कदाचन। शुक्रस्वर्गाच्च्युतं दध्रे सुरं गर्भे समुन्नतम् ॥३९
ततः क्रमेण नवमे मासे सासूत सत्सुतम्। बलभद्राभिधं रम्यं बलानां नवमं मतम् ॥४०
ततः सौरीपुरं प्राप्ता यादवाः सकलाः शुभाः। वसुदेवयुतास्तत्र सुखं तस्थुः स्थिराशयाः॥४१

कन्यायें उसने पुण्योदयसे प्राप्त कीं। योग्यही है, कि पुण्योदयसे पृथ्वीतलपर कौनसी वस्तु दुर्लभ है ?॥ ३० ॥ तदनन्तर इस भूतलपर अरिष्टनामक नगरमें हिरण्यवर्म राजाको पद्मावती नामक रानीमें रोहिणी नामक कन्या हुई। वह रोहिणी-चन्द्रपत्नी के समान सुंदर थी। उसके स्वयंवरके लिये अनेक राजा आये थे। उन सबको छोडकर रोहिणीने वहां आये हुए वसुदेवको वर लिया। जिसका हृदय चतुर है ऐसी रोहिणीने उत्कंठित होकर उसके गलेमें माला डाल दी। यह दृश्य देखकर भ्रान्त हुए सब राजा क्षोभको प्राप्त हुए। जैसे प्रलयकालमें समुद्र क्षोभको प्राप्त होते हैं वैसे समुद्रविजयादिक राजा मर्यादाको तोडकर उसको-रोहिणीको हरण करनेके लिये उद्युक्त हुए। वसुदेवने अपने नामका बाण अपने भाईके पास-समुद्रविजयके पास भेजा। अक्षरोंसे युक्त बाण को हाथमें लेकर समुद्रविजय पढने लगा और उस कुमारको अपने छोटे भाईयोंका छोटा भाई है ऐसा निश्चय किया अर्थात् यह कुमार अपने भाईयोंमें सबसे छोटा भाई है ऐसा जान लिया। तब युद्धको बंद करवाकर अपने भाईयोंके साथ छोटे भाईको उसने गाढ आलिङ्गन दिया और समुद्र-विजय अत्यन्त प्रीतियुक्त हुआ। दशार्होंने आनंदित होकर उसके विवाहका उत्सव किया। तद-नन्तर वे दम्पती प्रौढ शृङ्गाररससे सुख भोगने लगे ॥ ३१-३८ ॥ किसी समय रोहिणीदेवीने सुस्वप्नोंसे सूचित किया गया, शुक्र स्वर्गसे च्युत हुआ, ऐसे महर्द्धिक देवके जीवको अपने गर्भमें धारण किया। तदनन्तर क्रमसे नौवे महिनेमें बलभद्र नामक उत्तम पुत्रको जन्म दिया। यह पुत्र नौ बलरामोंमें अन्तिम था अर्थात् नौवा बलभद्र था। इसके अनंतर सर्व शुभवृत्तिके तथा दृढ विचारके यादव वसुदेवके साथ शौरीपुरको प्राप्त हुए और वे वहां सुखसे रहने लगे ॥३९-४१॥ किसी समय

कदाचिदथ कंसेन जरासंधदिदृक्षया। राजगृहे ययौ योद्धा वसुदेवो विदांवरः ॥४२
जरासंधस्तदा भूपानित्थाज्ञापयति स्म च। सुरम्यविषयान्तःस्थपोदनाख्यपुरेश्वरम् ॥४३
शत्रुं सिंहरथं जित्वा बद्ध्वानीय ममाग्रतः। यो मुञ्चति सुतां तस्मै नाम्ना जीवद्यशोऽभिधाम्॥
जातां कालिन्दसेनायां सार्धं दास्यामि नीवृता। इति वीक्ष्य नृपाः पत्रमालिकां च व्यरंसिषुः॥
वसुदेवकुमारस्तां गृहीत्वा निर्गतो बलैः। विद्यासिंहरथेनाशु जित्वा सिंहरथं पृथुम् ॥४६
कंसेन बन्धयित्वा तमर्पयामास भूपतिः। सोऽपि तस्मै सुतां दातुमीहते स्म सुनीवृता ॥४७
स दुष्टलक्षणां ज्ञात्वा तां जरासंधमब्रवीत्। अनेनैव रिपुर्बद्धः श्रुत्वेति स व्यतर्कयत् ॥४८
कोऽयं किमाभिधानोऽस्य कुलं किमिति भूभुजा। पृष्टे च सोऽवदन्नाथाहं च मन्दोदरीसुतः॥
मन्दोदरी समाहूता तदा तेन महीभुजा। सा मञ्जूषां समादायागता मुक्त्वेति तां जगौ॥
वहन्तीं देव कालिन्द्यां मञ्जूषां प्राप्य तत्र च। दृष्टोऽयं वर्धितः कंसनाम्ना मातेयमस्य वै॥
मञ्जूषान्तस्थपत्रं स गृहीत्वावाचयत्तराम्। इत्युग्रसेनभूपस्य पद्मावत्याः सुतोऽप्ययम्॥५२

जरासंधराजाको देखनेके लिये योद्धा और विद्वच्छ्रेष्ठ ऐसे वसुदेव कंसके साथ राजगृहको चले गये। उस समय जरासन्धने राजाओंको इसप्रकार आज्ञा की थी "सुरम्य देशके मध्यमें पौदन नामके नगरका स्वामी सिंहरथ मेरा शत्रु है उसे जीतकर और बांधकर जो राजा मेरे पास लावेगा उसको मैं मेरी 'जीवद्यशा' नामकी कन्या जो मेरी पट्टरानी कलिंदसेनामें उत्पन्न हुई है उसे मैं देशके साथ अर्पण करूंगा" इस प्रकारके पत्र देखकर वे राजा चुप बैठे अर्थात् सिंहरथको जीतकर जरासंधके पास ले जाना बडा कठिन कार्य है ऐसा वे समझकर स्वस्थ बैठे रहे। परंतु वसुदेवकुमार उस पत्रमालिकाको ग्रहण कर सैन्यके साथ निकला। विद्यायुक्त सिंहरथसे महापराक्रमी सिंहरथ राजाको शीघ्र उसने जीत लिया। कंसके द्वारा उसको बंधवाकर राजाके लिये सौंप दिया। राजाने भी देशके साथ अपनी कन्या वसुदेवकुमारको देनेकी इच्छा व्यक्त की ॥ ४२-४७ ॥ परंतु जीवद्यशा कन्याके लक्षण अच्छे नहीं हैं ऐसा देखकर कंस सिंहरथको बांधकर आपके पास ले आया है ऐसा वसुदेवने राजाको कह दिया। यह बात सुनकर राजा मनमें इस प्रकारसे विचार करने लगा- यह कौन है, इसका नाम क्या है ? और इसका कुल क्या है-किस कुलमें यह जन्मा है ? ऐसे प्रश्न पूछनेपर कंसने कहा, कि हे नाथ, मैं मन्दोदरीका पुत्र हूं। तब उस राजाने मंदोदरीको बुलाया, वह अपने साथ पेटी लेकर आगई। राजाके आगे पेटी रखकर उसने कहा हे नाथ, कालिन्दी (यमुना) में यह पेटी बहते बहते आई, मुझे प्राप्त हुई, उस पेटीमें यह बालक मुझे मिला, मैंने उसको कंस नामसे बढाया। मैं इसकी माता नहीं हूं परंतु यह पेटी इसकी माता है। पेटीमेंसे राजाने पत्र लेकर बचवाया। "उग्रसेन राजा और रानी पद्मावतीका यह पुत्र है" ऐसा उससे समझकर राजाने हर्षित होकर अपनी कन्या उसे राज्यार्धके साथ दी। कंस आनंदित होकर पिताके साथ वैर होनेसे

**वितितार सुतां तस्मै राज्यार्धं स प्रहृष्टधीः। कंसोऽपि वैरतः सैन्यैर्मथुरां समियाय च ॥५३
बन्धयित्वा स कोपेन गोपुरे पितरौ न्यधात्। स्वपुरं वसुदेवोऽथ तेनानीतः स्वभक्तितः॥५४
अथो मृगावतीदेशे दशार्णनगरे नृपः। देवसेनः प्रिया तस्य धनदेवी धनप्रिया ॥५५
तयोः सुता शुभालापा देवकी कोकिलस्वना। दापिता वसुदेवाय कंसेन महदाग्रहात् ॥५६
ततः क्रमेण संभूता देवक्यां युगलात्मना। षट् सुताः सप्तमः कृष्णोऽजायताद्भुतविक्रमः॥५७
पिता रामेण संमन्त्र्य भयात्कंसस्य गोकुले। यशोदानन्दगोपाभ्यां तं वर्धनाय दत्तवान् ॥५८
कालेन पुण्यतस्तत्र वृद्धोऽसौ वृद्धबुद्धिमान्। चाणूरेण समं कंसं निगृह्य सुखमाश्रितः॥५९
रूप्याद्रौ रथचक्रादिनूपुरेऽथ पुरे पतिः। सुकेतुस्तत्प्रिया प्रीता स्वयंशोभा स्वयंप्रभा ॥६०
तयोः सुभामा सत्याभा सत्यभामा सुताजनि। या रूपेण शचीं नूनमधः कुरुत इत्यलम् ॥
तादृशीं तां समालोक्य भूपो नैमित्तिकं मुदा। निमित्तकुशलाख्यं चेत्यप्राक्षीत्कस्य वल्लभा॥
जनितेयं स आलोच्यावोचद्देवी भविष्यति। त्रिखण्डाधिपतेः श्रुत्वा दूतप्रेषणपूर्वकम् ॥६३**

सैन्यको लेकर मथुराके ऊपर चढकर आया। उसने कोपसे मातापिताको बांधकर गोपुरमें रख दिया। तदनन्तर उसने वसुदेवको भक्तिसे अपने यहां बुलाया ॥४८–५४॥ मृगावती देशमें दशार्ण नामक पुरमें देवसेन राजा राज्य करता था। उसकी प्रियपत्नी का नाम धनदेवी था। उसे धन बहुत प्रिय था। इन दोनोंको शुभ भाषण करनेवाली, कोकिलाके समान मधुरस्वरवाली देवकी नामक कन्या थी। कंसने अतिशय आग्रहसे वह वसुदेवको दिलवाई ॥५५–५६॥ तदनन्तर क्रमसे देवकीमें युगरूपसे छह पुत्र हुए और आश्चर्यकारक पराक्रमका धारक कृष्ण सातवा पुत्र हुआ। उसके पिताने–वसुदेवने कंसके भयसे बलरामके साथ विचार करके गोकुलमें यशोदा और नंदगोपके अधीन कृष्णको पालन करनेके लिये किया। बढी हुई बुद्धिको धारण करनेवाला कृष्ण पुण्योदयसे वहां बढ गया। कुछ काल व्यतीत होनेपर चाणूरमल्लके साथ कंसका कृष्णने निग्रह किया–नाश किया और सुखसे रहने लगा ॥ ५७–५९ ॥ विजयार्धपर्वतपर रथनूपुर नगरका राजा सुकेतु था उसकी पत्नीका नाम स्वयंप्रभा था, उसका शरीर स्वयं शोभायुक्त अर्थात् सुंदर था। इन दम्पतीसे सत्यभामा नामक कन्याने जन्म धारण किया। उसकी शरीरकी कान्ति उत्तम थी और सच्ची थी इस लिये उसे सुभामा, सत्यभामा ऐसे भी नाम थे। यह कन्या अपने रूपसे इन्द्राणीकोभी अतिशय धिक्कारती थी, उसको देखकर निमित्तकुशल नामक नैमित्तिकको आनन्दसे सुकेतु राजाने यह किसकी प्रियपत्नी होगी ऐसा प्रश्न पूछा। तब उसने विचारकर त्रिखण्डाधिपतिकी यह वल्लभा होगी ऐसा कहा। तब उसने दूतको भेज दिया, उसने सुकेतुराजा अपने पुत्रको–श्रीकृष्णको अपनी कन्या सत्यभामा देना चाहता है ऐसा कहा। समुद्रविजयादिकोंने सुकेतुका कहना मान्य किया। तब श्रीकृष्णको राजाने अपनी कन्या दी, और वह चिन्तारहित होकर सन्तुष्ट हुआ। कृष्णभी सत्यभामाको

वैकुण्ठाय सुकेतुस्तां दत्त्वा निर्वृतिमाप च। कृष्णोऽपि तां समालम्य भेजे भोगं भवोद्भवम् ॥
मथुरायामवस्थाप्योग्रसेनं नरनायकम्। सौरीपुरं गताः सर्वे यादवाः कृष्णसंयुताः ॥६५
अथ राजगृहाधीशः श्रुत्वा कंसस्य पञ्चताम्। जीवद्यशोमुखात्पूर्णं यादवेभ्यश्चुकोप सः ॥६६
आहवाय सुतान्सोऽपि प्रेषयामास यादवैः। युद्धे ते भङ्गतां नीता दैवपौरुषविक्रमैः ॥६७
प्राहिणोत्स सुतं ज्येष्ठमपराजितनामकम्। षट्चत्वारिंशदधिकं युद्धानां च शतत्रयम् ॥६८
विधाय यादवैः सार्धं सोऽपि भङ्गं गतः क्षणात्। पुनः संनह्य संप्रापद्यादवान्सोऽपि दुर्धरः ॥
आगच्छन्तं पुनस्तं ते श्रुत्वा कालबलार्थिनः। सौरीपुरं च मथुरां व्याजहुर्यादवाः क्षणात् ॥
आयान्तं तदनु क्रोधात्तं निवार्य च मायया। देवताः प्रेषयामासुर्यादवान्पश्चिमां दिशम् ॥७१
ततः कंसारिरात्मीयं विधातुं विधिवद्व्यधात्। स्थानमष्टोपवासं चोदधेः पार्श्वे महामनाः ॥
नैगमाख्योऽमरस्तत्र तदागत्य च माधवम्। अबीभणदिति स्पष्टं विशिष्टशुभनोदितः ॥७३
अश्वाकृतिधरं देवमारुह्य जलधौ तव। गच्छतः पत्तनप्राप्तिर्भविता भोगिमर्दन ॥७४
वाहारूढे च कंसारौ जलधौ सति धावति। द्विधाभावं गतोऽब्धिश्च यावन्नूतनवृद्धिभाक् ॥७५
सुनासीराज्ञया तत्र किन्नरेशः पुरीं व्यधात्। नेमीश्वरकृते चापि योजनद्वादशायताम् ॥७६

पाकर सांसारिक भोगका अनुभव लेने लगे। इसके अनंतर नरनायक उग्रसेन राजाको मथुरामें स्थापन कर सर्व यादव कृष्णके साथ शौरीपुरको चले गये ॥ ६०—६५ ॥ राजगृहाधीश जरासंधने कंसको यादवोंने मारा ऐसी वार्ता जीवद्यशाके मुखसे सुनी तब वह यादवोंके ऊपर तत्काल कुपित हुआ। उनके साथ लढनेके लिये जरासंधने अपने पुत्रोंको भेज दिया। यादवोंने दैव, पौरुष और पराक्रमके द्वारा उनका पराभव किया। तदनंतर उसने अपराजित नामक ज्येष्ठ पुत्रको यादवोंके ऊपर भेज दिया उसने उसके साथ ३४६ तीनसौ छियालीस युद्ध किये। परंतु वहभी तत्काल भंगको प्राप्त हुआ। युद्धकी तयारी कर वह फिर यादवोंके ऊपर चढकर आया। आते हुए उसे सुनकर योग्य काल और बलको चाहनेवाले यादवोंने तत्काल सौरीपुर और मथुराको अर्थात् वहांके प्रजाजनोंको अपने साथ चलनेको कहा ॥ ६६—७० ॥ क्रोधसे आनेवाले अपराजितको मायासे देवताओंने निवारण किया और यादवोंको पश्चिम दिशाको भेज दिया ॥ ७१ ॥ तदनंतर कंसारि महामना कृष्णने अपने लिये स्थानप्राप्तिके अर्थ विधिके अनुसार समुद्रके समीप बैठकर अष्टोपवास किये। कृष्णके विशिष्टपुण्यसे प्रेरित होकर नैगम नामक देव श्रीकृष्णके पास आगया और इस प्रकार स्पष्ट बोलने लगा ॥ ७२—७३ ॥ कालियसर्पका मर्दन करनेवाले हे कृष्ण, अश्वकी आकृति धारण करनेवाले देवपर चढकर समुद्रमें जाते हुए तुझे नगरकी प्राप्ती होगी। इसके अनंतर अश्वका आकार धारण करनेवाला देव आगया, उसके ऊपर कंसका शत्रु कृष्ण बैठकर जाने लगा, तब समुद्र जितना बढा हुआ था द्विधा हो गया। इंद्रकी आज्ञासे उस स्थानपर कुबेरने कृष्ण और नेमीश्वरके लिये नगरीकी

भास्वद्रत्नमयो यत्र शालस्तां परिवव्रके। तुङ्गतोरणसत्स्तम्भप्रतोलीपरिखान्वितः ॥७७
मध्येपुरं यदूनां च बान्धवानां नरेशिनाम्। समिभ्यानां च लोकानां गृहाणि विदधुः सुराः॥
क्वचित्सरः क्वचिद्वापी क्वचिच्छ्रीजिनमन्दिरम्। क्वचिज्जनाश्रयं तुङ्गं विदधे धनदो महान्॥
अब्धिखातिकया वेष्टया नानाद्वारावलीयुता। द्वारिकेति गता ख्यातिं पुरी लेखपुरीव या॥
तत्र यादवभूपालाः समुद्रविजयादयः। कंसारिणा समं सर्वे निवसन्ति स्म वेश्मसु ॥८१
अथ तत्र सुखासीनः समुद्रविजयो जयी। अजय्यो दस्युवर्गेण जितात्मा जितमत्सरः ॥८२
विशुद्धो धर्मधीर्धीरो विद्वान्विबुधवन्दितः। सधृतिर्धर्मकर्माढ्यो धराधीशः समृद्धिभाक् ॥८३
भेजे भोगान्सुभव्यात्मा भवहर्तुः सुभक्तिमान्। शुशुभेऽत्र भवान्भर्ता भुवो भ्राजिष्णुभूतलः॥
तज्जाया जगदानन्ददायिनी दानदायिका। शिवादेव्यभिधा दक्षा दधाना विशदां मतिम्॥
अनङ्गेन कृतावासा रतिवेगा रतिप्रदा। आसीद्या सुभगा भूषा धिषणाम्बुधिपारगा ॥८६
यस्याः स्वरेण संक्षुब्धाः कोकिलाः खलु भास्वराः। श्यामला वनमाभेजुर्निर्जितानामियं गतिः॥
यत्पादपद्ममालोक्य त्रपापद्मानि सज्जलैः। संगं गतानि पद्मानि लज्जया जडसंगमः ॥८८

रचना की। वह नगरी बारा योजन लंबी थी ॥ ७४–७६ ॥ समुद्रमें चमकनेवाले रत्नोंसे बना हुआ तट था, उसने द्वारिका नगरीको घेरा था। उस तटको ऊंचे तोरण थे, बडे गोपुर थे और खाईसे वह युक्त थी। नगरीमें यदुवंशी राजे, उनके आप्तजन, राजसमूह, और श्रीमन्त लोक इनके लिये कुबेरने सुंदर घर बनवाये। नगरमें क्वचित्सरोवर, क्वचित् वापी, क्वचित् जिनमंदिर और क्वचित् लोगोंको एकत्र बैठनेका ऊंचा स्थान–सभागृह बनवाया। समुद्ररूपी खाईसे घिरी हुई, अनेक बडे नगरद्वारोंसे युक्त, ऐसी द्वारिका नगरी स्वर्गपुरीके समान प्रसिद्ध हो गई ॥७७-८०॥ उस नगरीमें समुद्र विजयादिक सर्व यादवराजा कृष्णके साथ रहते थे। उस नगरीमें जयशाली, शत्रुवर्गसे अजिंक्य, जितेंद्रिय, मत्सरको जीतनेवाला, समुद्रविजय राजा सुखसे रहने लगा। वह निर्मल स्वभावका धारक, धार्मिक बुद्धियुक्त, विद्वान् और विद्वज्जनोंसे वन्दित था। वह धैर्यवान्, धर्मकर्मोंमें–तत्पर, ऐश्वर्यशाली राजा था। वह भव्यात्मा भवहरण करनेवाले जिनेश्वरकी भक्ति करता था और भोगोंको भोगता था। वह पृथ्वीका स्वामी था, उसके अधीन जो भूतल प्रदेश था वह बहुत सुंदर था। उससे वह पूज्य राजा शोभता था ॥ ८१–८४ ॥ इस समुद्रविजय राजाकी रानी जगत्को आनंद देनेवाली, दान-शील, चतुर, निर्मल बुद्धिको धारण करनेवाली शिवदेवी नामक थी। उसमें मदनने निवास किया था। वह रतिके वेगसे युक्त और रति देनेवाली थी। वह सुंदर अलंकारोंसे युक्त, बुद्धिसमुद्रके दूसरे किनारेको पहुँच गई थी। जिसके स्वरसे क्षुब्ध होकर कोकिलायें स्वररहित होगई और वे काले रंगकी होकर बनमें चली गईं। योग्यही है कि जो पराजित होते हैं उनकी ऐसीही गति होनी है। जिस रानीके चरणकमलोंको देखकर लज्जित हुए कमल उत्तम जलोंकी संगति धारण करने लगे।

रम्भास्तम्भोपमौ यस्या ऊरू सरसकोमलौ। मदनागारसिद्ध्यर्थं स्तम्भायेते स्म सुस्थिरौ ॥
गम्भीराभाच्छुभा नाभिर्यस्यास्तु सरसीसमा। सावर्ता केशमीनाङ्का मदनद्विपकेलिभा ॥९०
यस्या वक्षसि वक्षोजौ क्ष्माभृताविव दुर्गमौ। कामिनां मारभूपस्य स्थितये दुर्गतां गतौ॥९१
यस्या वदनशुभ्रांशोः शोभां वीक्ष्य विधुन्तुदः। बालच्छलात्समायात इव तद्ग्रहणेच्छया ॥९२
स्वर्णाभरणशोभाढ्यौ कर्णौ यस्या विरेजतुः। श्रुतिसंस्कारयोगेन संस्कृतौ श्रुतिसंमदौ ॥९३
एवं तौ दम्पती भोगान्भुञ्जानौ प्रविभासुरौ। शर्ममग्नौ वराकारौ रेजतुस्तत्र सद्धिया ॥९४
अथैकदा सुधर्मेशो जिनोत्पत्तिं विबुध्य प्राक्। प्राहिणोत्तत्र यक्षेशं षण्मासान् रत्नवृष्टये ॥९५
शक्रेण प्रेषितो यक्षो रत्नवृष्टिस्तदालये। षण्मासान्गर्भतः पूर्वं विदधे धर्मधीः स्वयम् ॥
खात्पतन्ती तदा रेजे रत्नवृष्टिः प्रभासुरा। आयान्ती स्वर्गलक्ष्मीर्वा लक्षितुं जिनमातरम् ॥९७
सा नभोऽङ्गणमापूर्य पतन्ती रुरुचे तराम्। ज्योतिर्मालेव चायान्ती दिदृक्षुर्जिनमन्दिरम् ॥९८
रुद्धं च रत्नसंघातैः शातकुम्भभरैस्तथा। जगुरङ्गणमावीक्ष्य जना धर्मफलं तदा ॥९९

योग्यही है कि लज्जासे जडोंकी संगति प्राप्त होती है। जिस रानीके दो जंघायें केलीवृक्षके स्तंभ-समान सरस तथा कोमल थीं। वे दोनों जंघायें मदनमंदिर बांधनेके लिये अतिशय स्थिर दो स्तंभोंके समान दीखती थीं। रानी शिवादेवीकी नाभि सरोवरके समान गंभीर और शुभ थी और वह आवर्तयुक्त थी अर्थात् गोलाकारथी उसके ऊपर केशरूपी मीन थे अर्थात् उस नाभिके ऊपर रोमावली थी वह मत्स्यके समान दीखती थी। तथा मदनरूपी हाथीके क्रीडासे शोभती थी। सरोवरभी भौंरोंसे युक्त, गंभीर, गहरा, मछलियोंसे सुशोभित और हाथीकी क्रीडासे शोभता है। जिसके वक्षस्स्थलमें दो स्तन दुर्गम दो पर्वतोंके समान सघन दीखते थे। कामिपुरुषोंके मदनराजाको ठहरने के लिये मानो वे दो किलेही बनाये गये हैं। जिसके मुखचन्द्रकी शोभा देखकर राहु उसको ग्रहण करनेकी इच्छासे मानो केशोंके समूहके निमित्तसे आया था। इस शिवादेवीके सुवर्णालंकारशोभित दो कान शास्त्रके संस्कारसे संस्कृत और शास्त्रश्रवणसे आनंदित हुए शोभते थे ॥८५-९३॥ इसप्रकार भोगोंको भोगनेवाले, सुंदर आकृतिके धारक, अतिशय कान्तियुक्त वे दम्पती सुखमें मग्न थे। उस नगरीमें शुभमतिसे वे शोभने लगे ॥ ९४ ॥ किसी समय सौधर्मेन्द्रने जिनजन्म यहां होनेवाला है ऐसा प्रथमही जानकर द्वारकानगरीमें छह महिनोंतक रत्नवृष्टि करनेके लिये कुबेरको भेज दिया। इन्द्रके द्वारा भेजे हुए धर्मबुद्धिके धारक कुबेरने गर्भके पूर्व छह महिनों तक शिवादेवीके महलमें स्वयं रत्नवृष्टि की। आकाशमेंसे गिरती हुई प्रकाशमान रत्नवृष्टि जिनमाताको देखनेके लिये मानो आनेवाली स्वर्गलक्ष्मीके समान शोभने लगी। आकाशाङ्गणको व्याप्त कर पडनेवाली वह रत्नवृष्टि जिनमन्दिरको देखनेके लिये आनेवाली ज्योतिर्मालाके समान अतिशय शोभने लगी। माताके महलका अंगण रत्नसमूहोंसे तथा सुवर्णसमूहसे व्याप्त देखकर लोग पूर्वाचरित धर्मका यह फल है ऐसा समझने

अथैकदा शिवादेवी सुषुप्ता शयनोदरे। निशात्यये ददर्शेति स्वप्नान्षोडश संमितान् ॥१००
ऐन्द्रं गजेन्द्रमैक्षिष्ट समदं मन्द्रबृंहितम्। गवेन्द्रं सुसुधापिण्डमिव पाण्डुरमुद्धुरम् ॥१०१
इन्दुच्छायं मृगेन्द्रं सोच्छलन्तं रक्तकन्धरम्। पद्मां स्नाप्यां सुरेभाभ्यां कुम्भाभ्यां पद्मसंस्थिताम्
दामनी कुसुमामोदालग्ननानामधुव्रते। ताराधीशं स्ववक्त्राब्जमिव तारासमन्वितम् ॥१०३
भास्वन्तं धूतसद्ध्वान्तं स्वर्णकुम्भमिवोद्धुरम्। शातकुम्भमयौ कुम्भौ स्तनकुम्भाविवोन्नतौ ॥
नेत्रायतिं झषौ पद्मे दर्शयन्ताविवात्मनः। पद्माकरं सुपद्मोत्थकिञ्जल्कपरिपिञ्जरम् ॥१०५
लोलकल्लोललीलाढ्यं जलधिं मन्द्रनिस्वनम्। सिंहासनं समुत्तुङ्गमेरुशृङ्गमिवोन्नतम् ॥१०६
पुत्रसूतिगृहाभासं विमानं विपुलश्रियम्। भुजंगभुवनं भूमिमुद्भिद्य निर्गतं शुभम् ॥१०७
निधानमिव रत्नानां राशिं शुभमराश्रितम्। धनंजयं प्रतापं वा स्वसूनोर्धूमवर्जितम् ॥१०८
गजाकारेण वक्त्राब्जे विशन्तं तं ददर्श सा। स्वप्नान्ते स्वप्नतो बुद्ध्वा विनिद्रनयनाम्बुजा ॥
ध्वनद्भिस्तूर्यसंघातैः प्रत्यबुद्ध ततश्च सा। शृण्वती मङ्गलोद्गीतिं देवस्त्रीणां सुमङ्गला ॥११०
मातस्तमो निशाजातमुद्भिद्योदेति भानुमान्। त्वन्मुखेन यथा याति तामसं मानसे स्थितम् ॥

लगे॥ ९५–९९॥ किसी समय शय्यापर सोयी हुई शिवादेवीने रात्रिसमाप्तिके समय आगे लिखे हुए सोलह संख्याप्रमाण स्वप्न देखे। शिवादेवीने मदजलसे युक्त गंभीर गर्जनाकरनेवाला इंद्रका ऐरावत हाथी तथा उत्तम अमृतपिण्डके समान शुभ्र और बलशाली बैल, चन्द्रके समान कान्तिवाला, लाल कण्ठसे युक्त, कूदनेवाला सिंह, देवोंके दो हाथी अपने शुण्डामें दो कलश धारण कर जिसका अभिषेक कर रहे हैं ऐसी कमलपर बैठी हुई लक्ष्मी, पुष्पोंके सुगंधमें आकर जिनके ऊपर भौंरे बैठे हैं ऐसी दो पुष्पमालायें, अपने मुखकमलके समान सुंदर ताराओंसे घिरे हुए ताराधीश चन्द्र, जिसने विद्यमान अंधकारको नष्ट किया है तथा जो बडे सुवर्णकुंभके समान दीखता है ऐसा सूर्य, स्तनकुम्भके समान ऊंचे दो सुवर्णकुम्भ, कमलके समान अपने नेत्रकी दीर्घता मानो दिखा रहे हैं ऐसे दो मत्स्य, उत्तम कमलोंसे निकले हुए परागसे पीत दीखनेवाला, कमलोंसे भरा हुआ सरोवर, चंचल लहरियोंसे भरा हुआ, गंभीर गर्जना करनेवाला समुद्र, उंचे मेरुशिखरतुल्य ऊंचा सिंहासन, विपुल शोभाधारक पुत्रकी प्रसूतिका मानो घर है ऐसा विमान, भूमिको फोडकर बाहर निकला हुआ धरणेन्द्रका शुभ घर, पुण्यसमूहसे आश्रय करनेवाला मानो निधि है ऐसी रत्नोंकी राशि, अपने पुत्रका मानो प्रताप ऐसा धूमरहित अग्नि, इन सोलह स्वप्नोंको जिनमाताने–शिवादेवीने देखा। स्वप्नके अन्तमें हाथीके आकारसे मुखकमलमें प्रवेश करनेवाले उस भावी तीर्थंकरको उसने देखा ॥ १०१–१०९॥ निद्रारहित नेत्रकमलोंको धारण करनेवाली सुमंगला वह शिवादेवी देवस्त्रियोंके मंगल गीत सुनती हुई बजनेवाले वाद्यसमूहोंसे जागृत हुई॥ ११०॥ हे देवी, तेरे मुखसे जैसे मनमें रहा हुआ अंधकार-अज्ञान नष्ट होता है वैसा रात्रीमें उत्पन्न होनेवाला अंधकार नष्ट कर यह सूर्य उदित

करान्प्रसारयन्नुच्चैरुदितोऽयं दिवाकरः । जगत्प्रबोधमाधत्ते तव गर्भार्भको यथा ॥११२
सुप्रभातं तवास्त्वम्ब कल्याणशतभाग्भव । अर्कं प्राचीव सोषीष्ठाः सुतं भवनभासकम् ॥११३
इति श्रुते प्रबुद्धा सा प्राग्बुद्धा स्वप्नदर्शनात् । उत्तस्थे शयनाच्छीघ्रं हंसी वा सैकतस्थलात् ॥
प्रातर्विधिविधानज्ञा सुस्नाता प्राप्तमङ्गला । पश्यन्ती दर्पणे वक्त्रं संस्कृता वरभूषणैः ॥११५
समुद्रविजयाभ्यर्णं तूर्णं गत्वा नता सती । स्वोचितेन नियोगेन स्वोचितं स्थानमासदत् ॥
प्रफुल्लवदनाम्भोजा करकुड्मलधारिणी । यथादृष्टसुस्वप्नानां फलं पप्रच्छ भूपतिम् ॥११७
अभाणीद्भूपतिर्भद्रं भुञ्जानो भुवनेश्वरः । प्रिये प्रीतिंकरे स्वप्नफलं शृणु सुबोधतः ॥११८
सूनुस्ते भविता देवि गजदर्शनतो वृषात् । जगज्ज्येष्ठो महावीर्यो मृगारेर्दामवीक्षणात् ॥११९
धर्मतीर्थकरो लक्ष्म्याभिषेकं मेरुमस्तके । आप्तासौ पूर्णचन्द्रेण जनाह्लादी च भास्करात् ॥
भास्वरः कुम्भतः प्रोक्तो निधीनामीशिता सुखी । सरसा लक्षणाकीर्णोऽब्धिना स केवलेक्षणः ॥
सिंहासनेन साम्राज्यं भोक्ता नाकविमानतः । नाकादस्यावतारः स्यात्फणीन्द्रभवनेक्षणात् ॥

हो रहा है। हे माता,जैसे तेरा गर्भस्थितबालक उत्पन्न होकर जगतको प्रबोध-ज्ञान देगा वैसे यह उदित होनेवाला सूर्य अपनी किरणोंको फैलाकर जगतको जागृत कर रहा है। हे माता, तुम्हारा प्रातःकाल मंगलकारक होवे, तू सैंकडो कल्याणोंको प्राप्त हो। पूर्वदिशा जगतको जागृत करनेवाले सूर्यको जन्म देती है वैसे हे माता, तूं जगतको उपदेशसे जागृत करनेवाले पुत्रको जन्म दे। स्वप्नदर्शनके कारण पूर्वही जागृत हुई वह रानी इस प्रकारके देवांगनाओंके आशीर्वाद सुनकर जागृत हुई। बारीक बालूके स्थलसे ऊठनेवाली हंसीकी तरह वह रानी शय्यासे शीघ्र उठ गई। प्रातःकालके स्नान-विधिको जाननेवाली, मंगलस्नान कर, शुचिर्भूत हुई शिवादेवी उत्तम भूषणोंसे अलंकृत होकर समुद्रविजय महाराजके पास शीघ्र जाकर उनको नमस्कार कर नियोगानुसार अपने योग्य स्थानपर बैठ गई ॥ १११–११६ ॥ जिसका प्रफुल्ल मुखकमल है ऐसी शिवादेवीने अपने दोनो हाथ कमल-कलीके समान जोड कर, जैसे स्वप्न देखे थे उस क्रमसे उनका फल राजासे पूछा ॥ ११७ ॥

[राजाने स्वप्नफलोंका वर्णन किया] जगतका अधिपति, पुण्यके वैभवको भोगनेवाला राजा इस प्रकार कहने लगा। हे प्रीति करनेवाली प्रिये, अपने सुज्ञानसे स्वप्नोंका फल तू सुन। देवि, हाथी देखनेसे तुझे पुत्र होगा। बैल देखनेसे वह जगतमें ज्येष्ठ होगा। सिंह देखनेसे महापरा-क्रमी होगा। पुष्पमालाओंके देखनेसे वह धर्मतीर्थकर होगा। लक्ष्मीके देखनेसे मेरुपर्वतके शिखरपर उसे अभिषेक प्राप्त होगा और पूर्णचन्द्रसे वह जगतको आनंदित करेगा। सूर्यसे अतिशय तेजस्वी, कुंभसे नवनिधियोंका प्रभु और सुखी, सरोवरसे एक हजार आठ लक्षणोंसे युक्त देहका धारक, समुद्रसे केवलज्ञान-नेत्रका धारक, सिंहासनसे साम्राज्यका भोक्ता, स्वर्गके विमानसे स्वर्गसे भूतलपर उसका आगमन, नागेन्द्रका विमान देखनेसे वह अवधिज्ञाननेत्रसे युक्त, रत्नराशिसे गुणोंके समूहको

सोऽवधिज्ञाननेत्राढ्यो रत्नराशेर्गुणाकरः । निर्धूमज्वलनालोकात्कर्मकक्षहुताशनः ॥१२३
गजाकारं समादाय त्वद्गर्भेऽवतरिष्यति । सोऽरिष्टनेमिसन्नामा धर्मसद्रथवर्तनात् ॥१२४
श्रुत्वा सा प्रमदापूर्णा फलं स्वप्नसमुद्भवम् । हर्षोत्कर्षितचेतस्का दधौ रोमाञ्चितं वपुः॥१२५
कार्त्तिकोज्ज्वलपक्षस्य षष्ठ्यां चाथ निशात्यये । उत्तराषाढनक्षत्रे तद्गर्भे संस्थितिं व्यधात् ॥
तदा ज्ञात्वा सुराः सर्वे स्वस्य चिह्नेन सत्वरम् । आगत्य गर्भकल्याणं कृत्वागुः स्वं स्वमास्पदम्॥
श्रीः श्रियं ह्रीस्त्रपां धैर्यं धृतिः कीर्तिः स्तुतिं मतिम् ।
बुद्धिर्लक्ष्मीश्च सौभाग्यं दधुस्तस्यामिमान्गुणान् ॥ १२८
काश्चिन्मज्जनकारिण्यः काश्चित्ताम्बूलदायिकाः । मङ्गलं कुर्वते काश्चित्काश्चित्संस्कारसाधिकाः ॥
काश्चिन्महानसे पाकं कुर्वते रचयन्त्यपि । शय्यामुच्छीर्षवस्त्राढ्यां पादसंवाहनं पराः ॥१३०
काश्चित्सिंहासनं चारु चकलाकलितं दधुः । काश्चित्सुगन्धद्रव्याणि पुरन्ध्र्य इव वै ददुः ॥
काश्चिदाभरणोद्भासिकरास्तस्याः पुरः स्थिताः । कल्पवल्ल्य इवाभान्ति भाभारवरभूषणाः ॥
काश्चिद्वासांसि क्षौमाणि प्रसूनस्तबकावहाः । माला रेजुर्ददत्योऽत्र व्रतत्य इव विस्तृताः॥१३३
उत्खातासिकराः काश्चिदङ्गरक्षाविधौ यताः । तदभ्यर्णे स्थिता रेजुश्चञ्चला इव खस्थिताः ॥

धारण करनेवाला, निर्धूम अग्निके दर्शनसे कर्मरूपी जंगलको अग्निके समान तुझे पुत्र होगा। वह गजाकार धारण कर तेरे गर्भमें आवेगा। वह धर्मरूपी रथको चलानेसे 'अरिष्टनेमि' नामको धारण करेगा ॥ ११८–१२४ ॥ आनंदसे परिपूर्ण, हर्षसे जिसका चित्त उमड आया है, ऐसी शिवादेवीका शरीर स्वप्नके फल सुनकर रोमांचयुक्त होगया। कार्तिक शुक्ल पक्षके षष्ठीके दिन रातकी समाप्तिके समय उत्तराषाढा नक्षत्रपर रानीके गर्भमें अहमिंद्रदेव आया ॥१२५–१२६ ॥ तब प्रभु माताके गर्भमें आये हैं ऐसा स्वकीय चिह्नसे जानकर देव तत्काल आगये और गर्भकल्याणविधि करके वे अपने स्थानको चले गये ॥ १२७ ॥ श्री देवताने कान्ति, ह्रीने लज्जा, धृतिदेवीने धैर्य, कीर्ति देवताने स्तुति, बुद्धिदेवीने मति, लक्ष्मीने सौभाग्य ये गुण जिनमातामें स्थापन किये। कोई देवियां माताके स्नानके कार्यमें नियुक्त थी, कोई माताको ताम्बूल देती थी। कोई मङ्गलारति करती थी। तो कोई उबटन आदिक संस्कारसे माताको सुशोभित करती थी। कोई देवतायें पाकगृहमें–रसोई घरमें अन्न पकाती थी। कोई देवांगनायें शय्याकी रचना करके उसपर तकिया आदिक रखती थी। कोई सुराङ्गनायें माताके पैर दबाती थी। कोई अमरी गोल पादपीठ ? सुंदर सिंहासन चकला कलित (?) माताको बैठनेके लिये देती थी। और सुवासिनी स्त्रियोंके समान कोई देवतायें सुगंधित द्रव्य - इत्र आदिक माताको देने लगी। अलंकारोंसे जिनके हाथ तेजस्वी दीखते थे ऐसी कोई देवतायें उसके आगे खडी हो गई। कान्तिसंयुक्त उत्कृष्ट भूषणोंको धारण करनेवाली कोई देवतायें कल्पलताके समान दीखती थी ॥ १२८–१३२ ॥ रेशमके वस्त्र तथा पुष्पके गुच्छोंको धारण करनेवालीं, मालायें देनेवाली

चन्दनच्छटयाच्छन्नमच्छिन्नमणिभूतलम् । काश्चित्कुर्वन्ति कन्याङ्गाश्चन्दनागलता इव ॥१३५
पुष्पस्वस्तिकमाभेजुः सुभुजैर्भोगदायिकाः । काश्चिद्धरां सुशोधिन्या शुद्धां कुर्वन्ति कोविदाः ॥
काश्चित्पक्वान्नसंपन्नमोदकौदनपायसम् । पूपाश्च मण्डकाखण्डखजकामृतशर्कराः ॥१३७
सूपशाल्यन्नमुद्गान्नं नानाव्यञ्जनसंयुतम् । दधीनि पिच्छिलान्याशु शुद्धदुग्धानि सद्रसान् ॥
प्राज्यमाज्यं करम्बं च कर्पूरलवणान्वितम् । शक्रस्य दुर्लभं तक्रं ददते मातृभुक्तये ॥१३९
पादप्रक्षालनं काश्चित्काश्चिदादर्शकं ददुः । वक्त्रेक्षणाय चान्द्रं वा बिम्बमिद्धं धरागतम् ॥१४०
पुष्पमालां करे कृत्वा मातुरग्रे स्थिता बभुः । काश्चिच्छाखिसुशाखा वा सेवां कर्तुमिहागताः ॥
मुकुटं कुण्डले काश्चित्काश्चिद्धारलतां शुभाम् । ददते कण्ठिकां काश्चिच्छाखा वा कल्पशाखिनः ॥
पुष्परेणुसमाकीर्णां क्षरन्मुक्ताफलाविलाम् । महीं मार्जन्ति काश्चिच्च स्वर्णरेणुसुसंकराम् ॥१४३
पट्टघोण्टाफलाखण्डखण्डान्येलालवङ्गकैः । नागवल्लीदलान्यन्या ददुर्नागलता इव ॥ १४४

कोई देवतायें विस्तृत वल्लियोंके समान दिखती थी। माताके शरीरकी रक्षा करनेवाली कोई देवतायें अपने हाथोंमें नग्न खड्ग धारण कर उसके समीप खडी होगयी तब वे आकाशमें रहनेवाली बिजलीके समान दीखती थी। सुंदर शरीरवाली कोई देवतायें विस्तीर्ण रत्नजटित भूतलको चन्दनजलकी छटासे सिञ्चित करती हुई चन्दनवृक्षकी लताके समान दीखती थी। भोगोंके पदार्थ देनेवाली कोई चतुर देवतायें सम्मार्जनीसे जमीन को स्वच्छ करतीं थी और कोई उसपर अपने सुंदर बाहुसे पुष्प, स्वस्तिक आदि रंगावलीकी रचना करती थी। कोई देवतायें पक्वान्नोंसे परिपूर्ण मोदक, भात, पायस-दूधखीर, पुए, मांडे, शक्करके खाजे, अमृतशर्करा, सूप, (दाल) शालितन्दुलोंका भात, मूंगकी खिचडी ये सब नानाव्यंजनोंसहित पक्वान्न माताके लिये देती थी, गाढा दही, शुद्ध दूध, अच्छे रस, उत्तम घी और जौका आटा तथा कपूर, नमकसे युक्त इन्द्रकोभी दुर्लभ ऐसा तक्र माताको भोजनके लिये देती थीं। कोई देवता चरण धोती थी और कोई देवता माताके हाथमें दर्पण देती थी। वह दर्पण ऐसा मालूम होता था मानो माताको मुख देखनेके लिये पृथ्वीपर प्रकाशमय चन्द्रही आया हो। पुष्पमाला हाथमें लेकर माताके आगे खडी हुई कोई देवतायें माताकी सेवा करनेके लिये आई हुई वृक्षोंकी शाखाओंके समान शोभती थीं। कोई देवता माताको मुकुट, और कुण्डल देती थी। कोई देवतायें सुंदर हारयष्टि देती थी। कोई देवता सुंदर कण्ठी देती थी। ये सब देवतायें कल्पवृक्षकी शाखाओंके समान शोभती थीं। पुष्पपरागसे व्याप्त, और इधर उधर गिरे हुए मोतियोंसे भरी हुई, सोनेकी धूल जिसमें मिली हुई है ऐसी भूमीको कोई देवतायें झाडती थी। उत्तम सुपारीके आधे टुकडे, इलायची, लवंग इनसे युक्त नागवल्लीके पान नागवल्लीके समान कोई देवता माताको देती थी॥ १३३—१४४ ॥ कोई स्वर्गकी वेश्या उत्तम हावभावके साथ बारबार नृत्य करती थी। और माताके हृदयके अनुसार कोई दवता जिस पदार्थमें माताकी इच्छा होती थी वह वस्तु

नर्नर्ति नाकगणिका वरहावभावा वर्वर्ति मातृहृदयानुमता च काचित् ।
संबोभवीति कमनीयसुकामधेनुः संजोहवीति वरकामगुणं च काचित् ॥१४५
बाभायते मातृमता च काचित्पापायते मातृतनुं च काचित् ।
लालायते मातृकराच्च वस्तु दाधायते मातृमनश्च काचित् ॥१४६
मीमांसते ताममरी सुदाम्ना दीदांसतेऽन्या च मलं सुमातुः ।
शीशांसते मोहभरं च काचिद्बीभत्सते दस्युदरं च काचित् ॥१४७
दीप्रैः सुदीपैः सुरकामिनी च काचित्सुभक्तिं निशि जैनमातुः ।
चर्कर्ति काचिद्वरवस्त्रदर्तिं शक्राज्ञया नाकवधूः समस्ता ॥१४८
नररूपं समादाय नर्नर्ति सुरनर्तकी । तच्चेष्टितं प्रकुर्वाणा हासयन्त्यखिलाङ्गनान् ॥१४९
कदाचिज्जललीलाभिः कदाचिद्वरनर्तनैः । रमयन्ति स्म तां देव्यः सेवासक्तसुमानसाः ॥१५०
गीतगोष्ठीं गता माता देव्या साकं रसान्विता । कदाचिद्विविधा वार्ता विदधे शुद्धमानसा ॥
दिक्कुमारीसमं राज्ञी कालमित्थं निनाय च । सा बभार परां कान्तिं कला चान्द्रमसी यथा ॥
अभ्यर्णे नवमे मासेऽन्तर्वत्नीमथ सद्रसैः । देव्यस्तां रमयामासुर्गद्यपद्यैर्वराक्षरैः ॥१५३

माताको लाकर देती थी। कोई देवता सुंदर कामधेनु होकर माताको इच्छित वस्तु देती थी। और कोई देवता उत्तम इच्छाके अनुसार दान देती थी। माताको प्रिय कोई देवता अतिशय शोभती थी और कोई देवता माताके शरीरकी वारंवार रक्षा करती थी। कोई देवता उसके हाथसे वस्तु लेती थी। माताको कोई देवता अतिशय पुष्ट करती थी। कोई देवता माताके साथ बारबार तत्त्वविचार करती थी। और कोई अमरी उत्तम मालासे उसे अतिशय तेजस्विनी करती थी। कोई देवता माताका मल स्वच्छ करती थी। कोई देवता माताके मोहको नष्ट करती थी और कोई देवता चोरसे उत्पन्न हुई भीति हराती थी। कोई सुरस्त्री प्रकाशमान दीपोंसे रातमें जिनमाताकी सुभक्ति करती थी और कोई देवता इंद्रकी आज्ञासे उत्तम वस्त्र माताको देती थी। इसप्रकार सब देवतायें माताकी सेवा कर ती थी। कोई देवता पुरुषका रूप धारण कर नृत्य करने लगी। तब उसका अनुकरण करनेवाली अन्य देवतायें सब लोगोंको हंसाने लगी॥ १४५-१४९॥ जिनका मन सेवामें आसक्त हुआ है ऐसी कोई देवतायें कभी जलक्रीडाओंसे, कभी उत्तम नृत्योंसे माताके मनको रमाती थी। शुद्ध मन-वाली माता कभी देवियोंके साथ गीतगोष्ठी करती थी, और कभी रसोंसे युक्त नानाविध वार्तायें करती थी। इस प्रकारसे दिक्कुमारियोंके साथ माताका काल व्यतीत होता था। चन्द्रकी कला जैसी प्रतिदिन उत्तम कान्तिको धारण करती है वैसी-जिनमाताभी प्रतिदिन अधिकाधिक कान्ति धारण करती थी। जब नौवा महिना समीप आया तब गर्भिणी जिनमाताको देवांगनायें उत्तम अक्षर-रचनासे युक्त ऐसे गद्यपद्योंसे रमाने लगी॥ १५०-१५३ ॥ [प्रश्न] हे देवि, पुष्पोंसे अवगुण्ठित कौन

पुष्पावगुण्ठिता का स्यात्का शरीरपिधायिका। का देहदाहिका देवि वदाद्याक्षरतः पृथक्॥
स्रक्, त्वक्, रुक्।
कः संसारासुखच्छेदी कोऽपादो भ्राम्यति स्वयम्। को दत्ते जनतातोषं पठाद्याक्षरतः पृथक्॥
जिनः, स्वनः, घनः।
आद्यन्तरहितः कोऽत्र कः कीलालसमन्वितः। वक्त्रादुत्पद्यते कोऽत्र कथयाद्याक्षरैः पृथक्॥
संसारः, कासारः, व्याहारः।
नरार्थवाचकः कोऽत्र कः सामान्यप्ररूपकः। का व्रते प्रथमा ख्याता कीदृशी त्वं भविष्यसि॥
ना, को, दया। नाकोदया।
सुखप्ररूपकं किं स्यात्का भाषा च कृपातिगा। भुजप्ररूपकः कः स्यात्कः सेव्यो जनसत्तमैः॥
शम्, अदया, करः, शमदयाकरः।

होती है? शरीरको अच्छादित कौन करती है? और देहमें दाह कौन उत्पन्न करता है? आद्य अक्षरसे पृथक् अक्षर जोडकर इन प्रश्नोंका उत्तर दे। तब माताने इस प्रकारका उत्तर दिया—हे दिक्कुमारि स्रक्—माला पुष्पोंसे गुँथी जाती है। त्वक्—चर्म शरीरको आच्छादित करता है। और रुक्—रोग शरीरमें दाह उत्पन्न करता है। समुच्चयसे उत्तर—स्रक्, त्वक्, रुक्, ॥ १५४ ॥ हे जिनमाता, संसारदुःखका छेद कौन करता है। पैर नहीं होनेपरभी स्वयं कौन भ्रमण करता है? और लोगोंको कौन आनंदित करता है? इन प्रश्नोंका उत्तर आद्य अक्षरसे भिन्न शब्दोंमें हम चाहती हैं। माताके उत्तर—संसारदुःखका च्छेद जिन करते हैं। स्वन—शब्द वह बिना पादोंके भ्रमण करता है। और घन—मेघ वह जलवृष्टिसे लोगोंको आनंदित करता है। जिन, स्वन और घन ये उत्तर हैं॥ १५५॥ प्रश्न—इस जगतमें आदि और अन्तरहित कौनसी वस्तु है? पानीसे भरा हुआ कौन है? मुखसे कौन उत्पन्न होता है? इनके उत्तर आद्याक्षरसे भिन्न शब्दोंमे हमें चाहिये। उत्तर—संसार; संसारका आदि और अन्त नहीं होता है। कासार—तालाव पानीसे भरा हुआ है और व्याहार—शब्द मुखसे उत्पन्न होता है। (समुच्चयसे उत्तर—संसार, कासार—और व्याहार)॥ १५६ ॥ प्रश्न—हे जिनमाता, मनुष्यवाचक शब्द कौनसा? सामान्यको कहनेवाला शब्द कौन है? व्रतोंमें प्रथम स्थान किसने पा लिया है? और आप कैसी होगी। उत्तर—मनुष्यार्थवाचक शब्द 'ना' है। सामान्यवाचक शब्द 'को' है और व्रतोंमे प्रथम स्थान 'दया' ने पा लिया है। तथा 'नाकोदया' स्वर्गसे आये हुए पुत्रसे मेरा उदय होनेवाला है। अर्थात् स्वर्गसे मेरे गर्भमें आये हुए पुत्रसे मेरी उन्नति होनेवाली है॥ १५७॥ प्रश्न—हे माता सुखका वाचक शब्द कौनसा है? कृपाको छोडनेवाली दयासे रहित ऐसी भाषा कोनसी? भुजका निरूपण करनेवाला शब्द कौनसा है और लोगोंमें श्रेष्ठ ऐसे पुरुषोंसे कौन सेवा करने योग्य है? माताने इनके इस प्रकारसे उत्तर दिये— 'शम्' शब्द सुखवाचक है,

वित्तप्ररूपकं किं स्यात्पदं संग्रामतः खलु। कः स्यात्संग्रामशूराणां कः स्यादर्जुनपाण्डवः॥
धनं, जयः, धनंजयः।
पानार्थेऽपि च को धातू रक्षणार्थेऽपि को मतः। कः सामान्यपदाभ्यासी कृशानुः कोऽभिधीयते
आद्याक्षरं विना पक्षी कः को मध्याक्षरं विना।
भुक्त्यर्हः कोऽन्त्यमुन्मुच्य संबुद्धिः पानरक्षणे ॥१६१
पा, अव, कः, पावकः, बकः, पाकः, पाव ॥
वसुसंख्या तु काप्त्यर्थधातुरूपं च किं लिटि। किं कलत्रं सुवर्णं किं कैलासं च वदाशु भोः॥
अष्ट, आप, टाप, अष्टापदं, अष्टापदः।
किं निश्चयपदं लोके कस्तिरश्चां लघुर्वद। शुभः को मोक्षसिद्ध्यर्थं को भवेत्सर्वदाहकः॥१६२
वै, श्वा, नरः, वैश्वानरः।

कृपारहित भाषाको ' अदया ' भाषा कहते हैं। भुजका वाचक शब्द ' कर ' है। और समुच्चय उत्तर, जो शम–कषायोंका उपशम और दयाको धारण करता है वह श्रेष्ठ लोगोंसे सेवनीय होता है ॥ १५८ ॥ प्रश्न–वित्तका वाचक शब्द कौनसा है? युद्धसे वीरोंको किसकी प्राप्ति होती है? अर्जुन पाण्डवका वाचक कौनसा शब्द है? माताने इस प्रकारसे उत्तर दिया। द्रव्यका वाचक शब्द ' धन ' है। युद्धवीरको युद्धसे ' जय ' मिलता है और अर्जुन पाण्डवका नाम ' धनंजय ' है–धनं, जयः, धनंजयः। ॥ १५९ ॥ प्रश्न–पान करना इस अर्थमें और रक्षण करना इस अर्थमें किस धातुका प्रयोग होता है? सामान्य पदका अभ्यास करनेवाला कौन है? और अग्नि किसे कहते हैं? माताने उत्तर दिये-पान करना इस अर्थमें ' पा ' धातु है, रक्षण करना इस अर्थमें ' अव ' धातु है। सामान्यवाचक शब्द ' कः ' यह है और अग्निका वाचक शब्द ' पावक ' है। समुच्चय उत्तर पा, अव, कः, पावकः ॥ १६० ॥ प्रश्न–पहिले अक्षरके विना पक्षीका वाचक शब्द कौनसा? मध्य अक्षरके विना भोजन करने लायक कौन है? और पान करना तथा रक्षण करना इनमें संबोधन कौनसा है? माताने उत्तर दिया-पावकः शब्दमें पहिला अक्षर छोड देनेसे ' वकः ' शब्द अवशिष्ट रहता है उसका अर्थ ' बक ' पक्षी होता है। मध्याक्षर वर्ज्य करनेसे पाक शब्द रह जाता है उसका अर्थ पका हुआ अन्न होता है। पान करना और रक्षण करना इसका संबोधन ' पाव ' ऐसे होता है, मिलकर उत्तर–बकः, पाकः, पावः ॥ १६१ ॥ प्रश्न–वसुकी वाचक संख्या कौनसी? भूतकालवाचक आप्त्यर्थपद–प्राप्तिका वाचक शब्द कौनसा? स्त्रीलिंगका बोधक शब्द कौनसा, सुवर्ण और कैलासके वाचक शब्द कौनसे हैं? माताने उत्तर दिया–वसुकी वाच्य संख्या ' अष्ट ' है। प्राप्तिवाचक धातुका परोक्षामें रूप ' आप ' होता है। स्त्रीलिंग वाचक 'टाप्' प्रत्यय होता है और सुवर्णका सोनेका तथा कैलासका वाचक शब्द 'अष्टापद' है ॥ १६२ ॥ प्रश्न–जगतमें निश्चयवाचकशब्द कौनसा? पशुओंमें हलका प्राणी कौनसा? मोक्षसिद्धिके

कृष्णसंबोधनं किं स्यात्किं पदं व्यक्तवाचकम्। के गर्वाः को विधीयेत वादिभिर्निगमश्च कः।
प्रसिद्धोऽथ भुजंगेशोऽहंकारवादकस्तु कः॥ १६४
अ, हि, मदा, वादः, अहिमदाबादः, अहिः, मदाः,
इष्टानिष्टं दहेत्सर्वं देवो दाहकरस्तथा। अन्धकृद्धृततेजस्कः स भाति भूधरोदरे॥१६५
देवपदादेकारच्युतकम्। दवः
रम्यं काय फलं मातः सर्वेषां तोषदायकम्। जिनचक्रिबलादीनां पदस्य सकलोन्नतेः॥१६६
क्रियागुप्तम्। कायेति क्रिया कथयेत्यर्थः।

लिये अच्छा प्राणी कौन है? और सबको जलानेवाला कौन है? माताका उत्तर— निश्चयवाचक पद 'वै' है। पशुमें हलका जानवर 'श्वा' है। कुत्तेको श्वा कहते हैं। 'नर' मोक्षके लिये पात्र है और सर्वदाहक 'वैश्वानर' अग्निको वैश्वानर कहते हैं। वै, श्वा, नरः, समुच्चयसे वैश्वानरः॥ १६३॥ प्रश्न—हे जिनमाता कृष्णका संबोधनवाचक शब्द कौनसा है? तथा व्यक्तका वाचक कौनसा शब्द है, गर्व कौनसे हैं? गर्वका वाचक शब्द कौनसा है। वादियोंसे क्या किया जाता है? और प्रसिद्ध गांव कौनसा है? भुजगेश और अहंकारवाचक शब्द कोनसा है? माताने उत्तर दिया—'अ' यह कृष्णका संबोधन है। स्पष्टतावाचक 'हि' शब्द है। गर्ववाचक शब्द 'मदा' है अर्थात् ज्ञान-मद, जातिमद, कुलमद इत्यादि आठ मद हैं। वादियोंसे 'वाद' किया जाता है। प्रसिद्ध शहरका नाम 'अहिमदाबाद' है। भुजगेश-शेषको 'अहि' कहते हैं। अहंकार वाचक शब्द 'मदा' है। अ, हि, मदा, वाद, अहिमदाबाद, अहि, मदा॥ १६४॥ स्वरच्युतकका श्लोक किसी देवताने कहा। माताने जानकर उत्तर दिया। देवताने कहा "देव इष्टानिष्ट सबको जलाता है तथा वह सबको दाह उत्पन्न करता है। उसने तेज धारण किया है। वह लोगोंको अंधा बनाता है। और वह पर्वतके उदरमें चमकने लगता है। माताने 'इष्टानिष्टं दहेत्सर्वं' यह श्लोक सुनकर कहा कि इसमें 'देवो दाहकरस्तथा' यह चरण दवो दाहकरस्तथा, देव शब्दके स्थानमें 'दव' शब्द होना चाहिये। तब अर्थ योग्य बैठता है। नहीं तो देव इष्टानिष्ट सबको जलाता है इत्यादि अर्थ युक्तिसंगत नहीं है। अर्थात् यह एकारच्युतक है। 'दव' शब्दका अग्नि अर्थ है अर्थात् अग्नि सब इष्टानिष्टको जलाता है। दाह उत्पन्न करता है इत्यादिक अर्थ ठीक बैठता है॥ १६५॥ एक देवताने क्रियागुप्तका श्लोक कहा। माताने उसमें कौनसा क्रियापद गुप्त है वह कह दिया। माताको देवताने प्रश्न किया। "हे माता, जिनेश्वर, चक्रवर्ती, बलभद्र आदि सर्व महापुरुषोंको तोषदायक सर्व उन्नतिके पदका रमणीय कायफल" इसमें क्रियापद नहीं है। तब माताने 'रम्यं काय फलं मातः' इस प्रथम चरणमें 'काय' यह क्रियापद है ऐसा कहा। काय-कथय-कहो। अर्थात् सर्व उन्नतीका सुंदर फल कहो इस प्रश्नका माताने 'अमृतं' मोक्ष यह सर्वोन्नतिका फल है ऐसा उत्तर दिया॥ १६६॥ पुनः एक देवताने क्रियागुप्तका

अम्बास्य विपुलं सर्वमेनोवृन्दं जनोद्भवम् । त्वं भवसारनीरेशं विधुंतुदसमं शुभे ॥१६७
क्रियागुप्तम् । अस्य खण्डयेत्यर्थः ।
जयं देवि जगन्नाथ पुत्रहेतो शुभानने । जगत्त्रयवधूरूपसीमे कोकिलनिःस्वने ॥१६८
बिन्दुरहितम् ।
एवमुत्तरपद्यानि ताभिर्गूढार्थकानि च । प्रयुक्तानि तया शीघ्रं कथितानि विशेषतः ॥१६९
बुद्धिः स्वाभाविकी तस्या नानाप्रश्नोत्तरक्षमा । भ्रूणेनालंकृता रेजे मणिना हारयष्टिवत्॥१७०
बभार गर्भजं तेजो निसर्गरुचिरञ्जिता । राज्ञी रत्नमयं धाम भूर्यथाकरगोचरा ॥१७१
पीडा च गर्भजा तस्या नाभूत्स्वप्नेऽपि दुर्वहा । वह्निकान्तिरिवादर्शे प्रतिबिम्बाकृतिं गता ॥
मा भूद्भङ्गस्त्रिवल्याश्चोदरे ऽस्याः पूर्ववत्स्थितेः । न कृष्णत्वं कुचद्वन्द्वचूचके हंसवद्गतेः ॥१७३

श्लोक बोलकर इसमें क्रियापद कहनेके लिये माताको विज्ञप्ति की। ' अंबास्य विपुलं ' यह श्लोक कहा। इसका अर्थ इस प्रकार—हे माता, हे शुभे इसका यह लोगोंसे उत्पन्न होनेवाला विपुल और सर्व पापसमूह संसारसारको समुद्र समान है और राहुके समान है। तू इसे " इस श्लोकमें क्रियापदके बिना अर्थपूर्णता नहीं होती। तब माताने कहा ' अंबाऽस्य ' इस श्लोकमें ' अस्य ' यह क्रियापद है ' अस्य 'का अर्थ खंडन कर ऐसा है। अर्थात् जो संसारसारको समुद्र समान है,जो राहुके समान है ऐसा लोगोंका विफल सर्व पापसमूह हे शुभे हे माता तू तोड ॥ १६७ ॥ एक देवताने बिन्दु-च्युतक श्लोक कहा और माताने इसमें बिंदु कहाँ नहीं होना चाहिये वह बताया। ' जयं देवि जगन्नाथ ' इत्यादिरूप श्लोक है। उसका अभिप्राय बिन्दु होनेसे जो होता है वह इस प्रकार जगतका नाथ ऐसे पुत्रका तू हेतु है अर्थात् ऐसा पुत्र तू उत्पन्न करेगी। हे शुभानने, तू त्रैलोक्य की स्त्रियोंके रूपकी सीमा है, तू कोकिलके समान स्वरवाली है।हे देवि, जयको ' ऐसा अर्थ होता है परंतु ' जयको ' इस द्वितीयान्त शब्दके साथ अर्थसंबंध नहीं जुडता है। ' जयं देवि ' इसमें बिंदु निकालनेपर ' जय ' ऐसा शब्द अर्थात् क्रियापद होता है। तब हे देवी तेरा सर्वदा जय हो यहां जयं शब्दमेंसे अनुस्वार निकालनेपर ' जय ' ऐसा लोट्लकारका मध्यम पुरुषका एकवचनका रूप होता है तब अर्थसंबंध योग्य हो जाता है ॥ १६८ ॥ इस प्रकार देवियोंने गूढ अर्थवाले पद्योंका उत्तरके लिये प्रयोग किया परंतु माताने शीघ्रतया विशेषतासे उत्तर कहे। माताकी बुद्धि स्वभावसेही नाना प्रश्नोंके उत्तर देनेमें समर्थ थी। गर्भसे सुशोभित होनेसे तो उसकी बुद्धि नायक मणिसे हारयष्टिके समान शोभती थी ॥१६९-१७०॥ खनीकी भूमि जैसी रत्नमय तेज धारण करती है वैसे निसर्ग कान्तिसे शुद्ध शिवादेवीने गर्भका तेज धारण किया था। शिवादेवीको गर्भकी पीडा स्वप्नमेंभी नहीं हुई जो कि दुर्वह हुआ करती है। जैसे दर्पणमें प्रतिबिंबित हुई अग्निकी कान्ति पीडादायक नहीं होती है। शिवादेवीका उदर पूर्ववत् था इसलिये उसकी त्रिवलीका

न पाण्डु वदनं जातं तस्या आलस्यसंततिः। ववृधे चार्भको गर्भे तथापि सुखकारकः॥१७४
अथैवं नवमासेषु गतेषु सुषुवे सुतम्। श्रावणे शुक्लपक्षे सा षष्ठ्यां चित्रागते विधौ॥१७५
देवी देवीभिरुक्ताभिः सेविता सुतमाप सा। पद्मबन्धुं यथा प्राची नलिनं नलिनीव च॥
त्रिभिर्बोधैः समायुक्तः शिशू रेजे शुभैर्गुणैः। मन्दं मन्दं ववौ वायुस्तदा सद्गन्धबन्धुरः॥
संमार्जितरजोराजिर्भूरादर्शसमा बभौ। विकसन्नवनीरेजरोमाञ्चान्वितविग्रहा॥१७८
देवानामासनान्युच्चैरकस्मात्प्रचकम्पिरे। तदा शिरांसि जिष्णूनां धुन्वन्मौलिमणीन्यभुः॥
कल्पे घण्टाघनारावः सैंहशब्दश्च ज्योतिषि। भेरीध्वनिरभूद्धाने भवने शङ्खनिस्वनः॥१८०
तदुत्पन्नं तदा सर्वे श्रुत्वा चाकस्मिकं ध्वनिम्। विज्ञाय जन्म देवस्य बभूवुर्हर्षिताननाः॥१८१
ततोऽपीन्द्राज्ञया शुद्धा निर्ययुर्निजधामतः। स्वस्वासनसमासक्ताः ससुरासुरनायकाः॥१८२
वियतस्तेऽवतीर्याशु तत्पुरं सपुरंदराः। सुराः प्रापुः प्रमोदेन कुर्वन्तो भूमिमेजयम्॥१८३
शक्राज्ञया शची शुद्धा प्राविशत्प्रसवालयम्। ततोऽदर्शि तया माता सुतेन सममञ्जसा॥१८४

भङ्ग नहीं हुआ। हंसकी समान गतिवाली रानीके स्तनाग्रोंमें कालेपनाभी उत्पन्न नहीं हुआ। रानीका मुख सफेद नहीं हुआ। उसको आलस्यभी नहीं था। तथापि गर्भमें सुखकारक बालक बढने लगा॥ १७२-१७४॥ तदनंतर-नौ मास पूर्ण होनेपर शिवादेवीने श्रावण शुक्ल षष्ठीके दिन चित्रा नक्षत्रपर चन्द्र आनेपर पुत्रको जन्म दिया। जैसी पूर्व दिशा पद्मोंके बंधु-सूर्यको, जैसी कमलिनी कमलको प्राप्त करती है वैसी श्रीआदिक देवियोंसे सेवित शिवादेवीने पुत्रको प्राप्त किया। तीन ज्ञानोंसे-मति, श्रुत और अवधिज्ञानसे युक्त जिन बालक शुभ गुणोंसे शोभने लगा। उस समय उत्तम गंधसे मनको लुभानेवाला वायु मन्द मन्द बहने लगा। वायुसे जिसकी धूल दूर हो गई है ऐसी भूमि दर्पणके समान निर्मल हुई। प्रफुल्ल हुए नव कमलरूपी रोमाञ्चोंसे मानो उसका विग्रह-देह व्याप्त हुआ॥ १७५-१७८॥ जिनजन्मके समय देवोंके आसन अकस्मात् कम्पित हुए। और जिनके किरीटोंके मणि हिल रहे हैं ऐसे इन्द्रोंके मस्तक शोभने लगे। कल्पोंमें-सौधर्मादिक सोलह स्वर्गोंमें घण्टाओंके घण घण शब्द होने लगे। ज्योतिषमें-ज्योतिर्लोकमें सिंहोंका ध्वनि होने लगा यानी सिंहध्वनिके समान ध्वनि होने लगा। व्यंतरनिवासोंमें भेरियोंका ध्वनि होने लगा और भवनोंमें शंखोंका ध्वनि होने लगा। उस समय कल्पादिकोंसे उत्पन्न हुए आकस्मिक ध्वनि सुनकर प्रभुका जन्म हुआ ऐसा समझकर सर्व हर्षित हुए॥ १७९-१८१॥ जिनजन्म उपर्युक्त चिह्नोंसे समझकर देवोंके और असुरोंके स्वामियोंके-इंद्रोंके साथ अपने अपने आसनोंपर-वाहनोंपर आरूढ होकर अपने अपने घरोंसे सौधर्मेन्द्रकी आज्ञासे सर्व देव निकले। इन्द्रोंके साथ वे देव आनन्दसे आकाशसे उतरकर पृथ्वीको कम्पित करते हुए जिनेश्वरके नगरको-द्वारिकाको शीघ्र आगये॥ १८२-१८३॥ इन्द्रकी आज्ञासे पवित्र इन्द्राणीने प्रसूतिगृहमें प्रवेश किया। अनंतर उसने पुत्रके साथ शय्यापर माताको देखा। गूढ होकर इन्द्राणीने

जिनस्य जननीं गूढा त्रिः परीत्यानमच्छची। तस्थौ मातुः पुरो देशे पश्यन्ती परमं जिनम्॥
कराभ्यां तं समादाय मुक्त्वा मायामयार्भकम्। शची पुरंदराभ्यर्णे जगाम सुसुरीस्तुता॥
पुरंदरकरे प्रीता ददौ दीप्ता सुनन्दनम्। तमर्भकं समादाय सोऽपि मेरुमुपस्थितः॥१८७
मेरौ च पाण्डुकेऽरण्ये पाण्डुकायां सुरोत्तमाः। शिलायां स्थापयामासुः सिंहपीठे जिनार्भकम्॥
शातकुम्भमयैः कुम्भैः क्षीराब्धिसुपयोभृतैः। अष्टाधिकसहस्रैश्चास्नापयत्तं सुरोत्तमः॥१८९
गन्धोदकेन संबन्ध्य बन्धुरं श्रीजिनोत्तमम्। संबध्नन्तः स्वयं पूताः सुरास्तेनाभवन्मुदा॥
शची संस्कारयोगेन संस्कृत्य तं जिनेश्वरम्। तद्रूपसंपदं तृप्ता पश्यन्ती नाभवत्तदा॥१९१
शक्रस्संस्तोतुमुद्युक्तस्तं शचीसंगतः शुभम्। निःस्वेदास्पदनैर्मल्यविपुलक्षीरशोणित॥१९२
आद्यसंस्थानसंस्थात आद्यसंहननोत्तम। सौरूप्यपरिपूर्णाङ्ग सौरभ्यभरभूषित॥ १९३
अष्टाधिकसहस्रेण लक्षणेन सुलक्षित। उपमातीतवीर्येश हितप्रियवचःपते॥१९४
दशातिशययुक्ताय ते नमोऽस्तु शिवात्मज। अरिष्टचक्रनेमीशे श्रेयोरथसुनेमये॥१९५
स्तुत्वेति ताण्डवं कृत्वा मघवा साघविघ्नहृत्। सुरौघैरङ्कमारोप्य तमागान्नगरीं प्रति॥१९६

तीन प्रदक्षिणा देकर माताको वन्दन किया। और उत्कृष्ट जिनबालकको देखती हुई माताके आगे वह खडी हुई। मायामय बालक माताके आगे रखकर अपने दोनो हाथोंसे जिनबालकको ग्रहण-कर उत्तम देवियोंके द्वारा स्तुति की गयी वह इन्द्राणी इन्द्रके पास गई॥ १८४–१८६॥ आनंदित हुई कान्तियुक्त शचीने जिनबालकको इन्द्रके हाथमें दिया। उस बालकको लेकर वह भी मेरूके समीप चला गया। मेरूपर्वतपर पांडुक वनमें पाण्डुकशिलाके सिंहासनपर श्रेष्ठ इन्द्रोंने जिन बालकको स्थापन किया॥ १८७–१८८॥ क्षीरसमुद्रके उत्तम जलसे भरे हुए एक हजार आठ सुवर्णके कुम्भोंसे सौधर्मेन्द्रने प्रभुका अभिषेक किया। अतिशय मनोहर श्रीजिनेश्वरको गन्धोदकमे संबद्धकर अर्थात् गंधोदकसे आनन्दके साथ अभिषेक करके श्रीजिनेश्वरके साथ संबंधको प्राप्त हुए वे देव स्वयं पवित्र हुए॥ १८९–१९०॥ उबटनोंसे और अलंकारोंसे जिनेश्वरको सुसंस्कृतकर उनकी रूपसम्पदाको देखकर इन्द्राणी तृप्त नहीं हुई॥ १९१॥ इसके अनंतर इन्द्र शचीके साथ शुभ जिनेश्वरकी स्तुति करनेके लिये उद्युक्त हुआ। हे जिनेश्वर आपका शरीर स्वेदरहित, निर्मल, विपुल दूधके समान रक्तसे युक्त है। आप आद्य संस्थानमें स्थिर हैं अर्थात् समचतुरस्र संस्थानसे आपका देह अतिशय सुंदर दीखता है। आद्य संहननसे आप उत्तम हैं। आपका शरीर सौंदर्यसे परिपूर्ण और सुगंधसे शोभित हुआ है। एक हजार आठ लक्षणोंसे आप खूब अच्छे दीखते हैं। हे प्रभो आप उपमारहित शक्तिके स्वामी हैं। हितकर और प्रिय भाषाके आप प्रभु हैं। हे शिवादेवीके पुत्र दश अतिशयोंसे युक्त आपको हम वन्दन करते हैं। हे प्रभो, आप अरिष्टचक्र-विघ्नसमूहको चूर्ण करनेमें चक्रकी लोहपट्टीके समान हैं। आप धर्मरथकी नेमि हैं। इस प्रकार प्रभुकी स्तुति कर

पितृभ्यां मघवा दत्त्वा देवदेवं जगन्नुतम्। नटित्वा नटवन्निन्ये निर्मलं भोगसंपदम् ॥१९७
नियोज्य सुरसंघातान् रक्षणे दक्षिणोऽप्यगात्। नेमिस्तु नम्रनाकीशसेवितो ववृधे तराम्॥१९८
कलया कान्तितः कम्रः परः कुमुदबान्धवः। विधुवद्ववृधे शुद्धोदधिं संवर्धयन्सुधीः ॥१९९
नेमिर्नानानिमिषनिकरैः संगतो वृद्धिमाप्य, रिङ्खन्क्षोण्यां क्षितिपपतिभिर्वीक्षितः क्षिप्रगत्या।
स्वस्याङ्गुष्ठेऽमृतमयमहान्यादमास्वादयंश्च, पादस्थैर्यं तदनु सुगतिं संगतोऽभूत्कुमारः ॥
वक्त्रं यस्य महेन्दुसुन्दरतरं पद्मस्य पत्रे इव, नेत्रे कर्णकजे सुकुण्डलयुते भालं विशालं महत्।
बाहू कल्पतरू इवार्थजनकौ वक्षः सुरक्षाक्षमम्, कूलं वाञ्जनपर्वतस्य परमा नाभिर्गभीरा शुभा ॥

काञ्चीदामगुणोत्कटा स्फुटकटिः स्तम्भोपमोरू परौ
जङ्घे विग्रहरे सुहस्तिकरवत् पादौ च पापापहौ।
पद्माभौ नखराः समृक्षविशदा वैदग्ध्यमैश्यं महत्
स श्रीनेमिजिनेश्वरो जगदिदं पातु प्रभाभासुरः ॥२०२

इति श्रीभट्टारकशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपाल साहाय्यसापेक्षे श्रीपाण्डवपुराणे महाभारतनाम्नि यादवद्वारिकाप्रवेशश्रीनेमीश्वरोत्पत्तिवर्णनं नामैकादशं पर्व ॥ ११ ॥

पाप और विघ्नोंको दूर करनेवाला नृत्य इन्द्रने किया और प्रभुको अपने गोदमें स्थापन कर वह द्वारिकानगरीको गया ॥ १९२–१९६ ॥ जगत् जिनकी स्तुति करता है ऐसे देवाधिदेव नेमिजिनको इन्द्रने मातापिताके पास देकर और नटके समान नृत्य कर प्रभुको निर्मल भोगसम्पत्ति दी। अनुकूल प्रवृत्ति करनेवाला इन्द्र प्रभुके रक्षणकार्यमें देवोंको नियुक्त कर स्वयं स्वर्गको गया। नम्र स्वर्गपति-इन्द्रोंसे सेवित नेमिप्रभु उत्तरोत्तर बढने लगे ॥ १९७–१९८ ॥ कलासे, कान्तिसे, सुंदर रात्रि विकासि कमलोंका बंधु उत्तम चंद्र जैसे समुद्रको वृद्धिंगत करता है वैसे कला,कान्तियोंसे सुंदर, पृथ्वीको आनंदित करनेवाला मानो बंधु ऐसे तीन ज्ञानोंके धारक नेमिजिनेश बढने लगे ॥ १९९ ॥ अनेक देवसमूहोंसे वेष्टित नेमिनाथ तीर्थकर बढकर भूमिपर जल्दी जल्दी रिंखते हुए अनेक राजाओंने देखे। अपने अंगुठेमें इन्द्रने स्थापन किया अमृतमय महाहारको वे आस्वादन करते थे। प्रभुके पाओंमें प्रथम स्थैर्य आगया अनंतर वे उत्तम गमनसे संगत हो गये अर्थात् चलने लगे ॥ २०० ॥ जिनका मुख चन्द्रके समान अधिक सुन्दर था। दो नेत्र पद्म कमलके दो दलोंके समान दीर्घ थे। जिनके दो कमलके समान कान उत्तम कुण्डलोंसे युक्त–भूषित थे। जिनका भाल विशाल-रुंद और बडा था। दो बाहु कल्पवृक्षके समान याचकोंको इच्छित पदार्थ देनेवाले थे। और जगत्का रक्षण करनेमें समर्थ जिनका वक्षस्स्थल मानो अंजनपर्वतका तट था और जिनकी गंभीर नाभि अतिशय शुभ थी। ऐसी कान्तिसे चमकनेवाले प्रभु नेमिजिन इस जगतका रक्षण करे। जिनकी पुष्ट कमर करधौनीसे सुंदर दीखती थी और जिनकी ऊरू खंबेके समान थी। और दो

। द्वादशं पर्व ।

सुपार्श्वं पार्श्वकर्तारं सुपार्श्वं पार्श्ववर्तिनाम्। स्वस्तिकोद्भासिपादान्तं स्तौमि सत्पार्श्वसिद्धये ॥१
अथैकदा सभायां स यादवानां विधेः सुतः। समागतो नतो नम्रैः सोत्कण्ठैर्माधवादिभिः ॥
सत्यभामाशुभाभोगभवनं भासुरं गतः। तयापमानितः प्राप पत्तनं कुण्डिनं मुनिः ॥३
तत्र च श्रीमतीभीष्मसुतां तां रुक्मिणोऽनुजाम्। रुक्मिणीं वीक्ष्य दक्षः स सहर्षोऽभूत्स्वमानसे॥
पुण्डरीकाक्षमाक्षोभ्य नारदस्तत्प्रवार्तया। प्रेरितो बलदेवेन स चचाल सुकुण्डिनम् ॥५
स नियुज्य निजां सेनां तत्पुरागमनाय च। हलायुधेन तत्प्रापच्छिशुपालेन वेष्टितम् ॥६
रुक्मिणीं रुक्मभूषाभां नागवल्लीसुरालये। गतां वर्धापनव्याजाज्जहार मधुसूदनः ॥७

जंघायें उत्तम हाथीकी शुण्डाके समान विघ्न दूर करनेवाली थी। जिनके पाप विनाशक दो चरण कमल तुल्य थे। जिनके नख उत्तम नक्षत्रके समान निर्मल थे। जिनकी विद्वत्ता और वैभव अपार था वे कान्तिसे चमकनेवाले प्रभु नेमिजिनेश्वर इस जगतका रक्षण करे॥ २०१—२०२ ॥

ब्रह्म श्रीपालजीके साहाय्यकी अपेक्षा जिसमें है ऐसे भट्टारक शुभचन्द्रविरचित
भारत नामक पाण्डवपुराणमें यादवोंके द्वारिकामें प्रवेशका और नेमिजिनेश्वरकी
उत्पत्तिका वर्णन करनेवाला ग्यारहवा पर्व समाप्त हुआ॥

[पर्व १२ वा]

हमेशा समीप रहनेवाले अर्थात् भक्ति करनेवाले भव्योंको अपने समीप करनेवाले अर्थात् समीचीन धर्मोपदेश देकर अपने समान करनेवाले तथा जिनके शरीरके दो पार्श्व—बाजु अतिशय सुंदर हैं, स्वस्तिक चिह्नसे शोभायुक्त हुए हैं चरण जिनके ऐसे सुपार्श्वजिनेश्वरकी समीचीन सामीप्यकी सिद्धिके लिये मैं स्तुति करता हूं॥ १ ॥

किसी समय यादवोंकी सभामें ब्रह्मदेवका पुत्र नारद आया तब उसे नम्र और उत्कण्ठा धारण करनेवाले कृष्णादिकोंने नमस्कार किया। इसके अनंतर प्रकाशमान, शुभ और विस्तृत सत्यभामाके महलमें नारदमुनि गये। परंतु उसके द्वारा अपमानित होकर वे वहांसे कुण्डिनपुरको चले गये॥ २--३ ॥ उस नगरमें रूक्मीकी छोटी बहिन तथा श्रीमति और भीष्मराजाकी कन्या रुक्मिणी चतुर नारदने देखी और मनमें वे हर्षित हुए॥ ४ ॥ कमलके समान जिसकी आंखें हैं, ऐसे कृष्णको इस वार्तासे नारदने क्षुब्ध किया। बलभद्रसेभी श्रीकृष्णको प्रेरणा मिली तब वे दोनों कुण्डिनपुरको चले गये॥ ५ ॥ कुण्डिनपुरको आनेके लिये अपनी सेनाको आज्ञा देकर वे श्रीकृष्ण बलभद्रके साथ शिशुपालके द्वारा वेष्टित की गई कुण्डिनपुरीको आगये॥ ६ ॥ नागवल्ली नामक देवीके

ज्ञापयित्वा हृतां तां तान्कम्बुशब्देन तौ द्रुतम्। अचलां चालयन्तौ च चेलतुश्चञ्चलात्मकौ ॥
रुक्मी मद्रीसुतस्तावच्छ्रुत्वा तद्धरणं हठात्। तौ चेलतुर्घनाटोपघोटकैर्द्विरदैः समम् ॥९
प्राङ्नियुक्तं बलं तावद् द्वारिकातः समागमत्। वैकुण्ठबलदेवाभ्यां युयुधाते च तौ मदात् ॥
उभयोः सैन्ययोर्वीरा वल्गन्ति विगलच्छराः। वदन्तो विविधां वाणीं विदन्तो मृतिमात्मनः
रुक्मिण्या दर्शितं विष्णू रुक्मिणं स्वसहोदरम्। प्रबध्य नागपाशेन स्वरथाधोऽक्षिपत्तराम् ॥
दमघोषसुतं क्रुद्धं शतदोषापराधिनम्। हरिर्हरिरिवात्यर्थं जघान करिणं क्रुधा ॥१३
संगरं रणतूर्येण तूर्णितं स निषिद्धय च। सबलः सह सैन्येनोर्जयन्तगिरिमासदत् ॥१४
उत्साहेन समुत्साही विवाह्य विष्टरश्रवाः। तां द्वारिकां पुरीं प्राप पताकाकोटिसंकटाम् ॥१५
अथैकदा मुदा दूतं दुर्योधनमहीपतिः। प्राहिणोच्च हृषीकेशमिति शिक्षासमन्वितम् ॥१६
गत्वा दूतः स विज्ञप्तिं चर्करीति स्म सस्मयः। इति वैकुण्ठ सोत्कण्ठमकुण्ठो भविता सुतः ॥
यदि ते प्रथमं पुत्री ममापि भविता यदि। तयोर्विवाह इत्येवं भवतान्नियमाल्लघु ॥१८

मंदिरमें सुवर्णालंकारोंकी तुल्य कान्ति धारण करनेवाली रुक्मिणी पूजा करनेके बहानेसे गई थी। वहांसे मधुसूदनने -- कृष्णने उसे हरण कर लिया। उसको हमने हरण कर लिया है इस बातकी कृष्णबलदेवोंने शंखध्वनिसे सूचना दी और चञ्चल स्वभाववाले वे कृष्ण बलभद्र पृथ्वी-को हिलाते हुए शीघ्र चलने लगे ॥७-८॥ रुक्मी और मद्रीसुत-शिशुपाल दोनोंने बलसे रुक्मिणीका हरण किया है ऐसा सुना तब वे दोनों विशाल आटोपसे युक्त घोडों और हाथियोंके साथ लडनेके लिये निकले। पूर्वमें जिसको आज्ञा दी चुकी थी ऐसा सैन्यभी द्वारिकानगरीसे वहां आया था। वे दोनों [रुक्मी और शिशुपाल] श्रीकृष्ण और बलदेवके साथ गर्वसे लडने लगे ॥ ९-१० ॥ जिनके हाथोंसे बाण छूट रहे हैं ऐसे दोनों सैन्योंके वीर गर्जना करने लगे। अपना मरण न जानते हुए नानाविध भाषण आवेशसे बोलने लगे ॥११॥ रुक्मिणीने अपने भाई रुक्मीको दिखाया तब श्रीकृष्णने अपने नागपाशसे बांधकर अपने रथके नीचे उसको डाल दिया। दमघोषपुत्र-शिशुपालने कृष्णके सौ अपराध किये थे इसलिये हरि-सिंह जैसे हाथीको मारता है वैसे हरिने--कृष्णने शिशुपालको अतिशय क्रोधसे मार डाला ॥ १२-१३ ॥ रणवाद्योंसे शब्दमय युद्धको कृष्णने बन्द कर दिया और बलदेवके साथ सैन्यको लेकर ऊर्जयन्तपर्वतपर वह आगया। आनंदित और सामर्थ्यशाली श्रीकृष्णने उत्साहसे रुक्मिणीके साथ विवाह किया और कोटयवधि पताकाओंसे व्याप्त द्वारिकानगरीको वह आया ॥१४-१५॥ किसी समय दुर्योधनराजाने श्रीकृष्णके पास उपदेशसहित एक दूत आनंदसे भेज दिया। वह दूत द्वारिकाको जाकर आश्चर्यचकित होकर इस प्रकार विज्ञप्ति करने लगा। "हे वैकुण्ठ-श्रीकृष्ण, यदि तुझे चतुर पुत्र होगा और मुझे यदि प्रथमतः पुत्री होगी तो उन दोनों का नियमसे शीघ्र विवाह होना चाहिये ऐसा मैं उत्कंठासे कहता हूं।" इस प्रकार दूतका वचन सुनकर कृष्णने

श्रुत्वा तद्वचनं विष्णुस्तथेति प्रतिपद्य च। संमानितस्ततो दूतो हास्तिनं गतवान्क्षणात् ॥१९
ततस्तु मदनं लेभे रुक्मिणी वैरिणा हृतम्। जातमात्रं खगेशेन पालितं परमोदयम् ॥२०
तत्र लाभाञ्शुभान्लब्ध्वा षोडशाब्दे च षोडश। नारदेन समानीतो गृहं तस्थौ च मन्मथः॥
सत्यभामा सुतं शीघ्रं सुषुवे सातसंगता। भानुं भानुमिव प्राची प्रध्वस्ततिमिरोत्करम् ॥२२
अथैकदा सभास्थाने भुञ्जन्तो भोगसंपदम्। स्थिता अर्धार्धसाम्राज्यं पाण्डवाः कौरवाश्च ते ॥
सुखतः समयं निन्युः समयज्ञा नयान्विताः। अर्धराज्यं प्रकुर्वाणाः पाण्डवाः पटुपण्डिताः ॥
कौरवाः कौरवं कृत्वा परर्द्धिमसहिष्णवः। दुर्योधनादयस्तस्थुः कौशिका इव भास्करम् ॥२५
दुष्टा दुर्योधनाद्यास्ते विधातुं संधिदूषणम्। उद्युक्ता व्यक्तवाक्येन वदन्ति स्मेति दुर्नयाः ॥२६
वयं शतमिमे पञ्च कथमर्धार्धभागतः। साम्राज्यं भुज्यते भङ्क्त्वा सर्वैरन्याय इत्ययम् ॥
पञ्चोत्तरशतं भागान्कृत्वा साम्राज्यमुत्तमम्। भोक्ष्यामहे वयं वर्या नान्यथा न्यायविच्युतेः॥

प्रचण्डाः पाण्डवाः पञ्च कथमर्धस्य भागिनः।
साम्राज्यस्य शतं सम्यग्वयं किंचार्धभागिनः ॥२९

तथास्तु ऐसा कहकर स्वीकार किया। तदनंतर सम्मानित किया दूत हस्तिनापुरको जल्दी चला गया ॥ १६–१९ ॥ तदनंतर रुक्मिणीको मदनपदका धारक पुत्र हुआ परंतु जन्म होनेके बाद ही वैरीने उसका हरण किया। विद्याधरने उसका पालनपोषण किया। वह विद्याधरके घरमें उत्कृष्ट वैभव को प्राप्त हुआ। विद्याधरके क्षेत्रमें उसको सोलह शुभ लाभ प्राप्त हुए। जब उसको सोलह वर्ष पूर्ण हुए तब नारद वहांसे उसे लाया। वह मदन सुखसे आकर अपने घरमें रहने लगा ॥२०–२१॥ जैसी पूर्व दिशा अंधकारका समूह नष्ट करनेवाले सूर्यको जन्म देती है वैसी सुखसे युक्त सत्यभामाने सूर्यके समान तेजस्वी पुत्रको शीघ्र जन्म दिया ॥ २२ ॥ किसी समय पाण्डव और कौरव आधा आधा साम्राज्य लेकर भोगसम्पदाको भोगने लगे वे हररोज राज सभामें एकत्र आकर बैठते थे ॥ २३ ॥ नयसे युक्त, समयको जाननेवाले, अतिशय चतुर विद्वान् ऐसे पाण्डव अर्द्धराज्यमें अपना शासन करते हुए सुखसे काल व्यतीत करने लगे ॥ २४ ॥ जैसे कौशिक–उल्लु पक्षी सूर्यको सहन नहीं करते हैं, उसके साथ वे द्वेष करते हैं वैसे दूसरेकी ऋद्धि-उत्कर्ष सहन न करनेवाले दुर्योधनादिक कौरव पृथ्वीतलमें शब्द करते हुए अर्थात् कलह करते हुए कालयापन करने लगे ॥ २५ ॥ दुष्ट और दुराचरण करनेवाले दुर्योधनादिक संधिमें दूषण उत्पन्न करनेके लिये उद्युक्त होकर स्पष्ट वाक्योंमें इस प्रकार बोलने लगे। " हम सौ हैं और ये पाण्डव केवल पांचही हैं परंतु आधा आधा राज्य दोनों मिलकर हम भोग रहे हैं। अर्थात् पाण्डव पांच होकरभी उनको आधा राज्य दिया गया है और हम सौ होनेपरभी हमको आधाही राज्य दिया है, यह अन्याय हुआ है। वास्तविक इस राज्यके १०५ विभाग करके इस उत्तम साम्रा-

इति दूषणदुष्टाङ्गा योद्धुं संनद्धमानसाः। दुर्योधनादयो योधा विदधुः संधिदूषणम् ॥३०
क्रुध्यन्ति स्म महाक्रोधाद्बुधा अपि निरोधिनः। पाण्डवास्तद्वचः श्रुत्वा भ्रुकुटीभीषणाननाः॥
चत्वारश्चतुराश्चोचुश्चालयन्तोऽचलां चिरम्। अचला भीमसेनाद्याः संचरन्त इतस्ततः ॥३२
काकैरिव वराकैः किं सदा शङ्कासमाकुलैः। एभिरस्मासु शक्तेषु सत्सु सर्वैरपि स्फुटम् ॥३३
तदा भीमोऽवदद्भ्रातर्भस्मयामि क्षणार्धतः। इमान् दहेन्न किं दाह्यं विस्फुलिङ्गस्फुरद्रुचिः॥
शतमप्येकवारेण क्षणादुत्क्षिप्य सागरे। क्षिपामि क्षीणचित्तानामेषां भीमोऽगदीदिति ॥३५
अशीशमत्तदा भीमं भीतिदं भीषणाकृतिम्। ज्येष्ठः सामोक्तिभिर्नीरैर्ज्वलन्तं ज्वलनं यथा ॥
अर्जुनोऽर्जुनवद्दीप्तो जज्वाल क्रोधवह्निना। दीप्तेन कौरवोक्तेन दारुणा ज्वलनो यथा ॥३७
बाणेनैकेन शक्तेन शतमेषां सुदारुणः। दारयेयं दृषत्खण्डो यथा काकशतं सकृत् ॥३८
इमे तावन्मदान्मुक्तमर्यादाश्च भवन्त्यहो। नाहं क्रुद्धोऽर्यमा यावत्तमांसीव घनानि च ॥३९

ज्यका उपभोग हम श्रेष्ठ लोग लेंगे। यदि ऐसा न होगा तो समझना चाहिये की न्याय नष्ट हुआ है। ये प्रचण्ड पाण्डव पांच हैं तो भी आधेके वे क्यों अधिकारी हैं? और हम सौ भाई होकरभी आधे साम्राज्यके अधिकारी हैं" ऐसा विचार कर दूषणसे दुष्ट है आत्मा जिनकी ऐसे वे कौरव-दुर्योधनादिक योद्धा युद्धके लिये सन्नद्धचित्त हो गये। और उन्होंने सन्धिमें दूषण उत्पन्न किया॥ २६-३० ॥ विद्वान होकरभी विरोधी पाण्डव उनका वचन सुनकर अतिशय क्रुद्ध हो गये और क्रोधसे उनकी भौंहें ऊपर चढ गईं जिससे उनका मुख अतिशय भयंकर दिखने लगा॥ ३१ ॥

[भीमादिकोंकी कोपशान्ति] अपने ध्येयपर स्थिर रहनेवाले भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ये चारों चतुर भाई क्रोधसे इतस्ततः घूमने लगे और अपने चलनेसे जमीनको कम्पित करके इसतरह बोलने लगे। "हम समर्थ होनेसे हमेशा डरनेवाले, दीन कौवेके समान ये दुर्योधनादिक सब मिलकरभी हमारा क्या नुकसान करेंगे? हम स्पष्ट कहते हैं कि वे हमारा बालभी बाँका न कर सकेंगे"। भीमने कहा कि, "हे भाई मैं इन कौरवोंको क्षणार्द्धमें भस्म करूंगा। जिसकी कान्ति बढती है ऐसा एक अग्निका कण जलाने योग्य लकडी आदि वस्तुको क्या न जलायेगा? जिनका चित्त क्षीण है तुच्छ है ऐसे सौ कौरवोंकोभी एक साथ उठाकर एक क्षणमें मैं समुद्रमें फेक दूंगा"। भीति देनेवाले, भीषण आकृतिवाले ऐसे भीमको प्रज्वलित अग्निको जैसे जलसे शान्त किया जाता है, वैसे ज्येष्ठने-युधिष्ठिरने शान्तिके भाषणोंसें शान्त किया। जैसे इन्धनसे अग्नि प्रज्वलित होता है वैसे मनको त्वेष उत्पन्न करनेवाले कौरवोंके भाषणसे अर्जुन चांदीके समान चमकने लगा और क्रोधाग्निसे प्रज्वलित हुआ। "जैसे एकही पाषाण सैंकडो कौवोंको युगपत् भगाता है वैसे सामर्थ्य-युक्त एक बाणसेही भय उत्पन्न करनेवाला मैं इन सौ कौरवोंको विदीर्ण करूंगा॥३२-३८॥ जब तक सूर्यका उदय नहीं होता है तबतक सांद्र अंधकार मर्यादा छोडकर आकाशमें फैल जाता है

इत्युक्त्वाथ पृथुः पार्थः करे कोदण्डमादधत्। प्रचण्डेन सुकाण्डेन संयोज्य समरोद्यतः॥४०
तथास्थं तं विलोक्याशु स्थिरधीश्च युधिष्ठिरः। अवारयद्वरैर्वाक्यैर्यतः सन्तो विरोधहाः ॥४१
अवदन्नकुलः कौल्यः कुलशालं समूलतः। निर्मूल्य कौरवाणां हि निःफलं च करोम्यहम् ॥
कौरवा वा पतङ्गा वा मयि चापि धनंजये। स्वयं निपत्य भूतित्वं यास्यन्ति यत्नतो विना॥
सहदेवोऽवदद्धीरः केऽमी कौरवभूरुहाः। मया परशुना छिन्नाः क स्थास्यन्ति विनश्वराः॥
उत्क्षिप्य बाहुदण्डेन खण्डयित्वा च खण्डशः। कौरवांश्च दिगीशानां बलिं दास्यामि दिङ्मुखे॥
पिशुनाञ्शून्यतापघ्नान्कौरवान्गर्विणोऽखिलान्। यावन्न विदधे तावत्स्वास्थ्यं मेऽत्र कुतस्तनम्॥
दर्पिणोऽमी सुसर्पाभाः स्थितेन च गरुत्मता। मया ते किं करिष्यन्ति रुट्फणाफूत्कराः खलाः॥
इति तौ वीतहोत्राभौ ज्वलन्तौ ज्वालयानिशम्। युधिष्ठिरसुमेघेन शमं नीतौ वचोजलैः॥४८
इति ते पूर्ववत्सर्वे शमं प्राप्ता युधिष्ठिरात्। शुद्धा युद्धमतिं हित्वा तस्थुः सुस्थिरमानसाः॥४९
भुञ्जन्तो भोगिनो भोग्यां भुवं भीतिविवर्जिताः। नयन्ति स्म नृपाः कंचित्समयं स्मेरचक्षुषः॥
अथ दुर्योधनो योद्धा दुर्बुद्धिः शुद्धिवर्जितः। दधौ धर्मात्मजादीनां हतौ मतिं वृषातिगाम्॥

वैसेही जबतक मैं क्रोध नहीं करता हूं तबतक ये कौरव मदसे उन्मत्त होकर मर्यादा छोड देंगे" इस तरह बोलकर महत्त्वशाली अर्जुनने हाथमें धनुष्य धारण किया और उसको प्रचण्ड बाण जोडकर युद्ध करनेके लिये उद्युक्त हुआ। युद्ध करनेकी अर्जुनकी तयारी देखकर स्थिर बुद्धिवाले युधिष्ठिरने तत्काल योग्य भाषणोंसे उसका निवारण किया। योग्यही है, कि सज्जन विरोधको नष्ट करनेवाले होते हैं॥ ३९-४१॥ कुलीन नकुल इस प्रकार कहने लगा "कौरवोंका यह कुलरूपी शाल-वृक्ष मूलसे उखाड दूंगा और इसको फलहीन करूंगा। ये कौरव पतङ्गके समान हैं, और मैं अग्निके समान हूं। ये विचारे विना प्रयत्न स्वयं आकर पडेंगे और भस्म हो जायेंगे"। धैर्यवान सहदेव इसप्रकार बोला। "मेरे द्वारा कुल्हाडीसे तोडे हुये ये कौरवरूपी वृक्ष नष्ट होकर कहां रहेंगे? मैं कौरवोंको मेरे बाहुदण्डसे उठाकर और खण्डशः उनके टुकडे टुकडे करके इन्द्रादिक दश दिक्पालोंके दश दिशाओंके मुखमें बलि देऊंगा। जबतक दुष्ट,गर्वसे उद्धत ऐसे सर्व कौरवोंको मैं नष्ट नहीं करूंगा तबतक मुझे स्वस्थता-शान्ति कहांसे मिलेगी। ये कौरव सर्पके समान दर्पयुक्त हैं। क्रोधरूपी फणाके फूत्कार धारण करनेवाले और दुष्ट हैं। परंतु उनके लिये मैं गरुडकासा हूं। मेरे सामने वे क्या कर सकेंगे? उनकी कुछ दाल न गलेगी। इसप्रकार ज्वालासे हमेशा जलनेवाले अग्निके समान वे नकुल और सहदेव थे तोभी युधिष्ठिररूपी सुमेघकेद्वारा भाषणरूपी जलसे शान्त किये गये। इसप्रकार वे पूर्ववत् युधिष्ठिरसे शान्तता को प्राप्त हुए। शुद्ध और स्थिर मनवाले उन्होंने युद्धकी बुद्धि छोडदी॥४२-४९॥ भोग्य पृथ्वीका पालन करनेवाले भीतिरहित प्रफुल्ल आंखवाले,उन भोगी पाण्डव राजाओंने कुछ काल व्यतीत किया॥५०॥ तदनंतर दुर्बुद्धि, शुद्धिरहित अर्थात् निष्कपटतारहित, योद्धा

अन्यदा पत्तने तेन च्छलेनोच्छलितात्मना। लाक्षामयं क्षणैः सार्धं क्षणेन विदधे महत् ॥५२
क्वचिद्विकटकूटेन संकटं प्रकटं स्फुटम्। टङ्कोत्कीर्णमिवाभाति सुघण्टाटङ्कितं गृहम् ॥५३
जालिकाजालसंपूर्णं क्वचित्तद्वेश्म विस्तृतम्। पाण्डवानां सुजालं वा व्यभाज्ज्वलनसंनिभम् ॥
क्वचित्कटाक्षक्षेपाय गवाक्षं क्षणसुन्दरम्। तेषां गोहृतयेऽक्ष्णां च दक्षः सममकारयत् ॥५५
क्वचित्तद्गृहमाभाति तरत्तोरणसुश्रिया। अतो रणच्छलं द्रष्टुं निर्मितं मूर्तिमद्रणम् ॥५६
सुस्तम्भस्तम्भितं क्वापि वेश्मस्तम्भनविद्यया। स्तम्भितुं वैरिणो नूनं सुस्तम्भमिव सुस्थिरम् ॥
क्वचिद्विचित्रचित्रेण चित्रितं च कुमित्रवत्। चित्रं यथा सुभित्तौ च चमत्कारकरं हि तत् ॥
प्रतोलीपरिखापूर्णं वप्रप्राकारशोभितम्। जतूद्वसितं वेगाद्विदधे कौरवाग्रणीः ॥५९
ततस्तृप्तिं वितन्वानं पितामहमवीवदत्। कौरवा विनयावासा नयेन नतमौलयः ॥६०
पितामह सुगाङ्गेय गङ्गाजलसुनिर्मल। निर्मितं सद्म निश्छद्म भक्त्यास्माभिः स्मयावहम् ॥
यदुत्तुङ्गसुशृङ्गेण गगनं गन्तुमुद्यतम्। जेतुं जित्वरशीलानां सुराणां सौधसंततिम् ॥६२
यत्स्तम्भबाहुयुग्मेन ग्रहीतुं परवेश्मनाम्। संपदां सुपदापन्नं विपद्द्वारं रराज च ॥६३

दुर्योधनने धर्मात्मजादिकोंको अर्थात् युधिष्ठिरादिकोंको मारनेमें धर्मरहित बुद्धिको--पापबुद्धिको धारण किया ॥५१॥ किसी समय हस्तिनापुर नगरमें अतिशय कपटी स्वभाववाले दुर्योधनने शीघ्रही बडा लाक्षागृह बनवाया। वह कहीं कहीं बडे शिखरोंसे युक्त था, कहीं कहीं उसमें घंटायें लटकाई थी। वह खूब प्रकाशयुक्त था,और टाकीसे मानो उत्कीर्ण हुआ शोभता था। वह विस्तृत गृह कहीं कहीं जालिकाओंके समूहसे भरा हुआ था; मानो पाण्डवोंके लिए बनाया गया अग्नितुल्य जालही हो। चतुर दुर्योधनने उस गृहमें पांडवोंके नेत्रोंको हरनेवाले प्रकाश देने योग्य सुंदर गवाक्ष बनवाये। कहीं कहीं वह गृह चंचल तोरणोंकी उत्तम शोभासे सुंदर कर दिया गया। मानो कौरव पाण्डवोंका रणच्छल देखनेके लिये मूर्तिमान् रण निर्माण किया गया हो। कुछ प्रदेशोंमें उत्तम स्तंभोंसे युक्त वह गृह वैरियोंका स्तंभन करने के लिये स्तंभनविद्यानें मजबूत और उत्तम स्तंभयुक्त गृहही बनवाया हो ऐसा भास होने लगा। उस गृहकी भित्तियां नानाप्रकारके चित्रोंसे चित्रित की गई थी। इसलिये वह जैसा कुमित्र अपने अनेक टेढे परंतु हिताभासरूप अभिप्रायोंसे आश्चर्य उत्पन्न करता है, वैसा ऐश्वर्ययुक्त दीखने लगा। वह मार्ग और खाईसे युक्त था। धूलिसाल और तटसे सुंदर ऐसा लाक्षागृह कौरवोंके अगुआ दुर्योधनने शीघ्र बनवाया दिया ॥ ५२-५९ ॥ नीतिसे नतमस्तक और विनयके निवासस्थान ऐसे कौरवोंने लाक्षागृहके निर्माणानंतर प्रीतिको विस्तारसे करनेवाले अर्थात् अतिशय प्रेमयुक्त ऐसे पितामहको--भीष्माचार्यको इस प्रकारसे कहा "गंगाके पानीके समान निर्मल हे पितामह गांगेय, हमने भक्तिसे कपटरहित होकर आश्चर्यकारक घर बनवाया है। जो जयशाली देवोंकी प्रासादपंक्तिको जीतने के लिये ऊंचे शिखरोंसे आकाशमें जानेके लिये उद्यत हुआ है। यह

अट्टालिकाललाटेन शुम्भच्छोभाललामकम्। यद्वत्स्वद्धिसंपन्नं यथात्र कौरवं कुलम् ॥६४
कदाचिन्निशि संखिन्नो निशानाथोऽवतिष्ठते। यदुत्तुङ्गसुशृङ्गाग्रे ग्लानिहान्यै क्षणं क्षणी॥६५
यत्पताकापटेनाशु पवनोद्धूतवेगिना। नाकिनः स्थितये तूर्णमाकारयति शुद्धितः॥६६
सुस्तम्भैः स्तम्भकैर्नॄणां जनाश्चर्यैर्जनाश्रयैः। विशाखाशिखरैः क्षिप्रं क्षिणोति खेटगृहांश्च यत्॥
देवेदं सदनं सम्यक्सिद्धिदं निर्मितं मया। पाण्डवानां निवासाय तेभ्यो दातव्यमञ्जसा॥
युधिष्ठिरः स्थिरं स्थेयांस्तत्र तिष्ठत्वहर्निशम्। प्राज्यं राज्यं प्रकुर्वाणः किरंस्तेजो दिशो दश॥
वयं च स्वगृहे स्थित्वा स्थिरा राज्यार्थलाभतः। सुखं तिष्ठाम उन्निद्राः समुद्रा इव निश्चलाः॥
इत्याकर्ण्य मृगाङ्केयो गिरं जगावुदारधीः। यत्त्वयोक्तं तदेवेष्टं मम मान्यं मनोगतम्॥७१
तव यन्मन्त्रणं मान्यं मह्यं तद्रोचते ध्रुवम्। यदेकत्र स्थितित्वं हि परं वैरस्य कारणम्॥७२
य एकत्र स्थिता गेहे ते विरोधं प्रकुर्वते। विरोधहानयेऽत्यन्तं पृथग्गेहस्थितिर्वरा॥७३
कुटुम्बकलहो यत्र तत्र स्वास्थ्यं कुतस्तनम्। यथा भरतचक्रीशश्रीबाहुबलिनोर्ननु॥७४

गृह खंबेरूपी बाहुओंसे शत्रुओंके घरोंकी सम्पत्ति ग्रहण करनेके लिये मजबूत नीवपर खडा हुआ और शत्रुओंके लिए संकटद्वार-स्वरूप शोभता है ॥६०-६३॥ यह गृह अट्टालिकारूपी ललाटसे चमकनेवाली मुख्य शोभा धारण करता है। अतः यह ऋद्धिसंपन्न, वैभवपूर्ण कौरवकुलके समान दीखता है ॥६४॥ कभी कभी इसके ऊंचे उत्तम शृङ्गपर ग्लानि दूर करनेके लिये क्षणी-पौर्णिमाका चंद्र खिन्न होकर कुछ क्षण विश्रान्ति लेता है ॥६५॥ हवासे जिनमें वेग उत्पन्न हुआ है ऐसी पताकाओंके वस्त्रद्वारा जो घर शीघ्रही निर्मलतासे देवोंको रहनेके लिये बुलाता है ॥६६॥ लोगोंको अपनी शोभा दिखाकर स्तब्ध करनेवाले खंबोंसे, लोगोंको आश्चर्यचकित करनेवाले और आश्रय देनेवाले महाद्वारोंके शिखरोंसे जो प्रासाद आकाशमें संचार करनेवाले ग्रहोंको शीघ्र विद्ध करता है। हे देव, मैंने उत्तम सिद्धि देनेवाला यह गृह पाण्डवोंको निवास करनेके लिये निर्माण किया है। आप उनको रहनेके लिये अवश्य दे ॥६७-६८॥ उत्कृष्ट राज्य करनेवाला और अपना तेज दश-दिशाओंमें फैलानेवाला युधिष्ठिर वहां रात्रंदिवस स्थिर रहे। हमभी राज्यार्धके लाभसे अपने घरमें समुद्रके समान निश्चल और जागरूक होकर सुखसे स्थिर रहेंगे" ॥ ६९-७० ॥ इसप्रकार दुर्योधनका भाषण सुनकर उदार बुद्धिवाले भीष्माचार्यने कहा कि, "जो तुमने कहा वह मुझे पसंद है। तुम्हारा मनोऽभिप्राय मुझेभी मान्य है। हे दुर्योधन, तुम्हारा जो मान्य विचार है वह मुझे निश्चयसे रुचता है। क्योंकि एकत्र रहना वैरका मुख्य कारण है। जो घरम एकत्र रहते हैं वे विरोध करते हैं इसलिये विरोध नष्ट होनेके लिये सर्वथा भिन्न गृहमें रहना अच्छा है, सुखदायक है। ॥ ७१-७३ ॥ जिस कुलमें कलह उत्पन्न होता है, उसमें स्वास्थ्य सुख कहांसे प्राप्त होगा? जैसे भरतचक्री और श्रीबाहुबलीके कुलमें कलह उत्पन्न होनेसे सुख और स्वास्थ्य नष्ट हुआ।

पृथक्स्थितौ शुभं सारं सुखसंततिरुन्नता। राज्यभोगो भवेच्छुभ्रोऽविरोधश्चक्षुषोरिव ॥७५
इति निश्चित्य गाङ्गेयस्तानाहूय सुपाण्डवान्। अवदद्राजशार्दूलो मत्या सुरगुरूपमः ॥७६
पाण्डवाश्चण्डकोदण्डाः प्रचण्डाखण्डलोपमाः। यूयं श्रृणुत सद्वाक्यं सातसिद्धयर्थमञ्जसा ॥
उत्तमे निर्मिते धाम्नि नूतने सत्तनूपमे। स्थितिं कुरुत शीघ्रेण यूयं विघ्नौघहानये ॥७८
भिन्नं स्थिता भवन्तोऽत्र सुखसंदोहभागिनः। भवितारो न भेतव्यं भवद्भिर्भव्यतायुतैः ॥
इत्युक्तास्ते युताः सातैर्गुरुप्रामाण्यपूरिताः। प्रतस्थिरे गृहं गन्तुं गुणैरापूरिताशयाः ॥८०
ततो भेर्यो भयोन्मुक्ता भेणुर्भम्भाभिभाषणाः। दध्वनुः पटहव्यूहाः सस्वर्वंशजाः स्वराः॥८१
नटा नेदुः समुद्भिन्नपुलका विपुलामलाः। मृदङ्गतालकंसालवीणाघुर्घरिकान्विताः ॥८२
मङ्गलानि सगेयानि जगुर्गीतानि नायकाः। कामिन्यः कलनादेन कलयन्त्यश्च तद्गुणान् ॥
इत्थं यथायथं योग्याः कुर्वन्तो दत्तिविस्तृतिम्। समङ्गलाः समापुस्ते सुमुहूर्ताह्नि तद्गृहम्॥८४
तत्र स्थिता ददुर्दानं मानं सत्कुलवासिनाम्। चक्रुः पूजां सुपूज्येषु पाण्डवाः स्थिरमानसाः॥

॥७४॥ जैसे दो चक्षु-आंखे अलग रहती हैं, इसलिये उनमें विरोध नहीं होता वैसे पृथक् रहनेसे विरोध न होकर शांति रहती है। ऊंचे दजका सुख संतत प्राप्त होता है। उज्ज्वल राज्यभोग मिलते हैं और विरोध नष्ट होता है" ॥७५॥ इस प्रकारसे निश्चयकर राजाओंमें श्रेष्ठ, और मतिसे बृहस्पति तुल्य ऐसे गाङ्गेय इसप्रकार बोले " भयंकर धनुष्यधारक, प्रचण्ड इंद्र के समान हे पाण्डव आप सुखकी प्राप्ति होनेके लिये सत्य हितोपदेश सुनें ॥ ७६-७७ ॥ नवीन उत्तमशरीरके समान निर्माण किये हुए सुंदर प्रासादमें आपको विघ्नसमूह का नाश होनेके लिये शीघ्र निवास करना चाहिये। हे पाण्डवो, आप कौरवोंसे अलग होकर इस प्रासादमें रहनेसे सुखसमूहको भोगेंगे। आप भव्य हैं, अच्छे निष्कपट स्वभावके धारक हैं, आप बिलकुल न डरें" ॥ ७८-७९ ॥ इसप्रकार उपदेश करनेपर सुखयुक्त और गुरुके [भीष्माचार्यके] वचनोंपर विश्वास रखनेवाले तथा गुणोंसे जिनका मन पूर्ण भरा हुआ है ऐसे पाण्डव लाक्षागृहमें रहनेके लिये गये ॥ ८० ॥

[पाण्डवोंका लाक्षागृहमें निवास] उस समय भयरहित भेरीवाद्य बजने लगे। उनका भंभंभं ऐसा ध्वनि होने लगा। पटह नामक वाद्यभी बजने लगे। वंशीसे मधुर स्वर निकलने लगे। निर्मल वेषवाले बहुत नट नृत्य करने लगे, जिन्हें देखकर शरीरपर रोमांच खडे हो जाते थे। नायक लोक मृदङ्ग, ताल, कंसाल, वीणा और घुर्घुरिका वाद्योंकी ध्वनिका अनुसरण कर गाने योग्य मंगलगीत गाने लगे। स्त्रियांभी मधुरस्वरोंसे पाण्डवोंके गुण गाने लगीं। इसप्रकार यथाविधि योग्य अतिशय दान देनेवाले उन पाण्डवोंने मंगलके साथ सुमुहूर्तयुक्त दिनमें उस लाक्षागृहमें प्रवेश किया। ॥ ८१ - ८४ ॥ लाक्षागृहमें निवास करनेवाले स्थिराचित्त पाण्डव दान देते थे, उत्तम कुलमें जन्मे हुए सज्जनोंको मान देते थे आर सुपूज्य सत्पुरुषोंमें पूजा-आदर रखते थे ॥८५॥ दुर्योधनका कपट न

मुग्धाः शुद्धधियो धर्म्यं कुर्वन्तः कर्म कोविदाः। सातमास्तिघ्नुवानास्ते स्थितिं भेजुर्भयातिगाः
तेषां दम्भमजानन्तो निर्दम्भारम्भभागिनः। तस्थुस्तत्र हि को वेत्ति दारुमध्यस्य रिक्तताम्॥
कथं कथमपि ज्ञात्वा विदुरो जतुनिर्मितम्। सदनं सदयो दीप्रस्तत्कापट्यमचिन्तयत् ॥८८
युधिष्ठिरं समाहूय वचनं विदुरोऽवदत्। तत्कैतवमजानानं जानानं जिनसद्रुचिम् ॥८९
वत्स सज्जन विश्वास्या दुर्जनाः सज्जनैर्न हि। अन्यथा ददते दुःखं दन्दशूका इवोद्धुराः॥
विश्वास्या मुखमिष्टाश्चान्तर्मला निखिलाः खलाः। सेवालिनस्तु पाषाणा यथा पाताय केवलम्॥
राजभिर्न च विश्वास्यं परेषां हृदयं खलु। परे तत्र कथं पुत्र विश्वास्याः स्युः सुखार्थिभिः॥
न विश्वसन्ति भूपालाः सुतं तातं च मातरम्। भ्रातरं भामिनीं तत्र कथमन्यान्खलाञ्जनान्॥
अतस्त्वया न विश्वास्याः कौरवाः कलिकारिणः। भवतो धाम्नि संस्थाप्य मारयिष्यन्ति दुर्धियः
लाक्षागृहमिदं भद्र निर्मितं केन हेतुना। न जानीमो वयं नूनमेषां को वेत्ति छद्मताम् ॥९५
दिवा स्थितिर्विधातव्या जातुचिन्नात्र सद्मनि। स्थितिश्चेद्दुर्गमं दुःखं भविता भवतामिह ॥९६
वनक्रीडापदेशेन प्रतिघस्रमघस्मरैः। वने रन्तुं प्रगन्तव्यं भवद्भिर्भाग्यभोगिभिः ॥९७

जाननेवाले शुद्ध बुद्धिके विद्वान् पाण्डव वहां रहकर धर्मकर्म करने लगे। सुखानुभव करते हुए निर्भय होकर वे वहां रहने लगे ॥ ८६ ॥ कौरवोंके कपटका पता जिनको नहीं लगा था ऐसे पाण्डवोंके सब कार्य कपटरहित थे। वे वहां सुखसे रहने लगे। योग्यही है, ढोलकी पोल कौन जानता है? ॥८७॥ दयालु और तेजस्वी विदुरने बडे कष्टोंसे वह गृह लाखसे बनवाया गया है ऐसा जान लिया तब कौरवोंके कपटका वे मनमें विचार करने लगे ॥ ८८ ॥

[युधिष्ठिरको विदुरका उपदेश] जिनेश्वरके ऊपर श्रद्धा रखनेवाले और कौरवोंका कपट न जाननेवाले युधिष्ठिरको बुलाकर विदुरने इस प्रकार कहा "हे वत्स हे सज्जन, सज्जनोंको दुर्जनोंपर विश्वास रखना योग्य नहीं है, यदि विश्वास रखा जावे तो क्रुद्ध सर्पोंके समान वे दुःख देते हैं। संपूर्ण दुर्जन विश्वासयोग्य नहीं है, क्योंकि वे मुखसे मिष्ट बोलते हैं, परंतु उनके पेटमें मल–कपट होता है। वे दुर्जन शेवालयुक्त पाषाणके समान अधःपतनके लिये कारण होते हैं। राजाओंको दूसरोंके हृदयका विश्वास रखना योग्य नहीं है। फिर हे पुत्र, सुखेच्छुओंके द्वारा शत्रुओंके ऊपर विश्वास रखना कैसे योग्य होगा? राजा पुत्र, पिता, माता, भाई, और पत्नीपरभी विश्वास नहीं रखते हैं। फिर अन्य दुर्जनोंपर वे विश्वास कैसा रखेंगे? इस लिये हे युधिष्ठिर, कलह करनेवाले इन कौरवोंपर तुम विश्वास मत करो। वे दुष्ट इस घरमें तुमको रखकर मारेंगे। हे भद्र, किस हेतुसे यह लाक्षागृह इन्होंने बनवाया है, हम नहीं जानते हैं; क्योंकि इनका कपट जाननेमें कौन समर्थ है? हे वत्स तुम्हें दिनमें इस महलमें कदापि नहीं रहना चाहिये। यदि रहोगे तो तुम्हें बडा कष्ट सहन करना पडेगा। वनक्रीडाके निमित्तसे भाग्यका अनुभव करनेवाले

आवासरं विशालेऽस्मिन्विपिने रन्तुमिच्छया। विघ्नौघहानये स्थेयं भवद्भिर्वैरिदर्पहैः ॥९८
त्रियामायां सुमित्रैश्च पवित्रैरत्र सद्धिया। जाग्रद्भिः सुस्थिरं स्थेयं युष्माभिर्निश्चलात्मकैः ॥९९
नेत्रान्ध्यमेडतां कर्णे गले घुर्घुरतामपि। कुर्वन्ती देहसंस्थैर्यं सुषुप्तिर्मरणायते ॥१००
इत्थं विदुरभूपेन वने स्थित्वा स्थिराशयाः। पाण्डवाः शिक्षयित्वाथ वनं जग्मे सुबुद्धिना ॥
स तत्र चिन्तयंश्चित्ते चिरं चतुरमानसः। पाण्डवानां सुखोपायं समास्तेऽपायवर्जनम् ॥१०२
तावता विदुरस्यासीत्सुरङ्गाखनने मतिः। तया यतो भवेत्तेषां निर्गमो विधुरे स्थिते ॥१०३
खातज्ञानिति संचिन्त्य पप्रच्छ स्वच्छमानसः। आहूयादात्परां शिक्षां सुरङ्गाखनने स च ॥
ते खातज्ञास्ततस्तूर्णं सन्निशान्तस्य कोणके। सुरङ्गां कर्तुमुद्युक्ता रेभिरेऽचलचित्तकाः ॥१०५
द्राघीयसीं सुरङ्गां ते गमने निर्गमे पराम्। गूढां गूढतरामूढा विधाय पिदधुस्ततः ॥१०६
ज्वालितेऽपि निशान्तेऽस्मिन्धार्तराष्ट्रैः सुराष्ट्रगैः। निर्गच्छन्तु ततस्तूर्णं पाण्डवाः सत्पथाखिलाः
इति तां रङ्गतस्तूर्णं सुरङ्गां तद्गृहान्तरे। निर्माप्य विदुरस्तस्थौ शर्मणा चिन्तयातिगः ॥१०८
स्वयं न लक्षिता तेन पाण्डवानां सुखात्मनाम्। सुरङ्गा ज्ञापिता नैव प्रच्छन्ना पिहिताभवत् ॥

तुमको प्रतिदिन वनमें ही क्रीडा करनेके लिये जाना चाहिये। वैरियोंका मद नष्ट करनेवाले आप संपूर्ण दिवसभर क्रीडा करनेकी इच्छासे विघ्नोंकी हानि करने के लिये वनमें ही ठहरें ॥८९-९८॥ रात्रिमें इस महलमें धीरतापूर्वक पवित्र मित्रोंके साथ जागृत रहते हुए निर्मल बुद्धिसे आप स्थिर रहें ॥ ९९ ॥ गाढ निद्रा नेत्रोंमें अन्धपना, कानोंमें बहिरापन, और कण्ठमें घरघरी उत्पन्न करती है और देहको निश्चल बनाती है। इस लिये वह मरणके समान होती है॥ १००॥ सुबुद्धिवाले विदुर राजाने वनमें रहकर इसप्रकारसे स्थिर अभिप्रायवाले पाण्डवोंको उपदेश दिया अनंतर वे वनको चले गये॥ १०१ ॥ चतुर मनवाले विदुरराजाने पाण्डवोंके अपायरहित सुखोपायका वनमें रहकर बहुत देरतक विचार किया। विचार करते समय अचानक सुरङ्ग खोदनेकी बुद्धि उनको सूझी, जिससे कि संकट आनेपर उनका--पाण्डवोंका निर्गमन होगा। स्वच्छ अन्तःकरणवाले विदुर राजाने इस प्रकार विचार कर खोदनेका परिज्ञान रखनेवालोंको बुलाया और सुरङ्ग खोदने के लिए आज्ञा दी। खोदनेकी कला जाननेवाले उन मनुष्योंने शीघ्र उस महलके कोनेमें निश्चलचित्त होकर सुरङ्ग खोदनेके लिये उद्युक्त होकर प्रारंभ किया, अर्थात् सुरंग खोदनेके लिये उन्होंने प्रारंभ किया। गूढतर चतुर ऐसे खोदनेवाले पुरुषोंने आने जानेमें सुखकर बडी गूढ सुरङ्ग खोदकर फिर ढँक दी। सुखकर राष्ट्रमें रहनेवाले कौरवोंके द्वारा यह महल जलाने परभी सुरङ्गसे पाण्डव सन्मार्गसे शीघ्र चले जायेंगे ऐसे विचारसे उस महलके भीतर विदुरने आनंदसे सुरंग बनवाई और चिन्तारहित होकर वे सुखसे रहने लगे ॥१०२-१०८॥ विदुर राजाने स्वयं वह सुरंग नहीं देखी और सुखी पाण्डवोंकोभी उन्होंने उसकी सूचना भी नही दी थी। वह गुप्तरीतिसे उन्होंने आच्छादित करवाई ॥१०९॥ वे विषाद मदरहित

पुनस्ते पाण्डवास्तत्र विषादमदवर्जिताः। अध्यूषुर्व्यसनातीता युताः प्रीतिभरेण च ॥११०
ते हायनमितं कालं कलयन्तः कलोन्नताः। सकलाः सकला भूपा आसते स्माम्बया सह ॥
दुष्टेन धार्तराष्ट्रेण धृष्टेनानिष्टचेतसा। लाक्षाधाममहादाहश्चिन्तितस्तद्धतिकृते ॥११२
ज्वालिते ज्वलनेनाशु जतुवेश्मनि विस्तृते। ज्वलिष्यन्ति तदन्तःस्थाः पाण्डवाश्चण्डमानसाः॥
इति संमन्त्र्य सद्योधा स्वतन्त्रेण सुमन्त्रिणा। दुर्योधनेन क्रुद्धेन चिन्तितं मारणं हृदि ॥११४
क्षणेन क्षणदायां स दिवाकीर्तिं सुकीर्तिमान्। अकीर्तयद्गृहध्वंसं ज्वलितेन कृशानुना ॥११५
जनंगम जनैर्गम्यं मन्दिरं सुन्दरं त्वकम्। ज्वालय ज्वलनेनाशु ज्वलता च मदाज्ञया ॥११६
दास्यामि ज्वालिते वत्स मन्दिरे वाञ्छितं तव। यत्तुभ्यं रोचतेऽस्माभिस्तद्देयं याचनां कुरु ॥
मा विलम्बय शीघ्रेण दहनं देहि मन्दिरे। ग्रामधामरमावाञ्छा वर्तते चेत्तवाधुना ॥११८
इत्युक्ते सोऽवदद्वाणीं किमुक्तं नृपसत्तम। न युक्तं युक्तियुक्तानामिदं संनिन्दितं बुधैः ॥
धनसंग्रहणं नृणां जीवितार्थं सुजीवनम्। तज्जीवितं क्षणस्थायि क्षणिकं तृणबिन्दुवत् ॥१२०
स्वापतेयमपि स्वापसदृशं सारवर्जितम्। मेघवृन्दसमं नित्यं क्षणिकं दृष्टनष्टकम् ॥१२१

पाण्डव संकटरहित होकर प्रीतिसे उस गृहमें रहने लगे। कलाओंमें उन्नत, कलासहित वे सब राजा अर्थात् पाण्डव एक वर्ष कालतक अपनी माताके साथ रहे ॥ ११०–१११ ॥ अनिष्ट कार्य करनेमें जिसका मन तत्पर रहता है, ऐसे दुष्ट निर्लज्ज दुर्योधनने पाण्डवोंका घात करनेके लिये लाक्षागृहका महादाह हृदयमें निश्चित किया अर्थात् उस गृहको आग लगानेका मनमें ठहराया ॥ ११२ ॥ यह विस्तृत लाक्षागृह अग्निसे शीघ्र जलनेपर उसके भीतर रहनेवाले चण्डचित्त पाण्डव जलकर मर जायेंगे। क्रुद्ध, स्वतंत्र और उत्तम योद्धा ऐसे दुर्योधनने योग्य मंत्रीके साथ इस प्रकार विचार कर मनमें पाण्डवोंको मारना निश्चित किया ॥ ११३–११४ ॥

[लाक्षागृहदाह] सुकीर्तिमान् दुर्योधनने रात्री होनेपर कुछ क्षणसे चाण्डालको बुलाया। और प्रज्वलित अग्निसे लाक्षागृह जलानेकी उसे आज्ञा दी। लोकप्रवेशको योग्य ऐसे इस मन्दिरको प्रज्वलित अग्निके द्वारा मेरी आज्ञासे हे चाण्डाल, तू शीघ्र जला दे। यह मंदिर जलानेपर हे वत्स, तुझे मैं तेरा जो अभीष्ट होगा वह दूंगा। जो वस्तु (धन, धान्यादिक) तुझे पसंद हो वह हम देंगे। तू याचना कर। देरी मत कर, जल्दी घरमें आग लगा दे। गांव, घर, लक्ष्मी आदिकी इच्छा हो तो अभी घरमें आग लगादे।" इस तरह दुर्योधनके कहनेपर चाण्डाल बोलने लगा। "हे राजश्रेष्ठ दुर्योधन, आप यह क्या बोल रहे हैं, युक्तिसे विचार करनेवालोंको आपका यह भाषण योग्य नहीं लगेगा। सज्जन विद्वान् इसकी निंदा करेंगे। जीनेके लिये मनुष्योंको धनसंग्रह करना पडता है वह ही सुजीवन होता है, परंतु वह जीवित क्षणस्थायी है, तृणपर पडे हुए ओसके बिंदुसमान वह क्षणिक है। धन भी निद्राके समान निःसार है, मेघसमूहके

रमार्थे मारणं पुंसां सा रमा विरमा मता। परं प्राणिवधात्पापं पापाद्दुर्गतिरुत्तरा ॥१२२
वसुना तेन किं साध्यमसुमन्नाशकारिणा। रमयालमतो नाथ किंचिदन्यत्प्रकाशय ॥१२३
श्रुत्वा दुर्योधनः क्रुद्धः प्रसिद्धः पापकर्मणि। पापच्यते स्म दासेर किमिदं कथितं त्वया ॥
सत्प्रेषणकराः प्रेष्या विशेष्याः सर्वतः सदा। इत्युक्तियुक्तिसंपत्तिं सफलां कुरु कोविद ॥
जानीयात्प्रेषणे भृत्यान्बान्धवान्विधुरागमे। मित्राणि चापदाकाले भार्याश्च विभवक्षये ॥१२६
प्रमाणीकृत्य मद्वाक्यं ममादेशं च मानय। यथा ते संपदां प्राप्तिरन्यथानर्थसंगमः ॥१२७
श्रुत्वेति तलरक्षः स सुपक्षस्तु सुलक्षणः। लक्षीकृत्य निजात्मानमाचख्यौ मरणे द्रुतम् ॥
नृप देहि श्रियं स्फीतां हर वा मम सांप्रतम्। कुरु प्रसादं क्रोधेन मृत्युभाजनमेव वा ॥
दत्स्व राज्यं दयां कृत्वा सर्वं वा हर भूपते। मां मानय मनोहारिन् मूर्धानं छिन्धि वा नृप॥
न युक्तं दहनं देव सद्मनश्छद्मना मम। व्यरंसीदिति संभण्य तलरक्षी दयार्द्रधीः ॥१३१
क्रुद्धेन स च निर्भर्त्स्य विबन्ध्य तलरक्षकम्। स जडे निगडे कृत्वा कारागारेऽप्यचिक्षिपत्॥

समान हमेशा क्षणिक और देखते देखते नष्ट होनेवाला है ॥ ११५—१२१ ॥ इस लक्ष्मीके लिये मनुष्योंको मारना पडेगा, परंतु वह लक्ष्मी भी स्थायी नहीं है, नाशवंत है। प्राणिवधसे पाप होता है और पापसे अतिशय हीन दुर्गति प्राप्त होती है। प्राणियोंका नाश करनेवाले उस धनसे क्या प्राप्त होगा ? अतः ऐसी लक्ष्मी मुझे नहीं चाहिये। हे नाथ, आप दुसरा कुछ कार्य हो तो कहिये" ॥ १२२-१२३ ॥ पापकर्म करनेमें प्रसिद्ध दुर्योधनने यह भाषण सुना। उसे क्रोध आया। वह बोला "अरे दास, तू हमेशा पापकर्ममें पचता है और इससमय तू यह क्या कह रहा है, कुछ समझता है ? जो आज्ञाधारक नोकर होते हैं वे सर्वत्र हमेशा नम्र रहते हैं। इस लिये जो उक्तियुक्ति की सम्पत्ति है वह तुम सफल करो। अर्थात् जो आगे सुभाषित कहा जाता है उसके मुआफिक तुम चलो। आज्ञा देकर नोकरका स्वभाव जाना जाता है। संकट आनेपर बंधुओंकी परीक्षा होती है। आपत्तिके समय मित्रोंकी परीक्षा होती है और वैभव नष्ट होनेपर पत्नीकी पहि-चान होती है। इस लिये मेरा वचन प्रमाण समझकर मेरी आज्ञा तू मान जिससे तुझे सम्पत्तिकी प्राप्ति होगी अन्यथा अनिष्टकी प्राप्ति होगी यह निश्चित समझ" ॥ १२४-१२७ ॥ दुर्योधन राजाका भाषण सुनकर न्यायपक्ष धारण करनेवाले सुलक्षणी चाण्डालने [कोतवालने] अपने आत्माको उद्देशकर मरणके विषयमें यह भाषण किया "हे राजन्, विपुल सम्पत्ति आप मुझे देवें अथवा उसे हरण करें। मुझपर आपकी कृपा होवे अथवा क्रोधसे मुझे मृत्युका पात्र बनाये। मुझे दया करके राज्य-दान करे अथवा मेरा सर्वस्व हरण करें। मेरा आप उचित आदर करें अथवा मेरा मस्तक छेदे। परंतु हे देव, कपटसे घर जलाना मुझे योग्य नहीं दीखता है।" दयार्द्र बुद्धिका कोतवाल ऐसा बोलकर चुप हो गया ॥ १२८-१३१ ॥ क्रोधसे दुर्योधनने तलवरको-कोतवालको बांधा, उसके

पुरोधसं द्विजं क्षिप्रमाकार्य कौरवाग्रणीः। वसनस्वर्णभूषाद्यैर्मानयित्वा नृपोऽवदत् ॥१३३
पुरोधः पृथिवीख्याता भूदेवा देववन्मताः। कुर्वन्तो भूमिकार्याणि यूयं भवत सिद्धये॥१३४
मदिष्टं शिष्टकार्यं च संगोप्यं परमार्थतः। त्वया कर्तव्यमेवात्र सत्कर्तव्यविधायिना॥१३५
जातुषं धाम धीमंस्त्वं धम मद्धृतिहेतवे। विधातव्यमिदं कार्यमस्माकं सुखसाधनम्॥१३६
यदीप्सितं गृहाण त्वं कुरु कार्यं क्षणार्धतः। इत्युक्त्वा तं प्रतोष्याशु वाञ्छितैर्धनसंचयैः॥
तद्दाहार्थं समादेशं भूदेवाय ददौ नृपः। तथात्वं सोऽपि संलुब्धो लोभतः प्रतिपन्नवान्॥
अहो लोभो महान्पापो लोभात्किं न प्रजायते। दुष्षमं विषमं कार्यं धिक् पुंसां लोभिनां लघु
इन्दिरा सुन्दरा नैव मन्दिरं दुष्टकर्मणः। तदायत्ताः प्रकुर्वन्ति किमकृत्यं न देहिनः॥१४०
भ्रातरं पितरं पुत्रं मित्रं भृत्यं गुरुं तथा। लक्ष्मीलुब्धा नरा घ्नन्ति भूपतिं चान्यमानवम्॥
पद्मासद्माश्वदन्त्यादीन्पौरस्त्या नरपुङ्गवाः। दीक्षेप्सवो विमुच्याशु वन्यां वृत्तिं प्रभेजिरे॥
सूत्रकण्ठो विकुण्ठः स हठाद्दुर्लुण्ठमानसः। लक्ष्मीलोभेन संजातस्तद्धामदहनोद्यतः॥१४३

पावोंमें जड बेडी डालकर उसे कैदखानेमें रख दिया। कौरवोंके अगुआ दुर्योधन राजाने पुरोहित ब्राह्मणको शीघ्र बुलाकर वस्त्र, सुवर्ण, अलंकार इत्यादिकोंसे उसका आदर कर कहा। "हे पुरोहित आप पृथिवीमें प्रसिद्ध भूदेव हैं, और देवके समान मान्य हैं। इस भूमिपर लोगोंके कार्य करके आप उनकी सिद्धि करते हैं। मुझे प्रिय और सज्जनोंको करने योग्य सत्कार्य परमार्थतया गुप्त रखने योग्य है। उत्तम कर्तव्य करनेवाले आपसे यह कार्य इस समय यहां करने योग्यही है। हे बुद्धिमान् मुझे संतोष होनेके लिये यह लाक्षागृह जलाओ। हमारे लिये सुखका साधन यह कार्य आपको करनाही पडेगा। इसके लिये जो आप चाहते हैं वह ग्रहण करो और क्षणार्धमें हमारा यह कार्य करो" ऐसा बोलकर उसको उसने इच्छित धनसमूहसे सन्तुष्ट किया, और लाक्षागृह जलानेके लिये राजाने ब्राह्मणको आज्ञा दी। उसने भी लोभसे लुब्ध होकर वैसा कार्य करनेका स्वीकार किया॥ १३२–१३८॥ "अहो लोभ महापाप है। लोभसे कौनसा अनर्थ उत्पन्न नहीं होता है? दुःखदायक और कठिन कार्य लोभसे लोग करते हैं। लोभी पुरुषोंको धिक्कार होवे। यह लक्ष्मी वास्तविक सुंदर नहीं है, वह तो दुष्ट कार्योंका घर है। इस लक्ष्मीके वश हुए लोग कौनसा अकृत्य नहीं करते हैं? भाई, पिता, पुत्र, मित्र, नोकर, गुरु इनको लक्ष्मीमें लुब्ध हुए मानव मारते हैं। इतनाही नहीं अन्य मनुष्यको और राजाकोभी लोभी मनुष्य मार डालते हैं॥ १३९–१४१॥ लक्ष्मी, प्रासाद, घोडे और हाथी आदिक पदार्थोंको प्राचीन महापुरुषोंने दीक्षाकी इच्छासे छोडकर वन्य वृत्तिको पसंद किया था, अर्थात् नग्न मुनि होकर तपश्चरण किया था। १४२॥ चतुर दुष्टचित्तवाला वह ब्राह्मण लक्ष्मीके लोभसे गृद्ध होकर उस लाक्षागृहको जलानेके लिये तयार हुआ॥ १४३॥ वह निर्लज्ज ब्राह्मण धृष्टतासे उस प्रासादके समीप गया और उसने चारों तरफसे तत्काल अग्नि लगा

तद्धामसंनिधिं धृष्टो धाष्टर्येन विदधे ध्रुवम् । इत्वाथ ज्वालनं क्षिप्रं चतुःपार्श्वे स वाडवः॥
दुर्जनाः किं न कुर्वन्ति स्वीकृतं दुष्टमानसाः । किं न खादन्ति व काकाः किं न जल्पन्ति वैरिणः ॥
स दुष्टोऽनिष्टसंनिष्ठः क्लिष्टचेता हुताशनम् । दत्त्वा समाटितः क्वापि शुभं चेतः क्व पापिनाम्॥
जज्वाल ज्वलनो ज्वाल्यं वेश्म संदीप्य ज्वालया । गगनं गतया तूर्णं दाहकानां तु का कृपा॥
लाक्षागृहं दहज्ज्वालालीढं च विपुलात्मकम् । दिदीपे दाहको दीप्रो दीप्यते किं न दाहकः॥
ततः सुप्ता नराधीशास्तदा पञ्चापि पाण्डवाः । जजागरुर्न सुश्रान्ता निद्रा हि मरणायते ॥
लक्ष्यीकृताग्निना लाक्षा विपक्षेव क्षणार्धतः । ज्वलन्ती ज्वालयामास वस्तु वेश्मगतं वरम् ॥
कथं कथमपि प्रायः प्रीताः पञ्चापि पाण्डवाः । जजागरुर्महाज्वालालीढसद्वेश्मभित्तयः ॥
उन्निद्रा ददृशुर्ज्वालां ज्वालयन्तीं निकेतनम् । परितो जतुसंदीप्तां चलां कल्पान्तजामिव ॥
इतस्ततः प्रपश्यन्तो निर्गमोपायमात्मना । नाशक्नुवन्पदं दातुं क्वापि ज्वालाकरालिते ॥१५३
तडत्तडत्प्रकुर्वन्तीं स्फोटयन्तीं सुभित्तिकाम् । ज्वालां ककुप्सु संप्राप्तां ददृशुः पाण्डवास्तदा॥

दिया ॥ १४४ ॥ दुष्ट मनवाले दुर्जन स्वीकारा हुआ कौनसा अकार्य नहीं करते हैं ? कौवे कौनसा पदार्थ नहीं खाते हैं ? और शत्रु क्या क्या नहीं बोलते हैं अर्थात् शत्रु सज्जनोंके विषयमें क्या क्या आक्षेप नहीं लेते हैं ? ॥ १४५ ॥ अनिष्ट कार्योंमें जिसकी रुचि है, जिसका मन अशुभ-विचारोंसे भरा हुआ है ऐसा वह दुष्ट ब्राह्मण अग्नि लगाकर कहीं भाग गया, लोगोंको उसका जाना मालूम नहीं हुआ । पापियोंका अन्तःकरण कहीं शुभ होता है ? जल्दी जलने योग्य उस लाक्षागृहको प्रकाशित कर आकाशमें जानेवाली ज्वालाओंसे अग्नि अतिशय भडक उठा । योग्य ही है कि, जलानेवालोंको कृपा कहाँसे ? वह विस्तृत लाक्षागृह ज्वालाओंसे घिरा हुआ था । उसको जलानेवाला अग्नि खूब दीप्त हुआ । जो दाहक होता है वह प्रदीप्त क्यों न होगा ? ॥ १४६--१४८ ॥ मनुष्योंके अधिपति, पांचोंही पाण्डव उस समय लाक्षागृहमें सोये हुए थे । थके हुए होनेसे वे जागृत नहीं हुए । योग्य ही है, कि निद्रा मरणके समान होती है । अग्निने मानो शत्रु समझकर क्षणार्द्ध में लाखको घेर लिया । वह उसे जलाने लगा । घरमें जो इतर अच्छी वस्तुयें थीं वह भी जलने लगीं ॥१४९-१५०॥ प्रीतियुक्त पांचो पाण्डव जागृत हुए । उससमय उस लाक्षागृहकी सर्व भित्तियां ज्वालाओंसे घिर गयी थीं । जब वे निद्रारहित होकर चारों तरफ देखने लगे तो उनको चारों तरफसे भडकी हुई चंचल कल्पान्तकालकी ज्वालाके समान घरको जलानेवाली ज्वाला दीख पडी । वे इधर उधर निकल जानेका उपाय देख रहे थे परंतु ज्वालाओंसे सब घर व्याप्त हुआ था, कहीं भी उन्हें पैर देनेको जगह न थी ॥ १५१-१५३ ॥ उस समय तड तड करती हुई और भित्तिको फोडनेवाली, सब दिशाओंमें फैली हुई ज्वाला पाण्डवोंने देखी ॥ १५४ ॥

[युधिष्ठिरकी आत्मचिन्ता] सुधर्मात्मा और धर्मबुद्धिको धारण करनेवाले युधिष्ठिर बाहर

अनवेक्ष्य सुधमात्मा धर्मपुत्रः सुधर्मधीः। हेतुं निर्गमने गम्यं सस्मार श्रीजिनेशिनः ॥१५५
अपराजितमन्त्रेण मन्त्रयित्वा स्वमानसम्। युधिष्ठिरः स्थिरं तस्थौ स्थाम्ना स्थगितमानसः ॥
अहो कर्मक्रियां पश्यन्नजय्यां सज्जनैरपि। फलन्तीं फलमुत्कृष्टं तत्कर्म कुरुषे कथम् ॥१५७
कर्मणा कलिताः सन्तः सन्तः सीदन्ति संसृतौ। कर्मणां पाकतः पुत्राः सागराः किं न दुःखिताः॥
अर्ककीर्तिः क्षितौ ख्यातो बन्धनं जयतो गतः। कर्मणान्ये न किं प्राप्ता बन्धनं भुवि भूमिपाः॥
ज्वालनं ज्वलनं प्राप्ताः कर्मणा वयमप्यहो। अतः कर्मच्छिदं देवं स्मरामो विस्मयातिगाः ॥
इति संचिन्तयंश्चित्ते स्थिरो ज्येष्ठो विशिष्टधीः। तावता सहसा बुद्धा कुन्ती संप्राप्तचेतना ॥
ज्वलत्सा सदनं वीक्ष्य रुरोद विशदाशया। अग्रतो दुर्गमं दुःखं वीक्षमाणा व्यवस्थितम् ॥
अहो मया कृतं दुष्टं कर्म किं कलुषात्मकम्। यत्प्रभावादिदं लब्धं फलं प्रविपुलं परम् ॥
अहो पापस्य पाकेन पापच्यन्ते परा नराः। पुनस्तदेव कुर्वन्ति धिगज्ञानं जनोद्भवम् ॥१६४
किं कुर्मः क्व प्रयामः क्व तिष्ठामः समुपस्थिते। वीतहोत्रे विशुद्धेऽस्मिन्गेहे प्रज्वलति स्फुटम् ॥

निकलनेके लिये हेतुभूत उपाय नहीं दिखनेसे श्रीजिनेश्वरका स्मरण करने लगे। अपराजित मंत्रसे–पंचणमोकार मंत्रसे युधिष्ठिरने अपने मनको अभिमंत्रित किया, धैर्यसे स्थिर मन करके वह स्थिर बैठ गया। "हे आत्मन्, उत्कृष्ट फल देनेवाले सज्जनोंसे भी नहीं जीते जानेवाले कर्मका कार्य देखते हुए भी तू ऐसा कर्म क्यों कर रहा है? कर्मसे वेष्टित होकर सज्जन इस संसारमें कष्टका अनुभव कर रहे हैं। कर्मके उदयसे सगरचक्रवर्तीके पुत्र क्या दुःखित नहीं हुए हैं? इस भूतलपर भरतचक्रवर्तीका पुत्र अर्ककीर्ति प्रसिद्ध हुआ है; परंतु जयकुमारसे वह बंधनको प्राप्त हुआ। क्या इस भूतलपर कर्मसे अन्यभी अनेक राजा बंधनको प्राप्त नहीं हुए हैं ॥ १५५–१५९ ॥ इस कर्मोदयसे आज हमको भी अग्नि जलानेको उद्यत हुआ है। इसमें आश्चर्य कुछ भी नहीं है। इस समय हम कर्मोंको छेदनेवाले देवका–जिनेश्वरका स्मरण करते हैं"। विशिष्ट बुद्धिवाले ज्येष्ठपुत्र युधिष्ठिर ऐसा मनमें स्थिर विचार कर रहे थे, इतनेमें जिसकी निद्रा टूट गयी है ऐसी कुन्ती अकस्मात् जागृत हुई। जलते हुए घरको देखकर निर्मल विचारवाली वह कुन्ती आगे दुर्गम दुःख उपस्थित हुआ ऐसा समझकर रोने लगी। अहो मैंने ऐसा कौनसा कलुष कर्म किया है, जिसके प्रभावसे यह प्रत्यक्ष उत्कृष्ट विपुल फल मुझे मिल रहा है। अरेरे! पाप कर्मके उदयसे ये सब लोग वार वार दुःखफल भोग रहे हैं परंतु पुनः वही कर्म ये लोग करते हैं। 'लोगोंके इस अज्ञानको धिक्कार हो।' इस समय हम क्या करें? कहां जावें? कहां बैठे? अतिशय सुन्दर इस घरको अग्नि स्पष्ट रीतीसे जला रही है। ऐसा विचार कर रोनेवाली और अपने केशोंको तोडती हुई कुन्तीका निर्भय भीमने निषेध किया और वह अपने आसनसे ऊठकर खडा हुआ ॥ १६०–१६५ ॥

[लाक्षागृहनिर्गमन] वह भीम इतस्ततः घरमें घूमने लगा। इस संकटसेभी वह निर्भय था

रुदन्तीं तां तदा कुन्तीं कृन्तन्तीं कुन्तलाभिजान्।
निषिद्धय निर्भयो भीमः समुत्तस्थे निजासनात् ॥१६६
इतस्ततो भ्रमन्भीमोऽभीतात्माऽभ्रष्टभानुकः। लेभे धरागतां पुण्यात्सुरङ्गां देशनामिव ॥१६७
ततस्तन्मार्गतस्तूर्णं निर्जग्मुर्गमनोत्सुकाः। सुस्नेहाः स्नेहतः कुन्त्या चिन्तयन्त्या जिनं च ते॥
क्षणात्ते क्षिप्तचेतस्का लङ्घयित्वा गृहं गताः। वनं भव्या भवं मुक्त्वा यथा यान्ति सुनिर्वृतिम्
अहो पश्यत पुण्याढ्याः शुद्धं सुश्रेयसः फलम्। अज्ञातात्र सुरङ्गापि दर्शिता येन तत्क्षणम् ॥
वृषाद्वारीयते वह्निर्जलधिः स्थलति ध्रुवम्। चित्रं मित्रायते शत्रुर्नागो महालतायते ॥१७१
ततस्ते पाण्डवास्तूर्णं गत्वा प्रेतवनान्तरे। अशर्मकलितास्तस्थुः कुन्तीयुक्ताः सुयुक्तितः ॥
तत्र भीम उपायज्ञो मृतकानां गतात्मनाम्। षट्कं स्वयं गृहीत्वाशु गत्वा लाक्षागृहान्तिकम् ॥
अक्षिपत् क्षणतः क्षूणो न लक्ष्यो नरनायकैः। तत्र तूर्ण विनिवृत्तस्ततः सल्लक्षणान्वितः ॥
अलक्ष्यास्ते विलक्ष्यास्ते क्षितौ क्षितिपनन्दनाः। एकत्रीभूय निर्जग्मुरहार्या इव जङ्गमाः ॥
तत्र प्रातस्तदा जातं द्रष्टुं तान्पाण्डुनन्दनान्। धार्तराष्ट्राः समाजग्मुर्मुखतो दुःखभाषणाः ॥
सर्वस्मिन्नगरे तद्धि विज्ञाय नागरोत्कराः। हाकारमुखरा मुख्या दुःखं भेजुरतित्वरा ॥१७७

और तेजस्वी बना रहा। जैसे पुण्यसे हितकारक उपदेश मिलता है वैसे उस पुण्यसे भूमीमें गढी गई सुरङ्गा मिल गई। तदनन्तर अन्योन्यके ऊपर अतिशय स्नेह रखनेवाले वे पाण्डव जिने-श्वरका स्मरण करनेवाली कुन्तीके साथ उस सुरंगाके मार्गसे गमनोत्सुक होकर शीघ्र निकल गये। जैसे भव्य जीव भवको उलँघकर मुक्तिको जाते हैं वैसे जिनका चित्त भयविकारसे रहित हैं ऐसे पाण्डव घरको उलंघकर वनमें गये। अहो पुण्यपरिपूर्ण जन, आप निर्मल धर्मका फल देखो। इस धर्मने-पुण्यने पाण्डवोंको जो बिलकुल अज्ञात थी वह सुरङ्गाभी तत्काल दिखाई ॥ १६६-१७० ॥ इस धर्मसे अग्नि जल होता है। समुद्र स्थलके समान होता है। शत्रु मित्र होता हैं, और सर्प महालताके समान होता हैं, यह बडी अचम्भेकी बात है ॥ १७१ ॥ तदनन्तर कुन्तीके साथ वे दुःखी पाण्डव तत्काल श्मशानमें जाकर वहां सुयुक्तिसे ठहरे। वहां उपाय जाननेवाला भीम छह प्राणरहित मनुष्यशव स्वयं ग्रहणकर शीघ्र लाक्षागृहके समीप गया और अन्य लोगोंसे अज्ञात होकर उस चतुरने वे शव वहां फेक दिये तथा वह सुलक्षणी भीम वहांसे शीघ्र लौटकर फिर श्मशानमें आया ॥ १७२--१७४ ॥ लोगोंके द्वारा नहीं जाने गये, तथा खिन्न हुए राजपुत्र एकत्र हुए मानो जंगम पर्वत है ऐसे भूमीपरसे आगे जाने लगे ॥ १७५ ॥ प्रातःकाल होनेपर उन पाण्डुपुत्रोंको देखनेके लिये मुखसे दुःख दिखलानेवाला भाषण करनेवाले कौरव वहां आगये। संपूर्ण नगरमें वह दुःखप्रसंग मालूम हुआ। नगरवासियोंके मुखियोंका समूह मुखसे हाहाकार करता हुआ अतिशय त्वरासे वहां आया। 'आज नगरमें सत्पुरुषोंका त्याग हुआ। अहो आज किसी

किमद्य नगरे जातं सुजात्यजनवर्जनम्। अहो दुःखं खरं क्षिप्रं क्षिप्तं केनात्र पापिना ॥१७८
पाण्डवाः खलु पाण्डित्यमटन्तः पटुमानसाः। प्रचण्डाश्चण्डकोदण्डा घटिताः शुभकर्मणा ॥
पराक्रमसमाक्रान्तनिःशेषभुवनेश्वराः। अनुल्लङ्घ्याः सुलङ्घ्यास्ते कथं जाताः स्वकर्मभिः ॥
विदग्धास्ते कथं दग्धा धिग्वैदग्ध्यं तवाधुना। विधे विधुरतां नीता ईदृशा हि नरास्त्वया ॥
संदिग्धं मानसं मेऽद्य जातमस्ति सुचिन्तनात्। ईदृशाः केन दह्यन्ते विदग्धाः कर्मणेति च ॥
किं ते दग्धा न वा दग्धा विदग्धा मम मानसम्। संदिग्धमीदृशानां हीतीदृशं मरणं कथम् ॥
पुण्यवन्तः पुमांसस्तु प्रायशो नाल्पजीविनः। तथापि नेदृशो मृत्युर्महतां जायते लघु ॥१८४
अहो अद्य पुरं जातं निःशेषं चोद्वसं लघु। उद्वसे च पुरे स्थातुं वयं शक्ताः कथं ननु ॥
अद्यैव मेघवद्ध्वस्तो मेघेश्वरमहीपतिः। अद्यैव शान्तिचक्रीशः शान्तिं यातो महीतले ॥१८६
अद्यैव शान्तनुः श्रीमान्गतोऽस्माकं सुदुःखतः। महाभ्यासस्तु स व्यासः किमद्यासौ मृतिं गतः ॥
अद्यैवाहो मृतिं यातः प्रकटं पाण्डुपण्डितः। इति ते रुरुदुः पौराः पाण्डवेषु गतेषु च ॥१८८

पापीने शीघ्र तीक्ष्ण दुःख हमारे ऊपर फेंक दिया है ? ॥ १७६-१७८ ॥ निश्चयसे चतुर मनवाले, प्रचण्ड धनुर्धारी, पांडित्यको धारण करनेवाले ये प्रचण्ड पाण्डव शुभकर्मसे रचे गये हैं अर्थात् पूर्वजन्मके पुण्यसे इनकी उत्पत्ति हुई है। इन्होंने अपने पराक्रमसे संपूर्ण राजलोगोंको व्याप्त कर दिया है अर्थात् अनेक राजा इनके पराक्रमसे वश हुए हैं, अतः ये अनुलंघ्य हैं। इनका कोई पराजय या नाश नहीं कर सकता है। तब ये अपने कर्मोंसे कैसे सुलंघ्य हो गये ? कुछ समझमें नहीं आता है। 'हे विधे तूने अतिशय चतुर पाण्डवोंको कैसे जला डाला ? हे कर्म तेरी चतुरताको धिक्कार है। ऐसे महापुरुषभी तूने संकटमें डाल दिये हैं। ठीक विचार करनेसे हमारा मन आज संदिग्ध हुआ है, ऐसे विद्वान् पुरुष कौनसे कर्मके द्वारा दग्ध किये जाते हैं ? कुछ समझमें नहीं आता है। वे चतुर पुरुष जल गये अथवा नहीं इस बारेमें हमारा मन संदिग्ध हुआ है। ऐसे महापुरुषोंका इस प्रकारका शोचनीय मरण कैसे हुआ ?" "पुण्यवान पुरुष प्रायः अल्पजीवी नहीं होते हैं। तथापि महापुरुषोंको इसप्रकारकी मृत्यु इतनी जल्दी नहीं होती है। अहो आजही यह संपूर्ण हस्तिनापुर नगर जल्दीही ऊजड होगया है। इस ऊजड नगरमें हम अब निवास करनेमें असमर्थ हैं।" "आजही मेघेश्वर राजा-जयकुमारनृप मेघके समान नष्ट होगया है। आजही शान्तिचक्रवर्ती इस भूतलपर शान्त हुआ है ऐसा हम समझते हैं। आजही श्रीमान् शान्तनु महाराज हमारे दुःखसे—अशुभ कर्मोदयसे नष्ट हुए हैं। तत्त्वज्ञानका महाभ्यास जिनको है, ऐसे व्यास राजा आजही क्या मरणको प्राप्त हुए हैं ? क्या आजही प्रगट रीतीसे पाण्डुपंडित-पाण्डुराजा मर गये हैं ? इस प्रकारसे स्मरण कर पाण्डवोंके चले जानेपर नगरवासी लोक रुदन करने लगे ॥ १७९-१८८ ॥" जिनको शोक प्राप्त हुआ है और जिनका आनंद नष्ट हुआ है ऐसे

मिलच्छोको गलन्मोदो गाङ्गेयो गुणगौरवः। किंवदन्तीमिमां श्रुत्वा मुमूर्च्छ मतिमोहतः॥
मूर्च्छया मोहितः सोऽपि मृत्युसख्येव प्राप्तया। हरन्त्या चेतनां चिन्त्यां सातं छेत्तुमवाप्तया॥
शनैः शनैर्गता मूर्च्छा तद्देहाच्छीतवस्तुतः। अलक्ष्मीरिव चोत्तस्थे गाङ्गेयः शोकसंगतः॥
स सिञ्चञ्शोकसंतप्तो धरामश्रुसुधारया। रुरोद हृदये खिन्नः प्रखिन्नः शोकवारिभिः॥१९२
अहो सुताः कथं दग्धा विदग्धाः सर्ववस्तुषु। युष्मद्दते कथं सातमस्माकं शङ्कितात्मनाम्॥
भवादृशां कथं युक्ता पञ्चता पावकाद्भवेत्। मृत्युश्चेत्संगरे युक्तं वैरिवृन्दमदापहे॥१९४
अथवा धर्मयोगेन दीक्षया शिक्षयाथ वः। संन्यासेनात्मसाध्येन मृत्युर्युक्तो न चान्यथा॥
वैरिभिः कौरवैश्चाहो यूयं दग्धा भविष्यथ। पापिनां पापरूपाहो प्रज्ञा विज्ञानवर्जिता॥१९६
गाङ्गेयवत्तकां द्रोणः श्रुत्वा मूर्च्छामवाप च। उन्मूर्च्छितो विलापेन मुखरं दिक्चयं व्यधात्॥
अहो कौरवपापानामनुष्ठानं कुचेष्टिनाम्। शिष्टातिगमनिष्टं च नन्विदं निश्चितं बुधैः॥१९८
तदा कौरवभूपालान्बभाण भयवर्जितः। द्रोण इत्थं न युक्तं भोः कुलक्रमविनाशनम्॥१९९

महागुणशाली गाङ्गेय-भीष्माचार्य पाण्डवोंकी अग्निमें दग्ध होनेकी वार्ता सुनकर मतिमें मोह होनेसे मूर्च्छित हो गये। मानो मृत्युकी सखी और विचार करने योग्य चेतनाको हरनेवाली,सुखको तोडनेके लिये आई हुई मूर्च्छामें वे भीष्माचार्य मोहित होगये। शीत वस्तुओंके चन्दनादि मिश्रित जलका उपचार करनेसे उनके देहसे मानो अलक्ष्मीके समान—दारिद्र्यके समान शनैः शनैः मूर्च्छा नष्ट हो गई। और शोकसे विकल भीष्माचार्य ऊठकर बैठ गये ॥ १८९-१९१ ॥ शोक सन्तप्त गांगेयने अश्रुकी धारासे भूमिको सिञ्चित करते हुए रुदन किया। वे हृदयमें खिन्न हुए और शोक-जलसे भीग गये। हे पुत्रों, तुम सर्व वस्तुओंमें चतुर थे, यानी तुम्हें सर्व पदार्थोंका ज्ञान था। तुम अग्निमें जल गये ! तुम्हारे विना हम हमेशा शङ्कितवृत्ति हो जायेंगे, जिससे हमको अब सुख-लाभ नहीं होगा। तुम जैसे महापुरुषोंको अग्निसे मरण कैसा संभवनीय है ? वैरियोंका गर्व नष्ट करनेवाले तुम लोगोंका युद्धमें यदि मरण होता तो युक्त माना जाता। अथवा धर्मधारण करनेसे, दीक्षासे, आतापनादियोगधारणाकी शिक्षासे, अथवा आत्मसाधनायुक्त संन्याससे – सल्लेखनासे मरण प्राप्त होना योग्य है अन्यथा इस प्रकारका मरण तुम सरीखोंको योग्य नहीं है। हमारी तो ऐसी धारणा है कि शत्रुभूत कौरवोंसे तुम जलाये गये होंगे। अहो पापी लोगोंकी पापरूप बुद्धि सच्चे ज्ञानसे रहित होती है ॥ १९२-१९६ ॥ गांगेयके समान द्रोणाचार्यनेभी यह वार्ता सुनी और वेभी मूर्च्छित हुए। जब उनकी मूर्च्छा हट गयी तब उनके विलापसे सर्व दिशायें भर गयीं। विद्वानोंने निश्चित किया कि कुत्सित आचरणवाले पापी कौरवोंका यह कार्य शिष्टोंके विरुद्ध और अनिष्ट है। अर्थात् कौरवोंनेही पाण्डवोंको जलाया यह निश्चित है। निर्भय द्रोणाचार्यने कौरव राजाओंको उस समय कहा, हे कौरव ! इस प्रकारसे कुलपरंपराका विनाश करना योग्य नहीं है।

खलीकुर्वन्ति लोका हि खलाः स्खलितमानसाः। सज्जनान्कटुकान्किं न यथा कुमारिकारसः॥
इति निर्भर्त्सिता भूपा अधोवक्त्रास्तु कौरवाः। अभवन्निर्दयानां हि का त्रपा धर्मधीश्च का॥

तदा लोकाः समागत्य वह्निविध्यापनं व्यधुः।
शोकार्ता अर्तितः किं न कुर्वन्ति दुष्करां क्रियाम् ॥२०२

केचिद्भेणुर्भयग्रस्ता इति लोकाः सुलोकनैः। लोक्यन्तां तच्छरीराणि मृतावस्थां गतानि च॥
तदा तानि विलोक्याशु केचिदूचुः शुचं गताः। अयं युधिष्ठिरः स्थेयानयं भीमो महाबलः॥
सार्जुनश्चार्जुनो वर्यो नकुलोऽयं सुनिर्मलः। देवसेवासहश्चायं सहदेवः शुभाशयः ॥२०५
सतीयं सुकुमाराङ्गी कुन्ती सत्कुन्तला वरा। निर्मला विपुलाप्येषां जननी दग्धदेहिका॥
विदग्धा अर्धदग्धानि मांसपिण्डोपमानि च। शवानि तानि संवीक्ष्य बभूवुस्तत्समा इव॥
पुनः पुनः परावृत्त्य कुणपान्पावनान्नृपाः। आलोक्य निश्चिता जाताः पाण्डवा ज्वलिता इति॥
तन्निश्चये तदा लोकास्तद्दिने पानभोजनम्। व्यापारं पण्यवीथीनां तत्यजुर्गृहकर्म च ॥२०९
हाकारमुखरा लोका हाकारमुखराः स्त्रियः। तदाभवन्महाशोकाद्धाकारमुखरं पुरम् ॥२१०
गान्धारी लब्धसंतोषा समृद्धा सर्वराज्यतः। सुतवर्धापनव्याजात्तदा चक्रे महोत्सवम् ॥२११

जिनका मन सदाचारसे भ्रष्ट हुआ है ऐसे दुष्ट लोग सज्जनोंको दुष्ट बनाते हैं। जैसे घीकुँवारका रस वस्तुओंको कडवी बना देता है। इस प्रकारसे निर्भर्त्सना किये गये कौरव राजा उस समय अधोमुख होकर बैठे। योग्यही हैं, कि जो निर्दय हैं उनको कैसी लज्जा उत्पन्न होगी, और उनको धर्मबुद्धिभी कहांसे आवेगी?

उस समय शोकपीडित लोगोंने आकर अग्निको शान्त किया। दुःखसे मनुष्य कौनसा दुष्कर काम नहीं करते हैं ॥१९८–२०२॥ भययुक्त कुछ लोगोंने कहा मरे हुए उन पाण्डवोंके शरीर अच्छी तरह देखो। तब उनके शरीर देखकर कई लोग तत्काल शोक करने लगे। वे कहने लगे यह बडा शरीर युधिष्ठिर है। यह महासामर्थ्यवान् भीम दीखता है। यह सरल विचारका श्रेष्ठ अर्जुन है। यह अतिनिर्मल बुद्धिका नकुल है। शुभ विचारवाला देवकी सेवा करनेवाला यह सहदेव है। उत्तम केशवाली, सुकुमार शरीर जिसका है ऐसी विपुल-अतिशय निर्मल. जिसका देह जल गया है ऐसी इन पाण्डवोंकी यह माता कुन्ती है। वे चतुर लोग आधे जले हुए मांसपिण्डोंके समान उन शवोंको देखकर उनके समान हो गये। पुनः पुनः उन पवित्र प्रेतोंको नीचे ऊपर कर 'पाण्डव जल गये' ऐसा राजाओंने निश्चय किया ॥२०३–२०८॥ पाण्डवोंकी ही मृत्यु हो गयी है ऐसा निश्चय होनपर उस दिन लोगोंने खाना, पीना, तथा बजारमें व्यापार, और इतर गृहकार्य सब बंद रखे। पुरुष हाहाकार करने लगे। स्त्रियाँ हाहाकार कर रोने लगीं। उस समय समस्त नगर हाहाकारसे वाचाल बन गया ॥ २०९–२१०॥ गान्धारीको संतोष हुआ। वह सर्व राज्यकी प्राप्ति होनेसे अपनेको समृद्ध समजने लगी और पुत्रोंकी बधाई

तद्वार्तां विस्तृतां लोके संप्राप्तां द्वारकां पुरीम्। दाशार्हाः शुश्रुवुर्भोजाः प्रलम्बघ्नश्च केशवः ॥
समुद्रविजयः श्रीमान्समुद्र इव विस्तृतः। रुड्वाडवाग्निना क्षुब्धश्चचाल रुक्सुवीचिमान्॥२१३
हलायुधो महायोद्धा समृद्धो विविधायुधः। युद्धार्थे स च संनद्धो बली कोऽत्र विलम्बते ॥
दामोदरस्तदा दर्पाद्दारितानेकशात्रवः। करं व्यापारयामास संनाहे सिंहविक्रमः ॥२१५
शोकसंतप्तसर्वाङ्गा बाष्पपूरितलोचनाः। दुन्दुभिं दापयामासुः संगराय च यादवाः ॥२१६
तद्भेरीनादतः क्षुब्धा विबुधा बोधवेदिनः। दाशार्हाश्च हृषीकेशं बलमभ्येत्य चाभणन् ॥
किमर्थमयमारम्भो विज्ञाप्यं श्रूयतामिति। योग्ये समुद्यमो युक्तो विदुषां चान्यथा क्षितिः ॥
हृषीकेशोऽगदीद्दीप्तो दीप्त्या भास्करसंनिभः। कौरवानत्र चानीय क्षिपामि वडवानले॥२१९

अथवा खण्डशः क्षिप्रं खण्डयित्वाखिलान्रिपून्।
आजौ जित्वा स्वजय्योऽहं दास्यामि ककुभां बलिम् ॥२२०
दग्ध्वाथ पाण्डवांश्चण्डाः क्व ते स्थास्यन्ति कौरवाः।
मयि क्रुद्धे समृद्धे च मृगारौ द्विरदा इव ॥ २२१

के निमित्त उसने उस समय बडा उत्सव किया ॥ २११ ॥ पाण्डवोंको कौरवोंने जलाया यह वार्ता सर्वत्र फैल गई। वह द्वारिकामें यादवोंके कान तक पहुंच गयी। तब दशार्ह समुद्रविजयादिक, भोजवंशीय राजा, बलभद्र और केशव—कृष्ण इन्होंने भी सुनी ॥ २१२ ॥ श्रीमान्—लक्ष्मीवान् समुद्रविजय समुद्रके समान विस्तृत हुए अर्थात् वे रोषरूपी वडवाग्निसे क्षुब्ध हुए और कान्तिरूपी तरंगोंसे चलने लगे ॥ २१३ ॥ जिनके पास अनेक आयुध हैं, जो ऐश्वर्यशाली महायोद्धा हैं ऐसे बलभद्र युद्धके लिये तयार होगये। योग्यही है, कि जो बलवान हैं वे युद्धके लिये विलम्ब नहीं करते हैं। जो सिंहसमान पराक्रमी हैं दर्पसे जिसने अनेक शत्रु नष्ट किये हैं ऐसे दामोदर श्रीकृष्णने कवचके लिये अपना हाथ आगे बढाया ॥ २१४ ॥ शोकसे जिनका सर्वांग सन्तप्त हुआ है, जिनकी आँखें अश्रुसे भर गयी हैं ऐसे यादव राजाओंने युद्धके लिये दुन्दुभि बजवाई। युद्धके भेरीनादसे क्षुब्ध,ज्ञानका स्वरूप जाननेवाले विद्वान् लोग और दाशार्ह, श्रीकृष्ण और बलभद्रके पास आकर इस प्रकार बोलने लगे। "आप यह आरंभ किस लिये कर रहे हैं, हमारी विज्ञप्ति आप सुन लीजिये। विद्वानोंको योग्य कार्यमें उद्यम करना योग्य है अन्यथा कार्यका नाश होना है" ॥ २१५–२१८ ॥ कान्तिसे सूर्यके समान श्रीकृष्ण प्रदीप्त होकर कहने लगे। कि "मैं कौरवोंको यहां लाकर वडवानलमें फेंक दूंगा। अथवा शत्रुओंके द्वारा कदापि नहीं जीता जानेवाला मैं युद्धमें उनको जीतकर उनके टुकडे टुकडे कर दूंगा, और सर्व दिशाओंको उनका बलिदान कर दूंगा। जैसे प्रचण्ड सिंह क्रुद्ध होनेपर हाथी कहां ठहर सकते हैं वैसे समृद्धिशाली मैं क्रुद्ध होनेपर चण्ड पाण्डवोंको जलाकर वे कौरव कहां रहेंगे? जबतक मेंडक सर्पको नहीं देखते हैं तबतक वे शब्द

दुर्योधनादयो रङ्कास्तावद्गर्जन्ति जर्जराः। यावन्मां न च पश्यन्ति दर्दुरा वा भुजंगमम् ॥
निशम्येति वचस्तस्य कश्चिद्विबुधसत्तमः। उवाच वचनं वाग्मी विदिताखिलविष्टपः ॥२२३
नृपेन्द्र च्छिद्रमावीक्ष्य च्छलनीया महाद्विषः। घटिका छिद्रतो नूनं जलं हरति निर्जला ॥
निश्छिद्राः कष्टतः साध्या दुर्लक्ष्या विबुधैरपि। मुक्ताफलानि प्रोतानि निश्छिद्राणि भवन्ति किम्
अद्य कौरवा संदृप्ता संक्लृप्तजयसद्बलाः। शरीरजैर्बलैर्मत्ता घोटकाद्यैर्विशेषतः ॥२२६
मानयन्ति न ते मत्ताः परान्बलविवर्जितान्। जानन्तश्च यथा तूर्णं नरा मद्यसुपायिनः ॥
जरासन्धाश्रयाद्दृप्ता बलीयन्ते स्म कौरवाः। नृत्यन्ति दर्दुरा नागमूर्ध्नीव नागतुण्डिकात् ॥
जरासन्धाश्रयात्पूज्या पूजितास्ते नरेश्वरैः। यथा शिरसि सामान्याः स्थिताः कुन्तलराशयः॥
अतो गन्तुं न युक्तं ते कौरवैर्बुद्धिसागर। योद्धुं सत्रं पवित्रात्मन् कार्यं कालविलम्बनम् ॥
जरासन्धसमं युद्धं यदा तव भविष्यति। तदा ते तव निग्राह्या वैरिणो हितसिद्धये ॥२३१
इदानीं कौरवैः सार्धं कृते युद्धे स क्रुध्यति। तदुत्थापनतः कार्यं किं भवेत्सुप्तसिंहवत् ॥२३२

करते हैं। वैसे ही जबतक मुझे उन्होंने नहीं देखा है तबतक वे दीन, जर्जर, असमर्थ दुर्योधनादिक शब्द करते हैं" ॥ २१९-२२२ ॥ इस प्रकारका कृष्णका वचन सुनकर जिसने जगतकी परिस्थिति जानी है ऐसा कोई श्रेष्ठ विद्वान् कहने लगा। "हे राजेन्द्र, छिद्र देखकर बडे शत्रुओंको पीडा देना चाहिये। जैसे निर्जल घटी छिद्र होनेसे पानीका ग्रहण करती है। जो छिद्ररहित हैं ऐसे मोती क्या दोरीमें पिरोये जाते हैं? वैसे निश्छिद्र शत्रु कष्टसे जीते जाते हैं उनका स्वरूप विद्वानोंके द्वाराभी नहीं जाना जाता है।" ॥ २२३-२२५ ॥ "आज कौरव उन्मत्त हुए हैं, जयशाली उत्तम सैन्य उनके पास हैं, शारीरिक बलसे तो वे उन्मत्त हैं ही, परंतु हाथी घोडे इत्यादिकोंसे वे विशेषतः उन्मत्त हैं। बलरहित दूसरे राजाओंको तो वे मानते ही नहीं, और जानते हुए भी वे तत्काल मद्य पीनेवाले मनुष्यके समान भूल जाते हैं। जरासन्धके आश्रयसे वे कौरव अपनेको बलवान समझ रहे हैं। योग्य ही है, कि नागतुण्डिकसे-गारुडीके बलसे सर्पके मस्तकपर नाचनेवाले मेंडकके समान वे हैं। जरासन्धके आधारसे वे पूज्य हैं और राजाओंद्वारा पूजे गये हैं। जैसे कि मस्तकपरके सामान्य केशसमूह उसके आश्रयसे रहनेसे तैल, पुष्प मालादिकोंसे संस्कारित किये जाते हैं। इसलिये हे बुद्धिसमुद्र श्रीकृष्ण, कौरवोंके साथ लढनेके लिये जाना आपको योग्य नहीं है। इस समय कालविलंब करना ही अच्छा है।" ॥ २२६-२३० ॥ "हे कृष्ण, जब जरासंधके साथ आपका युद्ध होगा तब ये कौरव वैरी आपकेद्वारा हितसिद्धिके लिये दंडनीय होंगे। इस समय आप यदि कौरवोंके साथ युद्ध करेंगे तो वह जरासंध क्रुद्ध होगा और निद्रित सिंहको जगानेके समान आपका कार्य होगा। इस लिये आप स्थिर होकर स्वस्थ रहें। योग्य काल आनेपर आप उनका नाश करेंगे ही।" इस प्रकार उस विद्वानने सब श्रेष्ठ ज्ञानी यादवोंको युद्धसे रोक दिया

अतः स्वास्थ्येन संस्थेयं स्थिरैश्च स्थिरमानसैः। भवद्भिरिति संप्राप्ते काले नेष्यति तत्क्षयम् ॥
विदुषा वारिताः सर्वे यादवा विबुधा वराः। श्रेयांस इति संतस्थुर्जानन्तो वैरिविक्रियाम् ॥
अथ ते पाण्डवाश्चण्डा दन्तावलकरोत्कराः। पराक्रमसमाक्रान्तदिक्चक्राश्चक्रिविक्रमाः ॥२३५
ऐन्द्रीं दिशं समालम्ब्य परावृत्तसुवेषकाः। प्रच्छन्ना निर्गता भस्मच्छन्नपावकवद्वराः ॥२३६
कुन्तीगतिविशेषेण मन्दं मन्दं व्रजन्ति ते। स्वस्थाः संशुद्धिसंपन्नाः पाण्डवास्तत्त्ववेदिनः ॥

श्रान्तायामथ तस्यां ते श्रान्ताः स्थितिकराः स्थिराः।
स्थितायामुपविष्टाश्चोपविष्टायां पटूद्यमाः ॥ २३८

शनैः शनैर्व्रजन्तस्ते संप्रापुः सुरनिम्नगाम्। अगाधां जलकल्लोलमालिनीं जलहारिणीम् ॥
यत्कूले कल्पशालाभाः शालाः शाखासमुन्नताः। विशालाः फलिनः फुल्लाः सुमनःशोभिता बभुः
सावर्तनाभिका लोलजलकल्लोलबाहुका। सत्स्थूलोपलवक्षोजा कूलद्वयपदावहा ॥२४१
प्रत्यन्तपर्वतस्थूलनितम्बा निम्नगामिनी। महाह्रदमहावक्षाः सरोजाक्षी सदाजडा ॥२४२

वैरियोंकी विक्रिया जानकर अर्थात् इस समय शत्रुओंका बल और उन्मत्तता जानकर स्वस्थ रहना ही श्रेयस्कर है ऐसा यादवोंने निश्चय किया ॥ २३१–२३४ ॥

[द्विजके वेषसे पाण्डवोंका प्रवास] हाथी की शुण्डाके समान उत्तम हाथवाले, पराक्रमसे दश-दिशाओंको व्याप्त करनेवाले, चक्रवर्तीके समान पराक्रमी, श्रेष्ठ, प्रचण्ड पाण्डव पूर्व दिशाका आश्रय लेकर चलने लगे। उन्होंने अपना सुवेश बदल दिया, भस्मसे ढँके हुए अग्निके समान गुप्त होकर वे प्रयाण करने लगे। कुन्तीकी गतिके अनुसार वे धीरे धीरे चलने लगे। वे पाण्डव स्वस्थ थे। उनके मनमें प्रस्तुत प्रसंगसे क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ था। वे शुद्ध विचारवाले और तत्त्वोंके जानकार थे ॥ २३५–२३७ ॥ जब कुन्तीमाता थकती थी, तब वे आगे चलना बंद कर देते थे और उसके साथ विश्रान्ति लेते थे। जब वह खडी हो जाती थी तब वे स्थिर होकर खडे हो जाते थे। जब वह बैठती थी तब उत्साहयुक्त उद्यमवाले वे पाण्डवभी बैठते थे। इस तरह धीरे धीरे प्रयाण करनेवाले वे गंगानदीके पास चले गये ॥ २३८–२३९ ॥ वह गंगानदी अगाध थी, हमेशा उसमें पानीकी खूब लहरें उठती थीं तथा जलसे सुंदर दीखती थी। इसके किनारेपर कल्प-वृक्षोंके समान, शाखाओंसे ऊंचे विपुल वृक्ष थे। वे विशाल, फलोंसे लदे हुए, और प्रफुल्ल पुष्पोंसे सुशोभित थे। वह गंगानदी स्त्रीके समान भँवररूपी नाभिको धारण करती थी चंचल जलतरङ्ग-रूपी बाहुओंसे युक्त थी। उत्तम और स्थूल पत्थर उसके स्तन समान दीखते थे। और दो किनारे उसके दो पैर थे। समीपके पर्वत मानो उसके स्थूल नितम्ब थे। महाह्रदरूपी वक्षः-स्थल उसने धारण किया था और उसमें जो कमल खिले थे वेही मानो उसके नेत्र थे। स्त्री जड-मूर्ख होती है और यह नदी सदाजडा–सदाजला [ड ओर ल में अभेद माननेसे] हमेशा जलसे

समीनकेतना हंसगामिनी पक्षिसद्वचाः। सीमन्तिनीव या भाति भासुरा देवनिम्नगा ॥
तामगाधां समावीक्ष्य संततुं विषमां समाम्। अक्षमाः क्षणतः खिन्ना विश्रब्धास्तत्र पाण्डवाः॥
कैवर्तान्वर्तने शक्तांस्तस्या उत्तरणक्षमान्। समाहूय समाचख्युरिति तूर्णं सुपाण्डवाः ॥२४५
धीवरा धृतिमापन्ना द्रुतं च तरणीं तराम्। समानयत सुव्यक्तां समुत्तरणहेतवे ॥२४६
इत्युक्ते तत्क्षणात्तैश्च समानीता विछिद्रिका। तरणी तरणोपायं सूचयन्ती तरन्त्यपि ॥२४७
तदा ते तां समारुह्य प्रविष्टा देवनिम्नगाम्। कुन्त्या सह सुकुन्तात्तहस्ता व्यस्तविषादकाः ॥
प्रविवेश तरीर्मध्येसलिलं पाण्डवान्विता। चलत्कल्लोलमालाभिर्वहन्ती सुवहा वरा ॥२४९
मध्येगङ्गं गता साप्यग्रे गन्तुं न क्षमाऽभवत्। अस्थिराऽपि स्थिरा तत्र स्थिता स्थगितसद्गतिः॥
चालितानेकधा तैश्च न चचाल चलात्मिका। पदं दातुमशक्ता सा कीलितेव स्वकर्मणा ॥
अरित्रैर्वाह्यमानापि विविधैर्निश्चलं स्थिता। भर्त्स्यमाना कुभार्येव पदं दधे न सा तरीः॥२५२

भरी रहती है। स्त्री मीनकेतनसे–मदनसे कामपीडासे युक्त होती है, और नदी मीन–मत्स्य रूप ध्वजसे शोभती है, अर्थात् नदीमें जब बडे बडे मत्स्य ऊपर उछलकर आते हैं तब वे ध्वजके समान दीखते हैं। स्त्रीकी गति हंसीकी गतिके समान होती है और नदी हंसपक्षियोंके गमनसे युक्त थी। पक्षियोंके शब्दही नदीके शब्द हैं। स्त्री कोकिलाके समान मधुर वचन बोलती है। यह देवनदी स्त्रीके समान कान्तियुक्त दीखती है" ॥ २४०–२४३ ॥ वह सुरनदी अगाध और समान थी परंतु उसे तैरकर जाना शक्य नहीं है ऐसा देखकर असमर्थ पाण्डव क्षणतक खिन्न होकर वे नदीके पास विश्रान्त होगये–ठहर गये॥ २४४ ॥ नांव चलानेमें शक्तिशाली और उस नदीसे तैरकर दूसरे किनारेपर जानेमें–समर्थ ऐसे धीवरोंको शीघ्रही बुलाकर उन पाण्डवोंने कहा "धैर्यके धारक हे धीवर, तुम पार पहुंचानेके लिये समर्थ ऐसी नौका जल्दी लाओ। वह सुव्यक्त मजबूत होनी चाहिये।" ऐसे बोलनेपर तत्काल वे छिद्ररहित नौका लाये। वह तैरती हुई तैरनेके उपायकोभी सूचित करती थी। तब वे पाण्डव कुन्तीके साथ उसपर आरोहण कर गंगा-नदीमें प्रवेश करने लगे। पाण्डवोंके हाथमें भाले थे और उनके मनसे अब विषाद निकल गया था ॥ २४५–२४८ ॥ चंचल तरंगोंके साथ आगे चलनेवाली वह उत्तम नौका अच्छी तरहसे चल रही थी। वह गंगानदीके बीचमें गई, परंतु आगे न जा सकी। यद्यपि वह नौका अस्थिर-चञ्चल थी तथापि उसकी गति रुक गयी, वह बीचहीमें स्थिर होगई ॥ २४९–२५० ॥ वह चंचल नौका अनेक उपायोंसे चलाई जानेपरभी न चल सकी, मानो अपने कर्मसे कीलित कर दी हो ऐसी वह नौका एक पैरभी आगे न बढ सकी॥ २५१ ॥ अनेक अरित्रोंसे–अनेक वल्होंसे आगे चलाने परभी वह निश्चलही रही। अपशब्दोंद्वारा निर्भर्त्सना करनेपरभी जैसी दुराग्रही पत्नी एक पांवभी आगे नहीं रखती और अपना आग्रह नहीं छोडती है वैसे वह नौकाभी आगे बिलकुल

नान्योपायैश्च कैवर्तैश्चालितापि न साचलत्। यथा कालज्वराक्रान्ता सचलुस्तनुतां गता॥
भो कैवर्ताश्च का वार्ता चलन्ती चालितापि सा। दुर्मेधेव सुशास्त्रे वा तरणी न चलत्यतः॥
कैवर्ता वर्तनावर्त्या पृष्टाः पाण्डवभूमिपैः। इति ते वचनं प्रोचुः श्रुत्वा पाण्डवसद्वचः ॥२५५
स्वामिन्नत्र जले नित्यवासिनी जलदेवता। तुण्डिकाख्या क्षितौ ख्याता समास्ते चामृताशिनी॥
सा शुल्कं याचते युष्मान् नियोगान्नियमस्थिता। अतस्तस्यै प्रदायैतन्नौश्चाल्या निश्चलं स्थिता॥
नायास्माकं न दोषोऽयं न दोषो भवतामपि। नियोगाद्याचतेऽप्येषा नियोग ईदृशो भवेत्॥
नियोगिनो नियोगेन शुल्कसंग्रहणोद्यताः। शुल्कं लात्वा प्रमुञ्चन्ति नरान्न्यायोऽत्र संमतः॥
अतो दत्त्वा शुभं शुल्कं तुण्ड्यै तद्योग्यमुन्नतम्। चालितव्यं भवद्भिश्च न विलम्बो विधीयताम्॥
नृपोऽभाणीन्निशम्यैवं कैवर्तान्वार्तयोद्यतान्। अत्र देयं न किंचिद्धि नैवेद्यं विद्यते ध्रुवम्॥
सरित्तटे घटिष्यामः समाद्य पटवो वयम्। नैवेद्यं दीपनं रम्यमाज्यपायसमिश्रितम् ॥२६२
दत्त्वास्यै मानयिष्यामो नैवेद्यं विदितात्मकम्। पवित्रं सज्जनैर्मान्यं गत्वा च सरितस्तटे॥

नहीं बढी, स्थिरही रही ॥ २५२ ॥ जैसे कालज्वरसे क्षीण हुआ शरीर चलनेमें असमर्थ होता है। वैसे धीवरोंद्वारा अन्य उपायोंसे चलानेका प्रयत्न करनेपरभी वह नहीं चल सकी। ॥ २५३ ॥ "हे धीवर कहो तो क्या बात है। अबतक तो यह स्वयंही चलती थी परंतु अब क्या हुआ, जो यह चलानेपरभी नहीं चलती है। जैसी दुष्ट बुद्धि हितकर- शास्त्रमें चलानेपरभी नहीं चलती है, वैसी यह नौका चलानेपरभी नहीं चलती है। इसमें क्या हेतु है? चलानेकी पुनरावृत्ति की गई तोभी नहीं चलती" ऐसा पाण्डवोंने धीवरोंको पूछा तब वे उनका शुभ वचन सुनकर इस प्रकार बोले—"हे स्वामिन् इस गंगाके जलमें हमेशा रहनेवाली तुण्डिका नामकी पृथ्वीपर प्रसिद्ध अमृत भक्षण करनेवाली देवता रहती है। उसका यहां स्वामित्व होनेसे वह अपने कायदेमें दृढ रहकर आपको कर–भेट मांगती है। इसलिये वह इसे देनेपर यह निश्चल नौका चलेगी। हे प्रभो, यह न हमारा दोष है न आपका। वह देवता स्वकीय हकसे याचना करती है। इसका नियोग–हक ऐसा है। जैसे राजपुरुष अपने अधिकारसे करग्रहण करनेमें तत्पर होते हैं, कर लेकर वे आदमीको छोड देते हैं, वैसे यहांभी यह न्याय लागू है। उसे मान्य करना चाहिये। "इसलिये इस देवताके योग्य शुभ उन्नत–बढिया शुल्क-कर देकर इसे आपको चलाना चाहिये। इसमें विलम्ब नहीं करना चाहिये" ॥ २५४–२६०॥ ऐसी वार्ता कहनेवाले, नाव चलानेके लिये उद्यत हुए। उन धीवरोंका ऐसा भाषण सुनकर राजा युधिष्ठिर बोले, कि "यहां तो देवीको देने- लायक नैवेद्य हमारे पास हैही नहीं। हम जब नदीके किनारेपर जायेंगे तो हम इधर उधर जाकर नैवेद्यके लिये प्रयत्न करेंगे। पायस मिलाया हुआ, घीसहित, उज्ज्वल, और सुंदर नैवेद्य हम तयार करेंगे और नदीके तटपर जाकर सज्जनोंसे मान्य, पवित्र और प्रसिद्ध स्वरूपका नैवेद्य देवताको

सलिले विपुलेऽत्रैव न लभेमहि धीवराः। किं च लभ्यं प्रदातव्यं न्यायोऽयं विश्रुतो भुवि ॥
धीवरा धृतये प्रोचुः श्रुत्वा वाक्यं नरेशिनः। श्रोतव्यं श्रूयतां श्रोतःसुखकृद्देववल्लभ ॥२६५
न तृप्यति पयःपूरैः सज्जितैः खज्जकैरपि। प्राज्यैराज्यैर्वराक्कैश्च पक्कान्नैस्तुण्डिकासुरी ॥२६६
निरवद्यैः सुनैवेद्यैः सद्यो मद्यैर्न तृप्यति। तुण्डिका चण्डिका खण्डप्रचण्डबलितृप्तिका ॥२६७
मनुष्यमांसतो मत्ता तृप्तिमेति बुभुक्षिता। अतो नरं संप्रदाय तृप्तिमेतु सुतत्त्वतः ॥२६८
तृप्तामेनां विधायाशु यात यूयं सरित्तटम्। अन्यथानर्थसंपत्तिरित्यवादीत्सुधीवरः ॥२६९
निशम्यैवं वचस्तस्य संक्षुब्धाः पाण्डुनन्दनाः। अतर्कयन्निजं वीक्ष्य मरणं समुपस्थितम् ॥
अहो वामे विधौ नूनं कथं दुःखक्षयो भवेत्। कर्मतो बलवान्नान्यो वर्तते भववासिनाम् ॥
पूर्वं कौरवसंघेन सत्रं युद्धे जयं गताः। ततः प्रज्वलिता लाक्षागृहाद्दैवाद्विनिर्गताः ॥२७२
इदानीं तरणीयोगे स्वयं च समुपस्थिते। वयं तुण्ड्याः स्वयं यामो मरणं शरणं द्रुतम् ॥
महानिष्टाद्विनिःक्रान्ता लघुतो मृत्युभागिनः। उदन्वज्जलमुल्लङ्घ्य यथा जलबिले मृतिः ॥

देकर उसका हम आदर करेंगे। हे धीवर, यहां विपुल पानीके स्थलहीमें वह नैवेद्य हमें कहांसे प्राप्त होगा? तथा जो चीज मिलती है वह देनी चाहिये यह न्याय पृथ्वीमें प्रसिद्ध है ॥ २६१–२६४ ॥

राजा युधिष्ठिरका वाक्य सुनकर धीवर, उसे संतोषके लिये इस प्रकार बोलने लगे। "देवके समान प्रिय हे राजन्, कानको सुख देनेवाला सुननेलायक हमारा वक्तव्य आप सुने ॥ २६५ ॥ "यह तुण्डीदेवता दूधके पूरोंसे तृप्त नहीं होगी, अच्छे खाजे पक्वान्नोंसेभी तृप्त नहीं होगी। उत्तम घीसे, उत्तम अन्नोंसे और पक्वान्नोंसेभी तृप्त नहीं होगी। यह देवता निर्दोष नैवेद्योंसें और तत्काल बनाये मद्यसे–ताजे मद्यसेभी तृप्त नहीं होती है। यह चण्डी तुण्डीदेवी प्रचण्ड और अखंड बलिसे तृप्त होती है। यह उन्मत्त भूखी देवता मनुष्यके मांससे तृप्त होती है। इस लिये मनुष्य-बलि देनेसे यह परमार्थतया तृप्त हो जावेगी। इस देवताको तृप्त कर आप शीघ्र नदीके किनारेपर जा सकते हैं। अन्यथा अनर्थ–संकट प्राप्त होगा ऐसा धीवरने भाषण किया" ॥ २६६–२६९ ॥

[भीमका बलिदानके विषयमें विनोद] उसका वचन सुनकर पाण्डुपुत्र क्षुब्ध होगये। अपना मरण समीप आया हुआ देखकर वे विचार करने लगे–"दैव वक्र होनेपर दुःखका नाश नहीं होता है। संसारमें रहनेवाले–भ्रमण करनेवाले प्राणियोंको कर्मसे अधिक बलवान् कोई नहीं है। हमलोग प्रथमतः कौरवोंके साथ युद्ध कर उसमें विजयी हुए। तदनंतर कौरवोंने लाक्षागृहमें हमको जलानेका प्रयत्न किया; परंतु उस लाक्षागृहसे हम सुदैवसे निकल सके। इस समय नौकाका योग स्वयं प्राप्त हुआ और हम मरनेके लिये तुण्डीको शरण जा रहे हैं। बडे अनिष्ट प्रसंगसे तो सुरक्षित रहे; परंतु छोटे अनिष्टसे अब हम मृत्युको प्राप्त होंगे। जैसे कोई समुद्रका पानी लांघकर

कर्मण्युपस्थिते कोऽत्र बली कैवर्तहस्ततः। च्युतो जाले गतो मीनस्तच्च्युतो गलितो बिना॥
इत्यातर्क्य नृपो ज्येष्ठोऽलोकयद्भीमसन्मुखम्। इति कर्तव्यतामूढो व्यूहगूढो वृषात्मकः॥
नृपोऽभणद्भयाक्रान्तो विपुलोदर सोदर। उदीर्य दरनिर्णाशे वचो वीर त्वयाधुना॥२७७
अन्यच्च चिन्तितं कार्यमन्यच्च समुपस्थितम्। अनिष्टं राजकन्येष्टो विप्रो वा व्याघ्रभक्षितः॥
मध्यविघ्नविनाशाय कोऽप्युपायो विधीयते। न मे स्फुरति शान्त्यै स चिन्तया धीर्हि नश्यति
भीमोऽभाणीद्भयातीतो भृकुटीकुटिलाननः। नृपावसरमारेक्य कृतं कार्यं सुबुद्धिना॥२८०
एको हि निरवद्योऽत्रोपायोऽपायविवर्जितः। पोस्फुरीति मम स्फूर्तिकीर्तिसंपत्तिदायकः॥
येनोपायेन नाकीर्तिर्नापमानो न निन्द्यता। न हानिः स प्रकर्तव्यः सर्वकार्यप्रसिद्धये॥२८२
स्फुरज्जरज्ज्वराक्रान्तः कैवर्तो विकृताकृतिः। दरिद्रो दुर्भगो दीनो दुःखदग्धो दयातिगः॥
इमं हत्वा बलिं दत्त्वा तोषयित्वा च तुण्डिकाम्। तरिष्यामो वयं नावा सरितं श्रमवर्जिताः॥
भीमं भीमवचः श्रुत्वा कैवर्तः कम्प्रमानसः। चकम्पे कर्तनां प्राप्त इवैतत्क्षीणदीधितिः॥२८५

छोटेसे जलके गढेमें मर जाता है, ऐसी परिस्थिति हमकोभी प्राप्त हुई है। कर्मोदयके सामने किसीकाभी सामर्थ्य उपयोगी नहीं होता है। उसके आगे सब संसार असमर्थ है। धीवरके हाथसे गिरकर मत्स्य जालमें पडा वहांसेभी वह निकला परंतु बकने उसको खा लिया इस प्रकार विचार कर ज्येष्ठ राजा युधिष्ठिरने भीमके सुंदर मुखको देखा। धर्माचरणमें तत्पर राजा युधिष्ठिर कर्तव्यमूढ होकर तर्कमें मग्न हुआ। वह भयसे व्याप्त होकर बोलने लगा कि "हे विपुलोदर भाई भीम, तू वीर है,इस भयके नाश करनेमें अब तू उपाय सुझानेवाला भाषण कर॥ २७०–२७७॥ हे भीम, हमने क्या सोचा था और क्या अनिष्ट प्राप्त हुआ है। राजकन्याने जिसे वर पसंद किया था वह ब्राह्मण व्याघ्रने खा डाला ऐसी कहावतके समान यह बात हुई है। अतः बीचमें उत्पन्न हुए इस विघ्नके नाशार्थ कोई उपाय करना चाहिये। शान्तिके लिये कोई उपाय मेरे मनमें नहीं सूझता है। और चिन्तासे मेरी बुद्धि नष्ट हुई है"॥ २७८–२७९॥ भोयें कुटिल होनेसे जिसका मुंह कुटिल हो गया है अर्थात् भयंकर हुआ है ऐसा भयरहित भीम बोला–"हे राजन् अवसर देखकर सुबुद्धिमान् लोग कार्य करते हैं। अपायरहित निर्दोष एक उपाय मेरे मनमें सूझा है, और वह उपाय मेरी कीर्तिकी वृद्धि करनेवाला है। जिस उपायसे अकीर्ति नहीं होगी, अपमान नहीं होगा और निंदा नहीं होगी और हानिभी कुछ न होगी वह उपाय सर्व कार्यकी सिद्धिके लिये करना चाहिये। यह धीवर बढते हुए जरारूपी ज्वरसे पीडित हुआ है। इसकी आकृतिभी टेढी मेढी है, यह दरिद्री, कुरूप, दीन, दुःखोंसे जला हुआ, और दयारहित है। इसको मारकर बलि देंगे जिससे तुण्डिका संतुष्ट होगी और हम सब विना प्रयासके नौकासे नदीपार जायेंगे।॥ २८०–२८४॥ भीमका यह भयंकर वचन सुनकर धीवरका मन भयसे काँपने लगा। मानो वह

सोऽवोचद्धीवरो धीमान्विदग्धः शुद्धमानसः । हते मयि नरेन्द्राद्याहते वा किं भविष्यति ॥
भूप किं तु विशेषोऽस्ति मद्धते सरितस्तटम् । को नेता भवतां नूनं यातु त्रिपथगास्थितिः ॥
भवतामपकीर्तिस्तु भविता संततं नृप । नृपेण धीवरो ध्वस्त इति लोकापवादतः ॥२८८

तुभ्यं च रोचते राजन् यावज्जीवं सरित्स्थितिः ।
चेत्तर्हि वाञ्छितं स्वं त्वं विधेहि विधिवद्ध्रुवम् ॥२८९
अस्मत्कल्पास्तु युष्माकं विधास्यन्ति कदाचन ।
नोत्तारं सुरन्हादिन्या भीताः किं यान्ति तत्पदम् ॥२९०

तदाकर्ण्य कृपाक्रान्तो ज्येष्ठो भीममबीभणत् । हा वत्स वत्स हा स्वच्छसमिच्छाछन्नमानस ॥
किमुक्तमिदमत्यर्थं यदुक्त्या कम्पतेऽखिलः । प्रेतराजाद्यथा कायः कोमलः किल कर्मकृत् ॥
त्वं वेत्ता विदुषां मान्यो विपुलस्य फलस्य च । श्रेयःकिल्बिषयोर्नूनं शुभाशुभफलात्मनोः ॥
दयावान्यो भवेद्भीरुर्भवाद्भ्रमणभासुरात् । स एव सुखमाप्नोति श्वपाक इव निश्चितम् ॥२९४
यो हन्ति निर्दयो जीवान्यमातीतो मदावहः । स याति निधनं धृष्टो धनश्रीरिव दुर्धिया ॥
अयं तु धीवरोऽधृष्टः क्षुधाखिन्नः सुखातिगः । पापार्तस्तृप्तिनिर्मुक्तः कथं हन्यो दयालुभिः ॥

करोंतसे कतरा गया हो । उसकी मुखकान्ति बिल्कुल क्षीण हुई । वह धीवर बुद्धिमान्, चतुर और शुद्ध विचारका था । वह बोला "हे राजेन्द्र मुझे मारने न मारनेपर क्या होगा यह कहता हूं । हे राजन् विशेषता तो यह है, कि मुझे मारनेपर आप लोगोंको मेरे बिना नदीके तटपर कौन ले जायेगा? आपको इस गंगानदीमेंही हमेशा रहना पडेगा । राजाने धीवरको मार डाला ऐसे लोकापवादसे आपकी अपकीर्ति हमेशा होगी । यदि आपको आजन्म नदीमें रहनाही पसंद हो तो आप अपना चाहा हुआ कार्य विधिके अनुसार निश्चयसे कीजिये । हमारे सरीखे लोग अर्थात् अन्य धीवर इस गंगा-नदीसे दूसरे किनारेको आपको कभी नहीं पहुंचावेंगे, क्यों कि भीतियुक्त लोग उस मार्गसे क्यों जायेंगे"? ॥२८५–२९०॥ वह धीवरका भाषण सुनकर कृपासे व्याप्त चित्तवाले ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर बोले, "हे वत्स, तू तो निर्मल इच्छासे भरा हुआ है । यह तुम प्रयोजनहीन क्या बोल गये? ऐसे भाषणसे सब लोग कंपित होंगे । जैसे कार्य करनेवाला कोमल शरीर यमसे कँपित होता है वैसा सब कँपने लगेंगे । तुम ज्ञानी हो, विद्वन्मान्य हो । किस कार्यका कौनसा विपुल फल मिलता है उसे तुम जाननेवाले हो, यानी शुभाशुभ फलस्वरूप पुण्य और पापको तुम जाननेवाले हो । भ्रमणसे व्यक्त होनेवाले संसारसे जो डरता है, जिसका मन दयालु है वही मनुष्य यमपाल चाण्डालके समान निश्चित सुखको प्राप्त होता है । जो मनुष्य निर्दय होकर प्राणियोंको मारता है, जो व्रतरहित है और गर्विष्ठ है वह निर्लज्ज धनश्रीके समान दुर्बुद्धिसे विनाशको प्राप्त करता है । ॥ २९१–२९५ ॥ हे भीम, यह धीवर सज्जन है, भूखसे खिन्न हुआ है, बिचारा सुखसे बहुत

उपकारपरोऽस्माकं ह्रादिनीतारणे क्षमः। नायं हन्यः कथं हन्या उपकारकरा नराः ॥२९७
विपुलोदर विद्वांस्त्वमन्योपायमुपायवित्। विचारय विचारज्ञ यत्स्याम सुखिनो वयम्॥२९८
इत्याकर्ण्य सुवेगेन वायविर्वचनं जगौ। विहस्य हर्षनिर्मुक्तो निर्मलोऽद्भुतविक्रमः ॥२९९
त्वं नाथ देहि निस्तन्द्रस्तुण्डीतृप्त्यर्थसिद्धये। संगराकुशलं कौल्यं नकुलं कुलपालिनम् ॥
सहदेवं दयातीतं व्यतीतं कुलपालनात्। हत्वा दत्स्व सुशुल्कार्थं तुण्ड्यै तृप्तिसमृद्धये ॥३०१
अनयोरेकतो नाथ बलिं दत्वा सुखाश्रिताः। व्रजामः सरितस्तीरं पुण्यवायुप्रणोदिताः ॥
निशम्य महतां मान्यो मोहितो महिमाश्रितः। इति ज्येष्ठो विशिष्टात्माचष्टे स्म वचनं वरम्॥
हा तात तात भीमेति भणितं किं भयावहम्। आत्मजाविव संप्रीताविमौ मोहकरौ मम ॥
मया कथं प्रहन्येते सोदरौ दरदारकौ। इमौ निजात्मदेशीयौ सदा प्रीतौ सुखात्मकौ ॥३०५
इमौ हत्वा गतेऽस्माकमपकीर्तिं दुरुत्तराम्। करिष्यन्ति यतो लोका आबालं लोकपालिनः ॥
भूपोऽयमनुजौ दत्त्वा देव्यै दीप्तकरौ गतः। वल्लभं जीवितं मत्वा धिग्जीव्यं सुदयातिगम् ॥
हे भीम हे दयातीतमानसातिभयंकर। न भण्यं भणनं भव्य यत्र जीवदया न तत् ॥३०८

दूर है, पूर्व जन्मके पापसे दुःखी है। इसलिये यह अतृप्त है, दयालु लोग इसे कैसे मारेंगे? हमें नदीसे तारनेके लिये यह समर्थ है। इसका हमारे ऊपर यह उपकारही है। इसलिये इसे मारना योग्य नहीं है। उपकार करनेवाले मनुष्यको मारना कैसे योग्य होगा? अर्थात् उनको मारना महापापका कारण है। हे विपुलोदर तू विद्वान है, उपाय जानता है। हे विचारज्ञ, ऐसे दूसरे उपायका विचार कर कि जिससे हम सर्व सुखी होंगे।" यह अपने बडे भाईका वचन सुनकर हर्षरहित निर्मल-निष्कपटी, अद्भुत पराक्रमी वायुपुत्र भीम वेगसे हंसकर इस प्रकार बोला। "हे प्रभो, आलस्यको छोडकर, तुण्डीदेवीकी तृप्तिकी साधनाके लिए युद्धचातुर्यरहित, कुलीन तथा कुलरक्षक ऐसा नकुल और कुलरक्षण न करनेवाला दयारहित ऐसा सहदेव इन दोनोंमेंसे किसी एकको मारकर अपना संतोष बढानेके लिए तुण्डीदेवीको बलि दे दीजिए। जिससे हम पुण्यवायुसे प्रेरित होकर सुखपूर्वक नदीके किनारेपर पहुँचेंगे।" यह भीमका वचन सुनकर महापुरुषोंको मान्य, प्रभावका आधार, विशिष्टात्मा, विशिष्ट दयादि स्वभावयुक्त, ज्येष्ठ भाई युधिष्ठिरने मोहसे इस प्रकार उत्तम वचन कहे॥ २९९-३०३॥ "हे वत्स! भीम, ऐसा भयंकर भाषण तू क्यों बोल रहा है। ये दो छोटे भाई दो पुत्रोंके समान प्रेमयुक्त और मोह उत्पन्न करनेवाले हैं। ये अपने दो छोटे भाई भीति दूर करनेवाले अपनी आत्माके समान हमेशा प्रीतियुक्त और सुखी हैं। ये मेरे द्वारा कैसे मारे जायेंगे। इनको मारनेपर बालकसे लेकर राजातक सबलोग हमारी दुर्निवार अपकीर्तिको सब जगतमें प्रसिद्ध करेंगे। यह राजा अपने तेजस्वी दो छोटे भाई देवीके लिये बलि देकर और अपना जीवित प्रिय मानकर यहांसे चला गया ऐसा लोक कहेंगे। ऐसे दयाहीन जीवितको धिक्कार हो. ॥ ३०४-३०७॥ हे दया-

अन्योपायं समाचक्ष्व विचक्षण सुखप्रदम्। श्रुत्वेति वायविर्वाचमुवाच चतुरोचिताम् ॥३०९
नन्वेवं रोचते तुभ्यं न चेत्पार्थः समर्थवाक्। तत्तृप्त्यै दीयतां देव यथा सा स्यात्सुविघ्नहा॥
श्रुत्वैवं स निजं शीर्षमाकम्प्य सुकृपापरः। अवादीद्विदिताशेषवृत्तान्तः श्रीयुधिष्ठिरः ॥३११
हा भ्रातः पावने भीम विपुलोदर सुन्दर। किमिदं गदितं निन्द्यं त्वया दीप्तिसुखापहम् ॥
प्रचण्डः पाण्डवः पार्थः प्रसिद्धः पृथिवीभुजाम्। अजेयः परिपन्थीशैर्धनुर्वेदविशारदः ॥३१३
अस्मिन्सति निजं राज्यं कदाचित्पुनरेष्यति। यतोऽयं दोर्बली बाल्याद्विनयं प्रापयन्द्विषः ॥
शब्दवेधी सुधानुष्कः सधर्मा धृतिधारकः। धनंजयो धृतानन्दो न हन्तव्यः कदाचन ॥३१५
एवं चेज्जननी देया कुन्ती कमलकोमला। यतः स्वास्थ्यं च सर्वेषां पाण्डवानां हितात्मनाम्॥
मा भाणीर्भीम सद्भ्रातरित्येवं जननी यतः। मान्या जनैः सदा पूज्या जन्मदात्री दयावहा॥
यया वयं निजे गर्भे नवमासान्भृता पुनः। जन्मलाभं शुभं दत्त्वा क्षालिताः पालिताः पुरा॥
जननीयं जगन्मान्या कथं हिंस्या हितार्थिभिः। यतस्तु जगति ख्यातैर्माता तीर्थं प्रकथ्यते॥

रहित चित्तवाले अतिभयंकर भीम, हे भव्य, जिसमें दया नहीं है ऐसा भाषण तुम मत करो। हे चतुर, सुखदायक दूसरा उपाय कहो।" इस प्रकारसे भाषण सुनकर चतुरोंको योग्य ऐसा भाषण वायुपुत्र बोलने लगा ॥ ३०८-३०९ ॥ "हे भाई यदि यह उपाय आपको पसंद नहीं है, तो समर्थ वचनवाला अर्जुन उसकी तृप्तिके लिये दे देना, जिससे वह देवी हमारा विघ्नविनाश करेगी" ॥३१०॥ इस प्रकारका वचन सुनकर अतिशय दयालु, सब वृत्तान्तको जाननेवाले श्रीयुधिष्ठिर मस्तक धुनते हुए बोलने लगे। "हे भाई हे पवित्र भीम, हे सुन्दर विपुलोदर, तुमने दीप्ति और सुखको नष्ट करनेवाला निन्द्य भाषण क्यों किया? यह पार्थ -अर्जुन संपूर्ण राजाओंमें प्रसिद्ध हैं। यह प्रचण्ड पाण्डव है। शत्रुराजाओंके द्वारा अजेय है। शत्रुराजा इसको जीतनेमें असमर्थ हैं। धनुर्वेदमें अतिशय प्रवीण है। इसके होनेसे अपना नष्ट हुआ राज्य कदाचित् फिर प्राप्त हो सकेगा, क्यों कि यह बाहुबली है, बाल्यसेही इसने शत्रुओंको विनययुक्त किया है। यह शब्दवेधी, उत्तम धनुर्धर है, धर्माचरणमें तत्पर है, और धैर्यधारी है। यह धनंजय आनंदको धारण करनेवाला है, इसे कदापि मारना योग्य नहीं है" ॥३११-३१५॥ यदि अर्जुनकोभी नहीं मारना चाहिये ऐसा आप कहते हो तो कमलके समान कोमल इस माताको दुर्गाके लिये दे डालो जिससे हित-स्वभावी सब पाण्डवोंको स्वास्थ्य प्राप्त होगा।" हे भीम, हे सज्जन भाई, ऐसा तू मत बोल। कारण जननी लोगोंको सदा मान्य, पूज्य होती है। माताने जन्म दिया है और वह दया करने योग्य है। इसने अपने गर्भमें नौ मासतक हमको धारण किया है। पुनः जन्मका लाभ देकर इसने नहलाधुलाकर हमारा पालनपोषण किया है। माता जगन्मान्य होती है, हितार्थी लोक उसकी हिंसा कैसी करेंगे। क्यों कि जगतमें प्रसिद्ध पुरुष माताको तीर्थ कहते हैं ॥ ३१६-३१९ ॥ हे भीम, तू दयाका

त्वं कृपासागरो नित्यं न्यायवेदी विचक्षणः। धर्माधर्मविवेकज्ञो लोकज्ञो लोकनीतिवित् ॥
त्वत्समो विनयी लोके द्वितीयोऽत्र न विद्यते। अद्वितीयपराक्रान्तिर्यद्युक्तं तद्विधेहि भोः ॥
ततो युधिष्ठिरेशेन विशिष्टेन हितैषिणा। स्वचित्ते भावितं भव्यं सुभावं भयहानये ॥३२२
भीमेन भूरिशो भक्ता भ्रातरो दर्शिता वराः। हतये जननी चापि तन्न युक्तं हि भूतले ॥
पार्थिवः पतनोद्युक्तः स्वयमप्सु सुपावनः। आहूय बान्धवान्युक्त्या शिक्षया समयोजयत् ॥
भवद्भिर्भ्रातरो भक्त्या भजनीया सदाम्बिका। जननीभक्तितो लभ्या यतः सर्वार्थसंपदः ॥
तथा परोपकारेण प्रीणनीयाः परे जनाः। परोपकारनिष्ठानां विशिष्टत्वं यतो भवेत् ॥३२६
कौरवा न च विश्वास्या विश्वे विश्वासघातकाः। आशीविषा इवात्यर्थं तद्विश्वासे कुतः सुखम् ॥
तथावसरमासाद्य विपाद्य कौरवान्खलान्। स्वनीवृति स्थितिं भव्या भजताद्भुतविक्रमाः॥३२८
इति शिक्षां प्रदायाशु सुशिष्यान्दक्षमानसान्। नीरार्द्रवस्त्रतः स्नात्वा परिहृत्य मनोमलम् ॥
युधिष्ठिरः स्थिरो ध्याने विशुद्धो धर्ममानसः। रागद्वेषविनिर्मुक्तः पञ्चसन्नुतिभावुकः॥३३०

सागर है, न्याय जाननेवाला और चतुर है, धर्म और अधर्मका भेद तुझे मालूम है। तू लोकको और लोकनीतिको जानता है। तुम सरीखा विनय करनेवाला पुरुष जगतमें दुसरा नहीं है। तुम अद्वितीय पराक्रमी हो। इस लिये जो योग्य जँचता हो वह करो "॥ ३२०–३२१ ॥ हितेच्छु, विशिष्ट युधिष्ठिरने भय नष्ट करनेके लिये अपने मनमें उदार विचारकी भावना की। भीमने अतिशय भक्ति करनेवाले अपने श्रेष्ठ भाई बलि देने योग्य हैं ऐसा कहा। माताकोभी मारनेके लिये कहा परंतु वह कार्य इस भूतलमें योग्य नहीं है ॥ ३२२–३२३ ॥

सुपवित्र धर्मराज स्वयं पानीमें कूदनेके लिये उद्युक्त हुआ। उसने बांधवोंको युक्तिसे बुलाकर इस प्रकारका उपदेश दिया। "हे भाईयों, तुम हमेशा माताकी भक्तिसे सेवा करो। क्योंकि माताकी भक्ति करनेसे सर्व वस्तुओंकी सम्पदा प्राप्त होती है। तथा परोपकार करके सर्व लोगोंको तुम सन्तुष्ट करो। परोपकारमें तत्पर रहनेवाले लोगोंको अन्य लोगोंकी अपेक्षासे विशिष्टता प्राप्त होती है। सब कौरव सर्पके समान विश्वास–घातक हैं। उनपर विश्वास कदापि मत रखो। उनपर विश्वास रखनेसे तुम्हें सुख नहीं मिलेगा। तथा योग्य संधि प्राप्त होनेपर दुष्ट कौरवोंको नष्ट कर अद्भुत पराक्रमवाले तुम भव्य अपने देशमें दीर्घकालतक राज्य करो"॥३२४-३२८॥ इस प्रकारसे दक्ष मनवाले अपने शिष्योंको धर्मराजने उपदेश दिया। वे अनंतर जलसे गीले वस्त्रसे स्नान करके और मनका मल हटाकर धर्ममें मन स्थिरकर ध्यानमें निश्चल रहे। उन्होंने रागद्वेष छोड दिये। पञ्चनमस्कार का मनमें चिन्तन करने लगे। शत्रुमें, मित्रमें, तथा बंधुमें समतारस धारण किया। अपनी आत्माको अपने शरीरसे भिन्न मानकर वे निरिच्छ हो गये। दो प्रकारका संन्यास धारण करके उत्कृष्ट पदको वे चिन्तने लगे अर्थात् अपनी आत्माके शुद्ध स्वरूपका वे विचार करने

शत्रौ मित्रे तथा बन्धौ समतारससुद्वहन्। विवेचयन्निजात्मानं वपुषः सुस्पृहातिगः ॥३३१
द्विधा संन्यासभावेन भावयन्परमं पदम्। बभूव भवभीतात्मा प्रपश्यन्भङ्गुरं जगत् ॥३३२
क्षान्त्वा क्षमाप्य सद्भ्रातॄन् नत्वा च जननीं तदा। बलिं दातुं स्वमात्मानं यावदुद्युक्तमानसः ॥
रुरुदुस्तावता तूर्णं भीमाद्या भयवेपिनः। अहो दैव त्वयारब्धं किमिदं दुःखकारणम् ॥३३४
अचिन्तितं दुराराध्यं दुःसाध्यं विधुराकुलम्। दैव त्वया समानीतमिदं कार्यं सुदुस्सहम् ॥
गत्वा देशान्तरे स्थित्वा कियत्कालं तु पापिनः। धार्तराष्ट्रान्परावृत्य हनिष्यामो महाहवे ॥
वयं मनोरथारूढा गूढा इति कुदैवतः। अन्यावस्थां समापन्ना धिग्दैवं पौरुषापहम् ॥३३७
विललाप पुनः कुन्ती करुणाक्रान्तचेतसा। दैवस्य दूषणं दुष्टं ददती दुर्दशाहता ॥३३८
हा पुत्र हा पवित्रात्मन् करुणारससागर। राज्यार्ह राज्यभाग्भव्य नव्यभावविदां वर ॥
दोर्दण्डखण्डिताराते त्वां विना कुरुजाङ्गले। अचलापालने कोऽत्र भविता भाववेदकः ॥
हत्वा शत्रून् विधातुं च राज्यं करतलस्थितम्। कौरवं त्वां विना पुत्र क्षमः कोऽन्योऽत्र जायते
रुदन्ती हृदयं दोर्भ्यां ताडयन्ती तडित्प्रभा। सा मुमूर्च्छ महामोहान्मोहो हि चेतनां हरेत् ॥

लगे। जगत्को क्षणिक देखते हुए वे संसारसे भयभीत हुए। उन्होंने अपने भाईयोंको क्षमा की और स्वयंभी उनसे क्षमा चाही। माताको उन्होंने वन्दन किया और अपना बलि देनेके लिये जब वे उद्युक्तचित्त होगये तब भयसे कँपनेवाले भीमार्जुनादिक रोने लगे। हे दैव, तुमने यह दुःखका कारण क्यों किया ॥ ३२९-३३४ ॥ "हे दैव तूने यह अत्यंत दुःसह कार्य हमारे सिरपर क्यों रखा है। यह कार्य संकटव्याप्त, दुःसाध्य, दुराराध्य और अचिन्तित है। अर्थात् ऐसे विषम प्रसंगमें हम पडेंगे इस बातका हमें स्वप्नमेंभी खयाल नहीं था। हम देशान्तरमें जाकर कुछ कालतक वहां रहेंगे और फिर लौटकर दुष्ट कौरवोंको महायुद्धमें मारेंगे ऐसे मनोरथोंपर आरूढ हुए थे, परन्तु दुर्दैवने उन्हे ढँक दिया और हम भिन्न अवस्थाको प्राप्त हुए। पौरुषको नष्ट करनेवाले दैवको धिक्कार हो" ॥ ३३५-३३७ ॥ कुन्ती करुणासे व्याप्तचित्त होकर दैवको दूषण देती हुई विलाप करने लगी। दुःखदायक दशासे आहत होकर वह इस प्रकारसे विलाप करने लगी ॥ ३३८ ॥ "हे दयारसके समुद्र, पवित्रात्मन्, तू राज्यके धारणमें पात्र है, राज्य धारण करनेवालोंका तू क्षेम करनेवाला है और नवीन लोकव्यवहारोंको जाननेवालोंमें तू श्रेष्ठ है। अपने बाहुदण्डोंसे शत्रुओंका तुमने खण्डन किया है। तेरे विना कुरुजाङ्गलदेशमें पृथ्वीका पालन करनेमें कौन समर्थ होगा? तू पदार्थोंके स्वरूपोंको जाननेवाला है"। हे पुत्र, शत्रुसमूहको मारकर अपने हाथमें कौरववंशका राज्य रखनेमें तेरे विना अन्य कौन इस भूतलपर समर्थ होगा?" इस प्रकार विलाप करनेवाली और अपने हृदयको दोनों बाहुओंसे पीटनेवाली, बिजलीकीसी कान्ति धारण करनेवाली वह कुन्तीमाता महामोहसे मूर्च्छित होगई। योग्यही है, कि मोह चेतनाको नष्ट

यावदुन्मूर्च्छिता कुन्ती तावद्दोर्भ्यां युधिष्ठिरः। संपीड्य हृदयं नद्यां पतितुं च समीहते ॥३४३
तस्मिन्नवसरे भीमो बभाण भयवर्जितः। स्वामिन्निष्टे स्थिरं तिष्ठ पाहि पृथ्वीं सुपावनीम् ॥
कुरुवंशनभश्चन्द्र जहि शत्रुगणांश्च माम्। आज्ञापय नराधीश गङ्गायां पतनकृते ॥३४५
पतित्वा तुण्डिकां तूर्णं तोषयिष्यामि दानतः। बलेर्बलिन्यमास्ये च मात्मानं देहि मा वृथा॥
पश्यामि पौरुषं तस्या विधाय वरसंगरम्। तयाथ घनघातेन घातयित्वा महासुरीम् ॥ ३४७
इत्युक्त्वा स ददौ झम्पां पिधाय सरितः पयः। त्वं गृहाण गृहाणेति भणन्भीतिविवर्जितः ॥
पतितं तं समालोक्य विदधुः परिदेवनम्। युधिष्ठिरादयः कुन्त्या हाकारमुखराननाः ॥
हा भीम हा महाभाग हा सद्भुज पराक्रम। परोपकारपारीण क्षय्यपक्षक्षयंकर ॥३५०

त्वया शून्यं कृतं सर्वं त्वां विना शून्यमानसाः।
वयं जातास्तरिष्यामः कथं वै दुःखसागरम् ॥ ३५१

तत्क्षणे तरणिस्तूर्णं ततार सरितो जलम्। तीरं गत्वा समुत्तीर्णाः पाण्डवाः शोकसंगताः ॥
तद्दुःखक्षणसंक्षिप्ता वीक्षमाणा विचक्षणाः। विपुलोदरसंलग्नां कोपतुण्डां सुतुण्डिकाम् ॥
असातशतसंतप्ताः स्मरन्तो भीमसद्गुणान्। बाष्पपूर्णेक्षणाश्चेलुर्नावमुत्तीर्य ते पथि ॥३५४

करता है ॥ ३३९--३४२ ॥ जब कुन्ती सचेत हुई तब अपने दोनों हाथोंसे छातीको पीडित कर नदीमें कूदना चाहती थी; इतनेमें भयरहित भीम इस प्रकार बोला-हे स्वामिन्, आप इष्टराज्यमें स्थिर रहें। इस पवित्र पृथ्वीका पालन करें। कुरुवंशरूप आकाशके चंद्र, आप शत्रुओंको नष्ट करें। मुझे गङ्गामें पडनेके लिये आज्ञा दे। मैं कूदकर बलिदानसे तुण्डिका देवीको सन्तुष्ट करूंगा। सामर्थ्ययुक्त यमके मुखमें आप व्यर्थ क्यों प्रवेश करते हैं। मैं उस महादेवीपर प्रचण्ड आघात कर उसके साथ जोरसे युद्ध कर उसका पौरुष देखूंगा। ऐसा बोलकर भीम नदीका पानी अपने शरीरसे आच्छादित करके नदीमें कूद पडा और भयरहित होकर 'मैं तेरे लिये बलि आया हूं मुझे तू ग्रहण कर' ऐसा कहने लगा ॥३४३-३४८॥ नदीमें गिरे हुए भीमको देखकर कुन्तीके साथ युधिष्ठिरादिक मुखसे हाहाकार कर शोक करने लगे। "हे महाभाग्यवान्, उत्तम बाहुपराक्रमभूषित, परोपकारके दूसरे किनारेको पहुंचनेवाले, नष्ट करने योग्य शत्रुओंके पक्षका क्षय करनेवाले भीम, तुम्हारे विना सब शून्य होगया है। तुम्हारे विना हमारा मन शून्यसा हुआ है। अब इस दुःखसागरसे हम कैसे पार होंगे" ॥ ३४९--३५१ ॥ तत्काल वह नौका शीघ्रही नदीका पानी तोडकर तीरको जा पहुंची। शोकयुक्त पाण्डव नावसे नीचे किनारेपर उतरे। भीमके विरहदुःखसे व्याकुल होकर वे चतुर युधिष्ठिरादिक विपुलोदरसे लडनेवाली, कोपसे लाल मुख जिसका हुआ ऐसी तुण्डिकाको देखने लगे। उस समय सैकडों असुखोंसे सन्तप्त होकर भीमके सद्गुणोंका स्मरण करनेवाले युधि-ष्ठिरादिकोंकी आखें अश्रुओंसे भर गईं। वे नावमेंसे उतरकर मार्गमें चलने लगे। इधर तुण्डीने

एतस्मिन्नन्तरे तुण्डी मकराकृतिधारिणी । महाभीमाकृतिं भीमं वीक्ष्य वेगाद्दधाव च ॥
क्रुद्धो युद्धाय सनद्धो बंधयित्वा वधाकृतिम् । अखण्डां तुण्डिकां दृष्ट्वा बभूव स जले तरन् ॥
अन्योन्यं पादघातेन घातयन्तौ रुषा तकौ । युयुधाते जले भीमौ मल्लाविव सुनिष्ठुरौ ॥३५७
तुण्डीं तुण्डेन संहत्य शतखण्डमखण्डयत् । अखण्डः स प्रचण्डात्मा सुखण्डीमिव हण्डिकाम् ॥
तुण्डी प्रचण्डकोपेन व्यन्तरी मकराकृतिः । अगिलद्गलितानन्दमखण्डं पाण्डुनन्दनम् ॥३५९
क्रुद्धो भीमः स्वहस्तेन विपाट्य जठरं हठात् । तुण्ड्या उत्पाटयामास पृष्ठास्थि स्थिरसंगतम्
विह्वलीकृत्य सा मुक्ता व्यन्तरी तेन सद्रुचा । पलायिता गता क्वापि मुक्त्वा त्रिपथगापथम् ॥
ततो भीमो भुजाभ्यां तामुत्तीर्याध्वानमाययौ । तावता ददृशे तैश्च पराङ्मुखविलोकिभिः ॥
आयान्तं तं समावीक्ष्य युधिष्ठिरः स्थिरव्रतः । तस्थौ बन्धुजनैः सत्रं कुन्त्या हर्षितवक्त्रया ॥
ततस्तेषां महाभीमश्चरणानंनमीति च । स्म समालिङ्ग्य तत्कण्ठमुत्कण्ठितमना महान् ॥
क्व जाह्नव्यतिगम्भीरा कथं तीर्णा सुदुस्तरा । भुजाभ्यां निर्जिता तुण्डी त्वया कथं सुमारुते ॥
इत्युक्ते तैर्बभाणासौ तां विभज्य सुतुण्डिकाम् । घातैः सरिज्जलं तीर्त्वात्रागतोऽहं भवद्दृषात् ॥

मगरकी आकृति धारण की थी। उसने महाभीमाकृतिवाले भीमको देखा और उसके ऊपर वह वेगसे चढकर आई ॥ ३५२–३५५ ॥ क्रुद्ध होकर भीमने उस समय वध करनेवालेका आकार धारण किया। अखण्ड तुण्डिकाको देखकर भीम युद्धके लिये उद्‌युक्त हुआ और जलमें तैरने लगा। जैसे दो मल्ल निष्ठुर होकर लडते हैं वैसे वे दोनों क्रोधसे भयंकर होकर एक दूसरेको पैरोंके आघातसे मारते-हुए पानीमें लडने लगे ॥ ३५६–३५७ ॥ अखण्ड और प्रचण्डस्वरूपके धारक भीमने जैसे खाण्डकी हाण्डीको फोडकर उसके सौ तुकडे किये जाते हैं वैसे तुण्डीको अपने मुखसे पकडकर उसके सौ तुकडे कर दिये। तब वह तुण्डी व्यन्तरी अत्यन्त क्रुद्ध हुई। मकराकृतिको धारण करने-वाली तुण्डी जिसका आनन्द गल गया है ऐसे अखण्ड भीमको निगल गई। क्रुद्ध भीमने अपने हाथसे उसका पेट हठसे फाडकर उसके पीठकी स्थिर जुडी हुई हड्डीको उखाडा। उत्तम कान्तिके धारक भीमने उस तुण्डीको विह्वलकर छोड दिया तब गंगानदीको छोडकर वह कहीं भाग गई। ॥ ३५८–३६१ ॥ तदनंतर भीम अपने बाहुओंसे नदी तैरकर मार्गपर आया। पीछे मुख करके देखनेवाले युधिष्ठिरादिकोंनेभी भीमको देखा। आनेवाले भीमको देखकर स्थिरव्रतके धारक युधिष्ठिर अपने बंधुजनोंके साथ और हर्षित मुखवाली कुन्तीके साथ खडे होगये। तदनन्तर महाभीमने उनके चरणोंको बार बार नमस्कार किया। और उत्कंठितचित्त होकर उस उदार पुरुषने उनके कण्ठको आलिंगित किया। युधिष्ठिरादिकोंने भीमको पूछा "–हे मारुते, अतिशय गंभीर जाह्नवी कहां और उसको तुम अपने दो बाहुओंसे तैरकर कैसे आगये? तथा तुण्डीदेवीको तुमने कैसे जीत लिया? इस प्रकार पूछनेपर "मैंने बाहुओंके आघातोंसे उस तुण्डीको तोड दिया और

अन्योन्यं नृपनन्दनाः समुदिताश्चानन्दयन्तः परान्
तीर्त्वा देव सरिज्जलं प्रविपुलं जित्वामरीं तुण्डिकाम् ।
प्राप्ताः सद्विजयं विजय्यजयिनो जित्वा विपक्षान्क्षणात्
धर्मस्यैव विजृम्भितेन भविनां किं किं न बोभूयते ॥३६७
धर्मो यस्य सखा सुखं खलु वरं प्राप्नोति स श्रेयसे
धर्मो यस्य शुभः स भाति भुवने भाभिर्भदुस्तामसः ।
धर्मो यस्य स रक्षकः क्षितितले संरक्ष्यते सोऽमरैः
धर्मो यस्य धनं समृद्धिजननं संमह्यते धार्मिकैः ॥३६८

इति श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपाल–
साहाय्यसापेक्षे पाण्डवलाक्षागृहप्रवेशज्वलनप्रच्छन्ननिर्गमगङ्गासमुत्तरण-
तुण्डीनामजलदेवतावशीकरणवर्णनं नाम द्वादशं पर्व ॥ १२ ॥

नदीका पानी तीरकर आपके पुण्यसे मैं यहां आया हूं" ऐसा भीमने उत्तर दिया ॥ ३६२--३६६ ॥ वे युधिष्ठिरादिक आपसमें एक दूसरेको आनंदित करते हुए सुखी हुए। गंगानदीका विपुल पानी तैरकर और तुण्डीदेवीको जीतकर उत्कृष्ट विजयको उन्होंने प्राप्त किया। शत्रुओंको क्षणमें जीतकर वे विजयी हुए। धर्मके माहात्म्यसे संसारी जीवोंको क्या क्या इष्टकी प्राप्ति बार बार नहीं होती है? अर्थात् संपूर्ण इष्टपदार्थोंकी प्राप्ति धर्मके प्रभावसे जीवोंको होती है ॥ ३६७ ॥ धर्म जिसका मित्र है उसे निश्चयसे उत्तम सुखकी प्राप्ति होती हैं। वह धर्म उसको मोक्षके लिये कारण होता है। जिसके पास शुभ धर्म है वह स्वकान्तिसे घनांधकारको नष्ट करके जगतमें शोभा पाता है। जिसके पास धर्म है वह सबकी रक्षा करता है तथा देवोंके द्वारा उसका रक्षण किया जाता है। जिसके सन्निध धर्म है उसको समृद्धिजनक धन प्राप्त होता है और वह धार्मिक लोगोंको अतिशय पूज्य होता है ॥ ३६८ ॥

ब्रह्म श्रीपालजीकी सहायताकी अपेक्षा जिसमें है ऐसे भट्टारक श्रीशुभचन्द्रविरचित
भारत नामक पाण्डवपुराणमें पाण्डवोंका लाक्षागृहमें प्रवेश, अग्निसे जल–
जाना, उसमेंसे उनका निर्गमन, गंगाको तैर जाना, तुण्डी नामक
जलदेवताको वश करना इत्यादिकोंका वर्णन करनेवाला
यह बारहवां पर्व समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

। त्रयोदशं पर्व ।

चन्द्रप्रभं सुचन्द्राभं चन्द्रचर्चितपद्युगम् । चन्द्राङ्कं चन्दनैश्चर्च्यं नौमि नानागुणाकरम् ॥१
अथ ते पाण्डवाश्चण्डा द्विजवेषधरा वराः । कुन्तीगतिविशेषेण संजग्मुश्च शनैः शनैः ॥२
ततः कौशिकसन्नामपुरीं प्रापुर्नरेश्वराः । या स्वर्गतश्च्युतानीव धत्ते गेहानि सत्प्रभा ॥३
योच्चैः शालच्छलेनाशु जेतुं त्रिदिवपत्तनम् । उत्तस्थे सुस्थिता भूमौ नभःस्थं विगताश्रयम् ॥
तां पाति सुपतिः श्रीमान्सुमतिश्रुतिकोविदः । सुवर्णो वर्णनातीतवर्ण्यो वर्णाभिधो नृपः ॥५
तत्प्रिया सुप्रिया भाति भूषिता च प्रभाकरी । यस्या मुखेन्दुना क्षिप्तं तमः पुरि न विद्यते ॥६
तयोर्वरात्मजा रम्या सुनेत्रा कमलाभिधा । कमलेव महारूपा सुगुणोदधिसंस्थिता ॥७
सैकदा प्रमदोद्यानं विशदश्रीनगोत्तमम् । चम्पकाचिन्त्यसज्जातिसुजातिसुमनाश्रितम् ॥८
जगामोत्कण्ठिताकुण्ठा सोत्कण्ठितमनोभवा । लुठन्ती भासुरं तेजस्तेजोमूर्तिरिवापरा ॥९
सखीभिः सह संक्रीड्य सव्रीडापीडमण्डिता । कानने तत्र खेलाभिर्दोलाभिः कृतकौतुका ॥

[पर्व १३ वाँ]

जिनके चरणयुग चन्द्रसे पूजे गये, जिनकी देहकान्ति पूर्णचन्द्रकी सी है, जो नाना गुणोंकी खान है। जो चन्द्रलाञ्छनसे युक्त हैं, ऐसे चन्दनसे पूज्य चन्द्रप्रभतीर्थंकरकी मैं स्तुति करता हूं॥ १ ॥

अनंतर ब्राह्मणका वेष धारण करनेवाले श्रेष्ठ और प्रचण्ड पाण्डव कुन्तीके गति विशेषका अनुसरण कर धीरे धीरे प्रवास करने लगे। वे नरेश्वर पाण्डव कौशिकपुरीमें आगये, इस सुंदर नगरीमें जो श्रीमंतोंके महल थे वे स्वर्गसे नीचे उतरकर आये हुए विमानोंके समान दीखते थे ॥ २-३ ॥ पृथ्वीपर स्थिर रही हुई यह नगरी विना आधारके आकाशमें स्थित देवनगरीको (अमरावती) जीतनेके लिये ऊंचे तटके बहानेसे खडी होगई है--सज्ज हुई है ऐसा ज्ञात होता था ॥ ४ ॥ इस नगरीमें वर्ण नामक राजा राज्य करता था। वह शास्त्रज्ञ सुबुद्धि और वैभव संपन्न था। उसके धैर्य, विक्रम आदिक सद्गुण वर्णनातीत थे, वह सुवर्ण था अर्थात् उसकी देहकान्ति सोनेके समान थी और वह उत्तम क्षत्रिय कुलोत्पन्न था ॥ ५ ॥ उसकी अतिशयप्रिय पत्नीका नाम प्रभाकरी था, वह अलंकारोंसे भूषित थी, उसके मुखचन्द्रसे पराजित होकर अंधकारने कौशिक नगरीका त्याग किया था ॥ ६ ॥ राजा वर्ण और रानी प्रभाकरीको सुंदर आंखोंवाली, सद्गुणरूपी समुद्रमें निवास करनेवाली लक्ष्मीके समान महारूपवती कमला नामक राजकन्या थी ॥ ७ ॥ एक दिन वह विस्तीर्ण शोभायुक्त वृक्षोंसे सुंदर 'प्रमद' नामक उपवनमें कौतुकसे चली गई। उपवनमें चंपक और अवर्णनीय अच्छे जातीके मालती आदि पुष्प खिले हुए थे। जिसमें कामकी उत्कंठा उत्पन्न हुई है ऐसी, अपनी देहकांति इतस्ततः फैलानेवाली वह चतुर राजकन्या मानो कान्तिकी साक्षात् मूर्ति थी।

सा दूरतो ददर्शाशु प्रासादं विशदात्मिका। सुधाधौतं समृद्धं च शातकुम्भसुकुम्भकम् ॥११
तस्या जिगमिषा तत्र वन्दितुं श्रीजिनेश्वरान्। अभूत्तावत्समापुस्ते पाण्डवा जिनमन्दिरम्॥
दृष्ट्वा चान्द्रप्रभं चैत्यं स्नात्वा ते प्रासुकैर्जलैः। निस्सहीति पदं प्राप्ताः पठन्तो विविशुर्गृहम्॥
संपूज्य जिनपं तत्र वन्दित्वा स्तोतुमुद्यताः। विचित्रैःस्तोत्रमन्त्रैस्ते पवित्रैः परमोदयैः ॥१४
जिनेन्द्र जय सज्जन्तुजीवन त्वं जयोद्यत। अजय्य जय द्विड्तेजो जय जन्मापहानिशम्॥१५
चन्द्रप्रभ त्वया क्षिप्तश्चन्द्रमा भासया सदा। लाञ्छनच्छलतः पादेऽन्यथा किं सोऽवतिष्ठते॥
केवलज्ञाननेत्राढ्यो जगदुद्धरणक्षमः। त्वं पाह्यस्मान्कृपापारमितः पापाज्जगद्गुरो ॥१७
स्तुत्वेति जनितानन्दास्तेऽमन्दानन्दभूषिताः। यावत्तिष्ठन्ति तत्रायात्कमला वन्दितुं जिनम्॥
सखीभिः सह संफुल्लनयना तारहारिका। नदन्नूपुरसंनादनिर्जिताखिलकोकिला ॥१९

लज्जाभारसे भूषित, कौतुकवाली राजकन्याने अपनी सखियोंके साथ उस उपवनमें झूलेपर बैठकर क्रीडा की। शीघ्रही उसने दूरसे चन्द्रप्रभजिनका मंदिर देखा वह मानो सुधाके द्वारा धोया हुआ अर्थात् शुभ्र था, वैभवसंपन्न और सुवर्णकलशोंसे रमणीय दीखता था। राजकन्याके मनमें निर्मल भक्तिभाव उत्पन्न हुआ, उसे जिनमंदिरमें जिनवन्दनके लिये जानेकी इच्छा उत्पन्न हुई। इतनेमें जिनमंदिरके पास पाण्डव आगये। उन्होंने प्रासुक जलसे स्नान किया और श्रीजिनचन्द्रप्रभकी प्रतिमा देखकर निस्सही' ऐसे शब्द बोलते हुए जिनमंदिरमें प्रवेश किया॥ ८-१३ ॥ पाण्डवोंने मंदिरमें चन्द्रप्रभ जिनकी पूजा की तथा नमस्कार कर वे पवित्र प्रभुके अनंतज्ञानादिवैभवके प्रतिपादक नानाविधस्तोत्र-मन्त्रोंके द्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगे। "हे प्रभो आपकी जय हो, आप उत्तम भव्यजीवोंका जीवन हो, अर्थात् आपके उपदेशसे हितमार्ग प्राप्त कर भव्यजीव मुक्त होकर अनंतसुखी शुद्ध-चैतन्यमय होते हैं। भव्योंको जयप्राप्ति करानेमें आप सदा उद्युक्त हैं। आप अजय्य हैं अर्थात् मोह आपको नहीं जीत सका। आप कर्मशत्रुके तेजको जीतनेवाले हैं। आपने अपना और भव्योंका जन्म-चतुर्गतिभ्रमण मिटाया है। आपकी हमेशा जय हो। हे भगवन्, चंद्रप्रभ, आपने अपने भामण्डलसे चन्द्रका हमेशाके लिये पराजय किया है, अन्यथा लांछनके मिषसे वह आपके चरणोंमे क्यों रहता? आपके चरणोंका आश्रय क्यों लेता? हे प्रभो, आप केवल ज्ञानरूप नेत्रको धारण करते हैं और भवमेंसे जगत्का उद्धार करनेमें समर्थ हैं। आपने करुणाका दुसरा किनारा प्राप्त किया है अर्थात् आपमें अपार करुणा है। हे प्रभो, हे जगद्गुरो, आप हमारी पापसे रक्षा कीजिये" ॥ १४-१७ ॥ इस प्रकार स्तुति करनेसे पाण्डवोंको अतिशय आनंद हुआ, अमन्द आनंदसे वे भूषित हो गये। वे मंदिरमें स्तुति करके बैठे थे इतनेमें कमला राजकन्या जिन-देवको वन्दन करनेके लिये आई ॥ १८ ॥ वह प्रफुल्ल नयन-नेत्रवाली तथा तेजस्वी हार धारण करनेवाली थी। रुनझुन करनेवाले बिछुओंके मनोहर शब्दसे उसने संपूर्ण कोकिलाओंको पराजित

स्खलन्ती सा नितम्बस्य भारेण कटिमेखलाम्। दधाना मन्दसद्गत्या जयन्ती दन्तिनीगतिम्
जिनेन्द्रभवनस्यान्तः सा प्रविश्य सुखोन्नता। ववन्दे विधिना देवान्प्रतिकृत्या समास्थितान्॥
सुगन्धैर्बन्धुरैर्गन्धैः शुद्धैर्लब्धमधुव्रतैः। चन्दनैश्चर्चयामास सा जिनेन्द्रपदाम्बुजम् ॥२२
मन्दारमल्लिकाकम्रकेतकीकुन्दपङ्कजैः। चम्पकैश्चर्चते स्मासौ जिनेन्द्रपदपङ्कजम् ॥२३
धूपैर्धूपितदिक्चक्रैः फलैः प्रविपुलैर्जिनम्। संपूज्य निर्गताद्राक्षीत्पाण्डवान्पावनान्परान् ॥२४
तत्र स्थितं स्थिरं धाम्ना धर्मपुत्रं सुरूपकम्। विलोक्यातर्कयत्तूर्णं तद्रूपेण वशीकृता ॥२५
कोऽयं सुरः सुरेशो वा फणीशो रजनीकरः। सुरो वेमे नराः केऽत्र सुराः किं सूरसत्प्रभाः ॥
आज्ञातं नेत्रनिर्मेषैर्नरोऽयं कोऽपि सत्प्रभः। विनानेन कथं प्राणान्दधे धृतिविवर्जिता ॥२७
इति स्मरशरैर्भिन्ना प्रस्खलत्पदपङ्कजा। गृहं गन्तुं न शेके सा हतेव हतमानसा ॥२८
सखीभिर्वाह्यमाना सा समाप सदनं हठात्। सालसा तत्र नो भुङ्क्ते न वक्ति हसति क्षणात्॥
ईक्षते क्षणतः खिन्ना रोदिति स्वपिति स्वयम्। उत्तिष्ठते स्वयं स्थित्वा हसित्वा पतति स्वयम्॥

किया था। नितंबके भारसे स्खलित होनेवाली अर्थात् मन्द मन्द गमन करनेवाली, कमरमें करधौनी धारण करनेवाली, तथा मन्द और सुंदर गतिसे हाथिनी की गतिको जीतनेवाली, अतिशय सुखी वह कमला सखियोंके साथ जिनमंदिरमें आई। वहां उसने प्रतिबिंबके रूपमें विराजमान जिनेश्वरोंको विधिसे वंदन किया ॥ १९–२१ ॥ भ्रमर जिसके ऊपर गुंजारव कर रहे हैं, ऐसे शुद्ध सुगंधित मनोहर गंधवाले पदार्थोंसे तथा चन्दनसे उसने जिनेन्द्रके पदकमल पूजे ॥ २२ ॥ उसने मंदार, मल्लिका, सुंदर केवडा, कुन्द, कमल, और चम्पक आदि पुष्पोंसे जिनेश्वरके पदकमल पूजे। सर्व दिशाओंको सुगंधित करनेवाले धूपोंसे तथा विपुलफलोंसे जिनेश्वरोंकी पूजा करके जिनमंदिरसे निकली तब उसने उत्तम पवित्र पाण्डवोंको देखा ॥२३–२४॥ उस मंदिरमें ठहरे हुए, तेजसे स्थिर, सुंदर धर्मपुत्रको देखकर उसके रूपसे वह शीघ्र वश हुई और इस प्रकार विचार करने लगी। क्या यह कोई देव अथवा देवेन्द्र है? अथवा यह धरणेन्द्र, किंवा चन्द्र अथवा सूर्य है? तथा यहां ये अन्य पुरुषभी क्या देव हैं? इनकी कान्ति सूर्यके समान उज्ज्वल दीखती है। हां, मैंने जान लिया, इसके पलकोंकी चंचलतासे यह कोई उत्तम कांतिवाला पुरुष है। इसके बिना धैर्यहीन मैं प्राणोंको कैसे धारण कर सकूंगी। इस प्रकार मदनके बाणोंसे वह राजकन्या विद्ध हुई। उसके चरणकमल चलते समय स्खलित हो रहे थे। उसका मन ठिकानेपर नहीं था, मानो वह हत होगई हो। वह अपने घर जानेमें असमर्थ हुई ॥ २५–२८ ॥ सखियां जबरदस्तीसे उसे घर ले गयीं। कामकी अलसतासे वह न भोजन करती थी न बोलती थी और न हसती थी। वह क्षणमें देखती थी, क्षणमें खिन्न होती थी और क्षणमें रोती थी तथा वह क्षणमें सो जाती थी। वह क्षणमें ऊठकर स्वयं खडी हो जाती थी तथा हंसकर स्वयं जमीनपर गिरती थी ॥ २९–३० ॥ सुंदर

ईदृशां सुदृशीं मारावस्थासंस्थायिनीं सुताम्। माता संवीक्ष्य पप्रच्छाज्ञासीत्तच्चेष्टितं तदा ॥
निवेदितस्तया भूपस्तच्चेष्टां क्लेशकारिणीम्। उक्त्वा तान्मन्त्रिभिस्तूर्णं समाह्वयत पाण्डवान्॥
आगता मिलिता राज्ञा ते प्राप्तशुभभोजनाः। मानिता वरवस्त्राद्यैस्तत्र भेजुः परां स्थितिम्॥
ततोऽसौ धर्मपुत्रं तं संप्राध्यार्थसमन्विताम्। सुतां तस्मै ददौ प्रीत्या कमलां विधिनामलाम्॥
ततः सोऽपि तया साकं भेजे भोगान्सुभासुरान्। दिनानि कतिचित्तत्र स्थितः कुन्त्या स्वबान्धवैः
एकदा धर्मपुत्रं तं वर्णोऽप्राक्षीच्छृणु प्रभो। कस्त्वं कैषा नरा एते के कुतोऽत्र समागताः ॥
समाकर्ण्य नृपोऽवादीद्वर्णाकर्णय कौतुकम्। वयं पाण्डुसुता दग्धाः कौरवैर्निर्गता गृहात् ॥
द्वारावत्यां वरोऽस्माकं समुद्रविजयो महान्। मातुलस्तत्सुतो नेमिस्तीर्थकृत्सुरसंस्तुतः ॥३८
वैकुण्ठबलदेवौ चास्माकं तौ स्वजनौ मतौ। वयं तद्दर्शनोत्कण्ठास्तत्राटिष्याम उल्बणाः ॥३९
इति सर्वस्वसंबन्धमभिधाय समुद्यताः। मुक्त्वा तां तत्र निर्जग्मुः सद्वृषाः सत्यवादिनः ॥४०
देशे देशे महीयन्ते महान्तो महितैर्नरैः। पाण्डवाः परमोत्साहाः सदाचारविचारिणः ॥४१

आंखोंवाली अपनी कन्या इस प्रकार कामकी अवस्थासे पीडित हुई है ऐसा माताने देखकर उसे सब हाल पूछा तब उसकी दशाका उसे ज्ञान हो गया। कमलाकी माताने उसकी दुःखद चेष्टाका राजासे निवेदन किया। राजाने मंत्रियोंको कन्याका सब हाल कह दिया और मंत्रियोंके द्वारा उसने पांडवोंको बुलाया॥ ३१-३२ ॥ पाण्डव आगये और राजासे मिले। राजाने उत्तम भोजन और ऊंचे वस्त्रादिकोंसे उनका सत्कार किया। वे वहां अच्छी तरहसे रहे। तदनंतर राजाने धर्म-पुत्रकी विवाहके लिये प्रार्थना की और प्रेमसे विवाहविधिके अनुसार अपनी निर्मल-सुंदर कन्या धर्मराजाको अर्पण की ॥ ३३-३४ ॥ तदनंतर वह धर्मराजाभी उसके साथ उत्कृष्ट भोगोंको भोगने लगा। वहां कुन्तीमाता और अपने बांधवोंके साथ वे कुछ दिनतक ठहरे ॥ ३५ ॥ एक दिन वर्ण राजाने धर्मराजाको पूछा हे प्रभो,आप कौन हैं? यह स्त्री कौन है? तथा ये पुरुष कौन हैं? आप सब लोग यहां कहांसे आगये हैं? प्रश्न सुनकर धर्मराज बोले, कि "हे वर्णराजन्, हमारी कौतुकयुक्त वार्ता सुनो। हम पाण्डुराजाके पुत्र हैं। हमको कौरवोंने लाक्षागृहमें जलानेका विचार किया, हम वहांसे-लाक्षागृहसे निकले, द्वारावती नगरीमें हमारे श्रेष्ठ मामा समुद्रविजय रहते हैं। उनके पुत्र नेमिप्रभु तीर्थंकर हैं, देव हमेशा उनकी स्तुति करते हैं। वैकुण्ठ-श्रीकृष्ण, और बलदेव ये हमारे स्वजन हैं। हम उनके दर्शनकी उत्कंठासे उत्तेजित होकर द्वारिका नगरीको जा रहे हैं"। इस प्रकारसे अपना संपूर्ण संबंध कहकर वे जानेके लिये उद्युक्त हुए। कमला राजकन्याको उसके पिताके घरमें छोडकर सत्यवादी और धर्मपरायण वे पाण्डव वहांसे चले गये ॥ ३६-४० ॥ परमोत्साही, सदाचारी और विचारवान् महापुरुष पाण्डव प्रत्येक देशमें पूज्यपुरुषोंसे पूजे जाते थे। उनके पुण्योदयसे आसन, शय्या, यान, वाहन, आहार, वस्त्रआदि सर्व पदार्थ उनको सुलभ

आसनं शयनं यानं निषसो वसनाश्रिता। सर्वमेतद्धि सुप्रापमासीत्तेषां वृषोदयात् ॥४२
विक्रमाक्रान्तदिक्चक्राः सुक्रमाः क्रमतो नृपाः। चेक्रीयन्ते सपर्यां च वर्या वर्यजिनेशिनः॥
सपुण्याः क्रमतः प्रापुर्भूपाः पुण्यद्रुमं वनम्। पुण्यद्रुमैः समाकीर्णं विस्तीर्णं पूर्णशोभया॥
वनमध्ये शुभाभोगाः शरदभ्रनिभाः शुभाः। शातकुम्भसुकुम्भैश्च शोभिता व्योमसंगताः॥
ध्वनद्दुन्दुभिसद्ध्वाना जयकोलाहलाकुलाः। अमला विपुला भव्यैर्भूषिता भूषणाङ्कितैः॥४६
आसेदिरे सुप्रासादाः सदानन्दाकराः सदा। पाण्डवैः प्रीतचेतस्कैर्धर्मामृतसुपायिभिः॥४७
पाण्डुपुत्राः पवित्रास्ते मात्रा चित्रसुभित्तिकान्। जिनागारान्समावीक्ष्य तदन्तर्विविशुर्मुदा॥
हटद्धाटककोटीभिर्घटिताः सुघटाः शुभाः। संजाघटति यत्रस्थाः सचेतांसि सुदेहिनाम्॥४९
स्वार्णरूप्याः सुरूपाभाः पावनाः परमोदयाः। प्रतिमाः प्रेक्ष्य ते प्रीतिमापुः पावनपुण्यकाः॥
ततः पुष्पफलाद्यैस्ते चायन्ते स्म शुभार्चनैः। जिनान्यतो जनानां हि जायते पुण्यजीवनम्॥
नत्वा स्तुतिशतैः स्तुत्वा प्रानमन्नम्रमस्तकाः। पाण्डवास्ताञ्जिनान्युक्त्या सद्धर्मामृतलालसाः
वन्दित्वा सद्गुरून्गम्यान्गुणगौरवसंगतान्। गम्भीरास्तत्र पप्रच्छुर्जिनपूजाफलं च ते॥५३

तया प्राप्त होते थे॥४१-४२॥ पराक्रमसे दिशाओंका समूह जिन्होंने व्याप्त किया है, जो नीतिपद्धतिसे युक्त हैं ऐसे पाण्डव राजा क्रमसे प्रवास कर रहे थे और जिनमंदिरमें श्रेष्ठ जिनेश्वरोंका पूजन बार बार करते थे ॥ ४३ ॥ वे पुण्यवान् पाण्डव राजा क्रमसे पुण्यद्रुम नामके वनमें आये, वह पुण्यद्रुमवन पवित्र वृक्षोंसे व्याप्त था और सर्वत्र उसकी पूर्ण शोभा विस्तीर्ण हुई थी। उस वनके मध्यमें शुभ विस्तारवाले, शरन्मेघके समान शुभ्र, शुभ सुवर्णकुंभोंसे युक्त, सुंदर, आकाशमें जिनके शिखर हैं, ऐसे अनेक जिनमंदिर थे। उनमें शब्द करनेवाले नगारे बजते थे, जयजयकारके शब्द हो रहे थे। अलंकारोंसे मंडित भव्योंसे वे सुंदर दीखते थे। वे जिनमंदिर निर्मल और विस्तीर्ण थे, सदैव भव्योंके मनको आनंदित करते थे। धर्मामृत प्राशन करनेवाले प्रेमयुक्त पाण्डव उनके समीप गये। चित्रोंसे सुंदर दीवालवाले उन मंदिरोंमें पवित्र पाण्डुपुत्रोंने माता कुन्तीके साथ आनंदसे प्रवेश किया ॥ ४४-४८ ॥ उन मंदिरोंमें चमकनेवाले सुवर्णोंसे बनाई हुई, सुंदर रचनायुक्त, शुभ, ऐसी जिन प्रतिमायें भव्योंके मनको हरण करती थीं। सुवर्ण और रूप्योंसे बनी हुई, सुंदररूप और कान्तिसे युक्त, पवित्र, उत्कृष्ट वैभवशाली जिनप्रतिमाओंको देखकर वे पवित्र पुण्यवाले पाण्डव हर्षित हुए ॥ ४९-५० ॥ तदनंतर वे पुष्पफलादिक शुभ पूजाद्रव्योंके द्वारा जिनेश्वरोंकी पूजा करने लगे, जिससे कि जीवोंको पवित्र जीवन प्राप्त होता है। सद्धर्मामृतकी अभिलाषा धारण करनेवाले, नम्र मस्तक, वे पाण्डव जिनभगवानको नमस्कार कर तथा युक्तिसे सैंकडो स्तुतियोंद्वारा स्तुति कर अतिशय नम्र हुए ॥५१-५२॥ अनंतर गुणोंके गौरवोंसे युक्त, आदरणीय सद्गुरुओंको गंभीर पाण्डवोंने वंदन किया और उन्होंने जिनपूजनका फल पूछा ॥ ५३ ॥ मुनिराज उपदेश

मुनिर्वाचं जगौ भव्याः शृणुतार्चनसत्फलम्। यार्चा चतुरचित्तानां ददाति परमं पदम् ॥
रजोमुक्त्यै भवेद्धारा वारां दत्ता जिनाग्रतः। सौगन्ध्याय शुभामोदो गन्धो देहे सुयुक्तिभिः
अक्षता अक्षता दत्ताः कुर्वन्त्यक्षतसुश्रियम्। पुष्पस्रजः सृजन्त्याशु स्वःस्रजं देहिनां सदा ॥
उमास्वाम्याय नैवेद्यं दत्तं स्याद्देवपादयोः। दीपो दीप्तिकरः पुंसां जिनस्याग्रेऽवतारितः ॥५७
विश्वनेत्रोत्सवाय स्यात्सुधूपोऽगुरुसंभवः। फलं फलति संफुल्लां मुक्तिलक्ष्मीं सुलक्षिताम् ॥५८
अनर्घ्येण महार्घ्येण ये यजन्ति जिनेश्वरान्। ते प्राप्नुवन्ति चानर्घ्यं पदं देवनरार्चितम् ॥५९
इति पूजाफलं श्रुत्वा श्रावकास्ते महाश्रियः। जहर्षुर्हर्षपूर्णाङ्गा आमर्षोज्झितमानसाः ॥६०
ततस्ते क्षान्तिकां वीक्ष्य समक्षं लक्षणान्विताः। प्रवन्द्य पुरतस्तस्थुः कुन्ती तत्पार्श्वमास्थिता॥
तत्रैका लक्षणैर्लक्ष्या चञ्चलाक्षा सुपक्ष्मला। कटाक्षक्षेपणे दक्षा मङ्क्षु क्षेमक्षमावहा ॥६२
क्षपणाक्षीणसर्वाङ्गा चररक्षकरक्षिता। शिक्षमाणाक्षराण्याशु कुन्त्यैक्षि वरकन्यका ॥६३
तदा कुन्ती समुत्तुङ्गा क्षान्तिकां संयमश्रियम्। अप्राक्षीत्क्षान्तिकेऽक्षूणे नत्वा विज्ञप्तिमाश्रिता

दिया-हे भव्य पूजनका शुभ फल सुनो, यह जिनपूजन चतुर-चित्तवालोंको उत्तम पद देती है। जिनेश्वरके आगे दी हुई जलधारा ज्ञानावरण और दर्शनावरणरूप धूलिको मिटा देती है। शुभ गंधवाला गंधद्रव्य-चन्दनादिक, युक्तिसे जिनेश्वरके चरणोंपर लगानेसे देहमें (पूजकके) सुगंधता उत्पन्न होती है। जिनचरणोंके आगे अखंड अक्षता अर्पण करनेपर वे अखंड शुभलक्ष्मीको अर्पण करती हैं। जिनचरणोंके आगे अर्पण की हुई पुष्पमालायें हमेशा प्राणियोंको स्वर्गकी मालाओंको अर्पण करती हैं। जिनचरणोंके आगे दिया हुआ नैवेद्य मुक्तिलक्ष्मीका स्वामित्व प्रदान करता है। जिनेश्वरके आगे अवतरण किया हुआ दीप भव्योंके अंगमें कांति उत्पन्न करता है। अगुरुसे उत्पन्न हुआ सुगंधित धूप जगतके नेत्रोंको आनंदित करता है। जिनचरणोंके आगे अर्पण किया गया सुफल ज्ञानादिगुणोंसे विकसित मुक्तिलक्ष्मीको देता है। अनर्घ्य-अमूल्य ऐसे महार्घ्यसे (जलादि अष्टद्रव्योंके समूहसे) जो भव्य जिनेश्वरको पूजते हैं वे देव और मनुष्योंसे पूजित अनर्घ्यपद-मुक्तिपद प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार पूजाका फल सुनकर जिनका मन क्रोधसे रहित हैं, जिनका शरीर हर्षसे पूर्ण है अर्थात् रोमांचयुक्त है ऐसे वे महालक्ष्मीसंपन्न श्रावक-पाण्डव आनंदित हो गये" ॥ ५४-६० ॥ तदनंतर शुभ-लक्षणवाले वे पाण्डव आर्यिकाको समक्ष देखकर और वन्दन कर उसके आगे बैठ गये। कुन्ती आर्यिकाके पास बैठ गई। उस जिनमंदिरमें कुन्तीने एक उत्तम कन्या देखी। वह उत्तमलक्षणोंसे युक्त थी, उसकी आंखें चंचल थीं, उसकी पलकें सुंदर थीं, वह कन्या शीघ्र कटाक्ष फेकनेमें चतुर थी, और हितकारक क्षमाको उसने धारण किया था। उपवासोंसे उसका सर्व शरीर क्षीण हुआ था। उसकी गुप्तपुरुष रक्षा करते थे। वह अक्षराभ्यास करती थी॥ ६१-६३ ॥ उत्तुंग विचारवाली कुन्तीने संयमकी लक्ष्मीको

धर्मध्यानधरा धीरा धुरीणा धर्मकर्मसु । तपस्तपति सत्साध्वी कन्येयं केन हेतुना ॥६५
हेतुं विना न वैराग्यं जायते विषमे परे । यौवने वयसि स्फारे कामेन कलिताङ्गके ॥६६
रक्ताम्बरधरा केन हेतुना वनवासिनी । दीक्षां विना भवत्पार्श्वे तिष्ठति स्थिरमानसा ॥६७
वधूं कर्तुमनाः साध्वी कुन्ती तां चारुचक्षुषा । ईक्षांचक्रेऽनिमेषेण तरत्तारसुलोचनाम् ॥६८
अक्ष्णेनेक्षणेनासौ वीक्षमाणा युधिष्ठिरम् । तस्थौ तेनापि संवीक्ष्य पश्यता तन्मुखाम्बुजम् ॥
कटाक्षक्षेपतः सापि दत्ते स्म निजमानसम् । भूपायेक्षणतः सोऽपि ददौ तस्यै स्वमानसम् ॥
अन्योन्यमिति संपृक्तौ मनसा तौ चलात्मना । वचसा वपुषा वक्तुं नाशक्नुतां च सेवितुम् ॥
तावता गणिनी प्राह ज्येष्ठा श्रेष्ठे समासतः । श्रृण्वस्याश्चरितं चित्रं चीयमानं सुचेष्टितैः ॥७२
कौशाम्ब्यामत्र सत्पुर्यामजर्यायां वरार्यकैः । वर्यायां धुर्यसद्धैर्यसुचर्याश्रितसच्छ्रियाम् ॥७३
विन्ध्यसेनो नृपोऽभासीत्सुखेन शुभसंश्रितः । विन्ध्यसेनाभवत्तस्य प्रिया सुप्रीतमानसा ॥७४
तत्सुता सुगुणापूर्णा वसन्ताद्यन्तसेनका । सुरूपा सदृशा साध्वी कलाविज्ञानपारगा ॥७५

धारण करनेवाली आर्यिकाको विज्ञप्तिका आश्रय लेकर वंदन किया और इस प्रकार पूछा-" पूर्ण निरतिचार चारित्रधारक हे आर्यिके, धर्मध्यानकी धारक, धीर, और धर्मकार्यमें अगुआ रहनेवाली यह साध्वी कन्या किस हेतुसे तपश्चरण कर रही है? विषम और विपुल ऐसे उत्कृष्ट यौवनकालमें शरीर कामविकारसे पीडित रहता है। तोभी ऐसी परिस्थितिमें कारणके विना वैराग्य नहीं होता है। किस कारणसे इस कन्याने लाल वस्त्र धारण किया और वनमें निवास किया है? हे आर्यिके, दीक्षा लिए विना मनको स्थिर कर यह आपके पास क्यों रहती है?" ॥ ६४-६७ ॥ चंचल तेजस्वी आखोंवाली उस कन्याको अपनी पुत्रवधु करनेकी इच्छा करनेवाली वह साध्वी कुन्ती पलकोंको स्थिर करके देखने लगी। वह कन्याभी अनिमिष-नेत्रसे युधिष्ठिरको देख रही थी। देखनेवाला युधिष्ठिरभी उस कन्याके मुखकमलको एकाग्रतासे देख रहा था। कटाक्षोंको फेककर कन्याने अपना अन्तःकरण युधिष्ठिरको दे डाला और उसनेभी उस कन्याको अपना अंतःकरण दिया। चंचल मनद्वारा उन दोनोंका एक दुसरेसे संबंध हुआ; परंतु वे वचनोंसे आपसमें न बोलते थे और शरीरसे एक दूसरेको स्पर्श नहीं करते थे ॥ ६८-७१ ॥ उस समय ज्येष्ठ आर्यिकाने कुन्तीसे इस प्रकार कहा। हे श्रेष्ठे, मैं इस कन्याका संक्षेपसे चरित्र कह देती हूं, जो कि आश्चर्यकारक और अच्छी चेष्टाओंसे भरा हुआ है, सुन ॥ ७२ ॥ यह उत्तम कौशांबी नगरी श्रेष्ठ आर्यपुरुषोंसे सदा भरी हुई है। उत्तम धैर्ययुक्त, सदाचारी प्रमुख लोगोंके वैभवसे संपन्न इस श्रेष्ठ नगरीमें पुण्यकार्यका आश्रय करनेवाला विन्ध्यसेन नामक राजा सुखसे राज्य करता है। राजाकी विन्ध्यसेना नामक पत्नी है। उसके मनमें अतिशय स्नेह होनेसे वह राजाको अत्यंत प्रिय है। इन दंपतीको वसंतसेना नामक कन्या है। वह अनेक सद्गुणोंसे पूर्ण है, तथा वह सुरूप, सुनेत्रा, शीलवती है। अनेक

नृपेणैषा सुमन्त्र्याशु विचकल्पे सुकल्पनैः। साकल्पा पाणिपीडार्थं युधिष्ठिराय महीभुजे॥७६
अनेहसा ततो दग्धाः पाण्डवाः कौरवेशिभिः। श्रुताः श्रुतौ जनैः सर्वैर्दुःखसंपीडितात्मभिः॥
श्रुत्वैवातर्कयच्चित्ते किमिदं च विरूपकम्। भर्तृदग्धिभवं जातं किल्बिषं चात्र कारणम्॥७८
अनयेति चिरं चित्ते चिन्तितं चतुरेच्छया। युधिष्ठिरं विना नाथं न करिष्ये परं नरम्॥७९
अयं दग्धस्ततस्तूर्णं करिष्ये परमं तपः। यतो नाप्नोमि कर्मैतन्निन्द्यं सर्वैर्भवे भवे॥८०
दीक्षोद्यतां समावीक्ष्य पित्राद्या दुःखपूरिताः। एनां संवेगसंपन्नां बोधयामासुरुन्नताम्॥८१
सुते पल्लवसत्पाणे परे कमलकोमले। हिमांशुवदने पद्मपादे सन्नादसुन्दरे॥८२
क्वायं ते कोमलः कायः क्वेदं च दुष्करं तपः। शक्यं दन्तैर्यथा लोहहरिमन्थनमन्थनम्॥८३
समीहसे च चेद्दीक्षां कियत्कालं स्थिरा भव। क्षान्तिकाभ्यर्णतस्तूर्णं सुश्रुतिं शृणु सर्वदा॥८४
वृषतस्तव निर्विघ्नः कदाचित्स भविष्यति। ईदृशः खलु सुश्रेयान् स्वल्पायुर्न प्रजायते॥८५
सति जीवति तस्मिंश्च तेनोपयममङ्गलम्। प्राप्य सौख्यं समासाद्य स्थिरा भव सुवासिनि॥

कलाओंमें और नानाविध शास्त्रोंके ज्ञानमें चतुर है ॥ ७३–७५ ॥ राजा विन्ध्यसेनने अनेक शुभ विचारोंसे अच्छा विचार करके ऐसा निश्चय किया कि, सुंदर वेषवाली यह कन्या युधिष्ठिर राजाको विवाह करके अर्पण करना चाहिये। परंतु कुछ काल बीतनेपर कौरवोंने पाण्डवोंको जलादिया है ऐसी वार्ता कानोंपर आई। सब लोगोंका चित्त इस वार्तासे अत्यंत दुःखित हुआ। ॥ ७६–७७ ॥ यह वार्ता सुनकर कन्याने ऐसा अयोग्य कार्य कैसे हुआ इस विषयका विचार किया। पतिके जलकर मरनेमें पापही कारण है ऐसा उसने जाना। अब मैं युधिष्ठिरके विना अन्य पुरुषको अपना पति नहीं समझूंगी ऐसा, उत्तम इच्छावाली कन्याने दीर्घकालतक चित्तमें विचार करके निश्चित किया है। पति तो जल गया। अब मै शीघ्र उत्तम तप करूंगी जिससे सर्व लोगोंद्वारा निंदनीय यह पापकर्म मुझे प्रत्येक भवमें प्राप्त नहीं होगा। ऐसे विचारसे दीक्षा लेनेमें उद्युक्त हुई कन्याको देखकर माता पितादिक स्वजन दुःखित हुए हैं। उन्नत विचार-वाली कन्याको संसारभययुक्त देखकर वे इस प्रकार उपदेश देने लगे—"हे उत्तम कन्ये, तू कमलके समान कोमल है। तेरे हाथ कोमल पल्लवके समान सुंदर हैं, तेरा मुख चंद्रमासमान है, तेरे चरण कमल जैसे मृदु हैं, और तेरा मीठा ध्वनि सबको बडा प्रिय है। तेरा यह कोमल शरीर कहां और यह अत्यंत दुःसाध्य तप कहां। यह तेरा तपके लिये उद्यत होना दांतोंसे लोहेके चने चबानेके समान है। यदि तुझे दीक्षा लेनाही हैं तो अभी कुछ काल स्थिर रहो तुम आर्यिकाके पास रहकर हमेशा शास्त्रोंको सुनो। पुण्योदयसे तेरा मनोरथ कदाचित् पूर्ण हो जायगा। अर्थात् युधिष्ठिरकी प्राप्ति होगी " ऐसा पुण्यवान् युधिष्ठिर स्वल्प आयुवाला नहीं हो सकता है। यदि वह जीवित हो तो उसके साथ तेरा विवाह हो जायगा। हे सुवासिनी, उसके साथ सुखोंको

अथान्यथा प्रव्रज्यां तां गृह्णीयाः प्रार्थितेति च। स्थिरा स्थिता ममाभ्यर्णे कुर्वन्ती तनुशोषणम्।।
एषा संयममिच्छन्ती रसत्यागविधायिनी। कायोत्सर्गकरा तन्वी चकार दुर्धरं तपः।।८८
लसच्छीलसलीलाढ्या सुचारुचरिता चिरम्। शुद्धसिद्धान्तसंसिद्ध्यै शुश्रावैषा शुभं श्रुतम्।।
विन्ध्यसेनसुताथेत्यचिन्तयच्चेतसि स्फुटम्। किमियं सुगुणा कुन्ती किमेते पञ्च पाण्डवाः।।९०
अथ सा प्राह कन्येति का त्वं सुन्दरि मन्दिरे। गुणानां श्रेयसाकीर्णे प्रकीर्णकधमिल्लके।।९१
का त्वं सर्वगुणाकीर्णा क एते पञ्च पूरुषाः। वद वत्से विचारज्ञे यथावद्भक्तवत्सले।।९२
साऽभाणीत्कन्यके शीघ्रं शृणु तत्त्वं मयोदितम्। वयं तु ब्राह्मणाः सर्वे ब्रह्मविद्याविशारदाः।।
दैवज्ञाहं ततस्तेन मदुक्ते निश्चयं कुरु। हसित्वेत्यवदत्कुन्ती तत्संजीवनसिद्धये।।९४
हे पुत्रि त्वं पवित्रासि पुण्यासि त्वं महाशुभे। गुणज्ञासि गुणाधारे परमासि महोदये।।९५
शुद्धं धारय शीलं त्वं यावज्जीवं च जीवनम्। प्रव्रज्याशां परित्यज्य स्थिरा भव गृहिव्रते।।
कदाचित्तव पुण्येन ते भविष्यन्ति जीविनः। तादृशां मरणं कर्तुं न क्षमन्ते सुरा अपि।।९७

भोग कर तू स्थिर हो जावेगी, सुखी होगी। यदि युधिष्ठिरका मरण हुआ है ऐसा निश्चय होगा तो तू दीक्षा ले सकेगी।" ऐसी मातापितादि लोगोंके द्वारा प्रार्थना करनेपर यह कन्या मेरे पास आकर अपना शरीर तपसे कृश करती हुई रही है। संयमकी इच्छुक इस कन्याने रस-त्याग तप धारण किया है, शरीरपरकी ममताको छोडकर इस कन्याने दुर्धर तप किया है। सुंदर शीलमें यह कन्या लीलासे तत्पर रहती है। इस प्रकारसे सदाचारका पालन बहुत दिनोंसे कर रही है। शुद्धसिद्धान्तोंका ज्ञान होनेके लिये यह कल्याणकारक शुभ श्रुत-शास्त्र हमेशा सुनती है। ।। ७८-८९ ।। विंध्यसेन राजाकी कन्या वसन्तसेनाने मनमें इस प्रकारसे स्पष्ट विचार किया-क्या यह वृद्धा सद्गुणी कुन्ती तो नहीं है ? तथा ये इसके पांचो पुत्र पाण्डव तो नहीं होंगे ? इसके अनंतर उस कन्याने कुन्तीसे इस प्रकार कहा—"हे सुंदर माताजी, आप गुणोंका मंदिर हैं, आप हित-कर कार्योंसे परिपूर्ण हैं, अर्थात् आप हित करनेवाली हैं, आपके केश चामरके समान सुंदर हैं, मैं आपसे पूछती हूं कि संपूर्ण गुणोंसे युक्त आप कौन हैं तथा ये पांच पुरुष कौन हैं। हे माता, आप योग्य विचारोंको जानती हैं, तथा भक्तवत्सल हैं। मुझे आप उत्तर दें।" कन्याका भाषण सुनकर कुन्तीने कहा कि "हे कन्ये, मैं जो तत्त्व-वास्तविक स्वरूप कहती हूं वह तू शीघ्र सुन। हम तो सब ब्राह्मण हैं। ब्रह्मविद्यामें चतुर हैं। मैं ज्योतिष जानती हूं अतः मेरे भाषणपर तू विश्वास रख।" इस प्रकारका भाषण कुन्तीने कन्याके उत्तम जीवनके लाभके लिये हंसकर कहा। "हे पुत्री तू पवित्र है, पुण्यवती है और महा शुभाचरणवाली है। हे कन्ये, तू गुणोंको जानने-वाली और गुणोंका आधार है। तू उत्तम लक्ष्मीसे युक्त और महान् अभ्युदयसे युक्त होनेवाली है। हे सुते, तू आजन्म शुद्धशीलको धारण कर। क्यों कि वही वास्तविक जीवन है। दीक्षाग्रहणकी

इति श्रुत्वा तदा कन्या गतच्छाया विषण्णधीः। आर्तध्यानेन संतप्ता विन्ध्यसेनसुताभवत् ॥
मनोमत्तगजेन्द्रं सा निरुद्ध्य च दुरुत्तरम्। तपस्यन्ती तपस्तस्थौ निन्दन्ती कर्म प्राक्कृतम् ॥
ततस्ते पाण्डवाश्चेलुश्चण्डाः कुन्त्या समं मुदा। लोकयन्तोऽखिलाँल्लोकाँल्लसल्लीलाविलासिनः ॥
शृङ्गाग्रलग्नसत्संगिमृगाङ्कं रङ्गसंगतम्। त्रिशृङ्गाख्यं परं द्रङ्गं जग्मुस्ते पाण्डुनन्दनाः ॥१०१
तत्पतिः पातितानेकपरिपन्थिजनोत्करः। दोर्दण्डमण्डितश्चाभूत्प्रचण्डश्चण्डवाहनः ॥१०२
प्रेयसी परमानन्दा सुपदा तस्य शोभते। विमला विमलाभासा नाम्ना च विमलप्रभा ॥१०३
तयोः पुत्र्यो दश ख्याताः संख्यावत्यः सुशिक्षिताः। तासां ज्येष्ठा सुगम्भीरा गुणज्ञाभूद्गुणप्रभा ॥
द्वितीया सुप्रभा भासा सुप्रभा तृतीया पुनः। ह्री श्री रतिस्तथा पद्मेन्दीवरा सप्तमी मता ॥
विश्वा विश्वगुणैः पूर्णा तथाश्चर्याभिधानिका। अशोका शोकसंत्यक्ता दशमी सुषमावहा ॥
ता यौवनजवायत्ता रूपसौभाग्यशोभिताः। भूपो वीक्ष्य निमित्तज्ञमप्राक्षीत्सुखसिद्धये ॥१०७

इच्छा छोडकर तू गृहस्थव्रतोंका स्थिरतासे पालन कर कदाचित् तेरे पुण्यसे वे पाण्डव जीवित रहेंगे। क्यों कि ऐसे महापुरुषोंको देवभी मारनेमें असमर्थ होते हैं। इस प्रकारका कुन्तीका अभिप्राय सुनकर वह कन्या कान्तिरहित और खिन्न हुई। वह विन्ध्यसेन राजाकी पुत्री उस समय आर्त्तध्यानसे सन्तप्त हुई। उस कन्याने मनरूपी मत्त हाथीको रोका और पूर्वजन्मके किये हुए कर्मकी निंदा कर दुरुत्तर तप–अतिशय तीव्र तप किया। इस तरह अपना आयुष्य तपमें व्यतीत किया ॥ ९०–९९ ॥ तदनंतर सुंदर लीलाविलासयुक्त सर्व लोगोंको देखते हुए वे प्रचण्ड पाण्डव कुन्तीमाताको साथ लेकर आनंदसे प्रवास करने लगे ॥ १०० ॥ जिसके शिखरोंके अग्रभागोंपर नक्षत्रोंके साथ चन्द्र लगा हुआ दीखता है, तथा जो नृत्यशालासे युक्त है, ऐसे त्रिशृंगनामक उत्तम नगरको वे पाण्डवपुत्र गये। उस नगरके राजाका नाम 'चंडवाहन' था, उसने अनेक शत्रुओंका समूह नष्ट किया था। वह भुजदण्डसे मंडित और प्रचंड था। उसकी प्रिय पत्नीका नाम 'विमलप्रभा' था। वह विमल थी और निर्मल कान्तिवाली थी। अतः उसका नाम अन्वर्थक था। वह सदा अतिशय आनंदित थी, और उसके पांव सुंदर थे ॥ १०१–१०३ ॥ इन राजदम्पतीको दश कन्यायें थीं। वे विदुषी अर्थात् सुशिक्षिता थी। उनमेंसे ज्येष्ठ कन्या अतिशय गंभीर और गुणज्ञ थी। उसका नाम 'गुणप्रभा' था। दुसरी कन्या 'सुप्रभा' नामकी थी। वह उत्तम कान्तिवाली थी। तीसरी आदि कन्याओंके नाम ये थे- ह्री, श्री, रति, पद्मा, इन्दीवरा। आठवी कन्याका नाम 'विश्वा' था। क्यों कि वह विश्वगुणोंसे पूर्ण थी। नववी कन्याका नाम 'आश्चर्या' था और दसवी कन्या शोकसे रहित 'अशोका' नामकी थी। ये सभी कन्यायें सौंदर्यवती थीं ॥ १०४–१०६ ॥ ये सब कन्यायें तारुण्यके वेगके अधीन हुई थीं अर्थात् अतिशय तरुण थी। रूप और सौभाग्यसे भूषित थीं। राजाने इन कन्याओंको देखकर निमित्तज्ञको इनकी सुखसिद्धिके लिये प्रश्न

आसां को भविता नाथः कथ्यतां वितथातिगः। स ब्रूते स्म निमित्तेन युधिष्ठिरं वरं वरम् ॥
ताश्च तत्पतिमुन्निद्रा निश्चित्य सुखतः स्थिताः। तद्वार्तामन्यथा श्रुत्वा समासन्दुःखिताः पुनः
अथ तत्र पुरे श्रीमान्मित्राभो मित्रवर्धितः। प्रियमित्राभिधः स्वेभ्यः श्रेष्ठी श्रेष्ठगुणाग्रणीः ॥
दयिता सौमिनी तस्य तयोर्जाता सुता वरा। मृगनेत्रा पवित्रान्तःशुद्धा नयनसुन्दरी ॥१११
सुन्दरा सुन्दराकारा सेन्दिरा गुणमन्दिरा। पूर्वं युधिष्ठिरायासौ पित्रा दत्ता निमित्ततः॥११२
सापि तद्दहनं श्रुत्वा खिन्ना ताभिः समं स्थिता। धर्मध्यानरताः सर्वा बभूवुर्व्रततत्पराः॥११३
राजा श्रेष्ठी सभार्यौ तौ पुरुषान्तरवेदिनौ। तास्तं दातुं समुद्युक्तौ क्षितौ दुःखभरैः स्थितौ ॥
सर्वपर्वसु ताः प्रीता उपवासं सुदुष्करम्। कुर्वन्त्योऽस्थुः स्थिरा भावैः स्वभावमधुरा गिरा ॥

पूछा अर्थात् इनका पति कौन होगा? यह आप कहें। क्यों कि आप असत्यसे दूर रहते हैं अर्थात् आप निमित्तज्ञानसे जो होनेवाला है वही बताते हैं। तब निमित्तज्ञने निमित्तकेद्वारा श्रेष्ठ युधिष्ठिर इनका पति होगा ऐसा कहा ॥ १०७-१०८ ॥ वे जागृत दस कन्याएं युधिष्ठिर अपना पति होगा ऐसा निश्चय कर सुखसे रहने लगी। परंतु कुछ काल बीतनेपर युधिष्ठिर अपने भाईयोंके साथ अग्निमें जलकर मर गये हैं, ऐसी दुर्वार्ता उन्होंने सुनी और वे पुनः दुःखित हो गयीं ॥१०९ ॥ वे दस कन्या जिनमंदिरमें धर्मध्यान करती हुई रहने लगीं। उसी नगरमें श्रीमान्, सूर्यके समान कान्तिवाला, मित्रोंसे वृद्धिंगत हुआ प्रियमित्र नामक श्रेष्ठी रहता था। वह वैभवशाली और श्रेष्ठगुणोंसे लोगोंका अगुआ था। उसकी पत्नीका नाम सौमिनी था। उन दोनोंको नयनसुन्दरी नामक कन्या हुई वह हरिणके समान नेत्रवाली तथा पवित्र थी। अर्थात् उसका मन शुद्ध था। वह सुन्दर थी उसके शरीरकी आकृति मनको लुभाती थी। लक्ष्मीके समान वह गुणोंका मंदिर थी। प्रियमित्र श्रेष्ठीने निमित्तसे सुनकर अपनी कन्या युधिष्ठिरको देनेका निश्चय किया था। युधिष्ठिरकी अग्निमें जल जानेकी वार्ता उस कन्याने सुनी, तब वहभी खिन्न होकर राजाकी दस कन्याओंके साथ रहने लगी। ये सभी कन्यायें धर्मध्यानमें रत, व्रतोंमें, तत्पर रहने लगी ॥ ११०-११३ ॥ राजा, श्रेष्ठी और उन दोनोंकी पत्नियां ये चारों व्यक्ति अन्य पुरुषोंका स्वरूप जानते थे। अर्थात् अन्यपुरुषके साथ इन कन्याओंका विवाह करना योग्य नहीं हैं ऐसा वे समझते थे अतः युधिष्ठिरहीको इन कन्याओंको अर्पण करने लिये वे उद्युक्त हुए थे। परंतु इस भूतलपर वे अब अतिशय दुःखी होकर रहने लगे ॥ ११४ ॥ इधर ये ग्यारह कन्यायें प्रत्येक पर्वतिथिके दिनमें सुदुष्कर उपवास करती हुई प्रीतिसे रहने लगी। अपने शुभ भावोंमें वे स्थिर थीं, और वाणीसे वे स्वभावमधुर थीं। किसी समय वनके जिनमंदिरमें उन्होंने चर्तुदशीके दिन सोलह प्रहरोंका प्रोषधोपवास धारण कर निवास किया। वहांही धर्मध्यानमें तत्पर होकर उन्होंने व्युत्सर्ग धारण किया अर्थात् शरीरका ममत्व छोड दिया। उत्तम निश्चयसे युक्त होकर उन्होंने अहो-

एकदा ताश्चतुर्दश्यां प्रोषधं द्व्यष्टयामकम्। गृहीत्वा श्रीजिनागारे वनस्थे विदधुः स्थितिम् ॥
तत्रैव ता अहोरात्रं धर्मध्यानपरायणाः। व्युत्सर्गविधिसंशुद्धा निन्युः संनिश्चयान्विताः ॥
जिनचक्रिनरेन्द्राणां ताः कथाः कथनोद्यताः। निशां नीत्वा प्रगे सर्वाश्चक्रुःसामायिकीं क्रियाम्
ततः प्रोवाच सश्रीका राजपुत्री गुणप्रभा। अत्रैव पारणां शुद्धाः करिष्यामो वयं लघु ॥
तत्र चेन्मुनिदानेन पारणा सफला भवेत्। तदानीं सफलं जन्म जायतेऽस्माकमुन्नतम् ॥१२०
दत्त्वा च मुनये दानं ग्रहीष्यामो वरं तपः। तत्पार्श्वे शुद्धचेतस्का भावयन्तीति भावनाः ॥
अहो संसारवैचित्र्यं विद्यते परमं महत्। सुधियामपि जायेत ममत्वं तत्र मोहतः ॥१२२
पुनः स्त्रीत्वं भवेन्निन्द्यं भवे दुष्कर्मयोगतः। जातमात्रा तु पितॄणां पुत्री दुःखाय कल्पते ॥
वर्धमाना पितुर्दत्ते वरान्वेषणसंभवाम्। चिन्तां विवाहिता सापि पतिजां शर्महारिणीम् ॥
कदाचिच्चेद्वरो दुष्टो व्यसनी वा क्रियातिगः। मृषावाग्विनयातीतो दुरोदररतः सदा ॥१२५
सरोगो विभवातीतः परनारीषु लम्पटः। अन्यायी क्रोधसंबद्धो धर्मातीतोऽतिदुर्मतिः ॥१२६
ईदृशश्चेद्दुराचारः स्त्रिया दुःकर्मपाकतः। तस्या दुःखाय जायेत तद्दुःखं कोऽत्र वेत्त्यहो ॥१२७

रात्र उस जिनमंदिरमेंही व्यतीत की। जिनेश्वर, चक्रवर्ती और अन्य बलभद्रादिक राजाओंकी कथा वे कहने लगीं। इस प्रकार उन्होंने रात बिताकर प्रातः कालमें सामायिकक्रिया की ॥ ११५–११८ ॥ इसके अनंतर शोभासंपन्न राजपुत्री गुणप्रभाने अपनी सब बहिनोंको कहा कि "आज हम यहांही शीघ्र शुद्ध पारणा करेंगी। यदि उस समय मुनिदान करनेका श्रेय मिलेगा, तो पारणा सफल होगी। उस समय हमारा जन्म सफल और उन्नत हो जावेगा। मुनीश्वरको दान देकर हम उनके पास उत्तम तपश्चरण करेंगीं। अर्थात् हम उनसे आर्यिकाकी दीक्षा धारण कर तप करेंगी, इस प्रकार शुद्ध अन्तःकरणवाली राजकन्यायें भावना भाने लगीं" ॥११९–१२१॥

[स्त्रीपर्यायके दुःख] अहो इस संसारकी नानाविधता बडी आश्चर्यकारक है। मोहसे उसमें विद्वानोंकोभी ममत्व उत्पन्न होता है। नानाविधतामें 'स्त्रीत्व' भी एक निन्द्य वस्तु है। वह स्त्रीत्व संसारमें प्राणियोंको अशुभ कर्मके उदयसे प्राप्त होता है। कन्या उत्पन्न होने मात्रसे मातापिताओंको चिन्तारूपी दुःखसे पीडित करती है। जब वह बढती है, तब पिताको वरशोधनसे उत्पन्न हुए दुःखसे दुःखित करती है अर्थात् कन्यायोग्य पतिको ढूंढनेका क्लेश पिताको भोगना पडता है। कन्याका विवाह करनेपर उसको पतिसे इसे सुखप्राप्ति होगी या नहीं यह दुःख उत्पन्न होता है। यदि कदाचित् वर–पति दुष्ट, व्यसनी, उदरनिर्वाहकी चिन्ता न करनेवाला–अलसी, झूठ बोलनेवाला, विनय रहित-उद्धत, जुगार खेलनेमें हमेशा तत्पर, रोगी, विभवातीत–दरिद्री, परस्त्रियोंमें लंपट, अन्यायी, क्रोधी, धर्मरहित, अतिशय दुर्बुद्धिवाला, इस प्रकारका कन्याके अशुभकर्मके उदयसे मिल गया तो उसे जो दुःख होगा उसे कौन जाननेमें समर्थ होगा? अर्थात् ऐसे सदोष पतिसे कन्याको तिलमात्रभी सुखकी प्राप्ति नहीं

समीचीनः कदाचित्स सपत्नी दुःखदा भवेत् ।
सपत्नीतः परं दुःखं नाभून्न भविता स्त्रियः ॥ १२८

तथा पत्युरमान्या वा वन्ध्या वा युवतिर्भवेत् । प्रघातिका कदाचिच्चेद्दुःखं स्याद्गर्भसंभवम् ॥
गर्भभारभराक्रान्ता न क्वापि लभते सुखम् । प्रसूतावामनस्यं कस्तद्दुःखं गदितुं क्षमः ॥१३०
मृते भर्तरि वैधव्यं तादृशं तदपि स्त्रियाः । युवतीजन्मजं दुःखं गदितुं कः क्षमो भवेत्॥१३१
विवाहविधिसन्त्यक्ता वयं वैधव्यमागताः । धिक्स्त्रीत्वं भवभोगैर्नः कृतमन्यच्च श्रूयताम् ॥
भर्तुः प्रसादतः स्त्रीणां सफलाः स्युर्मनोरथाः । धर्मार्थकामजाः सर्वे भर्त्रधीनं यतः स्त्रियाः ॥
वृथा भर्त्रा विना जन्म स्त्रीभिर्निर्गम्यते कथम् । अतः संयममाधाय सुखिताः स्याम चालयः॥
शीलसंयमसम्यक्त्वध्यानैः स्त्रीलिङ्गमाकुलम् । हत्वा नरत्वमासाद्य मुक्तिं यास्याम इत्यलम् ॥
तद्वाचमपरा श्रुत्वोवाच दीक्षाप्रशंसिनी । त्वदुक्तं सत्यमेवात्र किं चान्यच्छ्रूयतां सखि ॥

होगी और उसे अपार दुःख होगा ॥ १२१–१२७ ॥ कदाचित् उसे सद्गुणी पति मिल गया तो भी कन्याकी सौत उसे दुःखदायक होती है। सौतसे स्त्रियोंको जो दुःख–कष्ट होता है उसके बराबरीका दुःख जगतमें पूर्वकालमें नहीं था और आगे भी नहीं होगा ॥ १२८ ॥ यदि पतिको कन्या अप्रिय हो गयी, अथवा वह वंध्या हुई तो उसे तीव्र दुःख उत्पन्न होता है। जब गर्भवती होती है तब गर्भका दुःख उसे सहन करना पडता है। प्रसूत होते समय प्रसूतिका असह्य दुःख उसे भोगना पडता है। गर्भभार बढनेपर उसे उससे कहांभी सुख नहीं मिलता है। प्रसूत होनेपर जो दुःख उत्पन्न होता है उसे वर्णन करनेमें कौन समर्थ है?" ॥१२९–१३०॥ पति मरनेपर जो दुःख स्त्रियोंको होता है वहभी कहनेमें अशक्यही है। संक्षेपसे यह कह सकते हैं कि, स्त्रीजन्ममें जो दुःख उत्पन्न होते हैं वे सब अवर्णनीय हैं। उन्हें कोईभी वर्णन नहीं कर सकेंगे। हम तो विवाह-विधिसे रहित हुई हैं अतः हमें वैधव्य प्राप्त हुआ है। ऐसे स्त्रीत्वको–स्त्रीपर्यायको धिक्कार हो। स्त्रीभवमें मिलनेवाले भोगोंसे हमारा कुछ प्रयोजन नहीं है। और भी स्त्रीपर्यायके विषयमें जो वक्तव्य है उसे आप सुने–पतिकी यदि स्त्रियोंपर कृपा होगी तो उनके धर्म, अर्थ और कामजन्य मनोरथ सफल होते हैं। अन्यथा सफल नहीं होंगे, क्यों कि स्त्रियोंका संपूर्ण सुख पतिके अधीनही होता है। पतिके विना स्त्रीका जन्म व्यर्थ है। पतिके विना स्त्रियोंके द्वारा अपना जन्म कैसे व्यतीत किया जावेगा? स्त्री पतिके विना अपने जन्मका निर्वाह नहीं कर सकती। अतः हे सहेलियों, हम संयम धारण करके सुखी हो जावेंगी। हम शील, सम्यग्दर्शन, संयम, ध्यानके द्वारा यह दुःखपूर्ण स्त्रीपर्याय नष्ट करके पुरुषपर्यायको प्राप्त कर मुक्तिको प्राप्त करेंगी। इस प्रकारसे इस स्त्री–पर्यायसे हमें कुछ प्रयोजन नहीं हैं" ॥ १३१–१३५ ॥ गुणप्रभाका वचन सुनकर दीक्षाकी प्रशंसा करनेवाली दुसरी कन्या सुप्रभा इस प्रकारसे बोलने लगी, "हे सखि, तेरा कहना सत्यही है।

पत्युः स्नेहसुखाशार्थं गृहवासो हि केवलम् । अबलानां बलं सोऽत्र तं विना का गृहं वसेत् ॥
विधवा स्त्री सभामध्ये शोभते न कदाचन । अविवेकी यथा मर्त्यो वाथ लोभाकुलो यतिः ॥
विधवानां त्रपाकार्यञ्जनं ताम्बूलभक्षणम् । श्वेतवासो विना नान्यद्भूषावच्छोभते शुभम् ॥
मृते गतेऽथवा पत्यौ युवती संयमं श्रयेत् । तपसा निर्दहेद्देहं करणानि च सत्वरं ॥१४०
भोजनं वसनं वार्ता कौशल्यं जीवनं धनम् । स्वस्नेहः शोभते स्त्रीणां विना नाथं कदापि न ॥
एवं वृत्तेऽत्र वृत्तान्ते तासां संयमकोविदः । दमितारिमुनिर्ज्ञानी समायासीज्जिनालये ॥१४२
तास्तं योगीन्द्रमावीक्ष्य सहर्षाः कोपवर्जिताः । त्रिधा परीत्य सद्भक्त्या नेमुस्तत्पादपङ्कजम् ॥
कन्या अकथयन्स्वामिन् योगीन्द्रं योगभास्करम् ।
कृपां कृत्वा प्रव्रज्यां नो यच्छ स्वच्छमनोमल ॥ १४४
अवदंस्ता यथा वृत्तं मुनीन्द्रं पाण्डवोद्भवम् । ज्वलिते भर्तरि श्रेष्ठास्माकं दीक्षा शुभावहा ॥

मैंभी कुछ कहना चाहती हूं, उसे आप सुने ।"—पतिके स्नेहकी आशासे और केवल उससे प्राप्त होनेवाले सुखोंकी आशासे स्त्रियां घरमें रहती हैं। इहलोकमें पति स्त्रियोंका बल है, यदि वह नहीं हो तो घरमें कौन रहेगी ?" ॥ १३६-१३७ ॥ " विधवा स्त्री सभामें कदापि नहीं शोभती है। अविवेकी मनुष्य और लोभी मुनिके समान विधवा स्त्री सभामें-समाजमें शोभा नहीं धारण करती है। विधवा स्त्रीका आंखोंमें अंजन लगाना अर्थात् कज्जल और सुरमासे आंखें आंजना श्रृंगारिककार्य होनेसे त्याज्य है, लज्जाजनक है। ताम्बूल भक्षण करनाभी उसे वर्ज्यही है, अलंकारके समान अन्य रंगयुक्त वस्त्र धारण करनाभी शोभाजनक नहीं हैं। अर्थात् विधवा स्त्रीका अलंकार धारण करना और सुंदर नानाविध चित्र विचित्र वस्त्र धारण करना शोभास्पद नहीं। लज्जाजनक है। शुभ्र वस्त्र धारण कर निर्भूषण अवस्थामें रहनाही उसके लिये शुभ है " ॥ १३८-१३९ ॥ पति मरनेपर अथवा गृहत्याग कर निकल जानेसे स्त्री संयम धारण करें। तपश्चरणसे वह अपना देह क्षीण करें। तथा स्पर्शादिविषयोंके प्रति गमन करनेवाली इंद्रियां शीघ्र क्षीण करें। भोजन, वस्त्र-धारण करना, शृंगारिक बातें करनेका चातुर्य, जीवन, धन और शरीरके ऊपर स्नेह ये बातें बिना पतिके स्त्रियोंके नहीं सोहती हैं " इस प्रकार उन राजकन्याओंमें आपसमें चर्चा चल रही थी। इतनेमें संयमनिपुण, ज्ञानी दमितारि नामक मुनि जिनमंदिरमें आये ॥ १४०-१४२ ॥ वे राज-कन्यायें योगीन्द्रको देखकर हर्षित हो गयीं। कोपवर्जित-शान्त हो गईं। उन्होंने मुनीश्वरको भक्तिसे तीन प्रदक्षिणायें देकर उनके चरणकमलोंको वन्दन किया। योगको-ध्यानको प्रकाशित करनेमें सूर्यके समान योगीन्द्रको कन्यायें कहने लगीं—" हे स्वामिन्, मनके मलको स्वच्छ करनेवाले हे मुनिराज आप कृपा करके हमें दिक्षा देवें। उन्होंने पाण्डवोंका वृत्तान्त जैसा हुआ था सब कहा। पतिके जलकर मरनेपर हमारे लिये दीक्षा धारण करनाही श्रेष्ठ और शुभावह है। क्यों कि कुलीन स्त्रियोंको

कुलजानां यतः स्त्रीणामेक एव पतिर्भवेत् । निशम्येति वचोऽवादीद्योगीन्द्रोऽवधिलोचनः ॥
एष्यन्ति ते मुहूर्तान्ते पाण्डवाः पञ्च पावनाः । योक्ष्यध्वे तैः समं यूयं स्थिरा भवत सांप्रतम् ॥
इत्युक्ते सज्जनास्तत्र विस्मयव्याप्तचेतसः । दध्युः कथं समायातिस्तेषां हि ज्वलितात्मनाम् ॥
तावता पाण्डवाः पञ्च पवित्राः समुपागताः । निःसहीति प्रकुर्वन्ति श्वेतवासोवहाः पराः ॥
नुत्वा नत्वार्चयित्वा च जिनेन्द्रप्रतियातनाः । मुनिं ववन्दिरे भूपा भक्तिसंदोहभाजनम् ॥
शशंसुस्ता मुनीन्द्रस्य बोधिं सद्बोधभागिनः । अहो बोधो मुनीन्द्रस्य सर्वलोकप्रकाशकः ॥
पुनः कन्याः समावीक्ष्य युधिष्ठिरमहीपतिम् । बिडौजःसदृशं श्रीभिर्युतं तुतुषुरद्भुतम् ॥१५२
आगतान्नृपतीञ्श्रुत्वा पाण्डवांश्चण्डवाहनः । धराधीशो मतिं दध्रे तत्र गन्तुं समुत्सुकः ॥
घनगर्जनसंकाशैरातोद्यैर्दीप्तदिङ्मुखैः । घोटकैः सुघटाटोपैरायात्तान्मिलितुं नृपः ॥१५४
छत्रच्छन्नमहाव्योमा शोभमानगुणोत्करः । तत्रैत्येष्ट्वा जिनान्युक्त्या दमितारिं ननाम च ॥

एकही पति होता है। राजकन्याओंका यह भाषण सुनकर अवधिज्ञान नेत्रके धारक दमितारि मुनीश्वरने कहा कि हे राजकन्याओं, आप चिन्ता न करें, अपना मन स्थिर करें, एक मुहूर्तके अनन्तर पवित्र पाण्डव यहां आनेवाले हैं, उनके साथ आपका संयोग होनेवाला है। आप इस समय चिन्तित न होवें। इसतरह मुनीश्वरके कहनेपर वहां जो सज्जन थे उनका मन विस्मयसे व्याप्त हुआ। जो अग्निमें जल चुके हैं उनका आगमन कैसे होगा, ऐसा वे विचार करने लगे। परंतु इतनेमें जिनमंदिरमें श्वेतवस्त्र धारण करनेवाले पांच पवित्र उत्तम पाण्डवोंने 'निःसही निःसही' कहते हुए प्रवेश किया। विपुल भक्तिसमूहके पात्र ऐसे पाण्डव राजाओंने जिनेन्द्रप्रतिमाकी स्तुति, नमस्कार और पूजा की अनंतर उन्होंने मुनीश्वरको वन्दन किया ॥ १४३–१५० ॥

[गुणप्रभादि राजकन्याओंसे धर्म राजका विवाह] उत्तम बोधको (अवधिज्ञानको) धारण करनेवाले मुनीश्वरके रत्नत्रयकी (बोधिकी) उन राजकन्याओंने प्रशंसा की। श्रीमुनीश्वरका ज्ञान सर्व जगत्को प्रकाशित करनेवाला है, ऐसा कहकर राजकन्याओंने आश्चर्य व्यक्त किया। तदनंतर इन्द्रके समान, शरीर कान्ति, और सौन्दर्ययुक्त ऐसे युधिष्ठिर राजाको देखकर वे राजकन्यायें आश्चर्यके साथ खुश हो गयीं। चण्डवाहन राजाने सुना कि प्रचण्ड पाण्डवोंका जिनमंदिरमें आगमन हुआ है। उसने उत्सुक होकर वहां जानेका विचार किया। मेघगर्जनाके समान जिन्होंने दिशाओंको व्याप्त किया है ऐसे वाद्योंके साथ तथा उत्तम रचना और शोभा जिनकी हैं ऐसे घोडोंके साथ राजा चण्डवाहन पाण्डवोंको मिलनेके लिये आया ॥१५१–१५४॥ छत्रसे आकाशको व्याप्त करनेवाला, और जिसका गुणसमूह शोभता है ऐसे चण्डवाहन राजाने जिनमंदिरमें आकर प्रथम जिनेश्वरकी युक्तिसे अर्थात् मन–वचन–कायकी एकाग्रतासे पूजा की। अनंतर उसने दमितारि मुनीश्वरको वंदन किया। पुनः लक्ष्मीपति उस राजाने भक्तिसे उठकर पाण्डवोंको गाढ आलिंगन दिया और नम्रमस्तक होकर

पुनः स क्षितिपो भक्त्या समुत्थाय नरेश्वरान्। गाढमालिङ्ग्य लक्ष्मीशो ननाम नतमस्तकः
विपुलं कुशलं सर्वेऽन्योन्यं प्रष्टुं समुद्यताः। साधर्मिणां हि वात्सल्यं परं स्नेहस्य कारणम् ॥
किंवदन्तीं विधायाथ विविधां कुशलस्य च। तैः समं नृपतिर्भेजे पुरं पुत्रीसमन्वितः ॥१५८
भोज्यभोजनभावेन भोजयित्वा स्ववेश्मनि। तान्भूपः प्रार्थयामास विवाहार्थं युधिष्ठिरम् ॥
ततो मङ्गलनादेन नदन्तमिव मण्डपम्। नृत्यन्तं च नटीनृत्यैर्हसन्तमिव मौक्तिकैः ॥१६०
वदन्तमिव मालाभिर्मन्वानमिव मञ्चकैः। अन्याभिर्माप्य भूमीशो विवाहं विदधे वरम् ॥१६१
विवाहमङ्गलोद्भासिशातकुम्भीयकुम्भकाः। शोभन्ते मण्डपे रम्ये विवाहसमये तदा ॥१६२
युधिष्ठिरस्तु पुण्येन समाप पाणिपीडनम्। प्रतीपदर्शिनीनां वै तासां मङ्गलनिस्वनैः ॥१६३
ताः कन्या नृपतिं प्राप्य पार्श्वस्थाश्चातिरेजिरे। कल्पवल्ल्यो यथा कल्पपादपं कल्पितार्थदम् ॥
अहो पुण्यद्रुमः सातं फलतीहान्यजन्मनि। ततो वृषो विधातव्यो विविधार्थो वृषार्थिभिः ॥

इत्थं पुण्यविपाकतो नरपतिर्युद्धे स्थिरः सुस्थिरः
विख्यातस्तु युधिष्ठिरो वरवधूलाभेन संलम्भितः।

उनको नमस्कार किया ॥१५५–१५६॥ वे राजा और पाण्डव एक दूसरेका विपुल कुशल पूछनेके लिये उद्युक्त हुए। योग्यही है कि साधर्मियोंका वात्सल्यभाव स्नेहका प्रधान कारण होता है ॥१५७॥ चण्डवाहन राजाने पांडवोंके साथ नाना प्रकारका कुशल–वार्तालाप किया और पाण्डवोंको साथ लेकर पुत्रियोंसहित वह अपने नगरको गया ॥ १५८ ॥ राजाने भोज्य–भोजन–भावसे पाण्डवोंको अपने घरमें मिष्ट भोजन देकर विवाहके लिये युधिष्ठिरकी प्रार्थना की ॥ १५९ ॥ तदनंतर राजाने विवाहमण्डप बनवाया, जो कि मंगलध्वनिसे मानो दूसरोंको बुलाता था, नटीयोंके नृत्योंसे मानो नृत्य कर रहा था, तथा मोतियोंसे मानो हँस रहा था, मालाओंकेद्वारा बोल रहा था, तथा मञ्चोंकेद्वारा अन्यलोगोंका आदर–सत्कार कर रहा था। तथा इस मण्डपमें युधिष्ठिरके साथ अपनी कन्याओंका राजाने उत्तम विवाह किया। विवाहके समय रम्य मण्डपमें विवाहमंगलके चमकनेवाले सुवर्णकुंम्भ शोभते थे। युधिष्ठिरराजाने मंगल शब्दोंके साथ उन राजकन्याओंके साथ पुण्योदयसे पाणिग्रहण किया। इच्छित पदार्थ देनेवाले कल्पवृक्षका आश्रय लेकर जैसी कल्पलतायें शोभती हैं वैसी वे राजकन्यायें राजा युधिष्ठिरको प्राप्त कर उसके समीप शोभने लगी। पुण्यवृक्ष इहलोकमें और परलोकमें अर्थात् अन्यजन्ममें सुखरूप फलोंको देता है। इसलिये पुण्यको चाहनेवाले लोगोंको नानाविध धनादि पदार्थ देनेवाले धर्मका आचरण करना चाहिये ॥१६०–१६५॥ इस प्रकारके पुण्योदयसे राजा युधिष्ठिर युद्धमें स्थिर हुए। इस पुण्योदयने प्रख्यात युधिष्ठिर राजाको उत्तम वधुओंके लाभसे संपन्न किया। देशमें और समस्त नगरोंमें और विपुल वनोंमें राजाओंने अनेक कन्याओंसे वह पूजित किया गया। अर्थात् अनेक कन्याओंके साथ युधिष्ठिर राजाने विवाह किये। ऐसे वे

देशेऽशेषपुरे वने प्रविपुले संपूजितो भूमिपैः
वामाभिर्वरवाञ्छितार्थफलदो रेजे यथा देवराट् ॥१६६
क्वास्ते हस्तिपुरं सुहस्तिनिनदैः संनन्दितं सर्वदा
क्वास्ते कौशिकपत्तनं क वनितालाभः सतां संमतः ।
कौशाम्बी च पुरी क विन्ध्यतनया त्रिःशृङ्गसत्पत्तनम्
क्वास्त्येकादशकामिनीसुपतिता क्वैतत्फलं पुण्यजम् ॥ १६७

इति श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि शुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपालसाहाय्यसापेक्षे पाण्डवपरदेश-गमनयुधिष्ठिरकन्यालाभवर्णनं नाम त्रयोदशं पर्व ॥ १३ ॥

। चतुर्दशं पर्व ।

पुष्पदन्तं सुकुन्देद्धपुष्पदन्तं जिनेश्वरम् । पुष्पदन्ताभमानौमि पुष्पदन्तात्तपत्कजम् ॥१
ततश्चेलुर्महाचित्ताश्चञ्चला मलवर्जिताः । पश्यन्तः परमां शोभां वीथीनां व्यथयातिगाः ॥२

युधिष्ठिर महाराज देवोंके राजा इंद्रके समान इच्छित पदार्थ देते हुए शोभने लगे ॥ १६६ ॥ उत्तम हाथियोंकी गर्जनाओंसे सर्वदा मनोहर ऐसा हस्तिनापुर नगर कहां और कौशिकपुर कहां? सज्जनोंको मान्य ऐसी स्त्रियोंका लाभ कहां तथा कौशाम्बी पुरी कहां और विन्ध्यसेन राजाकी कन्या वसंतसेना कहां ? त्रिशृंगपत्तन नामक नगर कहां और ग्यारह राजकन्याओंका पति होना कहां और यह पुण्यका फल कहां ? तात्पर्य यह है, कि पुण्यसे दुर्लभसे दुर्लभ वस्तुओंकीभी प्राप्ति होती है। यह सब पुण्यहीका फल है । ॥ १६७ ॥

ब्रह्म श्रीपालजीकी सहायता लेकर शुभचन्द्रभट्टारकजीने रचे हुए भारत नामक पाण्डव–पुराणमें पाण्डवोंका परदेश गमनका और युधिष्ठिरको कन्यालाभका वर्णन करनेवाला तेरहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥ १३ ॥

[पर्व १४ वा]

जो सूर्य और चन्द्रकी कान्तिके समान कान्ति धारण करते हैं, पुष्पदन्त नामक गणधर देवने जिनके चरणकमलोंकी पूजा की है, उत्तम कुन्दके प्रफुल्ल पुष्पसमान जिनके दांत हैं ऐसे पुष्पदन्त जिनेश्वरकी मैं स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

[धर्मराजके लिये भीमका पानी लाना] तदनंतर महामना उदार चित्तवाले, मलवर्जित-कपटरहित ऐसे चंचल पाण्डव बाधाओंसे रहित होते हुए त्रिशृंगपुरकी गलियोंकी उत्कृष्ट शोभा देखते हुए उस नगरसे प्रयाण करने लगे । प्राणियोंके रक्षक और विस्तीर्ण शोभासे भरे हुए महावनमें वे पाण्डव

क्रमेण ते महारण्यं शरण्यं सुशरीरिणाम्। विकटाटोपसंछन्नं पाण्डवाश्च प्रपेदिरे ॥३
पिपासापीडितो भूपो मार्गजातश्रमेण च। सूरतापपरिश्रान्तः समभूत्स युधिष्ठिरः ॥४
अहो भीम पदं दातुं न शक्नोमि तृषातुरः। स्थातव्यमत्र सर्वैश्च समुच्चार्येति संस्थितः ॥५
तदा तद्दुःखमक्ष्णा न क्षमो द्रष्टुं विकर्तनः। प्रतीचीं दिशमातस्थौ कः पश्येन्महदापदम् ॥
तदा तिमिरवृन्देन व्याप्तः सर्वदिशां चयः। जलार्द्रकज्जलाभेन मधुव्रतसमात्मना ॥७
तदा ब्रूते स्म भूपालः पिपासापरिपीडितः। रे भीम नीरमानीय मत्तृषां विनिवारय ॥८
तृषासक्ता न संसक्ताः शरीरपरिरक्षणे। सरणीं सतुंमुद्युक्ता न भवन्ति कदाचन ॥९
इत्युक्त्वा धर्मजस्तस्थौ स्थिरायां स्थिरमानसः। तादृशं तं समावीक्ष्य भीमोऽभूद्भयविह्वलः ॥
सलिलं स समानेतुं तत्र संस्थाप्य सोदरम्। ययावन्यामरण्यानीं करकाक्रान्तसत्करः ॥११
जलकल्लोलमालाढ्यं विकसत्सुकुशेशयम्। क्वचिद्धंससमूहेन हसन्तं कोकनिस्वनैः ॥१२
वदन्तं विस्फुराकारनानामुक्ताफलान्वितम्। आह्वयन्तं तृषा क्षुण्णान्परान्कल्लोलसत्करैः ॥१३
तत्र पद्माकरं वीक्ष्य भीमोऽभूद्भीतिवर्जितः। कमलाक्रान्तसद्वक्त्रं करकं कमलैर्भृतम् ॥१४

आये ॥२–३॥ मार्गमें चलनेके श्रमसे और सूर्यके संतापसे थके हुए युधिष्ठिरराजाको प्याससे अतिशय दुःख हुआ। "हे भीम, मैं प्याससे अत्यंत पीडीत हूं, और आगे एक कदमभी रखनेमें असमर्थ हूं। अब यहां मेरे साथ आप सब लोग ठहरें" ऐसे वचन बोलकर युधिष्ठिर वहांही बैठ गये ॥४–५॥ तब युधिष्ठिरका दुःख आंखोंसे देखनेमें असमर्थ होकर सूर्य पश्चिम दिशाको जाने लगा। योग्यही है कि, बडोंकी आपत्तिको देखना कौन चाहेगा? तब जलार्द्र-कज्जलके समान कान्ति जिसकी है, तथा जो भ्रमरके समान काला है, ऐसे अंधकारके समूहसे समस्त दिशायें व्याप्त हुईं। युधिष्ठिर राजाने प्याससे पीडित होकर 'हे भीम! पानी लाकर मेरी प्यास बुझाओ' ऐसा कहा। योग्यही है, कि जो प्याससे अतिशय पीडित होते हैं, वे अपने शरीरकी रक्षा करनेमें असमर्थ होते हैं। तथा वे कभीभी मार्गमें प्रयाण करनेकी इच्छा नहीं रखते हैं अर्थात् प्याससे विकल होनेपर वे चल नहीं सकते हैं" ऐसा कहकर स्थिर चित्तवाले धर्मराज जमीनपर बैठ गये। उनकी ऐसी करुणाजनक अवस्था देखकर भीम भयसे व्याकुल हुआ ॥ ६–१० ॥ उस वनमें धर्मराजको बैठाकर जिसके हाथमें कमंडलु है ऐसा भीमसेन पानी लानेके लिये दुसरे वनमें गया ॥ ११ ॥ वहां भीमने एक सरोवर देखा, उसमें खूप पानीकी लहरें उठतीं थीं। वह विकसित कमलोंसे सुंदर दीखता था। उसमें कहीं कहीं हंससमूह विहार करता था मानो वह हँस रहा था। कोकपक्षियोंके शब्दसे मानो वह बोल रहा था। वह चमकनेवाले नाना मोतियोंसे युक्त था और प्याससे पीडित लोगोंको तरंगरूपी हाथोंसे बुलाता था। उसको देखकर भीम भयरहित हो गया। उसने कलशमें पानी भरकर लिया और उसका मुख कमलसे आच्छादित किया। इसके अनंतर वह भीम मानो पवन–

कृत्वादाय त्वरां तत्र पावनिः पवनो यथा। यावदायाति तावच्च न्यग्रोधतलसद्भुवि ॥१५

सुप्तः पिपासया ज्येष्ठः पीडितः स युधिष्ठिरः। तं सुप्तं मारुतिर्वीक्ष्य विषसाद हृदा तदा॥१६

अहो संसारवैचित्र्यं विषमं सर्वदेहिनाम्। दृष्टमात्रप्रियं सद्यः कुड्यालिखितचित्रवत् ॥१७

संसारनाटके नाट्यं नटन्ति सुनटा इव। नराः कर्मविपाकेन प्रेरिताः पावना अपि ॥१८

यः कौरवनृपेशानः पाण्डवानां महीपतिः। सोऽयं संस्तरमाधाय प्रसुप्तः किं विधीयते ॥१९

न वक्ति परमादत्ते नात्ययं किं न नेक्षते। वयं कर्तव्यतामूढा विस्मरामः स्मयावहाः॥२०

चिन्तयन्निति यावत्स समास्ते विपुलोदरः। तावत्कश्चित्खगस्तत्र कन्यामादाय चागमत्॥२१

स वीक्ष्य पक्वबिम्बोष्ठीं चन्द्रवक्त्रां सुलोचनाम्। मालूरपीनवक्षोजां हृदि तामित्यतर्कयत्॥२२

अहो इयं सुलक्ष्मीः किं किं वा मन्दोदरी परा। किं वा सीता शची किं वा किं वा पद्माथ रोहिणी

तावदाह खगाधीशो नत्वा तत्पादपङ्कजम्। देवेमां धारय त्वं हि कन्यापाणिप्रपीडनः ॥२४

कस्त्वं कस्मात्समायासीः का कन्या कस्य चात्मजा।
कथं ददासि मां ब्रूहि भीमोऽभाणीदिति स्फुटम् ॥ २५

वायु जैसा वहांसे त्वरासे निकला और जहां प्याससे पीडित होकर युधिष्ठिर वटवृक्षके तले भूमिपर सोये थे वहां आया। उनको देखकर उस समय भीमका हृदय खिन्न हुआ ॥ १२–१६ ॥ संसारकी विचित्रता तो देखो, सभी प्राणियोंको वह भयानक है। दीवालपर लिखे हुए नूतन चित्रके समान केवल देखने के लिए प्रिय है। पवित्र मानवभी कर्मोदयसे प्रेरित होकर संसाररूपी नाटकमें उत्तम नटके समान नृत्य करते हैं। जो युधिष्ठिर राजा कौरवोंका स्वामी और पांडवोंका भूपति था यहां तृणको शय्या बनाकर सो गया है। इस विषयमें कौन क्या कर सकता है? यह राजा किसीके साथ न बोलता है और न कुछ लेता है, तथा न खाता है। किसीको आंखें खोलकर देखता भी नहीं है। हम तो कर्तव्यमूढ हो गये हैं, हम आश्चर्यचकित होकर सब कार्य भूल गये हैं।" इस प्रकारसे भीम विचार कर रहा था इतनेमें कोई विद्याधर उस वनमें कन्याको लेकर आया ॥१७–२१॥

[भीम और विद्याधरका भाषण] भीमने जिसका ओष्ठ पक्व बिंबाफलके समान लाल है, जिसका मुख चन्द्रके समान और जिसकी आंखें सुंदर हैं,जिसके स्तन बिल्वफल के समान पुष्ट ओर बडे हैं ऐसी कन्याको देखकर मनमें ऐसा विचार किया अहो यह सुलक्ष्मी है? अथवा अतिशय सुंदर मंदोदरी (रावणपत्नी) है? किंवा सीता, इंद्राणी, पद्मावती, वा रोहिणी (चंद्रकी रानी) है? उस समय विद्याधरके स्वामीने भीमके चरणकमलोंको वन्दन कर कहा हे प्रभो,इस कन्याके साथ विवाह कर इसका आप स्वीकार करें॥२२–२४॥ 'तू कौन है? कहांसे आया है? यह कन्या कौन और किसकी पुत्री है? और तू मुझे क्यों अर्पण करता हैं?' ऐसा भीमने स्पष्टतासे विद्याधरको पूछा। विद्याधरने कहा "हे भीमसेन, इस कन्याका आनंददायक वृत्तान्त आप सुनो। संध्याकालके लालमेघोंके समान चमकनेवाला 'संध्याकार' नामक

सोऽवोचन्मारुते वृत्तमस्याः कर्णय सातदम् । संध्याकारपुरं चात्र संध्याजलदभासुरम् ॥२६
त्रिसंध्यासाधने सक्ताः सद्धियो यत्र चासते । हिडिम्बवंशसंभूतो वैरिवारणसद्धरिः ॥२७
सिंहघोषो नृपस्तत्र शोभते सिंहघोषवत् । तत्प्रिया हरिणीनेत्रा लक्ष्मणा लक्षणैर्युता ॥२८
या वक्ति परमां वाणीं यया कामोऽपि जीवति । तत्सुता च हिडिम्बाख्या या रतिं सुविडम्बयेत्॥
कदाचिद्धृततारुण्यां दीप्तसंभिन्नतामसाम् । लावण्यसरसीं तारां गतिनिर्जितदन्तिनीम् ॥३०
वाससंस्थापितात्यन्तमदनां स्वशरीरके । कामाडम्बरदण्डेन सदा तां च विडम्बिताम् ॥३१
हिडिम्बां भूषणैर्भूष्यां क्रीडन्तीं कन्दुकेन च । सखीभिः खेचरो वीक्ष्याचिन्तयच्चेति चेतसि॥
को वरो भविता ह्यस्याः समरूपः समक्रियः । समशक्तिः समाचारः समशीलः समप्रियः ॥
इत्यातर्क्य समाहूय दैवज्ञं भाविवेदिनम् । को वरो भवितेत्यस्याः समप्राक्षीत्खगाधिपः ॥३४
समावेद्य निमित्तेन स चाभाषीष्ट भूमिपम् । यः पिशाचवटस्याधः स्थित्वा जागर्ति निश्चितम् ॥
स वरो भविताप्यस्याः प्रचण्डभुजविक्रमः । पुनर्निशाचरं चौरं यो जेष्यति वटस्थितम् ॥३६

एक नगर है, इसमें प्रातःसंध्या, मध्याह्नसंध्या और सांयसंध्या ऐसे त्रिसंध्याके समय संध्यावंदनादि शुभकार्यकी सिद्धिमें उत्तम बुद्धिवान पुरुष तत्पर रहते हैं। इस नगरमें हिडिंबवंशमें उत्पन्न हुआ, शत्रुरूपी हाथियोंको सिंहसमान और सिंहकीसी गर्जना करनेवाला सिंहघोष नामक राजा राज्य करता है। राजाकी प्रिय पत्नीका नाम लक्ष्मणा है। वह हरिणकीसी सुंदर आखोंवाली और उत्तम लक्षणोंसे शोभनेवाली है। वह अपने मुखसे उत्तम वाणी निकालती है जिससे कामभी जीवंत होता है। लक्ष्मणाकी कन्याका नाम हिडिम्बा है और उसने अपने रूपसे रतिका अनुकरण किया है॥ २५–२९ ॥ जिसने तारुण्य धारण किया है, और जिसने अंगकांतिसे रात्रिका अंधकार नष्ट किया है, जो लावण्यका सरोवर है, जो तेजस्विनी और अपनी गतिसे हाथिनीकी गतिको जीतनेवाली है। अपने शरीरमें जिसने निवास करनेवाले मदनकी सुचारुरूपसे स्थापना की है, और इसीसे कामकी कांतिरूपी दंडसे जो हमेशा विडंबित हुई है; ऐसी हिडिंबा कन्या अलंकारोंसे भूषित होकर एक दिन अपनी सखियोंके साथ कंदुकसे क्रीडा कर रही थी। उसको देखकर उसके पिताने अपने मनमें इस प्रकार विचार किया। समानरूप, समान आचरण, समशक्ति, समान आदर, समानशील और समान प्रीति करनेवाले इस कन्याका कौन वर होगा। इस प्रकारका विचार करके उसने भावि परिस्थितिके ज्ञाता ज्योतिषीको बुलाया और इस कन्याका पति कौन होगा? इस तरह खगाधिप सिंहघोषने प्रश्न पूछा। ज्योतिषीने निमित्तसे जानकर राजाको इस प्रकार कहा। 'जो पिशाच वटवृक्षके नीचे ठहरकर निश्चयसे जागृत रहेगा, वह प्रचण्डबाहु और पराक्रमवाला पुरुष इस कन्याका पति होगा, इसी तरह वटमें रहनेवाले पिशाच और चोरको जीत लेगा, वह कार्यको सिद्ध करनेवाला, शत्रुओंको भयंकर ऐसा वटवृक्षके नीचे खडा हुआ तेजस्वी वीर पुरुष हिडिम्बा

सुभटः सुघटो वैरिविकटो विटपस्थितः। स भर्ता भविता नूनं हिडिम्बायाः सुडम्बरः ॥३७
ततः प्रभृति तेनाहं प्रेक्षणे रक्षितोऽत्र च। निद्रामुक्तं समावीक्ष्य त्वामिमामानयं त्वरा ॥३८
त्वं स्वामिन्सुधराधीश धारयोद्धृत्य धार्मिक। धरां धृतिं धियं सिद्धिं यथा धत्से तथा त्विमाम्
मा विलम्बय बुद्धीश हिडिम्बां हिण्डनोद्यताम्। शर्मोपयम्य भुङ्क्ष्व त्वं सुशिक्षाविधिवेदकः॥४०
हिडिम्बापि त्रपां हित्वा बभ्भणीति स्म तं तदा। आडम्बरेण वेगेन हिडिम्बां मां वृणु त्वकम्॥
मा विचारय चित्ते त्वं विचारोऽन्योऽत्र वर्तते। वटे सविटपे नाथ पिशाचो वावसीति च ॥
किंच कश्चित्खगो गच्छन्खे क्षिप्ताखिलविद्यकः। विद्यां साधयितुं तस्थौ विकटे वटकोटरे ॥
मथ्नाति मानवान्मूढो मानी स नियमस्थितः। मथिष्यति तथा मर्त्यं ममापि विक्रमोत्कटः
तावकं भणितं श्रुत्वा पिशाचोऽचिन्त्यविक्रमः। कोपं यास्यति कोपात्मा त्वं तूष्णीं भव जीवन
इत्याकर्ण्यावगण्योक्तं तस्या जगर्ज गर्जनैः। स्फोटयन् स श्रुती तस्य संस्फूर्जथुरिवोन्नतः ॥४६
यमराज इवोन्मादमदिष्णुर्मदमेदुरः। भीमो बभाण भीमात्मा पिशाचाकर्षणं वचः ॥४७

कन्याका निश्चयसे पति होगा ऐसा समझो। तबसे उस सिंहघोष विद्याधर राजाने मुझे यहां मार्ग-प्रतीक्षा करनेके लिये रख छोडा है। आप यहां निद्रारहित मुझे दीख पडे इस लिये मैं इस कन्याको यहां लाया हूं। पृथ्वीके अधीश-स्वामी, धार्मिक हे भीमसेन, जैसे आपने पृथ्वी, धैर्य, बुद्धि और कार्यसिद्धिको धारण किया है, वैसे इस विद्याधर-राजकन्याको धारण कीजिये। हे विद्वन्, भ्रमण करनेमें उद्युक्त इस हिडिम्बाके साथ विवाह कर आप सुखका उपभोग कीजिए, आप सुशिक्षाकी पद्धतिको जाननेवाले हैं। आपको अधिक कहनेकी मैं आवश्यकता नहीं समझता हूं ॥ ३०-४० ॥ हिडिम्बाभी लज्जा छोडकर बोलनेकी पद्धतिसे अर्थात् विनयसे बोलने लगी। "हे महापुरुष, शीघ्रही उत्साहके साथ मुझे आप वरिये, इस समय आप विचार ही न कीजिये। विचार करनेकी बात दूसरीही है। हे नाथ, अनेक शाखाओंसे संपन्न इस वटवृक्षपर एक पिशाच हमेशा रहता है। तथा एक विद्याधर आकाशमें जाता था। किसीने उसकी सब विद्यायें नष्ट कीं। तब इस वटवृक्षके विशाल कोटरमें विद्या साधनेके लिये वह बैठा है। वह मूर्ख और अभिमानी विद्याधर नियममें स्थिर होकर यहां आनेवाले मनुष्योंको दुःख देता है। वह मुझे भी पराक्रमसे उद्धत होकर पीडा देगा। तथा हे नाथ, आपका भाषण सुनकर अचिन्त्य पराक्रमी यह पिशाच कुपित होगा;क्योंकि वह बडाही क्रोधी है। इसलिये हे जीवनाधार आप मौन धारण करो" ॥ ४१-४५ ॥

[भीमका विद्याधर और पिशाचसे युद्ध] हिडिम्बाका उपर्युक्त भाषण सुनकर और उसकी अवज्ञा कर वह भीम वज्रके समान घोर गर्जनाओंके द्वारा उसके कान फोडनेवाला भाषण करने लगा। उन्मादसे उन्मत्त यमराजके समान मदसे भरा हुआ भयंकर स्वरूपका धारक वह पिशाच भीम तू यहां आ, आ। पीडा देनेवाले हे दुष्ट, तू अपना बाहुबल मुझे दिखा दे; जिससे उन्मत्त,

एह्येहि चात्र संत्रस्त बलं दर्शय दोर्भवम् । भावत्कं येन दर्पेन त्वया संत्रासिता नराः ॥४८
इत्याकर्ण्य महाघोषं ह्लादिनीघोषसंनिभम् । दधाव पावनिं भीमो निशाचौरो निशाचरः ॥
कुर्वन्किलकिलारावं कालास्यः कालदर्शनः । पिशाचः पावनिं योद्धुमुत्तस्थे क्रोधनिष्ठुरः॥
भीमोऽभाणीत्पिशाचेश संगरे संगरोद्यत । सज्जो भव विलम्बेन त्वया संत्रासिता नराः॥५१
इत्युक्त्वा तौ समालग्नौ योद्धुं संक्रुद्धमानसौ । धरन्तौ च महाधाष्टर्यं शब्दसंभिन्नपर्वतौ ॥५२
जघ्नतुर्घनघातेन बाहुजेन परस्परम् । वज्रमुष्टिप्रपातेन चूर्णयन्तौ शिलामिव ॥५३
चरच्चरणघातेन मारयन्ता मदोद्धतौ । क्षेपिष्ठौ क्षिप्रमावीक्ष्य क्षिपन्तौ सुक्षितौ क्षणात् ॥५४
युयुधाते सुयोद्धारौ भीमौ भीमनिशाचरौ । तावता खचरो योद्धुमुत्तस्थे च हिडिम्बया ॥५५
विडम्बयितुमारेभे हिडिम्बां तां स मण्डिताम् । आह खेचरि कोऽन्यस्त्वां मय्यहो परिणेष्यति॥
तद्दोर्धारणधीरत्वं यावद्धत्ते खगेश्वरः । तावज्जघान तं भीमो मुष्ट्या दक्षिणदोर्भुवा ॥५७

होकर तूने अनेक मनुष्योंको कष्ट दिया है । इस प्रकारका वज्रघोषके समान महाघोष–भीमकी बडी गर्जना सुनकर रात्रीमें चोरके समान भ्रमण करनेवाला वह भयंकर पिशाच भीमके ऊपर चढकर आया । जिसका रूप काला है, अथवा यमके समान जिसका दर्शन है, जिसका मुख काला है,. जो कोपसे निष्ठुर है, ऐसा वह पिशाच किलकिल शब्द करता हुआ लढनेके लिये उद्युक्त हुआ ॥ ४६–५० ॥ [युद्धकजन्म] भीमने कहा, कि " हे पिशाचपते, युद्धके लिये उद्युक्त तू युद्धमें अर्थात् युद्धके लिये तैयार हो । दीर्घ कालसे तूने अनक मनुष्योंको दुःख दिया है " ऐसा बोलकर वे दोनोंभी क्रोधसे व्याप्त होगये । उन दोनोंमें अत्यंत उद्धतपना उत्पन्न हुआ । जब ये जोरसे बोलने लगे तब पर्वतोंसे प्रतिध्वनि उत्पन्न होने लगे । वे दोनों युद्ध करने लगे । जैसे वज्रकी मुष्टिके आघातसे शिला चूर्ण विचूर्ण की जाती है वैसे वे दोनों अपने बाहुके कठिण आघातसे अन्योन्यको खूब पीटने लगे । भीम और पिशाच दोनों मदसे उद्धत हुए थे । चंचल चरणोंके आघातसे वे अन्योन्यको मारते थे, और अन्योन्यको देखकर जमीनपर जल्दी जल्दी जोरसे चतुरतापूर्वक अपने चरणोंका आघात करते थे । भयंकर ऐसे भीम और पिशाच दोनोंभी चतुरयोद्धा थे । वे आपसमें लडने लगे । इतनेमें वह विद्याधर हिडिम्बाके साथ युद्ध करनेके लिये उद्युक्त हुआ । अलंकृत हुई हिडम्बाको उसने पीडा देनेका आरंभ किया । वह उससे बोला कि ' हे विद्याधरि, ऐसा कौन है जो मेरे यहां विद्यमान होनेपर भी तुझसे विवाह करेगा ? ऐसा बोल कर विद्याधर हिडिंबाका हाथ पकडनेका साहस कर रहा था; इतनेमें भीमने दाहिने हाथकी मुट्ठीसे उसके ऊपर आघात किया । तथा भीमने पुनः क्रोधसे पिशाचके पीठपर आघात किया, जिससे वह दुष्ट जमीनपर गिर पडा । तोभी पुनः वह उठ गया । तब विद्याधरने पिशाचको वहांसे हठाया और भीमके सामने युद्धोद्यत होकर उसको कष्ट देनेके लिये तयार होकर लढाई शुरू की । पिशाचका पैर खींचकर

निशाचरः पुनः क्रोधात्पृष्टो तेन हतस्तदा। अस्रपो निस्रपः पाप्मा पतितोऽपि समुत्थितः ॥
क्रव्यादं तं समुत्सार्य खेचरो भीमसन्मुखम्। युयुधे युद्धसंबद्धो विधुरं कर्तुमुद्यतः ॥ ५९
क्रव्यादक्रममाक्रम्य पादघातेन पातितः। क्रव्यादो भीमसेनेन पृष्टौ संचूर्णितः क्षणात् ॥
खेचरोऽपि क्षणार्धेन चूर्णितस्तेन भूभुजा। दुःखीभूतो बलातीतः कृतोऽभूत्परवेपथुः ॥६१
ततः प्रणम्य भीमेशं संक्षमाप्य खगेश्वरः। सिद्धविद्योऽगमद्गेहं गृहीत्वा तद्गुणान्परान् ॥६२
समुत्थितेन ज्येष्ठेन हिडिम्बाडम्बरेण च। आपादिता सुभीमेन सहपाणिप्रपीडनम् ॥६३
तया सह सुखं भेजे पावनिर्विपुलं वरम्। सर्वे ते तत्र संतस्थुर्दीर्घघस्रानघातिगाः ॥६४
हिडिम्बा तेन भुञ्जाना भोगान्गर्भं दधौ वरम्। पूर्णे काले सुतं लेभे ज्ञास्यमानपराक्रमम् ॥
अयोजयत्सुतं भीमः प्रवरं घुट्टकाख्यया। लक्षणैर्व्यञ्जनैः पूर्णं स सुतः प्रथितो भुवि ॥६६
ततस्ते निर्गतास्तूर्णं नृपाः सत्वरमानसाः। भीमाख्यं विपिनं प्रापुः परमश्वापदाकुलम् ॥६७
यत्रास्ते दुर्धरो दुष्टो विपत्कारी सुजन्मिनाम्। भीमासुर इति ख्यातो भुजदण्डबली महान् ॥
कुर्वन्कलकलारावं विरावघनगर्जितः। निर्जगाम निजस्थानात्स तान्वीक्ष्य समागतान् ॥६९
जगाद तांस्तदा देवः किमर्थं यूयमागताः। आस्माकीनं वनं वेगादपूतं कर्तुमिच्छवः ॥७०

भीमराजाने लात मारी, और उसको गिराया तथा उसकी पीठका राजाने क्षणात् चूर्ण कर डाला। तदनंतर विद्याधरकोभी भीमसेनने तत्काल खूप पीटा। तब वह दुःखित हुआ। उसकी सब शक्ति गलित हुई और वह थरथर कांपने लगा। तदनंतर उस विद्याधरने भीमराजको प्रणाम किया, और क्षमायाचना की। उसी समय उसको विद्याप्राप्ति हुई, और वह उसके गुणोंको ग्रहण कर अपने घरको चल दिया ॥ ५१–६२ ॥ जागकर उठे हुए ज्येष्ठ भाई युधिष्ठिरने आडम्बरसे भीमके साथ हिडिम्बाका विवाह करवाया। हिडिम्बाके साथ भीम विपुल और उत्तम सुख भोगने लगे। पापसे दूर रहनेवाले युधिष्ठिरादिक सब भाई उस वनमें बहुत दिन सुखसे रहे। भीमके साथ भोगोंको भोगती हुई हिडिम्बाने उत्तम गर्भको धारण किया, और पूर्ण काल होनेपर जिसका पराक्रम जगतमें प्रसिद्ध होनेवाला है, ऐसे पुत्रको जन्म दिया। उस उत्तम पुत्रको भीमने घुट्टक नामसे योजित किया अर्थात् उसका 'घुट्टक' नाम रक्खा। लक्षण और व्यंजनोंसे पूर्ण वह घुट्टक पुत्र इस संसारमें प्रसिद्ध हुआ ॥ ६३–६५ ॥ [भीमासुरमर्दन] तदनंतर वे पाण्डव भूपाल उस वनसे निकले और त्वरायुक्त चित्तसे 'भीम' नामक वनमें जा पहुंचे। वह अतिशय क्रूर सिंहादि हिंस्र पशुओंसे भरा हुआ था। उस वनमें भीम नामक असुर रहता था। उसको वश करना कठिन था। वह दुष्ट था। अच्छ स्वभाववाले प्राणियोंको वह सताता था। उसके बाहुमें प्रचण्ड बल था। पाण्डवोंको आये हुए देखकर वह असुर अपने स्थानसे बाहर आया। मेघकी गर्जनाके समान कल कल शब्द करने लगा। वह देव इस प्रकार उन पाण्डवोंसे भाषण करने लगा। "हे मनुष्यों तुम यहां क्यों आये हो? क्या

न समर्थो नरः कोऽस्ति य आयातो वनं मम। भो मनुष्याः कथं पादरजसा मलिनीकृतम् ॥
भीमो भीमासुरं वीक्ष्य तदाचख्यौ विचक्षणः। कथं गर्जसि वर्षाभूवद्वृषो वा खलो यथा ॥७२
वयं पूताः सदाचारा मनुष्यत्वात्सुचक्रिवत्। मनुष्यत्वं सदापूतं तीर्थकृच्चक्रिविष्णुवत् ॥७३
यद्यस्ति विपुला शक्तिस्तद्देहि देहि संगरम्। दर्शयाम्यसुरत्वस्य फलं प्रविपुलं किल ॥७४
इत्युक्त्वा बाहुयुगलप्रधनं कर्तुमुद्यतौ। भीमभीमासुरौ तौ च मल्लाविव महोद्धतौ ॥७५
युयुधातेऽङ्घ्रिघातेन कम्पयन्तौ वसुंधराम्। त्रासयन्तौ मृगेन्द्रादीन्निर्घोषणरणे तकौ ॥७६
दुष्टमुष्टिप्रघातेन चूर्णितोऽसुरसत्तमः। भीमेन निर्मदीचक्रे सुदन्तीव मृगारिणा ॥७७
प्रणम्य चरणौ तस्यासुरोऽगाद्दासतां गतः। तेऽपि तूर्णं वनात्तस्मान्निर्गता गमनोत्सुकाः ॥
ततस्ते क्रमतः प्रापुः पुरं श्रुतपुरं परम्। तत्र चैत्यालये चित्राः प्रतिमाः पूजिताश्च तैः ॥७९
क्षणमास्थाय ते तत्र निशि वासाय सत्वरम्। वणिग्गेहं समाजग्मुः शयनं कर्तुमिच्छवः ॥८०
तत्कुट्यां कुटिलायां ते विकटाः संकटापहाः। तस्थुः कथां प्रकुर्वाणाश्चैत्यचैत्यालयोद्भवाम् ॥

यह हमारा वन शीघ्र अपवित्र करनेकी तुम्हारी इच्छा है ! इस मेरे वनमें कोई मनुष्य आनेमें समर्थ नहीं है। परंतु तुम आये हो। तुम कौन हो ? बोलो ? हे मनुष्यों तुमने आकर मेरा वन अपनी चरणधूलीसे क्यों अपवित्र किया है ?" ॥ ६६–७१ ॥ उस समय भीमासुरको देखकर चतुर भीमने कहा 'हे असुर मडकके समान क्यों टरटर कर रहे हो। अथवा दुष्ट बैलके समान क्यों डुर डुर करते हो ? तीर्थकर और चक्रवर्तिके समान मनुष्य होनेसे हमही पवित्र और सदाचारी है। तीर्थ-कर, चक्रवर्ती और विष्णुके समान मनुष्यत्व हमेशा पवित्र है। यदि तुझमें विपुल सामर्थ्य हो तो आ जा और हमारे साथ लढ। आज तुझे असुरपनेका फल कैसा होता है सो मैं निश्चयसे दिखाता हूं ॥ ७२–७४ ॥ तब वे दोनों बाहुयुद्ध करनेके लिये उद्युक्त हुए। वे भीम और भीमासुर दो मल्लोंके समान अतिशय उद्धत थे। चरणोंके आघातसे पृथ्वीको थरथराते हुए और अपनी गर्जनासे सिंहादिको भय उत्पन्न करते हुए वे दोनों-भीम और भीमासुर रणमें लडने लगे। दुष्ट ऐसी मुष्टियोंके आघातसे वह श्रेष्ठ भीमासुर भीमने चूर्णित किया अर्थात् वज्रके समान मुष्टियोंके आघातसे भीमने उसको व्याकुल कर दिया। जैसे सिंह बडे हाथीको मदरहित करता है, वैसे भीमने उसको निर्मद किया। तब असुरने उसके चरणोंको प्रणाम किया, और उसका वह दास हुआ। तब आगे जानेके लिये उत्सुक वे पाण्डवभी उस वनसे आगे शीघ्र चल दिये ॥ ७५–७८ ॥ तदनंतर वे पाण्डव क्रमशः चलकर सुंदर श्रुतपुर नामक नगरमें गये। वहां उन्होंने जिनमंदिरमें अनेक जिन-प्रतिमाओंका पूजन किया। क्षणपर्यन्त वहां रहकर वे रात्रिमें मुक्काम करनेके लिये निद्राकी इच्छासे एक वैश्यके घरमें आगये। संकटोंको हटानेवाले शूर पाण्डव उस टेढे मेढे घरमें जिनप्रतिमा और जिन-मंदिरकी कथा कहते हुए ठहर गये। उतनेमें संध्याके प्रारंभमें उस वैश्यकी स्त्री शोक करने लगी।

तावत्संध्यामुखे वैश्यवनिता विललाप च। दुःखिता दैन्यतो दीनं विलपन्ती महाशुचा ॥८२

तदा कुन्ती कृपाक्रान्ता तामाश्वास्य गतान्तिकम्।
अप्राक्षीत्खेदसंखिन्नां बाष्पाकुलविलोचनाम् ॥ ८३

कथं रोदिषि रे बाढं गाढं शोकसमाकुला। अब्रीभणद्वणिग्भार्या श्रूयतामत्र कारणम् ॥८४
अत्र श्रुतपुरे श्रीमान्बको नाम महीपतिः। बकवद्वृषहीनात्मा लोकपालनकोविदः ॥८५
पललासक्तचित्तेन मतिर्दध्रे पलेऽनिशम्। सूपकारः सदा दत्ते तिरश्चां तस्य मांसकम् ॥८६
हन्ति हन्त हतात्मा स तिरश्चां समजं तदा। संस्कृत्य पललं तस्मै दत्ते दीनो दयातिगः ॥
एकदा पशुमांसस्यालाभतः पाककारकः। तदानीं मृतिमापन्नं बालं गर्तस्थमानयत् ॥८८
तदामिषं च संस्कृत्य संपच्य पचनोत्सुकः। सूपकारः सुभूपायार्पयत्खादितुमञ्जसा ॥८९
भूपोऽपि तरसं तूर्णमदित्वा सरसं मुदा। सहर्षः सूपकारं तं न्ययुङ्क्त रसनाहतः ॥९०
पाककार शुभं पक्कं तरसं तरसा कुतः। आनीतं स्वाददं रम्यं न दृष्टं चेह ब्रूहि भोः ॥९१
अभयं याचयित्वासौ बभाण भयभीतधीः। नरक्रव्यमिदं राजन्दत्तं तुभ्यं विपच्य च ॥९२

वह वैश्यस्त्री दारिद्र्यसे दुःखी थी और महाशोकका कारण मिल जानेसे अधिक शोक करने लगी कुन्तीको उसका शोक सुनकर दया आई। वह उसको आश्वासन देकर उसके पास गई। जिसकी आंखें अश्रुओंसे भरी हुई थी, जो खेदसे खिन्न थी, ऐसी वैश्यवधूको उसने पूछा कि तुम गाढ शोकसे व्याप्त होकर इतना अधिक क्यों रो रही हैं? कुन्तीका प्रश्न सुनकर उस वैश्यपत्नीने इस विषयमें जो कारण है वह सुनो मैं कहती हूं ऐसा कहा ॥७९--८४॥ [बकनृपकथा] इस श्रुतपुर-नगरमें लक्ष्मीसंपन्न बक नामक राजा है। बगुलेके समान धर्महीन है। मांसभक्षणमें आसक्तचित्त होनेसे हमेशा मांसमें उसने अपनी बुद्धि लगाई है। उसका एक रसोईया था। वह उसे दररोज पशुपक्षियोंका मांस खिलाता था। वह निर्दयी हीनात्मा दीन रसोइया सदा पशुओंका समूह मारता, और उसका मांस पकाकर राजाको देता था। एक दिन रसोईयाको पशुमांस नहीं मिला तब उसने उसी दिन मरे हुए बालकको गढेमेंसे निकाला। घरमें लाकर पकानेमें उत्सुक होकर उसके मांसमें हींग, मिर्चे, नमक, आदिक पदार्थ मिलाकर अर्थात् इन पदार्थोंसे संस्कृत करके उसने वह मांस पकाया और राजाको शीघ्र खानेको दिया। राजाभी उस सरस मांसको खाकर हर्षित हुआ। जिह्वालंपट होकर उसने रसोईयाको पूछा--हे रसोईया, शुभ ऐसा मांस शीघ्र तूने पकाया। वह तुझे कहांसे मिला। आज-कासा स्वाद देनेवाला सुंदर मांस पूर्वमें कभी मैंने यहां नहीं देखा था। अतः उसका वृत्तान्त कहो। जिसकी बुद्धि भय-युक्त हुई है, ऐसे रसोईयाने अभयदानकी याचना की। अभय मिलनेपर वह कहने लगा कि "--हे राजन् आज मैंनें आपको मनुष्यका मांस पकाकर खिलाया है--" राजाने कहा, हे रसोईया, संस्कारसे संस्कृत हुआ यह मांस बहुत अच्छा था। हे सूपकार मुझे हमेशा मनुष्यका मांसही

ब्रूते स्म भूपतिर्भव्यं क्रव्यं संस्कृतिसंस्कृतम्। मार्त्यं मद्यं महीयाश्च देयं तृप्तिकरं सदा॥९३
सूपकारस्ततो वीथ्यामित्वा डिम्भान्सुखेलितान्। मेलयित्वा ददौ स्वाद्यं खाद्यं तेभ्यः समोदकम्
गच्छत्सु तेषु स सूपकारः पाश्चात्यबालकम्। गृहीत्वा मारयित्वा च ददौ तस्मै च तत्पलम्॥
प्रतिवासरमेवं स कुर्वाणः कौतुकैर्जनैः। दृष्टः पृष्टो नृपेणैतत्कारितं चेत्यवीवदत्॥९६
ततः संमन्त्र्य सर्वैस्तैर्निष्कासितस्ततो बकः। स वने मारयत्याशु स्थित्वा लोकाननेकशः॥
ततो विमृश्य तत्रस्थैर्नरैरिति निबन्धनम्। चक्रेऽस्मै पुरुषो देय एकैकं प्रतिवासरम्॥९८
एवं निबन्धने जाते गेहे गेहे दिने दिने। एकैकः पुरुषं दत्ते स्वदिनेऽस्मै जनोऽखिलः॥९९
द्वादशाब्दा गता एवमद्य मत्पुत्रवासरः। समागतोऽस्ति तेनाहं संरोदिमिं सुदुःखतः॥१००
अद्यैव स्यन्दने खाद्यं निवेश्य मत्सुतेन च। भुक्त्वा महिषसंयुक्तं दास्यते सकलैर्जनैः॥१०१
ममैकस्तनयस्तन्वि किं करिष्यामि तद्धतौ। किं मे न स्फुटति स्वान्तं न जाने केन हेतुना॥

तदा कुन्ती कृपाक्रान्ता शान्तयित्वा वणिग्वधूम्।
उवाच चतुरालापा चिन्तन्ती तत्सुखोदयम्॥ १०३

पकाकर दे। उससे मुझे संतोष प्राप्त होता है॥८५-९३॥ तदनंतर रसोईया मार्गमें जाकर खेलनेवाले बालकोंको एकत्र करके मोदकोंके साथ स्वादवाले खाद्य पदार्थ दररोज देने लगा। वे बालक मोदकादि लेकर अपने घरमें जाते थे, परंतु पीछे रहे हुए बालकको पकडकर रसोईया ले जाता था, और मारकर उसका मांस राजाको खानेके लिये देता था। दररोज वह इस प्रकारसे बालकोंको मिठाई देता, और पीछेके एक बालकको ले जाकर मारता था। आश्चर्यचकित लोगोंने एकबार देखा और उन्होंने रसोईयाको पूछा। तब राजाने मुझे ऐसा कार्य करनेके लिये कहा है, ऐसा उत्तर उसने दिया। तब सर्व लोगोनें विचार कर बकराजाको गाममेंसे निकाल दिया-निर्वासित कर दिया। तदनंतर बकराजा वनमें रहकर अनेक लोगोंको हमेशा मारने लगा ॥ ९४-९७॥ तदनंतर उस नगरके लोगोंने विचार करके ऐसा निर्बन्ध किया, कि इस बकराक्षसको दररोज एक एक मनुष्य देना चाहिये, इस प्रकारका निबध होनेपर सर्व लोग दररोज अपना अपना दिन आनेपर अपने अपने घरमेंसे एक एक मनुष्य देने लगे। इस प्रकारसे आजतक बारा वर्ष हुए हैं। आज मेरे पुत्रका दिन आया है। उसको बकराक्षसके लिये देना पडेगा। इस लिये मैं दुःखसे रो रही हूं 'आजही मेरा पुत्र रथमें खाद्यपदार्थोंको रखकर भैसोंके साथ लोगोंके द्वारा दिया जानेवाला है। मुझे एकही पुत्र है। उसके मर जानेपर मैं क्या करूं। मेरा हृदय क्यों नहीं फूटता। किस हेतुसे वह इतना मजबूत बना है, मैं नहीं समझती" ॥ ९८-१०२॥ तब दयासे जिसका मन व्याप्त हुआ है, ऐसी कुन्तीने वैश्यपत्नीको सान्त्वना दी, और चतुर भाषा करनेवाली उसने उसके सुखकी प्राप्तिका विचार करते हुए एसा कहा। "हे वैश्यपत्नी तुम मत डरो, दिवस ऊगनेपर तुम्हारे पुत्रके रक्षणमें

वणिग्वधु न भेतव्यं दिवसे समुपस्थिते। मनोरथ करिष्याम्युपायं त्वत्पुत्ररक्षणे ॥१०४
दास्यामि मत्सुतं भूतबल्यर्थं रूपभासुरम्। मन्दिरे नन्दनस्तेऽद्यानन्दादानन्दतु निश्चितम्॥१०५
इत्युक्त्वा सा गता कुन्ती यत्रास्ते पावनिः सुतः। समुत्थाय स तां वीक्ष्य ननाम तत्पदाम्बुजम्॥
क्षणं स्थित्वा स्थिरा साप्यगदीद्गद्गदया गिरा। बकवृत्तं च निःशेषं निःशेषस्वान्तहारिणी ॥
पावने शृणु शान्तः सन्नस्या एकोऽस्ति सत्सुतः। यातुधानाय सल्लोकैर्दास्यते बलये ह्य सः॥
दुःखिनीयं सदादुःखा सुतवित्तविवर्जिता। हते सुते वराकी च किं करिष्यति सर्वदा ॥१०९
अद्य रात्रौ स्थिता यूयमस्या वेश्मनि विस्मिताः। प्राघुण्र्यमनया नीता विनीता वसनोदकैः ॥
परोपकारिणो यूयं परोपकृतिसिद्धये। अस्या जीवन्सुतो गेहे यथा तिष्ठेत्तथा कुरु ॥१११
मनुष्यराक्षसश्चायं लोकानत्ति निरन्तरम्। निर्दयो वारणीयस्तु त्वया कम्रकृपात्मना ॥११२

कुन्त्युक्तं पावनिः श्रुत्वा जगौ कार्यकदम्बकृत्।
अम्बैतत्किं त्वया प्रोक्तं यतस्त्वत्सेवकोऽस्म्यहम् ॥ ११३

त्वद्वचःपालनायाशु यातुधानबलिकृते। तद्वासरं विनाद्याहं संयास्यामि च सत्वरम् ॥११४

मैं मेरे पुत्रसे आज उपाय योजना करूंगी। मैं उस बकराक्षसको बलिदान देनेके लिये मेरा रूपसे तेजस्वी पुत्र दूंगी। आजसे तेरा पुत्र तेरे मन्दिरमें निश्चयसे आनन्दपूर्वक रहेगा" ऐसा बोलकर जहां उसका भीमपुत्र था, वहां वह गई। माताको आई हुई देखकर भीमने ऊठकर उसके चरण-कमलोंकी वन्दना की। क्षणतक वह मौनसे रही अनंतर संपूर्ण लोगोंके मनको हरण करनेवाली कुन्ती गद्गदवाणीसे बकराक्षसका संपूर्ण वृत्तान्त कहने लगी ॥ १०३–१०७ ॥ "हे भीम शान्त होकर सुन। इस वैश्यपत्नीको एक सज्जन लडका है। आज वह यहांके सज्जनलोगों द्वारा बलिके लिये दिया जानेवाला है। यह दुःखिनी वैश्यपत्नी पुत्र और धनसे रहित होगी और हमेशा दुःखी हो जावेगी। इसका पुत्र मर जानेपर यह दीन स्त्री सर्वदा कैसे जियेगी? आज रात्रीमें तुम लोग इसके घरमें ठहरे हो, नम्रतासे इसने तुम्हारी पाहुनगत की है। वस्त्र जल देकर तुम्हारा इसने सत्कार किया है। हे भीम, तुम लोग परोपकारी हो। परोपकारकी सिद्धिके लिये इसका पुत्र घरमें जैसा जीकर रहेगा वैसा प्रयत्न करो। यहां बकराजा मनुष्यराक्षस है। यह लोगोंको दररोज खाता है। सुंदर दयाको धारण करनेवाले तेरे द्वारा यह निर्दय बक, ऐसे नरभक्षणात्मक हिंस्र कार्यसे हटाया जाना चाहिये"॥१०८- ११२॥ [बकराक्षस मर्दन] कुन्तीका भाषण सुनकर अनेक कार्य करनेवाला भीम माताको कहने लगा कि"माता यह तुमने क्या कहा अर्थात् जो तुमने कहा वह कुछ बडा और कठिन कार्य नहीं है। यह तो मैं शीघ्र करूंगा। हे माता मैं तेरा आज्ञाधारक सेवक हूं तेरे वचनके पालनार्थ मैं राक्षसबलिके लिये वैश्यपुत्रका दिन नहीं होता तो भी आज मैं सत्वर जानेवाला हूं। उत्तम न्यायकी बातें जाननेवाले, वार्ताके स्वामी ऐसे वे माता पुत्र इस प्रकारसे उत्तम भाषण कर रहे

इति मातृसुतौ तत्र तन्वानौ जल्पमुत्तमम्। आसाते किंवदन्तीशौ यावत्सुन्यायकोविदौ ॥
तावदाकारणं तस्याः सुतस्य समुपस्थितम्। एह्येहीति प्रकुर्वाणैः संकृतं तलरक्षकैः ॥११६
भो वणिग्वर वेगेन तद्बल्यर्थसुसिद्धये। शकटारोहणं कृत्वा त्वमागच्छ समुद्यतः ॥११७
विलम्बेन बलेनापि न सेत्स्यति हितं तव। किं क्लिश्नासि क्षणस्थित्यै स्वात्मानं त्वं त्वरां कुरु
इत्युक्तं पावनिः श्रुत्वा प्रोवाच तलरक्षकान्। यात यात समेष्यामि तस्मै दास्यामि मद्बलिम्॥
श्रुत्वा तद्वचनं सर्वे तलरक्षास्त्वरान्विताः। समवर्तिभुजिष्याभा यावजग्मुः सहर्षिताः॥१२०
तावता भानुमान् प्राच्यामुदितो वेदितुं यथा। तच्चरित्रं कृपाक्रान्त आयाति वीक्षितुं हि तत्॥
ततः सज्जीकृतं तेन शकटं विकटं परम्। कटाहमात्रनैवेद्यैः पूर्णं सत्तूर्णतां गतम् ॥१२२
पावनी रथमारुह्य निर्भयो भीतिदारुणः। चचाल चञ्चलश्चित्रं दाहको वायुमित्रवत् ॥१२३
बकाख्यो दानवस्तावद्दृष्ट्वा तं विपुलोदरम्। आयान्तं संमुखं क्षिप्रमयासीत्समवर्तिवत् ॥
भीमस्तं राक्षसं वीक्ष्य कलयन्तं ककुप्चयम्। क्रुद्धं कलकलारावं कुर्वाणं सोऽगदीदिति ॥
आगच्छागच्छ दैत्येन्द्र ददाम्यद्य महाबलिम्। आलोक्य भुजदण्डस्य बलं प्रविपुलं तव ॥
एतावत्कालपर्यन्तं हता हन्त त्वया नराः। वराका दन्तसंलग्नतृणा नश्यन्त एव च ॥१२७

थे। इतनेमें उस वैश्यपत्नीके लडकेको बुलावा आया। कोतवालोंने उसके लडकेको जल्दी आनेके लिये कहा। "हे श्रेष्ठ वैश्य बकके बलिके सिद्ध्यर्थ वेगसे गाडीपर आरोहण कर। तयारीसे आ जाना। यदि तुमने विलंब किया अथवा कुछ सामर्थ्य दिखाया तोभी तुम्हारा हित सिद्ध नहीं होगा। थोडेसे क्षणतक जीनेके लिये क्यों अपनेको कष्ट दे रहे हो? तुम अब जलदी करो" ॥ ११३–११८ ॥ ऐसे वचन सुनकर कोतवालोंको वायुपुत्र बोला कि, "जाओ, जाओ, मैं आऊंगा और बकराक्षसको मेरा बलि समर्पण करूंगा–" उसका भाषण सब तलरक्षकोंने सुना, और यमदूतके समान वे त्वरासे हर्षित होकर चले गये। इतनेमें पूर्वदिशामें मानो बकराक्षसका चरित जाननेके लिये सूर्य उदित हुआ। दयालु होकर उस दृश्यको देखनेके लिये मानो वह आ रहा था ॥ ११९–१२१ ॥ तदनंतर उसने बडी गाडी सज्ज की, कढाईभर अन्न उसमें रखा, इस तरह जल्दी पूर्ण तयारी की। भीतिको भयंकर, निर्भय भीम रथपर चढकर जलानेवाले अग्निके समान चलने लगा। उतनेमें बकराक्षस उस भीमको अपने सम्मुख आते हुए देखकर यमके समान शीघ्र आगया। सब दिशाओंको देखते हुए, कलकल शब्द करनेवाले क्रोधयुक्त बकराक्षसको देखकर वह भीम उसको इस प्रकार कहने लगा– "हे दैत्येन्द्र आओ, आओ, आज तुम्हारे भुजदण्डका विपुल बल देखकर तुम्हें मैं महाबलि अर्पण करता हूं। हे बकराक्षस, आजतक तुमने जिन्होंने अपने दांतोंमें तृण पकडा है, ऐसे दीन भागनेवाले बहुत आदमी मारे हैं, यह खेदकी बात है"। क्रोधसे उन्मत्त वे दोनों मनुष्य खम ठोककर भिड गये। अपने हृदयसे आकाशको फाडनेवाले और अपने दो बाहुओंके मध्यभागको पीटनेवाले

ततस्तौ करमास्फाल्य लग्नौ क्रोधोद्धुरौ नरौ। दारयन्तौ हृदाकाशं स्फोटयन्तौ भुजान्तरम्॥
मस्तकैर्मस्तकैर्मत्तौ प्रहरन्तौ परस्परम्। पद्भ्यां पद्भ्यां महाघातं ददानौ सदयातिगौ॥
कूर्परैः कूर्परैः कोपात्स्फोटयन्तौ शिरस्तदा। एवं युद्धे प्रवृत्तौ तौ समवर्तिसुताविव॥१३०
भीमस्तं तृणवन्मत्वा भुजदण्डेन मूर्धनि। जघान घस्मरं दुष्टं कृतघ्नं कोपकम्पितम्॥१३१
पुनः कोपेन तत्पृष्ठौ दत्त्वा पादं दयातिगः। पापिनं पातयामास तं भीमो भुवि निर्दयम्॥
गृहीत्वा चरणौ तस्याभ्रामयद्वसुधातले। नभोभागे भयत्यक्तो स आस्फोटयितुं यथा॥
ततो बद्ध्वा भयक्रान्तं समक्षं सर्वजन्मिनाम्। सेवकं सेवकीकृत्य पादलग्नं मुमोच सः॥१३४
ज्ञात्वा तत्संगरं शीघ्रमायाता नगरीनराः। वीक्षन्ते स्म तयोर्युद्धं क्रोधसंबद्धभागिनोः॥
बकं च निर्मदीभूतं विमुखीभूतमानसम्। नरघातात्समालोक्य नरा हर्षमुपागताः॥१३६
जना जयारवं चक्रुर्भणन्तो भक्तिनिर्भराः। तत्प्रशंसनमाभेजुस्ततो जीवनमानिनः॥१३७
त्वं कोऽपि महतां मान्यो जगदानन्ददायकः। यशसा धवलीकुर्वञ्जगत्त्वं जय सज्जन॥
अतः प्रभृति जीवामो वयं लोका निराकुलाः। त्वत्प्रसादाद्यथा मेघात्तृणानि सुमहामते॥१३९
इति स्तुत्वा ददुर्दक्षा धनकोटिं सुधान्यकम्। तस्मै श्रीभीमसेनाय भक्ताः किं न प्रकुर्वते॥

वे अन्योन्यके मस्तकपर प्रहार करने लगे। तथा निर्दय होकर लातोंसे अन्योन्यको जोरसे आघात करनेवाले वे लडने लगे। अपने हाथोंके कोपरोंसे कोपसे अन्योन्यका मस्तक फोडने लगे। इस प्रकार वे यमके पुत्रोंके समान युद्धमें प्रवृत्त हुए॥ १२२-१३०॥ खूप खानेवाला, दुष्ट और कृतघ्न वह बकराजा कोपसे थरथर कँप रहा था। भीमसेनने उसे तृणके समान समझकर बाहुदण्डसे उसके मस्तकपर प्रहार किया। दयाको छोडकर भीमने पुनः उसके पीठपर पैर देकर उस पापीको उसने जमीनपर पटक दिया। भयका जिसने त्याग किया है, ऐसे भीमने उसके दोनों पैर पकडकर जमीनपर पटकनेके लिये आकाशमें घुमाया। तदनंतर भययुक्त उस बकराजाको सर्व मनुष्योंके सामने बांधकर और चरणोंमें गिरे हुए उसे अपना सेवक बनाकर भीमने छोड दिया॥ १३१-१३४॥ उन दोनोंका युद्ध हो रहा है, यह जानकर नगरके मनुष्य शीघ्र आकर क्रोधसे भरे हुए उन दोनोंका युद्ध देखने लगे। मनुष्यघात करनेके कार्यसे जिसका मन विमुख हुआ है, ऐसे मदरहित बकको देखकर लोग उस समय हर्षित हुए॥१३५-१३६॥ भीमसे अपना जीवन स्थिर रहा है ऐसा माननेवाले, भक्तिसे भरे हुए, आपसमें बोलनेवाले लोग भीमका जयजयकार करने लगे, और उसकी उन्होंने प्रशंसा की। "हे सज्जन तू महापुरुषोंको मान्य ऐसा अपूर्व पुरुष है। तू जगतको आनंदित करनेवाला है। जगतको यशसे शुभ्र करनेवाला तू उत्कर्षशाली हो। उत्तम और महामति जिसकी है ऐसे हे महापुरुष, मेघसे जैसे तृणका जीवन होता है वैसे आपकी कृपासे हम लोग आजसे निराकुल होकर जीयेंगे" ऐसी स्तुति कर उन चतुर लोगोंने श्रीभीमसेनको कोटिधन और उत्तम धान्य

तेन वित्तेन ते भक्ता जिनचैत्यालयं मुदा। अकारयन्पुरे तत्र पाण्डवाः परमोदयाः॥१४१
घनाघनस्तदा तत्र वर्षन् धारा धराधरान्। धरां च छादयामास पयःपूरैः सुखप्रदैः॥
उष्णतायं निराकर्तुं प्रोद्गतो हि घनाघनः। स्ववैरिणं निराकर्तुं को नोदेति महानरः॥१४३
पन्थानं च समासाद्य जलं जलधरोऽमुचत्। सर्वलोकान्सुखीकर्तुमायात इव भूतले॥ १४४
वर्षाकालं समावीक्ष्य पाण्डवास्तत्र संस्थिताः। धर्मध्यानं प्रकुर्वन्त आचतुर्मासकं मुदा॥१४५
क्षणे क्षणे क्षणं क्षिप्रं कुर्वन्तो मेघकालजम्। स्वकारिते जिनेशस्य चैत्यवेश्मनि संस्थिताः॥
प्रावृट्कालं समाप्याशु ततस्ते पाण्डुनन्दनाः। कम्पयन्तो धरां पादैश्चेलुः कुन्त्या समन्विताः॥
क्रमेण पावनीं प्रापुः ख्यातां चम्पापुरीं नृपाः। कर्णो यत्र महीनाथो राजते राजसिंहवत्॥
कुम्भकारगृहे तत्र शुम्भत्कुम्भसुशोभिते। चक्रचक्रसमाक्रान्ते तस्थुस्ते पाण्डुनन्दनाः॥१४९
विनोदनोदितो भीमो भ्रामयंश्चक्रमुत्तमम्। तत्र द्रष्टुं मनः क्षिप्रं चक्रे स्थासादिकां क्रियाम्॥
आस्फोटयत्स्फुटारम्भो राभस्येन स पावनिः। उदञ्चनमहाकुम्भस्थालीकरकसद्घटीः॥१५१
तत्प्रस्फोटनजं स्पष्टं स्फोटं प्रस्पष्टमानसा। कुन्ती श्रुत्वा प्रकोपेन भीमं भीत्या न्यवारयत्॥

दिया। योग्यही है, कि भक्त क्या नहीं करते? ॥ १३७-१४० ॥ भक्त और परम उन्नतिवाले उन पाण्डवोंने उस नगरमें आनंदसे उस धनसे जिनचैत्यालय निर्माण कराया ॥ १४१ ॥ उस समय मेघोंने खूब वर्षा की। उन्होंने सुख देनेवाले जलप्रवाहोंसे पृथ्वी और पर्वतको आच्छादित किया। ॥१४२॥ उष्णतासे होनेवाला संताप नष्ट करनेके लिये आकाशमें मेघ उत्पन्न होता है। योग्यही है कि, अपने शत्रुको नष्ट करनेके लिये कौन महापुरुष उत्पन्न नहीं होता है। अर्थात् वीर पुरुष शत्रुका नाश करनेके लिये सदैव प्रयत्नशील होते हैं। मार्गका आश्रय कर मेघने पानीकी वर्षा की। ऐसा दीखता था मानो सर्व लोगोंको सुखी करनेके लिये वह आया है। वर्षाकालको देखकर चार महिनेतक धर्मध्यान करनेवाले पाण्डव वहां आनंदसे रहने लगे। वे पाण्डव प्रत्येक पर्वतिथिके दिन वर्षाकालका उत्सव स्वनिर्मित जिनमंदिरमें करते हुए वहां ठहरे ॥१४३-१४६॥ [कुम्हारके घरमें पाण्डव निवास] वर्षाकाल समाप्त होनेपर वे पाण्डुपुत्र माता कुन्तीके साथ अपने चरणोंसे पृथ्वीको कंपित करते हुए वहांसे शीघ्र चले। प्रयाण करते करते वे प्रसिद्ध और पवित्र चम्पापुरीको आये। वहां कर्ण राजा राज्य करता था। वह राजाओंमें सिंहके समान शोभता था। चम्पापुरीमें सुंदर कुम्भोंसे सुशोभित और चक्रोंके समूहसे भरे हुए कुम्हारके घरमें वे पाण्डव ठहरे ॥१४७-१४९॥ उत्तम चक्रको घुमानेवाला, विनोद प्रेरित भीमने चक्रके ऊपर स्थास, कोश, कुशूल, इत्यादि कुंभकी परिणति देखनेकी इच्छा की। बडी गडबडीसे प्रगट कार्यका आरंभ करनेवाले भीमने मिट्टीके ढक्कन, बडे कुंभ, अन्न पकानेके स्थाली, झारी और छोटा घडा आदि पदार्थ फोड दिये। उनको फोडनेसे होनेवाला स्पष्ट शब्द, जिसका मन स्पष्ट है अर्थात् सावधान है ऐसी कुन्तीने सुना। तब कुपित होकर भीतिसे

भीम भीम त्वयाकृत्यं किं कृतं चपलात्मना । प्रयासि यत्र यत्र त्वं तत्रानर्थं करोषि वै ॥१५३
चञ्चलौ चौद्धतौ दोषौ सदोषौ दूषणावहौ । तव नित्यं प्रदुष्टस्य शिष्टाचारातिगस्य च ॥१५४
उपालम्भं समाश्रित्य जनन्या मौनमाश्रितः । निर्जगाम ततो भीमः सुसीमोल्लङ्घनोद्यतः ॥
भक्ष्यकारापणं प्राप पूपोत्करविराजितम् । पूतात्मा पावनिस्तत्र भोक्तुकामोऽतिकोविदः ॥
देहि कान्दविकान्नं मे हिरण्येन हठात्मना । भ्रातरोऽत्र बुभुक्षाभिर्यतः सन्ति सुदुःखिनः ॥
तुष्टः कान्दविको यावदन्नं दातुं समुद्यतः । हिरण्यदानतः कोत्र न तुष्यति महीतले ॥१५८
तावद्बुभुक्षितं भीममस्थापयत्स्थिरासने । भक्ष्यकारः सुभक्ताढ्यो भोजनाय सभाजनम् ॥१५९
भीमो बुभुक्षितः सर्वं भुक्तवान्मोदकादिकम् । अन्नमाकण्ठपर्यन्तं तत्र किञ्चिन्नचोद्धृतम् ॥
भ्रात्रर्थं देहि मे भक्तमिति निर्धाटितो वणिक् । अवशिष्टं न विद्येत किं देयमिति भीतिभाक् ॥
क्षणार्धेन प्रदास्यामीति च कान्दविकस्तदा । प्रणम्य तत्पदं भक्त्यातोषयत्पावनिं परम् ॥
तावताङ्कुशमुल्लङ्घ्य कर्णदन्तावलो वरः । मदोन्मत्तो महाकायो भङ्क्त्वालानं विनिर्ययौ ॥
पातयन्नापणान्रम्यगृहान्वृक्षान्पुरःस्थितान् । उच्छालयच्छलाच्छित्त्वा दन्ताभ्यां द्विरदो बली

भीमको उस अकार्यसे निवारण किया। "हे भीम हे भीम, चपल स्वभाववाले तूने यह क्या अकार्य कर डाला है। तू जहां जहां जाता है वहां वहां अनर्थ करता है। तू हमेशा दुष्टता करता है और शिष्टाचारका उल्लंघन करता है। तेरे दो हाथ चंचल, उद्धत दोषयुक्त और दोष करनेवाले हैं"। जब माताने ऐसी निंदा की तब भीमने मौन धारण किया और सुमर्यादाका लंघन न करनेमें उद्युक्त वह वहांसे निकल गया ॥ १५०-१५५ ॥ भक्ष्य तयार करनेवाले हलवाईके दुकानपर भोजनकी इच्छा करनेवाला अतिचतुर, पवित्रात्मा भीम आगया। "हे हलवाई, मैं सोनेकी मुहर तुझे देता हूं। तू मुझे अन्न दे। क्यों कि मेरे भाई इस नगरमें भूखसे अतिशय व्याकुल हुए हैं। आनंदित हुए हलवाईने अन्न देनेकी तैयारी की। सोनेकी मुहर मिलनेपर कौन आनंदित नहीं होगा? उसने प्रथमतः भूखे हुए भीमको दृढ आसनपर बैठाया। हलवाईने भक्तिसे भीमके आगे भोजनके लिये पात्र रख दिया और भूखे हुए भीमने सर्व मोदकादि पदाथ खा डाले। उसने आकण्ठ भोजन किया हलवाईकी दुकानमें कुछभी खानेकी चीज नहीं रहीं। अब मेरे भाईयोंके लिये मुझे अन्न दे' ऐसा क्रोधसे भीमने हलवाईको कहा। तब भययुक्त हलवाईने कहा कि 'अन्न कुछभी नही बचा। मैं कहांसे देऊं। फिरभी क्षणार्द्धमें मैं दूंगा, ऐसा हलवाईने कहा। उसने भीमको नमस्कार कर उसको अतिशय सन्तुष्ट किया ॥ १५६-१६२ ॥ उस समय अंकुशको उल्लंघ कर कर्णराजाका उत्तम मदोन्मत्त, बडे शरीरका हाथी खंबेको मोडकर गांवमें घूमने लगा। अपने आगेकी दूकानें, रम्य घरों, और वृक्षोंको गिराने लगा। वह बलवान् हाथी अपने दो दांतोंसे लोगोंको फाडकर ऊपर फेंकने लगा। सब नगरको व्याकुल करता हुआ और मागम लोगोंको भीतीसे थर थर कँपाता हुआ

नगरं व्याकुलीकृत्य कुर्वन्पथि सुवेपथुम् । श्रुतो भीमेन सत्कर्णे स आजग्मे तदन्तिकम् ॥१६५
रक्ष रक्षेति कुर्वाणा जनाश्च श्रीवृकोदरम् । प्रोचुः शरणमापन्ना भयकम्पितविग्रहाः ॥१६६
भवता बलिना विप्र रक्ष्येयं विपुला प्रजा । यतस्त्वं बलिनां मान्यो नाम्नासि विपुलोदरः ॥
ततः सोऽपि समुत्तस्थे गजं जेतुं मदोद्धरम् । वज्रघातनिभेनाशु मुष्टिघातेन ताडयन् ॥१६८
पद्भ्यां संचूर्णयन्पादाञ्शुण्डादण्डं विखण्डयन् । दन्तावुन्मूलयन्भीमो निर्मदं च चकार तम् ॥
तदा कश्चिन्नृपं गत्वा न्यवेदयदिति स्फुटम् । देवैकेन सुविप्रेण प्रचण्डेन गजो हतः ॥१७०
यो रणे शत्रुभिः शक्यो गजः साधयितुं न हि । सोऽनेन क्षणतो नीतो निर्मदत्वं महाबलात् ॥
स त्वया देव निग्राह्यो विग्रहेण विना छलात् । ब्रुवन्तमिति कर्णेशस्तं निवार्य सुखं स्थितः ॥
तत्र ते जयमापन्ना नीत्वा कालं च कंचन । निर्गताः पाण्डवाः प्रापुर्वैदेशिकपुरं पराम् ॥
नृपो वृषध्वजो यत्र वृषध्वजो विराजते । दिशावली प्रिया तस्य दिशाव्याप्तमहायशाः ॥
दिशानन्दा महाशुद्धा तयोरासीत्सुता वरा । जघनस्तनभारेण गच्छन्ती लीलया च या ॥
तत्र तान्पाण्डवान्मुक्त्वा संगतान् श्रमसंगतान् । शेषान्बुभुक्षितान्भीमः पुरं भिक्षार्थमाययौ ॥

घूमने लगा। यह वार्ता भीमके कानपर आकर पडी, और वह हाथी भीमके पास आगया। उस समय भयसे जिनका शरीर कँप रहा है और हमारी रक्षा करो। हमारी रक्षा करो ऐसे बोलनेवाले लोग श्रीवृकोदर भीमको शरण आये "हे विप्र तू बलवान् है। इन विपुल प्रजाका इस समय रक्षण कर। क्यों कि तूं बलवान लोगोंमें मान्य है और नामसे विपुलोदर है" ॥ १६३–१६७ ॥ तदनंतर वह भीमभी मदोत्कट हाथीको जीतनेके लिये तयार हुआ। वज्रके आघात सरीखी मुष्टिओंसे ताडन करनेवाले, अपने पावोंसे हाथीके पावोंका चूर्ण करनेवाले और शुण्डादण्डको तोडनेवाले तथा उसके दातोंको उखाडनेवाले उस भीमने उस हाथीको मदरहित किया ॥१६८–१६९॥ उस समय किसी मनुष्यने राजाके पास जाकर इस प्रकार कहा, कि, "हे देव एक प्रचण्ड ब्राह्मणने हाथी मार दिया, जो कि शत्रुओंके द्वारा रणमें जीता जाना शक्य नहीं था। उस ब्राह्मणने अपने महासामर्थ्यसे क्षणमें उसे निर्मद किया। हे देव आप युद्धके विना छलसे उसका निग्रह करें। ऐसे बोलनेवाले उस मनुष्यका कर्णराजाने निवारण किया और वह सुखसे रहने लगा ॥ १७०–१७२ ॥

[भीमका दिशानंदा राजकन्याके साथ विवाह] उस चम्पानगरीमें जयको प्राप्त हुए पाण्डव कुछ कालतक ठहरकर वहांसे निकले, और उत्तम वैदेशिक नगरको वे पहुंच गये। उस नगरीका बैलकी ध्वजा धारण करनेवाला वृषध्वज नामक राजा वहां विराजमान था। जिसका महायश दिशाओंमें व्याप्त हुआ है, ऐसी दिशावली नामकी प्रिय रानी थी। उन दोनोंको अतिशय पवित्र और सुंदर 'दिशानंदा' नामक कन्या थी। जो कि जघन और स्तनोंके भारसे लीलासे गमन करती थी ॥ १७३–१७५ ॥ जिनको श्रम हुआ है ऐसे भूखे बाकीके सब

विप्रवेषधरो धीमान्भीमो भव्यगुणाम्बुधिः । भिक्षार्थं भूपसद्माग्रे ययौ बलकुलाकुलः ॥१७७
तदा गवाक्षसंरूढा दिशानन्दा शुभानना । तं निरीक्ष्य निजे चित्तेऽचिन्तयच्चेति निर्भरम् ॥
किमयं मन्मथो मानी नररूपं समाश्रितः । भिक्षाछलात्समायातो नान्यश्चेदृग्विधो भवेत् ॥
मेषोन्मेषविनिर्मुक्तां तदासक्तां नृपस्तदा । ज्ञात्वा तां दातुमुद्युक्तः समाकारयति स्म तम् ॥
अप्राक्षीद्भूपतिर्विप्र किमर्थमागतोऽसि भोः । भिक्षार्थं चेद्गृहाण त्वं कन्याभिक्षां ममाग्रहात् ॥
इत्युक्त्वा तां महारूपां नानाभरणभूषिताम् । तस्याग्रे धृतवान्भूयो दिशानन्दां सुनन्दिनीम् ॥
भीमोऽभाणीत्तदा राजन्नाहं वेद्मि च वेत्ति वै । मज्ज्येष्ठसोदरः क्वास्ते स भूप इत्यबीभणत् ॥
पुरोपान्ते स्थितश्चेति भीमवाक्यान्महीपतिः । ज्ञात्वाभ्यर्णं चचालाशु तस्य भीमेन संयुतः ॥
युधिष्ठिरसमीपं च गत्वा नत्वा समाहितः । पप्रच्छ कुशलं स्नेहादन्योन्यं स्नेहसंगतः ॥१८५
अभ्यर्थ्य ते पुरं नीता राज्ञा भोजनभक्तितः । आवर्जितः समर्ज्याशु सुखं तस्थुः पुरे वरे ॥
भीमेन सह कन्याया विवाहार्थे युधिष्ठिरः । अभ्यर्थितो नृपेन्द्रेण तथेति प्रतिपन्नवान् ॥१८७

पाण्डवोंको छोडकर भीम भिक्षाके लिये नगरमें आगया। ब्राह्मणवेषके धारक विद्वान्, सुंदर, गुणोंका समुद्र, बलसमूहसे भरा हुआ- महाबली, भीम भिक्षाके लिये राजाके घरके आगे आया। ॥ १७६–१७७ ॥ उस समय सुंदर मुखवाली दिशानंदा राजकन्या खिडकीमें बैठी थी, भीमको देखकर वह अपने मनमें इस प्रकार गाढ चिन्ता करने लगी। "क्या मनुष्यरूप धारण किया हुआ यह अभिमानी मदन है ? क्यों कि भिक्षाके निमित्तसे आया हुआ दूसरा व्यक्ति "इतना सुंदर नहीं हो सकता।" नीचे और ऊपर जिसकी पलकें नहीं होरही हैं ऐसी अर्थात् निश्चल पलकोंवाली अपनी कन्याको देखकर राजाने 'इस ब्राह्मणपर यह कन्या आसक्त हुई है' ऐसा जाना और उसको देनेके लिये उसने उस ब्राह्मणको अपने प्रासादमें बुलाया ॥ १७८–१८० ॥ राजाने 'हे ब्राह्मण आप किस लिये आये हैं ऐसा पूछा, भिक्षाके लिये आये हो तो मेरे आग्रहसे इस कन्यारूपी भिक्षाका स्वीकार कीजिए" ऐसा बोलकर अनेक अलंकारोंसे भूषित महासुंदर दिशानन्दा कन्याको उसके आगे राजाने खडा करा दिया ॥ १८१–१८२ ॥ उस समय 'हे राजन् मैं इस विषयमें कुछ नहीं जानता हूं, मेरा ज्येष्ठ भ्राता जानता है' ऐसा भीमने कहा। आपका ज्येष्ठ भाई कहां है ऐसा राजाने फिर पूछा, 'नगरके समीप रहा है' ऐसे भीमके वाक्यसे जानकर उसके साथ राजा युधिष्ठिरके पास शीघ्र गया ॥ १८३-१८४ ॥ राजाने युधिष्ठिरके समीप जाकर आनंदसे नमस्कार किया। और अन्योन्यके स्नेहसे युक्त होकर प्रेमसे कुशल प्रश्न पूछे। राजा प्रार्थना करके उन पाण्डवोंको नगरमें ले गया। उसमें भोजनकी भक्तिसे उनका आदर किया। आदरका स्वीकार कर वे उस नगरमें सुखसे रहने लगे। राजाने भीमके साथ कन्याके विवाहके लिये युधिष्ठिरको प्रार्थना की तब युधिष्ठिरने राजाको अनुमति दी ॥ १८५–

ततस्तयोः शुभे लग्ने विवाहमकरोन्नृपः । पुण्याद्भिक्षागतेनैव लब्धा तेन सुकन्यका ॥१८८
राज्ञा भक्तिभरेणाशु प्रीणितास्तोषमागताः । कियद्दिनानि ते स्थित्वा निर्जग्मुस्तत्र पाण्डवाः ॥
ततः सोमोद्भवां रम्यां सरितं पाण्डुनन्दनाः । उत्तीर्य खेदनिर्मुक्ताः प्रापुर्विन्ध्याचलं वरम् ॥
दूरतस्तत्समुत्तुङ्गशृङ्गसङ्गी जिनगृहम् । अष्टापदे यथा स्वर्णे नानाशोभासमन्वितम् ॥१९१
दृष्ट्वा ते गन्तुमुद्युक्तास्तत्र श्रान्ता अपि स्वयम् । आरुरुहुर्महोत्तुङ्ग शृङ्गं विन्ध्याभिधाचलम् ॥
तत्र हर्षप्रकर्षेण प्रकृष्टाः पाण्डुनन्दनाः । चैत्यालयं महाशालशुम्भच्छोभाविराजितम् ॥१९३
स्वर्णसोपानपङ्क्त्याढ्यं नानावनविराजितम् । दत्ताररमहाद्वारं शुम्भत्स्तम्भसुशोभितम् ॥
समालोक्य समुद्विग्ना अभवन्भयवर्जिताः । तत्प्रवेष्टुमशक्तास्ते क्षणं खेदेन संस्थिताः ॥१९५
ततो भीमः समुत्थाय द्वारोद्घाटनसद्धिया । द्वारे दत्त्वा करं वेगात्कपाटमुदघाटयत् ॥१९६
मध्येगृहं प्रविष्टास्ते कुर्वन्तो जयनिःस्वनम् । स्वर्णरूप्यमयान्बिम्बान्ददृशुः श्रीजिनेशिनः ॥
पूजयित्वा फलैः पुष्पैरनर्घ्यैरर्घ्यदानतः । जिनांस्ते तुष्टुवुस्तुष्टा विशिष्टेष्टगुणोत्करैः ॥१९८
अद्यैव सफलं जन्म गतिरद्यैव सार्थका । अद्यैव सफले नेत्रे जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥१९९

१८७ ॥ तदनंतर शुभ लग्नमें राजा वृषध्वजने भीम और दिशानन्दाका विवाह किया। भीमको पुण्योदयसे भिक्षाको जाते हुए उत्तम कन्याकी प्राप्ति हुई। राजाने अतिशय भक्ति करके संतुष्ट किये हुए पाण्डव और कुछ दिनतक वहीं ठहर गये अनंतर वे वहांसे आगे प्रयाण करने लगे ॥ १८८–१८९ ॥

[भीमके द्वारा जिनमंदिरोद्घाटन] पाण्डुपुत्र तदनंतर सुंदर नर्मदा नदीको तैरकर खेदरहित होते हुए वे उत्तम विंध्यपर्वतको प्राप्त हुए। कैलास पर्वतपर नाना शोभाओंसे युक्त ऊंचे शिखरोंसे सहित जैसे सुवर्णरचित जिनमंदिर है, वैसा जिनमंदिर विन्ध्यपर्वतपर दूरसे देखकर वे पाण्डुराजाके पुत्र थके हुए थे, तो भी विन्ध्यपर्वतके अतिशय ऊंचे शिखरपर चढने लगे। उसपर वह चैत्यालय ऊंचे तटकी चमकनेवाली कांतिसे रमणीय दिखता था। सुवर्णरचित सीडियोंकी पंक्तिसे सुंदर दीखता था। उसके आसपास अनेक प्रकारके वन होनेसे उसकी शोभा बढ गयी थी। उसका दरवाजा बडा था और उसके किवाड बंद थे। वह सुंदर खंबोंसे सुशोभित था। उसे देखकर भयरहित पाण्डव अतिशय हर्षित हुए, परंतु उसमें प्रवेश करनेमें वे असमर्थ होनेसे खिन्न होकर कुछ देर चुप बैठे। तदनंतर द्वार खोलनेकी सद्बुद्धिसे ऊठकर भीमने दरवाजेपर हाथ लगाकर जोरसे उसके किवाड खोले ॥ १९०–१९६ ॥ पाण्डव जिनमंदिरमें प्रवेश करके जय जय जय ऐसे शब्द करते हुए जिनेश्वरकी सुवर्णकी और चांदीकी प्रतिमायें भक्तिसे देखने लगे। उन्होंने अनर्घ्य–उत्कृष्ट ऐसे पुष्पोंसे और फलोंसे उनकी पूजा की और अर्घ्य देकर विशिष्ट और इष्ट ऐसे गुणोंके द्वारा वे जिनेश्वरोंकी स्तुति करने लगे ॥ १९७–१९८ ॥ "हे प्रभो जिनेन्द्र, आपके दर्शनसे

अद्य त्वच्चिन्तनासक्तं स्वान्तं सुश्रान्तिवारकम् । सफलं विपुलं जातं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥
अद्यैव सफलाः पादा अद्यैव सफलाः कराः । अद्यैव सफला भावा जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥
अद्य जाता वयं धन्या अद्य मान्या मनोहराः । अद्य निःश्रेयसं प्राप्ता जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥
ते स्तुत्वेति जिनान्नत्वा बहिरित्वा क्षणं स्थिताः । यावत्तावत्समायासीद्यक्षः श्रीमाणिभद्रकः ॥
नत्वावोचत्तदा यक्षो यूयं धन्या नरोत्तमाः । विवेकिनः सदा श्रेष्ठा विशिष्टा गुणसंपदा ॥
जिनचैत्यालयद्वारसमुद्घाटनतो मया । यूयं पुण्यतमा ज्ञातास्तथा योगीन्द्रवाक्यतः ॥२०५
इत्युदीर्य महाधैर्यधारिणे शौर्यशालिने । गदां भीमाय दत्ते स्म यक्षः शत्रुक्षयंकराम् ॥२०६
यन्नामतो रणाद्यान्ति शत्रवः संगरोद्यताः । भयं याति यतो नृणां गदवृन्दं यथौषधात् ॥२०७
रत्नवृष्टिं ततश्चक्रे वस्त्राभरणसन्मणीन् । यक्षेट् दत्ते स्म पञ्चभ्यस्तेभ्यो भक्तिप्रणोदितः ॥२०८
अनवद्यां महाविद्यां दस्युदर्पापहां गदाम् । समादाय दरोन्मुक्तास्तस्थुस्ते तत्र पाण्डवाः ॥

जयति जितविपक्षः संगरे शुद्धपक्षो नरपतिगणवन्द्यः सर्वहर्षोऽनवद्यः ।
सुगतियुवतिलाभैर्लब्धिलीलाभिशोभैर्युत इह वरभीमः सर्वसौख्याभिसीमः ॥२१०

आजही हमारा जन्म सफल हुआ। आजही हमारी गति--मनुष्यगति सार्थक हुई। तथा आजही हमारे दो नेत्र कृतकृत्य हुए।" "हे प्रभो जिनपते, आज आपके दर्शनसे आपके गुणोंकी चिन्तामें आसक्त हुआ हमारा मन सफल हुआ है, और महत्त्वशील बना है। हे जिनेश्वर आपके दर्शनसेही हमारे भाव निर्मल हुए हैं। प्रभो जिनवर, आज हम धन्य हुए हैं। आज हम लोगोंके मन हरण करनेवाले मान्य हुए हैं। आज हम मुक्तिको प्राप्त हुए हैं"॥ १९९--२०२ ॥

[भीमको यक्षसे गदालाभ] इस प्रकारसे स्तुति कर पाण्डव जिनेश्वरको वंदन कर बाहर आकर कुछ देर बैठ गये। उतनेमें माणिभद्र नामका यक्ष वहां आया, उसने उनको नमस्कार किया और आप धन्य हैं, श्रेष्ठ पुरुष हैं, आप विवेकी, श्रेष्ठ और गुणसंपत्तिसे सदैव विशिष्ट हैं। जिनचैत्यालयके द्वार खोलनेसे आपको मैंने महा पुण्यशाली जाना है। तथा योगीन्द्रके उपदेश-सेभी मैंने आपको पुण्यशालीपना जाना है ऐसा बोलकर महा धैर्यवान् और शौर्यशाली भीमराजाको शत्रुओंको क्षय करनेवाली गदा यक्षने दी॥ २०३--२०६ ॥ जैसे औषधसे मनुष्योंके रोगसमूह नष्ट होते हैं। वैसे इस गदाका नाम सुननेसे युद्धके लिये उद्युक्त शत्रु रणसे भाग जाते हैं। मनुष्योंका भय इसके नामश्रवणसे नष्ट होता है। ऐसा कहकर यक्षने उनके ऊपर रत्नवृष्टि की और भक्तिप्रेरित होकर उन पांचो पाण्डवोंको उसने वस्त्रालंकार और उत्तम रत्न दिये। शत्रुओंका दर्प नष्ट करनेवाली निर्दोष महाविद्या तथा गदाको धारण कर वे पाण्डव वहां निर्भय होकर रहने लगे॥ २०७--२०९ ॥ युद्धमें शत्रुओंको जीतनेवाला, शुद्ध जाति व कुल शुद्धिको धारण करनेवाला, राजसमूहसे वन्द्य, सब लोगोंको हर्षित करनेवाला, निष्पाप, अनेक

योनिर्भर्त्स्य निशाचरं वरगतिं विद्याधरं च भृशम्
नानायुद्धशतैः खगेशतनयां लब्ध्वा हिडिम्बां प्रियाम्।
छित्त्वा दन्तिमदं वृषध्वजसुतामाप्त्वा गदाख्यायुधम्
लेभे श्रीविपुलोदरो जिनगृहद्वारं समुद्घाटयन् ॥ २११ ॥

इति श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपाल-
साहाय्यसापेक्षे भीमपाण्डवकन्याद्वयप्राप्तिघुटुकसुतोत्पत्तिगजवशी-
करणगदालाभवर्णनं नाम चतुर्दशं पर्व ॥ १४ ॥

। पञ्चदशं पर्व ।

शीतलं शीललीलाढ्यं शीतलं ललिताङ्गकम् । लसल्लक्ष्मीविशालं च स्तुवे श्रीवृक्षलाञ्छनम् ॥१

लाभरूपी लीलाओंकी शोभासे युक्त, संपूर्ण सौख्योंकी सीमाको प्राप्त हुआ, उत्तम गतियुक्त स्त्रियोंके लाभोंसे युक्त यह उत्तम भीम सदा जयवंत रहे ॥ २१० ॥ जिसने वटवृक्षमें रहनेवाला पिशाच और उत्तम गति जिसकी है ऐसे विद्याधरको अनेक युद्धोंके द्वारा निर्भर्त्सित किया अर्थात्-पराजित किया, तथा जिसने विद्याधरराजाकी कन्या हिडिंबाके साथ विवाह किया अर्थात् हिडिंबाकी प्राप्ति जिसे हुई, जिसने कर्णके हाथीका मद नष्ट किया और वृषभध्वज राजाकी कन्या प्राप्त की, तथा जिनमंदिरके दरवाजे खोलनेसे माणिभद्र यक्षसे गदाकी प्राप्ति जिसे हुई वह श्रीविपुलोदर अर्थात् भीम सदा जयवंत रहे ॥ २११ ॥

ब्रह्म श्रीपालजीकी सहायता लेकर शुभचन्द्र-भट्टारकजीने रचे हुए भारत नामक पाण्डव-
पुराणमें भीमसेनको दो राजकन्याओंके साथ विवाह होना, घुटुकपुत्रकी प्राप्ति
होना, गज वश करना और गदाकी प्राप्ति होना इनका वर्णन करनेवाला
चौदहवा पर्व समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

[पर्व पन्द्रहवां]

जो शीतलनाथ-जिन शीललीलासे परिपूर्ण थे अर्थात् अठारह हजार शीलोंका पालन करते थे, जिनके अवयव सुंदर थे इसलिये जो शीतल अर्थात् लोगोंके नेत्रोंको अह्लादक थे, जो सुंदर अनंतचतुष्टयरूपी लक्ष्मीसे विशाल थे और जिनका लाञ्छन श्रीवृक्ष था-ऐसे श्रीशीतल जिनेश्वरकी मैं स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

अथ धर्मात्मजो राजा यक्षं पक्षीकृतं जगौ । हेतुना केन भीमाय त्वया दत्तं गदायुधम्॥२॥
तदावोचत्सुपक्षाढ्यो यक्षो रक्षितशासनः । शृणु भूप वदाम्येतत्कारणं दत्तिसंभवम् ॥ ३ ॥
मध्येभारतमुत्तुङ्गो विजयार्धो महाचलः । पूर्वापराब्धिसंस्पर्शी मानदण्ड इवापरः ॥४
पञ्चविंशतिरुत्तुङ्गः पञ्चाशद्विस्तृतो यकः । सपादषड्गतो मूले योजनानां महागिरिः ॥५
यश्च श्रेणिद्वयं धत्ते दक्षिणोत्तरभेदगम् । तत्र दक्षिणसच्छ्रेण्यौ नगरं रथनूपुरम् ॥६
तत्पतिः पातितानेकविपक्षो मेघवाहनः । तत्प्रिया प्रीतिदा प्रीतिमती नाम्नाऽभवद्वरा ॥७
घनवाहनसंसेव्यस्तत्सुतो घनवाहनः । विद्यासाधनसंसक्तो विक्रमाक्रान्तशात्रवः ॥८
राज्यविस्तीर्णतां वाञ्छन्विपक्षान्क्षेप्तुमुद्यतः । गदासिद्धिकरीविद्यासिद्ध्यै विन्ध्याचले गतः ॥
तत्र साधयतो विद्यां चिरं तस्याभवद्गदा । सिद्धा सुविद्यया सिद्धा प्रसिद्धा च जगत्त्रये ॥१०
चतुर्णिकायदेवौघा गच्छन्तो व्योम्नि तत्क्षणे । दृष्टा विद्याधरेशेन विद्याविभववासिना ॥११
इमे कुत्र सुरा यान्ति गगने केन हेतुना । इति पृष्टः सुरः कश्चित्तेनोवाच महामनाः ॥१२

[गदाप्रदानकी कथा] धर्मसुत राजा युधिष्ठिरने धर्मपक्षको धारण करनेवाले यक्षको पूछा। हे यक्ष, तुमने किस हेतुसे भीमको गदायुध दिया, कहो। तब धर्मपक्षमें तत्पर रहनेवाला, जिनशासनकी जिसने रक्षा की है, ऐसा यक्ष बोला, कि हे राजन् गदा देनेका कारण मैं कहता हूं आप सुनिए। इस भरतक्षेत्रके मध्यमें 'विजयार्द्ध' नामक बडा ऊंचा पर्वत है। पूर्व और पश्चिम समुद्रको स्पर्श करनेवाला वह मानो पृथ्वीको मापनेके दण्डके समान दीखता है। वह महापर्वत पच्चीस योजन ऊंचा है, पचास योजन विस्तृत और सवाछह योजन मूलमें है। यह पर्वत दक्षिण और उत्तर–भेदवाली दो श्रेणियाँ धारण करता है अर्थात् दक्षिण-श्रेणी और उत्तर-श्रेणी ऐसी दो श्रेणियाँ इस पर्वतपर हैं, उस दक्षिणश्रेणीमें रथनूपुर नामका नगर है ॥२-६॥ जिसने अनेक शत्रुओंका नाश किया है ऐसा मेघवाहन विद्याधर दक्षिणश्रेणीका स्वामी है। उसके प्रियपत्नीका नाम प्रीतिमति था। वह प्रेम करनेवाली और स्त्रियोंमें श्रेष्ठ थी। इन दोनोंको घनवाहन नामक पुत्र हुआ वह विपुलवाहनोंका अधिपति था। उसने अपने पराक्रमसे अनेक शत्रुओंको परास्त किया था और विद्यासाधनमें वह आसक्त था। अपने राज्यका विस्तार चाहनेवाला और शत्रुओंको पराजित करनेके लिये उद्युक्त वह घनवाहनराजा गदाकी प्राप्ति करानेवाली विद्याकी सिद्धिके लिये विन्ध्याचलपर गया। उस पर्वतपर दीर्घकालतक विद्याकी सिद्धि करनेवाले उस विद्याधरको सुविद्यासे गदा सिद्ध हुई। वह विद्या सिद्ध थी और जगत्त्रयमें प्रसिद्ध थी। अर्थात् वह विद्या अनादिकालसे थी और जगतमें उसकी सर्वत्र ख्याति थी ॥ ७-१० ॥ विद्याका वैभव धारण करनेवाले उस विद्याधीशने आकाशमें उसी क्षण भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी देवोंको–चतुर्णिकाय–देवोंको जाते हुए देखा और ये देव आकाशमें किस हेतुसे कहां जारहे हैं ऐसा किसी एक देवको पूछा तब

शृणु खेचर विन्ध्याद्रौ केवलज्ञानसंभवः । क्षमाधरयतीन्द्रस्यात्राभूद्भुवनभासकः ॥१३
वयं तं वन्दितुं यामो लिप्सवो बोधसंपदम् । चिकीर्षवः सुकल्याणं धर्मामृतपिपासवः ॥१४
तच्छ्रुत्वा खेचरः सोऽपि प्रगत्य तत्क्रमाम्बुजम् । वन्दित्वा धर्मपीयूषं पपौ पापपराङ्मुखः ॥
निर्विण्णो भवभोगेषु जिघृक्षुः संयमं परम् । स प्रार्थयन्मुनिं दीक्षां क्षमाक्षिप्तक्षमः क्षमी ॥१६
गदाविद्या तदागत्य तमुवाच विचक्षणम् । अस्मत्साधनसंक्लेशं त्वं चकर्थ कृतार्थवित् ॥१७
सुसिद्धायाः फलं तस्या गृहाणागमकोविद । अन्यथा क्लेशसंपत्तिर्विहिता च कथं त्वया॥१८
प्रौढा दृढा गदाविद्या संगरे जयकारिणी । कीर्तिलक्ष्मीप्रदा दिव्या नानाभोगप्रसाधिनी ॥
कथं संसाधिता सिद्धा चेत्कथंकथमप्यहो । त्वं तत्फलं गृहाणाशु गम्भीरो भव सर्वथा ॥
यत्प्रभावात्सुपर्वाणो भवन्ति भृत्यसंनिभाः । अन्येषां का कथा नृणां विरक्तस्तेन मा भवः ॥
अवादीत्स गदाविद्यां श्रुत्वेति प्रवरं वचः । एतल्लब्धं फलं त्वत्तो विद्ये यन्मुनिसंगमः ॥२२
असाधयिष्यं नो विद्यां चेदलप्सि कथं मुनिम् । अतस्त्वत्तः फलं प्राप्तं लब्धो यन्मुनिरुत्तमः

वह महामना–उदारचित्तवाला देव बोलने लगा– हे विद्याधर, विन्ध्यपर्वतपर क्षमाधर नामक मुनीश्वरको त्रैलोक्य प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है । ज्ञानसम्पदाको चाहनेवाले हम उन केवलिनाथको वन्दन करनेके लिये जा रहे हैं । धर्मरूपी अमृत पीनेकी हमें अभिलाषा है, तथा हम आत्मकल्याण करना चाहते हैं ॥ ११–१४ ॥ देवोंका उपर्युक्त भाषण सुनकर वह विद्याधरभी आकर केवलिनाथके चरणोंको वन्दन कर पापपराङ्मुख हुआ, और धर्मामृत प्राशन करने लगा। वह भव–संसार और भोगोंसे विरक्त होकर संयम धारण करनेके लिये उद्युक्त हुआ। खोदना, जलाना इत्यादि अपराधोंको सहन करनेवाली क्षमाको यानी पृथ्वीको क्षमागुणसे जीतनेवाले क्षमाशील विद्याधर घनवाहनने मुनीश्वरको दीक्षाकी याचना की ॥१५-१६॥ गदाविद्या उस समय उस चतुर विद्याधरके पास आई। कृतार्थ–पुण्यकार्यको जाननेवाले हे घनवाहन, हमको सिद्ध करनेका संक्लेश तुमने उठाया है और हमारी प्राप्तिभी तुम्हें हुई है। तुम आगमके ज्ञाता हो अतः हमारे सिद्धिका फल तुम ग्रहण करो। यदि उसके फलोंको तुम नहीं चाहते हो तो इतना क्लेश तुमने उठाया ही क्यों? यह गदाविद्या प्रौढ और दृढ है, युद्धमें जय देनेवाली है। इसमें कीर्ति और लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। तथा यह दिव्य विद्या नानाभोगोंको देनेवाली है। ऐसी विद्या तुमने क्यों सिद्ध की? तुम्हें इस विद्याकी सिद्धि बडे कष्टसे हुई है, इस लिये तुम सर्वथा गंभीर होकर इस विद्याके फलका अनुभवन करो। इस विद्याके प्रभावसे देवभी नौकरसे हो जाते हैं, तो अन्य पुरुषोंकी क्या कथा है? इसलिये तुम विरक्त मत होवो ॥१७–२१॥ गदाविद्याका भाषण सुनकर वह विद्याधर उसे उत्तम भाषण बोलने लगा। हे विद्ये, मुझे जो मुनिसंगम हुआ वही मुझे तुझसे फलप्राप्ति हुई ऐसा मैं समझता हूं। यदि मैं विद्याकी सिद्धि नहीं करता तो मुझे मुनिराजकी प्राप्ति कैसे होती? मुझे जो उत्तम मुनिकी

तं निश्चलं परिज्ञाय विद्या प्रोवाच सद्गिरा। मां प्रसाध्य नरेन्द्राद्य मा त्याक्षीस्त्वं विचक्षण॥
अहं स्वस्थानमुत्सृज्य त्वां प्राप्ता पुण्यतस्तव। मां तित्यक्षस्यहं जातोभयभ्रष्टा करोमि किम्॥
कश्चिद्राज्यं परित्यज्य दीक्षित्वा च ततश्च्युतः। यद्वत्तद्वदहं जातोभयभ्रष्टा महामते ॥२६
स तस्याः कृपणं वाक्यमाकर्ण्य कृतिनं मुनिम्। माणिभद्रोऽहमित्याख्यद्विनयी नयपेशलः॥

भविष्यति पतिः कोऽस्या विद्याया वद सत्वरम्।
सोऽवचद्यक्ष भीमोऽस्या भविता पतिरुत्तमः ॥ २८

स कः कथं पुनर्ज्ञेय इति पृष्टो मया मुनिः। जगाद जगदानन्दं विदधानः प्रमोदवाक् ॥२९
अत्रैव भरते हस्तिनागद्रङ्गे गुणोत्करः। प्रचण्डो भविता पाण्डुस्तत्सुतो भीमनामभाक् ॥३०
स सत्रं भ्रातृभिर्भीमः समेष्यत्यत्र वन्दनाम्। त्रैलोक्यसुन्दरे चैत्ये कर्तुं भावपरायणः ॥३१
कपाटपिहितं द्वारं यः समुद्घाटयिष्यति। गदापतिः स एवात्र भविष्यति न संशयः ॥३२
विद्याधरस्तथा चाहं श्रुत्वैवं खगनायकः। शिक्षां दत्त्वा सुविद्यायाः प्राव्राजीन्मुनिसंनिधौ॥
ततः प्रभृति तद्रक्षां कुर्वन्वो वीक्षितुं नृपान्। स्थितोऽद्यापि तथा वीक्ष्य तुष्टोऽस्मै च गदामदाम्

प्राप्ति हुई है, यही तुझसे उत्तम फललाभ हुआ ऐसा मैं समझता हूं ॥२२–२३॥ यह विद्याधर दीक्षा धारण करनेके कार्यमें दृढनिश्चयी है; ऐसा समझ विद्या मधुर भाषणसे कहने लगी, कि हे निपुण राजेन्द्र, मुझे सिद्ध करके तू मेरा त्याग मत कर। मैंने स्वस्थानको छोड दिया है। पुण्योदयसे तुझे मैंने प्राप्त किया है। यदि तू मेरा त्याग करेगा तो हे महाबुद्धिमन्, मैं उभयभ्रष्ट हो जाऊंगी। कोई पुरुष राज्यको छोडकर तप करने लगा और उससेभी वह भ्रष्ट हुआ वैसी मेरी भी परिस्थिति हुई है अर्थात् मैं उभयभ्रष्टा हुई हूं। हे महामते अब मैं क्या करू मुझे उपाय कहो॥ २४–२६ ॥ उस विद्याका दीनवाक्य सुनकर उस माणिभद्र यक्षने अर्थात् मैंने उस कृतकृत्य मुनिराजको पूछा कि "हे प्रभो, विनयवान् और नीतिचतुर ऐसा कौन पुरुष इस विद्याका स्वामी होगा? आप शीघ्र कहिए। मुनीश्वरने कहा, कि भीमसेन इस विद्याका उत्तम स्वामी होनेवाला है। मैंने फिर मुनिराजसे पूछा, कि वह कौन पुरुष है और वह कैसे जाना जायगा। मेरा प्रश्न सुनकर जगत्को आनंदित करनेवाले मुनि अपनी आनंददायक वाणीसे इसप्रकार बोलने लगे ॥२७–२९॥ इसी भरतक्षेत्रमें हस्तिनापुरमें गुणोंके समूहसे युक्त और पराक्रमी पाण्डुनामक राजा होगा और उसको भीमनामक पुत्र होगा। वह भीम अपने भाईयोंके साथ इस त्रैलोक्यमें सुंदर जिनमंदिरमें भक्तितत्पर होकर वन्दना करनेके लिये आयेगा। जिनमंदिरका, जिसके किवाड बंद है, ऐसा दरवाजा जो उघाडेगा वही गदाविद्याका स्वामी होगा इसमें संशय नहीं है ॥ ३०–३२ ॥ विद्याधरोंका अधिपति विद्याधर घनवाहन और मैं (माणिभद्रयक्ष) दोनोंने केवलिनाथका वचन सुना और 'गदाविद्याको' हम दोनोंने केवलिकथित उपदेश दिया। तदनंतर मेघवाहनने केवलिभगवानके सन्निध दीक्षा ग्रहण की ॥ ३३ ॥ तबसे

इत्युक्त्वा पूजयित्वा तान्वस्त्राद्यैर्वरभूषणैः। यक्षोऽगान्निजमावासं स्मरंस्तेषां गुणावलिम् ॥३५
ततस्ते दक्षिणान्देशान्विहृत्य हस्तिनं पुरम्। गन्तुं समुद्यताश्चासन्भुञ्जन्तो धर्मजं फलम् ॥३६
क्रमान्मार्गवशात्प्रापुर्माकन्दीं नगरीं नृपाः। स्वःपुरीमिव देवौघा बुधसीमन्तिनीश्रिताम् ॥
विशालेन सुशालेन संस्कृता भाति भूतले। भालेन भामिनी यद्वद्या सद्वर्णसमाश्रिता ॥३८
तत्र ते पाण्डवा गत्वा द्विजवेषधराः पराः। कुलालसदनं प्राप्य तस्थुः प्रच्छन्नतां गताः॥३९
पश्यन्तः पावनां पूर्णां बुधैस्तां लोकपालकैः। पाण्डवास्तोषमासेदुरमराः स्वःपुरीमिव ॥४०
तत्रास्ति भूपतिर्भव्यो द्रुपदो द्रुपदास्थिरः। सवीर्यो धैर्यसंपन्नो न जय्यो जितशात्रवः ॥४१
प्रिया भोगवती तस्य नाम्ना भोगवती सदा। भजन्ती परमान्भोगान्भूषणानि बभार या ॥
धृष्टद्युम्नादयः पुत्रास्तयोः सुद्युम्नदीपिताः। स्ववीर्याक्रान्तदिक्चक्राः शक्रा इव मनोहराः ॥

आजतक मैं उस गदाविद्याका रक्षण करता हुआ और आप राजाओंकी राह देखता हुआ यहां रहा हूं। आपका दर्शन हुआ, और संतुष्ट होकर मैंने इस भीमसेनको गदाविद्या दी है। ऐसा वृत्तान्त कहकर और उन पाण्डवोंकी वस्त्रादिक उत्तम आभूषणोंसे पूजा करके तथा उन पाण्डवोंके गुण-समूहका स्मरण करता हुआ वह यक्ष अपने स्थानको चला गया ॥ ३४–३५ ॥

[पाण्डवोंका कुम्भकारके घरमें निवास] तदनंतर वे पाण्डव दक्षिणदिशाके देशोंमें विहार कर धर्मका फल भोगते हुए हस्तिनापुरको जानेके लिये उद्युक्त हुए। देव जैसे बुधसीमंतिनीश्रित- देवांगनाओंसे युक्त स्वर्गपुरीको प्राप्त होते हैं वैसे वे पाण्डवभूपाल क्रमसे मार्गसे प्रयाण करते हुए विद्वानोंकी स्त्रियोंसे युक्त अथवा चतुरस्त्रियोंसे युक्त ऐसी माकन्दी नगरीको प्राप्त हुए। जैसे उत्तम वर्णका आश्रय लेनेवाली सुंदर स्त्री अर्थात् गौरवर्णवाली सुंदर स्त्री जैसे विशाल भालसे शोभती है, वैसे विशाल शालसे–तटसे युक्त और संस्कृत–शृंगारित वह नगरी शोभती है ॥ ३६–३८ ॥ वे द्विजवेष धारण करनेवाले उत्तम पाण्डव कुम्हारके घरको प्राप्त होकर गुप्तरूपसे रहने लगे। जैसे देव पवित्र बुधोंसे–देवोंसे पूर्ण और लोकपालोंसे- यम, वरुण, सोम, कुबेर इन दिक्पालोंसेयुक्त ऐसी स्वर्गनगरीको देखकर आनंदित होते हैं, वैसे वे पाण्डव पवित्र, विद्वानोंसे पूर्ण, लोकपाल– कोतवाल आदि राजाधिकारियोंसे युक्त माकन्दीनगरीको देखते हुए आनंदित हुए ॥ ३९–४० ॥

[द्रौपदीके विवाहार्थ स्वयंवरमण्डप] माकन्दीनगरीमें वृक्षोंके मूल जैसे स्थिर रहते हैं वैसा स्थिरप्रकृतिका द्रुपद नामका भव्य राजा था। वह वीर्यवान्, धैर्यपूर्ण, शत्रुओंसे न जीता जानेवाला और शत्रुओंको जिसने जीता है ऐसा था। अर्थात् राजा द्रुपदमें धैर्य–वीर्यादि अनेक गुण थे ॥४१॥ उस राजाकी भोगवती नामकी प्रिय पत्नी थी, वह उत्कृष्ट भोगोंको भोगनेवाली होनेसे अर्थसे और नामसे भी भोगवती थी। उसने अपने शरीरपर अनेक अलंकार धारण किये थे ॥४२॥ राजाके धृष्टद्युम्नादिक अनेक पुत्र थे। वे सुवर्णके समान तेजस्वी और अपने पराक्रमसे दिशामंडलको व्याप्त करनेवाले,

द्रौपदी च परा पुत्री तयोरासीत्सुलक्षणा। सुरूपेण गुणैश्चापि या जिगाय शचीं पराम् ॥
गत्या मरालसत्पत्नीं नखैस्तारा: सुपङ्कजम् । अङ्घ्रिणा कदलीस्तम्भं जङ्घया जघनेन च ॥
कामक्रीडागृहं स्वाण नितम्बेन शिलां पराम्। सावर्तां सरसीं नाभिमण्डलेन च वक्षसा ॥४६
कनकाद्रीतटं स्वर्णकुम्भौ नागकलङ्कितौ। स्तनाभ्यां हारपूर्णाभ्यां बाहुना कल्पशाखिकाम् ॥
वक्त्रेणेन्दुं स्वरेणैव पिककान्तां च चक्षुषा। मृगाङ्गनां सुवंशं च नासया विधिपत्रकम् ॥४८

ललाटेन धम्मिल्लेन भुजंगं या जिगाय वै।
कलाकुशलसंलीना तन्वङ्गी कठिनस्तनी ॥४९॥ पञ्चभिः कुलकम्

द्रुपदो वीक्ष्य तां पुत्रीं यौवनोन्नतिशालिनीम्। आहूय मन्त्रिणः प्राह विवाहार्थं विशांपतिः ॥
सचिवाः स्वस्वयोग्येन बोधेनोचुः परं वचः। अनेकशो वरान् दक्षान्दर्शयन्तो नृपात्मजान् ॥

कांस्कान्वीक्ष्य नृपेन्द्रोऽथ याच्ञाभङ्गभयादिति।
आह स्वयंवरः ख्यातमण्डपः क्रियतां लघु ॥ ५२

दूतानाहूय वेगेन सलेखान्प्राहिणोन्नृपः। कर्णदुर्योधनादीनामानयनार्थमञ्जसा ॥५३
सुरेन्द्रवर्धनः खेटः खगाद्रौ सुखसाधनः। नैमित्तिकं समप्राक्षीत्कन्याया वरमुत्तमम् ॥५४

इंद्रके समान मनोहर थे ॥ ४३ ॥ द्रुपदराजा व भोगवतीको-द्रौपदी नामकी उत्तम लक्षणोंवाली कन्या हुई। उसने अपनी सुंदरतासे व अपने शीलादिक गुणोंसे उत्तम इंद्राणीको जीता था। उसने अपनी गतिसे हंसकी उत्तम पत्नीको अर्थात् सुंदर हंसनीको जीता था, उसने नखोंके द्वारा तारागण, पावोंके द्वारा सुकमल, जंघासे केलेका खंभा, जघनसे सुवर्णरचित मदनका क्रीडागृह, नितम्बसे उत्तम शिला नाभिमण्डलसे भंवरोंवाला सरोवर, छातीके द्वारा सुमेरुपर्वतका तट, हारयुक्त दो स्तनोंके द्वारा दो सर्पोसे वेष्टित दो सुवर्णकलश, बाहुके द्वारा कल्पवृक्षकी शाखा, मुखसे चन्द्र, स्वरसे कोकिलकी कान्ता-अर्थात् कोकिला, नेत्रोंके द्वारा हरिणी, नाकके द्वारा उत्तम सीधा बांस, विस्तीर्ण भालसे ब्रह्मदेवका लिखा हुआ पत्र, तथा केशोंकी-वेणीके आकारकी रचनासे सर्प ये पदार्थ उसने जीते थे। वह द्रौपदी कलाओंकी कुशलतामें लीन थी, कृशशरीरा और कठिन स्तनवाली थी ॥ ४४-४९ ॥ यौवनकी उन्नतिसे शोभनेवाली उस द्रौपदी पुत्रीको देखकर राजाने मंत्रियोंको बुलाकर विवाहके संबंधमें पूछा ॥ ५० ॥ मंत्रिगण अपने अपने ज्ञानके अनुसार उत्तम विचारपूर्वक भाषण करने लगे। उन्होंने अनेक चतुर राजपुत्र वरोंको दिखाया। राजाने किसी किसीको देखा, परंतु याचनाका भंग होनेकी भीतिसे उसने मंत्रियोंको स्वयंवरमंडप रचनेकी आज्ञा दी ॥ ५१-५२ ॥ राजाने कर्ण, दुर्योधनादिक राजाओंको शीघ्र लानेके लिये दूतोंको बुलाकर उनको स्वयंवरकी निमंत्रण-पत्रिकायें देकर राजाओंके पास भेज दिया ॥ ५३ ॥ विजयार्धपर्वतपर सुरेन्द्रवर्धन नामक विद्याधरराजा सुखोंके साधनों-सहित रहता था। अर्थात् अश्व, हाथी, पत्ति, रथ, रत्नादिक सुख देनेवाली चीजें और अनेक

स समालोक्य चोवाच शृणु राजन् समासतः। माकन्द्यां यो बली ज्यायां गाण्डीववरकार्मुकम्
रोहयिष्यति ते पुत्र्या द्रौपद्याश्च जनिष्यति। वरः कोऽपि बली श्रीमान्पुण्यवान्परमोदयः ॥
इत्याकर्ण्य खगश्चायं गाण्डीवं वरकन्यकाम्। समादाय समागच्छन्माकन्द्यां कुन्दसद्यशाः ॥
अभ्येत्य द्रुपदं तत्र प्रवृत्तिं कन्यकोद्भवाम्। प्रजल्प्य जल्पवित्तस्मै ददौ गाण्डीवकार्मुकम्॥५८
ततस्तु द्रुपदो भूपो मण्डपन्यासमुत्तमम्। कुम्भकोद्भूतसत्स्तम्भं शातकुम्भसुतोरणम् ॥५९
वितानतानसंछन्नं मुक्तालम्बूषशोभितम्। नानाचित्रितसद्धेमभित्तिकापरिवेष्टितम् ॥६०
पताकापटसंछन्नगगनं नगरोपमम्। विशालाढ्यं समुत्तुङ्गमध्यवेदिमतल्लिकम् ॥६१
हटद्धाटकसंघट्टघटितं स्तम्भमञ्चकम्। अकारयज्जनाभोगभोग्यदं सुभगाकृतिम् ॥
तावता भूमिपाः सर्वे कर्णदुर्योधनादयः। यादवा मगधाधीशा जालन्धराश्च कौशलाः ॥६३
अभ्येत्य मण्डपे तस्थुर्महारूपसुशोभिनः। द्विजवेषधरास्तत्र पाण्डवाः पञ्च संस्थिताः ॥६४
तावद्द्रुपदविद्येशावित्यकारयतां वराम्। घोषणां घोषनिर्भिन्नघनघोषां सुघोषणाम् ॥

विद्यायें उसके पास थीं। उसने मेरी कन्याका उत्तम वर कौन होगा ऐसा प्रश्न पूछा। नैमित्तिकने निमित्तज्ञानसे विचारकर कहा। हे राजन् सुनिए संक्षेपसे मै आपको कहता हूं। "माकन्दीनगरीमें जो श्रेष्ठ और बलवान् पुरुष गाण्डीवनामक श्रेष्ठ धनुष्य चढायेगा वह तेरी कन्याका और द्रौपदीका वर होगा। वह बलवान्, श्रीमान्, पुण्यवान् और उत्कृष्ट अभ्युदयशाली होगा। यह उसका आदेश सुनकर कुन्दपुष्पके समान शुभ्र यश जिसका है, ऐसा वह विद्याधर गाण्डीव धनुष्य और अपनी सौंदर्यवती कन्याके साथ माकन्दीनगरीमें आया। द्रुपदराजाको अपनी कन्याके विषयमें वृत्तान्त उसने कह दिया। उत्तम वक्ता ऐसे उस विद्याधरने द्रुपदराजाको गाण्डीव धनुष्य दिया ॥ ५४–५८ ॥ तदनंतर द्रुपदराजाने उत्तम मंडपरचना की, उस मण्डपके स्तंभ सुंदर थे और उसके अग्रभागपर कुंभ लगे हुए थे। सुवर्णके तोरणसे वह सुंदर दीखता था। मण्डपमें सर्वत्र छत लगाया गया था, और उसको अनेक जगह मोतियोंके गुच्छे लगे हुए थे, उससे उसकी शोभा बढ गई थी। सुंदर नानाविध चित्रोंसे सज्जित सुवर्णभित्तियोंसे वह मंडप घिरा हुआ था। मण्डपके ऊपर लगे हुए पताकाओंके पटसे आकाश व्याप्त हुआ था। इसलिये वह मण्डप नगरके समान दीखता था। वह अनेक गलियोंसे–विभागोंसे युक्त था और उसके मध्यमें वेदी बनाई थी। चमकनेवाले सुवर्णके समूहसे बनाये हुए पैर-वाले मंचकोंसे वह मंडप शोभने लगा। वह मंडप लोगोंको विशाल सुख देनेवाला और सुंदर आकृतिका था ॥ ५९–६२ ॥ मंडप बन चुका, इतनेमें वहां महारूपसे शोभनेवाले कर्ण–दुर्योधन आदि राजा, समुद्रविजयादिक यादव राजा, मगधाधीश–जरासंधराजा, जालंधर देशका राजा, कौशल देशका राजा, ये सर्व राजा मण्डपमें आकर मंचकपर आरूढ हुए। तथा ब्राह्मण वेषधारी पांचों पाण्डवभी आकर बैठ गये ॥ ६३–६४ ॥ उस समय द्रुपद राजा और सुरेन्द्रवर्धन विद्याधर राजा

गाण्डीवकार्मुकं ज्यायामारोप्य यो विधास्यति। राधानासास्थमुक्ताया वेधं च स वरोऽनयोः॥
इति कन्याप्रतिज्ञायाः शुश्रुवुर्घोषणां घनाम्। अभ्येत्य चापमावेष्ट्य द्रोणकर्णादयस्तथा॥६७
चापं द्रष्टुमपि स्पष्टं न क्षमास्ते महीभुजः। स्पर्शनाकर्षणे तेषां कुतस्त्या शक्तिरिष्यते॥६८
तावता द्रौपदी कन्या नानाभूषणभूषिता। दुकूलपरिधानेन छादयन्ती निजां तनूम्॥६९
श्लक्ष्णकञ्चुकसंछन्नस्तनकुम्भभराश्रिताम्। रणन्नूपुरनादेन जयन्ती कामभामिनीम्॥७०
लसन्नासापुटाग्रस्थस्वर्णमुक्ताफलान्विता। उपमण्डपसद्गेहमागता तान्दिदृक्षया॥७१
तावन्नृपाः सुमञ्चस्था वीक्षन्ते स्म सुकन्यकाम्। लसल्लावण्यलीलाढ्यां वेष्टितां स्वसखीजनैः॥
धात्रीहस्तसुविन्यस्तमणिमालां मलापहाम्। कटाक्षक्षेपमात्रेण क्षिपन्तीं भूरिभूमिपान्॥७३
ते तां वीक्ष्य समुत्क्षिप्तमदना आकुलधियः। सुरूपा सुभगाकारा नास्त्यन्या चेदृशी क्वचित्
कश्चिन्मित्रेण वै सत्रं चित्रालापं सुनर्मणा। कुर्वाणः कन्यकां कम्रां कटाक्षेण स्म वीक्षते॥

इन दोनोंने अपने उत्तम, सुपुष्ट शब्दोंके द्वारा मेघगर्जनाको तिरस्कृत करनेवाली घोषणा इस प्रकारसे जाहीर की, "जो वीरपुरुष गाण्डीवनामक धनुष्यको दोरीउपर चढाकर राधाके नाकमें स्थित मोतीको विद्ध करेगा वह द्रौपदी और विद्याधर–कन्याका वर होगा"। कन्याओंकी प्रतिज्ञा की यह कडी घोषणा खडे हुए द्रोणकर्णादिकोंने सुनी और धनुष्यको घेरकर खडे हुए। वे कर्णादिक नृपाल स्पष्टतासे धनुष्यको देखनेमेंभी समर्थ नहीं हुए, तो उसको स्पर्श करना और उसका ध्वनि सुननेमें उन्हें शक्ति कहांसे आवेगी॥ ६५–६८॥

[स्वयंवरमंडपमें द्रौपदीका आगमन] उस समय बहुमूल्यदुकूलवस्त्रके परिधानसे द्रौपदीने अपना शरीर आच्छादित किया था। और अनेक अलंकारोंसे वह भूषित हुई थी। सुन्दर नाकके अग्रभागमें सुवर्णमें जडे हुए मोतिओंको उसने धारण किया था अर्थात् नाकमें 'नथ' नामक अलंकार उसने धारण किया था। वह सुंदर और सूक्ष्म कञ्चुकीसे आच्छादित हुए स्तनकुम्भोंका भार धारण करनेवाली, रुणझुण शब्द करनेवाले नूपुरके नादसे कामदेवकी स्त्रीको–रतिको जीतनेवाली थी। इसप्रकार सज धजकर वह राजाओंको देखनेकी इच्छासे मंडपके समीप उत्तम गृहमें आगई। ॥ ६९–७१॥ उस समय मञ्चकोंपर बैठे हुए राजाओंने सुंदर लावण्यकी लीलासे परिपूर्ण और सखीजनोंसे वेष्टित राजकन्याको देखा। द्रौपदीने मलरहित मणियोंकी माला धायके हाथमें दी थी। कटाक्ष फेंकनेसे ही बहुत राजाओंको घायल करनेवाली द्रौपदीको देखकर वे मदनपीडित हुए और उनकी बुद्धि उच्छृंखल हुई॥ ७२–७३॥

[राजाओंकी नानाविध चेष्टा] इस द्रौपदीकन्याके समान अन्य कोई भी सुरूप, सुंदर आकारवाली नहीं है॥ ७४॥ कोई राजा अपने मित्रके साथ हंसीसे नानाविध भाषण करते करते सुंदर कन्याको कटाक्षसे देखने लगा॥ ७५॥ मंद–हास्यसे अपनी लाल दंतपंक्तिको स्पष्ट

नागवल्लीदलं लात्वा कश्चिच्छिच्छेद भूपतिः। ईषत्स्मितेन रागाढ्यान्दशनान्दर्शयन्स्फुटम्॥७६
पादाङ्गुष्ठेन सौवर्णे लिखति स्म वरासनम्। कश्चित्सव्याङ्घ्रिमादाय वामोरूपरि संदधे॥७७
विधत्ते जृम्भणं कश्चित्कश्चिद्धत्ते स्म शेखरम्। मूर्ध्नि कश्चिन्निजं चाङ्गमङ्गदेन न्यपीडयत्॥
कश्चिच्च पाणिना श्मश्रु चालयामास सर्वतः। कश्चित्स्वमुद्रिकोद्भासिकरान्संदर्शयत्यहो॥
एवं स्थितेषु भूपेषु स्वनो वीणामृदङ्गजः। वंशजश्च विशेषेणाविरासीत्पटहादिजः॥८०
सुलोचना ततो धात्री स्वर्णयष्टिकरा सुवाक्। दर्शयामास भूपालान् द्रौपद्यै मञ्चकस्थितान्॥
अधीशोऽयमयोध्यायाः सूर्यवंशशिरोमणिः। सुरसेनः सुनासीर इव भाति बुधेश्वरः॥८२
वाणारसीपतिश्चायं विपक्षक्षपणोद्यतः। अयं चम्पापुरीनाथः कर्णः स्वर्णसमानरुक्॥८३
अयं दुर्योधनो धीमान् हस्तिनागनरेश्वरः। दुःशासनोऽयं तद्भ्राता दुर्मर्षणमहीपतिः॥८४
इमे यादवभूपाला इमे मगधमण्डनाः। इमे जालन्धराधीशा इमे बाल्हीकभूभुजः॥८५
एतेषु सत्सु भूपेषु न जाने को महीपतिः। धनुरादाय बाणन न जाने किं करिष्यति॥८६

दिखाता हुआ कोई राजा नागवल्लीका दल हाथसे लेकर तोडने लगा। किसी राजाने अपना दाहिना चरण बाँये पांवपर धारण किया और पांवके अंगुठेसे वह सुवर्णके उत्तम आसनपर कुछ लिखने लगा॥ ७५-७७॥ कोई राजा द्रौपदीको देखकर जंभाई लेने लगा और किसी राजाने अपने मस्तकपर किरीट धारण किया अर्थात् वह उसे ठीक बैठाने लगा। कोई राजा अपने शरीरको अंगदसे पीडित करने लगा॥७८॥ कोई अपने हाथसे अपनी मूछें इधर उधर मरोडने लगा। कोई राजा अपनी अंगुठियोंसे चमकनेवाले हाथ लोगोंको दिखाने लगा। ऐसीं राजाओंकी नानाविध चेष्टायें हो रही थीं। उस समय वीणा और मृदंगका मधुर शब्द तथा बासरियोंका और पटह आदि वाद्योंका ध्वनि होने लगा॥ ७९-८०॥

[स्वयंवरागत राजाओंका परिचय] तदनंतर जिसके हाथमें सोनेकी छडी है और जो मधुर भाषण बोलती है ऐसी सुलोचनाने द्रौपदीको मंचकोंपर बैठे हुए राजाओंको दिखाया। वह अयोध्यादिक देशोंके राजाओंका वर्णन करने लगी। यह सूरसेन राजा अयोध्या देशका अधिपति-स्वामी है, सूर्यवंशका यह शिरोमणि है। जैसा सुनासीर-इंद्र बुधेश्वर-देवोंका अधिपति शोभता है वैसा यह सुरसेन राजा इंद्रके समान शोभता है, क्यों कि यह भी बुधेश्वर-विद्वज्जनोंका स्वामी है॥ ८१-८२॥ शत्रुओंका नाश करनेमें उद्यत रहनेवाला यह वाराणसी देशका स्वामी है और सुवर्णके समान कांतिवाला यह कर्णराजा चम्पापुरीका स्वामी है। यह बुद्धिमान दुर्योधन राजा हस्तिनापुर नगरीका स्वामी है। यह इसका भाई दुःशासन है और यह दुर्मर्षण नामक राजा है॥ ८३-८४॥ ये यादववंशीय राजा हैं। ये मगधदेशके अलंकारभूत राजा हैं। ये जालन्धर देशके स्वामी हैं और ये बाल्हीक देशके राजा हैं। मैं नही जानती कि इन राजाओंमें कौन राजा धनु-

ज्वलदग्निमहाज्वालाजालसञ्जटिलो धनुः । सुरनागफणास्फीतफूत्कारमुखराननः ॥ ८७
ज्वालयन्धर्तुमायातान्मात्यधीशान्धनुर्धरान् । तत्र तज्ज्वालया ध्वस्ताः पिधायागुः स्वलोचने ॥
अन्ये तस्थुः स्थिता दूरात् संवीक्ष्य विषमोरगान् । भयतः कम्पमानाङ्गाः संमीलितविलोचनाः ॥
अन्ये ज्वालाहताः पेतुर्धरायां धरणीधराः । मुमूर्च्छुरपरे स्वच्छज्वालातापप्रपीडिताः ॥ ९०
अनयालं परे प्रोचुर्यास्यामो मन्दिरं मुदा । दास्यामो दुर्धरं दानं दीनानाथदरिद्रिषु ॥ ९१
जगुः केचित्स्वयोषाभिः क्रीडिष्यामः स्वमन्दिरे । रूपसंपूर्णया चालमनया प्राणयातनात् ॥
ब्रुवन्ति स्म परे भूपा अलं कामसुखेच्छया । नेष्यामः समयं कंचिद्ब्रह्मचर्येण चारुणा ॥९३
रूपेणेयं नरान् हन्ति कांश्चिद्रागविषार्चिषा । मारवेगेन कांश्चिच्च हंहो कन्या महाविषा ॥९४
तदा दुर्योधनोऽत्रोचद्दधानो मानसे मदम् । मत्तः कोऽन्यः समर्थोऽस्ति राधावेधविधायकः ॥
राधानासामुक्तायाः करिष्यामि सुवेधनम् । इत्युक्त्वा स समुत्तस्थे रक्तनेत्रो वराननः ॥९६

ष्यको ग्रहण कर और बाणसे जोडकर क्या करेगा ? ॥ ८५–८६ ॥ प्रदीप्त अग्निकी महाज्वाला समूहोंसे जटिल–व्याप्त और देवरूप नागोंके फणाओंसे निकले हुए विशाल फूत्कारशब्दमय जिसका मुख हुआ है ऐसा धनुष्य, पकडनेके लिये आये हुए धनुर्धर राजाओंको जलानेमें उद्युक्त हुआ। उस समय उसकी ज्वालासे राजा अपनी आखें मुंदकर वहांसे भागने लगे। दूसरे कितनेक राजा उन भयंकर सर्पोंको दूरसे देखकर खडे हो गये। कितनेक राजाओंका शरीर भयसे थरथर काँपने लगा और उन्होंने अपनी आंखें मुंद ली। दूसरे कोई राजा उसकी ज्वालासे आहत होकर जमीनपर गिर पडे। तथ अन्य कोई राजा धनुष्यकी तीव्र ज्वालाके तापसे पीडित होकर मूर्च्छित हो गये। ८७–९० ॥ अन्य कितनेक राजा कहने लगे– कि इस द्रौपदीसे हमारा कुछ प्रयोजन नहीं है। हम हमारे मंदिरमें आनंदसे जावेंगे और दीन, अनाथ तथा दरिद्री लोगोंको विपुल दान देंगे। कितनेक अन्य राजा ऐसा कहने लगे– हम अपने मंदिरमें अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीडा करेंगे। यह सौंदर्यपूर्ण द्रौपदी हमें नहीं चाहिये; क्यों कि इसकी आशासे हमारे प्राणोंको यातना हो रही है ॥ ९१–९२ ॥ कई राजाओंने ऐसा कहा– हमें कामसुखकी अब इच्छा नहीं है। अब हम कुछ काल सुंदर ब्रह्मचर्यसे व्यतीत करेंगे। यह द्रौपदी अपने रूपसे–सौंदर्यसे कई लोगोंको मारती है। कई लोगोंकी रागरूपी विषकी ज्वालासे नष्ट करती है, और कईयोंको मदनके वेगसे मारती है अतः हे लोगो, यह कन्या महाविषवाली है ॥ ९३–९४ ॥

[राधावेधके कार्यमें दुर्योधन गलितगर्व हुआ] उस समय मनमें गर्व धारण करता हुआ दुर्योधन कहने लगा– मेरे बिना दुसरा कौन समर्थ है, जो कि राधाका वेध करेगा। मैं राधाके नाकका मौक्तिक विद्ध करूंगा ऐसा बोलकर लाल आंखवाला और सुंदर मुखवाला वह अपने स्थानसे ऊठा। गाण्डीव धनुष्यसे उत्पन्न प्रकाशमान ज्वालाओंसे व्याप्त होकर वहभी वहां ठहरनेमें

गाण्डीवकार्मुकोत्पन्नज्वलज्ज्वालाकरालितः । सोऽपि स्थातुमशक्तात्मा पतितस्तु पलायितः ॥
एवं कर्णादयो भूपास्तज्ज्वालां सोढुमक्षमाः । मुमुचुर्मानमुद्रां ते तदा स्वस्थानमास्थिताः ॥९८
युधिष्ठिरस्तदावादीत्स्वानुजन्मानमर्जुनम् । धनुःसंधानमाधातुमेतेषां कोऽपि न क्षमः ॥९९
अत उत्तिष्ठ संधेहि धनुःसंधानमुद्धुरम् । गाण्डीवजीवनं त्वां हि विना कोऽत्र करिष्यति ॥
इत्युक्ते पार्थिवः पार्थः कृतसिद्धनमस्क्रियः । अग्रजं प्रणिपत्याशु समुत्तस्थे विशुद्धधीः ॥१०१
द्विजवेषधरं पार्थ रूपनिर्जितमन्मथम् । द्रौपदी वीक्ष्य दूरस्था हता कामस्य सायकैः ॥ १०२
सर्वानुल्लङ्घ्य भूपालान्स स्थितो धनुषः पुरः । तदा शरासनं शान्तं जातं ज्वालातिगं शुभम् ॥
अहो पुण्यवतां प्रायः प्रयोगाच्छान्तता भवेत् । शूराणामपि सांनिध्यात्तेषां किं कथ्यते बुधैः॥
स गाण्डीवं सुकोदण्डं करे कृत्वा धनुर्धरः । मौर्व्यामारोप्य पूतात्मा स्फालयामास तद्गुणम् ॥
तदास्फालनशब्देन बाधिर्ये भूमिपाः श्रुतौ । दधुर्घोटकसंघाता अचलन्त इतस्ततः ॥१०६
गजाश्च दिग्गजाश्चान्ये गर्जन्तो ध्वनिकर्णनात् । जगर्जुः प्रतिशब्देन समुत्क्षिप्तकरास्तदा ॥
तदास्फालनशब्दं च श्रुत्वा द्रोणो रुरोद च । इत्ययं सोऽर्जुनः किं वा मृतोऽपि समुपस्थितः

असमर्थ होकर गिर पडा और वहांसे भाग गया। ९५-९७ ॥ इस प्रकार कर्णादिक भूपाल उसकी ज्वाला सहनेमें असमर्थ हो गये और वे मानमुद्रा छोडकर स्वस्थानपर जाकर बैठ गये ॥ ९८ ॥

[अर्जुनके द्वारा राधावेध] उस समय युधिष्ठिरने अपने छोटे भाई अर्जुनको इस प्रकार कहा- " हे अर्जुन इन आये हुए राजाओंमें कोईभी इस प्रचंड धनुष्यको सज्य करनेमें समर्थ नहीं है। इस लिये तू ऊठ। इस प्रचण्ड धनुष्यको सज्य कर। तेरे विना इस समय कौन गाण्डीवको जीवित करेगा। अर्थात् गाण्डीवसे राधानासाका मौक्तिक वेध तू ही कर सकेगा "॥ ९९-१०० ॥ अग्रज युधिष्ठिरने ऐसा भाषण करनेपर पार्थ-राजा अर्जुनने सिद्धपरमेष्ठिको नमस्कार किया। वह निर्मलबुद्धिवाला अर्जुन अपने ज्येष्ठ भ्राताको-धर्मराजको नमस्कार कर अपने स्थानसे ऊठा ॥ १०१ ॥ स्वसौन्दर्यसे जिसने मदनको जीता है ऐसे ब्राह्मणवेषी अर्जुनको देखकर दूर खडी हुई द्रौपदी कामके बाणोंसे विद्ध हो गयी। सर्व राजाओंको उलंघकर वह अर्जुन धनुष्यके आगे खडा हुआ। तव वह शुभ धनुष्य ज्वालारहित और शान्त हुआ। विद्वान् लोग ऐसा कहते हैं, कि अहो जो पुरुष पुण्यवान् होते हैं प्रायः उनके संयोगसे शांतता होती है। फिर वे पुण्यवान्पुरुष यदि शूर हो तो उनके विषयमें कहनाही क्या है ॥ १०२-१०४ ॥ पवित्र धनुर्धर अर्जुनने गाण्डीव नामक धनुष्य हाथमें धारण कर उसे उसने दोरीपर चढाया और उसके गुणका उसने आस्फालन किया अर्थात् टंकारशब्द किया। उस समय उस टंकारशब्दसे राजाओंके कानोंमें बधिरपना आगया। तथा घोडोंके समूह इतस्ततः दौडने लगे। हाथी अपनी शुण्डाओंको उठा कर गर्जना करने लगे ॥१०५ -१०७॥ धनुष्यके आस्फालनका शब्द सुनकर द्रोणाचार्य यह वही अर्जुन है ऐसा प्रत्यभिज्ञान

ततः पार्थः पृथुर्बाणं गुणे संरोप्य विक्रमी । संभ्रमच्चावधीद्राधानासामौक्तिकमुन्नतम् ॥१०९
समौक्तिकं तदा भूमौ पतितं वीक्ष्य सायकम् । जहर्षुः पार्थिवाः सर्वे तद्गुणग्रहणोत्सुकाः ॥
यादवा मागधा भूपास्तं प्रशंसुर्द्विजोत्तमम् । द्रुपदः सात्मजश्चित्तं सोत्कण्ठोऽभूत्स्वमानसे ॥
ततो द्रुपदराजेन्द्रसुता पार्थस्य कन्धरे । सुलोचनाकराद्धृत्वाक्षिपन्मालां मनोहराम् ॥११२
तदा दैववशान्माला वायुना चलिता चला । पञ्चानामपि पर्यङ्के विकीर्णा पार्श्ववर्तिनाम् ॥
लोकोक्तिर्निर्गता मौढ्यादियं कर्मविपाकतः । पञ्चानया वृता मर्त्या दुर्जनाश्चेत्यघोषयन् ॥
सार्जुनस्य समीपस्था साक्षाल्लक्ष्मीरिवोर्जिता । पाकशासनपार्श्वस्था शचीव शुशुभे तराम् ॥
अर्जुनाज्ञां समासाद्योपकुन्ति द्रौपदी स्थिता । मेघालिं संगता विद्युदिव रेजे मनोहरा ॥११६
तावद्दुर्योधनो दुष्टो मलीमसमुखो नृपान् । जगौ सर्वेषु भूपेषु कोऽधिकारोऽत्र ब्राह्मणे ॥११७
धार्तराष्ट्रैश्च संमन्त्र्य प्रेषितो द्रुपदं प्रति । दूतश्चन्द्राख्यया ख्यातः सुशिक्षितः सुलक्षणः॥११८

होनेसे रोने लगे, किंवा मरा हुआ भी अर्जुन आज यहां स्वयंवरसभामें उपस्थित हुआ है ऐसा समझ कर रोने लगे ॥ १०८ ॥ तदनंतर महान् पराक्रमी पृथापुत्र अर्जुनने दोरीपर बाण चढाकर घुमती हुई राधाकी नाकका उन्नत, ऊंचा, अमूल्य मोती विद्ध किया, तब वह बाण मौक्तिकके साथ भूमिपर गिर गया। और सब राजा देखकर हर्षित हुए, उस ब्राह्मणके गुणग्रहणके लिये वे उत्सुक हुए ॥ १०९–११० ॥ यादववंशीय राजा और मगधदेशके राजा उस श्रेष्ठ ब्राह्मणकी प्रशंसा करने लगे तथा अपने पुत्रोंके साथ द्रुपद राजाभी अपने मनमें आश्चर्यके साथ उत्कंठित हुआ। अर्थात् द्रौपदीका इसे वरना योग्यही है ऐसा अभिप्राय उसके मनमें उत्पन्न हुआ ॥ १११ ॥

[द्रौपदीके विषयमें लोकापवादका कारण] तदनन्तर द्रुपदराजाकी कन्या द्रौपदीने सुलोचनाके हाथकी मनोहर माला लेकर अर्जुनके गलेमें डाल दी। तब वह चंचल माला वायुसे हिलकर दैवयोगसे पांचों पाण्डवोंकी गोदपर फैल गई। अर्थात् उस मणिमालाके मणि, माला टूट जानेसे बिखरकर पांचो पाण्डवोंकी गोदपर जा गिरे ॥ ११२–११३ ॥ उससमय इस द्रौपदीने पांच पुरुषोंको वर लिया ऐसी लोकोक्ति मूर्खतासे निकली और द्रौपदीके कर्मोदयसे दुर्जनोंने ऐसी कुत्सित घोषणा की। अर्जुनके समीप खडी हुई वह द्रौपदी वैभवसंपन्न लक्ष्मीके समान या इंद्रके समीप खडी हुई इंद्राणीके समान अतिशय शोभने लगी। इसक अनंतर अर्जुनकी आज्ञा पाकर कुन्तीके पास खडी हुई द्रौपदी मेघपंक्तिमें संगत हुई मनोहर विद्युत्–बिजलीके समान शोभने लगी ॥ ११४–११६ ॥

[दूतका भाषण] जिसका मुख मलिन हुआ है, ऐसे दुष्ट दुर्योधनने कहा, कि " सर्व राजगण यहां होते हुए इस ब्राह्मणको क्या अधिकार है, जो राधावेध करनेके लिये यहां आया है " ॥ ११७ ॥ धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंने आपसमें विचारकर चन्द्र नामका प्रसिद्ध सुशिक्षित और

वचोहरो विनीतात्मा वीक्ष्येत्वा द्रुपदं जगौ । मन्मुखेन वदन्त्येते नृपा इति समुद्धताः ॥११९
द्रोणे दुर्योधने कर्णे यादवे मगधेश्वरे । स्थितेष्वेतेषु भूपेषु कन्ययाकारि दुर्णयः ॥ १२०
अयमज्ञातदेशीयो वाडवो वडवो यथा । अतृप्तस्तु कथं याति कन्यां लात्वा नृपे स्थिते ॥१२१
अस्मै वाथ वितृप्ताय काञ्चनं रत्नमुत्तमम् । दत्त्वैनमृजुभावेन विसर्जय सुसज्जितः ॥१२२
नृपयोग्यामिमां कन्यां यच्छ भूपाय भूमिप । अथवा संगरे सज्जः सद्यो भव नृपैः समम् ॥१२३
द्रुपदः कोपतोऽवादीन्न युक्तमिति भाषणम् । नृपाणां न्याययुक्तानां स्वयंवरविदां सदा॥१२४
अयमेष वरः साध्व्या अस्या भूमिसुरो महान् । स्वयंवरविधौ लब्धो नान्यथा क्रियते मया॥
तुमुले तूलसादृश्ये कोऽधिकारो नृपेशिनाम् । यतः स्वयंवरे लब्धे नीचो वान्यः पतिः स्त्रियाः ॥
संगरे संगरो योग्यो न तेषां तत्र चेन्मतिः । दास्यामि संगरातिथ्यं वितथोत्पथपातिनाम् ॥
इत्याकर्ण्य क्षणाद्दूतश्चकरीति स्म भूपतीन् । विज्ञप्तिं भूपसंदिष्टां परावृत्य परार्थवित् ॥ १२८

सुलक्षण दूत द्रुपद राजाके पास भेज दिया। विनयशील वह दूत द्रुपदके पास जाकर और उसे देख-कर " मेरे मुखसे ये उद्धत राजा इस प्रकारका भाषण कर रहे हैं ऐसा बोला। द्रोण, दुर्योधन, कर्ण, यादव और मगधाधीश जरासंध ऐसे अनेक भूप स्वयंवरमंडपमें रहते हुए कन्याने यह मर्यादाके विरुद्ध कार्य किया है, अर्थात् ब्राह्मणको वरना यह कार्य नियमबाह्य हुआ है। जिसका निवास-देश अज्ञात है ऐसा यह ब्राह्मण वडवानलके समान अतृप्तही रहेगा। हम देखेंगे, कि यह सब राजसमाजके समक्ष कन्याको उठाकर कैसे ले जावेगा? अथवा इस अतृप्त ब्राह्मणको सोना और उत्तम रत्न देकर सरलभावसे सुसज्जित होकर आप भेज दो। और राजाके लिये योग्य ऐसी यह कन्या किसी राजाको देदो। यदि यह विचार पसंद न हो तो रणमें राजाओंके साथ लडनेके लिये तत्काल सज्ज होना पडेगा" ॥११८-१२२॥ दूतका भाषण सुनकर द्रुपद राजाने कोपसे कहा कि स्वयंवरकी पद्धति जाननेवाले न्याययुक्त राजाओंके द्वारा ऐसा भाषण किया जाना कभीभी युक्त नहीं है।

[द्रुपदने प्रत्युत्तर दिया] यह महान् प्रभावी ब्राह्मण इस साध्वी कन्याका वर है और इसने स्वयंवरविधिमें इसे प्राप्त किया है। अर्थात् मेरी साध्वी कन्याने इसको वरा है इस न्याय्य कार्यमें मैं विपर्यास करना नहीं चाहता हूं। इस समय युद्ध करना कपासके समान महत्त्वहीन है। ऐसा महत्त्वहीन न्यायरहित युद्ध करनेमें राजाओंको क्या अधिकार है?। स्वयंवरमें कन्या जिसे वरती है यदि वह नीच अथवा उच्च हो वह उसका पति है। इसलिये युद्धमें ऐसी प्रतिज्ञा करना राजाओंको योग्य नहीं है। अर्थात् राजा यदि युद्धके लिये तैयार होंगे, तो उनका तैयार होना अयोग्य है, और उनका युद्ध करनेका यदि विचार होगा तो असत्य और कुमार्गमें पडनेवाले इन राजाओंकी मैं युद्धकी पाहुनगत करूंगा, अर्थात् इनके साथ मैं लडूंगा ॥ १२३-१२७ ॥ द्रुपद

दुर्योधनादयो भूपाः क्रुद्धा रणसमुद्धताः । अदापयन् रणातिथ्यसूचकं दुन्दुभिं भृशम्॥१२९
श्रुत्वा भेरीस्वनं भूपा निर्ययुः साधनावृताः । दन्तावलबलोपेता वाहवाहनसंस्थिताः ॥ १३०
रथस्थितिं भजन्तश्च केचित्कोदण्डपाणयः । खड्गखेटककुन्ताढ्याः पत्तयश्च मदोद्धताः ॥१३१
केचिदूचुस्तदा क्रुद्ध्वा गृह्यतां गृह्यतां त्वरा । कन्या निर्धाट्यतां धृष्टो वाडवो यो मदोद्धुरः॥
मार्यतां द्रुपदो मानी समापाद्यापदां पदम् । इति शत्रुस्वरं श्रुत्वा चकम्पे द्रुपदात्मजा ॥१३३
प्रविष्टा शरणं तस्य नरस्य स्वेदिला सती । तादृक्षां तां समावीक्ष्याचख्यौ पवननन्दनः ॥
मा बिभेषि भव स्वस्था पश्य मे भुजयोर्बलम् । करोमि क्षणतो दूरं वैरिणः पर्वतं गतान्॥१३५
तदा कलकलो जज्ञे बलयोरुभयोरपि । कोदण्डचण्डबाणेन क्षुभ्यतो रणसंस्थयोः ॥ १३६
समग्रं परसैन्यं तु संप्राप्तं शमनोपमम् । द्रुपदाद्याः समावीक्ष्याभूवन्संनद्धमानसाः ॥ १३७
द्रुपदं प्रार्थयामास युधिष्ठिरद्विजोत्तमः । सास्त्रशस्त्रसमूहेन देहि पञ्चरथान्युतान् ॥ १३८

राजाका उपर्युक्त भाषण सुनकर दूसरोंका अभिप्राय जाननेवाला दूत वहांसे लौटकर राजाओंके पास तत्काल गया, और उसने उनको द्रुपद राजाने कही हुई विज्ञप्ति निवेदन की। उसे सुनकर रणोद्धत दुर्योधनादिक राजा क्रुद्ध हो गये, और रणकी पाहुनगतकी सूचना करनेवाला नगारा उन्होंने खूब बजवाया। नगारेका ध्वनि सुनकर सैन्यसे युक्त राजा लडनेके लिये निकले। उनके साथ हाथीयोंका सैन्य था तथा घोडे, रथ आदिक वाहनभी थे। कई वीर रथपर बैठकर लडनेके लिये निकले। और कई हाथमें धनुष्य लेकर निकले। कई तरवार, ढाल, भाला लेकर निकले। कितनेक मदोद्धत पैदलके साथ निकले ॥ १२८-१३१ ॥ उस समय कई वीर कुपित होकर इस कन्याको त्वरासे पकडो पकडो और इस धीट मदोन्मत्त ब्राह्मणको यहांसे निकालदो ऐसा कहने लगे ॥ इस मानी द्रुपदको आपत्तिका स्थान बनाकर मार डालो। इस प्रकारकी शत्रुओंकी घोषणा सुनकर द्रुपद-राजाकी कन्या द्रौपदी थर थर कँपने लगी ॥१३२-१३३॥ वह स्वेदयुक्त होकर शरणके लिये अर्जुनके पास आई। उसे भयसे कँपती हुई देखकर पवननंदन--वायुपुत्र भीमसेन कहने लगा, कि हे द्रौपदी तुम मत डरो। स्वस्थ--शांत हो जावो। तुम मेरे बाहुओंका बल देखो। मैं एकक्षणमें इन शत्रु-ओंको पर्वतके पास भगा देता हूं ॥ १३४-१३५ ॥ उस समय रणमें खडे हुए और धनुष्यसे निकले हुए प्रचण्ड बाणसे क्षुब्ध हुए दोनों सैन्योंमेंभी कलकल उत्पन्न होने लगा। यमके समान शत्रु-ओंका संपूर्ण सैन्य आया हुआ देखकर द्रुपदादिक राजा सन्नद्धचित्त हुए। उन्होंने लडनेका निश्चय किया ॥ १३६-१३७ ॥

[पाण्डवोंका कौरवादिकोंसे युद्ध] श्रेष्ठ ब्राह्मण युधिष्ठिरने अस्त्रसहित, शस्त्रसमूहसे युक्त पांच रथ हमें दीजिये, ऐसी द्रुपदको प्रार्थना की। उसका भाषण सुनकर धृष्टद्युम्नादिक अपने मनमें विचार करने लगे, कि ये रथ मांगते हैं अतः मालूम होता है ये महापुरुष हैं महाशूर हैं।

श्रुत्वैते धृष्टद्युम्नाद्याश्चिन्तयन्ति स्वमानसे । अहो एते महामर्त्या याचयन्ते यतो रथान् ॥१३९
धृष्टद्युम्नेन पाञ्चाली स्वरथे स्थापिता तदा । युधिष्ठिरो रथस्थोऽभाद्यथा सौधर्मदेवराट् ॥
अर्जुनोऽपि सगाण्डीवः श्वेतवाजिरथे स्थितः । संनद्धो बलसंधानः शुशुभे स उपेन्द्रवत् ॥
द्रुपदो विपदां दातुं वैरिणां संपदाकुलः । स्वर्णवर्मसुसंपन्नो रेजे मुकुटमण्डितः ॥ १४२
तावता दुर्धरं सैन्यं परकीयं समागतम् । वीक्ष्य भीमः समुन्मूल्य महीरुहं दधाव वै ॥ १४३
परेतराडिव क्रुद्धो जघानाग्रे स्थितान्नृपान् । हयान् हेषारवापन्नान्स गजान्गार्जनोद्यतान्॥१४४
रथान्संचूर्य चक्रौघै रहितान्विदधे स च । तत्र कोऽपि नरो नासीद्यो भीमेन हतो न हि ॥
स्वयं गर्जति गम्भीरगिरा भीमो गजेन्द्रवत् । परांस्तर्जति निष्कम्पो भूपान्कौणपवत् कृती ॥
एवं रणाङ्गणे रम्ये रेमे भीमो मृगेन्द्रवत् । दलयन्निखिलं सैन्यं तृणलुश्च यथा तृणम् ॥१४७
मध्यस्थवर्तिनो भूपास्तदा दृष्ट्वा च पावनिम् । रममाणं शशंसुस्ते जयकारप्रदायिनः ॥१४८
भीमेन भज्यमानं तद्वीक्ष्य दुर्योधनो नृपः । उत्तस्थे तूर्यनादेन त्रासयन्निखिलान्रिपून् ॥१४९
कर्णोऽपि स्वगणैः सार्धं ढुढौके च धनंजयम् । क्षिपन्विशिखसंघातान्विघ्नानिव सुसज्जितान् ॥

तब धृष्टद्युम्नने अपने रथपर पांचालीको-द्रौपदीको बैठाया. रथमें बैठे हुए युधिष्ठिर सौधर्मेन्द्रके समान शोभने लगे। गांडीव धनुष्यको लेकर अर्जुन शुभ्र घोडे जोडे हुए रथपर बैठा। वह युद्धके लिये उद्युक्त हुआ। शत्रु-सैन्यके ऊपर उसकी दृष्टि लगी थी। वह उपेन्द्रके समान। प्रतीन्द्रके समान अथवा कृष्णके समान शोभने लगा ॥ १३८–१४१ ॥ वैभवसंपन्न, सोनेका कवच पहना हुआ, मुकुटसे शोभनेवाला द्रुपदराजा वैरियोंको विपत्ति देनेके लिये शोभने लगा अर्थात् सज्ज हुआ ॥ १४२ ॥ इतनेमें शत्रुओंका दुर्धर सैन्य लडनेके लिये आगया। उसे देखकर भीम वृक्ष उखाडकर उसके ऊपर आक्रमण करने लगा। आगे आये हुए राजाओंको भीम क्रुद्ध यमके समान मारने लगा, उसने हिसनेवाले घोडोंको, गर्जन करनेमें तत्पर हाथियोंको चूर कर दिया और रथोंको चक्ररहित कर दिया। उस सैन्यमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं था जिसे भीमने नहीं मारा। सबको भीमका कुछ न कुछ प्रसाद मिलाही। भीम गजेन्द्रके समान गंभीर ध्वनिसे गर्जना करने लगा। निष्कम्प ऐसा पुण्यवान् भीम शत्रुराजाओंको यमके समान भय दिखाने लगा, दण्डित करने लगा। जैसे घास काटनेवाला पुरुष घासको काटता है, वैसे समस्त शत्रुसैन्य नष्ट करनेवाला भीम सिंहके समान रम्य रणाङ्गणमें रममाण हुआ। जो राजा मध्यस्थ थे, वे युद्धमें रममाण हुए भीमको देखकर जयजयकार करते हुए उसकी प्रशंसा करने लगे ॥ १४३–१४८ ॥ भीमके द्वारा अपना सैन्य नष्ट किया जा रहा है, ऐसा देखकर दुर्योधन संपूर्ण शत्रुओंको वाद्योंकी ध्वनियोंसे भयभीत करता हुआ युद्धके लिये उद्युक्त हुआ ॥ १४९ ॥ कर्णने भी अपने सैन्यके साथ अर्जुनपर आक्रमण किया। सुसज्जित विघ्नके समान बाण उसने अर्जुनपर छोडे। पर्याप्त उन्नतिके धारक कर्णने अनेकोंको बाणोंसे शीघ्र

बाणपूरैः प्रपूर्याशु पुष्कलं पुष्कलोदयः। कर्णो धनंजयेनामा युयुधे योद्धसंगतः ॥ १५१
कर्णमुक्तान्शरान्पार्थः क्षणोति स्म क्षणान्तरे। स दक्षो लक्ष्यसंवेधे मातरिश्वा यथा घनान् ॥
धानुष्कं वीक्ष्य दुर्लक्ष्यं कर्णोऽभूत्तस्य विस्मितः। ईदृक्षं भूतले दृष्टं धानुष्कं क्वापि नो मया ॥
कर्णोऽभाणीद्विजेश त्वं धनुर्विद्याविशारदः। चारु चारगुणं चर्च्यं धानुष्कं दर्शितं त्वया ॥
पुनर्विहस्य चापेशोऽगदीद्गद्गदनिस्वनः। दधानो धन्वसंधानं पिधाय तं शरोत्करैः ॥ १५५
भो द्विजेश त्वया कुत्र धनुर्विद्या महोन्नता। लब्धा लब्धिसमा रम्या चिच्चमत्कारकारिणी॥
नाकात्पाकात्स्वपुण्यस्य पतितः किं द्विजोत्तम। अस्माभिर्न श्रुतः कोऽपि धनुर्वेदी त्वया समः
त्वं किं शक्र उतार्को वा वीतहोत्रो भवान्किमु। अर्जुनः किं रणौद्धत्यं दधानो वा मृतोत्थितः
वीरोऽवादीद्धसन्राजन्धरादेवोऽहमत्र च। पार्थस्य सारथीभूय स्थितो धानुष्कतां गतः॥१५९
कर्णो बभाण भो विप्र पूर्वं मुञ्च शरोत्करान्। लभस्वाद्य ससामर्थ्यान्मामकीनान् शरान्वरान्
इत्युक्त्वा तौ रणे लग्नौ कर्णाकृष्टशरासनौ। हृदयं दारयन्तौ च यथा सिंहकिशोरकौ ॥६१

आच्छादित किया। और अनेक योधाओंको लेकर वह धनंजयके साथ लडने लगा ॥ १५०–१५१ ॥ वायु जैसे मेघोंको क्षणान्तरमें नष्ट करता है, वैसे लक्ष्यको विद्ध करनेमें चतुर अर्जुन कर्णसे छोडे गये बाणोंको क्षणान्तरमें नष्ट करने लगा। कर्ण उसकी दुर्लक्ष्य धनुर्विद्याको देख कर दंग हुआ अर्थात् धनंजयका बाण जोडना, और छोडना इतनी शीघ्रतासे होता था, कि कर्ण भी उसका शर-सन्धान और शरमोचन नहीं जान सका। इस प्रकारका धनुर्विद्याका चातुर्य इस भूतलपर मैंने कहां भी नहीं देखा है ॥ १५२–१५३ ॥ " हे ब्राह्मणश्रेष्ठ आप धनुर्विद्यामें अतिशय चतुर हैं। आपने जिसमें सुन्दर भ्रमणगुण है ऐसा श्रेष्ठ धनुर्विद्याचातुर्य व्यक्त किया है "। ऐसा कर्णने भाषण किया, और पुनः हँसकर बाणसमूहसे अर्जुनको अच्छादित करते हुए, धनुष्यका संधान धारण करनेवाले, चम्पापुरके अधिपति कर्ण गद्गदध्वनिसे इस प्रकार बोले। " ब्राह्मणश्रेष्ठ, आपने ऋद्धिके तुल्य रमणीय, आत्माको आश्चर्यचकित करनेवाली, महान उन्नतिशालिनी धनुर्विद्या कहां प्राप्त की हैं ? हे ब्राह्मणोत्तम, क्या अपने पुण्यके उदयसे आप स्वर्गसे यहां आये हैं। हमने आपके समान धनुर्वेदी कहीं भी नहीं सुना है। क्या आप इन्द्र हैं, या सूर्य हैं अथवा अग्नि हैं ? अथवा रणका औद्धत्य धारण करनेवाला मरकर पुनः उठा हुआ अर्जुन है" ॥ १५४–१५८ ॥ वीर अर्जुन हँसकर बोला, कि हे राजन् मैं ब्राह्मण हूं और अर्जुनका सारथी होकर रहा था; जिससे मैं धनुर्विद्यामें निपुण हुआ हूं ॥ १५९ ॥ कर्ण कहने लगा, कि हे ब्राह्मण प्रथम तू बाणसमूह मुझपर छोड, अनंतर मेरे सामर्थ्ययुक्त उत्तम बाण आज सहन कर "। ऐसा बोलकर कानतक जिन्होंने धनुष्य खींचा है ऐसे वे कर्ण और अर्जुन सिंहके बच्चोंके समान हृदयको विदीर्ण करते हुए रणमें आपसमें युद्ध करने लगे ॥ १६०–१६१ ॥ जिसकी वाणी–सामर्थ्यको धारण करती है ऐसे अर्जुनने कर्णका ध्वज नष्ट कर दिया और

ध्वजं स ध्वंसयामास कार्णे पार्थः समर्थवाक्। छत्रं संछन्नसत्तार्कं कवचं वचनं यथा ॥१६२
द्रुपदो विपदां दातुमुद्यतस्थे सर्वविद्विषाम्। छादयन्कौरवीं सेनां विशिखैः सुखहारिभिः ॥
धृष्टद्युम्नादयो वीरा हन्तुकामाः स्ववैरिणः। उपस्थिरे स्थिरस्थैर्याः कुर्वन्तो रणखेलनम् ॥
दुर्योधनं पुरस्कृत्य भीमसेनो रथस्थितः। युयुधे वैरिणो वेगात्संछिदन्कवचं वरम् ॥१६५
पाण्डवीयैः शरैर्विद्धो न को नाभून्महाहवे। मर्त्या मतङ्गजो मत्तो घोटको वा समुत्कटः ॥
भज्यमानं बलं वीक्ष्य निजं गाङ्गेयभूपतिः। जहार रणशौण्डीर्यं शुण्डानां रणवेदिनाम् ॥
पितामहं समालोक्य रणस्थं रणकोविदः। आगच्छन्तं महाबाणै रुणद्धि स्म धनंजयः॥ १६८
पार्थः पञ्चास्यवल्लग्नो गाङ्गेयं च महागजम्। कुर्वाणो व्यर्थतां तस्य बाणानां बाणकोविदः ॥
तावद् द्रोणोऽवदीद्वाक्यं दुर्योधनमहीपतिम्। रेणुभिः पश्य खं छन्नं तुरंगमखुरोत्थितैः ॥
इमं पश्य नरं कंचिद्रणकेलिक्रियाकरम्। अर्जुनं विद्धि नेदृक्षान्यत्र चापविदग्धता ॥१७१
मृषा विद्धि विदग्धास्ते पाण्डवा जतुवेश्मनि। दग्धा इति यतः प्राप्ता जीवन्तः संयुगेऽप्यमी ॥
श्रुत्वा दुर्योधनो भूपो विकम्प्याकम्प्रमानसः। मूर्धानं समुवाचेति हसित्वा विस्मिताशयः ॥
द्रोण विद्रावणं वाक्यं किमुक्तं भवताप्यहो। जतुगेहे मया दग्धा कुतस्ते पुनरागताः ॥१७४

सूर्यको आच्छादित करनेवाला छत्र भी तोड डाला। और वचनके समान कर्णका कवच भी छिन्न किया ॥ १६२ ॥ सुखको नष्ट करनेवाले बाणोंसे कौरवोंकी सेनाको आच्छादित करता हुआ द्रुपद राजा सम्पूर्ण शत्रुओंको विपत्ति देनेके लिये उद्युक्त हुआ ॥ १६३ ॥ रणक्रीडा करनेवाले, जिनका स्थैर्य-धैर्य स्थिर है ऐसे धृष्टद्युम्नादि वीर अपने शत्रओंको मारनेके लिये उद्युक्त हुए ॥ १६४ ॥ शत्रुके उत्कृष्ट कवचको वेगसे तोडनेवाला, रथमें बैठा हुआ भीम दुर्योधनके साथ लडने लगा ॥ १६५ ॥ पांडवोंके बाणोंसे कौनसा मनुष्य इस महायुद्धमें विद्ध नहीं हुआ ? मनुष्य, उन्मत्त हाथी और उच्छृंखल घोडे भी इस महायुद्धमें विद्ध हुए ॥ १६६ ॥ अपना सैन्य भग्न हो रहा है, ऐसा देखकर युद्धके ज्ञाता ऐसे भीष्मराजाने शत्रुसुभटोंका रणपराक्रम नष्ट किया ॥ १६७ ॥ रणस्थ पितामहको आते हुए देखकर रणके ज्ञाता अर्जुनने महाबाणोंके द्वारा उनको रोक लिया। भीष्माचार्यके बाणोंकी व्यर्थता करनेवाला युद्धचतुर अर्जुन सिंहके समान भीष्माचार्यरूपी हाथीके ऊपर आक्रमण करने लगा ॥ १६८-१६९ ॥ उस समय द्रोणाचार्य दुर्योधन राजाको ऐसा वाक्य बोले। " हे दुर्योधन देखो घोडोंके चरणोंसे उठी हुई धूलीसे आकाश व्याप्त हुआ है। रणक्रीडाकी क्रिया करनेवाले इस अज्ञात पुरुषको देखो। इसे तो तुम अर्जुन ही समझो, क्यों कि अन्यत्र अर्जुनके समान धनुर्विद्याका चातुर्य नहीं दीखता है। लाक्षागृहमें चतुर पाण्डव जल गये यह वृत्तान्त असत्य समझो, क्योंकि वे इस युद्धमें जीवन्त दीख रहे हैं ॥ १७०-१७२ ॥ द्रोणाचार्यका भाषण सुनकर जिसका मन कम्पित हुआ है, और जिसको आश्चर्य उत्पन्न हुआ है, ऐसा दुर्योधन हँसकर और अपना मस्तक

अर्जुनोऽपि तथा तत्र दग्धः कथमिहागतः । धनंजयाभिधानं त्वं न मुञ्चसि तथाप्यहो ॥१७५
महीयो मोहमाहात्म्यं भवतां भुवि वीक्षितम् । यतः स्मरसि निर्द्वन्द्वं मृतार्जुनयुधिष्ठिरौ ॥
द्रोणः श्रुत्वा करे कृत्वा धनुषं शरसंयुतम् । धनंजयमुवाचेदं सज्जो भव त्वमाहवे ॥१७७
द्रोणं प्राप्तं समावीक्ष्य पार्थो व्यर्थीकृताहितः । वीरोऽथ तुमुले चित्तेऽचिन्तयच्चेति विग्रहे ॥
एष श्रीमान्समभ्यर्च्यो गुरुर्गुणगणाग्रणीः । यस्य प्रसादतो लब्धा धनुर्विद्या मयामला ॥१७९
यस्य प्रसादतो लब्धः संयुगे सुजयो महान् । तेन सार्धं कथं युद्धे युद्ध्यते महता मया ॥
गुरूंश्च गणनातीतगुणान्सद्धितकारिणः । ये विस्मरन्ति ते पापाः क्व यास्यन्ति न वेद्म्यहम् ॥
चिन्तयित्वेति चित्ते स न लक्ष्यः सप्तपादकम् । उत्सृज्य नमनं चक्रे द्रोणस्य श्रीधनंजयः ॥
पुनः स प्रेषयामास मार्गणं गुणतो गुणी । सलेखं यत्तदङ्के सोऽपतत्पार्थेन प्रेषितः ॥१८३
सलेखं विशिखं वीक्ष्य लात्वा द्रोणोऽप्यवाचयत् । लेखं लेखार्थसंजातहर्षोत्कर्षितमानसः ॥

हिलाकर बोलने लगा, कि "हे द्रोणाचार्य, आप भी भय दिखानेवाला भाषण क्यों कर रहे हैं? मैंने पाण्डवोंको लाक्षागृहमें जला दिया है। वे फिर कहांसे आते हैं। अर्जुन भी वहीं जल गया है। वह अब यहां कैसे आगया? तथापि हे गुरो, आप 'धनञ्जय'का नाम नहीं छोडते हैं। इस भूतलमें आपकी आत्मामें महान् मोहका माहात्म्य हम देख रहे हैं, क्यों कि मरे हुए अर्जुन और युधिष्ठिरका आप अखंड चिन्तन कर रहे हैं ॥ १७३-१७६ ॥

[द्रोणाचार्य पाण्डवोंका वृत्त कहते हैं] दुर्योधनका भाषण सुनकर आचार्यने बाणसहित धनुष्य हाथमें लिया और धनंजयको कहा, कि 'तू युद्धमें लडनेके लिये सज्ज हो' द्रोणाचार्य तुमुल-युद्धमें लडनेके लिये आये हैं यह देखकर जिसने सर्व शत्रु व्यर्थ किये हैं— नष्ट किये हैं ऐसे वीर अर्जुनने मनमें विचार किया। "ये श्रीमान्, गुणोंमें अग्रणी, पूजनीय मेरे गुरु हैं, जिनके प्रसादसे मैंने निर्मल धनुर्वेद प्राप्त किया है। जिनके प्रसादसे मुझे युद्धमें महान जय प्राप्त हुआ है। ऐसे महात्मा गुरुके साथ मैं युद्धभूमिमें कैसे लडूं ॥ १७७-१८० ॥ जिनके गुण गणनाको उलंघ रहे हैं अर्थात् जिनके गुण असंख्यात हैं। जो सज्जनोंका हित करते हैं ऐसे गुरुओंको जो भूलते हैं वे पापी समझना चाहिये। वे कहां जायेंगे मैं नहीं समझता हूं। ऐसा मनमें विचार करके जो किसीके द्वारा नहीं जाना गया ऐसा अर्जुन सात पैड जमीन छोडकर अर्थात् उतने अन्तरपर ठहर कर द्रोणाचार्यको नत हुआ। पुनः गुणी अर्जुनने धनुष्यकी दोरीसे लेखसहित बाणको छोड दिया। अर्जुनने छोडा हुआ वह बाण गुरुके अंकपर जाकर पडा। लेखसहित बाण देखकर द्रोणने भी लेकर पढा। लेखके अर्थसे उत्पन्न हुए हर्षसे आचार्यका मन उत्कर्षयुक्त हुआ अर्थात्

---

१ अ मृतार्जुनमहर्निशम् ।

द्रोणं स्वगुरुमानम्य भक्त्या नम्रमहाशिराः । कुन्तीसुतोऽर्जुनश्चाहं भवच्छिष्यो गुणाम्बुधेः ॥
चर्करीमि सुविज्ञप्तिं श्रूयतां सावधानतः । निष्कारणं मया क्षिप्ता योद्धारः सकला रणे ॥
निष्कारणं वयं दग्धुमारब्धाः कौरवैः खलैः । कथं कथमपि स्वामिंस्तस्माद्गेहाद्विनिर्गताः ॥
देशान्भ्रान्त्वा पुनः प्राप्ता माकन्दीं सातकन्दलीम् । अत्र पुण्यप्रभावेन वयं प्राप्तास्त्वदङ्घ्रिकौ॥
अपसृत्य क्षणं तिष्ठाधुनान्तेवासिनस्तव । भुजयोर्बलमीक्षस्व सार्थकोऽहं भवामि यत् ॥१८९
दुर्योधनादिभूपानां पाण्डवज्वालनोद्भवम् । दर्शयामि फलं द्रोणस्तमवाचयदित्यलम् ॥१९०
ततोऽश्रुजलसंपूर्णनेत्रो द्रोणो बभाण च । कर्णदुर्योधनादीनामग्रे पत्रोद्भवं खलु ॥१९१
कर्णोऽवोचद्विना पार्थं सामर्थ्यं कस्य संभवेत् । ईदृशं यो रणे च्छेत्तुं क्षमः शत्रून् शरैः परैः॥
एको भीमो रणं सर्वं संहर्तुं च सदा क्षमः । युधिष्ठिरादयश्चान्ये समर्थाः सर्ववस्तुषु ॥१९३

आचार्य द्रोण अतिशय आनंदित हुए ॥ १८१–१८४ ॥ भक्तिसे जिसका विशाल मस्तक नम्र हुआ है ऐसा अर्जुन अपने गुरु द्रोणाचार्यको नमस्कार करके "मैं कुन्तीका पुत्र अर्जुन हूं, गुणसमुद्र ऐसे आपका मैं शिष्य हूं। मैं आपके पास विज्ञप्ति करता हूं। आप सावधानीसे सुने। रणमें मैंने सर्व योद्धागण विनाकारण नष्ट किये हैं। हम लोगोंको दुष्ट कौरवोंने निष्कारण जलानेका उद्योग किया है। हम जैसे तैसे उस घरसे बाहर निकले और अनेक देशोंमें भ्रमण कर सुखके अंकुरवाली इस माकन्दीनगरीमें पुनः आये हैं ॥ १८५–१८८॥ पुण्यप्रभावसे हम यहां आपके चरणोंके समीप आये हैं। हे गुरो। आप किंचित् पीछे हटकर रहें, अब आपके विद्यार्थीका बाहुबल देखें, जिससे मैं कृतकृत्य हो जाऊं। दुर्योधनादिक राजाओंने पाण्डवोंको अग्निमें जलानेका जो कार्य किया है उसका विपुल फल मैं उनको दिखाऊंगा" द्रोणाचार्यने पत्र पढा उनके नेत्र अश्रुजलसे भर गये। कर्ण-दुर्योधनादिकोंके आगे पत्रका अभिप्राय द्रोणाचार्यने कहा ॥ १८९–१९१ ॥ कर्णने कहा कि अर्जुनके विना क्या किसीका इसतरहका सामर्थ्य हो सकता है? जो रणमें उत्तम शरोंसे शत्रुओंको छेदनेमें समर्थ है ऐसे अर्जुनके विना अन्य कोई नहीं है। अकेला भीम संपूर्ण रणका संहार करनेके लिये हमेशा समर्थ है। युधिष्ठिरादिक सब पाण्डव सर्व वस्तुओंमें समर्थ है। इस प्रकारका वृत्तान्तका सार सुनकर कौरवोंका अगुआ दुर्योधन कर्तव्यमूढ हो गया, क्षणपर्यन्त खिन्न हुआ ॥ १९२–१९४ ॥

[अन्योन्य क्षमाप्रदान] उस समय द्रोणाचार्य पांडवोंके समीप चले गये उनको देखकर वे आचार्यको आलिंगन देकर उनके चरणकमलोंपर उन्होंने अतिशय नम्र होकर नमस्कार किया। उन्होंने पूर्वका संपूर्ण वृत्तान्त उनको आनंदसे कह दिया। उस समय पांडवोंके आश्रयसे आचार्यने युद्धको बंद कर दिया और वे इस प्रकार कहने लगे। "हे पाण्डवो, तुम मेरा वचन सुनो। तुम हितकी बातें जानते हो; अतः कौरवोंके दोष तुम मत ग्रहण करो। विशेषतः हे पुत्रो, तुम हितेच्छु

इति वृत्तान्तसर्वस्वं निशम्य कौरवाग्रणीः । इतिकर्तव्यतामूढो विलक्षोऽभूदिह क्षणम् ॥१९४
पाण्डवानां समभ्यर्णे द्रोणस्तावदगाद्रुतम् । ते तं वीक्ष्य समालिङ्ग्य नतास्तत्पादपङ्कजम् ॥
वृत्तान्तं पूर्वजं सर्वे ते तं वाचीकथन्मुदा । द्रोणो निवारयामास युद्धं बन्धुसमाश्रितः ॥१९६
अवीभणत्पुनर्द्रोणो यूयं शृणुत मद्वचः । कौरवाणामयं दोषो न ग्राह्यो हितवेदिभिः ॥१९७
रोषो विशेषतः पुत्रा न कर्तव्यो हितेच्छुभिः । भवतां पुण्यमाहात्म्यं भुवने कोऽत्र वर्णयेत् ॥
हुताशनज्वलद्देहान्निर्गतास्तन्महाद्भुतम् । देशे देशे गता यूयं कन्याद्यैः पूजिताश्चिरम् ॥१९९
एवं वार्तां प्रकुर्वाणा यावत्सन्ति महीभुजः । तावद्गाङ्गेयसत्कर्णकौरवाश्च समाययुः ॥२००
अन्योन्यं मिलिताः सर्वे नम्राश्च ते यथायथम् । अगर्वाः कौरवास्तस्थुरधोवक्त्रा मदच्युताः ॥
गाङ्गेयद्रोणकर्णाद्यैः पाण्डवाः कौरवाः क्षमाम् । अन्योन्यं कारितास्तूर्णं सतां योगः शुभाप्तये ॥
दुर्योधनो धराधीशः पुनराह नरेश्वराः । ज्वलनो न मया दत्तस्तत्र साक्षी जिनेश्वरः ॥२०३
पाण्डवानां गृहे येन दत्तो हि हुतभुक् खरः । स एव नरकं घोरं यातु जन्तुप्रपीडकः ॥२०४
समीचीनमिदं जातं युष्माकं यः समागमः । अस्माकं पुण्ययुक्तानामपवादनिवारकः ॥२०५
यज्जन्मान्तरजं कम तन्निषेद्धुं हि न क्षमः । कश्चिद्येन सुकीर्तिश्चापकीर्तिर्जायते नृणाम् ॥२०६
इति दौष्ट्यं समाच्छाद्य छद्मना मुखमिष्टताम् । अभजत्कौरवो दुष्टो दौष्ट्यं केन हि हीयते ॥

हो अतः तुम रोष मत करो। इस जगतमें तुम्हारा पुण्यका माहात्म्य कौन कह सकता है? तुम अग्निसे जलते हुए घरसे निकल गये, यह बडा आश्चर्य है? फिर अनेक देशमें तुमने प्रवास किया और वहां कन्या, वस्त्र धनादिके द्वारा तुम्हारा दीर्घकालतक आदर हुआ॥ १९५–१९९ ॥ इस प्रकार राजा भाषण कर रहे थे उतनेमें भीष्माचार्य, सज्जन कर्ण और कौरव वहां आगये। वे यथायोग्य परस्परको मिल गये, और नम्र हुए ॥ २०० ॥ कौरवोंकी मदनोन्मत्तता नष्ट होनेसे वे गर्वरहित हुए वे नीचे मुंह करके बैठ गये। भीष्माचार्य, द्रोणाचार्य और कर्ण आदिक राजाओंने पाण्डव और कौरवोंमें शीघ्र परस्पर क्षमा करवाई। योग्यही है, कि सज्जनोंका संग अच्छेके लियेही होता है॥ २०१–२०२ ॥

[दुर्योधनका शपथपूर्वक कथन] पृथ्वीपति दुर्योधनने "हे नृपगण मैंने पाण्डवोंका लक्षागृह नहीं जलाया और इस विषयमें जिनेश्वर साक्षी है। जिसने पाण्डवोंके घरको तीव्र अग्निसे जलाया होगा वह प्राणियोंको पीडा देनेवाला दुष्ट पुरुष घोर नरकमें पडेगा। आपका यहां जो आगमन हुआ है वह अतिशय उत्तम हुआ है, ऐसा मैं समझता हूं। इससे पुण्ययुक्त हम लोगोंका अपवाद नष्ट हुआ। जिससे पुरुषोंकी सुकीर्ति और अपकीर्ति होती है ऐसे पूर्वजन्मके कर्मका निवारण करनेमें कौन समर्थ है?" इस प्रकार कपटसे दुष्ट दुर्योधनने अपनी दुष्टता आच्छादित की, और मुखसे मिष्ट भाषण किया। योग्य ही है, कि कौन दुष्ट दुष्टता छोडेगा? इस प्रकार सर्व

इति सर्वनरेन्द्राणां चित्तेषु तोषमुल्बणम् । अकुर्वन्कौरवास्तूर्णं सर्वतोषप्रदायिनः ॥२०८
कुम्भकारगृहं प्राप्ताः कुन्तीं नेमुर्नराधिपाः । भक्तिनम्रा विशेषेण कुलवैपुल्यपालिनीम् ॥२०९
धार्तराष्ट्राः पुनः कुन्तीं जननीं नतमस्तकाः । नत्वा संतोषमुत्पाद्य पुरस्तस्थुः स्थिराशयाः ॥
चलन्नेत्रा तदावोचत्कुन्ती दुर्योधनं प्रति । धृतराष्ट्रमहावंशे त्वया दत्ता मषिः कथम् ॥२११
त्वया त्ववसितं किं भो दुर्योधनमहीपते । स्ववंशज्वालनं वंशक्षयकारणमुत्कटम् ॥२१२
ये निर्धूय स्वय वंशं वाञ्छन्ति परमं सुखम् । त एव निधनं यान्ति वह्नितो वेणवो यथा ॥
राज्यार्थश्चार्थिभिः साध्योऽभ्यर्थितः कृच्छ्रदो भवेत् । अन्यथानर्थसंपातो दुःखाय परिकल्पते ॥
तृणाग्रबिन्दुवद्राज्यं नश्वरं किं तदर्थिभिः । वंश्यान्हत्वा समिष्येत तत्तेषां जीवितं हि धिक् ॥
धार्तराष्ट्रा इदं श्रुत्वाधोवक्त्राः कृष्णतां गताः । शशंसुस्तद्गुणांस्तूर्णमपकीर्तिं समागताः ॥२१६
द्रुपदोऽपि ततः शीघ्रं विवाहार्थं समुद्यतः । सुन्दरे मन्दिरे भूपान्पाण्डवान्समवासयत् ॥२१७
ततस्तूर्यनिनादेन जयकोलाहलैः समम् । विवाहमण्डपं प्राप पार्थः सद्रथसंस्थितः ॥२१८

लोगोंको आनंदित करनेवाले कौरवोंने सर्व राजाओंके मनमें शीघ्र उत्कट संतोष उत्पन्न किया ॥ २०३–२०८ ॥ राजाओंने कुंभकारके घर जाकर विशेषतया भक्तिसे नम्र होकर कुलकी मर्यादाका पालन करनेवाली कुन्तीको नमस्कार किया। जिनका मस्तक नम्र हुआ है ऐसे कौरवोंने कुन्तीमाताको नमस्कार कर तथा उसके मनमें सन्तोष उत्पन्न करके स्थिराभिप्रायसे वे उसके आगे खडे हो गये ॥ २०९–२१० ॥ जिसके नेत्र चंचल हो गये हैं, ऐसी कुन्तीने दुर्योधनको इस प्रकार कहा "हे दुर्योधन तूने धृतराष्ट्रके महावंशमें स्याही क्यों पोत दी है ? हे दुर्योधनराजा, अपने वंशको जलाना अपने वंशका क्षय करनेका उत्कट कारण है, तूने ऐसा कार्य करनेका क्यों निश्चय किया था ? अपने वंशको नष्ट कर जो उत्तम सुख चाहते हैं वे अग्निसे जैसे वांस नष्ट होते हैं, वैसे नष्ट होते हैं। राज्यार्थकी चाह सदिच्छासे करनी चाहिये। तब उससे अच्छा फल मिलता है और दुरिच्छासे राज्य चाहोगे तो वह राज्य कष्टदायक होगा और उससे अनर्थोंका आगमन होकर वह दुःखका कारण होगा। राज्य तिनकेके अग्रपर ठहरे हुए जलबिंदुके समान नश्वर है। उसको चाहनेवालोंको क्या अपने वंशजोंका नाश करके उसकी इच्छा करना योग्य होगा ? जो वंशके नाशसे राज्य चाहते हैं उनको धिक्कार हो। धार्तराष्ट्र अर्थात् कौरव कुन्तीके ये कठोर वचन सुनकर नीचे मुँह कर बैठे। उनका मुँह उस समय काला पड गया। अपकीर्तिको प्राप्त हुए उन्होंने कुन्तीके गुणोंकी प्रशंसा की ॥ २११–२१६ ॥ तदनंतर द्रौपदीका विवाह करनेके लिये शीघ्र उद्यत हुए द्रुपद राजाने सुन्दर मन्दिरमें पाण्डवोंको रहनेके लिये स्थान दिया। तदनंतर वाद्योंकी ध्वनिके साथ और जयजयकारके साथ उत्तम रथमें बैठा हुआ अर्जुन विवाहमंडपमें आगया। मण्डपमें वेदीके ऊपर सुमुहूर्त और शुभलग्नके समय विद्याधरकन्याके साथ द्रौपदीका पाणिग्रहण अर्जुनने किया।

सुमुहूर्ते शुभे लग्नेऽधिवेदि स च मण्डपे। पाणिग्रहणमाभेजे द्रौपद्याः खचरीसमम् ॥२१९
दध्वनुः सुन्दरध्वानाः पटहाः प्रकटास्तदा। नेदुर्दुन्दुभयो नित्यं ननृतुर्नर्तकीगणाः ॥२२०
संमानिता महीशाना महीशेन महात्मना। द्रुपदेन सुवस्त्राद्यैर्भूषणैर्वरवस्तुभिः ॥२२१
तद्विवाहं समावीक्ष्य भीष्मकर्णादिभूमिपाः। स्वं स्वं मन्दिरमासेदुः सुन्दरं युवतीजनैः ॥२२२
चतुरङ्गबलोपेताः पाण्डवाः कौरवास्तदा। हस्तिनागपुरं चेलुश्चञ्चलाश्चतुराश्च ते ॥२२३
उत्तोरणं महाकुम्भशोभाभ्राजिष्णुमन्दिरम्। विविशुः सर्वशोभाढ्यं पुरं ते पाण्डुनन्दनाः ॥

या संशुद्धा विबुधशुभधीः शीलसंपत्समेता
दीप्यद्रूपा वरगुणनरं सेवते पञ्च नैव।
तत्संसक्ता भवति हि सती कथ्यते चेत्कथं सा
साध्वीनां वै प्रथममुदिता द्रौपदी वंशभूषा ॥ २२५
कश्चिल्लोको वदति समदो द्रौपदी दिव्यमाप्य
भर्त्रा पञ्चाप्यनुमतिगता सेवते यान्सुशीला।

जिनका ध्वनि सुन्दर है ऐसे पटह उस समय प्रगट बजने लगे। नगारे बजने लगे और नर्तकियोंका समूह नाचने लगा। महात्मा द्रुपद राजाने वस्त्रादिक, भूषण और उत्तम वस्तुओंसे राजाओंका सन्मान किया। द्रौपदी और अर्जुनका विवाह देखकर भीष्म, कर्ण आदि राजगण अपनी स्त्रियोंके साथ अपने अपने सुन्दर मन्दिरोंको चले गये। हाथी, घोडे, रथ और पैदल ऐसे चतुरंग सैन्यके साथ उस समय चंचल और चतुर पाण्डव तथा कौरव हस्तिनापुरको चले गये॥२१७-२२३॥

[द्रौपदीशीलप्रशंसा] जिसका तोरण ऊंचा है, महाकुंभकी शोभासे जिसके मंदिर सुंदर दीखते हैं, संपूर्ण शोभापूर्ण ऐसे हस्तिनापुरमें पाण्डुपुत्रोंने प्रवेश किया ॥ २२४ ॥ जो अतिशय शुद्ध है, जो चतुर और शुभमतिवाली है, जिसकी शील-संपदा पूर्ण है, जिसका रूप तेजस्वी है, ऐसी द्रौपदी उत्तम गुणोंका धारक जो अर्जुन उसकाही वह सेवन करती थी अर्थात् वह अर्जुनही की पत्नी थी। वह युधिष्ठिरादि पांच पाण्डवोंकी पत्नी नहीं थी। पांचोपर यदि वह आसक्त हो जाती तो वह 'सती' कैसे मानी जाती? पति और जनकके वंशोंका अलंकाररूप यह द्रौपदी साध्वीस्त्रियोंमें प्रथम अर्थात् श्रेष्ठ कही गई है।" २२५॥ कोई उन्मत्त लोक कहते हैं, कि सुशील द्रौपदी अपने पतिकी अनुमतिसे दिव्य करके पांचों पाण्डवोंका सेवन करती थी। जिनकी चतुर बुद्धि है ऐसे पांच पाण्डव एक द्रौपदीमें आसक्त थे यह बात कैसी योग्य है? दरिद्रियोंकी भी पत्नी सदैव भिन्न भिन्न होती है॥२२६॥ यदि द्रौपदी पांच पाण्डवोंमें आसक्त हो जाती, तो किस प्रकारसे उसमें सतीपना आता इसका विमलमतिवालोंने मनमें विचार करना चाहिये। उत्तम धैर्ययुक्त जिनकी बुद्धि है ऐसे सज्जन लोक उस द्रौपदीके साध्वीपनाकी सिद्धि करें। परंतु जो अपने मतमें

एकासक्ता विपुलमतयः पाण्डवास्ते कथं स्यु-
र्दारिद्र्याणां भवति वनिता भिक्षमिका सदैव ॥ २२६
पञ्चासक्ता कथमपि भवेद् द्रौपदी चेत्सतीत्वम्
तस्याः स्यात्किं विमलमतयश्चेति चित्ते विचार्य ।
तां संशुद्धां सुधृतिधिषणाः साधयन्तां वदन्ति
एवं तस्या निजमतरतास्ते क्व यास्यन्ति पापाः ॥ २२७
यः शीलं श्रुतिसातदं शिवकरं सत्सेव्यमाशंसितम्
साद्भिः संगसुधारसैकरसिकं संसारसारं सदा ।
सत्कुर्वीत समाश्रयत्यसमकं सोऽशोकशङ्काशमम्
संवित्तिं च सुवृत्तमेव सकलं संसक्तसंगापहम् ॥ २२८

इति श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपालसाहाय्यसापेक्षे पार्थद्रौपदीविवाहपाण्डवहस्तिनागपुरसमागमवर्णनं नाम पञ्चदशं पर्व ॥ १५ ॥

। षोडशं पर्व ।

श्रेयोजिनं सदा श्रेयःश्रेयांसं श्रेयसे श्रये । सश्रियं श्रितलोकानां श्रेयःकर्तारमुन्नतम् ॥ १

(कुमतमें) रत हैं वे पापी कहा जायेंगे, किस दुर्गतिमें जायेंगे हम नहीं कह सकते हैं ॥ २२७ ॥ ज्ञान और सुखको देनेवाला, मोक्षको प्रकट करनेवाला, सज्जनोंके द्वारा सेवनीय और सज्जनोंसे प्रशंसित, सज्जनोंकी संगतिरूपी अमृतरसका रसिक और हमेशा संसारमें सारभूत ऐसे शीलका जो पुरुष पूजा करता है, और उसका आश्रय लेता है, वह शोक और शंकासे रहित शमभावको प्राप्त होता है वह पुरुष इस शीलके आश्रयसे उत्तम स्वात्मानुभवको प्राप्त होता है,तथा जिसके ऊपर आसक्ति उत्पन्न होती हैं ऐसे परिग्रहका त्यागरूप जो उत्तम चारित्र उसे प्राप्त कर लेना है ॥२२८॥

ब्रह्म श्रीपालकी सहायता लेकर शुभचन्द्रभट्टारकजीने रचे हुए भारत नामक पाण्डव-
पुराणमें अर्जुन और द्रौपदीका विवाहका और हस्तिनापुरमें पाण्डवोंके प्रवेशका
वर्णन करनेवाला पंद्रहवा पर्व समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

[पर्व सोलहवां]

जो अन्तरंग और बहिरंग लक्ष्मीसे युक्त हैं अर्थात् अनन्त ज्ञानादि अन्तरंग लक्ष्मी और समवसरणकी शोभारूप बहिरंग लक्ष्मीसे युक्त हैं तथा आश्रितभव्योंका जो उत्कृष्ट हित करते हैं, जो श्रेयःश्रेयान् है अर्थात् तीर्थकरपुण्यसे सबसे श्रेष्ठ हैं ऐसे श्रेयान् जिनेश्वरका मैं कल्याणके लिये हमेशा आश्रय लेता हूं ॥ १ ॥

पाण्डवाः कौरवास्तत्र राज्यार्धार्धं विभज्य च । वसुंधरां हयांस्तुङ्गान्दन्तिनो मदमेदुरान् ॥२
रथान्सार्थांस्तथा योधॄन्लक्ष्मीकोशं परं समम् । अर्धार्धं भुञ्जते सर्वेऽन्योन्यं प्रीतिमुपागताः॥३
अथेन्द्रपथमावास्य स्थानीयं तत्र सुस्थिरः । युधिष्ठिरः स्थिरं तस्थौ स्थगिताशेषशात्रवः ॥४
तत्रैवावास्य विपुलं पुरं श्रीविपुलोदरः । नाम्ना तिलपथं पथ्यं संतस्थे पृथुमानसः ॥५
पार्थः सुनपथे व्यर्थीकुर्वन्वैरिनरेश्वरान् । पालयन्परमां पृथ्वीं तत्र तस्थौ स्थिराशयः ॥६
नकुलः सफलं कुर्वन् कुलं जलपथस्थितः । वणिक्पथपुरे प्रीत्या सहदेवः स्थितिं व्यधात् ॥७
एवं स्वस्वनियोगेन पाण्डवाः परमोदयाः । भुञ्जते परमां लक्ष्मीं सदा सातसमैषिणः ॥८
युधिष्ठिरेण भीमेन याश्च पूर्वं पुरे पुरे । परिणीताः समानीता राजपुत्र्यस्तदाखिलाः ॥९
कौशाम्ब्याश्च समानीय विन्ध्यसेनसुतां पराम् । तया युधिष्ठिरः प्राप परमं पाणिपीडनम् ॥
भीमादयो भुवं पान्तो युधिष्ठिरनियोगतः । भजन्तः परमं सातं तस्थुः सेवकवत्सदा ॥११
धनैर्धान्यैर्हिरण्यैश्च न हि तेषां प्रयोजनम् । परं साधनसंवृद्ध्यै प्रयोजनमभूत्तदा ॥१२
दन्तावलतुरङ्गाणां वर्धनं विदधुर्ध्रुवम् । कौन्तेयाः कृतितां प्राप्ता विकसन्मुखपङ्कजाः ॥१३

[पाण्डवादिकोंका इंद्रपथादिकोंमें निवास] सर्व पाण्डव और कौरव उस हस्तिनापुरमें राज्यका आधा आधा विभाग करके आपसमें स्नेहसे रहने लगे । पृथ्वी, ऊंचे घोडे, मदोन्मत्त हाथी, धन, शस्त्रादिकोंसे सहित रथ, योधागण, लक्ष्मी, कोश, इन सब उत्तम पदार्थोंका आधा आधा विभाग कर उपभोग लेने लगे ॥ २-३ ॥ जिन्होंने सर्व शत्रुओंको स्थगित किया है ऐसे सुस्थिर-धैर्यवान् युधिष्ठिर इन्द्रपथ नामक नगर बसा कर उसमें स्थिरतासे रहने लगे ॥ ४ ॥ जिनका मन उदार है, ऐसे श्रीविपुलोदर अर्थात् भीमसेन उसी कुरुजांगल देशमें लोगोंको सुखकर ऐसे तिलपथ नामक बडे नगरमें रहने लगे ॥ ५ ॥ वैरी राजाओंको व्यर्थ करनेवाला, गंभीर आशयवाला, अर्जुन, उत्तम पृथ्वीको पालता हुआ सुनपथमें रहने लगा ॥ ६ ॥ अपने कुलको सफल करनेवाला नकुल ' जलपथ ' नामक नगरमें रहने लगा और सहदेव वणिक्पथ नामक नगरमें प्रेमसे रहने लगा ॥ ७ ॥ इस प्रकार उत्तम वैभववाले वे पाण्डव अपने अपने नियोगके-हकके अनुसार उत्तम राजलक्ष्मीका उपभोग लेने लगे । वे सब पाण्डव हमेशा सब लोगोंको सुख प्राप्त होवे ऐसी इच्छा रखते थे ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर और भीमने पूर्वकालमें जिनके साथ विवाह किया था उन संपूर्ण राजकन्याओंको वे वहीं ले आये ॥ ९ ॥ कौशाम्बीसे विन्ध्यसेन राजाकी सुन्दर कन्याको लाकर युधिष्ठिरने उसके साथ उत्तम विवाह किया ॥ १० ॥ भीमादिक युधिष्ठिरकी आज्ञासे पृथ्वीका पालन करते थे । उत्तम सुखोंको भोगते हुए हमेशा उसके सेवकके समान रहते थे । उनको धन, धान्य, सुवर्णादिपदार्थोंकी आवश्यकता नहीं थी । परंतु अपना सैन्य बढानेका प्रयोजन उनको मालूम था । वे हाथी और घोडोंका सैन्य निश्चयसे बढाने लगे । जिनका मुखकमल प्रफुल्ल है ऐसे वे कुन्तीके पुत्र अब

गाङ्गेयमिव गाङ्गेयं गुरुं गर्वपरिच्युताः । सावधानतया नित्यं सेवन्ते पाण्डुनन्दनाः ॥१४
तेषामैक्यं विलोक्याशु कौरवो वचनं जगौ । पितामह किमारब्धं त्वया दुर्णयचेतसा ॥१५
पाण्डवं कौरवीयं च समभागेन भुञ्जताम् । राज्यं पाण्डवपक्षत्वं कथं हि क्रियते त्वया ॥१६
क्रोधसंमिश्रितं वाक्यं तस्याकर्ण्य पितामहः । उवाच कौरवाधीश शृणु तत्रास्ति कारणम्॥१७
इमे सत्पुरुषाः शूराः सन्ति सद्गुणभाजनम् । न्यायनिश्चयवेत्तारः सद्धर्मामृतपायिनः ॥१८
न शोचन्ते गतं वस्तु भविष्यच्चिन्तयन्ति न । वर्तमानेषु वर्तन्ते ततस्ते मम वल्लभाः ॥१९
विष्टरश्रवसा तेन सव्यसाची सुमोहतः । एकदाकारितस्तूर्णमूर्जयन्ते महागिरौ ॥२०
सुवंशं सुमहापादं तिलकाढ्यं महोन्नतम् । अनेकप्राणिसंकीर्णं ददर्श तं नरं यथा ॥२१
कृष्णस्तत्र समायासीदद्रौ रैवतके वरे । अर्जुनोऽपि तथा तत्र रन्तुं संसक्तमानसः ॥२२

कृतकृत्य हुए थे ॥ ११-१३ ॥

[पाण्डवोंसे दुर्योधनकी ईर्ष्या] गर्वरहित पाण्डुपुत्र गंगाके जलसमान निर्मल, तथा सबसे ज्येष्ठ-वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध ऐसे भीष्माचार्यकी एकाग्रचित्तसे सेवा करते थे। पाण्डव और भीष्माचार्यके अभिन्न स्नेहको देखकर कौरव-दुर्योधन बोलने लगा- " हे पितामह दुर्नीतिमें जिनका चित्त है ऐसे आप यह क्या अकार्य कर रहे हैं? पाण्डव और हम कौरव राज्य समभागसे भोग रहे हैं। तथापि आप पाण्डवोंका पक्ष क्यों धारण करते हैं? आपका उनके ऊपर अधिक स्नेह क्यों दीखता है? दुर्योधनका क्रोधमिश्रित वाक्य सुनकर भीष्माचार्य बोलने लगे कि हे दुर्योधन जो कारण है उसका स्पष्टीकरण मैं करता हूं, तू सुन। ये पाण्डव सत्पुरुष हैं, शूर हैं और सद्गुणोंके आधार हैं, ये न्यायका निश्चय जाननेवाले हैं और उत्तम जिनधर्मरूप अमृतको सदैव प्राशन करते हैं। जो वस्तु बीत गई नष्ट हुई-उसके विषयमें शोक नहीं करते हैं। तथा आगामी वस्तुके विषयमें चिन्ता नहीं करते हैं। केवल वर्तमानमें अपनी दृष्टि रखते हैं इस लिये वे मुझे प्रिय लगते हैं ॥ १४-१९ ॥

[कृष्णके साथ अर्जुनकी क्रीडा] किसी समय कृष्णने प्रेमसे अर्जुनको ऊर्जयन्त नामक महापर्वतपर शीघ्र आमंत्रण देकर बुलाया। अर्जुनने ऊर्जयन्त पर्वतको अपने समान देखा अर्थात् अर्जुन सुवंश-उत्तमवंशमें जन्मा हुआ था, पर्वत भी सुवंश-उत्तम बांसोंके वनसे युक्त था। अर्जुन सुमहापाद-उत्तम और बडे पांववाला था। पर्वत उत्तम समीपके छोटे पर्वतोंसे युक्त था। अर्जुन तिलकाढ्य-तिलकसे युक्त था और पर्वत तिलकवृक्षोंसे भरा हुआ था। अर्जुन अनेक प्राणिसंकीर्ण-अनेक प्राणिओंसे हाथी घोडा आदि प्राणियोंसे युक्त था अर्थात् उनका रक्षण करता था। और पर्वत अनेक प्राणियोंसे व्याप्त था। अर्जुन महोन्नत-महावैभवशाली था और पर्वत अतिशय ऊंचा था। उस उत्तम रैवतक पर्वतपर कृष्ण क्रीडा करनेके लिये आया और अर्जुन भी वहां क्रीडा

समालिङ्ग्य पुनस्तत्र नरनारायणौ मुदा। ऊर्जयन्ते महाचित्तौ चिरं चिक्रीडतुर्वरौ ॥२३
वनक्रीडां प्रकुर्वाणौ शक्रप्रतिशक्रसन्निभौ। रेमाते रागसंरक्तौ नरनारायणौ सदा ॥२४
कदाचिद्वनखेलाभिः कदाचिज्जलमज्जनैः। कदाचिच्चन्दनोद्भूतनिर्यासैः कुङ्कुमाश्रितैः ॥२५
ऊर्जयन्ते समारोहैरवरोहैः कदाचन। रम्भाभनर्तकीनृत्यैर्नानागीतैस्तदुद्भवैः ॥२६
कदाचित्कन्दुकक्रीडां कुर्वाणौ तौ नरोत्तमौ। रेमाते स्नेहसंबद्धौ चिरं तत्र महागिरौ ॥२७
विष्णुना सह संप्राप ततो द्वारावतीं पुरीम्। पुरन्दरसुतः श्रीमान् पुरन्दर इवोन्नतः ॥२८
अर्जुनो विष्णुना साकं रममाणश्चिरं स्थितः। घोटकैर्दन्तिसंदोहैर्नरेन्द्रैः क्रीडनोद्यतैः ॥२९
अथैकदा पृथुः पार्थो गच्छन्तीं स्वच्छमानसाम्। सुभद्रां भद्रभावाढ्यां संवीक्ष्येति व्यचिन्तयत्॥
केयं सुरूपशोभाढ्या साक्षाच्छक्रवधूरिव। नदन्नूपुरनादेन जयन्तीव दिगङ्गनाः ॥३१
कटाक्षक्षेपमात्रेण जीवयन्ती मनोभुवम्। यं ददाह पुरा योगी ध्यानकृपीटयोनिना ॥३२
किमियं रतिरेवाहो पद्मा पद्मावती किमु। रोहिणी सूर्यकान्ता वा सीता वा किन्नरी पुनः ॥
लभ्यते चेदियं रम्या मया मृगविलोचना। वक्त्रेन्दुजिततामस्का तदाहं स्यात्सुखी महान् ॥३४

करनेके लिये आसक्तचित्त होकर आया। वे महान उदारचित्त दोनों महापुरुष नर और नारायण आनंदसे अन्योन्यको आलिंगन देकर उस पर्वतपर दीर्घकालतक क्रीडा करने लगे। इन्द्र और प्रतीन्द्रके समान, प्रेमसे रंगे हुए, वे नर-नारायण हमेशा वनक्रीडा करते हुए वहां रममाण हुए। वे नरोत्तम कभी वनक्रीडा करते थे, कभी जलविहार करते थे, कभी केशरमिश्रित चन्दनरसकी उवटन देहपर लगाते थे। कभी ऊर्जयन्त पर्वतपर चढ जाते थे और फिर उतरते थे। कभी वे दोनों रंभाके समान नर्तकीयोंके नृत्योंसे, कभी उन नर्तकीयोंके गायन सुननेसे अपने मनको रमाते थे। अन्योन्य-स्नेहतत्पर वे नर-नारायण उस पर्वतपर कन्दुक क्रीडा करते हुए दीर्घकालतक रममाण हुए ॥ २०-२७ ॥ इन्द्रके समान उन्नत, श्रीमान् इन्द्रपुत्र अर्जुन विष्णुके साथ उस पर्वतसे द्वारावती नगरीको आया। अर्जुनने विष्णुके सहवासमें क्रीडाके लिये उद्यत ऐसे हाथी, घोडे और राजाओंसे चिरकाल रमता हुआ रहा ॥ २८-२९ ॥

[अर्जुनके द्वारा सुभद्राहरण] इसके अनंतर एक दिन महापुरुष अर्जुनने शुभविचारसे पूर्ण, निर्मल अन्तःकरणवाली सुभद्रा आगे जाती हुई देखकर इस प्रकार विचार किया। "साक्षात् इन्द्रकी स्त्री शचीके समान रूपवाली यह कन्या कौन है ? रणत्कार करनेवाले नूपुरके शब्दोंसे मानो यह दिशारूपी स्त्रियोंको जीतती है। जिसको पूर्व कालमें योगियोंने ध्यानरूपी अग्निसे दग्ध किया था, ऐसे मदनको यह कन्या केवल कटाक्षक्षेपहीसे जिलानेवाली है। क्या यह मदनकी स्त्री रति है ? अथवा लक्ष्मी है ? किंवा पद्मावती है ? यह रोहिणी, सूर्यकी स्त्री, अथवा सीता किंवा किन्नरी है ? यह रमणीय हरिणनयना, जिसने अपने मुखचन्द्रसे अंधकारको नष्ट किया है, यदि मुझे प्राप्त होगी

विनानया नरत्वं हि निष्फलं निश्चितं मया । अतः केनाप्युपायेन करोमीमां स्ववल्लभाम् ॥३५
इत्यातर्क्य स पप्रच्छ पार्थो दामोदरं मुदा । कस्येयं तनुजा साक्षाल्लक्ष्मीरिव सुलक्षणा ॥३६
हरिराह विहस्याशु किं न वेत्सि धनंजय । सुभद्रा नामतः कम्रा स्वसा मे रूपशालिनी ॥
पार्थः प्राह हसित्वाथ ममेयं मातुलात्मजा । परिणेतुं मया योग्या मत्तमातङ्गगामिनी ॥३८
अभाणीद्भास्वरो भोगिमर्दनश्च धनंजय । दत्तेयं च मया तुभ्यं गृहीत्वा गम्यतां त्वया ॥
इत्याकर्ण्य सुकौन्तेयस्तदाशासक्तमानसः । क्षणं तस्थौ पुनस्तस्यास्यपद्मं संविलोकयन् ॥४०
तस्याकूतं परिज्ञाय मुरजिन्मृदुमानसः । स्वस्यन्दनमदात्तस्मै वायुवेगाश्ववेगिनम् ॥४१
सुभद्रां सन्मुखीकृत्य नानोपायैर्धनंजयः । तदासक्तां विधायाश्वारोपयत्स्यन्दनं निजम् ॥
सरथः पाण्डवस्तूर्णं कन्यां तां कनकप्रभाम् । वायुवेगाश्ववेगेन चचाल वायुवेगवत् ॥४३
सुभद्राहरणं श्रुत्वा तदा यादवपुङ्गवाः । क्रुद्धाः संनाहसंबद्धा दधावुर्धन्विनो ध्रुवम् ॥४४
कवचेन पिधायाङ्गं दधावुः परिघान्विताः । केचित्कुन्तकराः केचिद्दीप्यत्कृपाणपाणयः ॥४५

तो मैं अतिशय सुखी होऊंगा। इसके विना पुरुषपना निष्फल है, ऐसा मैंने निश्चय किया है। इस लिये इसे किसी भी उपायसे मैं अपनी वल्लभा बनाऊंगा" ॥३०-३५॥ ऐसा विचार कर वह अर्जुन दामोदर-कृष्णको आनंदसे पूछने लगा, कि "हे नारायण साक्षात् लक्ष्मीसमान सुंदर, उत्तम लक्षण-वाली यह कन्या किसकी है?" कृष्ण हंसकर शीघ्र कहने लगे कि, "हे धनंजय, तुम नहीं जानते हो? यह मेरी सौंदर्यशालिनी मनोहर सुभद्रा नामकी भगिनी है"। कृष्णके भाषणके अनंतर अर्जुन हंसकर कहने लगा, कि यह मेरे मामाकी कन्या है, मत्त हाथीके समान गतिवाली यह कन्या मुझे विवाह करने योग्य है" ॥ ३६-३८ ॥

[सुभद्राहरण] कालिया नागका मर्दन करनेवाले तेजस्वी कृष्णने कहा कि "हे धनंजय मैंने यह कन्या तुझे दी है। इसको लेकर तुम जा सकते हैं"। यह कृष्णका भाषण सुनकर उसकी-सुभद्राकी आशासे आसक्तचित्तवाला अर्जुन क्षणपर्यन्त कृष्णका मुखकमल देखते बैठा। उसके अभिप्रायको जानकर-मृदु अन्तःकरणवाले, मुरराक्षसको जीतनेवाले श्रीकृष्णने वायुके समान वेग-वाले घोडोंसे जिसको वेग उत्पन्न हुआ है ऐसा रथ अर्जुनको दिया। अनेक उपायोंसे धनंजयने सुभद्राको अपने अनुकूल करके अपनेमें आसक्त बनाया, और अनंतर अपने रथपर सुवर्णके समान कान्तिवाली उस कन्याको शीघ्र उसने बैठाया। रथसहित अर्जुनने वायुवेगके समान घोडोंके वेगसे वायुवेगके समान गमन किया ॥ ३९-४३ ॥

उस समय सुभद्राका हरण अर्जुनने किया यह वार्ता सुनकर श्रेष्ठ यादव राजा कुपित हुए, और कवच पहनकर धनुर्धारी वीर निश्चयसे उसके-अर्जुनके पीछे पीछे भागने लगे ॥ ४४ ॥ कईक योधा लोक कवचसे अपना शरीर ढँककर और हाथमें परिघानामके शस्त्र लेकर दौडने लगे।

केचिद्वररथारूढाः केचित्संसक्तशक्तयः । केचिदुत्तुङ्गतुरगतरङ्गैस्तनभस्तलाः ॥४६
केचिदूचुर्भटाः किं भो वाजिना वारणेन च । कृपाणैर्नर किं यूयं समुद्घाटितविग्रहाः ॥४७
यादवानां सुतां हृत्वा स क यास्यति दुर्जनः । अर्जुनश्चार्जुनीभूय परेऽवादिषुरित्यतः ॥४८
समुद्र इव गम्भीरश्चतुरङ्गसुवीचिभृत् । समुद्रविजयो भूपः प्रतस्थे बान्धवैः सह ॥४९
बलभद्रो बलैः पूर्णो हयहेषारवोन्नतैः । अयासीच्च रणातिथ्यं समर्थः कर्तुमुद्यतः ॥५०
हरिर्हरिरिवोत्तस्थे शार्ङ्गं धनुषमावहन् । मन्दं मन्दं बलोपेतः कुर्वन्पञ्चाननारवम् ॥५१
अन्येऽपि भूमिपा भूरिभूतयो भुवनोत्तमाः । बभ्रमुर्भूतलं भीतिमुक्ता भास्वन्त उद्भटाः ॥५२
इतस्ततो हरिर्गत्वा व्यावृत्त्यागाद्बलैः समम् । स्वां पुरीं तत्र चाहूय बलादीन्भूपतीञ्जगौ ॥
विस्तरेण किमत्राहो कार्यं पाथाय दीयताम् । कन्या हरणदोषेण दुष्टा सल्लक्षणान्विता ॥५४
पुनरस्मै प्रदातुं हि भागिनेयाय भासुरा । योग्येयमिति संचर्च्य देया तस्मै स्वहस्ततः ॥५५
वृथा कलिर्न कर्तव्योऽनेनेति शाम्बरं वचः । आकर्ण्य सज्जनः सर्वस्तथेति प्रतिपन्नवान् ॥५६
ततः सन्मन्त्रिणो मार्गसन्मार्गणसमुद्यताः । तदानयनसंसिद्ध्यै प्रेषिता हरिणा तदा ॥५७

कईयोंके हाथमें भाले थे, कईयोंके हाथमें तेजस्वी तरवारें थीं। कइक उत्तम-रथपर आरूढ होकर हाथमें शक्तिनामक शस्त्र लेकर दौडने लगे। कितनेक वीर पुरुष ऊंचे घोडेरूपी तरङ्गोंसे आकाशको व्याप्त करते हुए चलने लगे। कई वीरपुरुष अपना शरीर खुला करकेही कहने लगे, कि हे वीरो, हाथीसे और घोडेसे क्या प्रयोजन है? अपनेको सिर्फ खड्गोंसे प्रयोजन है। यादवोंकी कन्या लेकर वह दुर्जन अर्जुन शुभ्र होकर कहा जायगा, इस तरह कोई वीर पुरुष कहने लगे ॥ ४५-४८ ॥ चतुरंग सैन्यरूपी तरंगोंको धारण करनेवाला मानो समुद्र ऐसे समुद्रविजय राजा अपने बांधवोंके साथ प्रयाण करने लगे। घोडोंके हेषारवोंसे उन्नत सैन्यके साथ समर्थ बलभद्र रणमें अर्जुनकी पाहुनगत करनेके लिये उद्यत होकर प्रयाण करने लगे। शार्ङ्गधनुष्य धारण करनेवाला हरि-श्रीकृष्ण सिंहके समान सिंहध्वनि करते हुए अपने सैन्यके साथ मन्द मन्द प्रयाण करने लगे ॥ ४९-५१ ॥ विपुल ऐश्वर्यके धारक, जगच्छ्रेष्ठ, भयरहित, तेजस्वी उद्भट ऐसे अन्य राजा भी भूतलमें प्रयाण करने लगे ॥ ५२ ॥ श्रीकृष्ण इधर उधर थोडासा प्रयाण कर पुनः सैन्यके साथ अपने नगरको लौटकर आये और वहां बलराम आदि भूपोंको बुलाकर वे इस प्रकार कहने लगे।— "यहां विस्तारसे कुछ कार्य नहीं है, उत्तम लक्षणवाली अपनी सुभद्रा कन्या हरणदोषसे दूषित हुई है। पुनः अर्जुन तो अपना भानजा है। उसको यह सुंदर कन्या देना योग्य है, इस लिये आदर करके उसे वह कन्या अपने हाथसे अर्पण करना चाहिये। इसके साथ व्यर्थ कलह करना योग्य नहीं है। ऐसा श्रीकृष्णका वचन सुनकर बलभद्रादिक सज्जनोंने 'तथास्तु' कहकर श्रीकृष्णका वचन मान्य किया ॥ ५३-५६ ॥ तदनंतर उपाय ढूंढनेके लिये उद्युक्त हुए मंत्री अर्जुनको लानेके लिये

ते गत्वा तत्र संनत्य नरं विनयसंयुताः । कार्यसिद्धयै वचो दत्त्वा निन्युर्द्वारावतीं पुरीम् ॥
तत्रैत्य परमोत्साहादातोद्यवरनादतः । नटनटीनटोत्साहान्नानावित्तप्रदानतः ॥५९
मण्डपे सुमुहूर्तेऽथ सुभद्रां परिणीतवान् । पार्थः परमया प्रीत्या रन्तुकामस्तथानिशम् ॥६०
तद्विवाहक्षणे क्षिप्रं चत्वारश्चतुरा नराः । पाण्डवास्तद्विवाहाय हूता यादवराजभिः ॥६१
ततो लक्ष्मीमतिं प्राप ज्येष्ठः शेषवतीं पराम् । भीमोऽथ नकुलो रम्यां विजयां चानुजो रतिम् ॥
एवं सर्वेषु भूपेषु यथास्थानं गतेषु च । कृष्णः पार्थेन संप्राप रन्तुं चोपवनं परम् ॥६३
तत्र तौ सफलौ रम्ये रेमाते माधवार्जुनौ । जलकल्लोलमालाभिश्छादयन्तौ परस्परम् ॥६४
तावता गच्छता तत्र ब्राह्मणेन धनंजयः । अवाचि चारुणा वाक्यं परं संतोषदायिना ॥६५
भो पार्थ भोजनं देहि मां प्रीणय सुवस्तुभिः । अहं दावानलो राजंस्त्वं श्रीकौरवनन्दनः ॥६६
खण्डयस्व वनं मेऽद्यानुचरैश्चरितार्थिभिः । श्रुत्वा तद्वचनं पार्थो बभ्भणीति स्म भासुरः ॥६७
रथो नास्ति ममाद्यापि धनुर्धर्ता न कश्चन । सर्वकार्यकरा दिव्यशरा वर्तन्त एव न ॥६८

हरिने भेज दिये। वे मंत्री गये। विनयनम्र होकर उन्होंने अर्जुनको नमस्कार किया और कार्यसिद्धिके लिये वचन देकर उसे द्वारावती नगरीमें ले गये॥ ५७–५८॥

[यादवकुलकी कन्याओंसे पांडवोंका विवाह] बडे उत्साहसे अर्जुन द्वारावतीमें आया। उस समय अनेक वाद्योंका ध्वनि होने लगा। नृत्य करनेवाले नट और नटियोंका उत्साह देखकर अर्जुनने उनको बहुत द्रव्य दिया और मण्डपमें सुमुहूर्तपर सुभद्राके साथ उसने अपना विवाह किया। उसके अनंतर अत्यंत प्रीतिसे उसके साथ वह हमेशा क्रीडा करने लगा॥ ५९–६०॥ ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिरका विवाह लक्ष्मीमतीके साथ, भीमका विवाह सुंदर शेषवती कन्याके साथ, नकुलका विवाह रमणीय विजयाके साथ और सहदेवका विवाह रतिदेवीके साथ हुआ। इस प्रकार विवाह होनेपर सर्व राजा अपने अपने स्थानको चले जानेपर कृष्ण अर्जुनके साथ उत्तम उपवनमें क्रीडा करनेके लिये गये॥ ६१–६३॥ उस रम्य वनमें जिनकी इच्छा सफल हुई है, ऐसे वे श्रीकृष्ण और अर्जुन जलकी तरंगमालाओंसे अन्योन्यको आच्छादित करते हुए क्रीडा करने लगे॥ ६४॥

[खाण्डववनदाह] अतिशय सन्तोष देनेवाले दावानल नामक ब्राह्मणने उपवनमें आकर मधुर वाक्योंसे अर्जुनसे बोलना प्रारंभ किया। "हे अर्जुन मुझे भोजन दे। अच्छी वस्तुयें देकर आनंदित कर। हे राजन्, मैं दावानल हूं, और तू लक्ष्मीसंपन्न कौरववंशको आनंदित करनेवाला अर्जुन है। आज कृतकृत्य होनेवाले मेरे अनुचरोंको साथमें लेकर खाण्डव नामक वनका नाश कर। दावानलका भाषण सुनकर तेजस्वी अर्जुन उसे बोला, कि "हे दावानल, आज मेरे पास रथ नहीं है, तथा कोई धनुर्धारी मनुष्य भी नहीं हैं और सर्व कार्य करनेवाले दिव्यशर भी नही हैं" ॥ ६५–६८॥ अर्जुनका भाषण सुनकर शत्रु जिसके साथ नहीं लड सकेंगे ऐसा मर्कटचिह्नसे

तच्छ्रुत्वा स द्विजस्तस्मै कपिलाञ्छनलाञ्छितम् । द्विड्भिर्योद्धुमशक्यं च समदाद्रथमुत्तमम् ॥
पुनर्विहस्य देवोऽस्मै द्विजवेषधरोऽप्यदात् । वह्निवारिभुजंगाख्यतार्क्ष्यमेघमरुच्छरान् ॥७०
गोविन्दाय पुनः सोदाद्गदां तार्क्ष्यध्वजं रथम् । अन्यानि बहुरत्नानि नानाकार्यकराणि च ॥
लब्ध्वा पार्थ इमान्बाणांस्तत्र दावानलाभिधम् । मुमोच बाणमादाय वनज्वालनहेतवे ॥७२
देवोऽवोचत्पुनर्यद्य यच्च तुभ्यं हि रोचते । तज्ज्वालय सुरेन्द्रो वा यमो न रक्षितुं क्षमः ॥७३
तावद्दावानलो लग्नो वनं दग्धुं समग्रतः । वनेचरगणं सर्वं ज्वालयंस्त्रस्तमानसम् ॥७४
अग्निज्वाला गता व्योम्नि ज्वालयन्ती च पक्षिणः । फणिनः करिणः सर्वान्मृगेन्द्रान्मृगशावकान्
ज्वालयामास स सर्वाञ्शाखिनस्तृणसंहतीः । बुभुक्षितो यमः क्रुद्धः किं नात्ति सुरमानवान्॥
सर्वेषां ज्वालनं वीक्ष्य तक्षको नागनिर्जरः । क्रुद्धो देवगणांस्तूर्ण स्माकारयति तत्क्षणम् ॥७७
देवौघाः क्रोधमापन्ना दधावुरिति वादिनः । तिष्ठ तिष्ठ महामर्त्य क्व यास्यस्मत्सुकोपतः ॥७८
ततस्तैर्निखिलं व्योम मेघमालाकुलं कृतम् । जगर्ज घनसंघातः कज्जलाभो महाध्वनिः ॥७९
गर्जन्तं तं तदा वीक्ष्य समर्थः स कपिध्वजः । जनार्दनं जगादेति विद्युद्वन्तं च दर्शयन् ॥८०

युक्त उत्तम रथ दावानल ब्राह्मणने अर्जुनको दिया। फिर हँसकर ब्राह्मणवेषी देवने अर्जुनको अग्नि जल, सर्प, गरुड, मेघ, वायु इस नामके और अग्न्यादिक उत्पन्न करनेवाले बाण दिये। पुनः श्रीकृष्णको उसने गदा दी और गरुडध्वजवाला रथ दिया। अनेक कार्य करनेवाले दूसरे बहुत रत्न भी दिये ॥ ६९-७१ ॥ उपर्युक्त बाण प्राप्त करके वन जलानेके लिये दावानल नामका बाण लेकर उसे अर्जुनने वनपर छोड दिया। पुनः दावानल देवने अर्जुनको कहा कि 'जो जो वस्तु जलाना तुम्हें पसंद होगा उसे जला दो। उस वस्तुकी सुरेन्द्र अथवा यम भी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं है। ॥ ७२-७३ ॥ उस समय दावानल बाण संपूर्ण वनको तथा जिनका मन भयभीत हुआ है ऐसे संपूर्ण वनचर-प्राणियोंको जलाने लगा। अग्निज्वाला आकाशमें गई और उसने सर्व पक्षी, सर्प, हाथी, सिंह, और हरिणोंके शिशु जलाये। वह अग्निज्वाला सर्व वृक्षोंको और तृणसमूहोंको जलाने लगी। योग्यही है, कि भूखा और कुपित यम सुरोंको और मानवोंको क्यों नहीं खायेगा अर्थात् अवश्य भक्षण करेही गा ॥ ७४-७६ ॥ संपूर्ण त्रस-स्थावरादि वस्तु जलती हुई देखकर तक्षक नामक नागदेव क्रुद्ध होकर तत्काल सब देवोंको बुलाने लगा। सब देवसमूह अतिशय क्रुद्ध हुआ और हे महापुरुष हमारे कोपसे बचकर तू कहां जाता है, खडे हो जावो, स्थिर होवो, ऐसे बोलते हुए वे दौडने लगे ॥ ७७-७८ ॥ तदनंतर उन देवोंने संपूर्ण आकाश मेघसमूहसे आच्छादित किया। कज्जलजैसे काले, महाध्वनि करनेवाले मेघसमूह गर्जना करने लगे। गर्जना करते हुए मेघसमूहको देखकर सामर्थ्यशाली वह अर्जुन मेघसमूहको दिखाता हुआ श्रीकृष्णको इस प्रकारसे कहने लगा। हे मुरारे, इन देवसमूहको देखो देखो मैं इनको बाणोंके द्वारा

पश्य पश्य मुरारे त्वं बाणतः सुरसंततिम् । भनज्म्यहं च भक्ष्यामि यशोराशिं यतः स्वयम् ॥
दावानलमहाबाण यथेष्टं तिष्ठ निष्ठुर । शीघ्रेण सुरसंघातं घातयामि सुघस्मरम् ॥८२
इत्युक्त्वा स करे कृत्वा गाण्डीवं पाण्डुनन्दनः । ज्यायामारोप्य संचक्रे टंकारबधिरं जगत् ॥
तट्टंकाररवं श्रुत्वा यमहुंकारसंनिभम् । तत्क्षणं सुरसंघाता भेणुर्यद्दर्शितं भयम् ॥८४
किरीटिन्कपटं कृत्वा वनं दग्ध्वा सुराग्रतः । क्व यास्यसि सुपर्णाग्रे बलवान्पन्नगो यथा ॥८५
अथोग्रधारया देवा ववृषुः क्षुब्धमानसाः । छादयन्तो धरां सर्वां तदिच्छां छेत्तुमिच्छवः॥८६
तदा स शरसंघातैर्विरच्य वरमण्डपम् । वृष्टिं कर्तुं न दत्ते स्म जज्वाल ज्वलनोऽधिकम् ॥८७
द्विगुणस्त्रिगुणस्तूर्णं स ववर्ष चतुर्गुणम् । मेघौघो विघ्नसंघातं चिकीर्षुश्च दवानले ॥८८
तावता केशवः क्रुद्धो वायुबाणं करे पुनः । कृत्वा मुमोच शीघ्रेण त्रासयन्तं घनाघनान्॥८९
धनंजयस्य बाणेन तदा नेशुः सुरासुराः । यथा तार्क्ष्यसुपक्षेण सफूत्काराः फणीश्वराः ॥९०
तदा सुराः समभ्येत्य मघवानं महेश्वरम् । अचीकथन्स्ववृत्तान्तं तत्पराभूतमानसाः ॥९१
देव खण्डवनं दग्धं तरुखण्डसमाश्रितम् । भवक्रीडाकृते योग्यं पार्थेन विफलीकृतम् ॥९२

नष्ट करता हूं और उनका यशःसमूह भक्षण करता हूं ॥ ७९–८१ ॥ हे निष्ठुर दावानल महाबाण तुम यथेच्छ वनको भक्षण करते हुए तिष्ठो। मैं शीघ्र इन भक्षक देवसमूहको नष्ट करूंगा। ऐसा बोलकर पाण्डुपुत्र अर्जुनने हाथमें गाण्डीव धनुष्य धारण कर उसे दोरीपर चढाया और उसके टंकारसे जगतको बधिर किया। यमके हुंकारतुल्य उस गाण्डीव धनुष्यका टंकारशब्द सुनकर देव अर्जुनसे कहने लगे, कि क्या हमें तू इसके टंकारसे भय दिखाता है ? हे अर्जुन हम देखेंगे, कि कपटसे वन जलाकर तू हम देवोंके आगे कहां भाग जाता है। गरुडके आगे जैसे बलवान् भी सर्प नहीं चल सकता हैं, वैसे तू हमसे बचकर कहां जाता है हम देखेंगे ॥ ८२–८५ ॥ इसके अनंतर क्षुब्ध अन्तःकरणसे देवोंने उग्रधारासे जलवृष्टि की। अर्जुनकी इच्छाको तोडनेकी इच्छासे उन्होंने संपूर्ण पृथ्वीको जलसे व्याप्त किया। उस समय अर्जुनने बाणसमूहसे उत्तम मंडपकी रचना की और जलवृष्टिको उसने प्रतिबंध किया जिससे अग्नि अधिक प्रज्वलित हुआ। दावानलको विघ्नसमूह उत्पन्न करनेकी इच्छा करनेवाला मेघसमूह शीघ्र द्विगुण, त्रिगुण और चतुर्गुण जलवृष्टि करने लगा ॥ ८६–८८ ॥ इतनेमें क्रुद्ध होकर केशवने अपने हाथमें मेघोंको डरानेवाला वायुबाण लेकर उसे शीघ्र छोड दिया। जैसे गरुडके पक्षसे फूत्कारवाले सर्पराज भाग जाते है वैसे धनंजयके बाणसे सुरासुर भाग गये ॥८९-९०॥ तब पराभूत चित्तवाले सर्व देव आकर सब देवोंके महास्वामी सौधर्मेन्द्रके पास जाकर अपनी सर्व वार्ता कहने लगे — हे देव आपकी क्रीडाके लिये योग्य अनेक वृक्षोंका आधारभूत खाण्डववन अर्जुनने व्यर्थ किया है, अर्थात् जलाकर भस्म किया है। जिससे हमारा मन कुंठित हुआ, कर्तव्यमूढ हो गया है। हमको वहांसे हठसे हटाया हैं। हम

वयं निर्धाटितास्तूर्णं हठेन कुण्ठमानसाः । निर्लोठिताः समायाता भवत्पार्श्वे भयाकुलाः ॥९३
मघवा तत्समाकर्ण्य क्रुद्धः संनद्धमानसः । ऐरावतं गजं सज्जीचकार स रणोद्यतम् ॥९४
सुरानाज्ञापयामास रणभेरीसमागतान् । वज्रपाणिः करे वज्रं कृत्वा गन्तुमनास्तदा ॥९५
तदा व्योमरवो जज्ञे सुरेशेति च संवदन् । नाकं हित्वा क्व गम्येत सुरसंघातसंयुतम् ॥९६
तत्र तं विघ्नसंघातं विधातुं न क्षमो भवेत् । यत्र वंशे स विख्यातो बभूव भुवनेश्वरः ॥९७
नेमिर्नारायणश्चापि पाण्डवोऽपि महान्पुमान् । जडत्वं त्वं परित्यज्य स्वस्थो भव निजे पदे ॥
निशम्येति स्थिरं तस्थौ सुरराट् सुरशंसितः । अर्जुनोऽपि विसर्ज्याशु विघ्नं विपिनसंभवम् ॥
हस्तिनागपुरं प्रेम्णा समियाय समुत्सुकः । केशवः स्वपुरं प्राप प्रमोदभरभूषितः ॥१००
सुभद्रया परान्भोगान्भुञ्जानो वानरध्वजः । अभिमन्युसुतं लेभे लसल्लक्षणलक्षितम् ॥१०१
एकदा धार्तराष्ट्रेण दुर्योधनमहीभुजा । कौन्तेयाः कपटेनैवाकारिताः खलबुद्धिना ॥१०२
बहुस्नेहाविलं वाक्यं गान्धारेयो जगौ तदा । युधिष्ठिरं स्थिरं बुद्ध्या भीमाद्यैः समलंकृतम् ॥
कुरु क्रीडां सुकौन्तेय नानाक्षक्षेपणक्षमाम् । धर्मपुत्रेण स द्यूतमारेभे कौरवाग्रणीः ॥१०४

तिरस्कृत किये जानेसे भयभीत होकर आपके पास आये हैं ॥ ९१--९३ ॥ इन्द्रने उस वार्ताको सुनकर क्रोधसे अर्जुनके ऊपर आक्रमण करनेका मनमें निश्चय किया। चलनेके लिये उद्यत हुए ऐरावत हाथीको उसने सज्ज किया। रणभेरीको सुनकर आये हुए देवोंको उसने लढनेके लिये आज्ञा दी और स्वयं जानेकी इच्छासे उसने अपने हाथमें वज्रायुध धारण किया। उस समय आकाशध्वनि हुई, "हे सुरेश, देवसमूहसे युक्त स्वर्गको छोडकर आप कहां जा रहे हैं, जिस वंशमें विख्यात त्रिलोकनाथ नेमीश्वर उत्पन्न हुए हैं, और जिस वंशमें श्रीकृष्ण उत्पन्न हुआ है, जिसमें महापुरुष अर्जुन उत्पन्न हुआ है उस वंशमें आप विघ्न उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हो सकेंगे। इस लिये जडपना छोडकर अपने स्थानमें स्वर्गहीमें स्वस्थतासे रहें" ऐसा बोलनेवाली आकाशवाणी प्रगट हुई। उसे सुनकर देवप्रशंसित इन्द्र अपने स्थानमें स्थिर बैठ गया। अर्जुन भी जंगलमें उत्पन्न हुए विघ्नको शीघ्र हटाकर उत्सुक होकर प्रेमसे हस्तिनापुर आया। इधर केशवने भी आनंद-भरसे भूषित होकर द्वारिका--नगरीमें प्रवेश किया ॥ ९४--१०० ॥ सुभद्राके साथ उत्तम भोगोंको भोगनेवाले अर्जुनको सुंदर लक्षणोंसे युक्त अभिमन्यु नामक पुत्र हुआ ॥ १०१ ॥ किसी समय दुष्ट बुद्धि धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन राजाने युधिष्ठिरादिक कुन्तीपुत्रोंको कपटसे बुलाया। गांधारीके पुत्र दुर्योधनने भीमादिकोंसे भूषित और बुद्धिसे स्थिर ऐसे युधिष्ठिरके साथ अतिशय स्नेहपूर्वक भाषण किया। "हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर, नाना प्रकारके पासे जिसमें फेंके जाते हैं ऐसा द्यूत तुम हमारे साथ खेलो" तब धर्मपुत्रके साथ वह कौरवोंका अगुआ दुर्योधन द्यूत खेलने लगा ॥ १०२--१०४ ॥ सौ कौरवपुत्र दो पासोंसे खेलते थे। मनमें कपट धारण कर वे धैर्यसे युधिष्ठिरके साथ खेलने लगे।

द्वावक्षौ दोलयन्तस्ते कौरवाः शतसंख्यया। धर्मपुत्रेण धैर्येण रेमिरे छद्मसंगताः ॥१०५
कौरवाणां शतं पुत्रा द्वावक्षौ पातयन्त्यलम्। आज्ञाकराविवात्यन्तं दासेरौ सुष्ठु शिक्षितौ ॥
भीमहुंकारनादेन पेततुस्तावितस्ततः। न स्थिरं तस्थतुर्भीताविव भीमस्य नादतः ॥१०७
व्याजेन वेश्मतो वायुपुत्रं ते निरकासयन्। पुनर्द्यूतं समारब्धं छलेन च्छलवेदिभिः ॥१०८
धर्मपुत्रस्तु धर्मात्मा छद्मना तेन निर्जितः। हारितं धर्मपुत्रेण सर्वस्वं स्वविरोधकम् ॥१०९
केयूरकुण्डलस्फारहारहाटककङ्कणम्। धनं धान्यं सुरत्नानि मुकुटं तेन हारितम् ॥११०
पुनर्देशो विशेषेण शेषस्तेनैव हारितः। तुरंगमाश्च मातङ्गा रथाः खलु पदातयः ॥१११
अमत्राणि पवित्राणि सर्वः कोशः सुखावहः। हारयित्वेति संरब्धं द्यूतं धर्मात्मजेन च ॥११२
योषितः सकलाः सर्वे भ्रातरस्तु विशेषतः। पणीकृत्य स्वखेलार्थं दर्शितास्तेन भूभुजा ॥
तावता पावनिः प्राप्तो हुंकारमुखराननः। हारितं निखिलं पश्यन् धूतं शेषं व्यलोकयत् ॥
राजन्युधिष्ठिर भ्रातर्भीमोऽभाणीद्भयावहः। किमिदं किमिदं द्यूतं त्वयारब्धं सुहानिकृत् ॥

कौरवोंके सौ पुत्र दो पासे फेंकते थे अर्थात् दो पासोंसे खेलते थे। वे दो पासे अच्छी तरहसे पढाये गये और अतिशय आज्ञाधारक दो नौकरोंके समान थे। परंतु भीमके हुंकारनादसे वे पासे इतस्ततः पडने लगे, मानो भीमके प्रचंड नादसे भयभीत होकर वे स्थिर नहीं होते थे। यह परिस्थिति देखकर कुछ निमित्तसे कौरवोंने द्यूतगृहसे भीमको बाहर किया और फिर छल जाननेवाले दुर्योधनादिक छलसे--कपटसे द्यूत खेलने लगे। धर्मात्मा धर्मपुत्र उस दुर्योधनके द्वारा कपटसे जीत-लिया गया। अपनेको छोडकर धर्मराज सब हार गया। केयूर, कुण्डल, तेजस्वी हार, सुवर्णके कंकण, धन, धान्य, रत्न और मुकुट सब हार गया। पुनः संपूर्ण देश भी विशेषरीतिसे वह हार गया। घोडे, हाथी, रथ और पैदल, सर्व पवित्र पात्र और सुखदायक धनकोष, ये सब हार कर भी धर्मराजने द्यूत खेलना बंद नहीं किया। संपूर्ण स्त्रियां और अपने सब भाई उस राजाने द्यूत खेल-नेके लिये पनमें लगाता हूं ऐसा दिखाया। इतनेमें हुंकारसे जिसका मुख वाचाल बना है ऐसा भीम वहां आया। उसको धर्मराजने सब पदार्थ द्यूतमें हारे हैं ऐसा दीख पडा। पनके लिये कुछ वस्तु जो बची हुई थी लगाई है ऐसा भीमसेनने देखा और बोला, "हे राजन्, हे भाई युधिष्ठिर, आपने यह हानि करनेवाला द्यूत क्यों आरंभा है" ॥ १०५---११५ ॥

[द्यूतक्रीडाके दोष] द्यूतके खेलनेसे लोकापवाद प्राप्त होता है। जिससे संपूर्ण यश नष्ट होता है। तथा पदपदपर सर्व धनहानि होती है। द्यूतसे सर्व प्रकारके अनर्थ होते हैं। द्यूतसे इहलोकका नाश होता है और यह द्यूत प्राणियोंके परलोकका पूर्ण नाश करता है। सब व्यसनोंमें यह द्यूत प्रथम है और इससे दुर्धर दुःख प्राप्त होता है। वस्तुका स्वरूप जाननेवाले प्रकाशमान ज्ञानके धारक मुनियोंने इस द्यूतके ऊपर अच्छा प्रकाश डाला है। जैसे मद्य पीनेवालोंका सदा

द्यूतेन याति निःशेषं यशो लोकापवादतः। भवेद्भवे तु निःशेषा द्रव्यहानिः पदे पदे॥११६
सर्वानर्थकरं द्यूतमिहलोकविनाशकम्। क्षणात्क्षिपति निःशेषं परलोकं सुदेहिनाम्॥११७
व्यसनानामिदं चाद्य द्यूतं दुर्धरदुःखदम्। अदीपि दीपितज्ञानैर्मुनिभिः स्थितिवेदिभिः॥
द्यूतकाराः सदा हेयाः सदा मद्यपवद्भुवि। विद्धि द्यूतसमं पापं न भूतं न भविष्यति॥११९
इति वाक्येन संक्षुब्धो द्वादशाब्दावधिं महीम्। हारयित्वा स कौन्तेयो द्यूतं वारयति स्म च॥
धर्मपुत्रो गृहं प्राप भीमाद्यैर्म्लानमानसः। वचोहरं तदा क्षिप्रं प्राहिणोत्स युधिष्ठिरम्॥१२१
दूतो गत्वा प्रणम्यात्र विज्ञप्तिं चर्करीति च। धर्मपुत्र जगावेवं मन्मुखेन सुयोधनः॥१२२
द्वादशाब्दावधिर्यावत्तावदत्रैव संस्थितिः। न कर्तव्या महीनाथ यतो न स्यात्सुखासिका॥

वने वासो विधातव्यो भवद्भिः सुखकाङ्क्षिभिः।
द्वादशाब्दं न जानाति यावत्त्वन्नाम कोऽप्यलम्॥ १२४

स्थातव्यं तत्र तावच्च भवद्भिः सातसिद्धये। नेतव्यं पाण्डवैः क्वापि गुप्तैर्वर्षं त्रयोदशम्॥१२५
अद्यापि रजनी रम्या न स्थेयात्र स्थिराशयाः। अन्यथानर्थसंपातो भविता भवतामिह॥
वचोहरो निवेद्येति निर्गत्य सदनं गतः। तावद्दुःशासनो दुष्टो द्रौपदीसदनं ययौ॥१२७
स तां कुन्तलपाशेन गृहीत्वा निरजीगमत्। गृहात्साक्षान्महालक्ष्मीमिव पद्मनिवासिनीम्॥
गाङ्गेय इति संवीक्ष्य प्रोवाच गुरुकौरवान्। भो भो युक्तमिदं नैव भवतां भवभागिनाम्॥

त्याग करते हैं वैसे द्यूत खेलनेवालोंका हमेशा त्याग करना चाहिये। हे भाई, द्यूतके समान पाप नहीं हुआ है और न होगा। भीमके इस भाषणसे क्षुब्ध होकर धर्मराजने बारह वर्षतक पृथ्वीको हारकर द्यूत खेलना बंद किया॥ ११६–१२०॥ खिन्नचित्त होकर धर्मराज अपने भाईयोंके साथ घर गया। इतनेमें दुर्योधनने अपना दूत उसके पास भेज दिया। दूत जाकर नमस्कार कर इस प्रकार विज्ञप्ति करने लगा। हे धर्मपुत्र, मेरे मुखसे सुयोधन महाराज कहते हैं कि-बारह वर्षतक आप यहां निवास नहीं करे अर्थात् जबतक बारह वर्ष पूर्ण नहीं होंगे तबतक आपका निवास वनमें ही होना चाहिये। यदि आप यहां ही रहेंगे तो उससे सुख नहीं होगा। सुखकी इच्छा करनेवाले आप वनमें निवास करें। बारह वर्षतक आपका कोई नाम न जाने इस तरह आप सुखकी प्राप्तिके लिये रहें। इसके अनंतर तेरहवां वर्ष आप गुप्तरूपसे व्यतीत करें॥१२१–१२५॥

[द्रौपदीका घोर अपमान] स्थिराशयवाले अर्थात् दृढ निश्चयवाले आप इस रमणीय रात्रीमें आज मत ठहरे। यदि यहां रात्रीमें आप रहेंगे तो आपके ऊपर अनर्थ गुजरे बिना नहीं रहेगा। इस प्रकार दूतने दुर्योधनका अभिप्राय कहा और वह अपने घर चला गया। इतनेमें दुष्ट दुःशासनने द्रौपदीके घरमें प्रवेश किया। और कमलमें निवास करनेवाली साक्षात् महालक्ष्मीके समान द्रौपदीको उसके घरसे केशराशि पकडकर वह ले जाने लगा॥ १२६–१२८॥ यह अधम कार्य

इत्थं कृतेऽखिले लोकेऽपकीर्तिः कीर्तिता भवेत्। यशस्यं जायते लोके तथा कुरुत कौरवाः ॥
इदं भ्रातृकलत्रं हि पवित्रं पतितां गतम्। खलीकारे कृते तस्य महती स्यादधोगतिः ॥१३१
तावता द्रौपदी क्षुण्णा रुदन्ती बाष्पलोचना। इयाय पाण्डवाभ्यर्णं दुःखिता दुर्दशां गता ॥
बभाण भवतां यादृग्वर्तते सा पराभवः। ततोऽधिको ममाप्यासीन्मद्वेण्याकर्षणक्षणे ॥१३३
यदग्रे मम शीर्षस्य वेणी नोद्धरति स्फुटम्। अन्यत्किं विपुलं वस्तु तेषामग्रे यमाग्रवत्॥१३४
हा शिखण्डधर प्राज्ञ पार्थपूर्वज पूर्वतः। इमं पराभवं कोऽत्र त्वां विना विनिवारयेत्॥१३५
पराभवमवं वाक्यं पाञ्चाल्या विपुलोदरः। श्रुत्वावादीन्महाक्रोधो घुर्घुरस्वरघूर्णितः ॥१३६
स्वामिन्नद्य प्रकुर्वेऽहं क्षयं वैरिकुलस्य वै। पुनः पार्थः समुत्तस्थे द्रौपद्याश्च पराभवात् ॥१३७
तदा युधिष्ठिरोऽवोचन्महानाज्ञां न लङ्घयेत्। क्षुब्धोऽपि मारुतौघेन मर्यादां किं सरित्पतिः
इति यौधिष्ठिरं वाक्यमाकर्ण्य पाण्डुनन्दनाः। गन्तुकामाः समुत्तस्थुर्मदान्ध्यपरिवर्जिताः ॥
विदुरस्य गृहे कुन्तीं रुदन्तीं विधुरात्मिकाम्। मातरं मोहयुक्तास्ते विमुच्य निर्गतास्ततः ॥

देखकर भीष्माचार्य बडे कौरवोंको कहने लगे कि हे "कौरवगण संसारमें आपको यदि रहना है तो ऐसा कार्य करना योग्य नहीं है। ऐसा कार्य करनेपर आपकी जगतमें अपकीर्ति सर्वत्र जाहीर होगी। ऐसा कार्य आप करें जिससे यश बढेगा" ॥ १२९-१३० ॥ यह द्रौपदी आपके भाईकी पत्नी है, पुनः पवित्र और पतिव्रता है, सधवा है उसकी यदि तुम ऐसी विटंबना करोगे तो आपको बडी अधोगति प्राप्त होगी ॥१३१॥ उस समय पीडित हुई, आँसुओंसे जिसकी आंखें भर गई है ऐसी, रुदन करनेवाली, द्रौपदी दुःखित और दुर्दशायुक्त होकर पाण्डवोंके पास गई। वह उनसे कहने लगी-"हे पाण्डवो, आपका जितना पराभव-अपमान हुआ है, मेरा उससे भी अधिक पराभव मेरी वेणी (गुथी हुई चोटी) का आकर्षण करनेके समय हुआ है। जिसके आगे मेरे मस्तककी वेणी स्पष्ट खुली नहीं होती थी उनके आगे मैं और क्या बताऊं यमाग्रके समान (?) यह मेरा विशाल केशपाश पूर्ण खुल गया। हे शिखण्डधर- चोटी धारण करनेवाले भीम, आप पार्थपूर्वज हैं अर्थात् अर्जुनके पूर्व आपका जन्म होनेसे आप उसके बडे भाई हैं, आप चतुर हैं। आपके विना इस जगतमें मेरा पराभव दूसरा कौन दूर करनेवाला है?" पांचालीके पराभवका वर्णन करनेवाला भाषण सुनकर विपुलोदर भीम घुर्घुरस्वरसे युक्त होकर महाक्रोधसे बोला कि हे युधिष्ठिर प्रभो, आज मैं वैरि समूहका नाश कर डालूंगा ॥ १३२-१३७ ॥ पुनः द्रौपदीके पराभवसे अर्जुन भी उठ कर खडा हुआ तब युधिष्ठिर कहने लगे कि भाईयो, जो महापुरुष हैं वे आज्ञाका उल्लंघन नहीं करते हैं। वायुसमूहसे क्षुब्ध होनेपर भी समुद्र क्या अपनी मर्यादाका उल्लंघन करता है? इस प्रकार युधिष्ठिरका वाक्य सुनकर मदान्धतासे रहित होकर जानेकी इच्छासे उठे ॥ १३८-१३९ ॥ दुःख-पीडित, रोनेवाली माता कुन्तीको मोहयुक्त वे पाण्डव विदुरके घरपर छोडकर वहांसे आगे चलने

पराभवपराभूता मुच्यमाना न द्रौपदी। तत्र तिष्ठति तः सार्धं निर्जगाम सती शुभा ॥१४१
त्यक्तमाना निजे चित्ते चिन्तयन्तः सुभावनाम्।
ते चाचलति कौन्तेया मार्गे मन्दगतिप्रियाः ॥ १४२
वने चोपवने ते च वसन्ति स्म कदाचन। शिलायां शिखरिशृङ्गे मृगेन्द्रा इव निर्भयाः ॥
सरिज्जलं पिबन्ति स्मादन्ति वृक्षफलानि च। नानावल्कलवासांसि दधते ते नरोत्तमाः॥ १४४
ततस्ते क्लेशतः प्रापुरुत्तीर्य बहुभूधरान्। कालिञ्जरवनं वीरा विविधद्रुमराजितम् ॥ १४५
पत्रोपशोभितः स्पष्टः शाखासद्घटनाश्रितः। प्रौढप्ररोहविकटो वटस्तैस्तत्र वीक्षितः ॥१४६
छायासंछन्नभूभागे तस्याधस्ते स्थितिं व्यधुः। क्षुत्पिपासातपश्रान्ता वारयन्तः श्रमं परम् ॥
व्यसनभुजगगर्तं धर्मनामप्रवर्तं, नरकगमनमार्गं सर्वदोषस्य सर्गम्
परिभवतरुमूलं चापदासिन्धुकूलं निहतसुभगबुद्धिं द्यूतमेतद्विरुन्द्धि ॥ १४८
द्यूतं दुर्गतिदायकं भृशमृषावादस्य संपादकम्।
सर्वेषु व्यसनेषु चाद्यमुदितं लौल्यव्यवस्थापकम्।

लगे। पराभवसे पीडित हुई द्रौपदी पाण्डवोंके द्वारा विदुरके घर छोडी जानेपर भी वह उसके घर नहीं रही। वह शुभ और पतिव्रता उनके साथही चली गयी। पाण्डवोंने अभिमानका त्याग किया। अपने मनमें वे सुभावनाका विचार करते थे और मार्गमें मन्दगति जिनको प्रिय है ऐसे वे प्रवास करने लगे। वे कभी वनमें और कभी बगीचेमें भी रहते थे। कभी शिलापर और कभी पर्वतके शृंगपर मृगेन्द्रके समान निर्भय होकर बैठते थे। वे नदियोंका पानी पीते थे और वृक्षके फल खाते थे। वे महापुरुष नाना प्रकारके वल्कल-वस्त्र परिधान करते थे। तदनंतर ये वीर क्लेशसे अनेक पर्वतोंपरसे उतरकर नाना वृक्षोंसे शोभित कालिंजर वनमें आये ॥ १४०–१४५ ॥ उस वनमें पत्रोंसे शोभित, स्पष्ट दीखनेवाला, शाखाओंकी उत्तम रचनासे युक्त, प्रौढ जटाओंसे विस्तृत ऐसा वटवृक्ष उन्होंने देखा। उस वृक्षकी छायासे आच्छादित जमीनपर भूख, प्यास और उष्णतासे थके हुए, अधिक परिश्रमको निवारण करते हुए पाण्डव बैठ गये। यह द्यूत संकटरूपी सर्प रहनेका बिल है। धर्मके नामको नष्ट करनेवाला और नरकगतिका मार्ग है, सर्व दोषोंकी उत्पत्तिका स्थान है। अपमानरूपी वृक्षका यह मूल है और आपत्तिनदियोंका यह किनारा है। यह द्यूत उत्तम बुद्धिका नाशक है ऐसे द्यूतका तुम सदा विरोध करो ॥१४६-१४८॥ यह द्यूत दुर्गतिमें ले जाता है। अतिशय असत्य भाषाको उत्पन्न करता है। सर्व व्यसनोंमें यह प्रथम है-मुख्य है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। यह लोभकी व्यवस्था करता है अर्थात् यह हमेशा लोभको बढाता है। मांस भक्षण करनेकी आशा द्यूत खेलनेसे बढती है। यह द्यूत मद्यपानकी आतुरतासे सुंदर दीखता है, चौर्य, शिकार, वेश्या और परस्त्रीमें आसक्ति उत्पन्न करता है। अतः ऐसे द्यूतका हे भव्यों, तुम

मांसाशापरिवर्धकं च मदिरापानप्रपापेशलम्
चौर्याखेटकलत्रिकान्यवनितासंसक्तिदं त्यज्यताम् ॥१४९
द्यूतात्पाण्डवनन्दना नरवरा मुक्त्वा वरं नीवृतम्
तिष्ठन्तो वटकानने परिहृताहारादिसाताः स्वयम्।
व्याघ्रव्यालभयाकुले निरुपमाः सीदन्ति सन्तः स्म च
धिग्द्यूतस्य विचेष्टितं हि महतां दुःखस्य संपादकम् ॥ १५०

इति श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपालसाहाय्यसापेक्षे पाण्डवद्यूतक्रीडाकरणवनवासगमनवर्णनं नाम षोडशं पर्व ॥ १६ ॥

। सप्तदशं पर्व ।

वासुपूज्यं नरैः पूज्यं वसुपूज्यसुतं स्तुवे। वासवैः सेवितं शस्तं वसुपूजाप्रदं मुदा ॥१
अथ तत्र समायासीद्यतिसघो विशुद्धधीः। कृतेर्यापथसंशुद्धिर्निःसंगः शीललक्षितः ॥२
यतिसंघं च ते वीक्ष्य गत्वा नत्वा पुरःस्थिताः। आनन्दोन्नतचेतस्का धर्मभावसमुद्यताः ॥३

त्याग करो ॥ १४९ ॥ इस द्यूतसे श्रेष्ठ पुरुष पाण्डवपुत्र अपना उत्तम देश छोडकर आहारादि-सुखोंसे वञ्चित होकर स्वयं वटवृक्षोंके वनमें रहने लगे। व्याघ्र, सर्पादि हिंस्र-प्राणियोंसे भयपूर्ण वनमें उपमारहित ऐसे सज्जन पाण्डव द्यूतसे दुःख भोगते हैं। इस प्रकार इस द्यूतकी यह चेष्टा बडे पुरुषोंको भी दुःख देनेवाली है ॥ १५० ॥

ब्रह्म श्रीपालजीकी सहायतासे भट्टारक श्रीशुभचन्द्रजीने रचे हुए श्रीपाण्डवपुराण—भारतमें पाण्डवोंकी द्यूतक्रीडा और वनमें निवासके लिये जानेका वर्णन करनेवाला सोलहवा पर्व समाप्त हुआ ॥ १६ ॥

[सत्रहवा पर्व]

मनुष्योंके द्वारा पूजायोग्य, इंद्रोंसे सेवा किये गये, देवोंकी पूजाको देनेवाले, वसुपूज्य—राजाके पुत्र प्रशंसनीय ऐसे श्रीवासुपूज्य तीर्थकरकी मैं स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

[युधिष्ठिरकी स्वनिन्दा] उस कालिंजर वनमें निर्मल बुद्धिके धारक, ईर्यापथकी शुद्धि जिन्होंने की है, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहोंके त्यागी, संपूर्ण शीलोंसे युक्त ऐसे मुनियोंका संघ आया। मुनिसंघको देखकर पाण्डवोंने उनको वंदन किया और उनके आगे वे बैठ गये। उनका मन आनंदसे उन्नत हुआ था—पूर्ण भर गया था। वे धर्मभावोंमें तत्पर हुए ॥ २–३ ॥ विद्वान् युधिष्ठिरने पुनः

युधिष्ठिरः पुनश्चित्ते चिन्तयामास कोविदः। वने निवसता पापात्किं कर्तव्यं मयाधुना ॥४
फलभुक्त्या च नीयन्ते घस्रा दुर्विधिसंगताः। विना वित्तेन दीयन्ते किं दानानि मुनीशिने॥
अद्याहो जीवितं मे धिङ्निर्द्रव्यस्य शवस्य वा। जीवितान्मरणं श्रेष्ठं विना दानेन देहिनाम्॥
चिन्तयन्तमिमं भूपं ज्ञात्वावादीन्महामुनिः। नाशर्मात्र विधातव्यं त्वया स्थितिसुवेदिना॥
त्वं महान्विनयी भव्यो वात्सल्यभरभूषणः। यदावयोरभूद्योगो विद्धि तद्वृषवैभवम् ॥८
अत्रानर्थस्तु कालेन भविता तव निश्चितः। न विषादो विधेयोऽत्र तद्धि वैदुष्यजं फलम् ॥९

इत्युक्त्वा योगिनां संघस्ततो निर्गत्य सद्गिरिम्।
सिंहशार्दूलहस्त्याढ्यं समियाय महोन्नतम् ॥ १०

पाण्डवानामधीशोऽत्र चिरं तस्थौ स्थिराशयः। नयन्कालं स धर्मेण न्यायमार्गविशारदः॥
एकदा च करे कृत्वा गाण्डीवं वानरध्वजः। इन्द्रक्रीडां प्रकर्तुं स समियाय मनोहरः ॥१२
ददर्शाथ दरातीतो गच्छन्मार्गे महाभये। मनोहराभिधं रम्यं महीध्रं जिष्णुनन्दनः ॥१३
आरुरोह धराधीशं धरां द्रष्टुमनाः स तम्। महोपलं द्रुमव्रातविषमं विषयी कृती ॥१४

अपने मनमें ऐसा विचार किया "पापोदयसे मैं वनमें रहता हूं, इस समय मैं क्या कार्य कर सकता हूं, इस वनमें दुर्दैवसे फलोंपर निर्वाह कर दिवस काटने पड रहे हैं। धनके बिना मुनिश्रेष्ठोंको आहार आदिक दान कैसे दे सकता हूं। आज शवके समान द्रव्यरहित मेरा जीवन धिक्कारका पात्र है। दानके बिना प्राणियोंका मरण जीवनसे श्रेष्ठ हैं अर्थात् जो सत्पात्रोंको दान नहीं देते हैं वे प्राणसहित होनेपर भी मृतके समानही हैं" ऐसा विचार करनेवाले युधिष्ठिरके अभिप्रायको जानकर महामुनिने कहा, कि "हे राजन् इस विषयमें तू खेद मत कर क्यों कि तू वास्तविक परिस्थिति जाननेवाला है। तू महापुरुष है। तू विनय करनेवाला भव्य है। वात्सल्यरूप अलंकार धारण करनेवाला है, इस लिये खेद मत कर। यहां हम दोनोंका जो मिलाप हुआ है वह धर्मका माहात्म्य है, ऐसा तू मनमें समझ। इस जंगलमें कुछ कालके बाद तेरे पर संकट आनेवाला है और इससे तू मनमें खेद मत कर, क्यों कि खेदरहित प्रवृत्ति करना यह विद्वत्ताका फल है। विद्वान् लोक विचार करके कार्य करते हैं और कार्य बिगडनेपर भी विवेकसे वे समाधानवृत्तिको नहीं छोडते हैं" ऐसा बोलकर वह योगिओंका संघ वहांसे निकलकर सिंह, वाघ, हाथियोंसे भरे हुए अत्युच्च उत्तम पर्वतपर गया ॥ ४–१० ॥ इस कालिंजर वनमें पाण्डवोंका अधिपति युधिष्ठिर दीर्घ कालतक रहा। स्थिर चित्तवाला और न्यायमार्गज्ञ युधिष्ठिर धर्मसे अपना काल बिताता था ॥११॥ किसी समय वानर चिह्नकी ध्वजा धारण करनेवाला सुंदर अर्जुन हाथमें गांडीव धनुष्य धारण कर इन्द्रक्रीडा करनेके लिये उस वनसे निकला। महाभयंकर ऐसे मार्गमें जाते हुए भयरहित अर्जुनने मनोहर नामक रमणीय पर्वत देखा। पुण्यवान् और विषयोंको भोगनेवाले चतुर अर्जुनने उसपर चढकर

तत्रास्थः पुनः प्राह पार्थ एव विचक्षणः। कोऽप्यस्ति पर्वते देवो नरो विद्याधरोऽथवा ॥१५
यद्यस्ति मां स वा वक्तु यतो मे वाञ्छितं भवेत्। कार्ये सर्वेष्टसिद्धिश्च पुरुषस्येष्टसाधनी ॥
आविरासीत्तदा व्योम्नि वाणी सर्वत्र विस्तृता। सावधानमनाः पार्थ श्रृणु मद्वचनं परम् ॥
वैताढ्योऽत्र महीध्रोऽस्ति श्रेणीद्वयविराजितः। तत्र याहि यतस्तूर्णं जयश्रीस्तव सेत्स्यति ॥
शतं शिष्या भविष्यन्ति तव सर्वार्थसाधकाः। पञ्च वर्षाणि तत्रैव त्वया स्थातव्यमञ्जसा ॥
पुनः स्वबान्धवैर्योगो भविता तव पाण्डव। इत्याकर्ण्य प्रहृष्टात्मा यावत्तिष्ठति तत्र सः ॥२०
तावद्वनेचरः कश्चिद्भ्रमरच्छविरुन्नतः। शुष्कौष्ठवदनो वाग्मी दन्तुरः कोलकेशकः ॥२१
प्रचण्डाखण्डकोदण्डधर्ता विशिखपाणिकः। भ्रूभङ्गारुणनेत्राढ्यः प्रादुरासीद्भयंकरः ॥२२
तदावादीन्नरो देहि मह्यं हंहो धनुर्धर। मम योग्यमिदं शस्त्रं भारं वहसि मा वृथा ॥२३
अथवा शोभते चेदं सत्करे महतामिह। विफलं त्वं स्वमात्मानं कदर्थयसि किं नर ॥२४
क्रुद्धेन तेन श्रुत्वेदं विरुद्धेन निजं धनुः। आस्फालितं स्वहस्तेन खे गर्जन्मेघवत्तदा ॥२५
बाणमारोपयामास गुणे स सुवनेचरः। कंपयन्कंप्रशीलानि वनेचरमनांसि च ॥२६

पुकारा क्या इस पर्वतपर कोई देव, मनुष्य अथवा विद्याधर है? यदि है तो मुझे जिससे मेरा इच्छित कार्य होगा और सर्व इष्टसिद्धि होगी ऐसा वचन कहें। उस समय पुरुषकी इष्टसिद्धि करनेवाली और सर्वत्र फैलनेवाली आकाशवाणी प्रगट हुई—हे पार्थ, लक्षपूर्वक मेरा उत्तम वचन सुनो। "इस भरतक्षेत्रमें दो श्रेणियोंसे शोभनेवाला विजयार्ध नामक पर्वत है। वहां तू शीघ्र जा जिससे तुझे जयलक्ष्मीकी सिद्धि होगी। वहां सर्व कार्योंके साधक सौ शिष्य तुझे मिल जायेंगे और पांच वर्षतक तुझे वहां ही निश्चयसे रहना पडेगा। पुनः अपने भाईयोंके साथ तेरा मिलाप होगा" ऐसी वाणी सुनकर आनंदितचित्त होकर वह वहां बैठा था इतनेमें भौरोंके समान काला और ऊंचा, जिसका ओष्ठ और मुँह सूखा है, जिसके दांत आगे आये हैं, जिसके शरीरपर सुअरके समान रूक्ष केश हैं, जो बोलनेमें चतुर है, ऐसा वनमें घूमनेवाला कोई भील प्रगट हुआ। उसने प्रचण्ड और अखण्ड धनुष्य धारण किया था। उसके हाथमें बाण थे उसकी भौंहें टेडी थी और आँखें लाल थीं ॥ १२–२२ ॥ उस समय अर्जुनने उस भीलसे ऐसा कहा "हे धनुर्धर, यह शस्त्र मेरे योग्य है। तू इसका व्यर्थ भार क्यों धारण कर रहा है। तू इसे मुझे दे, अथवा यह शस्त्र महापुरुषके हाथमेंही शोभा पाता है। ऐसे शस्त्रको धारण कर तुम स्वयंको क्यों कष्टमें डालते हो। अर्जुनका यह भाषण सुनकर क्रुद्ध हुए उस विरुद्ध भीलने अपने हाथसे अपना धनुष्य शब्दयुक्त किया तब वह मेघके समान गर्जना करने लगा। भीतिसे कँपना जिनका स्वभाव है ऐसे वनचरोंके मनको कंपित करनेवाले उस भीलने डोरीपर बाण जोड दिया ॥ २३–२६ ॥ धनंजय (अर्जुन और भील दोनों युद्धके लिये अन्योन्यके सम्मुख खडे हो गये। दोनों रणचतुर थे

धनंजयः किरातश्च तदा तौ सन्मुखं स्थितौ। रणाय रणशौण्डीरौ प्रहरन्तौ परस्परम् ॥२७
बाणैर्बाणैस्तयोर्वृत्तं युद्धं तूर्णप्रणोदितैः। आकर्ण ज्यां समाकृष्य विमुक्तैः परमोदयैः ॥२८
बाणैर्विरचितो भाति ताभ्यां मुक्तैर्महांस्तयोः। मध्ये जनाश्रयः स्थातुमिव संभिन्नचेतसा ॥
धनंजयेन क्रुद्धेन ये ये बाणा विसर्जिताः। ते ते निष्फलतां नीताः किरातेन महात्मना ॥
कीशकेतुर्विलोक्याशु किरातं दुर्जयं रणे। धनुर्हित्वा दधावासौ विधातुं बाहुविग्रहम् ॥३१
बाहुदण्डैः प्रचण्डौ तौ वल्गन्तौ रणकोविदौ। मल्लाविव विरेजाते लिङ्गितौ स्नेहतो यथा ॥
अजय्यं तं परिज्ञाय पार्थो व्यर्थीकृताशयः। चकार चरणद्वन्द्वं करे तस्य महाद्युतिः ॥३३
स विभ्राम्य शिरः पार्श्वे यावदास्फालयत्यलम्। महीतले किरात तं परितः प्राणपेशलम् ॥
तावता प्रकटीभूतो विकटोऽपि महाभटः। दिव्यरूपधरो धीमान् बभूव वरभूषणः ॥३५
विनयेन ततः पार्थं ननाम नतमस्तकम्। स उवाच नराधीश प्रसन्नोऽस्मि तवोपरि ॥३६
त्वं याचस्व वरं दिव्यं तवेष्टं पाण्डुनन्दन। श्रुत्वा जजल्प पार्थेशः परमार्थविशारदः ॥३७
सारथित्वं भज त्वं भो मम स्यन्दनवाहने। तथेति प्रतिपन्नं हि खेचरेण मुदा तदा ॥३८

दोनोंने अन्योन्यको प्रहार करना शुरू किया। जल्दी जल्दी प्रेरे गये बाणोंसे उन दोनोंका युद्ध हुआ। उन्होंने अपने कानतक डोरी खींचकर परम उन्नतिवाले बाण अन्योन्यपर छोडे। उन दोनोंने छोडे हुए बाणोंसे उन दोनोंके बीचमें मानो लोगोंको रहनेके लिये एक बडा मण्डप रचा गया हो ऐसा मालुम पडता था। जिसका हृदय भिन्न हुआ है ऐसे कुपित धनंजयने जो जो बाण किरातपर छोडे वे सब उस महात्माने निष्फल किये। वानरध्वजवाले अर्जुनने रणमें इस भीलको जीतना कठिन है ऐसा देखकर धनुष्य छोड दिया और उसके साथ बाहुयुद्ध-कुश्ती करनेके लिये उसके समीप वह दौडकर आया। रणचतुर और प्रचण्ड, वल्गना करनेवाले वे दोनों योद्धा बाहुदण्डोंसे लडते समय-कुश्ती खेलते समय स्नेहसे आलिंगन करनेवाले दो मल्लोंके समान दीखने लगे। मल्लयुद्धमें उस भीलको अजय्य समझकर जिसका संकल्प व्यर्थ हुआ है ऐसे महा-कान्तियुक्त अर्जुनने उसके दो पांव हाथमें लिये और घुमाकर उस प्राणोंसे सुंदर भीलको मस्तकके बाजूसे जमीनपर पटकना चाहा इतनेमें वह विकट महायोद्धा अपने सत्यस्वरूपमें प्रगट हुआ। वह दिव्यरूप धारण करनेवाला, विद्वान् और उत्तम आभूषण पहने हुआ था। तदनंतर विनयसे नम्रमस्तक हुए अर्जुनको उस विद्याधरने वन्दन किया। "हे नराधीश मैं तुझपर प्रसन्न हुआ हूं। हे पाण्डुपुत्र, तू तुझे जो अभीष्ट है वह दिव्य वर मांग। परमार्थनिपुण अर्जुन राजा उसका भाषण सुनकर बोला, कि तू मेरे रथ चलानेके कार्यमें सारथि हो। उस विद्याधरने 'तथास्तु' ऐसा कहकर उसका वचन उस समय आनंदसे मान्य किया ॥ २७-३८ ॥

[विद्याधरका वृत्त-निवेदन] मनसे संतुष्ट हुए अर्जुनने उसे कहा कि, तुम कौन हो?

संतुष्टो मनसा पार्थो बभणीति स्म तं प्रति। कस्त्वं कस्मात्समायातो युद्धवान्केन हेतुना।
आचख्यौ खेचरः क्षिप्रं श्रुत्वा तद्वचनं वरम्। युद्धस्य कारणं कौशकेतो चाकर्णयाधुना ॥४०
अस्त्यत्र भारते भव्यो विजयार्धो धराधरः। यः शृङ्गैर्गगनं मातुमुत्थितोऽतिमहोन्नतः॥४१
तद्दक्षिणमहाश्रेणौ रथनूपुरसत्पुरम्। वरं विशालशालेन तर्जयत्सुरालयम्॥४२
नमिवंशसमुद्भूतो भूपतिस्तत्र भासुरः। विद्याविधिविशुद्धात्मा खगो विद्युत्प्रभो बभौ॥४३
सुतस्तस्य स्फुरद्वीर्यो बभूवेन्द्रसमाह्वयः। विद्युन्माली परः पुत्रः शत्रुसंततिशातनः॥४४
विद्युत्प्रभो विरक्तस्तु शक्रे राज्यश्रियं परे। न्यस्यादीक्षत वीक्ष्य स्वं यौवराज्यं सुते प्रभुः॥
जग्राह दारान्पौराणां मुषाणान्यधनानि च। मुषाण युवराट्पीडां पुरीं स इत्युपाद्रवत्॥४६
कृत्वैकान्ते कनीयांसं रसापतिरशिक्षयत्। समजायत वैराय तस्मिन्शिक्षापि दुर्मदे॥४७
मुक्त्वाथ स पुरीं कोपाद्बहिः स्थित्वा च लुण्टति। खरदूषणवंशीयैः सह स्वर्णपुरे स्थितः॥
संतापितः सपत्नौघैः स सुखं लभते न हि। अहर्निशं निशानाथो राहुणेव विरोधितः॥

कहांसे आये हो, और मुझसे तुमने युद्ध किस हेतुसे किया है?" उसका सुंदर भाषण सुनकर शीघ्रही विद्याधरने कहा, कि हे अर्जुन युद्धका कारण तुझे मैं कहता हूं अब सुन ॥ ३९-४० ॥ इस भरतक्षेत्रमें सुंदर विजयार्ध नामक पर्वत है। वह मानो अपने अत्यंत ऊंचे शिखरोंसे आकाशको नापनेके लिये उठ कर खडा हुआ है ॥ ४१ ॥ उस पर्वतकी दक्षिण महाश्रेणीपर अपने विशाल तटके द्वारा स्वर्गको तिरस्कृत करनेवाला रथनूपुर नामका सुंदर नगर है। उस नगरीमें नमिवंशमें उत्पन्न हुआ तेजस्वी विद्याधर राजा राज्य करता था। उसका नाम विद्युत्प्रभ था। विद्याके विधानसे उसकी आत्मा विशुद्ध थी। उसे जिसका पराक्रम स्फुरित हुआ है ऐसा इन्द्र नामका पुत्र था। तथा शत्रुके समूहका नाश करनेवाले दुसरे पुत्रका नाम विद्युन्माली था॥ ४२-४४ ॥ विद्युत्प्रभ राजाने विरक्त होकर इंद्र नामक ज्येष्ठ पुत्रपर राज्यलक्ष्मीकी स्थापना की और छोटे पुत्रपर युवराजपद स्थापित किया। इस प्रकार दोनों पुत्रोंकी विभूति देख राजाने दीक्षा धारण की। तदनंतर अपनी युवराजपदवी देखकर युवराज लोगोंकी स्त्रियोंको ग्रहण करने लगा, उनका धन लूटने लगा। लोगोंकी पीडायें बढने लगीं। इस प्रकार नगरीको वह उपद्रव देने लगा॥ ४५-४६ ॥ इंद्र राजाने युवराजको एकान्तमें बुलाकर नगरवासियोंको पीडा देना अनुचित है ऐसा कहा, परंतु दुष्टमदसे उन्मत्त होनेसे वह उपदेश वैरका कारण हुआ। युवराजने रथनूपुरका त्याग किया और वह कोपसे नगरीके बाहर रहकर उसे लूटने लगा॥ ४७-४८ ॥ खरदूषणके वंशमें जन्मे हुए लोगोंके साथ वह युवराज स्वर्णपुरमें जाकर रहने लगा। जैसा चन्द्र हमेशा राहुसे पीडित होता है वैसा यह इन्द्रराजा शत्रुओंसे पीडित होनेसे सुखी नहीं हुआ। वह इंद्र रथनूपुरके दरवाजे बंद कर उचित प्रबंध करके वहां रहा। उसका सेवक विशालाक्ष नामक विद्याधर है उसका मैं पुत्र हूं मेरा नाम चन्द्र-

पुरीं स पिहितद्वारां विधाय विविवत्स्थितः । तत्सेवको विशालाक्षसुतोऽहं चन्द्रशेखरः ॥५०
दुश्चिन्तं तं परिज्ञाय मया नैमित्तिकोऽन्यदा । नत्वा पृष्टो विनीतेन कदास्य वैरिसंक्षयः ॥५१
स बभाण निमित्तज्ञो मनोहरगिरौ शृणु । यस्त्वां जेष्यति पार्थः स तद्रिपूंश्च हनिष्यति ॥
तच्छ्रुत्वाहं ततस्तस्थौ प्रच्छन्नोऽत्र महागिरौ । स्वामिंस्त्वं वृषपाकेन मिलितोऽसि महामते ॥

एह्येहि च त्वया सार्कं गम्यते तत्र सांप्रतम् ।
इत्युक्त्वा तौ स्थितौ व्योमयाने प्रोद्गतसद्ध्वजे ॥ ५४

चचाल चञ्चलं व्योमयानं मानसमन्वितम् । ताभ्यामुपरि संस्थाभ्यां रणद्घण्टारवाकुलम् ॥
ततस्तौ संस्थितौ याने विजयार्धमहागिरौ । यातावेिन्द्रनृपः श्रुत्वा समायासीच्च सन्मुखम् ॥
तावता वैरिणस्तस्य श्रुत्वा तस्यागमं ध्रुवम् । चेलुर्विमानसंरूढा व्याप्तव्योमदिगन्तराः ॥५७
इन्द्रेण व्योमयानस्थः पार्थः प्रत्यर्थिनः प्रति । इयाय रणतूर्येण नावि नाविकवत्सह ॥५८
ततस्ते रणशौण्डीराश्चण्डकोदण्डमण्डिताः । आरेभिरे रणं कर्तुं पार्थेन सुधनुष्मता ॥५९
सामान्यशस्त्रतो जेतुमशक्याः सव्यसाचिना । ज्ञात्वेति वैरिणो हन्तुमारब्धा दिव्यशस्त्रतः ॥
नागपाशेन ते बद्धाः केचित्केचिच्च वह्निना । ज्वालिताश्चार्धचन्द्रेण छिन्नास्तेनारयः परे ॥

शेखर है । इन्द्रराजा हमेशा दुश्चिन्तामें रहता है ऐसा जानकर मैंने नम्रतासे किसी समय नैमित्तिकको नमस्कार करके पूछा, कि इन्द्रराजाके शत्रुओंका नाश कब होगा ? ॥ ४९-५१ ॥ तब वह निमित्तज्ञ कहने लगा कि हे विद्याधर तू सुन---" जो तुझे मनोहर पर्वतपर जीतेगा वह अर्जुन इंद्रराजके शत्रुओंको नष्ट करेगा। " उस कथनको सुनकरही मैं गुप्तरूपसे इस महापर्वतपर रह रहा हूं। हे प्रभो, हे महाविद्वन्, आप मुझे पुण्योदयसे प्राप्त हुए हो। आओ, आओ आपके साथ अब मुझे वहां जाना है, ऐसा बोलकर जिसके ऊपर उत्तम ध्वज लगाये हैं ऐसे विमानमें वे दोनों बैठ गये ॥ ५२-५४ ॥ प्रमाणयुक्त, रणझण करनेवाली घंटियोंके शब्दसे व्याप्त, जिसमें अर्जुन और विद्याधर बैठे हैं ऐसा वह विमान चलने लगा। विमानमें बैठे हुए वे दोनों विजयार्ध---महापर्वतपर गये। वे निश्चयसे आये हैं ऐसा सुनकर इन्द्रराजा उनके सम्मुख गया। उतनेमें उसके वैरी भी जिन्होंने आकाश और दिशाओंका मध्यभाग व्याप्त किया है, विमानमें आरूढ होकर चलने लगे ॥ ५५-५७ ॥ जैसे नावमें बैठा हुआ पुरुष नाविकके साथ रहता है वैसे इन्द्रके साथ विमानमें बैठा हुआ अर्जुन शत्रुओंके ऊपर युद्धके वाद्योंके साथ आक्रमण करने लगा ॥ ५८-५९ ॥ प्रचण्ड धनुष्यसे शोभनेवाले, युद्धशूर वे वैरी धनुर्धारी--अर्जुनके साथ लडने लगे। सामान्य शस्त्रोंसे इनको जीतना कठिन है ऐसा समझ कर दिव्यशस्त्रसे अर्जुनने शत्रुओंको मारना प्रारंभ किया। कई शत्रुओंको उसने नागपाशसे बांधा और कई शत्रुओंको उसने अग्निबाणसे जलाया और कइयोंको अर्धचन्द्र बाणसे छेद डाला। इस प्रकार इन्द्रको अर्जुनने शत्रुरहित किया और वह उसके साथ

इन्द्रं निर्वैरिणं कृत्वा ययौ तेन धनंजयः। आतोद्यनादवृन्देन नगरं रथनूपुरम् ॥६२
गृहे गृहे स्म गायन्त्यङ्गना मङ्गलनिस्वनम्। धनंजयजयं वैरिपक्षक्षयसमुद्भवम् ॥६३
पाण्डवानां वरो वंशो गीयते मागधैर्मुदा। अर्च्यतेऽर्चनया पार्थः खेटैः क्षपितदुर्णयैः ॥६४
अग्रेकृत्य खगान् क्षिप्रं श्रेणीयुग्मं विलोकितुम्। गत्वा वीक्ष्य स आयातो नगरं रथनूपुरम् ॥
एवं च पञ्च वर्षाणि विद्याधरमहाग्रहात्। स्थित्वा मित्रैः सुगन्धर्वताराद्यैर्निर्ययौ ततः ॥६६
चित्राङ्गप्रमुखैः शिष्यैर्धनुर्विद्यासुशिक्षकैः। शतसंख्यैः समं चेले पार्थेन पृथुकीर्तिना॥ ६७
तत्रागत्य नृपान्भ्रातॄन्समुत्तीर्य विमानतः। वीक्ष्य संमिलितो भक्त्या ननाम स यथायथम् ॥
वियोगार्ताश्चिरं चित्ते सुखं भेजुस्तदाप्तितः। पाण्डवा मिलिते स्वीये कस्य सौख्यं न जायते॥
पुनः पार्थः स पाञ्चालीं प्राप्य प्रणयपूरिताम्। प्रपेदे परमं सातं पुण्यपूर्णः प्रतापवान् ॥७०
चित्राङ्गप्रमुखाः शिष्याश्चापविद्याविशारदाः। गरीयांसो वरीयांसः सेवन्ते स्म धनंजयम् ॥
मानयन्तो महामान्या युधिष्ठिरमहीपतेः। जज्ञिरे परमामाज्ञां सुज्ञा विज्ञानगाश्च ते ॥७२
दुर्योधनेन ते ज्ञाता एकदा पाण्डवा नृपाः। सहायवनसंप्राप्ताः सन्न्यायपथचारिणः ॥७३

वाद्योंके नाद सहित रथनूपुरको चला गया ॥ ६०–६२ ॥ उस समय प्रत्येक घरमें स्त्रियां शत्रु-पक्षका क्षय करनेसे उत्पन्न हुए अर्जुनके यशका गायन मंगलयुक्त शब्दोंसे गाने लगीं। स्तुतिपाठक पाण्डवोंके उत्तम वंशका गान आनंदसे करने लगे। जिन्होंने अनीतिका विध्वंस किया है ऐसे विद्याधर वस्त्रादिकोंसे अर्जुनकी पूजा करने लगे ॥ ६३–६४ ॥

[अर्जुनका रथनूपुरमें निवास] विद्याधरोंको आगे करके अर्जुन शीघ्र उत्तरश्रेणी और दक्षिणश्रेणी देखनेके लिये जाकर रथनूपुर नगरको आया। वहां विद्याधरोंके अत्याग्रहसे पांच वर्षतक रहा। तदनंतर गंधर्व, तारक आदि मित्रोंके साथ और धनुर्विद्यामें निपुण हुए चित्रांग आदि सौ शिष्योंके साथ बडी कीर्ति जिसकी है ऐसा अर्जुन वहांसे निकला ॥ ६५–६७ ॥ कालिंजर वनमें, जहां पाण्डव ठहरे हुए थे, वहां अर्जुन विमानसे आकर और उसपरसे उतरकर अपने भाईयोंको देखकर उनसे वह मिला। उसने यथाक्रम भक्तिसे अपने भाईयोंको नमस्कार किया। अर्जुनकी प्राप्तिसे दीर्घकालके वियोगसे पीडित पांडव मनमें सुखी हुए। योग्यही है, कि अपने जनके मिला-पसे किसको सुख नहीं होता है ? ॥ ६८–६९ ॥ प्रीतिसे भरी हुई पांचाली द्रौपदीको प्राप्त कर पुण्यपूर्ण और प्रतापी अर्जुन पुनः अतिशय सुखी हुआ ॥ ७० ॥ धनुर्विद्यामें निपुण, बडे और श्रेष्ठ चित्रांग आदि मुख्य शिष्य अर्जुनकी सेवा करते थे ॥ ७१ ॥ युधिष्ठिरराजाकी हितकारी उत्तम आज्ञाको माननेवाले वे अर्जुनके शिष्य महामान्य, सुज्ञ और विशिष्ट ज्ञानी हुए ॥ ७२ ॥ किसी समय उत्तम न्यायमार्गमें तत्पर पाण्डवराजा सहायवनमें आये हैं ऐसा दुर्योधनने जाना, वह क्रोधसे बलपूर्ण अपने सैन्यके साथ सनद्ध होकर उनको मारनेके लिये उद्युक्त हुआ ॥ ७३–७४ ॥

संनद्धः क्रोधसंबद्धो दुर्योधनमहीपतिः । स्वबलैर्बलसंपन्नो यथा तान् हन्तुमुद्यतः ॥७४
एतस्मिन्नन्तरेऽप्यायान्नारदर्षिऋषिर्यमी । चित्राङ्गदसमभ्येत्य कथयितुं तदागमम् ॥७५
चित्राङ्गद किमर्थं त्वं वने भयसमाकुले । वैरिवर्गसमाक्रान्ते तिष्ठसीति बभाण सः ॥७६
भो गन्धर्व सुताराख्य किमर्थं खगनायक । सेव्यन्ते पाण्डवाः स्पष्टं त्वयापि वनवासिनः ॥
चित्राङ्गदो बभाणेति नानर्षे शृणु मद्वचः । अस्माकं गुरुरेवायं गरीयान् श्रीधनंजयः ॥७८
येनेन्द्रः स्थापितो राज्ये निवार्यारिकदम्बकम् । स्वाम्यस्माकमयं पार्थो वयं तत्सेवकाः सदा
नानर्षिर्भाषते तावच्छ्रुत्वा तद्वचनं वरम् । दुर्योधनो रिपुः प्राप्त इदानीमत्र दुर्जयः ॥८०
यद्येतस्य सुशिष्यत्वमवेदिष्यमहं तव । धार्तराष्ट्रान्क्षणार्धेनाहनिष्यं सकलान् रिपून ॥८१
आजन्म ब्रह्मचारित्वं विद्यते मयि निश्चितम् । सदा धर्मरतश्चाहं नारीनामपराङ्मुखः ॥८२
योगाङ्गे यो गरिष्ठात्मा पितामहो महामतिः । तद्वाक्यं न प्रकुर्वन्ति कौरवाः कलिकारिणः॥
यो द्रोणो विदुरश्च स्तः पितृव्यौ परमोदयौ । तद्वाक्यविरता वैरं वहन्तः सन्ति कौरवाः ॥
इदानीं संगरं कर्तुं संप्राप्ते कौरवेश्वरे । सज्जा भवत भो भक्ता रणातिथ्यप्रदायिनः ॥८५

[नारदागमन] इसके बीचमें दुर्योधनकी आगमन वार्ता कहनेके लिये नारद ऋषि, जो कि मुनिके समान संयमी थे, चित्रांगदके पास आये। वे चित्रांगदको कहने लगे कि 'हे चित्रांगद भयसे भरे हुए, शत्रुसमूहसे व्याप्त इस वनमें तूं क्यों रहता है ?" हे गंधर्व, हे सुतार विद्याधरों, आप वनमें रहनेवाले पाण्डवोंकी क्यों सेवा कर रहे हैं ? ॥ ७५–७७ ॥ चित्रांगदने कहा,– "हे नारद मेरा वचन सुनो, यह श्रेष्ठ धनंजय हमारा गुरु है। इसने शत्रुसमूहको नष्ट कर इन्द्रविद्याधरको राज्यपर स्थापित किया है। यह अर्जुन हमारा स्वामी है और हम उसके सदा सेवक हैं। नारदऋषि चित्रांगदका उत्तम भाषण सुनकर बोलने लगे– हे चित्रांगद इस समय इस वनमें दुर्जयशत्रु दुर्योधन आगया है। हे चित्रांगद तुम यदि क्षणार्धमें संपूर्ण शत्रुरूप दुर्योधनादिक कौरवोंको मारोगे तो तुम अर्जुनके शिष्य हो ऐसा मैं समझूंगा। मैं निश्चयसे आजन्म ब्रह्मचारी हूं। मैं हमेशा धर्ममें तत्पर रहता हूं। नारीके नामसे भी पराङ्मुख हूं ॥ ७८–८२ ॥ जो श्रेष्ठ आत्मा है, जो महाबुद्धिमान् और पितामह है, ऐसे भीष्माचार्यकी आज्ञाको कलह करनेवाले ये कौरव नहीं मानते हैं। जो द्रोण और विदुर इनके चाचा हैं जो परमोन्नतिवाले हैं उनके वचनोंसे ये कौरव विरक्त हुए हैं। उनके वचन ये नहीं मानते हैं। और पांडवोंके साथ वैर धारण करते हैं। अब कौरवेश्वर दुर्योधन युद्ध करनेके लिये आया हुआ है। हे चित्रांगदादि विद्याधरों, रणमें पाहुनगत करनेवाले आप युद्धके लिये सज्ज हो जावो ॥ ८३–८५ ॥ नारदऋषिका भाषण सुनकर कुपित और शत्रुरूप जंगलको जलानेमें अग्निके समान, गर्वसे भरा हुआ चित्रांग युद्ध करनेके लिये उद्युक्त हुआ ॥ ८६ ॥ उतनेमें बंधुओंसे सुंदर और रणके लिये तयारी जिसने की है, ऐसा दुर्यो-

तन्निशम्य तदा क्रुद्धो वैरिकादम्बकाद्रवः। चित्राङ्गो गर्वसंपन्नो रणं कर्तुं समुद्यतः ॥८६
तावद्दौर्योधनं सैन्यं संनद्धं बन्धुबन्धुरम्। चतुरङ्गं रणं कर्तुं समायासीत्सहोदरैः ॥८७
तदा क्रोधाग्निसंतप्तश्चित्राङ्गश्चित्रचित्तभृत्। गन्धर्वेण दधावाशु धवलं दधता यशः ॥८८
संक्षुब्धः सैन्यजलधिश्चित्राङ्गागस्तिना तदा। शोषितोऽशेषमात्रोऽपि विचित्रेण महात्मना ॥
शल्यश्चाथ विशल्यश्च सबलो दुष्टमानसः। दुःशासनादयोऽप्यन्ये समुत्तस्थू रणोत्सुकाः ॥९०
चित्राङ्गशरसंघातैश्छिन्ना बाणास्तदीरिताः। जेघ्नीयन्ते घनैर्घातैस्तेऽन्योन्यं रणलालसाः ॥
प्रहरन्तो महाबाणैर्गदाभिः कुन्तकोटिभिः। तीक्ष्णधाराधरैः खड्गैर्योयुध्यन्ते भटा रणे॥९२
मुशलैर्मारिता मत्ता मनो मानं विमुच्य च। म्रियन्ते तद्रणे किं न यदनिष्टमजायत ॥९३
हलैर्विदारिता हृद्ये हृदये च पतन्त्यहो। भटाः संघट्टसंपन्ना भूगर्भा इव संभ्रमात् ॥९४
धार्तराष्ट्रैर्महाबाणैर्विद्धं वीक्ष्य निजं बलम्। विव्याध तारगन्धर्वो मोहनेन शरेण तान् ॥९५
मोहितं तेन बाणेन सकलं विपुलं बलम्। अयशोभाजनं भूत्वैकको दुर्योधनः स्थितः ॥९६

धनका चतुरंग सैन्य युद्धके लिये उसके भाईयोंके साथ आया। उस समय क्रोधाग्निसे संतप्त, नाना प्रकारके विचारोंको धारण करनेवाला चित्रांग शुभ यश धारण करनेवाले गंधर्व विद्याधरके साथ युद्ध करनेके लिये वेगसे जाने लगा। विचित्र महात्मा ऐसे चित्रांगदरूपी अगस्तिके द्वारा संक्षुब्ध हुआ वह संपूर्ण सैन्य-समुद्र शुष्क किया गया। शल्य, विशल्य, सबल, दुष्टमानस, दुःशासन आदिक और अन्य भी योद्धा रणके लिये उत्सुक होकर सिद्ध हो गये ॥ ८७-९० ॥

[चित्रांगदसे दुर्योधनका बंधन] चित्रांगके बाणसमूहसे दुर्योधनके सैन्यने छोडे हुए बाण बीचहीमें तोड डाले। रणकी अभिलाषा जिनको हैं ऐसे दोनों सैन्य आपसमें अतिशय दृढ आघात करने लगे। बडे बडे बाण, अनेक गदा, भालाके अग्रभाग और, तीक्ष्ण धाराओंको धारण करनेवाले खडगादि साधनोंसे योद्धा खूब लडने लगे। मुशलोंसे पीटे गये उन्मत्त पुरुष मनका अभिमान छोडकर युद्धमें मरने लगे। जो अनिष्ट नहीं हैं ऐसा युद्धमें क्या था ? अर्थात् युद्धमें प्रायः अनिष्टही होता है। मनोहर हृदयमें हलके द्वारा विदीर्ण किया गया वीर पुरुषोंका समूह मानो गडबडीसे इकट्ठे हुए पृथ्वीके गर्भ है क्या ? ॥ ९१-९४ ॥ धृतराष्ट्रके पुत्रोंके द्वारा अपना सैन्य विद्ध हुआ देखकर तार-गंधर्वने मोहनशरके द्वारा उनको विद्ध किया। उस बाणसे दुर्योधनका विपुल सैन्य मोहित हुआ और दुर्योधन अपकीर्तिका पात्र बनकर अकेला रहा। युद्धमें महाशूर, दुर्योधन राजा अभिमानगलित

ग. वैरकारिं च तद्भवः। प. वैरिकाननसंद्भवः। ब. वैरिकाननशोषकः।

मानमुक्तो महाशूरो दुर्योधनमहीपतिः । आहवे विह्वलस्तेनाहूतश्चित्राङ्गवैरिणा ॥९७
चित्राङ्गः कौरवोऽन्योन्यं प्रहरन्तौ वरेषुभिः । वीक्ष्यमाणौ सुरौघेण शंसितौ तौ पुनः पुनः॥
युध्यमानं स्थिरं युद्धे चित्राङ्गं वीक्ष्य चार्जुनः । शशंसान्यमहाशिष्यानादिदेश युयुत्सया ॥
लब्धलक्ष्यस्तु गन्धर्वो लब्ध्वावसरमुत्तमम् । चिच्छेद तद्ध्वजं धीमान्पत्रिणा शीघ्रगामिना ॥
गन्धर्वोऽपातयत्तूर्णं गन्धर्वौ तद्रथस्थितौ । दौर्योधनं रथं बाणैर्बभञ्ज भुजविक्रमी ॥१०१
जगाद पार्थधानुष्को गन्धर्वः कौरवं प्रति । क्व यासि सांप्रतं दुष्ट खलीकृत्य जगत्खल ॥
दौर्जन्येन नरान्हन्तुं प्रवृत्तः पापपण्डितः । पश्येदानीं फल तस्य प्राप्तं पाप गतायुध ॥१०३
इत्युक्त्वा नागपाशेन पपाश पशुवन्नृपम् । तस्मिन्बद्धे भटा भक्ता भेजुः काष्ठां भयावहाम् ॥
गन्धर्वस्य यशो भूमौ बभ्राम विधुनिर्मलम् । दुर्योधनसुबन्धोत्थं न्यायात्कस्य जयो न हि ॥
तावता पत्तयः सर्वे सादिनश्च विषादिनः । नियन्तारो गजस्थाश्च कौरवाः शुचमाययुः ॥
पापेन प्राप्तदुर्मानाा दुर्योधनजनाः क्षणात् । मोहिता मोहबाणेन मुमूर्च्छुश्छद्मकारिणः ॥१०७
तदा भानुमतीं प्राप तत्प्रिया प्रियवादिनी । प्रियबन्धनजां श्रुत्वा किंवदन्तीं रुदत्यलम् ॥

हुआ, विह्वल हुए उस दुर्योधनको चित्राङ्ग विद्याधरने बुलाया। अन्योन्यको उत्तम बाणोंसे प्रहार करनेवाले चित्राङ्ग और कौरव देवोंके द्वारा देखे गये और पुनः पुनः प्रशंसित हुए ॥ ९५–९८ ॥ अर्जुनने युद्धमें स्थिरतासे लडनेवाले चित्राङ्गको देखकर उसकी स्तुति की और युद्ध करनेके लिये अन्य महाशिष्योंको आज्ञा दी ॥ ९९ ॥ जिसको लक्ष्यकी प्राप्ति हुई है ऐसे बुद्धिमान् गंधर्वने उत्तम अवसर प्राप्त करके शीघ्र गतिवाले बाणसे उसका ध्वज तोड दिया ॥ १०० ॥ गंधर्व विद्याधरने दुर्योधनके रथको जोडे हुए घोडोंको गिराया। तथा दुर्योधनका रथ बाहुप्रतापी गंधर्वने तोड दिया ॥ १०१ ॥ अर्जुनका शिष्य धनुर्धारी गन्धर्व कौरवको कहने लगा, कि– "हे दुष्ट दुर्योधन, जगत्को पीडा देकर अब तूं कहाँ जा रहा है? पापमें चतुर तू दुष्टपनसे मनुष्योंको मारनेके लिये प्रवृत्त हुआ है, परंतु जिसका आयुध नष्ट हुआ है ऐसे हे पापी दुर्योधन उसका फल अब प्राप्त होनेका समय आया है देख। ऐसा कहकर उसने राजाको (दुर्योधनको) पशुके समान नागपाशसे बद्ध किया"। उसको बांधनेपर उसके भक्त ऐसे वीर भयावह अवस्थाको प्राप्त हुए ॥ १०२–१०४ ॥ उस समय दुर्योधनको बांधनेसे गंधर्वका उत्पन्न हुआ चन्द्रके समान निर्मल यश भूतलपर फैल गया। योग्यही है कि न्यायसे किसे जय नहीं मिलेगा? उस समय दुर्योधनके सर्व पैदल सैन्य, घुडसवार सैन्य खिन्न हुआ और गजपर आरोहण करनेवाले वीरपुरुष शोकयुक्त हुए ॥ १०६ ॥ पापोदयसे दुष्ट अभिमानको धारण करनेवाले दुर्योधनके सैन्यको तत्काल मोहबाणसे मोहित किया। वे कपट करनेवाले लोग मूर्च्छित हो गये ॥ १०७ ॥

[भानुमतिकी पतिभिक्षायाचना] उस समय मधुर भाषण करनेवाली दुर्योधनकी प्रियपत्नी

शोकसंतापसंतप्ता नेत्राश्रुजलधारया । सिञ्चन्ती कुं रुदन्ती च भूपतीन्सावदद्गिरा ॥१०९
अन्योन्यवदनेक्षां च कुर्वन्तः किं नृपाः स्थिताः । मन्नाथे बन्धनं नीते भवतां का सुखासिका ॥
मोचयध्वं ममाधीशं कौरवाणामधीश्वरम् । अन्यथा भवतां कुत्र स्थास्नुत्वं कीर्तिकृन्तिनाम् ॥
विलापमुखरां वीक्ष्य रुदन्तीं तां पितामहः । प्राह भानुमतीं प्रीतां ददद्आश्वासनामिति ॥११२
किं क्रन्दसि कृपापात्रे किं रोदिषि जने जने । मोचयितुं समिच्छा चेत्पतिं तन्मे वचः कुरु॥
याहि याहि स्नुषे धर्मपुत्रस्य शरणं ध्रुवम् । यतो बन्धविमुक्तिः स्यात्तव पत्युर्दुरात्मनः ॥
कृतेऽपि दुर्नये तेन धर्मपुत्रस्तु धर्मधीः । क्षमः क्षाम्यति भूपालान्कौरवान्कृतदूषणान् ॥११५
स धीरो विधुरान्धर्तुं धरण्यां धरणीधरान् । समर्थो न जहात्याशु निजं शीलं कदाचन ॥
श्रुत्वा तद्वचनं भानुमती तीव्राशया ततः । गता सबान्धवो यत्र समास्ते धर्मनन्दनः ॥११७
देहि देहि दयाधीश भर्तृभिक्षां सुखावहाम् । मह्यं क्षान्त्वापराधानां शतं शीतल सन्मुख ॥
तावता पार्थशिष्येण विबन्ध्य कौरवं नृपम् । रथे संरोप्य संचेले स्वपुरं स्वःपुरोपमम् ॥११९
नीयमानं नृपं श्रुत्वावादीत्स विपुलोदरः । भव्यं भव्यमिदं जातं यद्धृतः कौरवाग्रणीः ॥१२०

अपने प्रियपतिके बंधनकी वार्ता सुनकर अतिरुदन करने लगी। शोकके संतापसे सन्तप्त हुई नेत्रोंके अश्रुजलकी धारासे पृथ्वीको सिञ्चित करती हुई, रोनेवाली वह भानुमती इस प्रकार भाषण करने लगी। हे राजगण, अन्योन्यका मुंह देखते हुए आप क्यों चुप बैठे हैं ? मेरा पति बंधनको प्राप्त होनेपर आपको क्या सुख प्राप्त होगा ? कौरवोंके स्वामी मेरे पतिको आप छुडावें अन्यथा कीर्तिको नष्ट करनेवाले आपको चिरस्थायित्व कहांसे मिलेगा ? इस प्रकार जोरसे विलाप करके रोनेवाली प्रिय भानुमतीको देखकर आश्वासन देते हुए भीष्माचार्य इस प्रकार कहने लगा ॥ १०८-११२ ॥ "हे भानुमति, तुम शोक क्यों करती हो ? प्रत्येक मनुष्यके पास जाकर क्यों रुदन करती हो ? यदि तुम अपने पतिको छुडाना चाहती हो तो मेरा वचन सुनो" ॥ ११३ ॥ "हे स्नुषे, तुम धर्मपुत्रको निश्चयसे शरण जावो। जिससे तुम्हारे दुष्ट पतिकी बंधनसे मुक्ति होगी। यद्यपि तुम्हारे पतिने अन्याय किया है तो भी समर्थ धर्मपुत्र धर्मबुद्धि मनमें रखनेवाला है। वह जिन्होंने अपराध किये हैं ऐसे कौरवभूपालोंको क्षमा करेगा। वह धीर इस भूतलमें दुःखी हुए राजाओंको धारण करनेमें उनका दुःख दूर करनेमें समर्थ है। समर्थ लोग अपना शील-स्वभाव कदापि नहीं छोडते है।" ॥ ११४-११६ ॥ भीष्माचार्यका वचन सुनकर तीव्र आशयवाली भानुमती तदनंतर जहां अपने बंधुओं सहित धर्मराज बैठा था वहां गई ॥ ११७ ॥ हे शीतल, हे शुभमुख, हे दयाके स्वामिन्, सौ अपराधोंकी क्षमा करके मुझे सुख देनेवाली पति-भिक्षा आप दीजिये। उस समय दुर्योधनराजाको बांधकर तथा रथमें आरोपित कर अर्जुनका शिष्य स्वर्गके समान अपने नगरको जानेके लिये उद्युक्त हुआ ॥ ११८-११९ ॥ रथमें आरोपित कर दुर्योधनको अर्जुनका

वधो विधीयते यस्तु स्वहस्तेन मया त्वया । स एव स्वयमाप्तोऽस्ति परहस्तेन किं शुचा ॥
हसन्तं पावनिं ज्येष्ठो वर्जयित्वा वचो जगौ । उत्तमानामयं भावो न याति विक्रियां क्वचित् ॥
दुर्जनैः खिद्यमानोऽपि महात्मो याति विक्रियाम् ।
राहुणा छाद्यमानोऽपि चन्द्रो नोज्ज्वलतां त्यजेत् ॥१२३
पार्थं बभाण संप्राप्तो धर्मपुत्रस्तवाधुना । विद्यतेऽवसरो नूनं तन्मोचनकृते कृतिन् ॥१२४
पाण्डवानां जगत्यत्रापकीर्तिर्जायते न हि । यावत्तावद्विमोच्योऽयं कुरूणामधिपस्त्वया ॥१२५
यावन्न म्रियते तावत्स विमोच्य त्वमानय । मृतेऽस्मिन्पाण्डवानां हि न सौरूप्यं कदाचन ॥
इत्युक्तः स दधावाशु सरथः शक्रनन्दनः । मुच्यतां मुच्यतां नेयो न गेहेऽयमिति ब्रुवन् ॥
गन्धर्वस्तद्वचः श्रुत्वा स्थितोऽवसरमात्मनः । वीक्ष्यावोचत्प्रकुर्वाणः स्ववीर्यं प्रकटं परम् ॥
भवतामस्ति चेच्छक्तिरयं संत्याज्यतां लघु । धनुर्वेदमहाविद्यां दर्शयित्वा निजां पराम् ॥१२९
तावत्सस्यन्दनोऽधावत्सुतारस्तरलस्त्वरा । गन्धर्वपक्षमालक्ष्य विपक्षीभूतमानसः ॥१३०

शिष्य ले जा रहा है यह वार्ता सुनकर भीमसेन कहने लगा, कि यह कार्य तो खूब अच्छा हुआ। कौरवोंका अगुआ दुर्योधन पकडा गया यह ठीक ही हुआ। मेरे हाथमें यदि यह दुर्योधन पडता तो मैं इसको स्वयं मार देता। हे दुर्योधन तूने परहस्तसे वही वध प्राप्त कर लिया है। अब शोकसे क्या फायदा होगा? ऐसा कहकर हंसनेवाले भीमसेनका ज्येष्ठ युधिष्ठिरने निषेध किया और वह बोला, कि "भाई भीमसेन उत्तम पुरुषोंका स्वभाव कदापि विकृत नहीं होता है। दुर्जनोंके द्वारा पीडा दी जानेपर भी महापुरुष विकारी नहीं होते है अपनी शांति नहीं खो बैठते हैं। राहुसे आच्छादित किये जानेपर भी चंद्र अपने स्वच्छ प्रकाशको नहीं छोडता है ॥ १२०-१२३ ॥ धर्मराजने अर्जुनको कहा कि "हे विद्वन् पार्थ, अब तुझे दुर्योधनको छुडानेके लिये समय प्राप्त हुआ है। जगतमें पाण्डवोंकी अपकीर्ति होनेसे पहले यह कुरुदेशका स्वामी दुर्योधन तुझसे छुडाया जाना चाहिये और जबतक यह नहीं मरेगा तबतक इसे छुडाकर मेरे पास तू ला इसके मरणसे पाण्डवोंका कभी भला न होगा।" इसप्रकार आज्ञा किया गया वह अर्जुन रथमें बैठकर दौडने लगा और हे विद्याधरो, तुम इस कौरवेश्वरको छोडो छोडो, इसे अपने घरमें मत लिये जावो ऐसा कहने लगा ॥ १२४-१२७ ॥

[चित्रांगदार्जुन युद्ध] गंधर्व उसका भाषण सुनकर खडा हो गया। अपने अवसरको देखकर अपना उत्तम सामर्थ्य प्रकट करता हुआ वह बोलने लगा, कि हे गुरो, यदि आपका सामर्थ्य होगा तो अपनी उत्कृष्ट धनुर्वेद-महाविद्या हमें दिखाकर इसे शीघ्र छुडाओ ॥ १२८-१२९ ॥ उस समय जिसका मन शत्रु बना है ऐसा सुतार नामका चंचल विद्याधर त्वरासे रथपर बैठकर गंधर्व विद्याधरके पक्षका आश्रय लेकर अर्जुनके साथ लडनेके लिये दौडने लगा ॥ १३० ॥ अनंतर

शिष्येण सह पार्थेशो युयुधे क्रुद्धमानसः । बाणावल्याथ निःशेषं नभः संछादयंस्त्वरा॥१३१
खचरः शरसंघातैश्छादयंश्च धनंजयम् । पश्यामि ते धनुर्वेदं हसन्निति महामनाः ॥१३२
उत्तस्थे सुरथस्थोऽपि खगश्चित्ररथो रथम् । वाहयञ्शक्रपुत्रं च संक्रीडितुमिवोन्नतम् ॥१३३
यान्याञ्शरांश्च चित्राङ्गो मुञ्चते सव्यसाचिनम् । व्यर्थीकरोति पार्थस्तांस्तान्मेघानिव मारुतः॥
दिव्यास्त्रेण समारब्धं पुनर्युद्धं सुदारुणम् । ताभ्यां चापसमृद्धाभ्यां क्रुद्धाभ्यां भीरुभीतिदम् ॥
चित्राङ्गमुक्तदावाग्निं चिच्छेद जलदेन सः । चिच्छेद जलदं चित्रो वायुना सर्वहारिणा ॥
आबाधयत्तदा वायुं वाडवेन धनंजयः । तन्मुक्तं नागपाशं च गरुडेन जघान सः ॥१३७
तेन मुक्ताञ्शरानेवं व्यर्थीचक्रे धनंजयः । जयलक्ष्मीमवापाशु साधुकारं जनौघतः ॥१३८
तच्छिष्यैः सकलैः पार्थो गुरुभक्त्या नतस्तुतः । दुर्योधनोऽपि पार्थेन प्रीणितो बहुभाषणैः ॥
शरसोपानमालाश्च विधाय विधिवद्बुधः । दुर्योधनं गिरेः शृङ्गात्समुत्तारयति स्म सः ॥१४०
आनीय नृपतेः पार्श्वे कौरवं शक्रनन्दनः । मुमोच बन्धनात्खिन्नं बन्धात्खेदो हि जायते ॥
युधिष्ठिरं स संनुत्य नत्वा क्षान्त्वा स्थितो जगौ। विपाशीकृत्य संपृष्टः कुशलं धर्मजेन च ॥

त्वरासे बाणपंक्तियों द्वारा संपूर्ण आकाशको आच्छादित करनेवाला कुपित-चित्त अर्जुन शिष्यके साथ लडने लगा ॥ १३१ ॥ बाणोंके समूहसे धनंजयको आच्छादित करनेवाला महामना विद्याधर हँसता हुआ कहने लगा, आपकी धनुर्वेद-विद्या मैं देखना चाहता हूं ॥ १३२ ॥ शक्रपुत्र-उन्नत अर्जुनके प्रति अपना रथ मानो क्रीडा करनेके लिये ले जानेवाला, रथपर बैठा हुआ चित्ररथ उठकर खडा हो गया। जो जो बाण चित्राङ्गने सव्यसाची-अर्जुनके ऊपर छोडे वायु जैसे मेघोंको व्यर्थ करता है वैसे अर्जुनने उन उन बाणोंको व्यर्थ किया ॥ १३३-१३४ ॥ धनुर्विद्यामें समृद्ध-निपुण उन दोनोंने पुनः क्रुद्ध होकर भीरुजनोंको भय उत्पन्न करनेवाले भयंकर युद्धका दिव्यास्त्रोंके द्वारा प्रारंभ किया ॥ १३५ ॥ चित्रांगसे छोडे गये दावाग्नि-बाणका छेद अर्जुनने मेघबाणसे किया। और चित्रांगने सबको उडानेवाले वायुबाणके द्वारा मेघबाणको तोड डाला। इसके अनंतर वाडव-बाणसे धनंजयने वायुबाण बाधित किया। फिर चित्रांगके द्वारा छोडे गये बाण धनंजयने व्यर्थ किये और शीघ्र जयलक्ष्मीको प्राप्त किया तथा लोकसमूहसे स्तुति-प्रशंसा प्राप्त की। अर्जुन अपने सर्व शिष्योंसे गुरुभक्तिसे नमस्कृत हुआ और वे उसकी स्तुति करने लगे। अर्जुनने भी दुर्योधनको अनेक भाषणोंसे संतुष्ट किया ॥ १३६-१३९ ॥ विद्वान् अर्जुनने विधिके अनुसार बाणोंकी सोपानपंक्ति बनाकर पर्वतके शिखरसे दुर्योधनको नीचे उतारा। युधिष्ठिरराजाके पास दुर्योधनको लाकर अर्जुनने बंधनसे खिन्न हुए दुर्योधनको बंधमुक्त किया। बंधसे खेद होना योग्यही है ॥ १४०-१४१ ॥ युधिष्ठिरकी दुर्योधन स्तुति और नमस्कार कर तथा क्षमायाचना कर मौनसे बैठा। बन्धमुक्त करनेके अनंतर धर्मराजने दुर्योधनको कुशल प्रश्न पूछा तब दुर्योधनने इस प्रकारका उत्तर

नाथ बन्धनजं नाभूद्दुःखं मम यथा तथा। मोचितोऽनेन चेत्युक्तिर्नर्मात्मर्मप्रदायिनी ॥
मानभङ्गभवाद् दुःखादापरं शर्म हानिदम्। इति संप्रेषितस्तेन प्राप भूपः पुरं परम् ॥१४४
गतो निजपुरं दुःखी चिन्तयामास मानसे। हा हा मे मानुषं जन्म गतं निष्फलतां क्षणात्॥
क्वाहं च कौरवाधीशः क्व मे चित्तसमुन्नतिः। तत्सर्वं दलितं तेन रणे मोचयता मम ॥१४६
रणे बद्ध्वा पुनर्मुक्तः पार्थेनाहं सुदुःखितः। तद्दुःखं केन वार्येत मम प्राणापहारकम्॥१४७
यः कोऽपि मारयत्याशु पाण्डवांश्चण्डशासनान्। स पराभवशल्यं मे समुद्धरति दुर्धरम् ॥
तस्मै ददामि राज्यार्धं तद्धन्त्रे हृतमानसः। कोऽप्यस्ति भवने मर्त्यो मम दुःखनिवारकः ॥
इति श्रुत्वा जगौ धीमान्कनकध्वजभूपतिः। सप्तमे वासरे तान् वै हनिष्यामि सुपाण्डवान् ॥
न हन्मि चेद्दाम्याशु स्वात्मानं पावके भृशम्। इत्युक्त्वा निर्गतो दुर्धीर्वने ऋष्याश्रमे गतः
कृत्यां विद्यां स्थितस्तत्र संसाधयितुमुद्यतः। मन्त्रहोमविधानज्ञः कनकध्वज इत्वरः ॥१५२
तावद्ब्रह्मसुतो ज्ञात्वा गत्वा पाण्डवसंनिधिम्। जगाद मधुरालापैः पाण्डवानां सुखाप्तये ॥

दिया " हे प्रभो मुझे बन्धनसे वैसा दुःख नहीं हुआ जैसा अर्जुनके द्वारा मुझे बन्धनसे मुक्त किये जानेपर हुआ। मुझे अर्जुनने मुक्त किया यह उक्ति मुझे लज्जाका दुःख उत्पन्न करनेवाली है। मान भंगसे उत्पन्न हुए दुःखसे इतर दुःख सुखकी हानि करनेवाला नहीं है "। बन्धनमुक्त कर युधिष्ठिरसे भेजा गया दुर्योधन अपने सुंदर नगरको चला गया ॥ १४२–१४४ ॥ अपने नगरको जाकर दुःखी दुर्योधन अपने मनमें चिन्ता करने लगा " हाय हाय मेरा मनुष्यजन्म एक क्षणमें निष्फल हुआ। मैं सब कौरवोंका स्वामी, कहां मेरी चित्तकी समुन्नति-कहां मेरा मान ? मुझको रणमें बंधनसे मुक्त करनेवाले उस अर्जुनने मेरा सर्व अभिमान नष्ट किया। रणमें बांधकर पुनः अर्जुनने दुःखित हुए मुझे मुक्त किया। उस समयसे मुझे प्राण नष्ट करनेवाला दुःख हुआ है, उसे कौन दूर करनेमें समर्थ है ? जिनका शासन उग्र है ऐसे पाण्डवोंको जो शीघ्र मारेगा वह मेरा दुर्द्धर पराभवका शल्य निकाल सकेगा और उनको मारनेवालेको जिसका मन दुःखी हुवा है ऐसा मैं राज्यार्द्ध दूंगा। मेरे इस दुःखको दूर करनेमें क्या कोई पुरुष इस जगतमें समर्थ है ? "॥ १४५–१४९ ॥

[कनकध्वजसे कृत्यासाधन] दुर्योधनका भाषण सुनकर कनकध्वज नामक विद्वान् राजाने इस प्रकारका भाषण किया। " मैं सातवे दिन उन पाण्डवोंको निश्चयसे मारूंगा। यदि न मारूंगा तो मैं शीघ्रही अग्निमें कूदकर स्वयंको अतिशय जलाउंगा अर्थात् मर जाऊंगा। " ऐसा बोलकर वह दुष्ट बुद्धिका राजा वनमें ऋषिके आश्रममें गया। वहां रहकर ' कृत्या ' नामक विद्याको सिद्ध करनेमें उद्युक्त हुआ। उसे मन्त्र, होम जप इत्यादिविधिका ज्ञान था ॥ १५०–१५२ ॥ इतनेमें इधर ब्रह्माके सुत नारदने पाण्डवोंके सन्निध जाकर पाण्डवोंको सुख हो इस सदिच्छासे मधुर शब्दोंसे कहा। हे राजन्, सातवे दिन कृत्याविद्याके प्रभावसे कनकध्वज नामक दुष्ट राजा

सप्तमे वासरे राजन् कृत्याविद्याप्रभावतः । हनिष्यति हतात्मायं भवतः कनकध्वजः ॥१५४
इति श्रुत्वा सुधर्मात्मा धर्मपुत्रः पवित्रधीः । नासाग्रदृक्निरीहः सन् निःसंगो निश्चलः स्थितः॥
शुभध्यानरतः शुद्धो दुःसंसारपराङ्मुखः । समाहितमनास्तस्थौ निमीलितनिजेक्षणः ॥ १५६
प्राणीप्सितसुशर्माणि जायन्ते धर्मतो ध्रुवम् । भो भ्रातरः कुरुध्वं हि धर्ममेकं सुसिद्धये ॥
अस्माकं परलोकाय यो बुधः सकलैः स्तुतः । सुरासुरैः सदा भूयाद्विघ्नसंघातघातकः ॥१५८
धर्मः सोऽप्यत्र संसिद्ध्यै सहायो मे भविष्यति । धर्मतो नापरं विद्धि सातहेतुं सनातनम् ॥
आपदा धर्मतः पुंसां संपदायै भवेल्लघु । ग्रीष्मे सूर्यकरा यद्वत्सुवृक्षाणां फलर्द्धये ॥१६०
इति धर्मं स्तुवन्धर्मपुत्रोऽयमवतिष्ठते । तावदासनकम्पेन धर्मदेवः प्रबुद्धधीः ॥१६१
तदुपद्रवमाज्ञाय सहसा स समाययौ । अवामि पाण्डवं वंशं क्षीयमाणं वदन्निति ॥१६२
स सुरः प्रकटीभूय जजल्प गूढमानसः । अस्मत्स्थाने स्थिता यूयं कथं सुस्थिरमानसाः ॥
अस्मन्माहात्म्यमाज्ञातं भवद्भिः किं पुरा न हि । क्षीयन्तेऽस्मत्प्रकोपेन क्षणार्धेन क्षितौ जनाः

आपको मारनेवाला है ॥ १५३-१५४ ॥

[नारदका भाषण सुनकर धर्मराज धर्म-ध्यान-तत्पर हुआ] नारदजीका भाषण सुनकर पवित्र बुद्धिवाला सुधर्मात्मा धर्मपुत्रने नासाग्रमें अपनी दृष्टि स्थिर की। वह निरिच्छ, परिग्रहत्यागी और निश्चल हुआ ॥ १५५ ॥ शुद्ध अन्तःकरणवाला वह शुभध्यानमें तत्पर होकर दुःखदायक संसारसे पराङ्मुख हुआ। जिसने अपनी आंखें मूंद ली है ऐसा वह एकाग्रचित्त होकर बैठ गया। " हे भाईयों, तुम अपने शुभकार्यके सिद्ध्यर्थ एक धर्महीका आराधन करो क्यों कि, धर्मसे प्राणियोंको इच्छित सुखोंकी निश्चयसे प्राप्ति होती है। हे बंधुजन, जिस धर्मकी सुरासुरोंने स्तुति की है वह विघ्नसमूहका घात करनेवाला धर्म हमको परलोकके लिये सदा हो। अर्थात् धर्मके आश्रयसेही उत्कृष्ट परलोककी प्राप्ति होती है। वह धर्म यहां भी हमारे कार्य-सिद्धिके लिये सहायक होगा। धर्मसे भिन्न वस्तु चिरंतन सुखका कारण नहीं है। सिर्फ धर्महीसे शाश्वत सुख मिलता है। आपत्ति धर्मके आश्रयसे शीघ्र पुरुषोंको संपत्तिके लिये हो जाती है। जैसे ग्रीष्मकालमें सूर्यके किरण वृक्षोंको फलवृद्धिके कारण हो जाते हैं " इस प्रकार धर्मकी स्तुति करता हुआ धर्मपुत्र बैठा था उतनेमें वस्तुओंके स्वभावोंको जिसकी बुद्धि खूबीसे जानती है ऐसा धर्म नामक देव आसनकम्पनसे पाण्डवोंके उपद्रवोंको जानकर मैं पाण्डवोंके नष्ट होते हुए कुलका रक्षण करूंगा ऐसा बोलता हुआ वहां अकस्मात् आया ॥ १५६-१६२ ॥

[धर्मदेवसे द्रौपदीका हरण] जिसने अपना अभिप्राय गूढ रखा है ऐसा वह देव प्रकट होकर कहने लगा, कि तुम अतिशय स्थिरमनसे हमारे स्थानमें कैसे बैठे हो ? हमारे माहात्म्यका ज्ञान क्या आपको पूर्वमें नहीं हुआ था ? हमारे कोपसे इस भूतलपर लोक क्षणार्धमें नष्ट होते हैं।

इत्याभाष्य विशुद्धात्मा जहार द्रौपदीं सतीम् ।
धावन्ति स्म तदा क्रुद्धाः कौन्तेयाः कन्तितुं सुरम् ॥१६५
तावन्मद्रीसुतौ तूर्णं दधावतुर्महाक्रुधौ । जल्पन्ताविति वेगेन सुपर्वाणं वरत्विषम् ॥१६६
क यासि रे महावीर हृत्वेमां सुन्दरीं वराम् ।
मार्यमाणं स्वमात्मानं किं न जानासि सत्वरम् ॥ १६७
यत्र यत्र सुरो याति पाञ्चाल्या सह पावनः । तत्र तत्राटतुस्तूर्णं मद्रीपुत्रौ मनोहरौ ॥१६८
पिपासापीडितौ तावज्जातौ तौ निर्जले वने । जग्मतुः क्वापि पानीयं पातुं पीवरसद्भुजौ ॥
निर्मिमीते स्म तावत्स जलकल्लोलसंकुलम् । कमलाकरसंकीर्णं पद्माकरं वृषः सुरः ॥१७०
नकुलः सहदेवश्च देवखातं पिपासितौ । पातुं पावनपानीयं पवित्रौ वीक्ष्य ताविती ॥१७१
अप आपीय पूतौ तौ पतितौ जलयोगतः । न वित्तः स्म च मूर्च्छाढ्यौ कौचिद्विषजलं यथा॥
तदा पार्थो जगादैवं क गतौ भ्रातरौ मम । शीघ्रेण दीर्घकालेन नायातौ किं महाद्भुतम् ॥
केन चित्कथिते तावत्तत्स्वरूपे धनंजयः । नत्वा युधिष्ठिरं तूर्णं निर्गतस्तौ विलोकितुम् ॥

ऐसा बोलकर उस विशुद्धात्मा देवने सती द्रौपदीको हर लिया ॥ १६३–१६४ ॥

[विषजलपानसे नकुलादिक पांच पाण्डव मूर्च्छित हुए] उस समय क्रुद्ध हुए कुन्तीके सुत युधिष्ठिरादिक उस देवको मारनेके लिये दौडने लगे। महाक्रोधी मद्रीसुत–नकुल और सहदेव, जिसकी कान्ति उत्तम है ऐसे देवको “ हे महावीर इस उत्तम सुंदरीको हर कर तू कहां जा रहा है। अब जल्दीही तू अपनेको मारा जानेवाला हैं ऐसा क्यों नहीं समझता है ? ” ऐसे बोलते हुए बडे वेगसे जहां जहां यह पवित्र देव पाञ्चालीको साथ लेकर गया वहां वहां वे शीघ्र दौडकर गये। दौडनेसे उनको प्यासने बहुत सताया, पुष्ट और उत्तम जिनके भुज हैं ऐसे वे नकुल और सहदेव उस निर्जलवनमें कहीं पानी पीनेके लिये गये। धर्म नामक देवने जलतरंगोंसे व्याप्त, कमलोंके समूहसे भरा हुआ तालाव निर्माण किया। जिनको प्यास लगी है ऐसे वे पवित्र नकुल सहदेव सरोवरको देखकर उसका पवित्र पानी पीनेके लिये गये। वे पवित्र दोनों भाई पानी पीकर पानीका संबंध होनेसे जैसे कोई विषजल पीकर मूर्च्छित होते हैं, अकस्मात् मूर्च्छित हो गये ॥१६५–१७२॥ उस समय अर्जुन कहने लगा कि, मेरे दो भाई कहां गये। शीघ्र आनेवाले इतना दीर्घकाल बीतने-पर भी नहीं आये यह बडा आश्चर्य है। किसीने उन दोनोंका स्वरूप कहा। तब धनंजय युधिष्ठिरको नमस्कार कर शीघ्र उन दोनोंको देखनेके लिये निकला। तालावके तीरपर वे दोनों छोटे भाई मृतके समान देखकर अर्जुन खिन्न होकर करुणस्वरसे रोने लगा। “ क्या ये दोनो आकाशसे पडे हुए चन्द्रसूर्य हैं ! अथवा महायुद्धमें धर्मपुत्रके ये दो बाहु पडे हैं ! मेरे सुखरूप भाई युधिष्ठिरको अब मैं क्या उत्तर दूं ! ” ऐसा दीर्घकाल शोक कर अर्जुनने अपने मनमें धीरता धारण की ॥१७३–

तेन कासारतीरे तौ कनिष्ठौ गतजीवितौ । इत्र वीक्ष्य विषण्णेन रुरुदे करुणस्वरम् ॥१७५

अहो किं पतितौ भूमौ सूर्याचन्द्रमसौ च खात् ।
भुजौ वा धर्मपुत्रस्य पतितौ किं महाहवे ॥ १७६

किमुत्तरं प्रदास्याम्यनयोर्भ्रात्रे सुखात्मने । विलप्येति चिरं चित्ते दधार धीरतामसौ ॥१७७
पुनर्धनंजयः क्रुद्धो धृत्वा गाण्डीवसद्धनुः । करे बभाण भीमेन स्वरेण क्षोभयन्दिशः ॥
भ्रातरौ येन केनापि हतौ हन्त हतात्मना । मम तं प्रेषयिष्यामि सत्वरं यममन्दिरे ॥१७९
बभाण भीतिमुक्तात्मा साक्षाद्धर्म इवोन्नतः । धर्मः प्रच्छन्नरूपेण पार्थं प्रत्यर्थिनं यथा॥ १८०
तव भ्रातृयुगं योग्यं युगपद्विनिपातितम् । मया चेच्छक्तिमांस्त्वं हि कुरु तर्हि ममोदितम् ॥

मत्कासारे क्रुधं त्यक्त्वा पिपासां हन्तुमुल्बणाम् ।
पयः पिब पवित्रात्मन्यद्यस्ति बलवान्भवान् ॥ १८२

इत्युक्ते क्रुद्धचित्तेन पपे तस्य सरोजलम् । भ्रमदेहः पपातासौ विषेणेव जलेन च ॥१८३
यावत्प्रत्येति पार्थो न भीमं प्रोवाच धर्मतुक् । पार्थः किं न समायातो विलम्बयति केन वा॥
त्वं याहि ब्रूहि तं लात्वा समेहि हितकारक । इत्युक्ते पावनिः प्रीतामवर्निं विदधद्गतः ॥

---

१७७ ॥ पुनः कुपित हुए धनंजयने अपने हाथमें उत्तम गाण्डीव धनुष्य धारण कर और भयंकर स्वरसे दिशाओंको क्षुब्ध करता हुआ इस प्रकारसे बोलने लगा– " खेद है, कि किसी दुष्टात्माने मेरे दो भाईयोंको मार डाला है। मैं उसे शीघ्र यममंदिरमें भेज देता हूं। " भीतिरहित आत्मा जिसका है और साक्षाद्धर्मके समान उन्नत ऐसा धर्म नामक देव गुप्तरूपसे मानो शत्रुरूप अर्जुनको बोलने लगा– " तेरे दो भाई योग्य, शूर हैं उनको मैंने युगपत् मार दिया है, तू यदि शक्तिमान् है तो मेरा भाषण सुन–"यदि तू शक्तिमान् है तो हे पवित्रात्मन् मेरे तालावमें तू क्रोध छोडकर तीव्र पिपासाको नष्ट करनेके लिये जलपान कर " ऐसा बोलनेपर कुपितचित्त होकर उसने तालावका जल पिया। विषके समान उस जलसे जिसका देह भ्रमयुक्त हुआ है ऐसा अर्जुन जमीनपर गिर गया ॥ १७८–१८३ ॥ अभीतक अर्जुन क्यों नहीं आता है ऐसा भीमको धर्मराज पूछने लगे। अर्जुन क्यों नहीं आया और किस कारणसे वह विलम्ब कर रहा है । हे हित करनेवाला वत्स भीम, तू जा उसको देरीका कारण पूछ और उसको लेकर आ। ऐसा धर्मराजने कहा तब भीम पृथ्वीको आनंदित करता हुआ वहांसे चला गया। अपने चरणाघातसे उत्तम पृथ्वीको कंपित करता हुआ वह श्रेष्ठ विपुलोदर–भीम तालावको प्राप्त हुआ। वहां गये हुए भीमने अपने पडे हुए तीनों सज्जन बंधुओंको देखा। देखकर भीम हाहाकार करने लगा, उसका चित्त ठिकानेपर नहीं रहा, उसका मन

---

१ प. क्रोधचित्तेन।

पदप्रहारघातेन काश्यपीं कंपयन्पराम्। पद्माकरं प्रपेदेऽसौ परमो विपुलोदरः ॥१८६
गतस्तत्र ददर्शासौ पतितांस्त्रीन्सुबान्धवान्। हाकारमुखरः क्षीणो विलक्षः क्षीणमानसः॥
विललापेति हा दैव किमनिष्टमनुष्ठितम्। अद्यैव पतिता लोकास्त्रयो वा बान्धवा मम॥१८८

बान्धवांस्त्रीन्विमुच्याहं क्व व्रजामि स्थितिं भजे।
क्व केन वचनं वच्मि क्व पश्यामि सहोदरान्॥ १८९

पावनिर्विलपन्नेवमपप्तन्मूर्च्छया भुवि। कृच्छ्रेण च्छिन्नशाखीव मुक्तशोभो गतक्रियः॥१९०
वायविर्वायुना जातस्तत्रत्येन पयःकणैः। गतमूर्च्छः समुत्थाय पश्यति स्म दिशो दश॥
उवाच पावनिश्चेति हता मे येन बान्धवाः। तमीक्षे चेत्स्वहस्तेन हत्वा दास्यामि दिग्बलिम्॥
ततो गगनमार्गस्थो वृषोऽवादीद्वचो वरम्। यः कोऽपि बलवाल्लोके प्रविश्य सरसं सरः॥
पयः पिबति तस्यैव शक्तिं वेद्मि निरङ्कुशाम्। इत्युक्ते पावनिस्तत्र प्रविश्य स्नातवाञ्जले॥
पपौ परमपानीयं पावनिस्तस्य निर्भयः। निर्गतो यावदास्ते स समुत्कृष्टमहाबलः॥१९५
तावद्विषेण संक्षिप्तो मुमूर्च्छ धरणीमितः। न विदन्विदितात्मापि स्वेष्टानिष्टानि किंचन॥
तावद्युधिष्ठिरो धीमान्विषण्णो निजचेतसि। अचिन्तयच्चिरं चित्ते नायाता मम बान्धवाः॥
स उत्थाय स्थितस्तत्र वनषण्डं विलोकयन्। ददर्श पतितान्भ्रातॄनितस्ततः सुमूर्च्छितान्॥

क्षीण हुआ--दुःखी हुआ व क्षीण होकर " हा दैव, तूने यह अनिष्ट कार्य क्यों उत्पन्न किया ? मेरे ये तीनों बांधव त्रैलोक्यके समान आज गिर गये हैं। आज इन तीनों बांधवोंको छोडकर मैं कहां जाऊं और मुझे कहां स्थिति--शांति प्राप्त होगी ? अब मैं किनके साथ बोलूं और मेरे बांधवोंका मुझे कहां दर्शन होगा " इसप्रकार विलाप करनेवाला भीमराज मूर्छासे जमीन पर गिर गया। टूटे हुए वृक्षके समान इस संकटसे भीम शोभारहित और निश्चेष्ट हुआ। वहांके जलकणोंसे और हवासे भीमसेनकी मूर्च्छा नष्ट हुई। उठ करके वह दश दिशाओंको देखने लगा। और इस प्रकारसे बोलने लगा-- " जिसने मेरे बांधवोंको मार डाला है उसको यदि मैं देख लूंगा तो अपने हाथसे उसे मारकर उसको दशदिशाओंमें बलि दूंगा। " ॥ १८४-१९२ ॥ तदनंतर आकाशमार्गमें खडा होकर धर्मदेव श्रेष्ठ भाषण बोलने लगा। " इस जगतमें जो कोई बलवान् होगा वह सरोवरमें प्रवेश कर यदि उसका जल पिएगा तो मैं उसकी अप्रतिहत शक्ति जानूं। " तब भीमने सरोवरमें प्रवेश कर स्नान किया और उसका अच्छा पानी निर्भय होकर प्राशन किया। सरोवरसे बाहर निकला हुआ, उत्कृष्ट महाबलका धारक भीम तटपर बैठा था इतनेमें विषसे व्याप्त होकर, पृथ्वीपर गिर गया और मूर्च्छित हुआ। विद्वान् ऐसा भीम भी अपना इष्टानिष्ट कुछ भी जाननेमें समर्थ नहीं था। उतनेमें विद्वान् युधिष्ठिर अपने मनमें खिन्न हुआ बहुत देरतक विचार करने लगा कि, " मेरे बांधव क्यों नहीं आये ? तदनंतर वह उठ करके वहां वनप्रदेश देखता हुआ इतस्ततः मूर्च्छित

दुःखेन खिन्नचेताः स मूर्च्छया पतितो भुवि । कथं कथमपि प्राप्तचेतनो विललाप च ॥१९९
भो भ्रातरः पिबन्तोऽम्भो मूर्च्छिताः किमु निश्चितम् ।
वज्रस्तम्भे कथं लग्नो घुणो निर्घृणघुर्घुरः ॥ २००
विलासमेष्यति क्रुद्धः पूर्णराज्यस्य कौरवः । अद्य पाण्डववंशस्य स्वयं जातः क्षयः क्षणात् ॥
बद्धोऽपि कौरवः क्रुद्धैः स्वयोधैर्युधि बन्धुरैः । मया मारयितुं नैव दत्तो दैववशेन च ॥२०२
तथापि बान्धवा मेऽद्य हता दैवेन दुर्दृशा । दैवस्याथो अदैवत्वकरणे मम शक्तता ॥२०३
मारयन्तो महामत्ताः कौरवान्मम सेवकाः । रक्षिता मयका धात्रेदृग्विधं विहितं भुवि ॥२०४
पापठीति स्म भूपीठे कोदण्डेन हता मया । बान्धवाश्चण्डकोदण्डा धर्मदेवस्तु इत्यलम् ॥२०५
धर्मपुत्र समर्थोऽस्यवगाह्य यदि मत्सरः । पयः पिब स्वशक्त्या किं वृथा गर्जसि भेकवत् ॥
इत्याकर्ण्य प्रबुद्धात्मा धर्मपुत्रः समर्थधीः । सरः प्रविश्य पानीयं पपौ पूतमनाः स्वयम् ॥
तत्क्षणं स पपाताशु भुक्तहालाहलो यथा । धिक्चेष्टितं विधेर्येन तेषामीदृग्विधं कृतम् ॥२०८

हुए गिरे हुए भाईयोंको देखने लगा। दुःखसे खिन्नचित्त होकर मूर्च्छासे वह जमीनपर गिर पडा। और बडे कष्टसे चेतना प्राप्त होनेपर वह शोक करने लगा ॥ १९३-१९९ ॥ " भो भाईयों, क्या पानी पीकर तुम लोग निश्चित मूर्च्छित हुए हो? दुष्ट और घुर घुर शब्द करनेवाला घुन नामक कीडा इस वज्रस्तंभमें कैसा लग गया। अब क्रुद्ध कौरव दुर्योधन पूर्ण राज्यके विलासको प्राप्त होगा। आज पाण्डववंशका क्षय एक क्षणमें स्वयंही हुआ है। कुपित हुए हमारे शूर योद्धाओंने युद्धमें बांधा हुआ भी कौरव दैववश होनेसे मैंने उसे मारने नहीं दिया था। " ॥ २००-२०२ ॥ तथापि दुष्ट दृष्टिके दैवने आज मेरे बांधवोंका घात किया है। उस दैवको अदैव करनेकी मुझमें शक्ति है। जो मेरे महामत्त सेवक कौरवोंको मारनेके लिये उद्युक्त हुए थे उनको मैंने इस कार्यसे बचाया है अर्थात् गंधर्वादिकोंको मैंने दुर्योधनको छोडो, मत मारो ऐसा कहकर दुर्योधनको बंधनमुक्त किया था, परंतु इसका कुछ उपयोग नहीं हुआ और दुर्दैवने मेरे बंधुओंको मार डाला। " ॥२०३-२०४॥ उस समय धर्मदेवने ऐसा पुनः पुनः कहा— " धर्मराज, मैंने इस भूतलपर धनुष्यके द्वारा प्रचण्ड धनुष्यके धारक तेरे भाईओंको मारा है अब इतना खुलासा पूर्ण हुआ है। हे धर्मपुत्र, यदि तू समर्थ है तो मेरे सरोवरमें प्रवेश करके उसका पानी अपने सामर्थ्यसे प्राशन कर। व्यर्थ मेंढकके समान क्यों टर टर शब्द करता है? " ऐसा भाषण सुनकर विशेषज्ञ, समर्थ बुद्धिवाले धर्मराजने सरोवरमें प्रवेश करके स्वयं पवित्र मनसे पानी पिया। उससे जिसने हालाहल भक्षण किया है ऐसे मनुष्यके समान तत्काल भूमिपर गिर पडा। दैवके चेष्टितको अर्थात् दैवके कार्यको धिक्कार हो; क्यों कि उन पाण्डवोंका इस दैवने ऐसा विनाश किया ॥ २०५-२०८ ॥

[कृत्याने कनकध्वजराजाको मार दिया] जप और मंत्रविधानसे कनकध्वजराजाको सातवे

कनकध्वजभूपस्य जपमन्त्रविधानतः । सप्तमेऽह्नि कथंचिच्च कृत्या सिद्धिमगाच्छदा ॥२०९
सागतादेशमिच्छन्ती साधकच्छन्दवर्तिनी । ययाचे परमादेशं कनकध्वजभूपतिम् ॥२१०
अतुला विपुला शक्तिर्भवत्याश्चेत्त्वरा भृशम् । अटित्वा झटिति प्रीते जहि तान्पञ्च पाण्डवान् ॥
लब्धादेशा क्रुधा तत्र सा चचाल सुपाण्डवाः । पतिता आसते यत्र मूर्च्छां प्राप्ता मृता इव ॥
तावता शबरीभूय धर्मदेवः शुचाकुलः । आयासीत्पाण्डवाभ्यर्णं पाण्डवान्भाषयन्मृतान् ॥
इतस्ततः परावृत्य गतजीवाञ्शवाकृतीन् । ज्ञात्वा कृत्यापि प्रोवाच शबरं शाम्बरीमयम् ॥
कनकध्वजभूपेन प्रेषितो हन्तुकाम्यया । अहं पाण्डवभूपालान्कुरुजाङ्गलनायकान् ॥२१५
इमे मया मृता दृष्टा दैवतो वद सत्वरम् । किं कर्तव्यं किरातेश समाकर्ण्येति सोऽवदत् ॥
हताशयं जहि त्वं तं गत्वा सत्वरमञ्जसा । श्रुत्वा सा निर्गता हन्तुं तं खलं विफलोदयम् ॥
पतित्वा तस्य शिरसि सा जघानाघविघ्नितम् । कनकध्वजभूपालमद्रिं वाशनिरूर्जितम् ॥२१८
कृत्या स्वकृत्यमाकृत्य जगाम स्थानमात्मनः । धर्मोऽथ निखिलं वृत्तं निश्चिकायासुरीभवम् ॥

दिन कथंचित् रीतिसे वह कृत्या सिद्ध हो गई। वह कृत्या साधकके छंदानुसारिणी थी। साधककी आज्ञाको चाहनेवाली वह कृत्या कनकध्वजराजासे उत्तम आज्ञाकी याचना करने लगी। कनकध्वज-राजाने कहा हे कृत्ये, यदि तुझमें अनुत्तम उत्कृष्ट और विपुल सामर्थ्य हो तो त्वरासे और जल्दीसे जाकर उन पांचों पाण्डवोंको मार दे। जिसको कनकध्वजराजाकी आज्ञा मिली है, ऐसी वह कृत्या जहां पाण्डव मृतके समान मूर्च्छित पडे थे वहां क्रोधसे आ गई। उतनेमें धर्मदेव भिल्लका रूप धारण करके शोकसे व्याकुल हुआ और पाण्डवोंके समीप आया। उनको देखकर पाण्डव मर गये ऐसा वह बोलने लगा। तथा उनको इधर उधर लौट कर प्राणरहित और शवाकार होगये ऐसा उसने जाना और वह बोलने लगा कि पाण्डव मर गये हैं। कृत्या भी मायारूपधारी भिल्लको कहने लगी " कनकध्वजराजाने कुरुजांगल देशके स्वामी पाण्डवोंको मारनेके लिये मुझे भेज दिया है और दैवयोगसे ये तो मर गये है, यह मैंने देखा। " हे किरातेश–भिल्ल नायक, इस समय मुझे क्या करना होगा सो सत्वर कहो " ऐसा पूछनेपर वह कहने लगा–हे देवि तुम सत्वर जाकर दुष्टाभिप्रायवाले कनकध्वजराजाको निश्चयसे मार डालो। किरातपतिका भाषण सुनकर जिसका मनोभिप्राय विफल हुआ है ऐसे उस राजाको मारनेके लिये निकली और जैसे वज्र उंचे पहाडपर गिर कर उसे चूर्ण कर देता है वैसे पापोंसे विघ्नयुक्त ऐसे कनकध्वजराजाके मस्तकपर प्रहार कर कृत्याने उसे मार डाला। कृत्या अपना कृत्य करके अपने स्थानको चली गई। धर्मदेवने उस असुरीका संपूर्ण वृत्तान्त निश्चित जान लिया ॥२०९-२१९॥ धर्मदेवने सर्व राजाओंको अमृतबिंदुओंसे सिंचित कर मानो सुखसे सोये हुए उनको उठाया। उस समय धर्मराजने उस किरातको "तू कौन है ऐसा प्रश्न किया जैसे प्राणियोंको उनका शुभ कर्म उपकारक होता है वैसे तू हमारा उपकारक

सिञ्चयित्वाखिलान्भूपान्धर्मध्यामृतबिन्दुना । सुप्तानिव वेगेन समुत्थापयति स्म सः ॥२२०
तदा धर्मसुतोऽप्राक्षीत्किरातं को भवानिति । उपकारकरोऽस्माकं शुभकर्म यथा नृणाम् ॥
भिल्लः श्रुत्वा वचोऽवादीन्नो धर्मात्मज धर्मधीः । आराधितस्त्वया धर्मो विशुद्धो विबुधोत्तमः ॥
तत्प्रभावादहं बुद्ध्वावधिबोधाद्बुधोत्तम । सौधर्माधिपतेः प्रीत उपसर्गो महात्मनाम् ॥२२३
पाण्डवानां समागत्य कृत्यां किल्बिषसंनिभाम् । अवारयं पुनः सेत्वा व्यधक्षत्कनकध्वजम्॥
इति वृत्तान्तमावेद्य धर्मः पार्थाय द्रौपदीम् । दत्त्वा स्वसदनं यातो नत्वा तत्पादपङ्कजम्॥२२५
कौन्तेयाः क्रमतः प्रापुः पुरं मेघदलाभिधम्। सिंहाख्यस्तत्प्रभुः ख्यातः काञ्चनाभास्य कामिनी
तयोः सौरूप्यसंपन्ना सुता कनकमेखला । शचीव सुचिरं चित्ते जाता प्रीतिं वितन्वती ॥
भीमो भोजनसिद्ध्यर्थं पुरं प्राप्तः समाप्तवान् । राज्ञा दत्तां परां कन्यां ज्येष्ठभ्रातृनियोगतः ॥
तत्र स्थित्वा कियत्कालं देशं कौशलसंज्ञकम् । विलोक्य निर्गताः प्रापुः क्रमाद्रामगिरिं गिरिम्॥

है। इस लिये हमें तू अपना वृत्त कह दे " ॥ २१९–२२१ ॥ भिल्लने धर्मराजका वचन सुनकर इस प्रकार कहा "हे धर्मात्मज, तेरी बुद्धि धर्माचरणमें स्वभावसेही है, तूने निर्मल धर्मकी आराधना की है और तू विद्वानोंमें श्रेष्ठ है, उस धर्मके प्रभावसे हे विद्वच्छ्रेष्ठ, सौधर्माधिपतिके प्रीतिपात्र, मैंने अवधिज्ञानसे महात्मा पाण्डवोंके ऊपर उपसर्गका प्रसंग आया ऐसा जानकर मैं यहां आकर पापके समान कृत्याका निवारण किया और कनकध्वजराजाके पास जाकर उसने उसे जला दिया। इस प्रकार वृत्तान्त कहकर धर्मदेवने अर्जुनको द्रौपदी अर्पण की और उसके चरणकमलोंको वन्दन कर वह अपने स्थानको चला गया॥ २२२–२२५॥ अनंतर पाण्डव वहाँसे मेघदल नामक पुरको गये। उसके स्वामीका नाम 'सिंहराज' था और पत्नी का नाम 'कांचना' था। उन दोनोंको स्वरूपसुंदर कन्या थी। उसका नाम 'कनक-मेखला था। उसने शचीके समान मातापिताके मनमें चिरकालसे प्रेम उत्पन्न किया था। भीम भोजन-प्राप्तिके लिये नगरमें आये थे। तब राजाने उन्हें अपनी कन्या उसके ज्येष्ठ भ्राता धर्मराजके आदेशसे दी। राजा सिंहके यहां कुछ दिन ठहर कर 'कौशल' नामक देशकी शोभा देखकर वहांसे निकले हुए पाण्डव क्रमसे 'रामगिरि' नामक पर्वतके पास आये॥ २२६–२२९॥

[पाण्डव विराटराजाके पास अज्ञातवेषसे रहे] क्रमसे शुभ पृथ्वीतलपर भ्रमण करनेवाले पाण्डव विराट देशके सुंदर और श्रेष्ठ विराटनगरको आये। वहां भिन्न अभिप्रायवाले और स्वतंत्र ऐसे पाण्डवोंने इस प्रकार विचार किया। महान् तेजस्वी हम यहां रहते हुए बारा वर्षोंकी अवधि पूर्ण हुई है। इतने कालतक वनमें घूमनेवाले भिल्लोंके समान हम रहे हैं। हमारा इतना काल मानसम्मान, धर्म और सुखसे रहित बीत गया। अब एक वर्ष बचा है। सुन्दर, स्वच्छ मनवाले और गुप्तरीतीसे रहनेवाले हम अपना चातुर्य लोकसमूहको दिखाते हुए सिर्फ एक वर्षतक रहेंगे।"

पाण्डवाः क्रमतो मेजुर्भ्रमन्तो भूतलं शुभम् । विराटविषये रम्यं विराटनगरं वरम् ॥२३०
तत्र तैर्विहितो मन्त्रः स्वतन्त्रैश्चित्रमानसैः । द्वादशाब्दावधिः पूर्णो जातोऽस्माकं महौजसाम् ॥
एतावत्कालपर्यन्तं वनेचरवनेचराः । इव तस्थिम सन्मानधर्मशर्मविवर्जिताः ॥२३२
वर्षैकं केवलं कम्राः प्रच्छन्नाः स्वच्छमानसाः । तिष्ठामो दर्शयन्तोऽत्र स्वकौशल्यं जनोत्करान् ॥
ज्येष्ठो जगौ भवाम्यत्र पुरोधा धर्मदेशकः । भीमोऽभाणीद्भवाम्याशु बल्लवो भोजनकृते ॥
पार्थः प्रार्थयते स्पष्टमहं नाटकनायकः । भूत्वा सुनर्तकीर्नित्यं नर्तयामि सुनर्तिताः ॥२३५
देहे च शाटकं धृत्वा निचोलं हृदयस्थले । बृहन्नडाभिधो भूत्वा तिष्ठामि शीलसंयुतः ॥२३६
नकुलः कलयामास वचो वाजिसुरक्षणे । तिष्ठामि स्थिरचेतस्कः सहदेवस्तदा जगौ ॥२३७
रक्षामि गोधनं धन्यं धनधान्यविवर्धकम् । द्रौपदी प्राह सन्मालाकारिणी च भवाम्यहम् ॥
इमां सुरचनां चित्ते विरचय्य सुपाण्डवाः । स्वस्ववेषान्परित्यज्य यथोक्ताचारचारिणः ॥
सर्वे कार्पटिका भूताः काषायवसनावहाः । महीशमन्दिरं जग्मुर्मनोनयननन्दनम् ॥२४०
विराटभूपतिस्तत्र निहताशेषशात्रवः । बभूव भूरिभूमीशमौलिसन्मणिपूजितः ॥२४१

उस समय ज्येष्ठ-धर्मराजने कहा कि ' मैं धर्मोपदेश करनेवाला पुरोहित होकर यहां रहूंगा ' । भीमने कहा कि ' मैं भोजन पकानेवाला ' बल्लव ' रसोइया होऊंगा । अर्जुनने स्पष्ट कहा कि ' मैं नाटक-नृत्यका नायक अर्थात् नृत्याचार्य होकर नर्तकियोंको हमेशा उत्तम नृत्य करनेवाली बनाऊंगा । शरीरमें साटक धारण कर हृदयपर निचोल धारण करूंगा ' ' बृहन्नड ' नाम धारण कर मैं शीलका रक्षण करता हुआ एक वर्षका काल व्यतीत करूंगा । ' नकुलने कहा कि, ' स्थिरचित्त होकर मैं घोडोंकी सुरक्षा करूंगा ' । सहदेवने उस समय कहा कि " मैं धनधान्यकी वृद्धि करनेवाले उत्तम गोधनका रक्षण करूंगा । और द्रौपदीने कहा कि " मैं उत्तम पुष्पमाला बनानेवाली होऊंगी । " इस प्रकारकी सुरचना उन पाण्डवोंने मनमें निश्चित की, तथा अपना अपना पूर्ववेष उन्होंने छोड दिया और अपने उपर्युक्त आचारानुरूप वे रहने लगे । वे सब ' कार्पटिक ' हुए काषाय वस्त्र उन्होंने धारण किये । मन और नेत्रोंको आनंदित करनेवाल राजाके मन्दिरको गये ॥ २३०--२४० ॥ जिसने सर्व शत्रुओंको नष्ट किया है, और जो अनेक राजाओंके किरीटोंके मणियोंसे पूजा जाता है ऐसा विराट नामक राजा वहां रहता था । उसके पास पाण्डव आकर रहे । विराटने उनका आदर किया । निर्मल मनवाले विज्ञानयुक्त, सुंदर आकारवाले वे पाण्डव अपना ज्ञान धर्ममार्गमें तत्पर, मर्यादाके पालक विराट राजाको दिखाने लगे ॥ २४१--२४३ ॥ पुरोहितादिकोंके सत्कार्य करनेवाले पाण्डवोंके बारह महिने व्यतीत हो गये । मालाकारिणीका कार्य करने-

१ ब मनोल्हादप्रदायकम् ।

तमभ्येत्य स्थितास्तत्र कौन्तेयास्तेन मानिताः। कुर्वन्तः कुशलाः स्वं स्वं नियोगं निर्मलाशयाः॥
विज्ञानिनः स्वविज्ञानं दर्शयन्तः सुदर्शनाः। सुघटाय विराटाय धर्ममार्गरताय च ॥२४३
मासा द्वादश तेषां हि गताः सत्कार्यकारिणाम्।
भूपप्रियां च पाञ्चाली स्तुवन्त्यस्थात्सुदर्शनाम् ॥२४४
चूलिकायामथो पुर्यां चूलिकोऽभून्महीपतिः। विकचाख्या प्रिया तस्य विकसन्नेत्रपङ्कजा॥
कीचकाद्याः सुतास्तस्य शतं जाता गुणोन्नताः। कदाचित्कीचकोऽप्यागाद्विराटे स्वसृसंनिधिम्
ददर्श द्रौपदीं तत्र नृपशालककीचकः। पुलोमजामिवोत्तुङ्गां साक्षाल्लक्ष्मीमिवापराम् ॥२४७
भोजने शयने याने ततः प्रभृति कीचकः। विरक्तोऽभूत्तदालापदर्शने दत्तचित्तकः ॥२४८
यत्र यत्र पदं दत्ते पाञ्चाली तत्र तत्र सः। अटन्सुचाटुकारांश्च प्रयुङ्क्ते तां स्मरार्दितः॥
स्फुरिताधरया पार्थपत्न्या निर्भर्त्सितः स हि। न युक्तमिति वादिन्या कटुकाक्षरभाषणैः॥
भाषमाणं पुनश्चेत्थं लम्पटं कीचकं प्रति। सावादीत्कृतकोपेन निष्ठुराक्षरभाषिणी॥२५१
महापराक्रमाक्रान्ता गन्धर्वाः सन्ति पञ्च मे। ते ज्ञास्यन्ति च चेदेवं त्वां नेष्यन्ति यमालयम्

वाली द्रौपदी विराटराजाकी पत्नीकी स्तुति करती हुई काल बिताने लगी॥ २४४॥

[कीचक द्रौपदीपर मोहित हुआ] चूलिका नामक नगरीमें चूलिक नामका राजा राज्य करता था। उसकी जिसकी आँखें प्रफुल्ल कमलके समान थीं ऐसी विकचा नामक पत्नी थी। चूलिक राजाको गुणोंसे उन्नत ऐसे कीचकादिक सौ पुत्र हुए थे। किसी समय कीचक विराटदेशमें अपनी बहिन सुदर्शनाके पास गया था। कीचक विराटराजाका साला था। उसने पुलोमजा–इंद्राणीके समान श्रेष्ठ, तथा मानो साक्षात् दुसरी लक्ष्मी हो ऐसी द्रौपदीको वहां देखा। तबसे भोजन, सोना, यान, वाहनादिकोंसे वह विरक्त हुआ। द्रौपदीका भाषण सुनना, उसका रूप देखना इन कार्योंमें उसका मन लगा। उसने इन कार्योंमें अपना मन लगाया। जहां जहां पांचाली पांव रखती थी वहां वहां वह कामपीडित कीचक जाता था तथा उसके साथ हँसी मजाक करता था। ॥ २४५–२४९ ॥ कोपसे जिसका अधरप्रदेश कँप रहा है ऐसी अर्जुनकी स्त्रीने अर्थात् द्रौपदीने "तुम्हारा ऐसा वर्ताव योग्य नहीं" ऐसा कहा तथा हृदयको कटु लगनेवाले अक्षर जिनमें हैं ऐसे भाषणोंसे द्रौपदीने उसकी निर्भर्त्सना की, परंतु निर्लज्ज होकर पुनः उसके साथ हंसी मजाककी बातें करनेवाले लम्पट कीचकको उत्पन्न हुए कोपसे वह निष्ठुर अक्षरोंवाली भाषा इस प्रकार बोलने लगी। "हे कीचक महापराक्रमी पांच गंधर्व मेरे हैं यदि तेरे ऐसे नीच वर्तावको वे जानेंगे तो तुझे अवश्य यमके घर भेजे विना नहीं रहेंगे" ॥ २५०–२५२ ॥ उसका भाषण सुनकर कीचकका मुख प्रफुल्ल हुआ अर्थात् वह हंसने लगा। वह कहने लगा कि "हे द्रौपदी, तू सुन, मुझमें भी अनेक हाथियोंका सामर्थ्य है। मैं आक्रमण कर तेरा उपभोग लूंगा। हे सुन्दरि, तू मेरे पास

तच्छ्रुत्वा विकसद्वक्रोऽवादीत्तां द्रौपदि शृणु।
त्वां भोक्ष्यामि समाकम्प्यानेकदन्तिबलोऽप्यहम्॥ २५३
प्रसादं कुरु सीदन्तं मां समासीद सुन्दरि। जीवन्तं जीवनोपायैर्भोगैर्मां रक्ष रक्षिके॥२५४
अवगण्यैव तं साध्वी गता सा शीलसंयुता। कीचकोऽपि मृतावस्थामाप मारशराहतः॥२५५
विजने वेश्मनि प्राप्यैकदा तां कीचकः खलः। करे धृत्वा जगावेवं मां धारय शुभैः सुखैः॥
कथं कथमपि स्फीता तस्मादुल्लङ्घ्य तं गता। रुदन्ती द्रौपदी प्राप ज्येष्ठं शिष्टं युधिष्ठिरम्॥
प्राह सा तं कृतं कर्म कीचकेन दुरात्मना। रक्षितं च मया शीलं तव देव प्रभावतः॥२५८
धर्मात्मजो जगादेवं संक्रुद्धो बद्धभ्रूकुटिः। यत्र भूपो दुराचारी दुश्चरित्राः प्रजा न किम्॥
उक्तं च — राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः॥ २६०
रुदन्तीं तां पुना राजा निवार्योवाच सद्वचः।
सुशीला भव निःशल्या सुशीले शीलसंपदा॥ २६१

आ। दुःखी हुए मुझपर तू प्रसन्न हो। भोग ही मेरे जीनेके उपाय हैं उनसे जीनेवाले तू मेरी रक्षा कर। तू मेरी रक्षिका है।" शील पालन करनेवाली द्रौपदीने उसकी अवज्ञाही की और वह वहांसे झट निकल गई। कीचक भी मदनबाणोंसे पीडित होकर मृतकके समान अवस्थाको प्राप्त हो गया॥ २५३-२५५॥ किसी समय दुष्ट कीचक एकान्तगृहमें उसको प्राप्त कर उसका हाथ पकड कर इस प्रकार बोलने लगा—"हे सैरन्ध्री, मुझे शुभ सुखोंसे प्रसन्न कर" उस समय भी बडे कष्टसे वह उन्नतिशील नारी द्रौपदी उस संकटसे पार हुई और रोती हुई ज्येष्ठ युधिष्ठिरके पास गई॥ २५६-२५७॥ द्रौपदीने दुष्ट कीचकके कृत्यका धर्मराजके पास जाकर वर्णन किया। वह कहने लगी कि "हे देव आपके प्रभावसे मैंने शीलका रक्षण किया है"॥ २५८॥

[धर्मराजका शीलोपदेश] धर्मात्मजने अपनी भौंहें चढाकर कुपित होकर कहा कि, "हे द्रौपदी जहां राजा दुराचारी है वहां प्रजा दुराचरण करनेवाली क्यों न होगी?। क्यों कि कहा भी है, कि "यदि राजा धर्माचरण करनेवाला हो तो प्रजा धर्ममें स्थिर रहती है, और राजा पापी हो, तो प्रजा भी पापी होती है और राजा यदि समानवृत्तिका हो तो प्रजा भी राजाकीसी होती हैं अर्थात् प्रजा राजाका अनुवर्तन करती है। जैसा राजा होता है वैसी प्रजा होती है॥ २५९-२६०॥ जब द्रौपदी रोने लगी तो उसका निवारण कर राजाने ऐसे उत्तम वचन कहे—"हे शीलवती द्रौपदी, तू निःशल्य-दोषरहित सुशील है। शीलसंपदासे सीता नित्य देवोंसे पूज्य हो गयी तथा मंदोदरी भी पूज्य हुई। शीलसे स्त्रियाँ सुंदर मानी जाती हैं और शीलसे सदा वे सद्गुणी होती हैं। शीलसे सर्व सम्पदा प्राप्त होती है। इस शीलसे बढकर दुसरा कोई शुभ नहीं है।"॥२६१-

सीता सुरैः सदा पूज्या जाता मन्दोदरी तथा। शीलान्मदनमञ्जूषा जुष्टा योग्यगुणैरभूत्॥
शीलेन शोभना नार्यः शीलेन सुगुणाः सदा। शीलेन संपदः सर्वाः शीलतो नापरं शुभम्॥
पाकशासनिरुत्तस्थे केसरीव क्रुधा तदा। ज्येष्ठेन वारितस्तावद्दघस्रान्दश विलम्बय॥२६४
रणं मा कुरु पार्थेश यत्तत्किंचिद्भविष्यति। दशघस्रात्पुनस्तावन्निशा जाता दिनात्ययात्॥
विपुलोदरपार्श्वे सा गत्वा नेत्राश्रुपूरिता। वक्त्रमाच्छाद्य मन्दाक्षखिन्नाचख्याविदं वचः॥
जीवद्भिर्मे भवद्भिः किं कीचको नीचमानसः। आपादयति संपाद्यां दुःखावस्थामिमां यदि॥
भीमोऽभाणीत्तदा श्रुत्वा गजशुण्डामहाभुजः। भण भ्रातृप्रिये दुःखं तेन किं कृतमुत्कटम्॥
पराभूय च तं येन प्रापयिष्यामि पञ्चताम्। न स्थास्यामि नृपेणैव वारितोऽपि कदाचन॥
पाञ्चाली प्राह भीमेश त्वयि जीवति को नरः। करोति मम वै दुःखं पञ्चाननसमप्रभे॥२७०
अनेन कीचकेनाहं हन्त हस्ते धृता मम। परा भीतिर्भवेद्भव्य लाव्यमेतन्ममासुखम्॥२७१
पराभवो ममेत्येवं भवतीश्वर दुःखकृत्। तत्करस्पर्शतोऽद्यात्रैजतेऽङ्गं मे विलोकय॥२७२
तन्निशम्य मरुत्पुत्रो बभाण भयवर्जितः। दावानल इव क्रुद्धस्तं हन्तुं विहितोद्यमः॥२७३

२६३॥ कीचकके दुराचरणसे अर्जुनको बडा क्रोध आया वह उस समय सिंहके समान ऊठ खडा हो गया। परंतु ज्येष्ठ युधिष्ठिरने रोका, शांत हो जावो, दस दिनतक मार्गप्रतीक्षा करो। हे अर्जुन, तुम युद्ध मत करो दस दिनोंके अनतर जो होनेवाला है वह होगा। दस दिनोंके अनंतर सूर्यास्त हो गया रात्रीका प्रारंभ हुआ॥ २६४-२६५॥

[द्रौपदीवेषी भीमसे कीचकविनाश] भीमके पास नेत्रजलसे भरी हुई द्रौपदी जाकर लज्जासे खिन्न होकर उसने अपना मुख ढक लिया और इसप्रकार वह कहने लगी। "यदि नीच-हृदयी कीचक इस तरहकी दुःखावस्था मेरी करेगा तो आप लोगोंके जीनेसे मुझे क्या फल मिलेगा। आपका जीवित रहना व्यर्थ है।"॥२६६-२६७॥ द्रौपदीका भाषण सुनकर हाथीकी शुण्डासमान बडे बाहुवाला भीम बोला कि "हे भाभी बोल, उस दुष्टने तुझे कौनसा तीव्र दुःख दिया है? मैं उसका पराभव कर उसको मार डालूंगा। यदि उस समय राजा युधिष्ठिरने मुझे इस कार्यमें निवारण किया तो भी मैं नहीं रहूंगा अर्थात् उसका वचन मैं कदापि नहीं सुनूंगा"॥२६८-२६९॥ पांचालीने कहा कि "हे भीमेश, आप सिंहके समान कांतिमान्-तेजस्वी हैं, आपकी जीवनावस्थामें मुझे दुःखित करनेका किसे सामर्थ्य है? खेद की बात है, कि इस कीचकने मुझे हाथमें पकडा अर्थात् मुझे अतिशय भय उत्पन्न हुआ। हे भव्य, मेरा यह दुःख आपके द्वारा अवश्य नष्ट हो जाना चाहिये। हे प्रभो, मेरा यह अपमान इस प्रकारसे दुःखदायक हुआ है। आज मेरा अङ्ग उसके हस्तस्पर्शसे अभीतक कँप रहा है, आप देख लें"॥ २७०-२७२॥ द्रौपदीका वचन सुनकर निर्भय भीम दावानलके समान क्रुद्ध हुआ और कीचकको मारनेके लिये उद्युक्त हुआ। हे सुन्दरी,

वने कुरुष्व संकेतं श्वो निशायां सुसुन्दरी। यत्र नो जायते केषां प्रवेशो वेषधारिणि ॥२७४
पुनः सा द्रौपदी प्रातर्गता कीचकसंनिधिम्। कपटाल्लम्पटं प्राह स्मरसंभिन्नमानसम् ॥
भवतो रोचते यत्र संकेतं कुरु तत्र हि। सोऽवदन्नाट्यशालायां सायमागच्छ मानिनि ॥२७६
त्वदिष्टमिष्टमिष्टेन पूरयिष्यामि मालिनि। इत्युक्त्वा मारुतिं गत्वा व्याजहार तदुद्भवम् ॥
श्रुत्वा भीमः प्रहर्षात्मा सायं सीमन्तिनीसमम्। रूपं निरूपयामास स्फुरत्सौभाग्यसंकुलम् ॥
दधौ स नूपुरं पादे सुकट्यां कटिमेखलाम्। करयोः कङ्कणं रम्यं हारं वक्षसि लक्षितम् ॥
कर्णयोः कुण्डले रम्ये भाले तिलकमद्भुतम्। अञ्जनं नेत्रयोर्मूर्ध्नि चूडामणिं स्फुरत्प्रभम् ॥
फुल्लिकापुष्पनागैश्चालङ्कृताकृतिधारिणी। सीमन्तिनीव भूत्वासौ कुर्वती विभ्रमं परम् ॥२८१
रतिर्वा किं शची वाहो लक्ष्मीर्वा किं भुवं गता। कुर्वती विभ्रमं चागात्सा संकेतनिकेतनम् ॥
तत्र गत्वा क्षणं भीमो यावत्तिष्ठति निर्भयः। तावदायात्स्मराक्रान्तः कीचकस्तद्गताशयः ॥
तमोविभागतः सोऽयं मुखरागरसोत्कटा। इयं द्रुपदसंजाता कृत्वेत्यासीचदुन्मुखः ॥२८४
तामिमां मन्यमानः स तत्करग्रहणं व्यधात्। यावत्तत्करकार्कश्यं तावल्लग्नं विवेद च ॥२८५

स्वतंत्र दासीका वेष धारण करनेवाली हे द्रौपदी, जहां किसीका प्रवेश नहीं होगा ऐसे स्थानमें तू कल रात्रीमें संकेत निश्चित कर ॥ २७३–२७४ ॥ पुनः प्रातःकालमें वह द्रौपदी कीचकके पास गई और मदनने जिसका मन विदीर्ण किया है ऐसे लंपटी कीचकको कपटसे कहने लगी-" तुझे जहां रुचि होगी वहां तू संकेत निश्चित कर। तब उसने कहा, कि हे मानवती मालिनी नाट्यशालामें तू सायंकालके समय आ। वहां तुझे इष्ट वस्तु देकर तेरी इष्ट कामना मैं पूर्ण करूंगा। तब द्रौपदीने मारुतिके पास–भीमके पास जाकर उससे उत्पन्न हुआ सब वृत्तान्त कहा ॥ २७५–२७७ ॥ उसके सुननेसे भीम अतिशय हर्षित हुआ। सायंकालमें सुवासिनी स्त्रीके समान रूप उसने धारण किया जो कि चमकनेवाले सौभाग्यसे युक्त था। उसने अपने चरणोंमें नूपुर धारण किये और कमरपर करधौनी, हाथोंमें कंकण और हृदयपर सुंदर हार धारण किया। अपने दोनों कानोंमें रम्य कुण्डल, भालप्रदेशमें अद्भुत–आश्चर्यकारक कुंकुमतिलक, दोनों आंखोंमें अञ्जन, और मस्तकपर चमकनेवाली कान्तिका चूडामणि उसने धारण किया। फुल्लिका, पुष्पनाग आदिकोंसे वह अलंकृत हुआ। स्त्रीकी आकृति धारण करनेवाला वह भीम हावभावादि अभिनय करनेवाली स्त्रीके समान होकर संकेतगृहको जाने लगा। उस समय मानो वह रति अथवा इंद्राणी या लक्ष्मी पृथ्वीतलपर आई है ऐसा लोग समझने लगे ॥ २७८–२८२ ॥ वहां जाकर निर्भय भीम कुछ क्षणतक बैठाही था कि इतनेमें जिसका मन सैरन्ध्रीपर लुब्ध हुआ है ऐसा कामविह्वल कीचक वहां आया। संकेत–स्थानमें अंधकारका अविभाग था अर्थात् निबिड अंधकार था। मुखके ऊपर दीखनेवाले प्रीतिरससे भरी हुई यह द्रौपदी है ऐसा समझकर वह कीचक उसके पास आया। उस भीमको द्रौपदी समझ-

कीचकोऽचिन्तयच्चित्ते सैषा नेति च निश्चितम्।
अन्यः कोऽपि समायातो धूर्तो धृष्टमनाः स्वयम् ॥२८६
नैमित्तिकवचश्चेति मरणं विपुलोदरात्। कीचकस्य ममेदानीं जातं सत्यं तदीक्ष्यते ॥२८७
ध्यात्वेति तेन तद्धस्तात्स्वहस्तो मोचितो हठात्। कीचकेनाशु मौनेन ध्यायता मरणं ततः॥
ततस्तौ प्रवरौ लग्नौ रणं कर्तुं कृपातिगौ। हस्तपादप्रहारेण प्रहरन्तौ परस्परम् ॥२८९
संदष्टोष्ठपुटौ स्पष्टौ रुधिरारुणलोचनौ। प्रस्वेदोदकदीप्राङ्गौ दरदौ देहिनां सदा ॥२९०
भीमेन वज्रघाताभकरघातेन वक्षसि। जघ्ने हुंकारनादेन कीचकः पातितो भुवि ॥२९१
ततस्तडत्तडत्संधिबन्धास्थिः स्थगितो हृदि। पादाभ्यां भीमसेनेन कीचकः कण्ठरुद्धवाक् ॥
पादौ दत्त्वा तदा तस्य हृदये पावनिर्जगौ। रे दुष्टानिष्टसंक्लिष्ट पररामेष्टिसंरत ॥२९३
फलं प्रविपुलं पश्य पररामारतेर्द्रुतम्। इत्युक्त्वा भीमसेनस्तं पिपेषोरसि निष्ठुरम् ॥२९४
पररामारतस्त्वं हि क्व यासि व्यसनोद्यतः। इत्युक्त्वा पादघातेन मारितः स मृतः क्षणात्॥
द्रौपद्या ज्ञापितं तत्र गन्धर्वैः कीचको हतः। इति श्रुत्वा विराटेशो भयभीतः क्षणं स्थितः ॥

कर उसका हाथ उसने पकड लिया तब उसके हाथका कठोरपना उसके अनुभवमें आया। कीचकने मनमें निश्चित जान लिया कि यह वह नहीं है, अर्थात् यह द्रौपदी नहीं है, यह कोई धृष्ट-मनवाला धूर्त स्वयं आया है ऐसा उसने समझ लिया। "कीचकका मरण विपुलोदरसे—भीमसे होगा ऐसा जो नैमित्तिकका आदेश है वह सत्य होने जा रहा है ऐसा मुझे दीखने लगा है।" भीमसे मेरा मरण होगा ऐसी चिन्ता करनेवाले कीचकने मौनसे भीमके हाथोंसे अपना हाथ जोरसे छुडा लिया ॥ २८३-२८८ ॥ तदनंतर दयारहित वे श्रेष्ठ बली भीम और कीचक युद्ध करनेके लिये उद्युक्त हुए। वे अन्योन्यको हाथोंसे और पावोंसे मारने लगे। वे दोनों अपने दो ओठोंको पीसने लगे। उनकी आंखें रक्तके समान लाल हो गईं। लडनेसे उनके शरीर पसेवके जलसे चमकने लगा। वे प्राणियोंको सदा भयंकर मालूम हुए। भीमने कीचकके छातीपर वज्राघातके समान हाथोंका प्रहार कर हुंकारनादसे उसे जमीनपर गिरा दिया। तदनंतर जिसकी सन्धिबन्धनोंकी हड्डियां टूट गई हैं, ऐसे कीचकके छातीपर भीमसेनने अपने दोनो पांव रखे जिससे उसके कंठमें ही वचन रुक गये बाहर नहीं आ सके। उसके हृदयपर अपने दो पाव रखकर भीमसेन इस प्रकार बोला— "हे दुष्ट, अनिष्ट संक्लेश परिणामवाले, परस्त्रीकी अभिलाषामें लुब्ध, परस्त्रीमें रति करनेका यह विशाल फल देख" ऐसा कहकर भीमसेनने निष्ठुर होकर उसकी छाती पीस डाली। तूं परस्त्रीकी अभिलाषा करनेवाला उस व्यसनमें उद्युक्त हुआ है। अब तू मेरे पंजोंसे छूटकर कहां जायगा? ऐसा कहकर उसने कीचकको पांवके प्रहारसे मार डाला। कीचक तत्काल मर गया ॥ २८९-२९५ ॥ 'गंधर्वोंने कीचकको मार डाला' ऐसी वार्ता द्रौपदीने विराटराजाको निवेदन

तत्सेवकास्तदा श्रुत्वा दधावुर्धूलिधूसराः। आययुर्नर्तनागारे संकेतिकजनाकुले ॥२९७
तत्रालोकि विलक्षैस्तैः कीचको विगतासुकः। असृक्संघातसंकीर्णो दैवेनेव हतो हठात् ॥२९८
ते तं मृतं समालोक्य कीचकं विकटा भटाः। गन्धर्वेण हतं चित्ते निश्चिक्युर्व्रीडया हताः ॥
गन्धर्वेण शवं सत्रं ज्वालनीयं च पावके। प्रच्छन्नं को न जानाति यथावत्क्रियते लघु ॥३००
प्रभातसमये जाते ज्ञास्यन्ति निखिला जनाः। वृत्तमेतत्प्रवृत्तं हि सहेलं हास्यकारणम् ॥३०१
तमिस्रायां विमिश्रायां तमसा त्वरयान्वितैः। कल्प्यतां कीचको वह्नौ गन्धर्वेण समं ध्रुवम् ॥
इत्युक्त्वा ते गता यत्र पाञ्चाली परमोदया। समास्ते तत्र तां धृत्वा हस्ते ते निरकासयन् ॥
पाञ्चाली निर्गता हा धिग्वदन्ती परिमुञ्चती। अश्रुधारां सुगन्धर्व हाहेति मुखरानना ॥३०४
पाञ्चालीवचनं श्रुत्वा विभञ्ज्य वरणं वरम्। मुक्तकेशः समुन्मूल्य महीरुहमखण्डतः ॥
करे कृत्वा दधावासौ वायुवद्वायविस्तदा। कुर्वाणो जनतारेकां सद्यो विस्मयकारिणीम् ॥

की। उसे सुनकर वह भीतिसे क्षणतक चुप बैठा रहा। उस समय धूलिसे मलिन उसके सेवक इस वार्ताको सुनकर संकेतस्थानके तरफ दौडने लगे। संकेत करनेवाले लोगोंसे व्याप्त नाट्यशालामें वे आ गये। खिन्न हुए उन नौकरोंने मरा हुआ कीचक वहां देखा। वह रक्तप्रवाहसे भर गया था। मानो दैवने उसको हठसे मार डाला था। वे शूर भट उस कीचकको मरा हुआ देखकर लज्जासे घिरे हुए उन्होंने गंधर्वने इसको मारा ऐसा निश्चय कर लिया ॥ २९६–२९९ ॥ कीचकका शव गन्धर्वके साथ अग्निमें जलाना चाहिये। और यह कार्य जैसा कोई नहीं जान सकेगा ऐसा गुप्त-रीतिसे शीघ्र करना चाहिये। प्रातःकाल होनेपर हास्यकी कारणभूत इस बातको सब लोक तिर-स्कारसे जानेंगे। अंधकारसे मिश्रित इस रात्रीमें हमारे द्वारा कीचकका प्रेत गन्धर्वके साथ निश्चयसे अग्निमें जलाना योग्य है। ऐसा भाषण कर जहां परमोन्नतिशाली द्रौपदी थी वहां वे गये और उसे पकडकर उन्होंने बाहर निकाला ॥ ३००–३०३ ॥ हा धिक्कार ऐसा बोलती हुई और अश्रुधारा-ओंको बहाती हुई तथा हे गन्धर्व, हाय हाय ऐसा वारंवार कहती हुई पांचाली बाहर निकली ॥ ३०४ ॥ पांचालीका वचन सुनकर और उत्तम तटको फोडकर तथा अखंड रूपसे वृक्षको मूलसे उखाडकर जिसके केश छुट गये हैं ऐसा भीम उसको हाथमें लेकर वायुके समान उस समय दौडने लगा। अहो क्या यह क्षय करनेवाला साक्षात् राक्षस शीघ्र आ रहा है? अथवा सब लोगोंको विकल करनेवाला यह काल आया है ऐसा आश्चर्यकारक संशय जनोंमें उत्पन्न करनेवाला भीम हाथमें वृक्ष लेकर दौडने लगा। उस समय उसके दर्शनसेही वे राजसेवक उस शवको छोडकर भयपीडित होकर वहांसे भागने लगे। कलकल शब्द करनेवाला और कृतान्त-यमके समान भयं-कर और हाथीके समान उद्धत भीमसेन उनके पीछे दौडने लगा। भागे हुए वीर पुरुष पीछे लौटकर न देखते थे और न खडे होते थे। अहो भययुक्त कौन मनुष्य मरणके भयसे स्थिरताको

अहो किं राक्षसः साक्षात्क्षिप्रमेति क्षयंकरः। सकलं विपुलं कुर्वन्कालोऽयं किं किलागतः ॥
तदा दर्शनमात्रेण तस्य ते नृपसेवकाः। मुक्त्वा तन्मृतकं नेशुश्चकिता वा भयार्दिताः॥३०८
कुर्वन्कलकलारावं कृतान्त इव भीषणः। तेषां पृष्ठे दधावासौ मतङ्गज इवोद्धतः ॥३०९
भग्नो भटगणः पश्चान्न पश्यति न तिष्ठति। मृतेर्भयादहो भीतः को भजेत्स्थास्नुतामहो ॥
पुनः पावनिना लात्वा पाञ्चाली पावनीकृता। कारयित्वा च सुस्नानं शुद्धा च विदधे ध्रुवम्
प्रविष्टा पत्तनं प्रातः पाञ्चाली प्रेक्षिता जनैः। प्रलयश्रीरिव श्रीर्वा जनानन्दप्रदायिनी॥३१२
कीचकभ्रातरस्तेऽथ शतसंख्या बलोद्धताः। स्वबान्धवमपश्यन्तः संपृच्छन्ति स्म सर्वतः ॥
सैरन्ध्रीतो मृतं ज्ञात्वा कथंचित्सोदरं तकौ। सैरन्ध्रीं दग्धुमुद्युक्ताश्चितां कृत्वा हठाच्छठाः ॥
भीमेनैकेन संज्ञाय चितौ क्षिप्ता गताः क्षणात्। समदा दुर्दशां प्राप्ता भस्मसात्कण्टका यथा॥
त्रपापरा भटाः प्रातः सकलङ्का गृहं गताः। भीमो नरपतिं नत्वा बंभणीति स्म सद्वचः ॥
कीचकेन कृतं वृत्तं ह्यो रात्रौ द्रौपदीसमम्। भीमेन गदितं श्रुत्वा धर्मपुत्रोऽवदद्वचः ॥३१७
त्रयोदश दिनान्यत्र स्थेयं प्रच्छन्नतो बुधाः। भ्रात्रेति वारितास्तस्थुर्भीमाद्या धर्ममानसाः॥

प्राप्त होगा ? ॥ ३०२–३१० ॥ पुनः पांचालीको भीमसेनने लाकर पवित्र किया, उसे स्नानसे निश्चयसे शुद्ध किया। प्रातःकाल नगरमें प्रविष्ट हुई पांचाली लोगोंके द्वारा प्रलयकाल की लक्ष्मीके समान अथवा लोगोंको आनंद देनेवाली लक्ष्मीके समान देखी गई ॥ ३११–३१२ ॥

[भीमने उपकीचकोंका विनाश किया] इसके अनंतर बलसे उद्धत ऐसे कीचकके सौ भ्राता अपना बंधु नहीं दिखनेसे सब लोगोंको उसकी वार्ता पूछने लगे। सैरन्ध्रीसे अपना भाई कीचक मर गया ऐसी वार्ता जानकर वे शठ हठसे चिता तयार कर सैरन्ध्रीको जलानेमें उद्युक्त हो गये। भीमको यह बात माळूम हुई। उसने सबको चितामें डाल दिया। जैसे कंटक अग्निमें डालनेसे भस्म हो जाते हैं वैसे कीचकके उन्मत्त भाई दुर्दशाको प्राप्त होते हुए भस्ममय हुए ॥ ३१३–३१५ ॥ लज्जासे खिन्न हुए वीर कलंकित होकर घर गये। भीम राजाको नमस्कार कर प्रशस्त भाषण करने लगा। कल रात्रिमें कीचकने द्रौपदीके साथ की हुई प्रवृत्ति भीमने कही। वह सुनकर धर्मपुत्र बोलने लगे, " हे सुज्ञ भाइयों, अभी तेरह दिनोंतक यहां अपनेको गुप्तरूपसे रहना चाहिये ऐसा कहकर निवारण करनेवाले धर्मको मनमें धारण करनेवाले भीमादिक बंधुगण स्वस्थ रहे ॥ ३१६–३१७ ॥ उस समय जिसकी कीर्ति कलंकित हुई है ऐसे दुर्योधन–भूपालने पाण्डवोंको देखनेके लिये भेजे गये नौकर अनेक स्थलोंमें प्राप्त हुए। वे नौकर पर्वतपर और भूतलम तथा अरण्यमें, पानीमें, दुर्गमें–किलोंमें कहींभी उनको नहीं देख पाये। खूब अन्वेषण कर लौटकर आये हुए वे नौकर कौरवराजाको नमस्कार कर ' हमने पाण्डवोंको कहींभी नहीं देखा और वे जीवन्त हैं ऐसी वार्ताभी कानोंसे हमने नहीं सुनी है। इस भूतलपर हमको वे कहींभी जीवन्त अवस्थामें

तस्मिन्नवसरे प्रेष्याः प्रेषिताः प्रेक्षितुं नृपान् । दुर्योधनमहीशेन प्राप्ताः कीर्तिकलाङ्किना ॥३१९
भृत्यास्ते वीक्षितुं याता महीध्रे च महीतले । अटव्यां सलिले दुर्गे लोकयन्ति स्म नो क्वचित् ॥

समीक्ष्य निर्वृतास्तेऽपि नत्वा कौरवभूपतिम् ।
न दृष्टाः क्वापि कौन्तेया जीवन्तो न श्रुतौ श्रुताः ॥३२१
न क्वापि लक्षिता भूमौ प्राप्तास्ते च परासुताम् ।
इति विज्ञाप्य संप्रापुर्वेश्म वित्तं च कौरवात् ॥३२२

अगदीद्गुरुगाङ्गेयः कौरवाः शृणुताद्भुतम् । प्रचण्डाः पाण्डवाः पञ्च न म्रियन्तेऽल्पमृत्युतः ॥
महापराक्रमाक्रान्ता निश्चलाः पञ्चमेरुवत् । पञ्च ते परमाश्चान्त्यदेहा दीप्तिधरा ध्रुवम् ॥
ममाग्रे मुनिना प्रोक्तं राज्यभागी युधिष्ठिरः । भविता तपसा सिद्धिं याताः शत्रुंजये गिरौ ॥
ते सन्ति संततं सन्तो जीवन्तो विश्रुता गुणैः । सर्वत्र सुगुणैः पूज्याः पूज्यपूजनतत्पराः ॥

यत्रैते परमोदयाः परभुवि प्राप्ताः प्रतिष्ठां पराम्
संनिष्ठाः सुगरिष्ठशिष्टमहिताः सच्चेष्टया वेष्टिताः ।
प्रेष्ठाः स्वेष्टजनस्य कष्टरहिताः प्रस्पष्टमिष्टाक्षराः
श्रेष्ठाः सन्तु समस्तविघ्नविमुखा वः श्रेयसे पाण्डवाः ॥३२७

पाञ्चाली परमा सुपावनयशाः सच्छीललीलावहा
लावण्यामृतवापिका वरगुणा गाम्भीर्यधैर्यावृता ।

नहीं दीख पडे हैं अतः वे मर गये होंगे" ऐसा कहकर उन्होंने दुर्योधनसे घर और धन प्राप्त किया ॥३१८–३२२॥ एक समयमें गुरु भीष्माचार्यने कौरवोंसे ऐसा कहा "हे कौरवों, तुम अद्भुत वार्ता सुनो। प्रचण्ड पांचों पाण्डव अल्पमृत्युसे नहीं मरनेवाले हैं। वे महापराक्रमसे पूर्ण हैं, वे पांचोंभी पंचमेरुके समान निश्चल हैं। वे निश्चयसे उत्कृष्ट और अन्त्यशरीरवाले, कान्तिके धारक हैं। मेरे आगे मुनिने ऐसा कहा है, कि युधिष्ठिर संपूर्ण कुरुजाङ्गल देशका राजा होगा और शत्रुंजय पर्वतपर मुक्ति प्राप्त करनेवाला होगा। वे सत्पुरुष जीवन्त हैं और हमेशा गुणोंसे प्रसिद्ध होंगे। सर्वत्र अपने गुणोंसे वे पूज्य होंगे और पूज्य महापुरुषोंके पूजनमें तत्पर रहेंगे" ॥ ३२३–३२६ ॥ ये पाण्डव उत्तम उदयवाले हैं और उत्तम पृथ्वीपर उत्कृष्ट प्रतिष्ठाको प्राप्त हुए हैं। शुभकार्योंमें तत्पर रहते हैं। अतिशय बडे शिष्ट पुरुषोंसे आदरणीय हुए हैं और सदाचारसे वेष्टित हैं। प्रिय अपने इष्ट जनोंको कष्ट नहीं देनेवाले, स्पष्ट और मिष्ट बोलनेवाले, श्रेष्ठ, सम्पूर्ण विघ्नोंसे रहित हैं ऐसे वे पाण्डव आपके लिये मोक्षका हेतु हो जावें ॥ ३२७ ॥ द्रौपदी उत्तम पवित्र यशवाली और उत्कृष्ट शीलकी लीला धारण करनेवाली है। लावण्यरूपी सुधाकी वह वापिका--बावडी है। वह उत्कृष्ट गुणवाली है, तथा गंभीरता और धैर्यसे युक्त है। जिसके प्रशंसित शीलसे कीचक महापाप करके मरण और

सच्छीलेन च कीचकः कृतमहापापः समापाशु च
पञ्चत्वं परहास्यतां च जयताच्चच्छीलवृन्दं सदा ॥३२८

इति श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपाल-
साहाय्यसापेक्षे पाण्डवानां कृत्योपद्रवविनाशनविराटगमनद्रौपदी-
शीलरक्षणकीचकवधवर्णनं नाम सप्तदशं पर्व ॥१७॥

। अष्टादशं पर्व ।

विमलं विमलालापं विमलं विमलप्रभम् । विमलैः सेव्यपादाब्जं मलहान्यै स्तुवे जिनम् ॥१
पितामहः प्रपञ्चेनाथावादीद्द्रोणमुत्तमम् । चतुर्थे पञ्चमेवाह्नि समायास्यन्ति पाण्डवाः ॥२
पाण्डवाः प्रकटीभूत्वा संघटिष्यन्ति ते स्फुटम् । दुर्घटं कार्यमेवाहं जानामीति सुनिश्चितम् ॥
तदा जालंधरो जाल्मो जगाद जननिष्ठुरः । विराटे भेटनं स्पष्टं भविता विकटे परे ॥४
कीचकः परचक्राणां भयदः प्रकटो भटः । दुर्जयो विग्रहे योद्धा कौरवीयसुपक्षभृत् ॥५

उपहासको प्राप्त हुआ ऐसा वह शीलसमूह हमेशा जयवन्त रहे ॥ ३२८ ॥

ब्रह्म श्रीपालकी सहायतासे भट्टारकश्रीशुभचंद्रजीने रचे हुए श्रीपाण्डवपुराण-महाभारतमें पाण्डवोंके
कृत्योपद्रवका विनाश, विराटराजाके यहां गमन, द्रौपदीका शीलरक्षण और कीचकका
वध इन विषयोंका वर्णन करनेवाला यह सतरहवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

[पर्व अठारहवाँ]

जिनका भाषण विमल है अर्थात् जिनका दिव्यध्वनि पूर्वापरादि-दोषरहित ह, तथा जो विमल-पापरहित हैं, जो रागद्वेषादि-दोषोंसे रहित हैं, जिनकी कान्ति निर्मल है तथा रागादि दोषरहित गणधरादि मुनियों द्वारा जिनके चरण-कमल सेवनीय हैं ऐसे विमल जिनेश्वरका मैं पाप-नाशके लिये स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

पितामह-भीष्माचार्यने विस्तारसे श्रेष्ठ द्रोणाचार्यको कहा कि " पाण्डव चौथे अथवा पांचवें दिन यहां आनेवाले हैं। पाण्डव प्रकट होकर कठिन कार्यकी संयोजना स्पष्टतया करेंगे, युद्ध करेंगे ऐसा मैं निश्चयसे समझता हूं"। उस समय दुष्ट जालंधर नामक राजाने लोगोंको कर्कश लगनेवाला भाषण किया, कि इस विकट उत्तम युद्धमें स्पष्टतया विराटका मर्दन होगा। क्यों कि शत्रुसैन्यको

गन्धर्वेण सगर्वेण हतः स श्रूयते लघु । असहायो विराटोऽपीदानीं संजातवानिह ॥६
विपुलं गोकुलं तस्य विख्यातमखिले जने । अटित्वा तत्र वै तूर्णं हर्तव्यं च मयाधुना ॥७
रणशूरान्मम पृष्ठे संगतान्विकटान्भटान् । हत्वा समानयिष्यामि गोकुलं तस्य चाखिलम् ॥८
पाण्डवाः प्रकटास्तत्र समेष्यन्ति युयुत्सवः । हनिष्यामि महाद्रोहान्गुप्तदेहांश्च तांस्त्वरा ॥९
आकर्ण्येति सुगान्धार्यास्तं प्रशस्य सुतः परम् । जालंधरं नृपं हर्तुं प्रेषयामास गोकुलम् ॥१०
स चचाल तरत्तुङ्गतुरङ्गै रिङ्खणोद्धतैः । सज्जैर्गजैश्चलत्केतुसंघातैः सुरथैः सह ॥११
तत्रेत्वा नृपतिर्जालंधरः क्रोधसमुद्धतः । जहार गोकुलं सर्वं गोरक्षै रक्षितं सदा ॥१२
तदा तद्रक्षकाः सर्वे पूत्कुर्वाणा भयावहाः । नष्ट्वा चक्रुश्च पूत्कारं विराटाग्रे विशेषतः ॥१३
देव जालंधरो धेनुवृन्दं संहृत्य यात्यहो । चतुरङ्गेन सैन्येन सागरो वारिणा यथा ॥१४
निशम्य भूपतिः क्रुद्धो विराटनगरेश्वरः । दापयामास सद्भेरीं युद्धौद्धत्यविधायिनीम् ॥१५
श्रुत्वा शूराः समुत्तस्थुर्युद्धसंनाहसंगिनः । कुर्वन्तो बधिरं व्योम ध्वनिना धन्ववर्तिना ॥१६

भयंकर ऐसा प्रकट और दुर्जय योद्धा कीचक जो कि कौरवपक्षका धारक था युद्धमें गर्वोद्धत गंधर्वने मारा है ऐसा वृत्त हालही हमने सुना है। इससे इस समय विराटराजाभी असहाय हुआ है ॥२-६॥

[विराटराजाका गोकुलहरण] " विराटराजाका गोकुल (गौओंका समूह) विपुल है और सम्पूर्ण जगतमें विख्यात है। इस लिये अब जल्दी विराटकी राजधानीमें जाकर मैं उसका हरण करता हूं। मेरे पीछे आये हुए रणशूर विकट योद्धाओंको मारकर मैं उसका सम्पूर्ण गोकुल लाता हूं ॥ ७-८ ॥ उस समय वहां प्रकटपनेसे पाण्डवभी युद्ध करनेकी इच्छासे आयेंगे अर्थात् युद्धेच्छु पाण्डव आयेंगे। मैं महाद्रोही गुप्त–शरीरवाले पाण्डवोंको त्वरासे मारूंगा " ॥ ९ ॥ जालंधरके इस वचनको सुनकर गांधारीरानीका पुत्र दुर्योधनने उसकी स्तुति की और उसने गोकुलहरण करनेके लिये जालंधरराजाको भेज दिया ॥ १० ॥ वह जालंधर राजा हेषारवसे उद्धत और चंचल ऊंचे घोडे, सज्ज हाथी, जिनके ऊपर ध्वजसमूह हैं ऐसे रथ इनके साथ प्रयाण करने लगा। वहां पहुंचकर क्रोधसे उद्धत, जालंधरराजाने रक्षण करनेवालोंसे सर्वदा रक्षित सर्व गोकुलका हरण किया ॥ ११–१२ ॥ उस समय उसके सर्व रक्षक पूत्कार करने लगे। भययुक्त होकर वे भाग गये तथा विराटराजाके आगे जाकर विशेष पूत्कार करने लगे। " हे देव, जैसे समुद्र पानीका प्रवाह लेकर जाता है–बहता है वैसे चतुरंग सैन्य लेकर जालंधरराजा धेनुओंको हरण कर यहांसे चला गया है। " इस वार्ताको सुनकर कुपित हुए विराटनगरके स्वामी विराटराजाने युद्धकी उद्धतता उत्पन्न करनेवाली भेरी बजवाई। भेरीकी आवाज सुनकर युद्धकी तयारी जिन्होंने की है ऐसे योद्धा धनुष्यसे उत्पन्न हुए शब्दसे आकाशको बधिर करते हुए उठकर खडे हुए। जिनके ऊपर घोडेस्वार बैठे हुए हैं, सुवर्णके पलानोंसे भूषित, घण्टिकाओंसे सुंदर ऐसे घोडे युद्धसमुद्रके तरंगोंके समान

घोटका घण्टिकाटोपाः स्वर्णपर्याणभूषिताः । तरङ्गा इव संचेलुः संग्रामाब्धेः ससादिनः ॥१७
सकुथाः सत्पथास्तत्र जगर्जुर्गजराजयः । रथ्यायां संस्थिता रम्या रथाः संरुद्धसत्पथाः ॥१८
एवं विराटभूमीशश्चतुरङ्गबलान्वितः । पुररक्षां विधायाशु निर्जगाम रथस्थितः ॥१९
प्रच्छन्नाः पाण्डवाः पश्चाच्चेलुश्चञ्चलमानसाः । सरथा धावमानास्ते धराधरा इवोन्नताः॥ २०
संग्रामातोद्यवृन्दानि दध्वनुर्ध्वनिमिश्रिताः । धनुषां व्योम्नि संबद्धा मेघध्वाना इवोद्धताः ॥
रोमाञ्चिता महाशूराः समालोक्य तयो रणम् । भीरूणां विकटं नृणां संकटं प्रकटं तदा ॥
शरेण रणशौण्डीरा धनुः संधाय धन्विनः । मुमुचुर्हृदयं वेध्यं विधाय विद्विषां शरान् ॥२३
खण्डिताः खड्गघातेन परे पेतुर्महाहवे । तयोश्च वल्गतोर्यद्वत्पर्वताः पविपाततः ॥ २४
महाहवस्तयोर्जातः सर्वलोकभयप्रदः । निशीथिन्यां हिमांशोश्चोद्गमे वीरसमुद्गमे ॥२५
जालंधरो धरन्योद्धृन्दधाव धनुषा क्षिपन् । विशिखान्शाखया मुक्तान्कुर्वन्वृक्षान्यथा करी ॥
विराटं विकटं धीरमाहूय शरजालकैः । जालंधरोऽथ विव्याध ससारथिं समुद्धतम् ॥२७
व्याजेनासौ परां दत्त्वा झम्पां तद्रथमूर्धनि । बबन्ध बन्धनैर्वीरं विराटं संकटं गतम् ॥२८

चलने लगे। कुथोंसे-झालरियोंसे सहित और अच्छे मार्गसे जानेवाली ऐसी हाथियोंकी पंक्तियाँ गर्जना करने लगीं। और मार्गमें खडे हुए सुंदर रथोंने उत्तम मार्गोंको रोका। इसप्रकारसे नगरकी रक्षण-व्यवस्था कर विराटराजा अपने चतुरंग सैन्यसहित रथमें बैठकर निकला ॥ १३-१९ ॥ जिनका मन चञ्चल है ऐसे गुप्तवेषवाले पाण्डव उसके पीछे चलने लगे। रथमें बैठकर दौडनेवाले वे ऊंचे पर्वतोंके समान दीखने लगे। आकाशमें सम्बद्ध उद्धत मेघोंकी ध्वनिके समान युद्धमें वाद्यसमूह धनुष्योंके ध्वनिओंसे मिश्रित होकर बजने लगे ॥ २०-२१ ॥

[विराटनृप-बंधन] जालंधर और विराटराजाका आपसमें होनेवाला युद्ध देखकर महाशूर वीरोंके शरीर रोमाञ्चित हुए। और भयभीत लोगोंको वही युद्ध प्रकटरूपसे संकटरूप हुआ। रणमें पराक्रमी धनुर्धारियोंने अपना धनुष्य बाणके साथ जोडकर तथा शत्रुओंके हृदयको वेध्य करके बाण छोडे। जैसे पर्वत वज्रके गिरनेसे गिरते हैं वैसे वलगना करनेवाले दोनों राजाओंके महायुद्धमें खड्गके आघातसे खण्डित हुए शत्रु गिरने लगे। रात्रिमें चन्द्रका उदय होनेपर वीरसमूहमें उन दोनोंका सर्व लोगोंको भय दिखानेवाला बडा युद्ध हुआ। जैसे हाथी वृक्षोंको शाखाओंसे रहित करता है वैसे धनुष्यके द्वारा बाणोंको फेंकनेवाले जालंधर राजाने योद्धाओंको शाखामुक्त किया अर्थात् हाथोंसे रहित किया-योधाओंके हाथ उसने बाणोंके द्वारा तोड डाले ॥ २२-२६ ॥ धैर्यवान् और पराक्रमी विराटको बुलाकर जालंधरने सारथिके साथ उद्धत विराटराजाको शरसमूहसे विद्ध किया। जालंधरने कुछ निमित्तसे विराटराजाके रथके अग्रभागपर बडे जोरसे कूदकर संकटमें पडे हुए विराटवीरको बंधनोंसे बांध लिया। जैसे गरुड आकाशमें भयंकर सर्पको पकडकर ले जाता है वैसे जालंधर व्यथासे

गृहीत्वा तं नृपं चागात्स्वरथे व्यथयान्वितम् । जालंधरो यथा तार्क्ष्यो भुजगं व्योम्नि भीषणम्
जीवग्राहं गृहीतं तं विराटं धर्मनन्दनः । उवाचाकर्ण्य संकीर्णं शौर्येण विपुलोदरम् ॥३०
रथं वाहय वेगेन तन्मोचय महाहवे । सकलं गोकुलं कुल्यबलं पश्यामि तेऽधुना ॥३१
विराटं संकटाकीर्णं बद्धं भूयिष्ठबन्धनैः । विमोच्य पूरय त्वं मे मनोरथं महारथिन् ॥३२
भ्रातृवाक्यं समाकर्ण्य नत्वा तं विपुलोदरः । समुत्क्षिप्य महावृक्षं विवेश विषमाहवे ॥३३
कुर्वन्कलकलारावं वैवस्वत इवोन्नतः । मतङ्गज इवात्यर्थं दधाव विपुलोदरः ॥३४
गाण्डीवजीवनः पार्थो नकुलो विपुलाशयः । सहदेवो ययुस्तत्र निर्मर्यादाब्धयो यथा ॥३५
भीमो भीमाकृतिस्तावन्मर्दयन्सिन्धुरान्रथान् । एकादशशतं भङ्क्त्वा रथानां स स्थितो रथी ॥
पञ्चाशता स युक्तानि शतानि नव वाजिनाम् । जघान घनघातेन परिघातेन भूयसा ॥३७
नकुलो निःकुलीकुर्वन्वैरिणो युयुधे रणे । सहदेवः सह प्रौढैर्विपक्षैः कृतवान्रणम् ॥३८
तदा जालंधरः प्राप्तो धनुर्धृत्वा च पावनिम् । चिच्छेदाजिह्मगैर्धीरो नभो वा मेघसंचयैः ॥
भीमोऽपि शरपातेन तत्सारथिमपातयत् । उत्सलय्य रथं तस्यारुरोह रणरङ्गवित् ॥४०

युक्त अर्थात् पीडासे दुःखित हुए विराटराजाको पकडकर अपने रथमें ले गया ॥ २७-२९ ॥

[भीमके द्वारा जालंधरराजाका बंधन] जालंधरने विराटको जीवंत पकड लिया है यह सुनकर धर्मनन्दन-धर्मपुत्र युधिष्ठिरने शौर्यसे युक्त भीमसे इस प्रकार कहा। " हे भीम, इस समय वेगसे रथको चलाओ और संपूर्ण गोकुलको छुडाओ। आज तेरे कुलका सामर्थ्य मैं देखना चाहता हूं ॥ ३०-३१ ॥ " संकटोंसे घिरे हुए और अतिशय बंधनोंसे जकडे हुए विराटराजाको छुडाकर हे महारथिन् भीम, तुम मेरे मनोरथ पूर्ण करो।" भाईका वाक्य सुनकर भीमने उनको नमस्कार किया। और एक बडे वृक्षको उखाडकर विषम युद्धमें प्रवेश किया, कलकल शब्द करनेवाला वैवस्वत-यमके समान उन्नत भीम हाथीके समान अतिशय जोरसे दौडने लगा। गाण्डीवही जिसका जीवनाधार है ऐसा अर्जुन तथा उदाराशय नकुल और सहदेव ये तीन भाई मर्यादाका उल्लंघन किये हुए समुद्रके समान उस रणमें प्रविष्ट हुए ॥ ३२-३५ ॥ भयंकर आकृतिके धारक भीमने रथों और हाथियोंका मर्दन किया अर्थात् उसने बहुतसे हाथी मारे और ग्यारहसौ रथ चूण कर दिये। पांचसौ रथ नष्ट किये और जिसका आघात प्रचण्ड है ऐसे परिघ नामक आयुधसे नौसौ पचास घोडोंको मार डाला। रणमें वैरियोंको कुलरहित करनेवाले नकुलने युद्ध किया। तथा प्रौढ शत्रुओंके साथ सहदेवने युद्ध किया ॥ ३६-३८ ॥ उस समय जालंधरराजा धनुष्य धारण कर भीमके पास आया और मेघसमूह जैसे आकाशको आच्छादते हैं वैसे उसने सरल गमन करनेवाले बाणोंसे भीमको आच्छादित किया ॥ ३९ ॥ भीमने भी बाणवृष्टि करके जालंधरराजाके सारथिको मार दिया। और रणरंगका ज्ञाता भीम उछालकर जालंधरके रथपर चढ गया। उसने धैर्यसे जालं-

पुनर्बबन्ध वैर्येण जालंधरमहीपतिम् । विराटं मोचयामास भीमो भीतिविवर्जितः ॥४१
भग्नं शत्रुबल तावन्ननाश निहतं शरैः । भीमो विराटमामोच्य गोधनं च नृपं ततः ॥४२
तावद्दुर्योधनः श्रुत्वा किंवदन्तीमिमां जनात् । क्रुद्धो योद्धुं सुसंबद्धो निर्जगाम सुसाधनः ॥४३
विराटनगरं प्राप्य दुर्योधनमहायुधः । उत्तरस्यां प्रतोल्यां हि संस्थितः संगरेच्छया ॥४४
संचरत्संचरच्चारु जहार वरगोकुलम् । तदोत्तरपुरं क्षुब्धं समभूद्भयविह्वलम् ॥४५
चिन्तयन्ति स्म ते चित्ते चिन्ताशनिसमाहताः । किं कुर्मः क प्रगच्छाम इति शोकसमाकुलाः ॥
साहाय्येन विना सर्वं वैरिणा गोकुलं हृतम् । बभाषे द्रौपदी तावल्लोकान्लोलसुलोचना ॥४७
अयं बृहन्नटो वीरो जानाति रणसत्क्रियाम् । पार्थस्य सारथिर्भूत्वावाहयद्बहुशो रथान् ॥४८
श्रुत्वा विराटपुत्रेण ददे तस्मै महारथः । गजवाजिरथैश्चागात्पुरतो राजनन्दनः ॥४९
पुरो बहिः स्थितः पुत्रो वीक्ष्यासंख्यबलं रिपोः ।
संख्योन्मुखं क्षणार्धेन भयं भेजे भ्रमन्मतिः ॥५०
रणेनानेन दुष्टेन पूयतां पूर्यतां मम । शत्रुसैन्यं ससंनाहं प्रबलं बहुघोटकम् ॥५१
शक्नोम्यत्र नहि स्थातुमाहवे प्राणहारिणि । इत्युक्त्वा नोत्तरं दत्त्वा ननाश नृपनन्दनः ॥

धरराजाको बांध दिया और निर्भय होकर विराटराजाको बंधनमुक्त कर दिया ॥ ४०-४१ ॥

[युद्धके लिये बृहन्नटके साथ उत्तर-राजपुत्रका गमन] इतनेमें लोगोंसे जालंधरराजाको भीमने पकडकर बांध दिया है ऐसी वार्ता सुनकर दुर्योधन क्रुद्ध हुआ और उत्तम सैन्यसे सन्नद्ध होकर लडनेके लिये निकला। महायुध धारण करनेवाला दुर्योधन विराटनगरको प्राप्त होकर युद्धकी इच्छासे उत्तरदिशाके मार्गपर आकर डट गया। वहां उसने आक्रमण करके सुंदर गमन करनेवाले गोकुलका अपहरण किया। उस समय उत्तरपुर भयभीत होकर क्षुब्ध हुआ ॥ ४२-४५ ॥ लोग चिन्तारूपी वज्रसे आहत होकर मनमें "अब हमें क्या करना चाहिये, हम कहां जावे ऐसा विचार करने लगे। तथा शोकसे व्याकुल होकर हमको साहाय्य न मिलनेसे हमारा सर्व गोकुल शत्रुने हरण किया है ऐसा कहने लगे" उस समय चंचल नयनवाली द्रौपदीने कहा कि "यह बृहन्नट वीर है। इसको युद्धमें लडनेका ज्ञान है। अर्जुनका सारथी होकर इसने अनेकवार युद्धमें रथ चलानेका कार्य किया है" ॥ ४६-४८ ॥ द्रौपदीका भाषण सुनकर विराटके पुत्रने-उत्तरराजकुमारने उसको महारथ दिया और गज,, घोडे, रथोंके साथ वह आगे रणमें गया। नगरके बाहर जाकर वहां वह स्थिर हो गया। उसने शत्रुका असंख्य सैन्य युद्धके लिये तैयार हुआ देखा। उस समय उसकी बुद्धि क्षणार्धमें भयभीत हो गई। इस दुष्ट रणसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं है। मुझे इसकी कुछभी जरूरत नहीं है। शत्रुसैन्य लडनेकी पूर्ण तैयारीमें है। उसमें बहुत घोडे हैं और वे खूब बलवान् हैं। प्राणोंको नष्ट करनेवाले इस युद्धमें मैं स्थिर रहनेमें असमर्थ हूं। ऐसा बोलकर और

तदा बृहन्नटो व्यक्तं प्रोवाच नृपनन्दनम् । अहो हो भज्यते युद्धे कथं वै त्वयका प्रभो ॥५३
विद्यासि कुलं लज्जाकुलं राज्ञो महामते । अर्जुनः सारथिः प्राप्तः पुण्यात्तेऽत्राहमुत्कटः ॥५४
ततस्त्वं कातरो वीर मा भूया दरदारक । मया सह रणे शत्रूञ्जहि हन्त रणोद्धतान् ॥५५
एवं समुच्यमानेऽपि स मुमोच समुच्चयम् । आहवस्य रथं तूर्णं स्म निवर्तयति स्वयम् ॥५६
तावद्बृहन्नटो वाणीं प्रोवाच शृणु नन्दन । सोऽहं पार्थः प्रसिद्धात्मा मा संशीतिं भजस्व भोः ॥
स्थिरीभव भयातीतो भूत्वा सज्जो विसर्जय । शराञ्शत्रुसमूहस्य शिरश्छेत्तुं समुत्कटान् ॥५८
दुर्योधनबलं बाणैर्विभज्य भयविद्रुतम् । विधास्यामि क्षणार्धेन पश्य मे प्रबलं बलम् ॥५९
अनेन वचसा यावद्विश्वे विश्वासवर्जिताः । न विश्वसन्ति पार्थे चेमं चेतसि भयाविलाः ॥६०
तावच्छक्रात्मजो युद्धे रथं तूर्णमवाहयत् । उत्तरं सारथिं कृत्वा वाजिवाहनतत्परम् ॥६१
रथं वाहय वेगेन त्वमुत्तर रणाङ्गणे । अहं हन्मि शरैः शत्रून्यथा नश्यन्ति तेऽखिलाः ॥६२
कृत्वा शत्रुंजयं क्षत्तः समुपार्ज्य यशश्चयम् । यास्यामो जयसंपन्नाःस्वपुरं पुण्यसंपदा ॥६३
इत्युक्त्वा तिष्ठ तिष्ठेति स्थिरं वैरिगणो ध्रुवम् । वदन्नेवं चचालासौ स्यन्दनस्थो धनंजयः ॥

कुछ उत्तर न देकर वह वहांसे भागनेको उद्युक्त हुआ ॥ ४९-५२ ॥ उस समय बृहन्नटने राजपुत्रको स्पष्ट कह दिया, कि हे राजपुत्र, हे स्वामिन् इस युद्धसे क्यों भागते हो? तुम महाबुद्धिमान् हो। राजा विराटके कुलको लज्जासे क्यों अवनत कर रहे हो। तुम्हारे पुण्यसे मैं अर्जुनका युद्ध-कुशल सारथि प्राप्त हुआ हूं। इस लिये हे वीर, तुम मत डरो। तुम भयको दूर करनेवाले बनो। युद्धमें युद्ध करनेके लिये उद्धत ऐसे वीरशत्रुओंको तुम मेरे साथ होकर मार डालो ॥ ५३-५५ ॥

[गोहरण करनेवालोंके साथ अर्जुनका युद्ध] अर्जुनके आश्वासन देनेपरभी वह उत्तरराजपुत्र युद्धकी सामग्री छोडकर स्वयं अपना रथ नगरके तरफ लौटाने लगा। तब अर्जुनने कहा, कि हे राजपुत्र " मैं प्रसिद्ध अर्जुन हूं " तुम बिलकुल संशयरहित हो जावो । तुम स्थिर हो जावो । भयको मनसे निकाल दो और सज्ज होकर शत्रुसमूहके मस्तक तोडनेके लिये तीव्र बाणसमूह छोडो ॥ ५६-५८ ॥ मैं दुर्योधनका सैन्य बाणोंसे तोडकर क्षणार्द्धमें भयसे भागनेवाला कर देता हूं तुम मेरा प्रबल सामर्थ्य देखो। अर्जुनके इस वचनसे भी सब विश्वासरहित हो गये। डरके मारे मनमें अर्जुनके ऊपर उन्होंने विश्वास नहीं रखा ॥ ५९-६० ॥ उतनेमें उत्तरको अर्जुनने सारथि किया। वह घोडोंको चलानेमें तत्पर हुआ, अर्जुनने इस प्रकार रथको युद्धमें चलाया। " हे उत्तरकुमार, तुम रथको रणांगणमें वेगसे चलाओ, शत्रु जैसे शीघ्र नष्ट होंगे उस उपायसे मैं उनको बाणोंसे मारूंगा। हे सारथे, शत्रुओंको जीतकर और विपुल यश प्राप्त कर पुण्यसंपदासे जयशाली होकर अपने नगरको अपन लौटेंगे"। ऐसा बोलकर, "हे वैरियों, ठहरो, स्थिर ठहरो, मैं आ रहा हूं" ऐसा बोलकर अर्जुन रथमें बैठकर चलने लगा ॥ ६१-६४ ॥ महान् उत्तरसारथि वेगसे अपना रथ चलाने लगा और

निरुत्तरं प्रकुर्वाणो विपक्षं स महोत्तरः । सारथिः स्वरथं यावत्संवाहयति वेगतः ॥६५
ज्वलनो निर्जरस्तावत्प्रसन्नः पार्थसाहसात् । नन्दिघोषाभिधं तस्मै समर्थं रथमाददे ॥६६
देवताधिष्ठितं पार्थो रथमारुह्य संयुगे । शत्रून्हन्तुं चचालासौ कृत्वोत्तरं सुसारथिम् ॥६७
तं तादृशं समावीक्ष्य द्रोणाचार्यस्तु विस्मितः । उवाच कौरवान्क्रूरान्कृतकोदण्डमण्डलान् ॥
संगरे संगरं मुक्त्वा यूयमद्यापि निश्चितम् । विधत्त संधिमुन्निद्रा यद्युष्माकं सुखं भवेत् ॥
केऽत्र पार्थशरान्सोढुं समर्थाः सन्ति भूभुजः । दावाग्नौ दीपिते दारुचयास्तिष्ठन्ति किं पुनः॥
कपटप्रकटा हित्वा कपटं गोकुलं पुनः । संगरं प्रीतिमुत्पाद्य यूयं यात निजे गृहे ॥७१
आगता गृहतो यूयं दुर्निमित्तशतानि वै । यदाभवंस्ततस्तूर्णं निवर्तयत निश्चितम् ॥७२
इत्याकर्ण्य महाक्रोधाद्रुधिरारुणलोचनः । दुर्योधनो जगादैवं योद्धुं योद्धृन्विलोकयन् ॥७३
द्रोण विद्रावणं वाक्यं किं वक्षि नयवर्जितम् । वैरिणां शंसने कोऽत्रावसरस्ते रणाङ्गणे ॥७४
क्रुद्धे मयि च कः पार्थः कस्त्वं दुर्बलमानसः । क्षत्रियाणां न जानासि मार्गं सर्गसमुत्कटम् ॥
कर्णोऽवोचद्रथस्थोऽपि भो गाङ्गेय गुरो शृणु । केनाहं निर्जितो दृष्टो रणे च त्वयका बली ॥

धनंजयने शत्रुओंको निरुत्तर किया ॥ ६५ ॥ इतनेमें पार्थका साहस देखकर प्रसन्न हुए अग्निनामक देवने नन्दिघोष नामका समर्थ रथ दिया। उत्तरराजपुत्रको अर्जुनने सारथि बनाया। देवताधिष्ठित रथमें अर्जुन बैठ गया और शत्रुओंको मारनेके लिये युद्धमें चला गया ॥ ६६–६७ ॥ देवके दिये-हुए रथमें बैठे हुए अर्जुनको देखकर द्रोणाचार्य आश्चर्य चकित हुए। जिन्होंने धनुष्योंको मण्डलाकार किया हैं, ऐसे क्रूर कौरवोंको वे कहने लगे, कि "हे कौरवो, तुम सुख चाहते हो तो युद्ध छोडकर जागृत होकर अब भी निश्चयसे संधि करो। इस जगतमें अर्जुनके बाण सहन करनेमें कौन राजा समर्थ हैं ? प्रज्वलित हुए दावाग्निमें लकडियोंका समूह जले बिना कैसा रहेगा ? कपट करनेमें तुम लोग प्रसिद्ध हो परंतु अब कपट, गोकुल और लडना तुम्हें छोडना पडेगा। तुम्हें पांडवोंके साथ प्रीति उत्पन्न करके अपने घरको चले जाना योग्य होगा। जब तुम घर छोडकर यहां आये, तब सैंकडो अशुभ शकुन हुए थे। इस लिये इस समय तुम्हारा लौटनाही निश्चयसे हितकारक होगा।" इस प्रकारका द्रोणाचार्यका भाषण सुनकर दुर्योधनकी आंखें तीव्र क्रोधसे रक्तके समान लाल हो गई। युद्धके लिये आये हुए योधाओंको देख दुर्योधन इस प्रकार कहने लगा ॥ ६८–७३ ॥ "हे द्रोणाचार्य आप न्यायरहित और शत्रुको उत्तेजन देनेवाला भाषण क्यों बोलते हैं ? इस रणांगणमें शत्रुकी प्रशंसा करनेका अवसर नहीं है। मेरे क्रोधके सामने अर्जुन क्या चीज है और दुर्बल मनवाले आप भी क्या चीज हैं ? आप निश्चयसे क्षत्रियके दृढ मार्गको नहीं जानते हैं" उस समय कर्णने भीष्माचार्यसे कहा— "हे भीष्माचार्य गुरो, मेरा भाषण आप सुनो "रथमें बैठकर युद्ध करनेवाला बलवान् मैं रणमें किसीके द्वारा कभी जीता गया हूं ऐसा आपने

उत्तरेण समं पार्थं प्रथमानमहोदयम् । दारयामि तथा तिष्ठेद्यथाणुर्नास्य भूतले ॥७७
रुष्टः क्लिष्टमनास्तावज्जल्पति स्म पितामहः । क दृष्टः संगरः कर्ण भूमौ शत्रुभयंकरः ॥७८
आहवे नैव शक्योऽयं निवारयितुमर्जुनः । रुष्टो दत्ते धरासुप्तिं भवतामपि नान्यथा ॥७९
शल्यो बल्यांस्तदा ब्रूते स्मास्माकं कलहः किल । कारितस्त्वयका तात त्रपासंभिन्नचेतसाम् ॥
तावत्सुसाधनं योद्धुममर्यादं सुसाधितम् । दधाव शुद्धिसंपन्नं गजवाजिरथाकुलम् ॥८१
तदा पार्थः शरौ शीघ्रं स्वनामाक्षरसंगतौ । प्रेषयामास गाङ्गेयं तौ शरौ तत्र संगतौ ॥८२
साक्षरं वीक्ष्य बाणैकं लात्वेत्यवाचयद्गुरुम् । धनंजयश्च विज्ञप्तिं विदधाति पितामह ॥८३
त्वत्पादपङ्कजं नत्वा सेवेऽहं सज्जमानसः । त्रयोदशाद्य वर्षाणि यातानि परिपूर्णताम् ॥८४
इदानीं शत्रुसंघातं हत्वा भुञ्जामि भूतलम् । विशिखाक्षरमाला च दर्शिता गुरुणा तदा ॥
क्षुब्धा वीक्ष्य भयत्रस्ता अभवन्कौरवा नृपाः । वाहयित्वा रथं पार्थो लक्षीकृत्य विपक्षकम् ॥
उवाचेदं क यासि त्वं दुर्योधन महाधम । वैवस्वतपथं द्रष्टुं त्वां प्रेषयामि सत्वरम् ॥८७

कभी देखा है ? जिसकी उन्नति, जिसका अभ्युदय बढ रहा है ऐसे अर्जुनको मैं ऐसा फाड डालूंगा कि उसका अणुभी भूतलपर बचा हुआ नहीं दीखेगा " ॥ ७४-७७ ॥ जिनके मनको क्लेश पहुंचा है और जो रुष्ट हुए हैं ऐसे भीष्माचार्य कर्णको इस प्रकार कहने लगे– " हे कर्ण, शत्रुको भय-युक्त करनेवाला तेरा युद्ध हमने इस भूतलपर कभी भी नहीं देखा है । युद्धमें अर्जुनका निवारण करना शक्य नहीं है । यदि यह रुष्ट होगा तो आपको भी धराशायी कर देगा । यह मेरा वचन मिथ्या नहीं है " ॥ ७८-७९ ॥ बीचमें बलवानोंको हितकर शल्यराजा आकर भीष्माचार्यसे बोला, कि " अहो तात, लज्जासे जिनका चित्त व्याप्त है, ऐसे हम लोगोंमें निश्चयसे आपहीने कलह खडा कर दिया है " ॥ ८० ॥ उस समय सुशिक्षित, जिसमें फूट अथवा फितुरी उत्पन्न नहीं हुई है, ऐसा शुद्धिपूर्ण, हाथी, घोडा, पैदल और रथोंसे पूर्ण अमर्याद सैन्य लडनेके लिये रणभूमिके प्रति दौडने लगा ॥ ८१ ॥

[अर्जुनका स्ववृत्त-कथन] उस समय अर्जुनने भीष्माचार्यके पास स्वनामाक्षर जिनमें लिखे हुए हैं ऐसे दो बाण शीघ्र भेज दिये । वे बाण उनके पास आगये । उन दोनोंमें अक्षरवाला एक बाण लेकर भीष्माचार्य पढने लगे । उसमें गुरु द्रोणाचार्य और भीष्माचार्यको जो विज्ञप्ति की थी वह इस प्रकार की थी— " हे पितामह, आपके चरणोंको वंदनकर मैं सज्जचित्त होकर आपकी सेवा करता हूं । आज तेरह वर्ष परिपूर्ण हुए हैं अब शत्रुओंका संहार करके इस भूतलको मैं भोगूंगा " ॥ ८२-८४ ॥ बाणपर लिखी हुई अक्षरोंकी पंक्ति गुरुने–द्रोणाचार्यने कौरवोंको दिखाई । कौरवराजा देखकर क्षुब्ध और भयभीत हुए । अर्जुनने शत्रुको लक्ष्यकर उसके समीप अपना रथ चलाया और कहा, कि " दुर्योधन, तू महाअधम मनुष्य है । अब तू कहां जाता है, मैं देखता हूं । अब मैं

स तद्रथं समावीक्ष्याकस्मात्कश्मलतां गतः । कातरत्वं जगामाशु कम्पमानः प्रमुक्तधीः ॥८८
चातुरङ्गबलं तावदायातीत्कौरवं क्षणात् । विशिखासंख्यपातेन वैराटं जर्जरं व्यधात् ॥८९
धनंजय इवोद्भूतः स धनंजयपाण्डवः । सुबाणज्वालयारण्यं ज्वालयामास कौरवम् ॥९०
स गाण्डीवकरोऽवोचद्यद्यस्ति भवतामिह । भटः कोऽप्यवतात्तर्हि दुर्योधनं ममाग्रतः ॥९१
क्रुद्धः कर्णस्तदोत्तस्थे वीतहोत्र इव ज्वलन् । अर्जुनं प्रति वेगेन धावमानो महामनाः ॥९२
कर्णार्जुनौ तदा लग्नौ छादयन्तौ महाशरैः । दलन्तौ धरणीं पादैर्हसन्तौ हास्यवाक्यतः ॥९३
परस्परं महाबाणैश्छिन्दन्तौ छिदुराञ्शरान् । शीघ्रं जेमीयमानौ तौ विप्रौघैरिव चासिभिः ॥
हेषारवं प्रकुर्वाणौ हयाविव महोद्धतौ । चूर्णयन्तौ चरन्तौ तौ दलन्तौ दन्तिनाविव ॥९५
हिंसन्तौ सिंहवद्धीरौ पूरयन्तौ च पुष्करम् । विशिखैः संख्यया मुक्तैर्दुरुक्तैश्च परस्परम् ॥९६

तुझे सत्वर यमका मार्ग देखनेके लिये भेज देता हूं "॥ ८५–८७ ॥ दुर्योधन अर्जुनका रथ देखकर अकस्मात् कांतिहीन हो गया–काला पड गया। उसका शरीर कँपने लगा, उसको बुद्धिने छोड दिया। वह भयभीत हो गया ॥ ८८ ॥ उतनेमें कौरवोंका चतुरंग सैन्य तत्काल आया और उसने असंख्य बाणोंकी वृष्टि करके विराटराजाके सैन्यको जर्जर किया। उस समय धनंजय पाण्डव–अर्जुन धनंजय अर्थात् अग्निके समान प्रगट हुआ। उसने बाणरूपी ज्वालासे कौरवरूपी अरण्यको प्रदीप्त किया। जिसके हाथमें गाण्डीव धनुष्य है, ऐसा अर्जुन कहने लगा, कि यदि आपके पास कोई बलवान् योद्धा होगा तो वह मेरे सामने दुर्योधनकी रक्षा करे ॥ ८९–९१ ॥

[अर्जुनके साथ कर्ण और दुःशासनका युद्ध] अर्जुनके प्रति वेगसे दौडनेवाला महामना कर्ण अग्निके समान प्रज्वलित होता हुआ युद्धके लिये उद्युक्त हुआ। अपने पावोंसे पृथ्वीको दलित करते हुए और हास्यवाक्य बोल कर हंसते हुए कर्ण और अर्जुन महाबाणोंसे अन्योन्यको आच्छादित कर युद्धमें सँलग्न हुए। वे महाबाणोंसे अन्योन्यके बाणोंको बीचहीमें काटने लगे। विप्रोंके समान तरवारियोंसे वे अन्योन्यके ऊपर आघात करने लगे। अतिशय उद्धत घोडोंके समान वे हेषारव करते थे अर्थात् घोडोंके समान शब्द करते थे। अन्योन्यके ऊपर आक्रमण करनेवाले दो हाथियोंके समान वे अन्योन्यका चूर्ण करने लगे और दलन करने लगे। सिंहके समान धीर वे दोनों अन्योन्यपर आघात करने लगे तथा असंख्यबाणोंसे आकाशको वे आच्छादित करने लगे, दुःशब्दोंके द्वारा अन्योन्यको ताडने लगे ॥ ९२–९६ ॥

अर्जुनने मेघोंके समान बाणोंसे आकाश व्याप्त किया और वायुके द्वारा जैसे कपास भागता है वैसे शत्रुका सैन्य भग्न कर दिया। उत्तम धनुष्य को धारण करनेवाले अर्जुनने कर्णके धनुष्यकी डोरी तोड डाली और सारथि के साथ उसका चंचल रथभी छिन्न कर दिया। उस समय द्वादशात्मसुत-सूर्य-राजाका पुत्र कर्ण रथरहित होकर जमीनपर खडा हो गया। इतनेमें शस्त्रसमूहको आच्छादित करता

पार्थेन पूरितं व्योम विशिखैर्जलदैरिव । शात्रवीयं बलं भङ्क्त्वा निन्ये तूलं च वायुना ॥९७
कर्णचापगुणं पार्थश्चिच्छेद सुधनुर्वहन् । स सारथिं रथं तस्य चूर्णयामास चञ्चलम् ॥९८
द्वादशात्मसुतस्तस्थौ स्थिरायां रथवर्जितः । तावच्छत्रुंजयो जेतुं शत्रून्संप्राप संगरे ॥९९
दुर्योधनानुजः सोऽयं छादयञ्शत्रुसंहतीः । शरैः सैन्यं समापूर्णं कुर्वाणो हि मृगारिवत् ॥
अभ्यागममागतं वीक्ष्य तं जगाद धनंजयः । याहि याहि रणाद्बाल किं तिष्ठसि ममाग्रतः ॥
मृगारिचरणाघातं सहते हरिणः किमु । तार्क्ष्यपक्षस्य निक्षेपं क्षमते किं महोरगः ॥१०२
न मुञ्चामि शरं बाल तवोपरि विशक्तिक । तदा तेन विक्रुद्धेन विमुक्ताः पञ्चमार्गणाः ॥
ते पार्थहृदये लग्ना भग्ना इव क्षणं स्थिताः । पार्थेन दशबाणेन स हतो गतवान्क्षितिम् ॥
कर्णानुजस्तदा प्राप विकर्णाख्योऽपकर्णयन् । मार्गणान्पार्थसंमुक्तान्रौद्रसंगरकारकः ॥१०५
अर्जुनः सारथिं हत्वा रथं तस्य बभञ्ज च । शरजालेन तं शीघ्रं छादयन्विफलीकृतम् ॥
बीभत्साख्यो रणं प्राप कुरुसैन्यं विमर्दयन् । दधानो धन्वसंधानं कालरूप इवोन्नतः ॥१०७

हुआ दुर्योधनका छोटा भाई शत्रुंजय दुःशासन शत्रुको जीतनेके लिये युद्धभूमिमें आया। बाणोंसे सैन्यको पूर्ण आच्छादित करता हुआ वह सिंहके समान आया। आक्रमण करने के लिये आये हुए दुःशासनको देखकर धनंजयने उसे कहा कि "हे बालक, तू रणसे चला जा, चला जा। मेरे आगे तू क्यों खडा है? क्या सिंहके चरणका आघात हरिण सह सकता है? गरुडके पक्षोंका आघात बडा सर्प भी क्या सहन कर सकता है? तू असमर्थ है अत एव तेरे ऊपर बाण नहीं छोडूंगा।" तब दुःशासन कुपित हुआ और उसने अर्जुनके ऊपर पांच बाण छोडे। वे अर्जुनके हृदय पर लग गये और मानो भग्न हुएसे क्षणपर्यन्त वहां रहे। तब अर्जुनने दशबाणोंसे दुःशासनको ताडन किया जिससे वह जमीनपर गिर कर मूर्छित हुआ॥ ९७–१०४ ॥

[अर्जुनके मोहनास्त्रसे कौरवसैन्यकी मूर्छा] उस समय विकर्ण नामक कर्णका छोटा भाई अर्जुनके छोडे हुए बाणोंका प्रतीकार करके उससे भयंकर संग्राम करने लगा। अर्जुनने विकर्णके सारथिको मार कर उसका रथ तोडा। बाणसमूहसे उसे उसने आच्छादित किया और उसके बाण विफल कर दिये। धनुष्यका अनुसंधान करनेवाला और मानो कालका उन्नत–रूप धारण करनेवाला, बीभत्स यह अपर नाम जिसका है ऐसा अर्जुन कुरुसैन्यका मर्दन करता हुआ रणमें आया और उसने तत्काल बाणके द्वारा शत्रुमस्तक [विकर्णका मस्तक] तोड दिया तब वह विकर्ण चिल्लाता हुआ यमके मंदिरमें जा पहुंचा। विकर्णका पतन देख करके कौरव–सैन्य भागने लगा। उस समय

---

१ ब. तूलेन वायुना।

तत्क्षणे विशिखेनासौ चकर्त वैरिमस्तकम् । विकर्णः क्रन्दनासक्तो जगाम यममन्दिरम् ॥
दधाव कौरवं सैन्यं वीक्ष्य विकर्णपातनम् । तदा तत्पृतनां पार्थो रुरोध रणसंगतः ॥१०९
निरुध्य निखिलं सैन्यं भानुपुत्रः पवित्रवाक् । पार्थमाकारयमास चमूसंचूर्णनोद्धुरम् ॥११०
सव्यसाची शुचा मुक्तो मुमोच तं हि मार्गणान् । कर्णोऽपि विफलीचक्रे ताञ्शरान्संगरावहान् ॥
त्रिभिर्बाणैस्तदा कर्णो विव्याध च धनंजयम् । त्रिभिश्च सारथिं केतुं त्रिभिस्त्रिभिश्च सद्रथम् ॥
क्रुद्धो धनंजयस्तावत्कर्णं विव्याध मार्गणैः । निपपात महीपृष्ठे कर्णो मूर्च्छामुपागतः ॥
कर्णमुत्सारयामास रथे कृत्वाथ कौरवः । तावद्दुःशासनः प्राप्तो दुस्साध्यो युधि क्रुद्धधीः ॥
सहस्व मार्गणान्मेऽद्य ध्वनन्निति धनंजयम् । जघान शरघातेन दुःशासनो हि सद्धृदि[1] ॥
तदा धनंजयः क्रुद्धः पञ्चविंशतिमार्गणैः । जघान युवराजं तं कृतं मृतमिवोन्नतम् ॥११६
अन्ये ये रणमायान्ति ददाति तान्दिशो बलिम् । पार्थः समर्थसिद्धार्थः कृतार्थः परिपन्थिहृत् ॥
गाङ्गेयस्तु समायातो योद्धुं पार्थं प्रति त्वरा । तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य पार्थोऽत्रोचत्पितामहम् ॥
त्रयोदश सुवर्षाणि गमितानि मयाधुना । भ्रमता तव पादाब्जं प्राप्तं पुण्यवशादिह ॥११९

रणमें अर्जुनने विकर्णके सैन्यको रोक लिया। संपूर्ण सैन्यको रोककर पवित्र वचनवाले कर्णने सैन्यका चूर्ण करनेमें समर्थ अर्जुनको युद्धके लिये बुलाया ॥ १०५–११० ॥ शोकरहित सव्यसाची अर्जुनने कर्णके ऊपर बाण छोडे और कर्णनेभी युद्धोचित उन बाणोंको विफल किया। उस समय तीन बाणोंसे कर्णने अर्जुनको विद्ध किया, तीन बाणोंसे सारथिको, तीन बाणोंसे केतु ध्वजाको और तीन बाणोंसे रथको विद्ध किया। तब क्रुद्ध हुए अर्जुनने कर्णको बाणोंसे विद्ध किया। वह मूर्च्छित होकर भूतलपर गिर पडा॥ १११–११३ ॥

[अर्जुन-भीष्म-युद्ध] तब दुर्योधनने रथमें कर्णको रखकर रणभूमिसे बाहर निकाला और जिसकी बुद्धि कुपित हुई है ऐसे दुःसाध्य दुःशासनने युद्धमें आकर ' आज मेरे बाणको तुम सहन करो ' ऐसा अर्जुनसे कहकर उसके हृदयपर बाणके आघात करने लगा। तब धनंजयने क्रुद्ध होकर पच्चीस बाणोंसे उन्नत युवराज दुःशासनको मानो मरा हुआ कर दिया॥ ११४–११६ ॥ समर्थ होनेसे जिसके कार्य सिद्ध हुए हैं, जो कृतकृत्य हुआ है तथा जिसने शत्रुओंको नष्ट किया है ऐसा अर्जुन जो कोई योद्धा रणमें आता था उसको दिशाओंका बलि बना देता था॥ ११७॥ इसके अनंतर पार्थके साथ लडनेके लिये त्वरासे भीष्माचार्य आये। उनको तीन प्रदक्षिणा देकर अर्जुनने पितामहको कहा कि "हे पितामह भ्रमण करते हुए मैंने तेरा वर्ष समाप्त किये हैं अब पुण्यसे इस भूमितलपर आपके चरणों की प्राप्ति हुई है ॥ ११८–११९॥ "हे पितामह आप

[1] सिर्फ ' ब ' प्रतिमें यह श्लोक है।

धनुस्त्वं धर धीरत्वं भज भव्य पितामह । अस्माकमथ युष्माकं यथा राज्यं भवेदिह ॥
गाङ्गेयस्तु तदा ज्यायां धनुरास्फालयन्ददौ । अष्टावष्टौ शराञ्शीघ्रं मुमोच मदमेदुरः ॥
सुनासीरसुतस्तूर्णं चिच्छेद रथसारथी । गाङ्गेयस्य तदा क्रुद्धो गाङ्गेयो गर्विताशयः ॥१२२
युयुधाते महायोधौ मार्गणैस्तौ महाहवे । असाध्यौ खलु मन्वानौ सामान्यास्त्रैः स्वयं स्थितौ ॥
उच्चाटनं महाबाणं सैन्योच्चाटविधायकम् । मुमोच मोहनं बाणं मोहयन्तं बलं गुरुः ॥१२४
तथा च स्तम्भनं बाणं स्तम्भयन्तं चमूं पराम् । चक्रे स विफलान्सर्वान्बाणान्पार्थः परोदयः ॥
सस्मार मानसे पार्थो वीतहोत्रसुपर्वणः । चचाल ज्वालयन्सोऽपि भूमिभूरुहसज्जनान् ॥१२६
गाङ्गेयस्तच्छरं मत्वा चिच्छेद निजविद्यया । अन्तरीक्षे क्षणं देवा ईक्षन्ते स्म तयो रणम् ॥
भीमानुजस्तु चिच्छेद गुरुबाणं बलोद्धतः । तयोर्मध्ये न कोऽप्यत्र पराजयत एव हि ॥१२८
यावद्धनंजयेनाशु धनुश्छिन्नं गुरोरपि । अन्तरे च तयोस्तावद्द्रोणाचार्यः समाययौ ॥१२९
अङ्कुशेन विनिर्मुक्तोऽनेकपो वा समुत्थितः । द्रोणो विद्रावयञ्शत्रूंस्तावत्पार्थेन संनतः ॥

हाथमें धनुष्य धारण कर धैर्यका आश्रय कीजिये जिससे आपका और हमारा यहां राज्य होगा। उस समय गाङ्गेय-पितामहने धनुष्यको डोरीपर चढाते हुए टंकार शब्द किया और मदपूर्ण होकर आठ आठ बाण शीघ्रही अर्जुनपर छोड दिये ॥ १२०–१२१ ॥ इन्द्रपुत्र अर्जुनने भीष्माचार्यके रथ और सारथि तोड डाले। तब गर्वयुक्त अभिप्रायवाले भीष्माचार्य कुपित हुए। दोनोंही (अर्जुन और भीष्माचार्य) महायोद्धा उस महायुद्धमें बाणोंसे अन्योन्यपर प्रहार कर लडने लगे। परंतु सामान्य अस्त्रोंसे अन्योन्यको असाध्य समझकर युद्धमें ठहरे हुए उन्होंने दिव्यास्त्रोंसे युद्ध किया ॥ १२२–१२३ ॥ भीष्माचार्यने सैन्यका उच्चाटन करनेवाला उच्चाटन बाण, सैन्यको मोहित करनेवाले मोहन बाण और उत्तम सैन्यको स्तंभित करनेवाले स्तंभन बाण छोड दिये। परंतु उत्कृष्ट उन्नतिशाली अर्जुनने उन सब बाणोंको विफल कर दिया ॥ १२४–१२५ ॥ अर्जुनने उस समय मनमें अग्निदेवका स्मरण किया। वह देवभी जमीन, वृक्ष और मनुष्योंको जलाते हुए चलने लगा ॥ १२६ ॥ भीष्माचार्यने अग्निबाणको समझकर अपनी विद्यासे उसका विच्छेद किया। उस समय क्षणतक आकाशमें देव उन दोनोंका युद्ध देखने लगे ॥ १२७ ॥ बलसे उद्धत भीमानुजने--भीमके छोटे भाई अर्जुनने गुरुका बाण तोड डाला। उन दोनोंमें कोईभी पराजित नहीं हुआ। ॥ १२८ ॥ जब धनंजयने गुरु भीष्माचार्यका भी धनुष्य छिन्न किया तब उन दोनोंके बीचमें द्रोणाचार्य आये ॥ १२९ ॥

[अर्जुनका द्रोण और अश्वत्थामाके साथ युद्ध] अंकुशसे रहित हाथीके समान शत्रुओंको भगानेवाले द्रोणाचार्य जब युध्दके लिये आये तब अर्जुनने उनको नमस्कार किया। भीषण अर्जुनने कहा कि " हे आचार्य आप मेरे महागुणवान् गुरु हैं। आप उत्तम नयनीतिसे शोभ-

बभाषे भीषणः पार्थस्त्वं गुरुर्मे महागुणः। कथं योयुध्यते सार्कं त्वया सजयशालिना ॥१३१
त्वं भो याहि निजं स्थानं जेष्यामीयेऽहं रिपून्परान्। अगदीद्द्रोण इत्युक्ते पार्थ सज्जो भवाधुना॥
प्रहारं देहि देहि त्वं दोषो नास्त्यत्र कश्चन। पार्थोऽभाणीद्भयातीतः प्रथमं मुंच मार्गणान् ॥
पश्चात्सेवां करिष्यामि हरिष्यामि महाबलम्। तदा तौ गुरुशिष्यौ हि रणं कर्तुं समुद्यतौ ॥
वीक्ष्यमाणौ सुरौघेणान्तरीक्षे क्षिप्रमुद्धतौ। गुरुर्विंशतिबाणैश्च च्छादयामास पुष्करम् ॥१३५
पार्थस्तान्खण्डयामासार्धपथेऽथ समुद्धतः। पुनर्लक्षशरान्द्रोणो मुमोच मघवात्मजं ॥१३६
सोऽपि द्विलक्षबाणैश्च ताञ्जघान महाशरान्। वीक्षितो जयलक्ष्म्या च सव्यसाची शुभंकरः॥
तावदुत्सारितो द्रोणो रणात्तनन्दनो महान्। अश्वत्थामा समापाशु संगरं रणकोविदः ॥
तौ केशरिकिशोराभौ बद्धामर्शौ मदोद्धतौ। युयुधाते महायोधौ द्रोणपुत्रार्जुनौ रणे ॥१३९
अश्वत्थामा हयौ तावद्रथस्थौ हतवान्हठात्। बीभत्सस्तौ तथा भूमौ पतितौ गतजीवितौ ॥
अश्वत्थामा महाबाणैर्गाण्डीवगुणमाच्छिनत्। अन्यां ज्यां च समारोप्यार्जुनो धनुषि तत्क्षणम्
जघान द्रोणपुत्रस्य हृदयं हृदयंगमः। सव्यसाची शरैः शीघ्रं धनुषा प्रेरितैः स्फुटम् ॥१४२

नेवाले हैं। आपके साथ मैं कैसे युध्द कर सकता हूं अर्थात् गुरुके साथ शिष्यका युध्द करना अनुचित है। इस लिये आप अपने स्थानपर चले जाईये, मैं अन्य शत्रुओंको मारूंगा" इस तरह बोलने पर आचार्यने कहा 'हे अर्जुन अब युध्दके लिये सज्ज हो, मेरे ऊपर प्रहार कर। इस प्रकार प्रहार करनेमें कुछ दोष नहीं है। तब अर्जुन निर्भय होकर कहने लगा कि, "हे गुरो आपही प्रथम मेरे ऊपर बाण छोड दीजिये। तदनंतर मैं आपकी सेवा करूंगा। आपका महाबल नष्ट करूंगा। ऐसा अर्जुनने कहा और अनंतर वे गुरु शिष्य लडने के लिये उद्युक्त हुए॥ १३०-१३४॥ उध्दत ऐसे गुरु शिष्य आकाशमें देवोंके द्वारा शीघ्र देखे गये। गुरुने बीस बाणोंसे आकाश आच्छादित किया और उध्दत अर्जुनने आधे मार्गमें उनको खण्डित किया। फिर गुरुने लक्ष बाण अर्जुनके ऊपर छोडे और अर्जुनने दो लक्ष बाण छोडकर उनके द्वारा गुरुके बाण सब तोड दिये। शुभंकर--शुभकार्य करनेवाला अर्जुन जयलक्ष्मीके द्वारा देखा गया। तब द्रोणाचार्य रणसे निवृत्त किये गये और उनका महाशूर पुत्र अश्वत्थामा,जो कि युध्दका ज्ञाता था उसने युध्दभूमिमें प्रवेश किया ॥ १३५-१३८॥ जिनको कोप उत्पन्न हुआ है ऐसे मदोध्दत सिंहके बच्चोंके समान वे दो महा-योध्दा अश्वत्थामा और अर्जुन रणमें लडने लगे। रथको जोडे हुए अश्वाथामाके दो घोडे अर्जुनने अपने सामर्थ्यसे मारे। वे जमीनपर पडकर प्राणरहित हुए। अश्वत्थामाने महाबाणोंसे गाण्डीव धनुष्यकी डोरी छिन्न की तब अर्जुनने अपने धनुष्य पर दुसरी डोरी चढादी और तत्काल हृदयंगम-सुंदर अर्जुनने धनुष्यके द्वारा प्रेरे गये बाणोंसे स्पष्टतया और शीघ्र द्रोणपुत्रका हृदय विध्द किया जिससे अश्वत्थामा शीघ्र भूमिपर गिर गया और मूर्च्छित हुआ। तब उत्तर--सारथि अर्जुनको इस

अश्वत्थामा महीपीठे मुमूर्च्छ पतितो द्रुतम् । अर्जुनं समुवाचेदं तावदुत्तरसारथिः ॥१४३
वाहयामि रथं नाथ दुर्योधननृपं प्रति । संधानं कुरु धानुष्काहिताञ्जहि महात्वरान् ॥१४४
पार्थः प्रोवाच दुर्जेयान्विपक्षान्सन्मुखांस्तदा । कुर्वन्विविधवाक्यैश्च मर्म नर्मविधायिभिः ॥
तैः समं विषमं व्योम छादयद्भिर्महाशरैः । युयुधे युद्धशौण्डीरो धनंजयमहीपतिः ॥१४६
तावत्तत्क्रममुल्लङ्घ्य राजबिन्दुः समाययौ । पार्थं च वेष्टयन्सैन्यैर्गजवृन्दैर्मृगेन्द्रवत् ॥१४७
एकेन तेन पार्थेन समर्थेन धनुष्मता । चिच्छेद वाहिनी तस्य मेघमालेव वायुना ॥१४८

गजान्रथान्ध्वजानश्वान्लक्ष्यीकृत्य सुलक्ष्यवित् ।
निहत्य पातयामास धरायां स धनंजयः ॥ १४९

कांस्कान्हन्मि नृपानत्र हिंसया पातकं यतः । ध्यात्वेति सुरराट्सूनुर्मोहनास्त्रं मुमोच च ॥
सद्धाटकफलेनेव तेन सर्वे विमोहिताः । पेतुः पृथ्वीतले तूर्णं निर्जीवा इव भूमिपाः ॥१५१
तेषां छत्रध्वजादीनि गजवाजिमहारथान् । आदायाभूत्तदा तुष्टोऽर्जुनो निर्जितशात्रवः ॥
विराटो वरवादित्रैर्नाट्यैः सद्भटकोटिभिः । तत्क्षणे कारयामास क्षणं श्रीपार्थभूपतेः ॥१५३
तावता धर्मपुत्रोऽपि मोचयामास गोकुलम् । प्रहृष्टः शिष्टसंसेव्यः समभून्निर्भयो महान् ॥

प्रकार बोलने लगा ॥ १३९–१४३ ॥ हे प्रभो, मैं दुर्योधन राजाके प्रति आपका रथ ले जाता हूं और आप महात्वरायुक्त जो धनुर्धारी शत्रु हैं उनके ऊपर संधान करके उनको प्राणरहित करो। मर्मस्थलमें नर्म उत्पन्न करनेवाले-उपहास उत्पन्न करनेवाले अनेक प्रकारके वाक्योंसे दुर्जयशत्रुओंको अपने सम्मुख करनेवाला अर्जुन उनके साथ बोलने लगा तथा आकाशको आच्छादित करनेवाले महाबाणोंसे युध्द चतुर धनंजयराजा उनके साथ लडने लगा ॥१४४–१४६॥ उस समय युध्दका क्रम उलंघकर और गजसमूहके समान सैन्योंके द्वारा सिंहके समान अर्जुनको वेष्टित करनेवाला राजबिन्दु नामक राजा आया। समर्थ धनुर्धारी उस अकेले अर्जुनने वायु जैसे मेघसमूहको छिन्न भिन्न करता है,वैसी उसकी सेना छिन्न कर डाली। लक्ष्यको उत्तम प्रकारसे जाननेवाले धनंजयने हाथी, रथ, ध्वज और घोडोंको लक्ष्य करके सबको मारकर पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ १४७–१४९ ॥ "इस युध्दमें किस किस राजाको मैं मारूं ? क्यों कि हिंसा करनेसे पातक लगता है" ऐसा विचार करके इन्द्रके पुत्रने मोहनास्त्र छोड दिया। धत्तूरके फलभक्षणके समान उस मोहनास्त्रसे वे सब मोहित हुए और पृथ्वीतलपर मानो जीवरहित होकर वे राजा शीघ्र पड गये ॥ १५०–१५१ ॥ उनके छत्र, ध्वज आदिक और हाथी,. घोडा, महारथ लेकर जिसने शत्रुको जीता है ऐसा अर्जुन आनंदित हुआ ॥ १५२ ॥

[गोकुल–मोचन और अभिमन्युका उत्तराके साथ विवाह] विराटराजाने उत्तम वाद्योंसे, नृत्योंसे और उत्तम भटोंसे तत्काल श्रीअर्जुनका अभिनंदनका उत्सव किया। उस समय धर्मपुत्रनेभी गोकुलको मुक्त कराया। जिससे सज्जनसेव्य धर्मपुत्र आनंदित और अतिशय निर्भय हुआ ॥ १५३–

कथं कथमपि प्राप्ताश्चेतनां कौरवा नृपाः । प्रपेदिरे त्रपापूर्णाः पुरं प्रमोदवर्जिताः ॥१५५
विराटो विकटो मत्वा तानिमान्पञ्च पाण्डवान् । नत्वा करपुटं कृत्वा मूर्ध्नि विज्ञप्तिमातनोत् ॥
एतावत्समयं देव न ज्ञातो भगवान्भवान् । मया धर्मात्मजस्त्वं हि तदागः क्षम्यतां मम ॥
अतस्त्वमेव स्वाम्यत्र किंकरोऽहं तव प्रभो । अत्रैव क्रियतां राज्यं प्राज्यं सद्बान्धवैः सह ॥
विवेश पत्तनं सार्धं कौन्तेयैः स महोत्सवैः । विनयी विनयं कुर्वस्तेषां प्रार्थयत स्थितिम् ॥

इत्युक्त्वा विनयं कृत्वा गोष्ठेऽसौ गोकुलं न्यधात् ।
स पुनः पार्थयामास प्रार्थमुद्वाहसिद्धये ॥ १६०[1]

धनंजय सुता धन्या ममास्ति भोगभाजनम् । जरासंधसुतैः पूर्वं प्रार्थितानेकशोऽपि सा ॥
सुदती न मया दत्ता सुरूपा भूप भोगदा । तेभ्योऽस्तो भज तत्पाणिपीडनं पार्थ पार्थिव ॥
पार्थोऽवोचद्विराटेड् योऽभिमन्युर्मम नन्दनः । सुभद्रायास्तुजे तस्मै देहि दीप्तिधरां सुताम् ॥
तत्क्षणं स क्षणं कृत्वा विवाहवरमङ्गलैः । विराटः सुघटाटोपैर्ददौ तामभिमन्यवे ॥१६४
तदा कुन्ती समायाता ज्ञात्वा तेषां सुवैभवम् । किंवदन्ती तदा याता द्वारवत्यां महापुरि ॥

१५४ ॥ बडे कष्टसे कौरवराजा चेतनाको प्राप्त हुए। और लज्जापूर्ण तथा आनंदरहित–दुःखी होकर हस्तिनापुरको चले गये ॥ १५५ ॥ विकट–शूर विराटराजाने इनको पांच पाण्डव समझ नमस्कार कर और हस्ताञ्जलि मस्तकपर करके विज्ञप्ति की ॥ १५६ ॥ "हे भगवन्, हे देव मैंने इतने कालतक आपको नहीं जाना था कि आप धर्मराज हैं इसलिये आप मेरे आपराधकी क्षमा कीजिये। हे प्रभो, इस लोकमें आपही मेरे स्वामी हैं; मैं आपका किङ्कर हूं। आप यहांही अपने उत्तम बंधुओंके साथ राज्य कीजिए।" ऐसा कह कर और विनयकर राजाने गोठोंमे गोकुलकी व्यवस्था की ॥१५७–१५९॥ तदनंतर महोत्सवयुक्त पांडवोंके साथ विराटराजाने नगरमें प्रवेश किया। विनयी विराटराजाने उनका विनयकर यहांही आप निवास कीजिये ऐसी प्रार्थना की। पुनः पार्थको-अर्जुनको उसने विवाहके लिये प्रार्थना की। "हे धनंजय, मुझे भोगयोग्य एक भाग्यवती कन्या है। जरासंधराजाके पुत्रोंने अनेकवार पूर्वकालमें उसकी याचना की थी तो भी मैंने सुंदर दांतवाली सुन्दर भोगदायिनी कन्या उनको नहीं दी। इसलिये हे अर्जुनराज, उसके साथ तुम अपना विवाह करो" ॥ १६०–१६२ ॥ अर्जुनने विराटराजाको कहा कि "हे राजन्, सुभद्रामें उत्पन्न हुआ अभिमन्यु नामक मेरा पुत्र है उसे आप अपनी कांतियुक्त कन्या देवें। तत्काल विवाहके उत्तम मंगलोंके द्वारा महोत्सव करके उत्तम प्रभावसे अभिमन्युको उत्तरा कन्या दी। पाण्डवोंका उत्कृष्ट वैभव जानकर कुन्ती उनके पास गई। तथा द्वारावती नगरमें यह वार्ता पहुंच

१ सिर्फ 'अ, स' प्रतियोंपरसे।

ततो हलधरो धीमान्विकुण्ठो विष्टरश्रवाः । प्रद्युम्नो भानुमुख्याश्च प्राप्तास्तत्र महीभुजः ॥
धृष्टार्जुनः सुसज्ञः सन्नूर्जस्वी स समाययौ । अखण्डाज्ञः शिखण्डी च भूपोऽपि परमोदयः॥
एवमन्ये महानन्दाः सेन्दिरा रूपसुन्दराः । तत्रापुर्भूमिपास्तूर्णं मनोरथशताकुलाः ॥१६८
विवाहानन्तरं तत्र कियतो वासरान्नृपाः । स्थित्वा सन्मानिताः सर्वे वस्त्राद्यैः स्वपुरं ययुः ॥
हरिर्हलधरेणामा अक्षौहिणीबलान्वितः । पाण्डवैः सह सत्प्रीत्या चचाल चञ्चलैस्त्वरा ॥१७०
यादवाः स्वपुरे याताः कुन्त्या सह च पाण्डवैः । तत्र तस्थुः स्थिरं स्थैर्यादन्योन्यप्रीतिमानसाः

अक्षौहिणीप्रमाणं किं वद गौतम सोऽवदत् ।
खं सप्ताष्टैकयुग्माङ्का २१८७० दन्तिनो यत्र संमताः ॥१७२
तथा रथाश्च तावन्तः २१८७० खैकषट्पञ्चषड्घयाः ६५६१० ।
पत्तयः शून्यपञ्चत्रिनवशून्यैकसंमताः १०९३५० ॥१७३

तत्रैकदा जगादैवं दिवस्पतितनूद्भवः । देवकीनन्दनं नीत्या संनिर्जितबृहस्पतिः ॥१७४
यस्याप्यपयशो लोके वरीवर्ति वरातिगम् । अवगण्यं वचोऽतीतं गणनातीतमञ्जसा ॥१७५

गई। तदनंतर विद्वान् बलभद्र, सुज्ञ विष्णु, प्रद्युम्न, भानु इत्यादि अनेक राजा विराटनगरमें आये ॥१६३-६६॥ तेजस्वी प्रबल ऐसा धृष्टार्जुन-द्रुपदराजाका पुत्र और परमवैभववाला तथा अखण्ड आज्ञा जिसकी है ऐसा शिखण्डी राजा अभिमन्युके विवाहके लिये आये। इस प्रकारसे अतिशय आनन्द-युक्त लक्ष्मीसंपन्न, स्वरूपसुन्दर और सैंकडो मनोरथोंसे परिपूर्ण ऐसे अनेक अन्य राजा शीघ्र वहां आये ॥ १६७-१६८ ॥ विवाहके अनन्तर विराटनगरमें कुछ दिनतक राजा रहे और वस्त्रादिकोंसे सम्मानित किये गये वे सब अपने अपने नगरको चले गये ॥ १६९ ॥ पाण्डव कृष्णके साथ द्वारिकानगरको चले गये । अक्षौहिणीप्रमाण सैन्यसे युक्त श्रीकृष्ण बलभद्र और चंचल पाण्डवोंके साथ अतिशय प्रीतिसे त्वरासे चलने लगे। यादव कुन्ती और पाण्डवोंके साथ अपने नगरको-द्वारिकाको चले गये। वहां अन्योन्यकी स्थिर प्रीतिसे वे दीर्घकालतक रहे ॥ १७०-१७१ ॥ हे गौतमप्रभो, अक्षौहिणी प्रमाण क्या है, कहो ऐसा श्रेणिकराजाने प्रश्न किया। तब गणधरने कहा- जिस सैन्यमें शून्य, सात, आठ, एक और दो इतनी संख्यावाले हाथी हैं अर्थात् २१८७० इतने हाथी हैं। तथा रथोंकी संख्या भी उतनीही है, जिसमें शून्य, एक, छह, पांच छह, अंकके अर्थात् ६५६१० इतनी संख्या घोडोंकी है। पैदलोंकी संख्या शून्य, पांच, तीन, नउ, शून्य और एक है अर्थात् १०९३५० एक लाख नउ हजार तीनसौ पचास संख्याप्रमाण पैदल रहता है इस प्रकारसे सब मिलकर २१८७०० इतना अक्षौहिणी सैन्यका प्रमाण है ॥ १७२-१७३ ॥ द्वारकानगरीमें नीतिके चातुर्यसे जिसने बृहस्पतिको जीता है ऐसा इन्द्रका पुत्र एकदा देवकीनन्दनको-श्रीकृष्णको इस प्रकार कहने लगा--- " इस दुर्योधनका अपयश भी जगतमें उत्तमताका उल्लंघन कर रहा है।

तद्वक्तुं कौरवाणां हि कः क्षमो जगतीतले । वयं जतुगृहे क्षिप्ता ज्वालिता तैश्च छद्मना॥१७६
गृहीत्वा द्रौपदीकेशान्गृहान्निष्कासिताः शठैः । मुरारिस्तद्वचः श्रुत्वा रसनां दशनान्तरे ॥
स्थापयित्वा जगादैवं निःप्रमादो महामनाः । दुर्योधनकृतिं पार्थ प्रेक्षस्व कृतसत्क्षतिम् ॥
निर्बन्धुत्वं च दुष्टस्याकुलीनत्वं नयच्युतिम् । इत्युक्त्वा मन्त्रयित्वा च पाण्डवैर्विष्टरश्रवाः ॥
कार्यं विचार्य वेगेन प्राहिणोच्च वचोहरम् । क्रमेणाक्रम्य भूपीठं स जगाम सुहास्तिनम् ॥
गत्वा नत्वा नृपं नीत्या बभाण कौरवेश्वरम् । द्वारकातः समायातो दूतोऽहं विधिवेदकः ॥
राजन्नत्र महीपीठे न जेयाः पाण्डवा रणे । वृथा किं क्रियते वंशच्छेदः स्वस्य महीपते ॥
पाण्डवानां तु साहाय्यं करोति मधुमर्दनः । विराटो विकटो भूमौ द्रुपदः सरथः सदा ॥
प्रलम्बघ्नः सदा येषां विघ्नौघपरिघातकः । दशार्हाश्चार्हणीया प्राप्ताः प्रद्युम्नाद्याः सुपक्षिणः ॥
तैः समं समरे स्थातुं किं भवान्क्षणमर्हति । मानं विमुच्य भीतात्मन्शुद्धसंधिं विधेहि भोः ॥
अर्धार्धभूर्विभज्याशु द्वाभ्यां भोज्या सुभाग्यतः । दूतोक्तमेवमाकर्ण्य विदुरं कौरवोऽवदत् ॥
ताताद्य किं प्रकर्तव्यं मया राज्यं प्रभुज्यते । पूर्णं तूण कथं ब्रूहि प्रोवाच विदुरस्तदा ॥

वह तिरस्कार करने लायक शब्दोंसे अवर्णनीय और निश्चयसे गणनाके अगोचर है। कौरवोंके अपराध भी कहनेके लिये इस जगतमें कौन समर्थ है? उन लोगोंने कुछ निमित्तसे अर्थात् कपटसे हमको लाक्षागृहमें जलाया है। तथा द्रौपदीके केश पकडकर उन शठोंने उसे घरसे बाहर किया।" प्रमादरहित और महामना मुरारिने—कृष्णने अर्जुनका वचन सुनकर दांतोंके बीचमें जिह्वा रखकर ऐसा भाषण किया—"हे अर्जुन, सज्जनोंका नाश करनेवाली यह दुर्योधनकी कृति है। दुष्ट दुर्योधनका स्नेहरहितपना, अकुलीनपना और न्यायभ्रष्टता तो देखो।" ऐसा बोलकर पाण्डवोंके साथ श्रीकृष्णने विचार करके कार्यको निश्चित किया और वेगसे दूतको भेज दिया। वह क्रमसे भूतलको आक्रमण कर हस्तिनापुरको गया। राजा दुर्योधनको उसने नमस्कार कर नीतिसे कहा कि "द्वारकासे आया हुआ कार्यको जाननेवाला मैं दूत हूं ॥ १७४–१८१ ॥ दूतने ऐसा भाषण किया—"हे राजन्, इस भूतलपर आप युद्धमें पाण्डवोंको नहीं जीत सकते हैं। इसलिये आप अपने वंशका व्यर्थ नाश क्यों करते हैं? मधुमर्दन—श्रीकृष्ण पाण्डवोंको साहाय्य करेंगे। इस भूतलपर विकट विराट, रथोंसहित द्रुपदराजा, तथा बलभद्र ये हमेशा पाण्डवोंके संकटोंको नष्ट करनेवाले हैं। आदरणीय दशार्ह राजा, तथा सुपक्ष—पाण्डवोंका पक्ष धारण करनेवाले प्रद्युम्नादिक राजा पाण्डवोंके पक्षमें हैं। आप युद्धस्थलमें उनके साथ क्या एक क्षणतक भी युद्ध कर सकेंगे? इसलिये भीतिस्वभावको धारण करनेवाले आप मानको छोडकर शुद्ध संधि कीजिए।" आधा आधा विभाग कर आप दोनों पाण्डव और कौरवोंको भाग्यसे भूमिका उपभोग लेना चाहिये।" ऐसा दूतका भाषण सुनकर दुर्योधन विदुरको कहने लगा॥ १८२–१८६॥ "हे तात आज मैं

धर्मेण लभते सारव्यं धर्माद्राज्यं निराकुलम् । धर्माच्च सुवरा श्रीमन् धर्माद्वैरिगणात्ययः ॥
पुरुषस्य विशुद्धिस्तु धर्मः साधर्मिकैर्मतः । मनोवचनकायानामकौटिल्यं विशुद्धता ॥१८९
क्रोधलोभसुगर्वाणां त्यागो हि वृष उच्यते । अतस्तांस्त्वं परित्यज्य कुरु धर्मे महामतिम् ॥
यदि वाञ्छसि स्वच्छत्वं स्वेच्छया वत्स पाण्डवान् । आकार्य विनयेनाशु देहि देशार्धमुत्तरम् ॥
श्रुत्वा दुर्योधनः क्रुद्धः समवादीद्धृदा दधत् । आमर्षं हर्षनिर्मुक्तो विदुरं विदुरं सदा ॥१९२
अहं ते भक्तिनिर्भिन्नस्त्वं वाञ्छसि च गौरवम् । पाण्डवानां परं राज्यं ममाराज्यं विशेषतः॥
इत्युक्त्वा दुष्टवाक्येन दूतो निर्धाट्य संसदः । तेन निःसारितः प्राप पुरीं द्वारावतीं पराम् ॥
नत्वा नृपांश्च कौन्तेयान्यादवांश्च वचोहरः । यथावत्सर्ववृत्तान्तं न्यवेदयत्स कार्यवित् ॥१९५
राजन्न कुर्वते संधिं कौरवाः कृतकिल्बिषाः । न तुष्टास्ते च तिष्ठन्ति भवतामुपरि स्फुटम् ॥
तच्छ्रुत्वा संजगौ वाक्यं पाण्डुपुत्रः पवित्रवाक् । अस्माभी रक्षिता नीतिरयशोऽपि निवारितम् ॥
तदर्थं प्रेषितो दूतो येनानीतिर्न जायते । इत्युक्त्वा पाण्डवा यातुं यादवैस्तान्समुद्ययुः ॥१९८
तावदन्यकथासंगः श्रूयतां सावधानतः । ज्ञायते येन सद्विष्णुप्रतिविष्णोः सुखासुखम् ॥१९९

क्या उपाय करूं कहिए? आज पूर्ण राज्यका उपभोग लेनेका उपाय क्या है मुझे कहिए। " विदूर उस समय कहने लगा– " हे दुर्योधन धर्मसे वैरिसमूहका नाश होता है। मनुष्यके परिणामोंकी जो निर्मलता उसे विशुद्धि कहते हैं और वह धर्म है और साधर्मिकोंके साथ वह विशुद्धता होना चाहिये। मनमें, वचनोंमें और शरीरमें जो कुटिलता–कपटका नहीं होना है उसे विशुद्धि कहते हैं। क्रोध, लोभ और गर्वका त्याग करना धर्म कहा जाता है। इस लिये ऐसे क्रोधादि अशुभ भावोंको तू छोड दे और धर्ममें अपने मनको स्थापित कर। यदि तू मनकी स्वच्छताको चाहता है तो हे वत्स, पाण्डवोंको विनयसे बुलाकर उनको आधा देश अवश्य दे। " ॥ १८७–१९१ ॥ श्रीविदुरका भाषण सुनकर हृदयमें क्रोधको धारण करता हुआ हर्षरहित दुर्योधन, विद्वान् विदुरको कहने लगा कि " हे तात मैं आपकी भक्तिसे सहित हूं और आप पाण्डवोंके गौरवको चाहते हैं, आप पाण्डवोंको राज्य दिलाना चाहते हैं और मुझे वह नहीं मिले ऐसी इच्छा रखते हैं " ऐसे दुष्ट वाक्य बोलकर उसने दूतको सभासे निकाल दिया। उसके द्वारा निकाला गया दूत वैभवशाली द्वारावतीको आया, उसने पाण्डवोंको और कार्यज्ञ यादवनृपोंको नमस्कार कर संपूर्ण वृत्तान्त कहा ॥ १९२–१९५ ॥ दूतने कहा कि " हे राजन्, जिन्होंने पाप किया है ऐसे कौरव संधि नहीं करते हैं यह स्पष्ट हैं वे आपसे संतुष्ट नहीं है। " दूतका भाषण सुनकर पवित्र वचनवाले धर्मराज बोले, कि हमसे नीतिपालन किया गया है और अकीर्ति भी हटायी गयी है। अनीति नहीं हो जावे इस हेतुसे हमने दूत भेजा था। " ऐसा बोलकर यादवोंको साथ लेकर पाण्डव कौरवोंपर आक्रमणके लिये उद्युक्त हुए ॥ १९६–१९८ ॥ इस विषयमें अन्यकथाका प्रसंग सावधान होकर हे

भ्रान्त्वा भूवलयं विराटनगरे नानाभटैः संकटे, गत्वा वेषधराः सुपाण्डुतनया जित्वा रणे दुर्जयान् ।
कौरव्यान्किल गोकुलं जनकुलानन्दप्रदं संख्यके
रक्षन्ति स्म सपक्षतो वरवृषात्प्रापुर्विराटे जयम् ॥२००
धर्माद्वैरिजनस्य भेदनमहो धर्माच्छुभं सत्प्रभम्
धर्माद्बन्धुसमागमः सुमहिमालाभः सुधर्मात्सुखम् ।
धर्मात्कोमलकप्रकायसुकला धर्मात्सुताः संमताः
धर्माच्छ्रीः क्रियतां सदा बुधजना ज्ञात्वेति धर्मः श्रियै ॥२०१

इति श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि शुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपालसाहाय्यसापेक्षे
पाण्डवानां विराटनगरे कौरवभङ्गप्रापणगोकुलविमोचनाभिमन्यु-
विवाहद्वारावतीप्रवेशवर्णनं नामाष्टादशं पर्व ॥ १८ ॥

। एकोनविंशं पर्व ।

अनन्तानन्तसंसारसागरोत्तारसेतुकम् । अनन्तं नौम्यनन्तत्वं गुणानां यत्र वर्तते ॥१

श्रेणिकराजा, तुम सुनो जिससे विष्णु और प्रतिविष्णुके सुख और दुःखका ज्ञान होगा ॥ १९९ ॥ पाण्डव भूवलयमें घूमकर नाना-भटोंसे व्याप्त विराटनगरमें गये । वहां वेष धारण कर युद्धमें दुर्जय कौरवोंको उन्होंने जीता । जनसमूहको आनन्द देनेवाले गोकुलकी उन्होंने शत्रुओंसे रक्षा की और सत्पक्षरूप धर्मके आश्रयसे विराटदेशमें उन्होंने जय प्राप्त किया। धर्मसे वैरियोंका नाश होता है, अहो धर्मसे उत्तम कान्तिवाला पुण्य प्राप्त होता है । धर्मसे बंधुओंका समागम और उत्तम महिमाका लाभ होता है। सुधर्मसे सुखप्राप्ति होती है। धर्मसे कोमल और सुंदर शरीरकान्ति प्राप्त होती है। धर्मसे अपने मतानुकूल पुत्र प्राप्त होते हैं और धर्मसे लक्ष्मी प्राप्त होती है। हे विद्वजन आप धर्मसे होनेवाले शुभकार्य जानकर उसकी अनन्तज्ञानादि-लक्ष्मीके लिये आराधना करो ॥ २००-२०१ ॥

ब्रह्म श्रीपालजीकी सहायतासे भट्टारक श्रीशुभचन्द्रजीने रचे हुए श्रीपाण्डवपुराण
महाभारतमें विराटनगरमें कौरवोंको पराजयप्राप्ति, गोकुलोंको कौरवोंसे
छुडाना, अभिमन्युका विवाह और द्वारावतीमें प्रवेश इन विषयोंका
वर्णन करनेवाला अठारहवा पर्व समाप्त हुआ ॥१८॥

[उन्नीसवा पर्व]

जिसमें गुणोंका अनंतपना है, जो अनन्तानंत-संसाररूपी समुद्रसे पार जानेके लिये सेतुके समान है ऐसे अनन्तनामक तीर्थकर परमदेवकी मैं स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

अथ दायादसंदोहक्रियाशङ्काविरक्तधीः । संसारासुखसंभारभङ्गुरो विदुरोऽभवत् ॥२
स वैराग्यभराक्रान्तस्वान्तश्चेतिरचिन्तयत् । धिक् संपदः प्रभुत्वं धिक् धिक् च वैषयिकं सुखम् ॥
यत्कृते पितरं पुत्रः पिता पुत्रमपि क्वचित् । सुहृच्च सुहृदं बन्धुर्बान्धवं च जिघांसति ॥४
एतांश्च कर्मचाण्डालसंश्लेषमलिनान्कुरून् । न खलु द्रष्टुमीशिष्ये म्रियमाणान्रणाङ्गणे ॥५
एवमालोच्य विज्ञानी विदुरः कौरवान्नृपान् । प्रकथ्य विपिनं गत्वानंसीद्विपुलमानसम् ॥६
विश्वकीर्तिं नतः श्रुत्वा वृषं संयमिनो वृषम् । जग्राहोपधिनिर्मुक्तः संचरन्परमं तपः ॥७
अथैकदा जनः कश्चिद्विपश्चिद्राजमन्दिरम् । पुरं प्राप्य सुरत्नौघैः प्राभृतीकृत्य भूमिपम् ॥८
नतः पृष्टो नरेन्द्रेण कस्मादायातवानिति । स जगौ द्वारिकातोऽहं प्राप्तोऽत्र त्वद्दिदृक्षया ॥९
तत्र कोऽस्ति महीपालो जरासंधेन भूभुजा । पृष्टोऽवोचत्स वैकुण्ठो नेमिना तत्र भूपतिः ॥
तत्रस्थान्यादवाञ्श्रुत्वा जरासंधो महाक्रुधा । चचालाकालकल्पान्तचलितात्मबलाम्बुधिः ॥
निर्हेतुसमरप्रीतो माधवं नारदोऽब्रवीत् । जरासंधमहाक्षोभं वैरिविध्वंसकारकम् ॥१२

[विदुरराजाने जिनदीक्षा धारण की] इसके अनंतर दायाद—भाईबन्दोंके समूहके दुराचारोंके भयसे जिनकी बुद्धि विरक्त हुई है ऐसे विदुरराजा सांसारिक सुखसमूहसे भागनेवाले हुए अर्थात् उन्होंने सांसारिक—सुखोंका त्याग किया। वैराग्यभावसे व्याप्त हुआ है मनोव्यापार जिनका ऐसे विदुर राजाने ऐसा विचार किया— "संपत्ति, स्वामित्व और विषय—सुखको धिक्कार हो। इन संपत्ति आदिके लिये पुत्र पिताको, क्वचित् पिताभी पुत्रको, मित्र मित्रको और बंधु बांधवको मारना चाहते हैं" ॥ २–४ ॥ "अशुभ कर्मरूपी चाण्डालके संपर्कसे मलिन हुए, तथा रणाङ्गणमें मरनेवाले कौरवोंको, मैं निश्चयसे नहीं देखना चाहता हूं।" ऐसा विचार कर ज्ञानी विदुरराजाने कौरवोंको अपना दीक्षा लेनेका विचार कहकर तथा अरण्यमें जाकर विपुलमनवाले अर्थात् सर्व प्राणिओंका हित चाहनेवाले विश्वकीर्तिनामक मुनीश्वरको नमस्कार किया। उनसे धर्मका स्वरूप पूछकर बाह्याभ्यंतर परिग्रहोंसे रहित होकर मुनियोंका धर्म ग्रहण किया और तपश्चरण करते हुए वे विहार करने लगे ॥ ५–७ ॥ किसी समय एक विद्वान् राजगृहनगरके राजमंदिरमें उत्तम रत्नोंके साथ आया और उसने जरासंध राजाके आगे उन रत्नोंका भेट कर नमस्कार किया। आप कहांसे आगये हैं ऐसा राजाने प्रश्न पूछा तब "आपको देखनेके लिये मैं द्वारिकासे यहां आया हूं" ऐसा उसने उत्तर दिया। राजाने पूछा, कि वहां कौन राजा रहता है? तब उस विद्वानने उत्तर दिया कि "द्वारिकामें श्रीनेमिप्रभुके साथ वैकुण्ठराजा—कृष्णराजा राज्य करता है।" द्वारिकामें यादव हैं ऐसा सुनकर मानो अकालमें प्रगट हुए कल्पान्तकालके समुद्र समान जिसका सेना—समुद्र क्षुब्ध हुआ है ऐसा जरासंध राजा क्रोधसे प्रयाणके लिये उद्युक्त हुआ ॥ ८–११ ॥

[कृष्णका युद्धके लिये उद्यम] कारणके बिनाही युद्ध—प्रीति जिसको है, ऐसे नारदने

मुरारिरपि नेमीशमभ्येत्य पुरतः स्थितः । अप्राक्षीत्थिप्रमात्मीयं जयं शत्रुक्षयोद्भवम् ॥१३
नेमिर्नम्रामराधीशो विष्णुमोमित्यभाषत । स्मिताद्यैः स्वजयं ज्ञात्वा योद्धुं विष्णुः समुद्ययौ ॥
बलनारायणौ राजा समुद्रविजयो जयी । वसुदेवोऽप्यनावृष्टिर्धर्मपुत्रश्च भीमकः ॥१५
अर्जुनो रौक्मिणेयश्च धृष्टद्युम्नस्तु सत्यकः । जयो भूरिश्रवा भूपौ सहदेवश्च सारणः ॥१६
हिरण्यगर्भ इत्याख्यः शम्बोऽक्षोभ्यो विदूरथः । भोजः सिंधुपतिर्वज्रो द्रुपदः पौण्ड्रभूपतिः ॥
नागदो नकुलो वृष्टिः कपिलः क्षेमधूर्तकः । महानेमिः पद्मरथोऽक्रूरो निषधदुर्मुखौ ॥१८
उन्मुखः कृतवर्मा च विराटश्चारुकृष्णकः । विजयो यवनो भानुः शिखण्डी सोमदत्तकः ॥१९
बाल्हीकप्रमुखाश्चेलुर्यादवानां महानृपाः । युद्धे संबद्धकक्षास्ते विपक्षक्षयकारकाः ॥२०
दुर्योधनं समाप्राप्य जरासंधवचोहरः । नत्वा प्रोवाच वागीशो यथादिष्टं सुचक्रिणा ॥२१
येनास्तो दुर्धरः कंसो बुधश्चक्रिसुतापतिः । चाणूरश्चूर्णितो येन मुष्टिघातेन सद्बली ॥२२
गोवर्धनं धराधीशं समुद्दध्रेऽहिमर्दकः । गोपालः स क्षितौ ख्यातमहावक्षाः सुरक्षकः ॥२३

श्रीकृष्णसे कहा, कि शत्रुओंको विध्वस्त करनेवाला महाक्षोभ जरासंधके मनमें उत्पन्न हुआ है ॥ १२ ॥ मुरारि–श्रीकृष्ण भी नेमिप्रभुके पास आकर उनके आगे खडे हो गये। और पूछा कि शत्रुका क्षय होकर क्या मुझे विजय प्राप्त होगा ? ॥ १३ ॥ जिनको देवोंके स्वामी इन्द्र नत होते हैं ऐसे नेमिप्रभुने 'ॐ' ऐसा शब्द उच्चारकर उत्तर दिया। अर्थात् तुझे विजयप्राप्ति होगी ऐसा उत्तर दिया। नेमिप्रभुका मंदहास्य, उनकी मनःप्रसन्नता इत्यादि कारणोंसे अपना विजय होगा ऐसा जानकर विष्णुराजा युद्धके लिये उद्युक्त हुआ ॥ १४ ॥ बलभद्र और श्रीकृष्ण, जयशील समुद्रविजय, वसुदेव, अनावृष्टि, धर्मराज, भीम, अर्जुन, रुक्मिणीका पुत्र प्रद्युम्न, धृष्टद्युम्न, सत्यक, जय और भूरिश्रवा ये दो राजा, सहदेव, सारण, हिरण्यगर्भ नामक राजा, शंब, अक्षोभ्य, विदूरथ, भोज, सिंधुपति, वज्र, द्रुपद, पौंड्रदेशका राजा, नागद, नकुल, वृष्टि, कपिल, क्षेमधूर्तक, महानेमि, पद्मरथ, अक्रूर, निषध, दुर्मुख, उन्मुख, कृतवर्मा, विराट, चारुकृष्ण, विजय, यवन, भानु, शिखंडी, सोमदत्तक, बाल्हीक इत्यादिक प्रमुख यादवपक्षीय महाराजा थे। वे सब युद्धके लिये कटिबद्ध हुए अर्थात् युद्धकी तैयारी उन्होंने खूब की। ये सब शत्रुका क्षय करनेवाले थे ॥ १५–२० ॥ जरासंधराजाने युद्धमें साहाय्य करनेके लिये तुम सेनाके साथ आओ ऐसा दूतके द्वारा दुर्योधनको कहा। दुर्योधन अपनी महासेनाके साथ आकर जरासंध राजाको मिला। जरासंधका वाक्चतुर दूत दुर्योधनके पास आकर नमस्कार कर उसे चक्रवर्तीने जैसा बोलनेका आदेश दिया था बोलने लगा। उसका कथन इस प्रकारका था–"जिसने चक्रवर्ति जरासंधकी कन्याका पति विद्वान् कंस मारा है, जिस उत्तम बलवान कृष्णने मुष्टिओंके प्रहारसे चाणूरको चूर्ण किया। कालियसर्पका मर्दन करनेवाले जिसने गोवर्धन नामक पर्वत अपने हाथसे उठाया था, जो गोपाल नामसे पृथ्वीमें प्रसिद्ध

ये यादवा रणे नष्टाः प्रविष्टा हुतभुक्चये । श्रूयन्ते तत्र जीवन्तः सुस्थिता जलधौ परे॥२४
प्राभृतीकृत्य रत्नानि वैश्येनैकेन चक्रभृत् । यादवानां महाराज्यप्रभावश्च निवेदितः ॥२५
जरासंधः समाकर्ण्य यादवान्पाण्डवान्स्थितान् । द्वारावत्यां महाक्रोधात्प्राहिणोत्प्रणिधीन्नृपान्॥
आकारिता नृपाः सर्वे प्रधानपुरुषोत्तमाः । संवत्सरेण चैकेन मिलितास्तत्र तेऽखिलाः ॥२७
दुर्योधन धराधीश प्रेषितोऽहं तवान्तिकम् । चक्रिणा कारणायैव गन्तुं कुरु मतिं विभो ॥२८
वाहिनीं विविधां वीरविशिष्टामिष्टचेष्टिताम् । सज्जीकृत्य समागच्छ स्वच्छो वत्स ममान्तिकम्॥
इति लब्धमहादेशो रोमाञ्चितशरीरकः । कौरवोऽपूजयद्दूतं वसनैर्भूषणैर्धनैः ॥३०
अचिन्तयच्चिरं चित्ते यदिष्टं मनसि स्थितम् । तदेव चक्रिणानीतमिदानीमिति कौरवः ॥३१
योद्धा दुर्योधनो धीमान्रणभेरीमदापयत् । सभ्यान्सभापतीन्क्षुब्धान्कुर्वन्तीं रणलालसान् ॥
मत्ता मतङ्गजाश्चेलुः कुथाच्छादितविग्रहाः । रथाः सारथिभिः शीघ्रं श्वेतवाजिविराजिताः ॥३३
चञ्चलास्तुरगाश्चेलुश्चलच्चामरचर्चिताः । पूर्णाः पदातयश्चापि परायुधसमुत्करैः ॥३४
चतुरङ्गबलेनामा समियाय स कौरवः । छादयन्निखिलं व्योम रेणुभिः सुखरोत्थितैः ॥३५

हुआ है, जिसका महावक्षःस्थल है और जो प्रजाओंकी सुरक्षा करता है। जो यादव युद्धमें नष्ट हुए और अग्निके समूहमें प्रविष्ट हुए ऐसा सुना जाता था वे समुद्रमें द्वारिकानगरीमें जीवन्त हैं अच्छी तरहसे राज्य कर रहे हैं। एक वैश्यने जरासिंधु राजाको रत्नोंकी भेट देकर यादवोंके विशाल राज्यका प्रभाव भी कहा। जरासंधने द्वारिकानगरीमें पाण्डव रहे हैं ऐसा सुनकर अतिशय क्रोधसे राजाओंके सन्निध गुप्तपुरुषोंको भेज दिया है। जो प्रधान और पुरुषश्रेष्ठ हैं ऐसे सब राजाओंको जरासंधने आमंत्रण दिया था और वे सब एक वर्षसे उसके यहां आकर मिले हैं। "हे दुर्योधनमहाराज, मुझे चक्रवर्तीने आपके पास बुलानेके लियेही भेज दिया है, इसलिये हे प्रभो राजगृहनगरको जानेके लिये आप निश्चय कीजिये"। "जिसमें विशिष्ट वीर हैं ऐसी मनोनुकूल आचरण करनेवाली नानाप्रकारकी सेना सज्ज करके मेरेपास अच्छे विचारवाले हे वत्स तुम आओ" ऐसी महाआज्ञा जिसको प्राप्त हुई है, जिसका शरीर रोमांचयुक्त हुआ है ऐसे कौरव दुर्योधनने वस्त्र, अलंकार और धनसे दूतका आदर किया ॥ २१–३० ॥

[दुर्योधनका जरासंधसे मिलना] राजा दुर्योधन बहुत देरतक विचार कर रहा, कि जो इच्छा मेरे मनमें थी, वही चक्रवर्तीने इस समय मेरे पास प्रकट की है। अर्थात् मेरे अनुकूलही चक्रवर्तीका यह आमंत्रण मुझे मिला है, ऐसा विचार करके विद्वान् योद्धा दुर्योधनने सभ्य और सभापतिको क्षुब्ध और रणाभिलाषी करनेवाली रणभेरी बजवाई ॥ ३१–३२ ॥ जिनका शरीर झूलोंसे आच्छादित हुआ है ऐसे मत्त हाथी चलने लगे। शुभ्र घोडोंसे विराजित और सारथियोंसे सहित ऐसे रथ शीघ्र चलने लगे। चंचल चामरोंसे सुशोभित घोडे चलने लगे। उत्कृष्ट आयुधोंके समूहसे

जरासंधं समापासौ वाहिन्या कौरवाग्रणीः । सुरापगाप्रवाहो वा सागरं सर्वतोऽधिकम् ॥३६
ततो मागधभूपेन मानितो बहुमानतः । कर्णेन कौरवः साकं भानुना किरणौघवत् ॥३७
पुनः संप्रेषयामास चक्री दूतं सुयादवान् । स दूतस्तत्र विज्ञप्तिमकरोदेत्य सत्वरम् ॥३८
आज्ञापयति चक्रीशो भवतो यादवान्प्रति । त्यक्त्वा देशं भवन्तोऽत्र कथं तस्थुर्महार्णवे ॥३९
समुद्रविजयो धीमान् वसुदेवोऽपि मत्प्रियः । वञ्चयित्वा निजात्मानं कथं प्रच्छन्नतां गतौ॥
यूयं सेवध्वमत्राहो विगर्वाः सर्वतश्च्युताः । चक्रीशचरणद्वन्द्वं सर्वसातप्रदायकम् ॥४१
श्रुत्वा बली बलः क्रुद्धो जगादेति वचोहरम् । कोऽन्यश्चक्री हरिं मुक्त्वा सेवको यस्य सागरः ॥
तच्छ्रुत्वा निजगादेति दूतो विस्फुरिताधरः । यद्भयेन भवन्तोऽत्र प्रविष्टाः सागरान्तरे ॥४३
तत्पादसेवने कोऽत्र दोषः स कथ्यतां मम । समागच्छति क्रुद्धोऽत्र धीरः श्रीमगधेश्वरः ॥
एकादशप्रमाख्याताक्षौहिणीभिः क्षितीश्वरः । भवद्गर्वापहारं स करिष्यति हरन्पदम् ॥४५
पाण्डवः प्रकटोऽवोचच्छ्रुत्वा तद्वचनं खरम् । निस्सार्यतामयं दूतो जल्पाकश्च यदृच्छया ॥४६
वचोहरो वचः श्रुत्वा तस्य क्रुद्धो विनिर्गतः । आचख्याविति चक्रेशं यादवानां महोन्नतिम् ॥

पूर्ण पैदल भी चलने लगा। इस प्रकार चतुरंग बलके साथ वह कौरव उत्तम घोडोंके खुरोंसे उत्पन्न हुई धूलीसे संपूण आकाश आच्छादित करता हुआ प्रयाण करने लगा। जैसे गंगानदीका प्रवाह सबसे अधिकतासे समुद्रके पास जाता है वैसे कौरवोंका अगुआ दुर्योधन सन्यके साथ जरासंधके पास आया। तदनंतर मगधराजा जरासिंधने सूर्यके साथ किरणसमूहके समान कर्णके साथ दुर्योधनका बहुमानसे आदर किया ॥ ३३–३७ ॥ पुनः चक्रवर्तीने यादवोंके पास अपना दूत भेज दिया। शीघ्रही वह दूत द्वारिकामें आकर उनको विज्ञप्ति करने लगा। "हे यादवो, आपको चक्री आज्ञा देता है कि, आप लोग देशको छोडकर इस महासमुद्रमें कैसे रहते हैं? धीमान् समुद्रविजय और मुझे प्रिय वसुदेव अपनी आत्माको वंचित करके कैसे गुप्त हो गये? सर्व धनादिकोंसे च्युत होकर गर्वरहित हुए आप संपूर्ण सुख देनेवाले चक्रवर्तीके चरणयुगलकी सेवा करें" ॥ ३८–४१ ॥ बलवान् बलभद्र क्रुद्ध होकर दूतको इस प्रकारसे बोलने लगा— "समुद्र जिसकी सेवा करता है ऐसे हरीको छोडकर अन्य कौन चक्रवर्ती है?" ॥ ४२ ॥ जिसका अधरोष्ठ स्फुरित हुआ है ऐसा वह दूत बलभद्रका भाषण सुनकर बोला—"जिसके भयसे आप समुद्रमें प्रविष्ट हुए ऐसे जरासंधकी सेवा करनेमें कौनसा दोष है? मुझे कहो। अब वह धीर मगधेश्वर यहां क्रुद्ध होकर आनेवाला है। ग्यारह अक्षौहिणीप्रमाण सेनाके साथ वह यहां आकर तुम्हारा निवासस्थान हरण करके तुम्हारा गर्व हरण करेगा ॥४३–४५॥ उस समय उसका वचन सुनकर युधिष्ठिरने तीव्र वचन कह दिया, कि मन चाहे कुत्सित भाषण करनेवाले इस दूतको यहांसे हटादो ॥ ४६ ॥ युधिष्ठिरका ऐसा भाषण सुनकर वह दूत क्रुद्ध होकर वहासे निकल गया। और जरासंधके पास जाकर यादवोंकी महोन्नति

देव ते मन्वते त्वां न पीतमद्या इवोन्नताः । सद्यस्त्वत्सेवनामुक्ता वियुक्ताः शुभकर्मणा ॥४८
श्रुत्वा वाक्यं धराधीशः क्रुद्धो निर्याणसंमुखः । दुन्दुभिं दापयामास कुर्वन्तं बधिरा दिशः ॥
खेचराः खेचरन्तश्च वव्रिरे विपुलोदयाः । विमानस्था नरेन्द्रं तं भास्वन्तमिव भानवः ॥५०
नरेन्द्राश्चन्द्रसंकाशाः कुमुदोल्लासकारिणः । सदा ग्रहसमुत्तुङ्गा व्योमेव नृपमन्दिरम् ॥५१
आजग्मुस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुखास्ते[1] नरेश्वराः । सुगम्भीरामृतोल्लासाः[2] सत्पथस्यावगाहिनः ॥
द्रोणेन भीष्मभूपेन कर्णेन नृपरुक्मिणा । अश्वत्थाम्ना सुशल्येन जयद्रथमहीभुजा ॥५३
कृपेण वृषसेनेन चित्रेण कृष्णवर्मणा । रुधिरेणेन्द्रसेनेन हेमप्रभेण भूभुजा ॥५४

उसने इसप्रकारसे कह दी। "हे देव वे यादव मद्यपायी मनुष्योंके समान होकर आपको नहीं मानते हैं। उन्नत हुए वे आपकी सेवासे तत्काल रहित हो गये हैं। और शुभकर्मसे रहित हुए हैं" ॥ ४७-४८ ॥

[युद्धके लिये जरासंधका प्रयाण] दूतका भाषण सुनकर प्रयाणके सम्मुख हुआ राजा क्रुद्ध हो गया। उसने नगारा बजवाया जिससे सर्व दिशायें बधिर हुईं। जैसे किरण सूर्यका आश्रय करते हैं वैसे विमानमें बैठे हुए आकाशमें विहार करनेवाले विपुल उन्नतिवाले उन विद्याधरोंने राजा जरासंधका आश्रय लिया ॥ ४९-५० ॥ वे राजालोग चन्द्रके समान थे। चंद्र कुमुदोल्लासकारी-रात्रिविकासी कमलोंको प्रफुल्ल करनेवाला होता है। सदाग्रहसमुत्तुङ्ग-हमेशा सर्व ग्रहोंमें श्रेष्ठ होता है और आकाशके आश्रयसे वह विहार करता है। राजा भी चन्द्रके समान कु-मुदोल्लासकारी पृथ्वीके आनन्दकी वृद्धि करनेवाले थे और सत्-आग्रह-समुत्तुंग उत्तम आग्रह-शुभकार्य करनेका आग्रह-निश्चय उससे उन्नत थे। ऐसे राजाओंने राजमंदिरका-जरासंधराजाका मन्दिरका आश्रय लिया। अपने तेजसे दिशाओंके मुखोंको व्याप्त करनेवाले वे राजा सत्पथका अवगाहन करनेवाले थे। गंभीर अमृतका उल्लास उनमें था अर्थात् गंभीर और अमृततुल्य शुभविचारोंका विकास उनमें हुआ था। चंद्र भी अपने प्रकाशसे सब दिशाओंके मुख उज्ज्वल करता है और-सत्पथका अवगाहन करता है अर्थात् प्रकाशमान तारादिकोंके मार्गरूप आकाशमें वह अवगाहन-प्रवेश करता है ॥ ५१-५२ ॥

[युद्धके लिये कुरुक्षेत्रमें जरासंधका आगमन] द्रोण, भीष्माचार्य, कर्ण, रुक्मिराजा, अश्वत्थामा, सुशल्य, जयद्रथराजा, कृप, वृषसेनराजा, चित्र, कृष्णवर्मा, रुधिरराजा, इंद्रसेन, हेमप्रभराजा, दुर्योधनराजा, दुःशासनराजा, दुर्मर्षण, दुर्धर्षण, कलिंगराजा ऐसे अन्य राजाओंके साथ अपने

---

१ प दिङ्मुखाः सर्वदा सदा, स दिङ्मुखाः सन्मुखाः सदा ।
२ प महाभीग, स गभीरामृतभ्युल्लासा ।

दुर्योधनधरेशेन दुःशासनमहीभुजा । दुर्मर्षणेन दुर्धर्षणेन कलिङ्गभूभुजा ॥५५
एवमन्यैर्महीपालैः कुरुक्षेत्रमगान्नृपः । कम्पयन्वसुधां सर्वां पादभारेण निर्भरम् ॥५६
तदाकर्ण्य नृपाः केचित्पूजयन्ति स्म देवताः । अहिंसादिव्रतान्यन्ये जगृहुर्गुरुसंनिधौ ॥५७
मुञ्चताशु तनुत्राणं गृहीतासिलतां शिताम् । आरोपयन्तु चापौघान् संनह्यन्तां च सद्गजाः ॥
विधीयन्तां सुगन्धर्वा बद्धपर्याणपावनाः । भुञ्जन्तां भोगवस्तूनि युज्यन्तां वाजिभी रथाः ॥
एवं केचिज्जगुर्भूपा भृत्यान्स्वस्वाधिकारिणः । शस्त्रौघग्रहणोद्युक्तान्कुर्वन्तो वित्तदायिनः ॥
केशवस्य तदा दूतः कर्णाभ्यर्णं समाप्य च । नत्वा तं भक्तितोऽवोचद्विज्ञाप्यं श्रूयतामिति ॥
यद्युक्तं तद्विधातव्यं कर्ण संकर्ण्यतां क्वचित् । भविता केशवश्चक्री नान्यथा जिनभाषितम् ॥
कुरुजाङ्गलराज्यं त्वं गृहाण सकलं नृप । पाण्डोः पुत्र पवित्रात्मन् कुन्त्यां च भवदुद्भवः ॥
भ्रातरः पाण्डवाः पञ्च तत्रागच्छ ततस्त्वकम् । निशम्येति जगौ कर्णो दूताकर्णय मद्वचः ॥
अधुना गमनं नैव युक्तं मे न्यायवेदिनः । न मुञ्चन्ति नृपा न्यायं रणे च समुपस्थिते ॥६५
रणे याते न मुञ्चन्ति मर्त्या भूपं सुसेवितम् । मुञ्चन्ति चेत्कदाचिच्चान्यायोऽयं नरनिन्दितः

पैरोंके आघातसे सर्व पृथ्वीको कंपित करता हुआ जरासंधराजा कुरुक्षेत्रको गया ॥ ५३-५६ ॥ जरासंधराजा कुरुक्षेत्रपर आया है ऐसा सुनकर कई राजा देवताओंकी पूजा करने लगे। अन्य राजाओंने गुरुके पास अहिंसादिव्रतोंका ग्रहण किया ॥ ५७ ॥ कई राजाओंने अपने अधिकारी भृत्योंको धन देकर शस्त्रसमूह ग्रहण करनेमें उद्युक्त किया और वे उनको इस प्रकार कहने लगे– " हे भृत्यों, तुम अपने शरीरके रक्षण की परवाह मत करो, शीघ्रही तीक्ष्ण तरवार अपने हाथमें लो। अपने धनुष्य दोरी चढाकर सज्ज करो। अपने हाथी झूल आदिकोंसे सज्ज करो। भोग–वस्तुओंका सेवन करो। रथोंको घोडे जोडकर सज्ज करो " ॥ ५८–६० ॥

[कृष्णके दूतका कर्णके साथ भाषण] उस समय केशवका दूत कर्णके पास आया और उसे भक्तिसे नमस्कार कर उसने कहा– " मेरी विज्ञप्ति सुनिए। हे कर्णराज, जो योग्य है वह कीजिए। हे कर्ण, सुनिए केशव चक्रवर्ती होगा ऐसा जिनेश्वरका वचन मिथ्या नहीं होगा हे कर्ण, आप सम्पूर्ण कुरुदेशका राज्य ग्रहण कीजिए। आप पाण्डुराजाके पुत्र हैं आपकी उत्पत्ति कुन्तीमातासे हुई है। आप पवित्रात्मा है। युधिष्ठिरादिक आपके पांच भाई हैं। इसलिये आप उनके पास आइए। " दूतका ऐसा भाषण सुनकर कर्णने कहा कि ' हे दूत मेरा भाषण तू सुन ' न्याय जाननेवाले मुझे इस समय पाण्डवोंके पास जाना योग्यही नहीं है। रण समीप आनेपर राजा न्यायका त्याग नहीं करते हैं और रण समाप्त होनेपर जिसकी उत्तम सेवा की है ऐसे अपने स्वामिरूप राजाको नहीं त्यागते हैं। यदि कदाचित् छोडेंगे तो जिसकी मानव निंदा करते हैं ऐसा यह अन्याय होगा। जब युद्ध समाप्त होगा तो मैं कौरवोंका राज्य पाण्डवोंको दूंगा इसलिये इस

निवृत्ते संगरे नूनं राज्यं दास्यामि कौरवम्। पाण्डवेभ्यः प्रचण्डेभ्य इति त्वं याहि संगरात्॥
इत्युक्तो निर्गतो दूतो जरासंधं सकौरवम्। गत्वा नत्वा स विज्ञप्तिं चर्करीति स्म चक्रिणम्॥
संधिं कुरु जरासंध यादवैः समहोदयैः। अन्यथाकर्णय त्वं हि जिनोक्तं सत्यसंयुतम्॥६९
केशवाद्भविता तेऽत्र पञ्चता परमाहवे। गाङ्गेयस्य गुरोर्ज्ञेयं खण्डनं तु शिखण्डिनः॥७०
धृष्टार्जुनेन धृष्टेन द्रोणस्य मरणं मतम्। युधिष्ठिरेण शल्यस्य भीमाद्दुर्योधनस्य च॥७१
जयद्रथस्य पार्थेशादभिमन्युकुमारतः। कुरुपुत्रान्मृतान्विद्धि विधिचेष्टा नृपेदृशी॥७२
इति यद्वदितं सद्यो मया निश्चिनु निश्चितम्। सत्यं न चान्यथाभावं भजते मगधाधिप॥७३
इत्युक्त्वा निर्गतस्तस्माद् ध्रुवं द्वारावतीं पुरीम्। गत्वा नत्वा हृषीकेशमवोचत वचोहरः॥७४
देव तद्वाहिनी प्राप्ता कुरुक्षेत्रं सुदारुणम्। कर्णो नायाति वैकुण्ठं संकटे समुपस्थितः॥७५
त्वया देव प्रगन्तव्यं कुरुक्षेत्रे विचित्रिते। शत्रुभिस्तत्र योद्धव्यं त्वया योधैर्महारणे॥७६
निशम्येति तदा विष्णू रणातोद्यप्रणोदितः। पाञ्चजन्यप्रणादेन ययौ धुन्वन्नभोऽङ्गणम्॥७७

समय तू रणसे अपने स्वामीके पास जा।" इस प्रकार दूतको कर्णने कहा। तदनंतर दूत कौरवोंके सहित जरासंधके पास गया। चक्रवर्तीको नमस्कार कर उसने विज्ञप्ति की–"हे राजन् जरासंध, आप महा उदयशाली यादवोंके साथ संधि कीजिए। यदि संधि करनेकी इच्छा न होगी तो सत्यसे संयुक्त जिनवचन सुनिए। "इस महायुद्धमें इस कुरुक्षेत्रमें केशवसे आपकी मृत्यु होगी। तथा शिखण्डीसे भीष्माचार्यकी मृत्यु होगी और धृष्ट धृष्टार्जुनसे द्रोणाचार्यका मरण होगा॥ ६९–७०॥ युधिष्ठिरके हाथसे शल्यका, भीमसे दुर्योधनका, जयद्रथका अर्जुनराजासे और अभिमन्युकुमारसे दुर्योधनादि-कौरवोंके पुत्रोंका मरण होगा ऐसा समझिए। हे राजा, ऐसी दैवचेष्टा है। हे राजा, मैंने जो इस समय कहा है, वह निश्चित सत्य है ऐसा निश्चय कीजिए। हे मगधाधिप, जो सत्य है वह अन्यथा-रूप कदापि नहीं होगा।" ऐसा बोलकर दूत वहांसे निकलकर द्वारावती नगरीको आया और विष्णुको नमस्कार कर उसने कहा–"हे देव श्रीकृष्ण, अतिशय भयंकर ऐसे कुरुक्षेत्रपर जरासंधका सैन्य आकर पहुंचा है, कर्णराजा युद्धस्थलमें पहुंचा है। वह अपने पास आना नहीं चाहता है। हे देव, विचित्र कुरुक्षेत्रमें आपको जाना होगा वहां शत्रुओंके साथ महारणमें योद्धाओंके द्वारा लडना होगा।" दूतका भाषण सुनकर रणवाद्योंसे प्रेरित विष्णु पांचजन्य नामक शंखके शब्दसे आकाशाङ्गणको कंपित करता हुआ प्रयाण करने लगा॥ ७१–७७॥ सुंदर जलको स्थल करता हुआ और स्थलको जल करता हुआ केशवका सैन्य प्रयाण करने लगा, तथा कुलपर्वतोंको पृथ्वीके

१ ग स्वविज्ञप्तिं।

स्थलीकुर्वञ्जलं रम्यं जलीकुर्वन्स्थलं बलम् । चचाल चालयन्कुल्यानचलानचलासमम् ॥७८
रणोत्थरेणुना व्याप्तं पुष्करं सूरहारिणा । चतुरङ्गबलेनापि भूतलं विपुलं खलु ॥७९
आतोद्यवृन्दनादेन दिशां वृन्दं विजृम्भितम् । दिग्गजाः सज्जिताः सर्वेऽभूवन्सगर्जबृंहितैः ॥
अगण्या ध्वजिनी धौर्या यादवीया महोदया । कुरुक्षेत्रबहिर्भागे स्थापिता यदुनायकैः ॥८१
तदा मागधसत्सैन्ये दुर्निमित्तानि निश्चितम् । अजायन्त जयाभावसूचकानि पुनः पुनः ॥
रवेर्ग्रहणमाभेजे व्योम्नि विश्वभयावहम् । वारिदैर्वारिधाराभिर्व्यानशे तस्य वाहिनी ॥८३
ध्वाङ्क्षा ध्वजेषु पूर्वाह्णे रटन्ति रविसम्मुखाः । गृध्राः क्रुद्धाः स्थिता दृष्टाश्छत्राद्युपरि दुर्धराः ॥
दुर्निमित्तानि संवीक्ष्य विचक्षणं क्षणावहम् । मन्त्रिणं प्राह दुर्योध्यो दुर्योधनमहीपतिः ॥८५
उन्मील्यन्ते महामन्त्रिन्दुर्निमित्तानि भूरिशः । सोऽवोचत्कुरुक्षेत्राख्यमिदं किं न श्रुतं त्वया
सर्वं गिलिष्यति क्षेत्रं तिमिंगिल इवोन्नतम् । पुनः स कौरवोऽभाणीन्मन्त्रिन्व्याहि ममेप्सितम्
विपक्षवाहिनी मन्त्रिन्कियन्मात्राभिमन्त्र्यते । योद्धारो युद्धसंनद्धाः कियन्तः सन्ति सत्वराः
स जगौ शृणु राजेन्द्र ये नृपा बलसंकुलाः । दाक्षिणात्याः क्षितीशाश्च तेऽभूवन्विष्णुसेवकाः ॥

साथ कम्पित करता हुआ वह सैन्य प्रयाण करने लगा। रणभूमिसे उठी हुई और सूर्यको आच्छादित करनेवाली धूलीसे आकाश व्याप्त हुआ तथा चतुरंग-सैन्यसे विशाल भूमितल निश्चयसे व्याप्त हुआ। वाद्यसमूहके नादसे दिशाओंका समूह बढ गया अर्थात् प्रतिध्वनियुक्त हो गया। सर्व दिग्गज मेघगर्जनाके समान गर्जनाओंसे सज्ज हुए ॥ ७८–८० ॥ यादवोंके नायकोंने–अर्थात् यादवराजाओंने महावैभवशाली, श्रेष्ठ और असंख्यात ऐसा अपना सैन्य कुरुक्षेत्रके बाह्यभागमें स्थापित किया ॥ ८१ ॥

[जरासंधके सैन्यमें दुर्निमित्त हुए।] उस समय मगधपति जरासंधके सैन्यमें निश्चित अनेक दुर्निमित्त हुए। वे सब जयके अभावको बार बार सूचित करते थे। आकाशमें सूर्यको विश्वको भय उत्पन्न करनेवाला ग्रहण हुआ। मेघोंने जलधाराओंसे जरासंधकी संपूर्ण सेना व्याप्त की। प्रातःकालमें दिनके पूर्व-भागमें कौवे ध्वजपर बैठकर सूर्यके प्रति अपना मुख कर शब्द करने लगे। दुर्धर और क्रोधयुक्त ऐसे गीधपक्षी छत्रादिकोंपर बैठे हुए दीखने लगे ॥ ८२–८४ ॥ जिसके साथ युद्ध करना कठिन है ऐसे दुर्योधनराजाने ऐसे दुर्निमित्त देखकर चतुर और आनंदयुक्त मंत्रीको बुलाकर हे महामंत्रिन्, ये अनेक दुर्निमित्त क्यों प्रगट हो रहे है? ऐसा प्रश्न पूछा। मंत्रीने कहा कि "हे राजन्, क्या आपने नहीं सुना है? यह उन्नत कुरुक्षेत्र 'तिमिंगिल' नामक मत्स्यके समान सबको गिलनेवाला है। पुनः दुर्योधन राजाने 'हे मंत्रिन्, मैं जो चाहता हूं वह बताओ। हे मंत्रिन्, शत्रुकी सेना कितनी है? युद्ध करनेवाले सज्जन योद्धा कितने हैं ॥ ८५–८८ ॥ मन्त्री कहने लगा कि "हे राजेन्द्र आप सुने, बलयुक्त जो दक्षिणदेशोंके राजा हैं वे सब विष्णुके सेवक हुए हैं। अथवा रणसे

अथवा बहुभिः साध्यं नृपैः किं रणनाशिभिः । धनंजयेन चैकेन पूर्यतां पूर्यतामिति ॥९०
चूर्यन्ते येन पार्थेन सकरा रणचञ्चवः । न शक्नुवन्ति तं विष्णुं वारयितुं सुरा नराः ॥९१
बलः प्रविपुलो बाल्यान्मुशलेन हलेन च । दस्यूदराणि दीप्रेण दारयत्येव दुर्धरः ॥९२
प्रज्ञप्तिप्रमुखा विद्याः समर्थाः शत्रुशातने । सिद्धा यस्य स्मरः केन वार्यते स रणाङ्गणे ॥९३
पावनिः पावनो भूमौ पातयन्योऽरिसंहतिम् । तं निवारयितुं शक्यः कोऽस्ति सद्गदयाङ्कितम्
एवमन्ये महीपालास्तद्बले बलशालिनः । खेचराः संचरन्त्यत्र संख्यातीता महाहवे ॥९५
स सप्ताक्षौहिणीयुक्तो विष्णुरास्ते निरस्तद्विट् । निशम्येति स चक्रेशमगदीत्कौरवाग्रणीः ॥
श्रुत्वेति च जरासंधो मदान्धः क्रूरमानसः । जगाद गरुडान्तिके हि फणी फूत्कुरुते कियत् ॥
भासते किं तमोभारो विभाकरसुभानुतः । पुरस्तान्मम भूपालास्तथा तिष्ठन्ति किं पुनः ॥९८
भणित्वेति त्रिखण्डेशः खण्डयन्खण्डिताशयान् । अखण्डचण्डकोदण्डप्रचण्डो रणमाययौ ॥
आतोद्यैश्च दिशां नाथान्नर्तयन्तो नभोऽङ्गणम् । सुच्छत्रैश्छादयन्तस्ते नृपा योद्धुं समुद्ययुः ॥

पलायन करनेवाले अनेक राजाओंसे क्या साध्य होनेवाला है ? अकेले धनंजयसेही सब कुछ कार्य सिद्ध होगा। अकेला अर्जुन रणचतुर अनेक उत्तम योद्धाओंको चूर्ण करेगा, विष्णुराजाको तो देव और मनुष्य कोईभी रोकनेमें समर्थ नहीं है। बालकालसेही बलभद्र प्रविपुल–महासामर्थ्यवान् और दुर्धर है। वह तेजस्वी मुशल और हल नामक आयुधोंसे शत्रुओंके पेट फाड डालता है ॥८९–९२॥ शत्रुका संहार करनेमें समर्थ ऐसी प्रज्ञप्ति आदि प्रमुख विद्यायें जिसे सिद्ध हुई हैं वह प्रद्युम्नकुमार–रणांगणमें किससे रोका जायगा ? जो इस भूतलपर शत्रुओंके समूहको मार डालता है और जो उत्तम गदासे युक्त है ऐसे पवित्र भीमको कौन रोक सकता है ? ॥९३-९४॥ इस प्रकार श्रीविष्णुके बलमें अनेक बलशाली राजा हैं, तथा अनेक विद्याधर इस महायुद्धमें विहार करते हैं ॥९५॥ जिसने शत्रुओंको नष्ट किया है ऐसा विष्णु सात अक्षौहिणी सैन्यसे युक्त है" ऐसी मंत्रीकी कही हुई बातें सुनकर कौरवोंके अग्रणी दुर्योधनने जरासंधको सब बातें कहीं। तब मदान्ध और दुष्टचित्त जरासन्ध सुनकर कहने लगा, गरुडके आगे–सर्प कितना फूत्कार कर सकेगा ? क्या सूर्यकी किरणोंके आगे अंधकारका समूह शोभा धारण कर सकता है ? वैसे मेरे सामने ये राजा क्या खडे हो सकते हैं ? ऐसा कहकर जिनके अभिप्राय विफल किये हैं ऐसों का खण्डन करनेवाला, अखण्ड भयंकर धनुष्यसे प्रचण्ड दीखनेवाला, त्रिखण्डका स्वामी जरासंध युद्धस्थलमें आया ॥ ९६–९९ ॥ वाद्योंसे दिक्पालकोंको आकाशमें नचानेवाले और उत्तम छत्रोंसे आकाशको आच्छादित करनेवाले राजा युद्ध के लिये उद्युक्त हुए ॥ १०० ॥ सैन्यसे ऊपर उडी हुई धूलीके समूहसे आकाशभाग मानो पृथ्वी बन गया और उत्तम छत्र और उत्तम ध्वजोंसे आच्छादित सूर्यभी राहु जैसा दीखने लगा। अंधकारके समान धूलीसे उस समय रणांगण शीघ्र व्याप्त हुआ। वाद्योंकी ध्वनिके मिषसे युक्त सैनिकोंको

अपृथ्वीयत द्योभागः सैन्योत्थरेणुसंचयैः । अराहूयत सूर्योऽपि स्थगितश्छत्रसद्ध्वजैः ॥
रेणुना तमसेवाशु तदा व्याप्तं रणाङ्गणम् । तूर्यनादच्छलात्सैन्यानीत्युवाच महाहवः ॥१०२
यात यात रणात्सैन्या भवतां तूर्णमारकात् । इत्येवं वारिता योधा युद्धार्थे धृतिमाययुः ॥
जरासंधः स्वसैन्येऽस्मिंश्चक्रव्यूहमकारयत् । तार्क्ष्यध्वजः स्वसेनायां तार्क्ष्यव्यूहमरीरचत् ॥
घोरान्धकारिते सैन्ये तयो रेणुभिरुत्थितैः । कोकयुग्मानि सूर्यास्तशङ्कया नीडमाश्रयन् ॥
ध्वाङ्क्षारयो निशां मत्वा पूत्कुर्वाणा भटस्वरान् । उत्तस्थुरनुकुर्वन्त इव घस्रेऽपि संगरम् ॥
निष्कास्यासीन्स्वयं घ्नन्ति सुभटाः सुभटान्रणे । कुन्ताग्रेण च कृन्तन्ति मूर्ध्नो वल्लीगणानिव
गर्जन्तो गर्जघातेन घ्नन्ति केचिद् घनानिव । वायवोऽत्र विपक्षाणां हृदयानि मदावहाः ॥
छित्त्वा कुम्भस्थलान्याशु कुम्भिनां ककुभः पराः । कुङ्कुमेनेव कुर्वन्ति रक्तास्तद्रक्तधारया ॥
तदा चक्रिबलेनाशु संभग्नं वैष्णवं बलम् । यथा जलप्रवाहेण ज्वलनो ज्वालयन्परान् ॥११०
तदा शम्बुकुमारोऽपि धीरयन्धारयन्निजान् । भटान्परान्विभज्याशु रणं कर्तुं समुद्यतः ॥१११
क्षेमविद्धः सुसंनद्धः खेचरः शम्बभूभुजा । युध्यमानो रथत्यक्तः कृतो भूमौ पलायितः ॥
तावदन्यः समुत्तस्थे खगो विद्याविशारदः । योद्धुं शम्बेन निस्त्रिंशैर्वारितोऽपि पलायितः ॥

मानो इस प्रकार बोलने लगा। हे सैनिकगण आपको शीघ्र मारनेवाले इस रणाङ्गणसे आप शीघ्र निकल जाओ ऐसा कहकर मानो निषेधे गये योद्धाओंने युद्धके लिये संतोष–धैर्य धारण किया ॥ १०१–१०३ ॥ जरासन्धने अपने सैन्यमें चक्रव्यूहकी रचना की। और गरुडध्वज श्रीकृष्णने अपनी सेनामें गरुडव्यूहकी रचना की। ऊपर उठी हुई धूलिसे उन दोनों राजाओंका सैन्य घोर अंधकारसे व्याप्त होनेपर सूर्यके अस्त की शंकासे कोकपक्षिओंके युगलने अपने घोसलोंका आश्रय लिया। घूघूपक्षी दिनको–रात्री समझकर पूत्कार करनेवाले मानो–भटोंके स्वरोंका अनुकरण करते हुए दिनमें भी इतस्ततः उडने लगे ॥ १०४–१०६ ॥ कोषसे तरवार बाहर निकाल कर शूर पुरुष–सुभटोंको स्वयं मारने लगे। तथा–भालेकी नोकसे वल्लिसमूहके समान शत्रुके मस्तक काटने लगे। गर्जना करनेवाले कई उन्मत्त भट वायु जैसे मेघोंको नष्ट करता है वैसे गर्जनाके आघातसे शत्रुओंके हृदय मारते थे। हाथियोंके गण्डस्थल शीघ्र छेदकर उनकी रक्तकी धारासे कोई भट पुरुष उत्तम दिशाओंको मानो केशरसे रंगाते हैं ॥ १०७-१०९ ॥ उस समय चक्रवर्ती–जरासंधके सैन्यने विष्णुका बल भग्न कर दिया। जैसे वस्तुओंको जलानेवाला अग्नि जलप्रवाहसे शांत किया जाता है ॥ ११० ॥ उस समय अपने वीरोंको धीर देनेवाला और धारण करनेवाला शंबुकुमार भी शत्रु-सैन्यको भग्न कर युद्ध करनेके लिये उद्युक्त हुआ। शंबुकुमारके साथ क्षेमविद्ध विद्याधर लडनेके लिये उद्युक्त हुआ। लडते समय शंबुकुमारने उसे रथहीन कर दिया तब वह भूमिपर आकर भाग गया। इतनेमें विद्याचतुर दूसरा विद्याधर शंबके साथ लडनेके लिये उद्युक्त हुआ परंतु वह भी शंबुकुमारसे

कालसंवरभूमीशस्तदायाद्धृतकङ्कट । विपक्षान्विमुखान्संख्ये कुर्वन्कौतुकसंगतः ॥११४
तदा शम्बं निवार्याशु प्रद्युम्नो द्युम्नदीधितिः । मेघौघ इव संवर्षयामास शरधारया ॥११५
बभाण खचरं मारः पितृतुल्यो भवानिह । योद्धुं युक्तं त्वया साकं नातस्तेन निवर्त्यताम् ॥
नावाच्यं मार सोऽवोचत्स्वामिकार्यसुकारिणः । सेवकाः सन्ति तेन त्वं संधानं धन्वनः कुरु ॥
तदा मारो विमोच्याशु प्रज्ञप्तिं कालसंवरम् । विबन्ध्य स्वरथे चक्रे युध्यमानः परैर्भटैः ॥
शल्यखेटस्तदायासीत्प्रद्युम्नं योद्धुमुद्धतम् । मारः शरसमूहेन तस्य चिच्छेद स्यन्दनम् ॥
खेटोऽन्यरथमारुह्य तेन चक्रे महारणम् । शिशुपालानुजः प्राप्तः कर्तुं मारणसंगरम् ॥१२०
मारो हतस्तु बाणेन यथा तेन विमूर्च्छितः । रथं बभञ्ज कामस्य स शरैः शत्रुभेदकैः ॥१२१
सारथिर्भयसंत्रस्तस्तदा तस्थौ समुत्थितः । कामः स्वसारथिं स्वस्थो जगाद गुरुसद्गुणः ॥
इत्थं कृते रणे क्षत्त्रो लज्यते सुरसंसदि । मर्त्येषु खेचरेशेषु लज्यते पाण्डवेष्वपि ॥१२३

रोका जानेसे भाग गया। जिसने कवच धारण किया है और जो युद्धमें शत्रुओंको युद्धविमुख करनेवाला कौतुकयुक्त कालसंवर राजा लडनेके लिये आया तब जिसकी देहकान्ति सोनेकीसी है ऐसे प्रद्युम्नने शंबुकुमारको हटाया और जैसे मेघसमूह शरधारा–जलधाराओंकी वृष्टि करता है वैसे शरधाराकी वृष्टि प्रद्युम्न कालसंवरके ऊपर करने लगा ॥ १११–११५ ॥

[कालसंवरसे प्रद्युम्नका युद्ध] उस समय प्रद्युम्नने कालसंवर विद्याधरको कहा कि " इस जगतमें आप मेरे पिताके तुल्य है आपके साथ लडना योग्य नहीं है इस लिये आप युद्धसे लौट जाइये " " हे मारकुमार, तुझे ऐसा बोलना योग्य नहीं है। हम स्वामिका कार्य करनेवाले सेवक हैं इस लिये तूं अपना धनुष्य सज्ज करके संधान कर। तब मारने प्रज्ञप्तिविद्या कालसंवरके ऊपर छोडकर उसे बांधकर अपने रथमें लिया। इसके अनंतर दूसरे भटोंके साथ युद्ध करनेवाला शल्य नामका विद्याधर उद्धत प्रद्युम्नके साथ लडनेके लिये आया। प्रद्युम्नकुमारने बाणसमूहसे शल्यका रथ तोड डाला तब वह विद्याधर अन्य रथपर आरूढ होकर उसके साथ महा–रण करने लगा ॥ ११६–१२० ॥ शिशुपालका छोटा भाई प्रद्युम्नके साथ युद्ध करनेके लिये आया। उसने बाणके द्वारा प्रद्युम्नके ऊपर आघात किया जिससे वह मूर्च्छित हो गया। उसने शत्रुओंको विदारण करनेवाले बाणोंसे प्रद्युम्नका रथ भग्न किया। सारथि अतिशय डर गया। उस समय प्रद्युम्नकुमार ऊठकर बैठा और सारथिको कहने लगा कि युद्धमें यदि ऐसा किया जायगा (डर कर भागा जायगा) तो हे सारथि देवोंकी सभामें अपनेको लज्जित होना पडेगा। मनुष्योंमें, विद्याधरोंमें और पाण्डवोंमें भी लज्जित होना पडेगा। विशेषतः दशार्होंमें अर्थात् यादववंशीय राजाओंमें और बलभद्र तथा कृष्ण इनके आगे लज्जित होना पडेगा। दुःख देनेवाले इस अपवित्र देहसे फिर क्या साध्य होगा? फिर सरस आहारसे पुष्ट शरीरमें क्या गुण रहेगा " ऐसा बोलकर प्रद्युम्न अन्य रथमें बैठकर युद्धमें

दशार्हेषु विशेषेण लज्यते बलकृष्णयोः । अनेनाशुचिदेहेन किं साध्यं दुःखकारिणा ॥१२४
सरसाहारतः पुष्टे शरीरे को गुणो भवेत् । इत्युक्त्वान्यरथे स्थित्वा मन्मथः संस्थितो रणे ॥
पुनस्तौ संगरे लग्नौ योद्धुं संग्रामकोविदौ । वीक्ष्य क्षिप्तमना विष्णुरन्तरेऽस्थात्तयोरपि ॥१२६
तदा शल्यः समायासीत्खगः श्रीमगधेशिनः । ब्रुवन्निति हनिष्यामि शरैः शत्रून्समुद्धतान् ॥
तदा खगेन संछन्नं निखिलं व्योम निश्चलम् । केनापि खलु नो दृष्टा रथसारथिकेशवाः ॥१२८
शरपञ्जरमध्यस्था इव जीवितसंशयाः । नरैर्दृष्टाः क्षणे तस्मिन्कश्चिदायान्नरः परः ॥१२९
पथकल्पनया क्लृप्तो रुधिरारुणसत्तनुः । कम्पमानो नरोऽवोचत्केशवं कलितं नृपैः ॥१३०
मुरारे किं वृथा युद्धं कुरुषे पाण्डवा हताः । दशार्हाश्चक्रिनाथेन बलभद्रो हतो रणे ॥१३१
अन्येऽपि रणशौण्डीरा जरासंधेन ते हताः । द्वारावती गृहीता च वैरिणा तव निश्चितम् ॥
द्वारावतीपुरीस्थोऽपि सत्सिन्धुविजयो महान् । रणातिथ्येऽरिभिस्तूर्णं प्रेषितो यममन्दिरम्॥
वृथा किं म्रियसे नाथ रणाद्याहि सुखेच्छया । मायानरवचः श्रुत्वा क्रुद्धः प्रोवाच माधवः ॥
मयि जीवति को हन्तुं क्षमो रे दुष्ट यादवान् । इति तद्वचसा मायानरो नष्टः प्रबुद्धधीः ॥

आ गया। युद्धचतुर वे दोनों पुनः रणभूमिमें लडने लगे। इतनेमें क्षुब्ध चित्त होकर कृष्ण उन दोनोंके बीचमें आये ॥ १२१–१२६ ॥ तब मगधस्वामी–जरासंधके पक्षका शल्य विद्याधर "मैं उद्धत शत्रुओंको बाणोंसे मारुंगा" ऐसा कहता हुआ रणभूमिमें आया। उस विद्याधरने संपूर्ण आकाश निश्चल बाणोंसे व्याप्त किया। किसीने भी रथ, सारथि और श्रीकृष्ण कुछ क्षणतक नहीं देखे। बाणसमूहके बीचमें वे ढक गये थे, मानो उनके जीवितमें संशय था। कुछ क्षणोंके अनंतर मनुष्योंने उनको देखा। उस समय कोई दूसरा आदमी श्रीकृष्णके पास आया। रक्तसे जिसका शरीर लाल दीखता है, जो कँप रहा है, पथकल्पनासे यानी मायाकल्पनासे जो रचा है ऐसा पुरुष राजाओंसे युक्त ऐसे केशवको बोलने लगा।

[कृष्णने निर्भर्त्सना करनेसे मायापुरुषका और राक्षसका पलायन] "हे श्रीकृष्ण आप व्यर्थ क्यों युद्ध कर रहे हैं? क्यों कि पाण्डव तो मारे गये हैं। समुद्रविजयादिदशार्ह चक्रनाथ–जरासंधने नष्ट किये हैं। बलभद्र युद्धमें मारा गया। अन्यभी रणचतुर योद्धा जरासंधने मारे हैं। आपकी द्वारावती नगरी शत्रुने निश्चयसे ग्रहण की है। द्वारावती नगरीमें रहनेवाले महान् सिन्धु-विजय–समुद्रविजय भी रणके अतिथिसत्कारमें शत्रुओंने शीघ्र यममंदिरको भेज दिये हैं। हे नाथ आप व्यर्थ क्यों मरते हैं। सुखकी इच्छासे आप रणसे चले जाइए।" इस प्रकार मायापुरुषका वचन सुनकर क्रुद्ध होकर श्रीकृष्ण कहने लगे– "हे दुष्ट मेरे जीते रहते हुए यादवोंका घात करनेके

---

१ ब केशवः।

स कोदण्डं करे कृत्वा केशवो वैरिणोऽचलत् । तावन्निशाचरो भूत्वा कश्चिदायाद्भयप्रदः ॥
किं युध्यसे त्वमत्राहो वसुदेवो नभोऽङ्गणे । पतितस्तं विना खेटाश्चेलुः संगरभूमिषु ॥१३७
इत्युक्त्वा वृक्षविशिखमक्षिपत्स जनार्दनम् । विष्णुना शिखिबाणेन भिद्यते स्म द्रुमाशुगः ॥
खेचरेण क्षणात्क्षिप्तः क्ष्माभृद्बाणो दृषत्प्रदः । हरिणाशनिबाणेन स रुद्धः प्रपलायितः ॥
तदा नरैः सुरैः सर्वैः शंसितो विष्टरश्रवाः । पुनः सोऽपि हरिं नत्वा बभाण भुवि संभ्रमन् ॥
द्वितीयोऽयं नरेन्द्रात्र खगो यावच्छिनत्ति न । ध्वजं छत्रं रथं वापि तावत्त्वं याहि संगरात् ॥
निष्कारणं कथं कृष्ण करिष्यसि महारणम् । जरासंधशिरः शीघ्रं लुनीहि निजचक्रतः ॥
यशोऽर्जय जगत्यत्र वृथा किं लोकमारणैः । निशम्येति जगादैवं माधवः क्रुद्धमानसः॥१४३
वराको निर्जितो यावन्मया नायं महारणे । जीयते किं जरासंधस्तावत्किं भुज्यते मही ॥
इत्युक्त्वा हरिणा खेटः शल्येन नन्दकासिना । द्विधाकृत्य हतो भूमौ पपात प्राणवर्जितः ॥
लक्षितं जयलक्ष्म्या तं पुष्पवृष्टिं ववर्ष च । सुरसंघः स्वविघ्नौघघातकं मधुसूदनम् ॥१४६

लिये कौन समर्थ है।" ऐसे श्रीकृष्णके वचनसे वह दुष्ट बुद्धिवाला मायापुरुष वहांसे भाग गया ॥ १२७-१३५ ॥ वह केशव हाथमें धनुष्य लेकर वैरियोंसे लडनेको गया। इतनेमें कोई भयप्रद राक्षसका रूप धारण कर कृष्णके समीप आकर उसे कहने लगा- हे कृष्ण तू क्यों यहां युद्ध कर रहा है? उधर विद्याधरके क्षेत्रमें आकाशांगणके युद्धमें वसुदेव पराजित हुए हैं और उनके विना विद्याधर युद्ध-भूमिमें चले गये हैं।" ऐसा बोलकर उसने कृष्णके ऊपर वृक्षबाण छोडा, विष्णुने उसके ऊपर अग्निबाण छोडा जिससे वह वृक्षबाण छिन्न हुआ। उस विद्याधरने पत्थरोंको गिरानेवाला पर्वतबाण तत्काल कृष्णपर छोडा और कृष्णने वज्रबाणसे उसे जब रोक लिया तब वह वहांसे भाग गया। उस समय सर्व मनुष्य और विद्याधरोंने कृष्णकी प्रशंसा की। पुनः वही निशाचर कृष्णके पास आया और नमस्कार कर कहने लगा कि "हे कृष्णराजेन्द्र, इस दूसरे विद्याधरने जबतक आपका ध्वज, छत्र अथवा रथ नहीं तोडा है तबतक आप युद्धसे निकल जाइए, इसके साथ व्यर्थ क्यों महायुद्ध कर रहे हैं। आप जरासंधके पास जाकर उसका मस्तक अपने चक्रसे तोड डालिए तथा इस जगतमें यशःप्राप्ति कीजिए। व्यर्थ अन्यलोगों को मारनेसे क्या फायदा है?" उस विद्याधरका भाषण सुनकर माधवका मन क्रुद्ध हुआ और वह कहने लगा कि, 'जबतक मैं इस तुच्छ विद्याधरको इस महारणमें नहीं जीत सकूंगा तबतक जरासंध मुझसे कैसा जीता जायेगा? और तबतक पृथ्वीका उपभोग मैं कैसा ले सकता हूं।" ऐसा बोलकर शल्यविद्याधरके साथ राक्षसरूप धारण करनेवाले विद्याधरके भी नन्दक तरवारीसे दो टुकडे कर श्रीकृष्णने उनको मार दिया। वह प्राणरहित होकर भूमिपर गिर पडा। अपने विघ्नोंके समूहका नाश करनेवाले और जयलक्ष्मीसे शोभनेवाले मधुसूदन-श्रीकृष्णपर देवोंने पुष्पवृष्टि की ॥ १३६-१४६ ॥ श्रीकृष्णने

हरिणाथ बलः प्रोक्तश्चक्रव्यूहस्तु दुर्धरः । भिद्यते समुपायेन केन संचिन्त्यतां लघु ॥१४७
विष्णुस्ततस्त्रिभिः शूरैर्गत्वा संगरसंगरी । चक्रव्यूहं बभञ्जाशु दम्भोलिः पर्वतं यथा ॥१४८
जरासंधस्तदा क्रुद्धो भटान्दुर्योधनादिकान् । त्रीन्परान्प्रेषयामास शत्रुसंघातहानये ॥१४९
पार्थो दुर्योधनेनामा रथनेमिर्महाहवे । विरूप्येन च सेनान्या युयुधे धर्मनन्दनः ॥१५०
परस्परं तदा लग्ना भटा हुंकारकारिणः । चूर्णयन्तो गजानश्वान्रथान्युयुधिरे चिरम् ॥१५१
शूरास्तदा सुसंनद्धाः कातराश्च पलायिताः । नारदाद्याः सुरौघेण जहर्षुर्नटनोद्यताः ॥१५२
दुर्योधनो जगौ पार्थ त्वं वह्नौ भस्मितो मया । वृथा वहसि किं गर्वं निर्लज्जः किं नु सज्जितः ॥
धनुरास्फालयामास पार्थः श्रुत्वा स्फुरद्गुणम् । गर्जन् प्रलयकालस्य मेघौघ इव विघ्नहृत् ॥
आच्छाद्य शरसंघातैः कौरवं स धनंजयः । चिच्छेद तद्धनुर्मध्ये जालंधरः समाययौ ॥१५५
विषमः समरस्तेन चक्रे पार्थेन दुर्धरः । तदा पार्थमुवाचेति कुमारो रूप्यसंज्ञकः ॥१५६
सुलक्षणान्यायपक्षं कुरुषे किं वृथा यतः । परकन्याहरो विष्णुः परद्रव्याभिलाषुकः ॥१५७

बलभद्रसे कहा कि चक्रव्यूह कठिण है किस उपायसे उसका भेद होगा? इसका जल्दी आप विचार कीजिये। युद्धकी प्रतिज्ञा करनेवाला विष्णु अपने साथ तीन शूर योद्धोंको लेकर शत्रुके चक्रव्यूहमें गया और उसने पर्वतको वज्र जैसे फोडता है वैसे चक्रव्यूहको फोड दिया ॥ १४७-१४८ ॥ उससमय जरासंध अतिशय क्रुद्ध हुआ और दुर्योधनादिक तीन महाशूरोंको शत्रुसमूहका नाश करनेके लिये उसने भेज दिया ॥ १४९ ॥ उस महायुद्धमें अर्जुन दुर्योधनके साथ, रथनेमि विरूप्यके साथ और धर्मराज सेनापतिके साथ लडने लगे । हुंकार करनेवाले शूरयोद्धा तब अन्योन्यसे लडने लगे । हाथी, घोडे और रथोंका चूर्ण करनेवाले उन योद्धाओंने दीर्घकालतक युद्ध किया । जो शूर थे वे इस युद्धमें स्थिर रहे, परंतु भीरुलोगोंने पलायन किया । नृत्य करनेके लिये उद्युक्त हुए नारदादिक देव-समूहके साथ हर्षित हुए ॥ १५०-१५२ ॥ दुर्योधनने अर्जुनको कहा कि, " हे पार्थ, मैंने तुझे अग्निमें भस्म किया था । तूं व्यर्थ क्यों गर्व धारण कर रहा है । तुझे लज्जा आनी चाहिये । मेरे आगे क्यों सज्ज होकर खडा हुआ है" ॥ १५३ ॥ दुर्योधनका वचन सुनकर प्रलयकालके मेघसमूहके समान गर्जना करनेवाला तथा विघ्नहारक ऐसे अर्जुनने जिसकी दोरी चमकने लगी है ऐसे धनुष्यका टंकार शब्द किया। धनंजयने बाणोंकी वृष्टिसे दुर्योधनको आच्छादित कर उसके धनुष्यकी डोरी तोड डाली । उन दोनोंके बीचमें जालंधर राजा लडने के लिये आया । उसके साथ अर्जुनने कठिन युद्ध किया । उससमय अर्जुनको विरूप्यकुमारने कहा कि " हे सुलक्षण, तूने अन्यायका पक्ष व्यर्थ क्यों धारण किया हैं? क्या कि, विष्णु दूसरोंकी कन्या हरण करनेवाला और परधनका अभिलाषी है।" उसका भाषण सुनकर भयंकर आकृति जिसकी हुई है ऐसा अर्जुन बोलने लगा कि, " मैं अब तुझे यहां न्याय और अन्याय दिखाता हूं तूं सज्ज हो जा"। ऐसा बोलकर जैसे धर्मसे

तच्छ्रुत्वा शक्रसूनुस्तु बभाषे भीषणाकृतिः । दर्शयामीह सज्जस्त्वं न्यायान्यायं भवाधुना ॥
इत्युक्त्वा शरसंघातैश्चूर्णितः खचरः क्षणात् । धनंजयेन रूप्याख्यो विघ्नौघ इव श्रेयसा ॥
युधिष्ठिरः स्थिरो युद्धे श्वेतवाजी जवोन्नतः । रथनेमी रथारूढो रेजुरेते जयोद्धुराः ॥१६०
चक्रव्यूहं निकृत्याशु त्रयस्ते यशसावृताः । यादवीयं बलं प्रापुः प्रीणिताखिलसज्जनाः ॥१६१
हिरण्यनाभसेनान्यं सच्छूरं रुधिरात्मजम् । जरासंधस्य सद्युद्धे स जघान युधिष्ठिरः ॥१६२
अघ्नोऽपि तद्वधं वीक्ष्य संखिन्नः पश्चिमार्णवम् । इव स्नातुं जगामाशु शान्तये श्रमशालिनाम् ॥
त्रियामायां यमैर्ये च गृहीता विकटा भटाः । तेषां यथायथं कृत्वा संस्थिता नृपनन्दनाः ॥
जरासंधो बभाणेदं मन्त्रिणो मन्त्रकोविदान् । सेनापतिपदे कोऽपि स्थापनीयः परः प्रभुः ॥
इत्याकर्ण्य तदा सर्वैर्मेचकः स्थापितो मुदा । तत्पदे कौरवस्तावत्प्राहिणोच्च वचोहरम् ॥१६६
स गत्वा पाण्डवान्नत्वा विज्ञप्तिमकरोदिति । अद्य यावन्मया नानादुःखानि विहितानि वः ॥
स्मृत्वा तानि कथं युद्धे नागम्यते त्वरान्वितैः ।
जीवतोऽतो न मुञ्चामि युष्माञ्शंसितशासनान् ॥१६८
निशम्येति जगुः पाण्डुपुत्राः प्रत्युत्तरक्षमाः । यातुं यमपुरं तूर्णमुद्यतोऽस्ति भवत्प्रभुः ॥१६९

विघ्नसमूह चूर्ण किया जाता है वैसे बाणसमूहोंसे रूप्यनामक विद्याधरको तत्काल धनंजयने चूर्ण किया ॥ १५४–१५९ ॥ युद्धमें स्थिर रहनेवाले युधिष्ठिर, जिसके रथके घोडे शुभ्र है ऐसा वेगसे उन्नति धारण करनेवाला अर्जुन और रथपर आरूढ हुआ रथनेमि ये तीनों शूर योद्धा जयोत्कर्षसे शोभने लगे । जिन्होंने सर्व सज्जनोंको संतुष्ट किया है और यशसे आच्छादित किया है ऐसे वे तीनों योद्धा चक्रव्यूहको तोडकर तत्काल यादवोंके सैन्यमें प्राप्त हुए ॥१६०–१६१॥ जो अतिशय शूर है ऐसा रुधिरराजाका पुत्र जो कि जरासंध राजाका सेनापति था ऐसे हिरण्यनाभ राजाको युधिष्ठिरने युद्धमें मार दिया । सूर्यभी उसका वध देखकर खिन्न हुआ और पश्चिम समुद्रमें मानो स्नान करनेके लिये तथा श्रमयुक्त लोगोंको शान्ति देनेके लिये पश्चिम समुद्रको गया ॥ १६२–१६३ ॥ जो शूर योद्धा यमके द्वारा ग्रहण किये गये उनका रात्रीमें यथायोग्य विधि करके राजा लोग स्वस्थ हुए ॥ १६४ ॥ मंत्रके ज्ञाता मंत्रियोंको जरासंधने यह कहा, कि सेनापतिके स्थानपर कोई दूसरा उत्तम प्रभावशाली राजा स्थापन करना चाहिये । यह सुनकर सर्व मंत्रियोंने आनंदसे 'मेचक नामक राजा हिरण्यनाभिराजाके स्थानपर स्थापित किया ॥ १६५–१६६ ॥ इधर दुर्योधनने एक दूत भेजा। वह जाकर पाण्डवोंको नमस्कार कर इस प्रकारसे विज्ञप्ति करने लगा । "हे पाण्डवों, आजतक मैंने आपको अनेक दुःख दिये हैं उनका स्मरण कर आप त्वरासे मेरे साथ युद्ध करनेके लिये क्यों नहीं आते हैं? अब जिनका शासन प्रशंसायुक्त है ऐसे आपको मैं जीवंत नहीं छोडूंगा' यह भाषण सुनकर प्रत्युत्तर देनेमें समर्थ पाण्डव बोले "हे दूत, तेरा स्वामी यमपुरको जानेके लिये

प्रेषयामि जरासंधसार्धं युष्मान्यमालयम् । स श्रुत्वेति त्वरा गत्वा धार्तराष्ट्रान्न्यवेदयत् ॥
तत्सर्वं वीक्षितुं ब्रध्न इत्यगादुदयाचलम् । प्राहतातोद्यानि संनेदुर्भटानामुद्यमाय च ॥१७१
रथस्थः पार्थ इत्याख्यत्सारथे सरथान्नृपान् । ब्रुहि ब्रूते स्म सोऽश्वादिकेतुकीर्तनपूर्वकम् ॥
एष तालध्वजो गङ्गासुतः श्यामतुरंगमः । शोणसप्तिरयं द्रोणो बली वार्णनिकेतनः[1] ॥१७३
सैष दुर्योधनो धन्वी नीलाश्वो नागकेतनः । दुःशासनोऽयमानायकेतुः पीततुरङ्गमः ॥१७४
द्रोणसूनुः कियाहाश्वोऽश्वत्थामायं हरिध्वजः । शल्यः सीताध्वजः सोऽयमश्वैर्बन्धूकबन्धुरैः ॥
कोलकेतुरयं भाति लोहिताश्वो जयद्रथः । एवं ज्ञात्वान्यभूपालानुत्तस्थे योद्धुमर्जुनः ॥१७६
तदा गजघटालग्ना भटाः सुघटनावहाः । संजाघटन्ति संग्रामं स्वामिकार्यपरायणाः ॥१७७
गाङ्गेयः सुगुणं चापे धृत्वा दधाव धीरधीः । अभिमन्युमभिप्रेत्याभिमानरसमुद्वहन् ॥१७८
गाङ्गेयस्य सुबाणेन स चिच्छेद महाध्वजम् । प्रथमं कौरवाणां हि सुमहत्त्वमिवोन्नतम् ॥१७९

शीघ्र उतावला हुआ है । उसको मैं जरासंधके साथ यमालयको भेज दूंगा । ” ऐसा भाषण सुनकर उस दूतने त्वरासे जाकर कौरवोंको कह दिया ॥ १६७–१७० ॥ होनेवाला सर्व व्यापार देखनेके लिये सूर्य पुनः उदयाचलपर आया । वीरोंको उद्यमयुक्त करनेके लिये प्रातःकालके मंगल वाद्य बजने लगे ॥ १७१ ॥ रथमें बैठे हुए अर्जुनने कहा, कि हे सारथे, तू रथयुक्त राजाओंका वर्णन कर । तब सारथीने अश्व, ध्वज इत्यादिकोंके स्वरूप वर्णनपूर्वक राजाओंका वर्णन किया । वह इस प्रकारका था–तालवृक्ष जिसके ध्वजका चिह्न है ऐसे भीष्माचार्यका रथ काले घोडेका है । ये बलवान् द्रोणाचार्य लाल घोडेवाले रथमें आरुढ हुए हैं तथा इनका ध्वज कलश चिह्नसे युक्त है । यह वह दुर्योधन है जिसके अश्व नीले हैं और ध्वज सर्पचिह्नसे युक्त है । इस दुःशासनका ध्वज जालचिह्नसे युक्त है और इसके घोडे पीले रंगके हैं। यह द्रोणपुत्र अश्वत्थामा है,इसके रथके घोडे शुभ्र हैं और इसका ध्वज वानर चिह्नका है। यह शल्यराजा सीता ध्वजवाला है अर्थात् हलकी लकीरें इसके ध्वजपर हैं।और इसके रथके घोडे बन्धूकपुष्पके समान सुंदर अर्थात् लाल रंगके हैं। यह जयद्रथ राजा सुअरकी ध्वजा धारण करता है और इसके रथके घोडे लाल रंगके हैं। इसप्रकारसे राजाओंके चिह्न जानकर अर्जुन युद्धके लिये उद्यक्त हुआ । उससमय अपने स्वामीके कार्यमें तत्पर रहनेवाले हाथीके समूह युद्धमें संलग्न हुए । योद्धाभी उत्तम रचनावाले थे वे सब संग्राममें आये ॥ १७२–१७७ ॥ अभिमानरसको धारण करनेवाले धीर बुद्धिमान् गांगेय–भीष्माचार्य उत्तम डोरीसे युक्त धनुष्यको धारण कर अभिमन्यु के प्रति दौडकर आये । अभिमन्युने गांगेयका महाध्वज अपने उत्तम बाणसे तोड डाला वह महाध्वज कौरवोंका मानो प्राथमिक उन्नत महत्त्व था । दस बाणोंसे भीष्माचार्यने अभिमन्युका ध्वज छिन्न

---

१ प वार्णनिकेतनः, स ब बली कलशकेतनः ।

दशबाणैस्तु गाङ्गेयः कुमारध्वजमाच्छिनत् । सौभद्रः सारथिं वाहौ गाङ्गेयस्याच्छिनद्ध्वजम् ॥
वदन्ति स्म तदा वाणीं विदोऽयमभिमन्युकः । साक्षात्पार्थ इवोत्तस्थे सुस्थिरः प्रथितो भुवि ॥
अनेनैकेन बाणेन वैरिवृन्दं निराकृतम् । निरङ्कुशेन नागेन यथा सर्वस्वहारिणा ॥१८२
पार्थसारथिना शल्य उत्तरेण रणान्तरे । समाहूतो रणार्थं हि कुन्तासिधन्वधारकः ॥१८३
शल्येन तेन क्रुद्धेन जघ्ने चोत्तरसारथिः । प्रचण्डो भुजदण्डो वा पार्थस्य पृथुविग्रहः ॥१८४
वैराटभूपतेः सूनुः श्वेतनामा दधाव च । शल्यस्य ध्वजछत्रास्त्रवृन्दं संपातयद्भुवि ॥१८५
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो गाङ्गेयः संचचाल च । श्वेतेन संनिरुद्धः स धावमानो यदृच्छया ॥१८६
छादयामास गाङ्गेयं शरैर्वैराटनन्दनः । अदृश्यतां परं नीतो मेघौघ इव भास्करम् ॥१८७
तदा दुर्योधनः प्राप्तो मार्यतां मार्यतामयम् । वदन्पार्थेन संरुद्धो वारिणेव धनंजयः ॥१८८
धनंजयः करे कृत्वा गाण्डीवं दशविंशतिं । चत्वारिंशच्च सद्बाणान्विससर्ज स कौरवम् ॥१८९
तावन्योन्यं रणे लग्नौ पार्थदुर्योधनौ नृपौ । कृपाणकुन्तघातेन प्रहरन्तौ महोद्धतौ ॥१९०
वैराटनन्दनस्तावद्युद्ध्यमानो महायुधि । पितामहस्य चिच्छेद चापं छत्रं ध्वजं तथा ॥१९१

किया । जब सुभद्रापुत्र अभिमन्युने भीष्माचार्यका सारथि, दो घोडे, और ध्वज तोड दिये तब विद्वान् लोग बोलने लगे की यह अभिमन्यु साक्षात् अर्जुनके समान प्रगट हुआ है । यह अतिशय स्थिर और भूतलमें प्रसिद्ध है । जैसे अंकुशको नहीं माननेवाला हाथी सर्व वस्तुओंको नष्ट करता है, वैसे इसने एक बाणहीसे शत्रुसमूह नष्ट किया है ॥ १७८-१८२ ॥ जो पूर्वयुद्धमें अर्जुनका सारथि था ऐसे उत्तरकुमारने कुन्त, तरवार और धनुष्यधारक शल्यको रणमें युद्ध करनेके लिये बुलाया । तब शल्यने क्रुद्ध होकर उत्तरकुमार सारथि मारा । जिसका देह बडा है ऐसा वह उत्तरकुमार मानो अर्जुनके प्रचण्ड भुजदण्डके समान था । तब विराटराजाका पुत्र जिसका नाम श्वेतकुमार था वह शल्यके प्रति दौडा और उसने उसका ध्वज, छत्र और अस्त्रसमूह भूमिपर गिराया ॥ १८३-१८५ ॥ इसी समय कुपित हुए भीष्माचार्य युद्धके लिये निकले । वे यथेच्छ जा रहे थे बीचमें श्वेतकुमारने उनको रोका । उसने भीष्माचार्यको बाणसमूहसे आच्छादित किया । मेघसमूह जैसे सूर्यको आच्छादित करते हैं वैसे उसने बाणोंसे भीष्माचार्यको आच्छादित किया ॥ १८६-१८७ ॥

[अर्जुन और दुर्योधनका पुनः युद्ध] उस समय इस श्वेतकुमार को मारो मारो ऐसा कहता हुआ दुर्योधन जब वहां आया तब पानी जैसे अग्निको रोकता है वैसे धनंजयने दुर्योधनको रोक लिया । धनंजयने अपने हाथमें गाण्डीव धनुष्य लेकर दस, वीस, चालीस ऐसे बाण दुर्योधनपर छोडे । वे अर्जुन और दुर्योधन दोनों राजा आपसमें लडने लगे । वे दोनो उद्धत राजा भाला और तरवार के आघातसे प्रहार करने लगे ॥१८८-१९०॥ उस महायुद्धमें लडनेवाले वैराटनन्दनने-श्वेतकुमारने पितामहका धनुष्य, छत्र और ध्वज छिन्न भिन्न किया तथा उनके वक्षःस्थलपर तरवारका आघात

उरःस्थले जघानासौ गाङ्गेयं करवालतः । तदा हाहारवो जज्ञे कौरवाणां बलेऽखिले ॥१९२
तदा दिव्यस्वरो जज्ञे गगने च सुधाशिनाम् । कातरो भव माद्यात्र गाङ्गेय भज धीरताम् ॥
हन्तव्या आहवे वीरास्त्वया चतुरचेतसा । निशम्येति पुनः सोऽभूत्सावधानः स्थिरायुधः ॥
लक्षबाणान्स संधाय मुक्त्वा श्वेतमपातयत् । पतितः सोऽपि संस्मृत्य जिनांश्चिरो दिवं गतः॥
तदा निशीथिनी जज्ञे योद्धूणां कृपयेव वै । वारयन्ती रणं नृणां प्रहारान्शोधयन्त्यपि॥१९६
वैजयन्त्यौ यथास्थानं तदा जग्मतुरुन्नते । वैराटोऽथ वधं श्रुत्वारोदीत्पुत्रस्य चेत्यलम् ॥१९७
पुत्र हा संगरे नापि केन त्वं परिरक्षितः । हा धर्मपुत्र धर्मात्मंस्त्वया किमु न रक्षितः ॥
भीममूर्ते महाभीम धनंजय धनंजय । भवद्भिर्दृश्यमानोऽयं कथं नीतोऽथ वैरिणा ॥१९९
तावद्युधिष्ठिरो धीमानभिधत्ते स्म दारुणम् । घस्रे सप्तदशे शल्यं मारयिष्यामि निश्चितम् ॥
न हन्मि यदि तत्रेमं ज्वलिष्यामि तदानले । झम्पां दत्त्वा जनैः प्रेक्ष्यमाणो मानविवर्जितः ॥
शिखण्डी खण्डितारातिर्जगौ वै नवमे दिने । पितामहं हनिष्यामि संगरे संगरो मम ॥२०२
अन्यथाहं च होष्यामि हुताशे स्वं पुनर्जगौ । धृष्टद्युम्नो हनिष्यामि सेनान्यं संगरोद्यतम् ॥

किया । उससमय कौरवोंके संपूर्ण सैन्यमें हाहाकार मच गया । तथा आकाशमें देवोंकी दिव्य-ध्वनि इस प्रकार सुनी गयी " हे गांगेय, आप नहीं डरिए । आज यहां आप धैर्य धारण कीजिए । चतुरचित्तवाले आप युद्धमें शत्रुओंको मारिए । " ऐसी ध्वनि सुनकर भीष्माचार्य सावधान हुए और उन्होंने अपने हाथमें स्थिरतासे आयुध धारण किया । उन्होंने धनुष्य पर लक्षबाण जोडकर श्वेतकुमारपर छोडे और श्वेतको जमीनपर गिराया । गिरे हुए उसने जिनश्वरोंका मनमें स्मरण करके स्वर्ग में प्रयाण किया ॥१९१-१९५॥ उस समय योधाओंके ऊपर मानो कृपा करनेके लिये रात्री आगई । मनुष्योंके युद्धको रोकती हुई और प्रहारोंका अन्वेषण करती हुई वह रात्री आगई । उस समय अपने अपने स्थानपर दोनों पक्षोंकी उन्नतिवाली सेनायें गई ॥ १९६-१९७ ॥ वैराट राजा पुत्रका वध सुनकर अतिशय रोने लगा । " हे पुत्र, युद्धमें तेरी किसीनेभी रक्षा नहीं की । हाय हे धर्मपुत्र आप तो धर्मात्मा हैं, तोभी आपने उसका रक्षण नहीं किया । हे भीममूर्ते महाभीम, और धनंजय--धन तथा जयसे युक्त हे धनंजय, आप उसकी देखभाल करते थे, तोभी शत्रु उसे कैसे ले गया"॥१९८-१९९॥ उससमय धीमान् युधिष्ठिर राजाने 'मैं सतरहवे दिन शल्यको निश्चयसे मारुंगा । यदि मैं उसदिन उसे नहीं मारुंगा तो अग्निमें जल जाऊंगा । अर्थात् अभिमान छोडकर लोगोंके समक्ष अग्निमें कूदकर प्राणत्याग करूंगा । " ऐसी प्रतिज्ञा की । जिसने शत्रुओंको खण्डित किया है ऐसे शिखण्डीने कहा कि की मैं नौवे दिन पितामहको मारुंगा यह मेरी प्रतिज्ञा है । यदि मैं नहीं मार सकूंगा तो अग्निमें अपने को जला डालूंगा । धृष्टद्युम्नने कहा कि ' युद्धमें लडने के लिये उद्यत सेनापति को मारुंगा, ऐसी प्रतिज्ञा इन राजाओंने की ।" ॥ २००-२०३ ॥ इतने में रात्रीका अंधकार

तावता च हरचैश्रमुदियाय दिवाकरः । तमः संवीक्षितुं वृत्तं जनानामिव जन्यके ॥२०४
सैन्ययोस्तु सुयोद्धारो युद्धमारेभिरे तदा । परस्परं शरीराणि खण्डयन्तो महायुधैः ॥२०५
गजा गजै रथास्तूर्णं रथैः सद्वाजिनो हयैः । पत्तयः पत्तिभिः सार्धं संक्रुद्धा योद्धुमुद्धताः ॥
धनंजयो दधावाशु क्षणे तस्मिन्सुलक्षणान् । सुभटान्मत्तमातङ्गान्केसरीव जयं गतः ॥२०७
संख्ये संख्यातिगैर्बाणैरवृणोत्तं पितामहः । आगच्छन्तं प्ररुन्धानो यथा कूलं सरिज्जलम् ॥
सुरापगासुतेनापि बाणैश्छन्नं नभःस्थलम् । पार्थेनैकेन तत्सर्वं निन्ये निष्फलतां क्षणात् ॥
शुण्डालानां महाशुण्डा घोटकानां महोन्नतान् । चरणान्रथचक्राणि पार्थश्चिच्छेद सच्छरैः ॥
स शूराणां च वर्माणि मर्माणीव सुनर्मणा । पार्थश्चिच्छेद दिव्येन गाण्डीवेन जयार्थिना ॥
दुर्योधनो जगौ क्रोधाद्गङ्गापुत्रं विनिन्दयन् । तात तात किमारब्धं रणं पराजयप्रदम् ॥२१२
तथा कुरु यथा पार्थः स्थातुं शक्नोति नो रणे । अरौ प्राप्ते रणे तात को निश्चिन्तो भवेद्भटः ॥
श्रुत्वेति जाह्नवीपुत्रः पार्थेन योद्धुमुद्यतः । तदा नरो जजल्पेदं शृणु शीघ्रं पितामह ॥२१४

नष्ट करनेवाला सूर्य उदित हुआ मानो युद्धमें लोगोंका वृत्त देखने के लिये वह उदित हुआ ॥ २०४ ॥ दोनो सैन्योंमें अन्योन्य के शरीर बडे आयुधोंसे खंडित करते हुए योद्धालोग उस समय युद्ध करने लगे । उद्धत--उन्मत्त हाथी हाथियोंके साथ, रथ रथोंके साथ, उत्तम घोडे घोडोंके साथ और पैदल पैदलोंके साथ क्रुद्ध होकर लडने लगे ॥ २०५-२०६ ॥ जयको प्राप्त हुए सिंहके समान अर्जुनने उस समय उत्तम लक्षणों से युक्त हाथियोंके समान सुभटोंके ऊपर आक्रमण किया । जैसे नदीका किनारा उसके पानी को रोकता है, वैसे युद्धमें प्रवेश किये हुए अर्जुनको भीष्माचार्यने असंख्यात बाणों से रोका । सुरापगासुतने - गांगेयने बाणों से आकाश को आच्छादित किया था तो भी अकेले अर्जुनने वह सब निष्फल किया । अर्जुनने अपने उत्तम बाणोंके द्वारा हाथियोंकी सूंडों को, तथा घोडोंके बडे पैरोंको और रथके चक्रों को छेद डाला । नर्म भाषणसे--उपहासके वचनोंसे जैसे मर्मोंको छिन्न किया जाता है वैसे जयको चाहनेवाले अर्जुनने दिव्य गाण्डीव धनुष्यके द्वारा शूर पुरुषोंके कवच छिन्न कर दिये ॥ २०७-२११ ॥

[अर्जुन और भीष्म, द्रोण और धृष्टद्युम्न का अन्योन्य युद्ध] दुर्योधन गंगापुत्रकी निंदा करता हुआ कोपसे ऐसा कहने लगा-- " हे तात आप पराजय देनेवाला यह युद्ध क्यों कर रहे हैं । अर्थात् आप यदि उत्साहसे अर्जुनके साथ नहीं लडेंगे तो पराजय ही प्राप्त होगा । इसलिये आप अर्जुनसे ऐसा युद्ध कीजिए, कि, वह रणमें नहीं ठहर सके । शत्रु युद्धमें आनेपर कौन योद्धा निश्चिन्त होगा ? दुर्योधनका भाषण सुनकर अर्जुनके साथ जाह्नवीपुत्र--भीष्माचार्य लडनेके लिये उद्युक्त हुआ । उस समय ' हे पितामह आप शीघ्र सुनिए, मेरा सर्व शस्त्रसमूह समाप्त हुआ है, तो भी मुझे उसकी कुछ चिन्ता नहीं है, परंतु मैं आपको यमका अतिथि बनाकर यमंमंदिर को भेज

आयोधनमिदं सर्वं शून्यं भूयात्तथापि च । त्वां नेष्यामि यमागारं प्राघूर्णीकृत्य तस्य वै ॥
इत्युक्त्वा तौ समालग्नौ रणं कर्तुं कृपोज्झितौ । तदा द्रोणः समायासीद् धृष्टद्युम्नं महाहवे ॥
द्रोणेन च क्षुरप्रेण जह्रेऽस्य स्यन्दनध्वजः । धृष्टार्जुनः पुनस्तस्य जहार च्छत्रसद्ध्वजान् ॥
शक्तिबाणं मुमोचाशु द्रोणो विद्रावितापरः । धृष्टार्जुनः क्षणार्धेन तं चिच्छेद सुतीक्ष्णधीः ॥
धृष्टार्जुनेन निर्मुक्ता लोहयष्टिः प्रहृष्टिहृत् । छिन्नान्तरे च तातेन रणे ज्ञातेन सज्जनैः ॥२१९
द्रोणस्तां वञ्चयित्वाशु गृहीत्वा वसुनन्दकम् । करे च दक्षिणे खड्गं चचाल प्रधनोद्यतः ॥
एतस्मिन्नन्तरे भीमो गदाहस्तो जघान तम् । कलिङ्गतनयं न्यायनिपुणं च मदोद्धतम् ॥
कौरवांस्त्रासयन्काष्ठाः कष्टं खलु समागतान् । कुर्वन्रेमे रणे शत्रून्दलयन्स बलोद्धतः ॥२२२
गदाघातेन संचूर्ण्य रथान्सप्तशतप्रमान् । वैरिभिः पूरयामास भीमो भूमिबलीनिव ॥२२३
सहस्रैकं गजानां च चूरयित्वा रणोद्धतः । जयलक्ष्मीं समापाशु गदया पावनिः परः ॥२२४
एतस्मिन्नन्तरे धृष्टार्जुनस्यासिं समुज्ज्वलम् । द्रोणश्चिच्छेद छेदज्ञः कुठार इव शाखिनम् ॥
अभिमन्युकुमारेण छिन्नो द्रोणस्य सद्रथः । दुर्योधनसुतश्चायाल्लक्ष्मणाख्यः सुलक्षणः ॥२२६
स चिच्छेद सुभद्रायास्तनुजस्य शरासनम् । अन्यं चापं समादायावारयत्स परान् रिपून् ॥

दूंगा" ऐसा अर्जुनने भाषण किया। ऐसा बोलकर दयासे रहित होकर वे दोनों युद्धके लिये उद्युक्त हुए। उस समय उस महायुद्धमें द्रोण धृष्टद्युम्नके साथ लडनेके लिये आये। द्रोणाचार्यने बाणके द्वारा धृष्टद्युम्नके रथका ध्वज हरण किया और धृष्टार्जुनने पुनः उनके छत्र और उत्तम ध्वज हरण किये। शत्रुओंको भगानेवाले द्रोणाचार्यने शक्तिबाण शीघ्र छोडा। अतिशय तीक्ष्णबुद्धिवाले धृष्टार्जुनने क्षणार्द्धहीमें उसे तोड दिया। हर्षकी विनाशक लोहयष्टि धृष्टार्जुनने द्रोणाचार्यके ऊपर फेक दी। सज्जन जिनको जानते हैं ऐसे द्रोणाचार्यने बीचहीमें उसे तोड दिया। इस प्रकार द्रोणाचार्यने उस को वंचित कर दाहिने हाथ में वसुनंदक नामका खड्ग लिया और लडनेमें तत्पर वे वहांसे आगे चले गये ॥ २१२–२२० ॥ इस समय जिसके हाथ में गदा है ऐसे भीमने न्याय–निपुण और मदोद्धत कलिंगदेशके राजाके पुत्र को प्राणरहित किया। बलसे उद्धत ऐसा भीम रणमें आये हुए कौरवोंको परिमित कष्टसे पीडित कर शत्रुओंको दलित करता हुआ रणाङ्गण में युद्धक्रीडा करने लगा। गदाके आघातसे सातसौ रथोंका चूर्ण करके भीमने वैरियोंसे भूमि-बलिकी मानो पूर्णता की। अतिशय रणोद्धत भीमने एक हजार हाथियोंको चूर्णकर शीघ्र जयलक्ष्मी को प्राप्त किया। जैसे कुठार वृक्ष को तोडता है, वसे छेदको जाननेवाले द्रोणाचार्यने धृष्टार्जुनकी चमकनेवाली तरवार बीचहीमें तोड दी ॥ २२१–२२५ ॥ अभिमन्युकुमारने द्रोणाचार्यका उत्तम रथ छिन्न किया। उस समय दुर्योधनका पुत्र सुलक्षणी लक्ष्मण युद्धके लिये आया। उसने सुभद्रा-सुत अभिमन्युका धनुष्य तोड दिया। तब अभिमन्युने दूसरा धनुष्य ग्रहण करके अन्य शत्रुओंको

सर्वैः संवेष्टितः पार्थपुत्रः प्रौढमना महान् । पञ्चास्यविक्रमः सिंहो यथा मत्तमहागजैः ॥२२८
पार्थो गाण्डीवचापेन वेष्टयित्वा रिपून्स्थितान् । स्वपुत्रं वारयामास वायुर्वा घनसंचयान् ॥
युध्यमानेषु योधेष्वेवं चायाप्नवमो दिनः । तदा शिखण्डिना युद्धे समाहूतः पितामहः॥२३०
तदाभाणीन्महापार्थः प्रचण्डं च शिखण्डिनम् । गृहाण मे परं बाणं वैरिविध्वंसनक्षमम् ॥
येन बाणेन संदग्धं मया खण्डवनं पुरा । तेनाग्राहि तदा बाणः स चण्डेन शिखण्डिना ॥
वैवस्वत इवोत्तस्थे शिखण्डी खण्डयन्रिपून् । तदा परस्परं लग्नौ श्रीगाङ्गेयशिखण्डिनौ ॥२३३
एकेनापि तयोर्मध्ये जीयते न परस्परम् । युध्यमानौ च तौ देवैः सिंहाविव सुशंसितौ ॥२३४
निर्भर्त्सितः शिखण्डी तु धृष्टद्युम्नेन धीमता । भो शिखण्डिन्मया दृष्ट आहवो विहितस्त्वया ॥
अद्यापि गुरुर्गाङ्गेयो रणे गर्जति मेघवत् । अद्यापि स्यन्दनं तस्य पताका च विजृम्भते॥२३६
पार्थः पूरयतेऽद्यापि पृष्टिं पिष्टमहारिपुः । वैराटस्तव साहाय्यं विदधाति महारणे ॥२३७
निशम्येति शिखण्डी तु तर्जयन्धन्विदुर्धरम् । गाङ्गेयमाजुहावेति धनुःसंधानमावहन्॥२३८
तावद्द्रुपदपुत्रेण बाणैः सहस्रसंख्यकैः । छाद्यते स्म सुगाङ्गेयो मेघैर्वा व्योममण्डलम् ॥२३९

घेर लिया । प्रौढ मनवाला, महान्, सिंहसमान–पराक्रमी अभिमन्यु मत्तमहागजोंके समान सर्व शत्रुओंके द्वारा घेरा गया । जैसे वायु मेघसमूहको तितर बितर कर देता है, वैसे अपने पुत्रको वेष्टित करके खडे हुए शत्रुओं को अर्जुनने गांडीव–धनुष्यके द्वारा हटाया और अपने पुत्र को उसने उनके वेष्टणसे मुक्त किया । इस प्रकार शूर वीर लडते लडते नौवा दिन प्राप्त हुआ । उस दिन शिखंडीने पितामहको युद्धमें युद्धके लिये बुलाया । तब महापार्थने–अर्जुनने प्रचण्ड शिखण्डीको कहा, कि शत्रुओंको नष्ट करनेमें समर्थ ऐसा मेरा बाण मैं तुझे देता हूं, जिस बाणसे मैंने पूर्व में खाण्डववन दग्ध किया था। उस चंड–शिखंडीने उसे ग्रहण किया और यमके समान – शत्रुओंको नष्ट करना प्रारंभ किया । उससमय श्रीगांगेय और शिखंडी अन्योन्य लडने लगे ॥ २२६–२३३ ॥ उन दोनोंमें कोई भी अन्योन्यको नहीं जीतता था । लडनेवाले वे दोनों देवोंके द्वारा सिंहके समान प्रशंसित हुए ॥ २३४ ॥ बुद्धिमान धृष्टद्युम्नने शिखण्डीकी इसप्रकार निर्भर्त्सना की, " हे शिखण्डिन् भीष्मके साथ तेरी लडाई हो रही है यह मैंने देखा परंतु अद्यापि गुरु भीष्माचार्य रणमें मेघवत् गर्जना कर रहे हैं । अद्यापि उनका रथ और उनकी पताका जैसे की तैसी है अर्थात् तूने उनका रथ चूर्णित नहीं किया और पताकाभी छिन्न भिन्न नहीं की है । जिसने महाशत्रुओंका पेषण किया है ऐसा अर्जुन अद्यापि तेरे पीछे रहकर तुझे साहाय्य दे रहा है तथा वैराट भी तुझे इस महारणमें साहाय्य दे रहा है । " ॥२३५–२३७॥ धृष्टद्युम्नका भाषण सुनकर धनुर्धारियोंमें दुर्धर ऐसे भीष्माचार्य का तिरस्कार करते हुए शिखण्डीने धनुष्य जोडकर आह्वान दिया । उतनेमें उस द्रुपदपुत्रने जैसे आकाश हजारों मेघोंसे आच्छा-

कौरवीयं बलं तावन्मुञ्चति स्म शिखण्डिनि। शरास्ते तस्य लगन्ति न भीता इव संगरे॥
धृष्टद्युम्नविनिर्मुक्ताः शरा वज्रमुखास्तदा। वज्राणीव सुलग्नन्ति नगे विपक्षवक्षसि॥२४१
ये गाङ्गेयविनिर्मुक्ताः पुष्पायन्ते शिखण्डिनः। शरा लग्नाः सुखाय स्युः पुण्यात्सर्वं सुखाय वै॥
यं यं चापं समादत्ते गाङ्गेयो गुणसंगतम्। तं तं छिनत्ति बाणेन धृष्टद्युम्नः समुद्धतः॥२४३
पुण्यक्षये च क्षीयन्ते समक्षं सर्वजन्मिनः। धनानीव महायूंषि पुत्रमित्रसुखानि च॥२४४
द्रौपदस्तु सुबाणेन गाङ्गेयकवचं हठात्। बिभेद वनयूथं वा प्रावृण्मेघः सुधारया॥२४५
पातयामास भूपीठे सारथिं च रथध्वजम्। गाङ्गेयस्य हयौ हर्षाच्छरैः श्रीद्रुपदात्मजः॥
पितामहः सुनिष्कम्पो रथातीतो दधाव च। कृपाणं स्वकरे कृत्वा कुन्तितुं द्रुपदात्मजम्॥
कृपाणो द्रौपदेनैव तस्य च्छिन्नो महाशरैः। हृदयं च क्षुरप्रेण हतं हन्त हतात्मना॥२४८
पितामहः पपाताशु पृथिव्यां पावनस्तदा। गतं जीवितमालोक्य स संन्यासं समग्रहीत्॥
स दध्रे परमं धैर्यं धर्मध्यानपरायणः। सुपरीक्ष्यामनुप्रेक्षां ररक्ष निजचेतसि॥२५०

दित किया जाता है वैसे हजारों बाणोंसे भीष्माचार्यको आच्छादित किया। उस समय कौरव-सैन्यने शिखण्डीके ऊपर बाण छोडे परंतु वे उसको स्पर्श नहीं करते थे मानो वे युद्धमें उससे डरते थे। धृष्टद्युम्नके द्वारा छोडे गये वज्रमुखी बाण पर्वतके समान शत्रुओंके वक्षःस्थलपर वज्रके समान लगते थे। जो बाण भीष्माचार्यके द्वारा छोडे जाते थे वे शिखण्डीको लगकर पुष्पके समान सुखदायक हो जाते थे। योग्य ही है, कि पुण्यसे सर्व बातें सुखके लिये होती हैं॥ २३८–२४२॥

[भीष्माचार्यका संन्यासमरण] गांगेय–भीष्माचार्य डोरीसे सहित जो जो धनुष्य हाथमें लेते थे उसे उद्धत धृष्टद्युम्न अपने बाणसे तोडता था। पुण्यक्षय होनेपर देखते देखते सर्व प्राणियोंके धनोंके समान दीर्घ आयुष्य, पुत्र, मित्र और सुख नष्ट हो जाते हैं। वर्षाकाल का मेघ अपनी जलधारासे वनवृक्षको जैसे भेद डालता है वैसे शिखंडीने अपने उत्तम बाणसे भीष्माचार्यका कवच बलात् तोड डाला। शिखंडीने सारथि, रथ और उसका ध्वज पृथ्वीतल पर गिराया। और आचार्यके घोडे हर्षसे बाणोंसे गिरा दिये। तो भी निर्भय पितामह रथरहित होकर और हाथमें तरवार लेकर द्रुपदात्मज-शिखण्डीको तोडनेके लिये दौडने लगे। शिखंडीने भी महाबाणोंसे उनकी तरवार तोड डाली और बाणके द्वारा उनका हृदय उस दुष्टने विद्ध किया। उस समय पवित्र पितामह पृथ्वीपर गिर गये और अपना जीवित गया ऐसा समझकर उन्होंने संन्यास धारण किया॥ २४३–२४९॥ धर्मध्यानमें तत्पर होकर भीष्माचार्यने उत्तम धैर्य धारण किया। तथा अनुप्रेक्षाओंकी उत्तम परीक्षा कर अपने मनमें उनका रक्षण किया। अर्थात् अनित्यादि अनुप्रेक्षाओंसे धनादिक पदार्थोंका नश्वरपना जानकर उनसे वे मोहरहित होगये॥ २५०॥

तदा सर्वे नृपास्त्यक्त्वा रण तत्पार्श्वमाययुः । पाण्डवास्तत्पदं नत्वा रुरुदुर्दुःखसंगताः ॥२५१
आजन्म ब्रह्मचय च पालितं व्रतमुत्तमम् । त्वया गुणगणेशेन तदेत्याहुः सुपाण्डवाः ॥२५२
युधिष्ठिरस्तदावोचद्वो व्रतिन् सुव्रतोत्तमं । अस्माकं किं न चायाता मृतिः किं ते समागता ॥
स बाणजर्जरोऽवोचत्कौरवान्पाण्डवान्प्रति । ददध्वं भव्यजीवानामभयं भव्यसत्तमाः ॥२५४
अन्योन्यं च कुरुध्वं भो मैत्र्यं मुक्त्वा च शत्रुताम् ।
अहो एवं गता घस्रा भवतां न च निश्चितम् ॥२५५
ये केऽत्र मृतिमापन्नास्ते गता गर्हितां गतिम् । इदानीं क्रियतां धर्मो दशलक्षणलक्षितः ॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तौ चारणौ चरणोज्ज्वलौ । गुणचुञ्चू चरन्तौ च सुतपोऽत्र नभोऽङ्गणात्॥
मुनीन्द्रौ हंसपरमहंसौ संशुद्धमानसौ । गाङ्गेयसंनिधिं गत्वा प्रोचतुः परमोदयौ ॥२५८
गाङ्गेय त्वं महावीरो वीराणामग्रणीः पुनः । त्वां विनान्यो महाधीरो विद्यते न महीतले ॥
तन्निशम्य मुनीन्द्रौ तौ नत्वा प्रोवाच सद्गिरा । गाङ्गेयो गणनातीतगुणो गम्भीरमानसः ॥

उस समय रण छोडकर सर्व राजा (दोनो पक्षोंके) आचार्यके पास आगये । पाण्डव उनके चरणोंको वन्दन कर दुःखसे व्याकुल होकर रोने लगे । " हे आचार्य, आप गुणोंके समूहके स्वामी हैं, आपने आजन्म उत्तम व्रतरूप ब्रह्मचर्य पाला है । हे तात, आप व्रत धारण करनेवालोंमें उत्तम व्रती हैं । हमको मरण क्यों नहीं आया, आपको वह क्यों प्राप्त हुआ ? " ऐसा युधिष्ठिरने कहा ॥ २५१–२५३ ॥ बाणोंमे जर्जर होकर भी वे आचार्य पाण्डव और कौरवोंको ऐसा उपदेश देने लगे । " हे श्रेष्ठ भव्यों, तुम सब भव्यजीवोंको अभय–दान दो । शत्रुता छोडकर अन्योन्यमें मैत्री–भाव धारण करो । तुम लोगोंके ये दिन ऐसे ही मैत्रीके विना नष्ट हुए । कुछ मैत्री–भाव निश्चित नहीं हुआ । इस युद्धमें जो जो लोग मर गये उनको निंद्य गति प्राप्त हुई । अब उत्तम क्षमादिलक्षण स्वरूप दस धर्मोंका पालन करो । " इस प्रसंगमें जिनका चारित्र उज्ज्वल है, जो गुणोंमें निपुण हैं अर्थात् सुगुणों के धारक हैं ऐसे सुतपश्चरण करनेवाले दो हंस, परमहंस नामक चारण–मुनिवर्य आकाशसे उतरकर भीष्माचार्यके सन्निध आये, जिनका मन अत्यंत निर्मल है और जिनकी आत्मोन्नति उच्च कोटिकी है ऐसे वे भीष्माचार्यको ऐसा उपदेश देने लगे ॥ २५४–२५८ ॥ " हे गांगेय, तुम महावीर तो हो ही, परंतु पुनः वीरों के अगुआमी हो । तुम्हें छोडकर इस भूतलमें दूसरा महाधीर पुरुष नहीं है " । मुनीश्वरोंका वह भाषण सुनकर उन दोनों मुनीन्द्रोंको नमस्कार कर मधुर वाणीसे अगणित गुणों के धारक और गंभीर मनवाले भीष्म

१ म. सुव्रतोत्तम ।

भगवन्भवकान्तारे भ्रमता परमो वृषः। मया लब्धोऽधुना नैव करवाण्यहमत्र किम् ॥२६१
शरच्छिन्नः प्रविष्टोऽहं शरणं तव संसृतौ। लप्स्ये फलं सुखादीनां त्वत्प्रसादान्महामुने ॥
हंसोऽवोचत्सुगाङ्गेय नम सिद्धान्सनातनान्। आराधय समाराध्यमाराधनचतुष्टयम् ॥२६३
दर्शनाराधनां विद्धि तत्त्वश्रद्धानलक्षणाम्। आराध्यते सुसम्यक्त्वं यत्र निश्चयतश्च ताम् ॥
भावानां यत्र विज्ञानं जिनोक्तानां सुनिश्चयात्। सा ज्ञानाराधना प्रोक्ता निश्चयेन चिदात्मनः॥
चर्यते चरणं यत्र निवृत्तिः पापकर्मणः। पुनः प्रवृत्तिश्चिद्रूपे चारित्राराधना मता ॥२६६
यत्तपस्तप्यते द्वेधा श्रीयते संयमो द्विधा। तपआराधना प्रोक्ता निश्चयव्यवहारगा ॥२६७
आराधनाविधिं प्रोच्य गतौ चारणसन्मुनी। दधावाराधनां धीमान्गाङ्गेयो गुणसंगतः ॥२६८
सल्लेखनां विधत्ते स्म चतुर्धाहारदेहयोः। दर्शने चरणे ज्ञाने दत्त्वा चित्तमनारतम् ॥२६९
क्षमाप्य सकलाञ्जीवान्क्षान्त्वा सत्क्षमया युतः। जपन्पञ्चनमस्कारान्स तत्याज तनुं तराम् ॥
स पञ्चममहानाके सुरोऽभूद्ब्रह्मनामनि। यत्र ब्रह्मोद्भवं सौख्यं भुञ्जते भविनः सदा ॥२७१

बोलने लगे ॥२५९-२६०॥ " हे भगवन्, इस संसार-वनमें भ्रमण करनेवाले मुझे उत्तम धर्म नहीं मिला, बोलो अब मैं यहां क्या कार्य करूं? बाणोंसे विद्ध हुआ मैं आपके शरणमें आया हूं। हे महामुने, इस संसारमें आपकी कृपासे सुखादिकोंका फल मुझे प्राप्त होगा ॥ २६१-२६२ ॥ हंस नामक चारण मुनि बोले-हे गाङ्गेय,तू सनातन सिद्धोंको नमस्कार कर और सम्यग्दर्शन आराधना,सम्यग्ज्ञानाराधना,चारित्राराधना और तप आराधना ये चार आराधनायें आराधने योग्य हैं इनकी आराधना कर। तत्त्व-श्रद्धान- जीवादिक तत्त्वोंपर और उनके प्रतिपादक जिनेश्वर, निर्ग्रंथ गुरु और जिनशास्त्र इनके ऊपर श्रद्धान करना दर्शनाराधना है। जहां निर्दोष सम्यग्दर्शन निश्चयसे आराधा जाता है वह दर्शनाराधना है। जिनेश्वरने कहे हुए जीवादितत्त्वोंको निश्चयसे जानना ज्ञानाराधना कही है। तथा आत्माका आत्मामें चरण होना-स्थिर होना निश्चयसे सम्यक्चारित्राराधना है। जिसमें पापोंसे निवृत्ति होकर अपने चैतन्यरूपम प्रवृत्ति होना सम्यक्चारित्राराधना है। जिसमें दो तरहका तप किया जाता है, जिसमें दो प्रकारोंका संयम-इंद्रियसंयम और प्राणिसंयम पाला जाता है वह निश्चय-व्यवहारात्मक तप-आराधना है।" इस प्रकारसे आराधना-विधिका उपदेश देकर वे चारण मुनि आकाशमार्गसे चले गये। गुणसंयुक्त विद्वान् गांगेयने चार आराधनाओंको धारण किया ॥ २६३-२६८ ॥ भीष्माचार्यने चार प्रकारके आहारका त्याग और देहकी ममताका त्याग कर जिसको सल्लेखना कहते हैं, वह धारण की। उन्होंने दर्शन, चारित्र और ज्ञानमें नित्य अपना मन लगाया। संपूर्ण जीवोंकी क्षमा-याचना करके उनकोभी उन्होंने क्षमागुणके द्वारा क्षमा की। पंचनमस्कार मंत्रको जपते हुए उन्होंने शरीरका त्याग किया। उससे वे पांचवे ब्रह्म-स्वर्गमें देव हुए। जहां उत्पन्न होनेवाले देव हमेशा ब्रह्मचर्यसे उत्पन्न होनेवाले सुखोंका अनुभव लेते रहते हैं

कौरवाः पाण्डवास्तत्र रुदन्ति स्म महाशुचा । जगतां शून्यतां नित्यं मन्यमाना महौजसः ॥
एवं प्राप्तां निशां निन्युः शोकेन सकला नराः । शोकं कर्तुमिवायासीत्तस्य प्रातर्दिवाकरः ॥

इत्थं संसारचक्रे नरनिकरधरे यान्ति जीवा घनौघाः
यद्वद्यातीह लक्ष्मीस्तडिदिव चपला चञ्चलं जीवितव्यम् ।
संध्यारागप्रभासं स्वजनसुतसुखादीनि भङ्गोपमानि
मत्वैवं शुद्धधर्मे विदधतु सुमतिं श्रद्दधाना भवन्तः ॥२७४
गाङ्गेयो ब्रह्मचारी शुभमतिसुगतिः संगरे संगरं यः
कृत्वा धर्मस्य यातो वरसुरसदनं पञ्चमं प्रीणयन्स्वम् ।
हित्वा पात्वा च पापं शुभनयसुमतिं धर्मतः सोऽपि जीयात्
धर्मात्मा धर्मपुत्रो वरनयधिषणाधिष्ठितो धर्मचेताः ॥२७५

इति श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपाल-
साहाय्यसापेक्षे जरासंधकृष्णसंगरवर्णनगाङ्गेयसंन्यासग्रहणपञ्चमस्वर्ग-
गमनवर्णनं नाम एकोनविंशतितमं पर्व ॥ १९ ॥

॥ २६९--२७१ ॥ उससमय वहां कौरव और पाण्डव महाशोकसे रोने लगे । अब जगत् भीष्माचार्यके विरहसे हमेशाका शून्य हो गया ऐसा वे महातेजस्वी पाण्डव समझने लगे। इस प्रकार प्राप्त हुई रात्री शोकसे सब लोगोंने व्यतीत की । भीष्मविषयक शोक प्रगट करनेके लिये मानो सूर्य प्रातःकालमें उदित हुआ ॥ २७२–२७३ ॥ जैसे मेघोंका समूह नष्ट होता है, वैसे मनुष्य–समूहसे युक्त ऐसे संसारचक्रमें जीवभी इसी प्रकार नष्ट होते हैं । बिजली के समान चंचल लक्ष्मी नष्ट होती है । प्राणियोंका जीवित संध्यारागके समान चंचल है । स्वजन, पुत्र, सुख आदिक जललहरीके समान ह । ऐसा समझकर शुद्ध धर्ममें श्रद्धान करनेवाले तुम शुद्धधर्ममें अपनी सुबुद्धि लगाओ ॥ २७४ ॥ श्रीगांगेय शुभमतिमें हमेशा प्रवृत्ति करनेवाले ब्रह्मचारी थे । युद्धमें उन्होंने धर्मकी प्रतिज्ञा धारण कर अपनेको स्वस्वरूपमें हर्षितकर धमसे पांचवा स्वर्ग प्राप्त किया। वे श्रीगांगेय हमेशा जयवंत रह । तथा जिन्होंने पापको छोडकर शुभ नीतिकी, बुद्धिकी, रक्षा की, जो धर्ममें मन लगाते हैं, जो धर्मात्मा हैं, उत्तम नय जाननेकी बुद्धिसे युक्त हैं ऐसे धर्म–पुत्र अर्थात् युधिष्ठिरभी हमेशा जयवंत रहे ॥२७५॥

श्रीब्रह्म श्रीपालजीकी साहाय्यतासे भट्टारक श्रीशुभचन्द्रजीने रचे हुए श्रीपाण्डवपुराणमें
जरासन्ध और कृष्णराजाओंका युद्ध–वर्णन, गांगेयका संन्यास ग्रहण कर पांचवे
स्वर्ग–गमन–वर्णन–नामक उन्नीसवा पर्व समाप्त ॥ १९॥

। विंशतितमं पर्व ।

**धर्मं धर्ममयं सर्वं कुर्वाणं धर्मशालिनम् । धर्मराजहरं धर्म्यं वन्दे सद्धर्मदेशकम् ॥१
अथः प्रातः समुत्थाय भटा भेजू रणाङ्गणम् । प्रलयानलसंक्षुभ्यत्सागरा इव निर्घृणाः ॥२
पादभारेण भञ्जन्तो भुजङ्गान्भुवि संस्थितान् । क्षोभयन्तः ककुब्नाथान्भटा योद्धुं समुद्यताः॥
पार्थस्तु प्रथयामास प्रधनं निधनोद्यतः । भटघोटकसंघट्टान्खण्डयंश्च मतङ्गजान् ॥४
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तोऽभिमन्युः सुभटो महान् । विश्वसेनेन संयुद्धं सह कर्तुं समुद्ययौ ॥५
पातयामास विश्वस्य सारथिं पार्थनन्दनः । स्वहस्ते धन्वसंधानं कुर्वन्धुन्वन्रिपूत्करान् ॥६
शल्यपुत्रः समायासीच्छल्यीभूतश्च वैरिणाम् । अभिमन्युसमं योद्धुं वाहयन्स्वरथं रथी ॥७
तावन्योन्यं समालग्नौ छादयन्तौ परैः शरैः । अभिमन्युशरैर्ध्वस्तः शल्यपुत्रो मृतिं गतः ॥८
लक्ष्मणो लक्षणैर्युक्तो लक्ष्यीकृत्य सुपार्थजम् । छादयामास बाणौघैर्घनघातविधायिभिः ॥९
लक्ष्मणं स जघानाशु बाणैः कोदण्डनिर्गतैः । यमप्राघूर्णकं कृत्वाभिमन्युस्तं रणे स्थितः॥१०**

[बीसवाँ पर्व]

सर्व जगत्को धर्ममय करनेवाले, धर्मसे शोभनेवाले, जीवोंको जिनधर्म का उपदेश देनेवाले ऐसे धर्मके हितकर और धर्मराजको-यमको नष्ट करनेवाले धर्मनाथ-तीर्थंकरको मैं वन्दन करता हूं ॥ १

इसके अनंतर प्रातःकाल उठकर शूर योद्धा रणांगणमें चले गये। वे क्रूर योद्धा प्रलयकी वायुसे क्षुब्ध होनेवाले समुद्रके समान दीखते थे। पृथ्वीमें रहे हुए भुजंगोंको अपने चरणके भारसे भग्न करनेवाले और दश दिशाओंके इंद्रादि-दिक्पालोंको क्षोभित करनेवाले वे शूर योद्धा युद्धके लिये उद्युक्त हुए ॥ २-३ ॥ मारनेके लिये उद्युक्त हुए अर्जुनने शूर योद्धा, और घोडोंके समूहको तथा हाथियों को खण्डित कर युद्धको विस्तृत किया ॥ ४ ॥ इतने में शत्रुसमूहको भगानेवाला महान् वीर अभिमन्यु रणमें आया और विश्वसेनके साथ युद्ध करनेके लिये उद्युक्त हुआ। अर्जुनपुत्र अभिमन्युने अपने हाथमें धनुष्यका संधानकर विश्वसेन-कुमारका सारथि रथसे गिराया ॥ ५-६ ॥ वैरियोंके हृदयमें शल्यकासा चुभनेवाला शल्यराजाका रथी पुत्र अपना रथ चलाता हुआ अभिमन्युके साथ युद्ध करनेके लिये आया। वे दोनों अन्योन्यको उत्कृष्ट-तीव्र बाणोंसे आच्छादित करते हुए लडने लगे। अभिमन्युके बाणोंसे विद्ध हुआ शल्यपुत्र मर गया ॥ ७-८ ॥

[अभिमन्युका अपूर्व पराक्रम] लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मणने अभिमन्युको लक्ष्य बनाकर उसको तीक्ष्ण आघात करनेवाले बाणोंसे आच्छादित किया। तब अभिमन्युने शीघ्र धनुष्यसे निकले हुए बाणोंसे लक्ष्मणका नाश किया। अभिमन्यु उसे यमका मेहमान बनाकर रथमें बैठ गया। अभि-

चतुर्दशसहस्राणि कुमाराणां सुचारिणाम् । अभिमन्युर्जघानैवमाशुगैरसुहारिभिः ॥११
रणकेलिं प्रकुर्वाणो गजानिव महाद्विषः । केशरीव हरन्भेजे सौभद्रो भद्रसंगतः ॥१२
तदा दुर्योधनः क्रुद्धो मानसे म्लानितामितः । प्रेक्षते स्म महाशूरान्वचोभिर्भावितात्मनः ॥
विचित्राश्चञ्चलाश्चेलुर्गजवाजिरथस्थिताः । भ्रूभङ्गभीषणा भूपा भाषयन्तः सुभाषणम् ॥१४
द्रोणो विद्रावयञ्शत्रून्सुलिङ्गैर्लिङ्गिताङ्गकः । कलिङ्गः कर्णभूपालोऽप्येवं चेलुर्नृपा रणे ॥१५
कलिङ्गकुम्भिनं तावच्चकार विगतासुकम् । सौभद्रः कर्णभूपस्य जहार गर्वसंततिम् ॥१६
द्रोणं स जर्जरीचक्रे जरयेवास्त्रमालया । यत्र यत्र रणं चक्रेऽभिमन्युस्तत्र संजयी ॥१७
न कोऽप्यभूत्तदा शूरोऽभिमन्युरणसंमुखः । जायते मत्तमातङ्गः किं सिंहाभिमुखः क्वचित् ॥
अभिमन्युशरेणाशु वाजिनो गजराजयः । स्यन्दनाः पत्तयस्तत्र न च्छिन्ना नाभवन्निति ॥१९
स्वसैन्यमक्षयं कुर्वन्कुमारोऽक्षयसंज्ञकः । दशबाणैर्जघानैनमभिमन्युं महाहवे ॥२०
मूर्च्छितश्छिन्नचेतस्कः स पपात महीतले । उन्मूर्च्छितः समुत्तस्थे पुनः पार्थस्य नन्दनः ॥२१
अश्वत्थामा तदा धाम दधदाप च सद्धनुः । विमुखः क्षणतस्तेन शरैश्चक्रेऽभिमन्युना ॥२२

मन्युने प्राणहारक बाणोंसे युद्धमें प्रवेश किये हुए अर्थात् लडनेवाले चौदह हजार राजकुमारोंको मार डाला । युद्ध-क्रीडा करनेवाला, कल्याणयुक्त, सिंहके समान, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु महाशत्रु जो कि हाथीके समान थे, उनको नष्ट करता हुआ शोभने लगा ॥ ९-१२ ॥ उस समय मनमें क्रुद्ध और शरीरसे म्लान हुआ दुर्योधन, वचनोंसे जिनको उत्साहित किया है ऐसे महाशूर राजाओंको देखने लगा । उससमय अनेकविध, चंचल ऐसे हाथी, घोडे और रथोंमें बैठे हुए, भौंहें टेढी होनेसे भयंकर दिखाई देनेवाले राजागण भाषण करते हुए चलने लगे । शत्रुओंको भगानेवाले द्रोणाचार्य, उत्तम लक्षणोंसे जिसका शरीर युक्त है ऐसा कलिंगराजा, कर्णराजा तथा अन्य राजा युद्धके लिये रणमें चलने लगे ॥ १३-१५ ॥ सौभद्रने-अर्जुन-पुत्रने उससमय कलिंगराजा का हाथी प्राणरहित किया-मारा और उसने कर्णराजाका गर्वसमूह नष्ट किया । उसने द्रोणको मानो जराही है ऐसी अस्त्रपंक्तिसे जर्जर किया । जहां जहां अभिमन्युने युद्ध किया वहां वहां उसे विजय मिला । जो अभिमन्युसे युद्ध करनेके लिये सम्मुख हो सके ऐसा कोई शूर राजाही नहीं था । क्या मत्त हाथी कभी सिंहके सामने होता है ? अभिमन्युके बाणसे घोडे, हाथियोंकी पंक्ति,रथ, पैदल इनमें ऐसा कोई नहीं था कि जो छिन्न नहीं हुआ हो ॥ १६-१९ ॥ अपने सैन्यको अक्षय रखनेवाले अक्षयकुमारने इस महायुद्धमें दशबाणोंसे अभिमन्युको विद्ध किया । जिसका मन भिन्न हुआ है ऐसा अभिमन्यु मूर्च्छित होकर पृथ्वीतलपर गिर पडा । जब उसकी मूर्च्छा हट गई तब वह युद्धके लिये तैयार हो गया । उससमय शौर्य, तेज और धनुष्य धारण करनेवाला अश्वत्थामा रणभूमिमें आया। उसे अभिमन्युने एक क्षणमें बाणोंसे विमुख कर दिया ॥ २०-२२ ॥ कर्णने गुरु

कर्णोऽप्राक्षीद्गुरुं द्रोणं लक्ष्मणप्रमुखा रणे । कुमारा मरणं नीताः पार्थजेन सहस्रशः ॥२३
न हन्तुं कोऽपि शक्नोत्यभिमन्युं मन्युमानसम् । कदाचिन्म्रियते पार्थो नायं कालेऽपि संयुगे ॥
श्रुत्वा द्रोणो बभाणेदं हन्यते यो न भूभुजा । एकेन रणशौण्डेन स केन वद हन्यते ॥२५
कृत्वा कलकलं सैन्यं संमेल्य मिलितान्नृपान् । हन्यतां हन्यतां चायं छिद्यतामस्य सद्धनुः ॥
इति द्रोणवचः श्रुत्वा कृत्वा कोलाहलं नृपाः । न्यायक्रमं विमुच्याशु तेन योद्धुं समुद्ययुः ॥
एकेन तेन ते सर्वे आहवे निर्जिताः क्षणात् । पुनरुद्यम्य ते सर्वे सोत्कण्ठा योद्धुमुद्यताः ॥२८
कुमारस्य रथश्छिन्नः सपताकः परैर्नृपैः । लष्टिदण्डं समादाय कुमारस्तानचूरयत् ॥२९
स जयार्द्रकुमारस्तु कुमारं तं महाशरैः । अताडयत्तथा भूमौ स पपातातिदुःखितः ॥३०
स स्थिरः संस्थितो भूमौ तदा हाहारवोऽजनि । देवैः कृतो नृपैः प्रोक्तमन्यायोऽयं नृपैः कृतः
कर्णेनोक्तं कुमार त्वं पयः पिब सुशीतलम् । सुमना अभिमन्युस्तु निर्मलं वचनं जगौ ॥३२
न पिबामि पयो नूनं वरिष्येऽनशनं नृप । करिष्यामि तनुत्यागं स्मृत्वाहं परमेष्ठिनः ॥३३

द्रोणको पूछा कि " हे आचार्य, अर्जुनपुत्रने लक्ष्मणकुमार जिसमें मुख्य है ऐसे हजारों कुमार मारे हैं। क्रुद्ध हुआ है मन जिसका ऐसे अभिमन्युको कोईभी मारनेके लिये समर्थ नहीं हो सकता। कदाचित् अर्जुन इस युद्धमें मरेगा परंतु यह कालके समान इस युद्धमें न मरेगा। यह कर्ण वचन सुनकर द्रोणने इस प्रकार कहा रणचतुर ऐसे एक राजाके द्वारा यदि यह नहीं मारा जाता है तो बोलो किससे मारा जायगा ? ॥ २३–२५ ॥

[जयार्द्रकुमारसे अभिमन्युका वध] सब मिलकर अभिमन्युको मारो ऐसी द्रोण की आज्ञा होने पर सब राजा मिलकर अन्यायसे लडने लगे। तब कलकल करके राजाओंने सब सैन्य एकत्र किया। मिले हुए राजाओंको " द्रोणने कहा, कि इस अभिमन्यु को मारो मारो इसका उत्तम धनुष्य तोडो " ऐसा द्रोणका वचन सुनकर तथा कोलाहल करके राजा न्याय-क्रमका उल्लंघन करके अभिमन्युके साथ लडने के लिये उद्युक्त हुए। परंतु उस अकेले अभिमन्युने युध्दमें उन सब को पराजित किया। फिर उद्यम करके उत्कंठासे वे लडनेके लिये उद्युक्त हुए। उन्होंने पताकाके साथ कुमारका रथ तोड दिया। तब लष्टिदण्ड हाथमें लेकर उसने राजाओंको चूर किया ॥ २६–२९ ॥

[अभिमन्यु को समाधि-मरणसे देवत्वप्राप्ति] जयार्द्रकुमारने महाशरोंसे अभिमन्युको ऐसा विध्द किया, कि उससे वह अतिशय दुःखित होकर जमीनपर गिर पडा। वह जमीनपर स्थिर होकर बैठ गया तब हाहाकार हुआ। देवोंने तथा न्यायी राजाओंने कहा, कि राजाओंने यह अन्याय किया है ॥ ३०–३१ ॥ कर्णने कहा कि " हे कुमार शीतल पानी पिओ " तब शुभ मन-वाले अभिमन्युने निर्मळ वचन कहा, कि मैं पानी नहीं पिऊंगा। हे राजन्, मैं अनशन उपवास धारण करूंगा। मैं परमेष्ठियोंका स्मरण करके शरीरपरका मोह छोड देता हूं।" ऐसा बोलनेपर

इत्युक्ते निर्जने नीतोऽभिमन्युर्मन्युवर्जितः । द्रोणादिभिः स्थितः सोऽपि चैतन्यं चिन्तयन्निजम् ॥
कषायकाययोः कृत्वा सल्लेखनां जिनान्स्मरन् । क्षान्त्वा सर्वजनांस्तूर्णं मुमोच मलिनां तनुम् ॥
स स्वर्गे संगतो देहं समीहापरिवर्जितः । विक्रियावधिसंयुक्तं दिव्यं वरगुणोत्करम् ॥३६
ज्ञात्वाथ कौरवा भूपा दुर्योधनपुरस्सराः । कुमारमरणं हृष्टाः प्राप्ता वादित्रनिस्वनान् ॥३७
निशीथिन्यथ निःशेषं रणं वारयितुं द्रुतम् । आजगाम प्रकुर्वाणोत्सवं च कौरवे बले ॥३८
तदा जानार्दने सैन्ये रुरुदुर्निखिला नृपाः । विलापमुखराश्चाश्रुधारासंधौतसन्मुखाः ॥३९
तस्य मृत्युं निशम्याशु मुमूर्च्छे धर्मनन्दनः । पपात पृथिवीपीठे कुलशैल इवोन्नतः ॥४०
कथं कथमपि प्राप्य चेतनां धर्मनन्दनः । रुरोद करुणाक्रान्तस्वरं संभाषयन्निति ॥४१
हा पार्थपुत्र कोन्योऽत्र त्वत्समः संगरोद्धुरः । एकोऽनेकसहस्राणि हन्तुं शक्तो नरेशिनाम् ॥
स द्वादशसहस्राणि जालंधरमहेशिनाम् । हत्वा हन्त जयं प्राप्तो हतस्त्वं केन पापिना ॥४३
तावत्पार्थः समायासीद्धर्मपुत्रसमीपताम् । प्रगुणः शोकसंतप्तः श्रुत्वाथ करुणस्वरम् ॥४४
पार्थः प्रोवाच भो भ्रातः समायाताः समुन्नताः । कुमाराः किं न पश्यामि स्वसुतं सुतरां शुभम् ॥

कोपरहित अभिमन्युको द्रोणादिक निर्जन स्थानपर ले गये । वहां अपने चैतन्यस्वरूपका वह चिन्तन करने लगा । कषाय और शरीरका त्याग कर अर्थात् सल्लेखना कर और जिनेश्वरोंका स्मरण करके तथा सर्व लोगोंको शीघ्र क्षमाकर उसने इस मलिनदेहका त्याग किया । इच्छा-रहित-निदानरहित वह अभिमन्यु स्वर्गमें विक्रिया और अवधिज्ञानसे युक्त, दिव्य, अणिमा महिमादि गुणसमूहोंसे युक्त ऐसे शरीरको प्राप्त हुआ ॥३२–३६ ॥ दुर्योधन मुख्य जिसमें हैं ऐसे कौरव-राजा कुमारका मरण जानकर आनंदित हुए और अनेक वाद्य उन्होंने बजवाये । इसके अनंतर संपूर्ण युध्द बंद करनेके लिये रात्री शीघ्र आई । कौरवोंके सैन्यमें उत्सव चालु हुआ ॥ ३७–३८ ॥ उससमय विलापयुक्त शब्द करनेवाले, अश्रुधारासे जिनका मुख धुल गया है, ऐसे सर्व राजा रोने लगे । अभिमन्युकी मृत्यु सुनकर ऊंचे कुल-पर्वतके समान धर्मराजा शीघ्र मूर्च्छित होकर पृथ्वी-पर गिर गये ॥ ३९–४० ॥ बडे कष्टसे धर्मराजकी मूर्च्छा दूर हो गई और चेतनाको प्राप्त होकर बोलते हुए वे करुणाके स्वरसे रोने लगे । हे अर्जुनपुत्र, अकेला होकरभी तूने अनेक हजार राजा-ओंका नाश किया है । तुझसरिखा युद्धचतुर इस जगतमें दूसरा कौन है ? जालंधर राजाओंके बारह हजार लोग नष्ट करके तूने जय प्राप्त किया है । ऐसा तू किस पापीके द्वारा मारा गया है ?" इस प्रकार धर्मराज शोक करने लगा इतनेमें अर्जुन आकर धर्मराजको इस प्रकार कहने लगा– "हे भाई अपने उन्नतिशील सभी कुमार आये हैं परंतु मेरा अतिशय शुभविचारवाला पुत्र क्यों नहीं दीखता है ? क्या किसी वैरीने मेरे पुत्रको मारा है ? अथवा चक्रव्यूहमें वह मर गया ?" इसके उत्तरमें धर्मराज बोले " भाई अर्जुन, सुन क्षात्र-धर्मको छोडकर सब मनुष्योंने तेरा बाल

किं वैरिणा हतः पुत्रश्चक्रव्यूहेऽद्य किं मृतः । तदा युधिष्ठिरोऽवोचच्छृणु शक्रसुत ध्रुवम् ॥
अत्रं मुक्त्वा नरौघेण हतस्ते बालनन्दनः । तन्निशम्य मुमूर्च्छाशु पार्थः पृथ्वीमुपागतः ॥
पुनरुन्मूर्च्छितः पार्थो रुरोदेति शुचं स्मरन् । त्वया विनात्र भो पुत्र धरां धर्तुं च कः क्षमः ॥
राज्यं भर्ता कुलं त्राता को हनिष्यति वैरिणः । तावदायान्नृपस्तत्र मुकुन्दो मुरमर्दनः ॥४९
नो पार्थ केवलं तेऽद्य सुतो यातो ममापि च । विधवत्वं परं सैन्यं नीतं तेन गतेन वै ॥५०
ममातिवल्लभो भव्यो दुर्लभत्वं गतोऽधुना । शोकेनालं नरेन्द्रात्र शत्रुशर्मविधायिना ॥५१
विद्यतेऽवसरो नात्र शोकस्य शृणु वैरिणः । संयुगे जहि धीरत्वं धर धर्मविशारद ॥५२
जहि पुत्रस्य हन्तारं तत्फलं च प्रदर्शय । अभिमन्युमृतिं श्रुत्वा सुभद्रा भूतलं गता ॥५३
प्राप्ता मूर्च्छां समुच्छिन्नवल्लीव गतचेतना । उन्मूर्च्छिता रुरोदाशु हा पुत्रेति प्रजल्पिनी ॥५४
सुसहायपरित्यक्तः सुतो मेऽद्य मृतिं गतः । कथं सुप्तः सुत त्वं हा दुस्तरे शरसंस्तरे ॥५५
हा युधिष्ठिर भूमीश त्वया किं रक्षितो न सः । कुलत्रातात्र भवतां भविता भुवने सुतः ॥५६

पुत्र अभिमन्यु मारा है ।" यह धर्मराजकी बात सुनकर अर्जुन मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर गया । पुनः सावध होकर शोक करनेवाला वह अर्जुन इस प्रकारसे रोने लगा । हे पुत्र, तेरे विना यहां इस पृथ्वीके भारको धारण करनेमें कौन समर्थ है । राज्यको धारण करना, कुलका रक्षण करना ये कार्य कौन करेगा और वैरियोंका नाश कौन करेगा ? ॥ ४१-४९ ॥

[जयद्रथ-वधकी अर्जुन-प्रतिज्ञा] अर्जुन शोक करने लगा उस समय मुरदैत्यका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण वहां आये और वे इस प्रकारसे उसे समझाने लगे- " हे अर्जुन, आज तेरा पुत्र चला गया ऐसा मत समझ, मेरा भी पुत्र मर गया ऐसा समझ, उसने अपने मरणसे अपना उत्तम सैन्य स्वामिरहित किया । अर्थात् अपने सैन्यका एक उत्तम शास्ता-सेनापति आज नष्ट हुआ है । अभिमन्यु मुझे अतिशय प्रिय था । वह भव्य-सुंदर अभिमन्यु आज दुर्लभ हुआ । हे अर्जुनराज, अब शोक छोड दे इससे शत्रुको सुख होगा । सुन, अब शोकके लिये यहां अवसर नहीं है । तू धर्मका स्वरूप जाननेमें चतुर है, युद्धमें शत्रुको मार और धैर्य धारण कर, जिसने पुत्रको मारा है उसको तू मारकर पुत्रको मारनेका फल दिखा दे ॥ ५०-५३ ॥ अभिमन्युका मरण सुनकर सुभद्रा पृथ्वीपर गिर पडी । और छिन्न हुई वल्लीके समान चेतनारहित-मूर्च्छित होगयी । जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई तो 'हा पुत्र हा पुत्र,' ऐसा कहती हुई शोक करने लगी । सहायकोंसे रहित होनेसे आज मेरा पुत्र मर गया है । हाय पुत्र, तू अतिशय दुस्तर-दुःखदायक शरशय्यापर कैसे सो गया ! हे पृथ्वीपते युधिष्ठिर महाराज, मेरे पुत्रका आपने संरक्षण क्यों नहीं किया ? इस पृथ्वीतलमें मेरा यह पुत्र आपके कुलका रक्षण करनेवाला हो जाता । हे पृथ्वीपते भीमराज, हे भव्य, आपने उसका रक्षण क्यों नहीं किया ? हे

हा भीम भूपते भव्य त्वया किं स न पालितः । हा धनंजय धन्यात्मन्युधि धीर न रक्षितः
हा जनार्दन मे भ्रातर्जन्ये जनभयंकरे । न रक्षितः सुतः किं भो मम प्राणसमो महान् ॥५८
केनापि न धृतो बालो बलवान्विपुलो गुणैः । सर्वस्मिन्नगरे लोका दुःखितास्तद्वियोगतः ॥
बान्धवो मे धराधीशो माधवो विधुरातिगः । ज्येष्ठो युधिष्ठिरो ज्येष्ठः श्रेष्ठो भीमो ममोत्तमः
पतिः पार्थस्तु भूपीठे पाता पावनमानसः । तथापि क्रन्दनं प्राप्ता दुःखिताहं विमर्दिता ॥६१
तदा दीर्घं समुच्छ्वस्य पार्थः प्रोवाच भो प्रिये । शृणु मे वचनं पथ्यं तथ्यं सर्वमतिप्रदम् ॥
संजयार्द्रकुमारस्य मूर्धानं नो लुनामि चेत् । प्रविशामि तदा वह्नौ न सहे सुतदुर्मृतिम् ॥६३
रुदित्वालं गृहीत्वा त्वं जलं क्षालय चाननम् । हरिर्बभाण भगिनि शोकं संहर सत्वरं ॥६४
संसारश्चञ्चलश्चित्रं चञ्चूर्यन्ते जना भृशम् । सुखैर्दुःखैः सदा क्षिप्ता भ्रमन्तो यत्र दुःखिताः ॥
संसारेऽत्र गताः पूर्वं पुरुषाः पावनाः परे । इतस्ततः पतन्तश्च समर्थाः स्वं न रक्षितुम् ॥६६
अरहट्टघटीयन्त्रसदृशे संसरज्जनः । संसारे न स्थिरः कोऽपि भवितव्यतया वृतः ॥६७

युद्धधीर हे धन्यात्मन् धनंजय, आपने उसका रक्षण क्यों नहीं किया है ? मेरे प्राणतुल्य, शूर ऐसे पुत्रकी लोगोंको भय उत्पन्न करनेवाले युद्धमें हे भाई कृष्ण, आपने क्यों नहीं रक्षा की ? जिसमें विपुल गुण थे ऐसा मेरा बलवान् पुत्र किसीके द्वारा भी नहीं धारण किया गया ? अर्थात् किसीने भी उसका संरक्षण नहीं किया ? संपूर्ण नगरमें उसके वियोगसे लोग दुःखित हुए हैं। मेरा भाई श्रीकृष्ण संपूर्ण पृथ्वीका स्वामी है। वह इष्ट-वियोगसे पूर्ण रहित है। मेरे जेठ देवर युधिष्ठिर श्रेष्ठ पुरुष हैं, तथा भीम उत्तम पुरुष हैं। मेरे पति अर्जुन पवित्र मनवाले और भूपृष्ठपर जनरक्षक हैं। ऐसे ये सब मेरे रक्षक होनेपर भी म रुदनको प्राप्त हुई हूं, दुःखित हुई हूं तथा शोकसे मर्दित हुई हूं " ॥ ५४-६१ ॥ उस समय दीर्घ श्वास लेकर अर्जुन अपनी प्रियाको कहने लगा की " हे प्रिये, मेरा हितकर, सत्य और बुद्धि देनेवाला वचन सुन। जयार्द्रकुमारका मस्तक यदि मैं नहीं तोडूंगा तो मैं अग्निमें प्रवेश करूंगा। मेरे पुत्रके दुर्मरणको मैं सहनेवाला नहीं हूं। अब तू रोना बंद कर और पानी लेकर अपना मुह धो डाल।" उस समय कृष्णने अपनी बहनको ऐसा उपदेश दिया--- श्रीकृष्णने कहा- " हे भगिनि, तू अपना शोक सत्वर दूर कर दे। यह संसार चंचल और आश्चर्यकारक है। इसमें लोग अतिशय नष्ट होते हैं। इसमें सुखदुःखोंसे पीडित होकर दुःखसे चतुर्गतिमें भ्रमण करते हैं। इस संसारमें पूर्वकालमें उत्तम पवित्र पुरुष चले गये हैं नष्ट हुए हैं। दूसरे बुरे लोग भी कभी किस गतिमें तो कभी किस गतिमें गिरते हैं- उत्पन्न होते हैं। वे पुरुष अपना संरक्षण करनेमें समर्थ नहीं होते हैं। रहटकी घडियोंके समान संसारमें घुमनेवाला कोई भी जन स्थिर नहीं है। सब भवितव्यतासे घिरे हुए हैं " इस प्रकारसे माधवने अपनी बुद्धिसे अपनी बहनको समझाया ॥ ६२-६७ ॥

इति संबोधिता बुद्ध्या माधवेन स्वसा निजा । तावत्केनापि संप्रोक्तं जयार्द्रस्य हितार्थिना ॥
पार्थेन विहिता भद्र प्रतिज्ञा मरणकृते । तव त्वं यासि शक्रस्य शरणं तर्हि न स्थितिः ॥६९
निश्चिन्तः किं स्थितस्त्वं हि मरणे समुपस्थिते । निशम्येति चिरं चित्ते जयार्द्रोऽचिन्तयत्तराम् ॥
वैवस्वत इव क्रुद्धोऽवश्यं वृद्धश्रवःसुतः । लविष्यति निजं शीर्षं प्रभाते पटुमानसः ॥७१
गत्वा दुर्योधनाभ्यर्णे जयार्द्रो वचनं जगौ । भीतोऽहं विपिनं गत्वा ग्रहीष्यामि तपोऽनघम् ॥
यत्रार्जुनभयं नैव श्रोष्यामि श्रवसोः सदा । यः क्रुद्धो धनुषं धृत्वा युद्धे तिष्ठेत्कदाचन ॥
तदा सुरासुरा नैव स्थातुं तत्संमुखं क्षमाः । द्रोणः श्रुत्वा बभाणेति सुमते शृणु मद्वचः ॥
न कोऽप्यस्ति जगत्यां हि नरोऽहो अजरामरः । शोभते क्षत्रियाणां नाभ्यागमाद्गमनं भुवि ॥
कृतशक्तेस्तु नुः शीर्षं याति चेद्यातु किं भयम् । जयतो जयलक्ष्मीश्च जनानां जायते लघु ॥
अद्यास्तमनवेलायां सव्यसाची मरिष्यति । हनिष्यति नरस्त्वां कस्ततो भव सुनिश्चलः ॥७७
निशम्येति स्थितः स्थैर्याज्जयार्द्रो जयवाञ्छया । रजन्या निर्गमे जाते धनंजयचरेण हि ॥७८
कश्चित्पृष्टः कथं लक्ष्यो जयार्द्रस्य रथो रणे । सोऽवोचत्पृथुभूपालैर्व्यूहो हि विहितो महान् ॥
विषमे यत्र वै वेष्टुं कोऽपि शक्नोति नो सुरः । तं निशम्य नरः प्राह यदि रक्षन्ति तं सुराः ॥

[द्रोणाचार्यका जयार्द्रको आश्वासन] जयार्द्रका हित चाहनेवाले किसी मनुष्यने उसे कहा, कि "हे भद्र, अर्जुनने तुझे मारनेकी प्रतिज्ञा की है । अब तू इंद्रको शरण जानेपर भी तेरी रक्षा नहीं होगी इस लिये तू मरण समीप आनेपर भी निश्चिन्त क्यों बैठा है ?" यह हितार्थी मनुष्यका वचन सुनकर जयार्द्र मनमें अतिशय चिंतित हुआ । यमके समान, चतुरमनवाला, इन्द्रका पुत्र--अर्जुन अवश्य प्रातःकाल मेरा मस्तक काट लेगा ऐसा विचार करके जयार्द्र दुर्योधनके पास जाकर कहने लगा कि, "मैं भयभीत हुआ हूं । अब अरण्यमें जाकर निर्दोष तप धारण करूंगा । वहां मैं मेरे कानोंमें अर्जुनका भय नहीं सुनूंगा । जो अर्जुन क्रुद्ध होकर युद्धमें जब कभी खडा हो जाता है तब देव और असुर उसके सामने खडे होनेमें असमर्थ होते हैं । द्रोणने कहा, कि 'हे सुमते मेरा वचन सुन । इस जगतमें कोईभी मनुष्य अजर और अमर नहीं है । क्षत्रियोंको युद्धमेंसे लौट जाना बिलकुल नहीं शोभता है । जो समर्थ पराक्रमी है उसका मस्तक चला गया तो जाने दो कुछ डरनेकी बात नहीं है । जयसे जयलक्ष्मी लोगोंको शीघ्र प्राप्त होती है । अर्थात् यदि युद्धमें अपनी जीत हुई तो जयलक्ष्मी भी प्राप्त होती है । आज सूर्यास्तके समय अर्जुन मर जायगा फिर तुझे कौन मनुष्य मारेगा? अतः तू निश्चल हो" ऐसा द्रोणका वचन सुनकर धैर्यसे जयार्द्र जयकी इच्छासे स्थिर रह गया । रातकी समाप्ति होनेपर धनंजयके दूतने किसीको पूछा की जयार्द्रका रथ कैसे पहचाना जायगा? तब उसने कहा कि राजाओंने एक बडा व्यूह रचा है, उस विषम व्यूहमें कोई देव भी प्रवेश नहीं कर सकता है । उस वृत्तको सुनकर अर्जुनने कहा, कि यदि उस व्यूहकी देव भी रक्षा करेंगे तो भी

तथापि मारयिष्यामि जयार्द्रं जयवाञ्छया। इत्युक्त्वा स्थण्डिले तस्थौ कृत्वा दर्भासनं महत् ॥
स्थितस्तत्र स धैर्येण दध्यौ शासनदेवताम्। आराधितो मया धर्मो जिनदेवः सुसेवितः ॥८२
गुरुश्च यदि प्राकट्यं भज शासनदेवते। इति ध्यायञ्जिनं चित्ते स्थितोऽसौ स्थिरमानसः ॥८३
समायासीत्तदा पार्थं परशासनदेवता। जजल्पेति हरिं पार्थं सा सुरी सुखकारिणी ॥८४
नरनारायणौ यत्र श्रीनेमिश्च महामनाः। तत्राहं प्रेष्यकारित्वं भजामि भवतामिह ॥८५
युवां च यच्छतां तूर्णं ममादेशं मनोगतम्। अवोचतां तदा तौ तां श्रेष्ठं वैरिवधोद्भवम् ॥८६
तच्छ्रुत्वाह सुरी शीघ्रमागच्छतं मया समम्। युवां सेत्स्यन्ति कार्याणि भवतोर्विपुलानि च ॥
तया सत्रं जगामाशु पार्थस्तेन सुमानसः। यत्र सौख्याकरी रम्या कुबेरस्नानवापिका ॥८८
हेमपद्मसमाकीर्णा हंससारससद्रवा। मणिसोपानसंरुद्धा चलत्कल्लोलमालिका ॥८९
देवी बभाण पार्थेशमेतस्य विपुले जले। वसतः फणिनौ भीमौ फणाफूत्कारकारिणौ ॥९०
भित्त्वा भयं नरेन्द्राद्य वापिकां प्रविश त्वरा। गृहाण नागयुगलं संशल्यमिव विद्विषः ॥९१
निशम्य निपुणः पार्थः प्रविश्य वरवापिकाम्। जग्राह भुजगद्वन्द्वं सर्वद्वन्द्वनिवारकम् ॥९२

मैं जयार्द्रको जयकी इच्छासे मारूंगाही। ऐसा कहकर वेदीमें बडा दर्भासन बिछाकर अर्जुन बैठ गया। ॥ ६८–८१ ॥

[शासनदेवतासे अर्जुन और श्रीकृष्णको बाणप्राप्ति] वेदिकाके ऊपर धैर्यसे बैठकर अर्जुनने शासनदेवताका ध्यान किया। मैंने यदि जिनधर्मकी आराधना की होगी, जिनेश्वरकी यदि सेवा की होगी और गुरु की यदि उपासना की होगी तो हे शासनदेवते, तू प्रगट हो। इस प्रकार जिनेश्वरको चित्तमें ध्याता हुआ अर्जुन स्थिरचित्त होकर बैठा। उस समय उत्तम शासनदेवता अर्जुन के पास आगई और वह सुख देनेवाली देवता कृष्ण तथा अर्जुनसे भाषण करने लगी। "हे अर्जुन, श्रीकृष्ण और उदार चित्तवाले नेमिप्रभु जहां है वहां–उस वंशमें मैं आपकी सेवा – आज्ञा पालन करनेके लिये तयार हूं। आप मुझे आपके मनमें जो कार्य स्थित है वह शीघ्र करनेके लिये आज्ञा देवें"। तब वे उसे वैरिवधका श्रेष्ठ कार्य कहने लगे। उसे सुनकर उस देवीने "मेरे साथ आप दोनो चलिए आपके समस्त कार्य सिद्ध होंगे। तब उसके साथ उत्तम मनवाला अर्जुन जहां सुखदायक रम्य कुबेरवापिका थी, गया। वह सुवर्णकमलोंसे भर गई थी। उसमें हंस, सारस पक्षियोंके मधुर शब्द हो रहे थे। वापिका रत्नमयसोपानोंसे सहित थी और उसमें चंचल कल्लोलोंकी पंक्ति थी। वह देवता अर्जुनको बोलने लगी कि "इस वापिकाके विपुल पानीमें फणाओंसे फूत्कार शब्द करनेवाले और भयंकर ऐसे दो सर्प रहते हैं। हे राजन्, आज भयको छोडकर त्वरासे वापिकामें प्रवेश करो। वहांसे दो नाग जो कि शत्रुको उत्तम शल्यके समान दीखते हैं" देवताका भाषण सुनकर और उत्तम वापिकामें प्रवेश करके सर्व–कलहोंके निवारण करनेवाले, इन दो नागोंको

एको यातु शरत्वं ते द्वितीयस्तु शरासनं । नरनारायणौ तुष्टौ तच्छ्रुत्वा सशरासनौ ॥९३
छित्वा जयार्द्रमूर्धानं तत्पातस्तपसि स्थितः । वने प्रविपुले ध्यानी विद्यायाः साधनेच्छया ॥
तदञ्जलौ क्षिप क्षिप्रं तस्मिन्क्षिप्ते स पञ्चताम् । यास्यत्येव भवच्छत्रुरन्योपायं च मा कृथाः॥
तन्निशम्य नरस्तुष्टो लात्वा धन्वशरौ परौ । आयातो विष्णुना सत्रं सैन्ये लोकसुखावहः ॥
उज्जगामार्यमा तावज्जनान्दर्शयितुं रणम् । उत्थिताः सुभटा योद्धुं सबला बलयोर्द्वयोः ॥९७
जयार्द्रं धीरयन्द्रोणोऽभाणीद्वत्स सुस्वच्छताम् । व्रज तूष्णीं भजंस्तिष्ठ करिष्ये तव रक्षणम् ॥
चतुर्दशसहस्राणां गजानामन्तरे त्वरा । द्रोणेन स्थापयित्वा स रक्षितो वररक्षणैः ॥९९
तुरङ्गाणां च लक्षेण संवेष्ट्याऽस्थापयत्स तम् । रथैः षष्टिसहस्रैश्च ततो बाह्ये व्यवेष्टयत्॥१००
लक्षैर्विंशतिसंख्यैश्च पदिकैस्तस्य रक्षणम् । विधायोवाच सद्रोणः समुद्र इव धीरधीः ॥१०१
जयार्द्ररक्षणं यूयं कुरुध्वं भो महानृपाः । अहं रणमुखे क्षिप्रं क्षेपिष्यामि विपक्षकान् ॥१०२
तदा युधिष्ठिरोऽवोचद्धरिं हरिमिवोद्धतम् । किं कार्यं च करिष्यामो वयं नष्टधियः स्थिताः ॥
चिरं त्वं संस्थितोऽटव्यां वृथा पार्थ प्रतिज्ञया । जल्पाको जल्पति स्वैरं निर्वाहो भुवि दुर्लभः ॥

अर्जुनने ग्रहण किया। उसमेंसे एक शरपनाको प्राप्त होगा अर्थात् बाण बनेगा और दूसरा धनुष्य होगा। वह सुनकर बाण और धनुष्य से सहित वे नरनारायण आनंदित हुए। जयार्द्रका मस्तक तोडकर घने जंगलमें उसका पिता विद्याको सिद्ध करनेकी इच्छासे तपमें तत्पर होकर बैठा है उसके अंजलिमें जल्दी फेक दो। उसको फेकनेसे आपका उत्कृष्ट शत्रु अवश्य मरेगा आपको अन्योपाय करनेकी जरूरत नहीं है। ऐसा सुख देनेवाला उत्कृष्ट उपाय सुनकर अर्जुन आनंदित हुआ, उत्कृष्ट धनुष्य और बाण लेकर विष्णुके साथ सैन्यमें आया॥ ८२–९६ ॥ उतनेमें रात्री समाप्त हुई और लोगोंको रण दिखानेके लिये सूर्य उदित हुआ। दोनों पक्षके बलवान् योध्दा लडनेके लिये उद्युक्त हुए। अनेक हाथी, घोडे, रथ और पैदलोंसे वेष्टित करके जयार्द्रको रक्षण करनेका अभिवचन द्रोणाचार्यने दिया। और उसके रक्षणार्थ वे युध्दके मुखपर खडे हुए। जयार्द्रको धीर देते हुए द्रोणाचार्यने कहा कि, वत्स, तुम स्वस्थ रहो, चिंता मत करो, मौन धारण करके बैठो। मैं तुम्हारा रक्षण करूंगा। द्रोणाचार्यने चौदह हजार हाथियोंके बीचमें त्वरासे जयार्द्रको स्थापन किया और उत्तम रक्षकोंके द्वारा उसका रक्षण किया। एक लाख घोडोंसे वे वेष्टित कर जयार्द्रकी स्थापना उन्होंने की। उनके बाहर साठ हजार रथोंके घेरेसे उसको वेष्टित किया। और बीस लाख पैदलोंसे उसका रक्षण करके समुद्रके समान धीर बुध्दिवाले द्रोणाचार्य कहने लगे कि हे महानृपगण, मैं रणके मुखपर शत्रुओंको शीघ्र नष्ट करूंगा॥ ९७–१०२ ॥

[**श्रीकृष्णने धर्मराजका समाधान किया**] उस समय युधिष्ठिरने सिंहके समान उध्दत हरिको–श्रीकृष्णको कहा, कि हम क्या कार्य करेंगे हमारी बुद्धि नष्ट हुई है। हे अर्जुन तू

श्रुत्वेति केशवोऽवोचच्छङ्कां मा कुरु पाण्डव । सेत्स्यत्यद्याखिलं कार्यं भवतां मङ्गलैःसह ॥
भोक्ष्यसे त्वं परं देशमेककः कुरुजाङ्गलम् । तत्क्षणे प्रणतः पार्थोऽवोचत्तं धर्मनन्दनम् ॥१०६
आदेशं देहि मे दोष्णोर्दर्शयामि बलं तव । तदादिष्टो विशिष्टात्मा धर्मजेन धनंजयः ॥१०७
रथारूढश्चचालामा रथस्थेन स विष्णुना । भयंकराणि तूर्याणि दध्वनुर्युद्धसंगमे ॥१०८
गजाः सज्जाः सुहेषाढ्याः हयाः सुभटकोटयः । समाट्ट रथसंदोहाः कुर्वन्तः सत्कलारवम् ॥
छिन्दन्तो मस्तकान्वैरिव्रजानां रुधिरारुणाम् । कुर्वन्तस्तु धरां धीरा योयुध्यन्ते स्म सद्युधि ॥
पातितैस्तु रथैर्भग्नैः पन्थाः पार्थेन सव्यथैः । गर्जद्भिस्तु गजैश्छिन्नहस्तैः संरुरुधेऽयनम् ॥
कबन्धानि च नृत्यन्ति तच्छीर्षैं रञ्जिता धरा । अन्त्रैः संवेष्टिता मर्त्यास्तदाभूवन्महारणे ॥
भटासृजां प्रवाहेन तरन्तो मानवास्तदा । भेजुः स्थितिं न कुत्रापि स्वगाधजलधाविव ॥११२
तत्क्षणे भज्यमानं स्वं द्रोणो वीक्ष्य महाबलम् । ददानो धीरणां सर्वान्प्रोवाच चतुरं वचः ॥
मा भज्यन्तां भटा भीता लज्यते येन स्वं बलम् । यत्राहं भवतां भीतिः कुतस्त्या भवत स्थिराः

दीर्घकालसे जंगलमें रहा है; इसलिये तूने ऐसी प्रतिज्ञा की है, जो व्यर्थ होगी। बोलनेवाला आदमी बोल तो जाता है परंतु उसका निर्वाह करना अतिशय दुर्लभ होना है। धर्मराजका भाषण सुनकर श्रीकृष्ण बोले, कि हे पाण्डव, तुम शंका मत करो तुह्मारा सर्व कार्य आज मंगलोंके साथ सिध्द होगा। तुम अकेले संपूण कुरुजांगल देशके स्वामी होंगे। उस क्षणमें अर्जुनने धर्मराजको नमस्कार किया और धर्मराज बोले, कि हे प्रभो, मुझे आप आशीर्वाद दीजिये। मैं आपको मेरे बाहुओंका बल दिखाऊंगा। तब विशिष्टात्मा धनंजयको धर्मराजने आज्ञा दी। रथमें आरूढ होकर रथमें बैठे हुए विष्णुके साथ अर्जुन चला। युध्दके प्रारंभमें वाद्य बजने लगे। गज सज्ज होगये। हींसनेवाले घोडे सज्ज होगये और कोट्यवधि शूर युध्दके लिये रणभूमिमें चलने लगे। गजादिकोंके समूह उत्तम मधुर आवाज करने लगे। शत्रुसमूहोंके मस्तक तोडनेवाले और पृथ्वीको रक्तसे लाल करनेवाले धीर वीर रणमें खूब लडने लगे॥ १०३-११०॥ अर्जुनने गिराये हुए भग्नरथोंसे मार्ग रुक गया, तथा जिनकी शुण्डायें टूटगई हैं और जो दुःखसे चिंघाड रहे हैं ऐसे हाथियोंसे मार्ग व्याप्त हुआ। रणभूमिमें मस्तकरहित शरीर नृत्य करने लगे। तथा उनके मस्तकोंद्वारा भूमी लाल होगई। उस महायुध्दमें सर्व मनुष्य आंतोंसे वेष्टित हुए। अर्थात् रणभूमिपर मरे हुए योधाओंकी आंतोंसे भूमि आच्छादित होनेसे आने जानेवाले योध्दा उससे वेष्टित हो जाते थे। अगाध समुद्रमें तैरनेके लिये असमर्थ मनुष्य जैसे उसमें कहीं भी स्थिर नहीं होते हैं वैसे योध्दाओंके रक्तके प्रवाहमें तैरनेवाले मानव कहीं भी नहीं ठहर सके। उस समय अपना सैन्य भग्न हो रहा है ऐसा देखकर सर्व लोगोंको धीर बंधाते हुए द्रोणाचार्य इस प्रकारसे चतुर वचन कहने लगे। "हे वीरगण, डरकर भाग जाना आपको योग्य नहीं है जिससे अपने सैन्यको लज्जित होना पडेगा। जिस रणभूमिमें

गुरुवाक्येन ते तस्थुः स्थिराश्च सुभटाः स्फुटम् । नरनारायणौ तावन्नत्वा गुरुमवोचताम् ॥
मद्वचः कुरु भो तात निवर्तय रणाङ्गणात् । स्फेटयावः परं सैन्यं लङ्घयावो गुरुं कथम् ॥
निशम्येति जगौ द्रोणो नोत्सरामि रणादहम् । यो मया रक्षितो मर्त्यः सोऽमरत्वं गतो भुवि ॥
इत्युक्ते क्रोधसंरुद्धः संक्रन्दनसुतस्त्वरा । रथारूढश्चचालाशु धनुःसंधानमादधत् ॥११९
तदा समाहता नादास्तूर्याणां भटभीतिदाः । नवबाणैर्हतो द्रोणः पार्थेन बलशालिना ॥१२०
द्रोणेन तत्क्षणात्तेऽपि संरुद्धा निजबाणतः । द्विगुणद्विगुणान्बाणान्विससर्ज पुनर्नरः ॥१२१
यावल्लक्षप्रमा जाताः पार्थेन प्रेषिताः शराः । द्रोणश्चिच्छेद तान्नूनं स्वशरै रणसंमुखैः॥१२२
तदावोचद्धरिः पार्थ विलम्बयसि किं नर । गुरुशिष्यरणं किं भो युक्तं वै रणसंविदाम् ॥१२३
श्रुत्वा नरः करे कृत्वा कृपाणं कारयन्सृतिम् । गच्छंश्च गुरुणा प्रोचे पृष्ठलग्नेन सत्वरम् ॥
तिष्ठ तिष्ठ क्व यासि त्वं नरेति जल्पितं गुरुम् । हसित्वा पाण्डवोऽवोचन्मा कार्षीस्त्वं रणं गुरो ॥

आपके साथ मैं हूं उसमें आपको भीति कैसी ? आप न भागें–स्थिर हो जावें । " गुरुके वाक्यसे वे सब योध्दा निश्चित स्थिर हुए । उतनेमें वहां आकर द्रोणाचार्यको नमस्कार कर नर और नारायण बोलने लगे, कि " हे तात, हमारा वचन सुनिए आप रणांगणसे हट जाइए । आप नहीं हटेंगे तो शत्रुसैन्यको हम कैसे नष्ट करेंगे आपको उलंघ कर जाना हमें शक्य नहीं दीखता है । " उन दोनोंका भाषण सुनकर द्रोण कहने लगे कि " मैं रणसे नहीं हटनेवाला हूं । जिसका मैंने रक्षण किया है वह मनुष्य इस भूतलमें अमर हुआ ऐसा समझो " ऐसा गुरुका भाषण सुनकर क्रोधसे भरा हुआ इन्द्रपुत्र अर्जुन त्वरासे रथारूढ होकर तथा शीघ्र धनुःसंधान कर युध्दको चलने लगा ॥ १११–११९ ॥

[द्रोणार्जुन–युद्ध] उस समय भटोंको भय उत्पन्न करनेवाले वाद्योंकी ध्वनि होने लगी । बलशाली अर्जुनने नौ बाण द्रोणके ऊपर छोडे । तत्काल द्रोणाचार्यने अपने बाणोंसे उनकोभी रोक दिया । अर्जुनने दुगुने दुगुने बाण द्रोणाचार्यपर छोडे । ऐसे छोडते छोडते वे बाण लक्षसंख्याप्रमाण हो गये । द्रोणनेभी अपने युद्धोन्मुख बाणोंसे अर्जुनके बाण तोड दिये ॥ १२०–१२२ ॥ " हे गुरो हम आपके पुत्र अश्वत्थामाके समान हैं । हमारे साथ आपका युद्ध शोभा नहीं देता है । इसलिये आप युद्धसे लौट जाइये ऐसा अर्जुनका वचन सुनकर द्रोणाचार्य युद्धसे लौटे । उस समय श्रीकृष्णने अर्जुनको कहा, कि हे अर्जुन, तुम विलम्ब क्यों कर रहे हो । रण जाननेवालोंको गुरु और शिष्योंका लडना क्या योग्य जंचता है ? श्रीकृष्णका वाक्य सुनकर और हाथमें तरवार लेकर मार्गको निकालता हुआ अर्जुन जाने लगा । उस समय गुरु उसके पीछे सत्वर जाते हुए बोलने लगे कि "हे अर्जुन ठहरो ठहरो तुम कहां जा रहे हो" ऐसा बोलनेवाले गुरुको अर्जुन हसकर कहने लगा, कि "हे गुरो, आप हमारे साथ मत लडें । क्यों कि अश्वत्थामाके समान हम पाण्डव और विष्णु आपके पुत्र हैं । उनमें कुछ अन्तर

सुतास्ते पाण्डवा विष्णुरश्वत्थामाविशेषतः । न भेदो विद्यते तात तैर्युद्धं किं समुच्यताम् ॥
जनकात्मजयोर्युद्धं शोभते किं दुरावहम् । मार्यते केवलं वैरी रणेऽतस्त्वं निवर्तय ॥१२७
निवृत्तो लज्जितो द्रोणः पार्थो हन्ति परान्परान् । एको मतङ्गजान्सिंहो यथा विक्रमसंक्रमः ॥
गर्जन्गाण्डीवनादेन प्रलयाब्धिरिवापरः । बिभेद कौरवं सैन्यं पार्थः संत्रासयन्परान् ॥१२९
केचिदूचुस्तदा भूपाः पार्थो द्रोणेन प्रेषितः । प्रविष्टोऽनर्थसंघातं करिष्यति न चान्यथा॥१३०
श्रुत्वा शतायुधः क्रोधाद्रुरोध हरिशक्रजौ । ताभ्यां तस्य रथाश्छिन्ना वाजिनो गजराजयः ॥
तदा शतायुधश्चित्ते ध्यायति स्मेति निश्चलः । सामान्यास्त्रेण दुःसाध्यौ प्रसिद्धौ वैरिणाविमौ ॥
शतायुधस्तदा चित्ते सस्मार परमां गदाम् । सा स्मृता तत्करे चायाद्दासीवायोधने परे ॥१३३
पार्थं बभाण वैकुण्ठस्तव कार्यं न चेक्ष्यते । सिद्धितां गतमत्यर्थं संदिग्धं च प्रवर्तते ॥१३४
हन्म्यहं पार्थ विज्ञानाद्वैरिणं निश्चलो भव । वैरिणं पुनराह स्म माधवः सुशतायुधम् ॥१३५
गदां मुञ्च रणेनालं विलम्बं कुरुषे च किम् । निशम्य शत्रुणा चित्ते चिन्तितं चलचेतसा ॥

. . . . .

नहीं है। इस लिये उनके साथ हे तात, आपका युद्ध कैसा? कहियेगा जनक और आत्मजका युद्ध अर्थात् पिता और पुत्रका दुःखदायक युद्ध क्या शोभा पाता है? हमको सिर्फ वैरीको रणमें मारना है इस लिये आप युद्धसे लौट जाइये" ॥ १२३–१२७ ॥ लज्जित होकर द्रोण युद्धसे निवृत्त हुए। जैसे पराक्रमयुक्त एकही सिंह हाथीको मारता है वैसे पराक्रमका आवेश धारण करनेवाले अर्जुनने अनेक शत्रुओंको मार डाला। गाण्डीवकी ध्वनिसे प्रलयसागरकी गर्जनाके समान गर्जना करनेवाला अर्जुन शत्रुओंको डराता हुआ कौरवोंके सैन्यको भेदने लगा ॥ १२८–१२९ ॥ उस समय कोई राजा कहने लगे, कि पार्थको द्रोणाचार्यहीने भेज दिया है अर्थात् उसके साथ युद्ध न करके उसे अपने सैन्यमें घुसाया है। अब वह अनेक अनर्थ करेगा, यह हमारा कहना मिथ्या नहीं होगा ॥ १३० ॥

[शतायुधकी गदासे शतायुधकाही विनाश] शतायुधराजाने उपर्युक्त वचन सुनकर क्रोधसे हरि तथा अर्जुनको रोक लिया। उन दोनोंने शतायुधके रथ, घोडे और हाथियोंके समूह नष्ट किये। तब शतायुधने अपने मनमें इस प्रकार निश्चित विचार किया कि सामान्य अस्त्रसे ये नरनारायण प्रसिध्द वैरी दुःसाध्य है। शतायुधने उस समय उत्तम दैवी गदाका स्मरण किया। स्मरण करनेपर वह दासीके समान उस युध्दमें उसके हाथमें आई ॥ १३१–१३३ ॥ अर्जुनको वैकुण्ठ कहने लगे कि 'हे अर्जुन तेरा कार्य सिध्दिको प्राप्त होगा ऐसा नहीं दिखता। तेरे कार्यकी सिध्दिमें अतिशय संशय है। हे अर्जुन मैं अब विज्ञानसे अर्थात् युक्तिसे वैरीको मारूंगा तु निश्चल हो। निश्चित ठहर।' शतायुध शत्रुको कृष्णने कहा "तुझे युध्द करनेकी आवश्यकता नहीं तू गदा छोड दे तेरा कार्य सिध्द होना है। तूं विलंब क्यों करता है?" कृष्णका भाषण सुनकर चंचल चित्तवाले शत्रुने मनमें विचार किया, कि "कलहके कारणरूप ऐसे ये नर और नारायण इस गदाके द्वारा नष्ट हो जाने-

नरनारायणौ चेमौ कलिहेतू निराकृतौ । गदया सुखहेतू च स्यातां दुर्योधनस्य वै ॥१३७
चिन्तयित्वा गदा तेन मुक्ता विष्णोरुरःस्थले । सा गता पुष्पदामत्वं तन्वती च सुगन्धताम् ॥
अर्चयित्वा हरिं गत्वा पतिता वैरिमस्तके । शतायुधं जघानाशु गदा गर्वापहारिणी ॥१३९
तदा समुत्थितं सैन्यं कौरवाणां युयुत्सया । ताभ्यां शरैः समुच्छिन्नं विच्छिन्नसमवायिभिः ॥
सोऽवादीत्पार्थ तृषिता न चलन्ति तुरङ्गमाः । अस्मिन्वर्त्मनि पादाभ्यामावाभ्यां चल्यतां लघु
पदातीभूय कर्तव्यः संगरः शत्रुहानये । धनंजयो जगादेति समाकर्णय माधव ॥१४२
मम खण्डवने दत्तो देवैर्दिव्यशरो महान् । आनयामि प्रभावेन तस्य गङ्गाजलं महत् ॥
भणित्वैवं विसर्ज्यासावाशुगं च समानयत् । गङ्गाजलं क्षणात्तत्र महाकल्लोलसंकुलम् ॥१४४
स्नापितास्तुरगास्तत्र प्रमोदं प्रापिता जलैः । तदा नभसि देवौघा जजल्पुः स्वल्पशब्दतः ॥
पातालात्सलिलं येन समानीतं महीतले । तेन सत्रं समारब्धं तुमुलं मानवा जडाः ॥१४६
हरिर्योद्धुं समुत्तस्थे पार्थोऽपि रथसंस्थितः । मुमोच लक्षविशिखान्संख्ये क्षेप्तुं विपक्षकान् ॥
तैः शरैर्निखिला विद्धा गजवाजिपदातयः । रथास्तदाखिला नष्टा अनिष्टाः कौरवे बले ॥

पर वे दुर्योधनके लिये सुखके कारण होंगे। " ऐसा विचार करके उसने विष्णुके वक्षःस्थलपर गदा छोड दी वह पुष्पमालाके रूपकी बन गई और उसका सुगंध फैलने लगा। उसने हरिकी पूजा की और वह लौटकर वैरीके मस्तकपर-शतायुधके मस्तकपर पड गई। गर्वको हरण करनेवाली उस गदाने शतायुधको तत्काल मार दिया ॥ १३४-१३९ ॥ उस समय कौरवोंकी सेना लडनेकी इच्छासे उठकर खडी हो गई। उन दोनोंने जिनका सामूहिक रूप टूटा है ऐसे शरोंसे उस सैन्यको तितर बितर कर दिया अर्थात् उस सैन्यपर उन दोनोंने क्रमसे बाण छोडकर उसको इधर उधर भगाया ॥१४०॥

[अर्जुनने घोडोंको गंगाजल पिलाया] कृष्णने अर्जुनसे कहा कि ' हे अर्जुन, प्यासे हुए घोडे इस मार्गमें नहीं चलेंगे, इसलिये अब हम दोनोंजने पैदलही जल्दी चलेंगे। अब हमको पैदल सैनिकका रूप धारण कर शत्रुका नाश करनेके लिये युद्ध करना होगा " तब धनंजयने कहा कि, " हे माधव मेरा भाषण सुनो। मुझे खाण्डववनमें देवोंने महान् दिव्यबाण दिया है उसके प्रभावसे मैं विपुल गंगाजल लाऊंगा " ऐसा बोलकर अर्जुनने उस दिव्यशरको छोडकर महातरंगोंसे व्याप्त ऐसा गंगाका पानी तत्काल लाया। उस पानीमें उसने अपने रथके घोडे नहलाये और उनको आनंदित किया ॥ १४१-१४५ ॥ उस समय देवसमूह आकाशमें स्वल्पशब्दोंसे बोलने लगे, कि जिसने पातालसे भूतलपर पानी लाया है उसके साथ हे जड मानव आप युद्ध करने लगे हैं ? ॥ १४६ ॥ हरि लडनेके लिये तयार हुआ और रथमें बैठा हुआ अर्जुनभी उद्युक्त हुआ। युद्धमें शत्रुओंको तितर बितर करनेके लिये उसने लक्ष बाण छोड दिये ॥ १४७ ॥ अर्जुनने उन बाणोंसे गज, घोडे और पैदल तथा अनिष्ट सब रथोंको नष्ट किया। तब दुर्योधनने कहा कि आप सब भागते क्यों है ?

तदा दुर्योधनः प्राप्तोऽप्राक्षीद्धो भज्यते कथम् । भवाद्भिः संजयन्तस्तु बभाण शृणु भूपते ॥
पार्थेन निखिलं सैन्यं भवत्सैन्यं च विष्णुना । दुर्मर्षणबलं सर्वं निरस्तं प्रपलायितम् ॥१५०
दुःशासनस्तु नायातो द्रोणस्त्यक्तो गुरुत्वतः । ताभ्यां च कृतवर्माणो हताः संगरसंगिनः ॥
शिशुदक्षिणमुख्याश्च हतास्ताभ्यां नृपाः शरैः । ध्वस्तः शतायुधो युद्धे वृन्दविन्दौ नृपौ हतौ ॥
पातालाच्च समानीता गङ्गा पार्थेन पावनी । ताविदानीं न जानेऽहं किं करिष्यत उद्धुरौ ॥
क्रुद्धो दुर्योधनोऽवादीन्निन्दयन्द्रोणसद्गुरुम् । द्रोण किं भवतारब्धं वैरिणो हि प्रवेशनम् ॥
त्वया च मानिताः सर्वे वैरिणो विषमाहवे । पक्षं त्वं पाण्डवानां हि धत्से ते बुद्धिरीदृशी ॥
तदा गुरुर्बभाणेति विषादान्वितमानसः । पार्थबाणेन विद्धोऽहं तेन यामि न तुल्यताम् ॥
अयं युवा च वृद्धोऽहं तेन योद्धुं कथं क्षमः । यौवनश्रीसमाक्रान्तस्त्वं तेन कुरु संगरम् ॥१५७

ऐसा पूछनेसे संजयन्तने कहा, कि हे राजन् सुनो। अर्जुनने संपूर्ण सैन्य नष्ट किया है और आपका सैन्य विष्णुने नष्ट किया है। तथा दुर्मर्षणका सर्व सैन्य भागता हुआ नष्ट किया गया। दुःशासन तो युद्धमें आया नहीं। तथा द्रोणाचार्य गुरु होनेसे उनको अर्जुन और श्रीकृष्णने छोड दिया। उन दोनोंने कृतवर्मराजाके युद्धमें लडनेवाले सैनिक नष्ट किये। शिशु, दक्षिण ये राजा जिनमें मुख्य हैं ऐसे राजा बाणोंसे उन दोनोंने नष्ट किये। शतायुधराजा युद्धमें मारा गया। वृन्दराजा और विन्द-राजा दोनोंभी मारे गये। अर्जुन पातालसे पवित्रगङ्गा लाया था। ऐसे प्रबल ये कृष्ण–अर्जुन क्या करेंगे कुछ नहीं जाना जाता। यह सब वृत्त सुनकर दुर्योधन कुपित होकर द्रोणाचार्यकी निन्दा करने लगा ॥ १४८–१५३ ॥

[अर्जुनने दुर्योधनको पराजित किया] "हे द्रोणगुरो, आपने वैरियोंका प्रवेश होने दिया यह क्या योग्य कार्य किया है? संपूर्ण वैरियोंका विषमयुद्धमें आपने आदर किया है। आपने पाण्ड-वोंका पक्ष धारण किया। हे गुरो, आपकी बुद्धि ऐसी कैसी हो गई? गुरुने विषण्णचित्त होकर कहा कि "मैं अर्जुनके बाणसे विद्ध हूं इस लिये मैं उसके समान बली कैसे हो सकता हूं। यह अर्जुन तरुण है और मैं वृद्ध हूं इस लिये उसके साथ लडनेमें मैं कैसे समर्थ हो सकता हूं। "हे दुर्योधन, तू तारुण्यलक्ष्मीसे युक्त है। तू उसके साथ युद्ध कर" ऐसा द्रोणाचार्यका वचन सुनकर मैं अर्जुनको शीघ्र यमका मार्ग देता हूं अर्थात् मैं उसको शीघ्र मारूंगा ऐसा आनंदसे कहनेवाला दुर्योधन धनुष्य लेकर युद्धके लिये उद्युक्त हुआ। दुर्योधन और अर्जुन दोनों युद्ध करनेके लिये उद्युक्त हुए। दोनोंका शरीर युद्धलक्ष्मीसे सुशोभित दीखता था अर्थात् दोनों पराक्रमसे शोभते थे। अनेक वीरोंने उन दोनोंका आश्रय लिया था। दुर्योधनने अर्जुनके छोडे हुए बाण बीचमेंहि निश्च-यसे काट दिये। दुर्योधनने हंसकर कहा, कि हे अर्जुन तेरे गाण्डीवका क्या उपयोग है वह तो बेकार है। हंसकर श्रीकृष्णने कहा कि अब तुम थके हुए क्यों चुप बैठो हो? अर्जुनने कहा कि

श्रुत्वेति चापमादाय कौरवो योद्धुमुद्यतः। पार्थं यमपथं तूर्णं दास्यामीति मुदा वदन्॥१५८
दुर्योधनेन्द्रपुत्रौ च युद्धं कर्तुं समुद्यतौ। रणलक्ष्म्या लक्षिताङ्गौ वीरवर्गसमाश्रितौ॥१५९
दुर्योधनेन संछिन्नाः पार्थस्य विशिखाः खलु। जहास कौरवः किं भो गाण्डीवेन तवाधुना॥
हसित्वाथ हरिः प्राह श्रान्तः किं तिष्ठसेऽधुना। पार्थः प्रोवाच वैकुण्ठ गहनं मे न किंचन॥
अरीन्हत्वा प्रपन्नोऽहं खेदं तेन स्थिरं स्थितः। निराकरोमि सच्छत्रून् मम पश्य पराक्रमम्॥
जित्वाथ कौरव तूर्णं ग्रहीष्यामि वरं यशः। भणित्वैवं पृथुः पार्थः शरैर्विव्याध कौरवम्॥
निजसैन्येन संभग्नः कौरवः कुरवश्रितः। तावद्ध्मौ हृषीकेशः शङ्खं वै पाञ्चजन्यकम्॥
तन्निनादं निशम्याशु जयार्द्रः कुपितः क्षणात्। अश्वत्थामा विनिस्थामा बभूव भयभीतधीः॥
समुद्धतं कुरोः सैन्यं पार्थेनैकेन संहृतं। कृष्णस्याग्रे पुनः सैन्यं किमुद्धरति तस्य वै॥१६६
अतिरौद्रं रणं जातं रुण्डमुण्डान्विता धरा। तदासीच्छ्वासनिर्मुक्ताः कुणपाः पत्रवत् स्थिताः॥
पार्थः क्रुद्धस्तदा वीक्ष्य जयार्द्रं जयवर्जितम्। उवाच मर्मसंभेदि वाक्यैः संभेदयंस्त्वरा॥१६८
रे जयार्द्र त्वया युद्धेऽभिमन्युस्तु विदारितः। त्वत्पराक्रममालां मां वीरविद्यां च दर्शय॥
संरक्ष्य कौरवान्सर्वांस्त्वं दृष्टश्चिरकालतः। चेच्छक्तिरस्ति ते नूनं सज्जो भव रणाङ्गणे॥१७०

"हे वैकुण्ठ मुझे इसमें कुछभी कठिनता अनुभवमें नहीं आती है? शत्रुओंको मारकर मैं खिन्न हुआ हूं जिससे कुछ क्षणतक स्थिर बैठा हूं। अब शत्रुओंको नष्ट करूंगा, मेरा पराक्रम आप देख लीजिये। इस दुर्योधनको शीघ्र जीतकर मैं उत्तम यशको प्राप्त करूंगा।" ऐसा बोलकर महान् पराक्रमी अर्जुनने बाणोंसे दुर्योधनको विद्ध किया। तब अपने सैन्यके साथ आक्रंदन करता हुआ दुर्योधन वहांसे भाग गया॥ १५४–१६३॥

[अर्जुनने जयद्रथका वध किया] तब हृषीकेशने–श्रीकृष्णने पांचजन्य नामक शंख फूका शीघ्र उसका आवाज सुनकर जयार्द्र तत्काल कुपित हुआ। अश्वत्थामाकी बुद्धि भयसे नष्ट हो गई, वह बलरहित हुआ। अतिशय उध्दत ऐसा कुरुराजाका सैन्य अकेले अर्जुनने नष्ट किया। फिर कृष्णके आगे उस कौरवका सैन्य कैसा बचकर रहेगा? उस समय अतिभयंकर युद्ध हुआ। सम्पूर्ण रणभूमि रुण्डोंसे और मुण्डोंसे व्याप्त हो गई। उस समय सर्व भूमि श्वासरहित हुई। वहां श्मशानकी शांतता दीखने लगी। सर्वत्र प्रेत पेडके पत्तोंके समान पडे हुए थे॥१६४–१६७॥ उस समय जयरहित जयार्द्रको देखकर अर्जुन क्रुध्द हुआ। और मर्मको छेदनेवाले वाक्योंसे वह त्वरासे जयार्द्रको इस प्रकार बोलने लगा। "हे जयार्द्र तूने युद्धमें अभिमन्युको विदीर्ण किया। तेरी पराक्रमपंक्ति अर्थात् विशाल पराक्रम और वीर–विद्या मुझे दिखा दे। सर्व कौरवोंसे रक्षित होनेसे तू दीर्घकालके बाद देखा गया। यदि तुझमें शक्ति हो, तो तू निश्चयसे रणांगणमें सज्ज हो।" ऐसे भाषणसे संपूर्ण देवोंको आनंदित करते हुए अर्जुनने बाणसमूहके द्वारा उसके धनुष्य, ध्वज और घोडे छिन्न

इति वाक्येन पार्थेशस्तोषयन्सकलान्सुरान् । चिच्छेद बाणसंघातैस्तच्चापध्वजवाजिनः ॥१७१
बिभेद तस्य संनाहं तदावोचज्जनार्दनः। पार्थास्तं याति नो यावद्दिवानाथः समुच्छ्रितः ॥
तावज्जयार्द्रमूर्धानं लुनीहि लावकैः शरैः । जललब्धमहानागबाणं पार्थस्तदाग्रहीत् ॥१७३
यः शासनमहादेव्या सर्परूपेण संददे । तेन बाणेन पार्थोऽसौ लुलाव तस्य मस्तकम् ॥१७४
तच्छीर्षं च समादाय व्योम्नि संप्रेष्य तत्क्षणे । तपस्स्थस्य वने क्षिप्तं जनकस्य कराञ्जलौ ॥
यथा सरसि संछिन्नं हंसैः शतदलं तदा । वीक्ष्य तज्जनकस्तूर्णं पपात पृथिवीतले ॥१७६
जयार्द्रे च हते पाण्डुसैन्ये जयरवोऽभवत् । पार्थस्य जयसंलब्धा कीर्तिर्बभ्राम भूतले ॥१७७
हाहारवस्तदा जज्ञे कौरवीयेऽखिले बले । दुर्योधनेन विज्ञाय रुरुदे बाष्पमोचिना ॥१७८
अद्यैव सकलं सैन्यं शून्यं जातं त्वया विना । कौरवं धीरयंस्तावदश्वत्थामा जगौ ध्रुवम् ॥
हनिष्यामि रणे पार्थं दुःखं किं क्रियते नृपाः । इत्युक्त्वा धनुषं धृत्वा दधाव गुरुनन्दनः ॥
पार्थेन सह स क्रुद्धश्चक्रे युद्धं महाशरैः । अश्वत्थामा च चिच्छेद पार्थचापगुणं गुणी ॥१८१
अन्यं कोदण्डमादाय पार्थो विस्फुरिताननः । चुकोप मत्तदन्तिभ्यो मृगेन्द्र इव भीषणः ॥
षड्भिः शरैस्तदा पार्थोऽपातयत्तस्य सारथिम् । अश्वत्थामा गतो भूमौ हतो मूर्च्छामुपागतः॥

कर डाले और उसका कवच भी भिन्न किया। श्रीकृष्ण तब अर्जुनको बोले, कि "हे अर्जुन ऊपर आया हुआ सूर्य अस्तको पहुंचनेसे पहले तोडनेवाले--तीक्ष्णशरोंसे जयार्द्रका मस्तक तोड" उस समय पानीमें--वापिकामें प्राप्त हुए महानागबाणको अर्जुनने ग्रहण किया, जो कि शासनमहादेवताने सर्परूपसे दिया था। अर्जुनने उस बाणसे जयार्द्रका मस्तक तोड दिया। उसका मस्तक तत्काल ग्रहण कर आकाशमें भेजकर वनमें तप करनेवाले उसके पिताके हाथकी अंजलिमें फेंक दिया। सरोवरमें हंसोंने तोडे हुए कमलके समान जयार्द्रका मस्तक देखकर उसका पिता शीघ्र भूतलपर गिर पडा। जयार्द्रके मारे जानेसे पाण्डवोंके सैन्यमें जयजयकार होने लगा। अर्जुनकी जयसे प्राप्त हुई कीर्ति भूतलमें विचरने लगी। उस समय कौरवोंके संपूर्ण सैन्यमें हाहाकार होने लगा। दुर्योधनको यह वृत्त माळूम पडा तब उसके आखोंसे अश्रु निकलने लगे। वह रोने लगा। 'हे जयार्द्रकुमार, आजही तेरेविना मेरा सब सैन्य शून्य हो गया है ॥ १६८--१७८ ॥ दुर्योधनको धैर्य देनेवाला अश्वत्थामा उसे दृढतासे कहने लगा, कि "मैं निश्चयसे रणमें अर्जुनको मारूंगा। हे राजा, आप दुःख क्यों करते हैं ?" ऐसा बोलकर धनुष्य धारण कर गुरुनंदन--अश्वत्थामा वहांसे अर्जुनके साथ लडनेके लिये दौडा। उसने अर्जुनके साथ क्रुध्द होकर महाबाणोंसे युद्ध किया। गुणी अश्वत्थामाने अर्जुनके धनुष्यकी डोरी तोड दी। जिसका मुख प्रफुल्लित हुआ है ऐसा अर्जुन अन्य धनुष्य ग्रहण करके मत्त हाथियोंपर जैसा भयंकर सिंह कुपित होता है वैसे कुपित होकर छह बाणोंसे अश्वत्थामाके सारथिको रथसे नीचे गिराया। अश्वत्थामा भी जमीनपर गिरकर

गुरुपुत्रं परिज्ञाय मुक्तः पार्थेन सोऽञ्जसा। हता अन्ये नृपास्तेन हरिणेव मतङ्गजाः ॥१८४
तावच्च रजनी जाता तयोः सैन्यं निवर्तितम्। ईर्ष्यावशेन क्रुद्धेन कौरवेण गुरुर्जगे ॥१८५
भो तात ब्रूहि सत्यं त्वं मार्गं न यद्यदास्यथाः। अहनिष्यत्कथं पार्थो गजवाजिभटोत्तमान्॥

क्रुद्धो द्रोणस्तदावोचन्मत्वा मां ब्राह्मणं गुरुम्।
मुक्तोऽहं तेन युध्यध्वं यूयं क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ १८७

भवद्भिस्तु कथं मुक्तः पार्थः संगरसंगतः। न पश्यथ कृतं दोषं स्वयं यूयं दुराग्रहात् ॥१८८
शक्रसूनोर्मया दृष्टं बलं पूर्वमनेकशः। यद्रोचते भवद्भिस्तत्क्रियतामधुना भृशम् ॥१८९
तन्निशम्य जगादैवं कौरवेशः क्षमस्व भोः। मम तातापराधं त्वं महांश्च महतां गुरुः॥१९०
त्वया मया प्रहर्तव्या रजन्यां वैरिणां व्रजाः। कर्णस्याग्रेऽप्ययं मन्त्रः कथितस्तैः समुद्धतैः॥
यामिन्यां निर्गतं सैन्यं कौरवाणां कृपातिगम्। तदा कलकलो जज्ञे सुभटानां रणार्थिनाम् ॥

मूर्च्छित हुआ। परमार्थसे उसे गुरुपुत्र समझकर पार्थने छोड दिया। जैसे सिंह हाथियोंको मारता है वैसे अर्जुनने दूसरे अनेक राजा युद्धमें मारे। इतनेमें रात्री हो गई और दोनोंके सैन्य युद्धसे अपने स्थानपर लौटकर गये ॥ १७९-१८५ ॥

[दुर्योधनकी द्रोणाचार्यसे क्षमा-याचना] इर्ष्याके वश होकर क्रुध्द दुर्योधनने द्रोणाचार्यको कहा, कि "हे तात, आप सत्य कहिए, यदि आप अर्जुनको मार्ग न देते तो वह हाथी, घोडे, उत्तम शूर पुरुषोंको कैसे मार सकता था? तब द्रोणाचार्य कुपित होकर कहने लगे, कि मुझे ब्राह्मण और गुरु समझकर उसने छोड दिया। तुम लोग श्रेष्ठ क्षत्रिय हो। उसके साथ युद्ध करो। युद्धमें आया हुआ अर्जुन तुमसे कैसा छूट गया? इस प्रश्नका उत्तर दो। तुम लोग दुराग्रहसे अपना किया हुआ दोष नहीं देखते हो। इन्द्रपुत्र अर्जुनका बल मैंने पूर्व भी अनेकबार देखा है इस समय आपको जो रुचे वह कार्य यथेच्छ-प्रचुर कर सकते हो। द्रोणाचार्यका यह भाषण सुनकर दुर्योधन ऐसा बोला कि "हे तात, आप बडे हैं और महापुरुषोंके गुरु हैं। मेरे अपराधोंकी आप मुझे क्षमा कीजिये ॥ १८६-१९० ॥

[रात्रिमें द्रोणादिकोंने पांडवसैन्यपर हमला किया] द्रोणाचार्यको दुर्योधनने कहा, कि रात्रीमें शत्रुके समूहपर आप और मैं मिलकर हमला करेंगे--प्रहार करेंगे। कर्णके आगे भी उन उद्धत लोगोंने अपना विचार कहा। कौरवोंका दयारहित सैन्य रात्रीमें निकला, उस समय युद्धाभिलाषी लोगोंके कलकल शब्द होने लगे। जैसे अंधकारमें कौवेके शत्रु अर्थात् उल्लू पक्षी प्रवेश करते हैं, वैसे पांडवोंका सैन्य सुप्त हुआ था ऐसे समय घोडे और हाथियोंसे भयंकर कौरवोंका सैन्य घुसने लगा। तूणीरमेंसे बाहर निकालकर धनुष्योंके ऊपर रखकर छोडे गये बाणोंसे कौरवके पक्षके राजाओंने पाण्डवोंकी सेना छिन्न भिन्न की। पाण्डवोंके पक्षके राजा कौरवोंके आगे क्षणपर्यन्तभी

विविशुः कौरवा वेगाद्वाजिवारणभीकराः। पाण्डवीये बले सुप्ते ध्वान्ते ध्वाङ्क्षारयो यथा॥
कौरवाणां नृपैश्छिन्ना पाण्डवानामनीकिनी। नानाबाणगणैस्तूणादुद्धृतैर्धन्वसुधृतैः ॥१९४
कौरवाग्रे क्षणं स्थातुं न क्षमास्तु क्षमाभृतः। पाण्डवानां भृशं भग्ना बभ्रमुस्त इतस्ततः॥
पृषत्कैर्दशभिर्विद्धः पावनिः पावनोऽपि तैः। त्रिभिस्त्रिभिस्तथा विद्धौ मद्रीपुत्रौ मदोद्धतौ॥
दशभिस्तु तथा विद्धो घुटुको विशिखैर्नृपैः। पञ्चभिस्तु तथा भिन्न आशुगैः शक्रनन्दनः॥
शिखण्डी षट्शरैर्विद्धो धृष्टद्युम्नस्तु सप्तभिः। वैकुण्ठः पञ्चभिर्बाणै रुद्धः संसिद्धशासनः॥
तावद्युधिष्ठिरः क्रुद्धो युद्धं कर्तुं समुद्यतः। दुर्योधनं शरैश्छित्त्वापातयन्मूर्च्छितं भुवि ॥१९९

द्रोणस्तस्थौ रणं कर्तुं संमुखो न पराङ्मुखः।
प्रविष्टः पाण्डवे सैन्ये व्योम्नि भास्वानिवोन्नतः ॥२००

प्रभाते पाण्डवं सैन्यं द्रोणेनोत्सारितं क्षणात्। पार्थो बबन्ध तं द्रोणं ब्रह्मास्त्रेण सुशस्त्रवित्॥
गुरुं कृत्वा प्रपूज्यासौ मुक्तः पार्थेन धीमता। द्रोणस्तु लज्जितस्तस्थौ रणाभिर्वृत्य निर्व्रणः॥
पार्थस्तु सारथिं सार्थं जगौ वाहय सद्रथम्। कर्णो दुर्योधनश्चास्तेऽश्वत्थामा यत्र तत्र वै॥
तदा दुर्योधनः कर्णमुवाच तस्य सद्रथम्। गृहीत्वा स्वकरे कर्ण नष्टं नो विपुलं बलम्॥

स्थिर रहनेमें समर्थ नहीं थे। वे भग्न होकर इतस्ततः भ्रमण करने लगे। पवित्र भीमको भी उन्होंने दश बाणोंसे विध्द किया। तथा तीन तीन बाणोंसे मदोद्धत नकुल और सहदेवको उन्होंने विद्ध किया। राजाओंने दस बाणोंसे भीम और हिडिंबाका पुत्र-घुटुक (घटोत्कचको) विद्ध किया और पांच बाणोंसे अर्जुनको विध्द किया? शिखण्डीको छह शरोंसे और धृष्टद्युम्नको सात बाणोंसे विद्ध किया। जिसका राजशासन पूर्ण सिध्द हुआ है ऐसे वैकुण्ठको पांच बाणोंसे विध्द किया। यह सब परिस्थिति देखकर क्रुद्ध हुए युधिष्ठिरने लडना शुरू किया। उसने दुर्योधनको बाणोंसे विद्ध करके जमीनपर गिराया और मूर्च्छित किया। पाण्डवोंके सैन्यमें प्रवेश किये हुए द्रोणाचार्य आकाशमें उंचे सूर्यके समान रण करनेके सम्मुख हुए। वे पराङ्मुख नहीं हुए। प्रातःकाल पाण्डवोंके सैन्यको तत्काल द्रोणाचार्यने पीछे हटाया तब उत्तम शस्त्रोंके वेत्ता अर्जुनने आचार्यको ब्रह्मास्त्रसे बांधा परंतु गुरु समझकर विद्वान् अर्जुनने उनकी पूजाकर उन्हें मुक्त किया। परंतु व्रणरहित द्रोण लज्जित होकर रणसे लौटकर स्तब्ध बैठ गये॥ १९१-२०२॥ अर्जुनने सारथिको कहा, कि प्रयोजनभूत-शस्त्रोंसे भरा हुआ उत्तम रथ तुम उधर चलाओ, जहां कर्ण, दुर्योधन और अश्वत्थामा हैं। तब दुर्योधन कर्णके रथको अपने हाथमें लेकर कर्णको बोला, कि "हे कर्ण अपना बल-सैन्य सब नष्ट हुआ है। तब कर्णने कहा, कि हे राजन्, तू मनमें विषाद मत कर। प्रथमतः मैं अर्जुनको मारूंगा और अनंतर दूसरे राजाओंको मारूंगा॥ २०३-२०५॥

[घुटुकके वधसे पाण्डव खिन्न हुए] जिनके मनमें क्रोध उत्पन्न हुआ है ऐसे कर्ण और

तदा भानुसुतोऽवोचन्मा विषादं व्रजाधुना । प्रथमं मारयिष्यामि पार्थं पश्चात्परान्नृपान् ॥
तदा कर्णार्जुनौ लग्नौ योद्धुं संक्रुद्धमानसौ । युधिष्ठिरेण संलग्ना योद्धुं सर्वेऽपि कौरवाः ॥२०६
रुन्धन्तं प्रधने योधाः शरैर्गगनमण्डलम् । चक्रिरे बधिराः काष्ठाः कष्टानिष्टमुपागताः॥२०७
कर्णस्य स्यन्दनो भग्नः पार्थेन पृथुचेतसा । सगुणश्च धनुश्छिन्नः सरद्भिर्विशिखैः खलु ॥२०८
द्रोणः स्यन्दनमारुह्य धृष्टार्जुनं समाह्वयत् । धृष्टद्युम्नः करिष्यामि मृतिं तेऽहं गुरुं जगौ॥२०९
इत्युदीर्य शरैश्छिन्नो धृष्टद्युम्नेन सद्गुरुः । आगच्छन्तः शराश्छिन्ना गुरुणा गुरुणा गुणैः ॥
ध्वजो रथस्तथा छिन्नो धृष्टद्युम्नस्य तेन वै । विंशतिं च सहस्राणि क्षत्रियाणां जघान सः ॥
गजानां वाजिनां संख्यां हतानां वेत्ति कः पुमान् । लक्षैकं सुभटास्तेन पातिताः पतिता भुवि॥

एका चाक्षौहिणी ध्वस्ता गुरुणा तावदुत्थितः ।
व्योम्नि स्वरः सुराणां हि द्रोणं संवारयन्निति ॥२१३

अतिमात्रं कियन्मात्रं कुरुषे किल्बिषं भृशम् । नृपैः सह विरोधस्तु त्वया किं भो विधीयते ॥

आगच्छ स्वच्छतां लात्वा ब्रह्मेन्द्रो भव भव्य भोः ।
भीमोऽभाणीत्तदा विप्र किं करिष्यसि किल्बिषम् ॥२१५

पाण्डवेभ्यः कुरून्दत्त्वा सुखितो भव सद्गुरो । श्रुत्वैवं ब्राह्मणोऽवादीत्तेभ्यो दास्यामि तद्धराम् ॥

अर्जुन आपसमें लडने लगे। युधिष्ठिरके साथ सर्वही कौरव लडने लगे। युद्धमें बाणोंसे आकाशमंडलको ढकनेवाले, कष्ट और अनिष्टको प्राप्त हुए योद्धाओंने सब दिशाओंको बधिर किया। उदार चित्तवाले अर्जुनने छोडे गये बाणोंसे कर्णका रथ भग्न किया। और डोरीके साथ उसका धनुष्य तोड दिया ॥ २०६--२०८ ॥ द्रोणाचार्यने रथमें आरूढ होकर धृष्टार्जुनको लडनेके लिये बुलाया। धृष्टार्जुनने कहा, कि 'हे गुरो, मैं आपको मारनेवाला हूं। ऐसा बोलकर धृष्टद्युम्नने बाणोंसे गुरुको आच्छादित किया। गुणोंसे गुरु अर्थात् गुणोंसे पूज्य ऐसे द्रोणाचार्यने आनेवाले बाणोंको तोड दिया। आचार्यने धृष्टद्युम्नका रथ, और ध्वज तोड दिया। आर वीस हजार क्षत्रियोंको उन्होंने मार दिया। मारे हुए हाथियोंकी और घोडोंकी संख्या तो कौन जानता है? एक लाख शूर योद्धाओंको उन्होंने गिराया और वे सब मर गये। एक अक्षौहिणी सेना गुरुने नष्ट की तब आचार्यको ऐसी हिंसासे रोकनेवाली देवोंकी बाणी इस प्रकारसे निकली। "हे द्रोणाचार्य आप कितना प्रमाणको उल्लंघनेवाला पाप कर रहे हैं। यह पाप अतिशय हुआ है। राजाओंके साथ आप क्यों विरोध कर रहे हैं? आइए अपने परिणामोंमें स्वच्छताको उत्पन्न कर आप ब्रह्मेन्द्रपदकी प्राप्ति कीजिए। भीमने कहा, कि हे ब्राह्मण गुरो, आप क्यों पातक कर रहे हैं? आप पाण्डवोंको कुरुदेश प्रदान करके सुखी हो जाइए।" भीमका यह वचन सुनकर "मैं कौरवोंको सब पृथ्वी देनेवाला हूं, मेरा जीवन कौरवोंको देकर मैं सदा सुखी होऊंगा? ऐसी प्रतिज्ञा हे सुज्ञ भीम, मैंने अपने मनमें की है ॥ २०९--

जीवितं कौरवेभ्यश्च दत्त्वा स्वां सुसुखी सदा । प्रतिज्ञेयं मया सुष्ठ विहिता निजमानसे ॥२१७
गुरुधृष्टार्जुनौ तावद्युद्धं कर्तुं समुद्यतौ । अश्वत्थाम्ना समाहूतो घुट्टको भीमनन्दनः ॥२१८
बाणेन पतितो भूमौ ममे मन्दमतिः स च । पाण्डवास्तन्मृतिं ज्ञात्वा रुरुदुर्दुःखदारिताः ॥
तदा हरिरुवाचेदं शृणुध्वं पाण्डुनन्दनाः । शोकस्यावसरो नैव क्षत्रियाणां रणे पुनः ॥२२०
पाण्डवाः शोचमानास्तु यावत्तिष्ठन्ति संगरे । तावत्कौरवसैन्यं हि युद्धं कर्तुं समुत्थितम् ॥
अश्वत्थामा तदाहूतो भीमेन भयकारिणा । ऊचे त्वं गुरुपुत्रत्वान्मया मुक्तः सुजीवितः ॥
अधुना त्वां न मोक्ष्यामि जीवन्तं जीवनप्रिय । इत्युक्त्वा गदया तं च जघान पवनात्मजः ॥
अश्वत्थामा मुमूर्च्छाशु पतितो मालवेशिनः । अश्वत्थामा करीन्द्रस्तु हत्वा तैः पातितो भुवि॥
तदा पाण्डवसैन्येन नत्वोचेऽथ युधिष्ठिरः । भो देवेश रहस्यं त्वमवधारय सांप्रतम् ॥२२५
द्रोणेन विषमं युद्धं विहितं जर्जरीकृतम् । भवत्सैन्यं च वज्रेण गिरिर्वा वायुना घनः ॥२२६
अस्मद्बले न कोऽप्यस्ति समर्थस्तन्निवारणे । उपाय एक एवास्ति कृपां कृत्वाथ तं कुरु ॥
अश्वत्थामा हतो दन्ती तत्स्थाने च वदाधुना । अश्वत्थामा हतो द्रौणिरित्युक्ते स्यात्पराङ्मुखः
धर्मात्मजस्तदावोचदसत्यं ब्रूयते कथम् । असत्यतो भवेन्नूनं किल्बिषं कर्मकारणम् ॥ २२९

२१७॥ गुरु और धृष्टार्जुन युद्धके लिए उद्युक्त हुए । अश्वत्थामाने भीमके पुत्र घुट्टकको युद्धके लिये ललकारा। उसके बाणसे वह मंदमति घुट्टक जमीनपर गिरा और मर गया। पांडव उसके मृत्युका समाचार जान और दुःखसे दीर्ण हो रोने लगे । उस समय श्रीकृष्ण पाण्डवोंको कहने लगे, कि हे पाण्डवों, सुनो क्षत्रियोंको रणमें रोनेके लिये अवसरही नहीं है। पाण्डव युद्धमें शोक कर रहे थे, इतनेमें कौरव-सैन्य लडनेके लिये उद्युक्त हुआ ॥ २१८-२२१ ॥

[द्रोणाचार्यका शस्त्रसंन्यास] भय उत्पन्न करनेवाले भीमने युद्धके लिये अश्वत्थामाको ललकारा। और कहा, कि "तुम मेरे गुरुके पुत्र होनेसे मैंने तुमको जीवित छोड दिया था, किंतु हे जीवनप्रिय, आज मैं तुझे जीवन्त नहीं छोडूंगा।" ऐसा कहकर भीमने गदासे प्रहार किया। अश्वत्थामा मूर्च्छित होकर तत्काल भूमिपर जा पडा। उस समय मालवदेशके राजाका 'अश्वत्थामा' नामक हाथी सैनिकोंने मारकर भूमिपर गिराया था। उस समय पाण्डवोंके सैन्यने युधिष्ठिरको नमस्कार कर कहा, कि "भो देवेश, आप इस समय हमारी कुछ गुप्त विज्ञप्ति ध्यानमें लीजिये। "द्रोणाचार्यने बहुत घोरयुद्ध किया है। उन्होंने आपके सैन्यको, वज्र जैसे पर्वतको, अथवा वायु जैसे मेघको पीडित करता है, पीडित किया है। हमारे सैन्यमें ऐसा कोई बलवान् नहीं है जो उनका निवारण कर सके। परंतु इस लिये एकही उपाय है। उसे आप कृपाकर करें। 'अश्वत्थामा' नामक हाथी मारा गया है। परन्तु उसके स्थानमें आप द्रोणाचार्यको अश्वत्थामा मारा गया ऐसा यदि कहें तो वे युद्धसे पराङ्मुख होंगे।" धर्मात्मजने कहा, कि मैं असत्य कैसे

कथं कथमपि प्रायस्तैरङ्गीकारितो हठात् । धर्मात्मजस्तदावोचदश्वत्थामा हतो रणे ॥२३०
तदाकर्ण्य रणे द्रोणो धन्वामुञ्चच्छुचा करात् । सिञ्चन्क्ष्मामश्रुपातेन रुरोद हृदि दुःखितः ॥
तदा तेन पुनः प्रोक्तं कुञ्जरो न नरो हतः । श्रुत्वेति संस्थितः स्थैर्याच्छोककम्पितकायकः ॥
धृष्टार्जुनोऽसिना तावल्लुलाव तस्य मस्तकम् । कौरवाः पाण्डवास्तावद्रुरुदुस्तत्क्षणे क्षिताः ॥
छत्रच्छाया गता चाद्य त्वयि तात गते सति । द्रोणास्माकं क्षितौ जातापकीर्तिः कृतिकृन्तिका
दुर्योधनेन यः संगोविहितस्तत्फलं लघु । संप्राप्तं गुरुणावोचत्क्रुद्धः पार्थस्तदा क्षणे ॥२३५
भो युधिष्ठिर नो भृत्यो धृष्टार्जुनो न श्यालकः । तव तेन हतो द्रोणः कथं सर्वगुरुः शुभः ॥
तदा धृष्टार्जुनः प्राहास्माकं दोषो न जातु चित् । युध्यमानैस्तु युध्यन्ते सुभटैः सुभटा रणे ॥
तन्निशम्य नरः शान्तस्वान्तो जातो विषादवान् । पुनस्तु साधनं धार्ष्ट्याद्युद्धं कर्तुं समुद्यतम् ॥
दधाव ध्वनिना व्योम छादयन्ध्वंसयन्क्षितिम् । तावद्धर्मसुतो बाणैः शल्यशीर्षं लुलाव च ॥
विराटाग्रे कृतं येन स्वपराक्रमवर्णनम् । दिव्यास्त्रेण पुनः पार्थोऽवधीद्राजसहस्रकम् ॥२४०

कहूं ? असत्य भाषणमें कर्मबंध करनेवाला पाप उत्पन्न होता है। तब बडे कष्टसे और हठसे उन्होंने प्रायः वैसा बोलना उसने कबूल किया। धर्मात्मजने अश्वत्थामा रणमें मारा गया ऐसा वचन द्रोणाचार्यको कहा। उसे सुनकर आचार्यने शोकसे अपने हाथसे धनुष्य नीचे डाल दिया। हृदयमें अतिशय दुःखित हो और अश्रुपातसे भूतलको सींचते वे रोने लगे। तब धर्मात्मजने फिर कहा, कि अश्वत्थामा नामक हाथी मर गया अश्वत्थामा नामक मनुष्य अर्थात् आपका पुत्र नहीं मरा है। शोकसे कँप रहा है शरीर जिनका ऐसे आचार्य, युधिष्ठिरके ये शब्द सुन कुछ शांत हुए॥२२२–२३२॥ धृष्टार्जुनने इतनेमें आकर आचार्यका मस्तक तरवारसे तोड दिया। कौरव और पाण्डव तत्काल दुःखित होकर रोने लगे॥ २३३॥

[द्रोणाचार्यका मरण और कौरव–पाण्डवोंका शोक] " हे तात, आपका स्वर्लोकमें प्रयाण होनेसे हमारी छत्रच्छाया नष्ट हो गई। हे आचार्य, हमारी कार्यको नष्ट करनेवाली अपकीर्ति फैल गई है। उस समय क्रुद्ध होकर अर्जुनने कहा, कि दुर्योधनके साथ आचार्यने जो सहवास किया, उसका फल उन्हें शीघ्र मिल गया। हे युधिष्ठिर, धृष्टार्जुन तो हमारा नौकर नहीं है और न साला भी है। तो हम सबोंके गुरु और शुभ ऐसे द्रोणाचार्यको उसने क्यों मार दिया है ! तब धृष्टार्जुनने कहा, कि इसमें हमारा कुछ भी दोष नहीं है। रणमें लडनेवाले योद्धाओंके साथ योद्धा लडते हैं अर्थात् हम आपसमें लड रहे थे, अतः मैंने उनको मारा है। तब विषादवाले अर्जुनने मनमें शान्तता धारण की। पुनः कौरवोंका सैन्य उद्धत होकर युद्धके लिये उद्युक्त हुआ॥२३४–२३८॥ अपनी ध्वनिसे आकाशको गूंजा देनेवाला और भूमिको ध्वस्त करनेवाला युधिष्ठिर दौडता हुआ शल्यके पास गया और उसने बाणोंसे शल्यका सर तोड डाला॥ २३९॥ विराटराजाके समीप

निशायां दिवसे शूरा योयुद्धयन्ते स्म निद्रया । घूर्णमाना लुठन्तीतस्ततो भूमौ पतन्ति च ॥
एवं प्रतिदिनं युद्धं तयोर्जातं भयावहम् । घस्राः सप्तदशैवात्र जाता युधि समुत्कटाः ॥२४२
अष्टादशे दिने प्रातस्तयोर्जातो महाहवः । चतुरङ्गबलं तत्र मेलयित्वा महारणे ॥२४३
रचितो मकरव्यूहो मेरुवद्गलगर्जनैः । गजा गर्जन्ति यत्रोच्चैः खड्गौघाः प्रज्वलन्ति च ॥२४४
कौरवाः पाण्डवाश्चेलुः कुरुक्षेत्रे क्षयंकरे । योद्धुं समुद्यता योधा घातयन्तः परस्परम् ॥२४५
वाहनास्त्रमहामीने कौरवाब्धावसृग्जले । पावनी रथपोतेन विवेश हननोद्यतः ॥२४६
कर्णार्जुनौ तदा लग्नौ रणे योद्धुं मदोद्धुरौ । रविपुत्रधनुश्छिन्नः पार्थेन विशिखैः खरैः ॥
कर्णेन तस्य च्छत्रं तु छिन्नं छिदुरसच्छरैः । परस्परं तुरंगौ तौ छेदयन्तौ च रेजतुः ॥२४८
कर्णेन लक्ष्यबाणेन छिन्नं पार्थशरासनम् । अन्यं चापं समादाय पार्थः प्रोवाच भानुजम् ॥
त्वं कुन्तीनन्दनः कर्णोऽस्मद्भ्राता भुवि विश्रुतः । सहस्व घनघातं मे तिष्ठ तिष्ठ स्थिरं रणे ॥
वञ्चयित्वा बहून्वारान्प्रमुक्तस्त्वं रणाङ्गणे । सज्जो भवाथवा याहि रणं मुक्त्वा निजे गृहे ॥

जिसने अपने पराक्रमका वर्णन किया था उस अर्जुनने दिव्य अस्त्रसे हजार राजाओंका वध किया ॥ २४० ॥ योद्धागण रात्रीमें और दिनमें हमेशा लडने लगे और जब उन्हें निद्रा आ जाती तब वे रणहीमें भूमिपर इधर उधर लुढकते थे और सो जाते थे। फिर उठकर लडते थे तथा मरते थे। इस प्रकार दोनों सैन्योंमें घमसान युद्ध हुआ। इस प्रकार इस भयानक युद्धमें सत्रह दिन समाप्त हुए ॥ २४१–२४२ ॥

[अर्जुनसे कर्ण–वध] अठारहवें दिन प्रातःकाल दोनों सैन्योंका घोर युद्ध हुआ। उस महा-युद्धमें चतुरंगबल एकत्र करके मकरव्यूहकी रचना की, जहां मेरुके समान हाथी गलगर्जनासे जोरसे चिंघाडते हैं; और तरवारोंके समूह चमकते हैं ऐसे विनाशक कुरुक्षेत्रमें कौरव और पाण्डव युद्धके लिये चल पडे। उसी प्रकार अन्योन्यको मारते हुए सब योद्धा युद्धके लिये उद्यत हुए। वाहन और अस्त्ररूप महामत्स्य जिसमें हैं, ऐसे रक्तरूपी पानीसे भरे हुए कौरवसमुद्रमें युद्ध करनेके लिये उद्यत भीमने रथरूप नौकासे प्रवेश किया। अभिमानी ऐसे कर्ण और अर्जुन उसी समय युद्ध करने लगे। अर्जुनने तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा कर्णका धनुष्य तोड दिया। कर्णने बाणोंसे अर्जुनका छत्र छेद डाला। तब अन्योन्यके घोडे छेदनेवाले वे दोनों युद्धमें शोभा देने लगे। कर्णने लाख बाणोंकी वर्षासे अर्जुनका धनुष्य तोड दिया। तब दूसरा धनुष्य हाथमें लेकर अर्जुन कर्णको कहने लगा, कि "हे कर्ण, तूं तो हमारी माता–कुन्तीका–पुत्र है अर्थात् हमारा भाई है, यह बात भूतलमें प्रसिद्ध है। मेरा तीव्र आघात तू सहन कर और रणमें स्थिर खडे हो जा। अनेकबार मैंने तुझे वञ्चनासे छोड दिया। पर अब तूं युद्धके लिये सज्ज हो जा या रण छोडकर अपने घर निकल जा। अर्जुनका यह वचन सुन महोन्नतिशाली सूर्यराजाका पुत्र, कर्ण, झट्से बोलने लगा– " हे अविनयी जडबुद्धि

तन्निशम्य जजल्पाशु पूषपुत्रः परोदयः । किं त्वं जल्पसि रे पार्थाविनीतो जडतां गतः ॥
भनज्म्यहं तवाग्रे किं मया ध्वस्ता नृपा रणे । पूर्वं प्रहरणं लात्वा देहि मा दुर्वचो वद ॥
अत्रान्तरे जगौ विष्णुर्विश्वसेनस्तवात्मजः । प्रधने पतितः कर्ण तथाभूत्प्राणमुक्तधीः ॥२५४
तन्निशम्य नृपः कर्णो धिक्कारमुखराननः । शुशोच सुचिरं चित्ते दुश्चिन्तश्चिन्तयान्वितः ॥
जेघ्नीयन्तेऽत्र राज्यार्थं भ्रातरो भ्रातृभिः सदा । तदा दुर्योधनोऽवोचच्छोचन्तं भानुनन्दनम्
शोकस्यावसरो नात्र कर्ण संहन्यतां नरः । हतेन येन जायेत जयश्रीः कौरवेशिनाम् ॥२५७
तन्निशम्य रणे लग्नौ क्रुद्धौ कर्णार्जुनौ तदा । अन्तरेण विनिर्मुक्तान्क्षिपन्तौ विशिखान्खलु ॥
जगाद केशवः पार्थं विपक्षाञ्जहि सायकैः । तदा पार्थः प्रक्रुद्धात्मा विससर्ज पराञ्शरान् ॥
कर्णस्य करतस्तेन छिन्ने शरशरासने । कर्णेनापि तथा छिन्नं धनंजयशरासनम् ॥२६०
पार्थो दिव्यास्त्रमादाय जगाद मधुरं वचः । दिव्यास्त्र दिव्यदेह त्वं शृणु बाणशरासन ॥
यद्यस्ति त्वयि सत्यत्वं यद्यहं कुलरक्षकः । धर्मजे यदि धर्मोऽस्ति जहीमं तर्हि वैरिणम् ॥२६२
इत्युक्त्वा स च दिव्यास्त्रं विसर्ज्याखण्डयत्क्षणात् । कर्णशीर्षं तदा भूमौ कबन्धं बन्धुरं गतम्

अर्जुन, तूं क्या कह रहा है ? क्या मैं तेरे आगेसे भाग जाऊंगा ? यह बात कभी भी संभव नहीं । मैंने अनेक राजाओंका युद्धमें नाश- किया है । प्रथम मैं तुझपर प्रहार करता हूं, उसका स्वीकार कर और तू भी मेरे ऊपर प्रहार कर, परंतु ऐसा दुर्भाषण क्यों करता है ? इसी बीच श्रीकृष्णने कहा, कि हे कर्ण, तेरे विश्वसेन नामक पुत्रको युद्धमें प्राणोंसे हाथ धोना पडा है । श्रीकृष्णका यह वचन सुन धिक्कारसे जिसका मुख वाचाल बना है ऐसा कर्णराजा दीर्घकालतक शोक करने लगा। चिन्ताओंसे युक्त हुए उसके मनमें इस प्रकार दुष्ट विचार आये। " इस जगतमें राज्यके लिये भाईयोंसे भाई हमेशा मारे जाते हैं। तब दुर्योधन शोक करनेवाले सूर्यराजाके पुत्र कर्णको कहने लगा, कि हे कर्ण, इस समय यहां शोकको अवसर नहीं है । तूं इस अर्जुनको मार। इसको मारनेसे कौरवपतिको जयलक्ष्मी प्राप्त होगी" । यह सुनकर उस समय कर्ण और अर्जुन क्रुद्ध होकर युद्धमें भिड गये और वे दोनों एक दूसरेपर दूरसेहि बाण-वृष्टि करने लगे। केशवने अर्जुनको कहा, कि हे अर्जुन तूं शत्रुको बाणोंसे मार। तब अर्जुनने क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण और उत्तम शर कर्णपर छोडे। कर्णका धनुष्य-बाण उसने नष्ट कर डाला। कर्णने भी अर्जुनका धनुष्य विच्छिन्न कर दिया। दिव्य अस्त्रको धारण कर अर्जुनने मधुर भाषण किया। हे दिव्यास्त्र, हे दिव्य-देह धनुष्य, तूं मेरा भाषण सुन। " यदि तुझमें कुछ सचाई है और यदि मैं कुलरक्षक हूं, यदि धर्मज-युधिष्ठिरमें धर्म है तो आगे खडे हुए वैरी कर्णको नष्ट कर " ऐसा कहकर अर्जुनने उस दिव्यास्त्रको कर्णपर फेंका। उससे तत्काल कर्णका मस्तक खंडित हो गया। कर्णका सुंदर शरीर जमीनपर जा गिरा। चम्पापुरका नाथ कर्ण भूमिपर गिरतेही राजा इस प्रकार शोक करने लगे। " अहो आजही प्रचण्ड सूर्य आका-

चम्पाधिपे गते भूमौ विलापं विदधुर्नृपाः । अहो अद्यैव मार्तण्डः प्रचण्डः पतितोऽप्रतः ॥
त्वां विना को रणे तिष्ठेत्पार्थं प्रति सुसंमुखम् । तावता च रणे याता नृपा दुःशासनादयः ॥
भीमेनैकेन ते नीता एकोनशतकौरवाः । मृत्युगेहं यथा वृक्षा उत्थितेन सुवह्निना ॥२६६

जगुर्नृपास्तदा क्रुद्धाः पञ्चास्यः स्म रणे तथा ।
यथा हन्ति गजान्भीमः कौरवान् कौ रवं गतान् ॥२६७

दुर्योधनं तदा कश्चिद्बान्धवानां सुपञ्चताम् । जगाद भीमसंनीतां दुःखपुञ्जसमां भृशम् ॥२६८
मस्तके वज्रवद्धर्म्यं श्रुतौ तद्वचनं तदा । भूपतेर्भयभीतस्य दुःखेन खिन्नचेतसः ॥२६९
भ्रातरः पतिता यत्र गतस्तत्र स कौरवः । तं सारथिरुवाचेदं पश्य भ्रातॄन्मृतान्भटान् ॥२७०
तदा दुर्योधनोऽपश्यद्भ्रातॄन्मृत्युं गतान्परान् । ग्रहभूतपिशाचानां पिशितैस्तृप्तिकारिणः ॥
रणस्यावसरो नास्ति हित्वा प्रधनमुद्धुरम् । दुर्योधन गृहं गच्छेत्यवदत्सारथिस्तदा ॥२७२
तन्निशम्य नृपश्चित्ते क्रोधौद्धत्यं दधे ध्रुवम् । प्ररुध्य सारथिः प्राह पुनर्भूप वचः शृणु ॥
तित्यक्षसि च नाद्यापि दुराग्रहमहाग्रहम् । अर्धराज्यं त्वया दत्तं पाण्डवानां न हि प्रभो ॥
शतबन्धुविनाशस्तु समानीतस्त्वया रणे । गजवाजिविनाशस्य प्रमाणं ज्ञायते न हि ॥२७५

शसे धरातलमें गिर पडा है। हे कर्ण, आपके बिना अन्य कौन वीर पार्थके सम्मुख युद्धके लिये अब खडा हो सकेगा" ॥ २४३–२६५ ॥

[भीमके द्वारा सर्व कौरव–नाश] उस समय रणमें दुःशासनादिक राजा भी पहुंचे। पर अकेले भीमने वे निन्यानव कौरव, अग्नि जिसप्रकार वृक्षोंको नष्ट करता है वैसे मृत्युके घरमें भेज दिये। उस समय राजा कहने लगे, कि जैसा क्रुद्ध सिंह हाथियोंको मारता है उसी प्रकार भीमने रणमें शब्द करनेवाले–रोनेवाले कौरव मारे ॥ २६६–२६७ ॥ तब कोई मनुष्य दुर्योधनके पास आकर दुःशासन आदि बांधवोंका मरण, जो कि कौरवोंको दुःखकी राशिके समान था, कहने लगा। उसका यह वचन उस समय उसके कानोंपर वज्रके समान प्रतीत हुआ। दुर्योधन राजा भयभीत हुआ और दुःखसे उसका मन खिन्न हुआ। जहां राजा दुर्योधनके भाई पडे हुए थे वहां वह कौरव गया। उसे सारथिने कहा, कि देखिए ये आपके शूर भाई मरे पडे हैं ॥ २६८–२७० ॥ उस समय ग्रह, भूत और पिशाचोंको अपने मांससे तृप्ति करानेवाले अपने मृत भाईयोंको दुर्योधनने देखा। सारथिने दुर्योधनसे कहा, कि "हे दुर्योधन, अब युद्ध करनेका समय नहीं है इस भयंकर युद्धको छोडकर जानाही अच्छा है।" सारथिका वचन सुनकर राजाके मनमें क्रोधाग्नि धधक उठा। सारथिने फिरसे मना करते हुए कहा कि "हे राजन् आप मेरा भाषण सुनें, आप अभीतक दुराग्रहरूपी महाग्रहको छोडना नहीं चाहते हैं। आपने पाण्डवोंको आधा राज्य नहीं दिया है। हे प्रभो, आपने रणमें सौ बंधुओंका विनाश किया है। हाथी और घोडोंके विनाशका तो प्रमाण नहीं जाना जा सकता।

स्वबुद्ध्या स्थीयतां नाथ यथा न स्यादुपद्रवः । दुर्योधनस्तदावोचत्त्वं किं वक्षि ममाग्रतः ॥
निहत्य पाण्डवान्सर्वान्मरिष्येऽहं न चान्यथा । इत्युक्त्वा पाण्डुसैन्येन प्रचण्डो योद्धुमागमत् ॥
द्वयोः सैन्यं दधावाशु महाहंकारसंकुलम् । लाहि लाहि वदच्छौण्डानुत्खातखड्गधारिणः ॥
मद्राधिपं तदा प्राप्तः पाण्डुभूपो महोन्नतः । भीमो दुर्योधनं यातो महाहवपरायणम् ॥२७९
कर्णपुत्रास्त्रयः प्राप्ता नकुलं विपुले रणे । मद्रीसुतेन खड्गेन भटा अष्टौ निपातिताः ॥२८०
चम्पाधिपसुतैः सार्धं युयुधे नकुलो बली । दुर्योधनस्तदा धीमांश्चापं चिच्छेद मारुतेः॥२८१
शक्तिं लात्वावधीद्भीमो वक्षो दुर्योधनस्य वै । कौरवस्तु तदा मूर्च्छामित उन्मूर्च्छितः क्षणात्
संक्रुद्धः कौरवो भीमं जलस्थलनभश्चरैः । बाणैश्चच्छाद कवचं क्षुरप्रैस्तस्य चाभिनत् ॥२८३
भीमः क्रुद्धो गदां लात्वा सहस्राणि च विंशतिम् । भटानामवधीदष्टौ सहस्राणि रथात्मनाम् ॥
यत्र यत्र परं याति भीमस्तत्र न तिष्ठति । नृपः कोऽपि भयत्रस्तः संत्रस्तसुमनोरथः ॥२८५
यं यं पश्यति भीमेशः स स गच्छति पञ्चताम् । धर्मात्मजस्तदावोचद्दुर्योधननृपं प्रति ॥२८६

हे नाथ, अपनी बुद्धिको आप अब स्थिर कीजिए, जिससे आपको कुछ पीडा नहीं होगी।" दुर्योधनने उस समय कहा, कि तू मुझे यह क्या कह रहा है ? मै सब पाण्डवोंको मारकरही मरुंगा। अन्यथा नहीं। मैं युद्ध छोडकर कदापि घर नहीं लौटूंगा ऐसा कहकर वह प्रतापी दुर्योधन पाण्डवोंके सैन्यके साथ लडनेके लिये उद्यत हुआ ॥ २७१–२७७ ॥ उस समय महा अहंकारसे भरी हुई दोनों ओरकी सेना कोषसे बाहर निकाली हुई तरवारें हाथमें लिये हुए शूरोंसे ' प्रहार प्रहण करो ' ऐसा कहती हुई आगे दौडने लगी ॥ २७८ ॥ उस समय महोदयशाली पाण्डुभूप–युधिष्ठिर मद्राधिपसे लडनेके लिये आये और युद्ध करनेमें महाचतुर ऐसे दुर्योधनके साथ भीम लडनेके लिये प्राप्त हुए। उस विशाल रणमें कर्णके तीन पुत्र नकुलके साथ लडनेके लिये आये। सहदेवने युद्धमें खड्गके द्वारा आठ शूर योद्धा मारे। बलवान् नकुलने चम्पाधिप कर्णके तीन पुत्रोंके साथ युद्ध किया ॥ २७९–२८१ ॥ चतुर दुर्योधनने भीमका धनुष्य छेद डाला। तब भीमने शक्तिनामक आयुध धारण कर दुर्योधनके वक्षःस्थलपर प्रहार किया जिससे वह उसी समय मूर्च्छित हुआ परंतु कुछ क्षणके बाद वह सावध हुआ। क्रुद्ध होकर उसने भीमको जलबाण, स्थलबाण और नभश्चर-बाणोंसे आच्छादित किया। और बाणोंसे उसका कवच छिन्न कर दिया ॥ २८२–२८३ ॥ तब कुपित हो और हाथमें गदा ले भीमने वीस हजार वीरोंको मारा तथा आठ हजार रथी योद्धाओंको यमपुरीको पहुंचा दिया जहां भीम जाता वहां भयभीत होकर कोई भी राजा नहीं ठहरता। उसके मनोरथ तुरंत नष्ट होते थे। जिस जिसके प्रति भीमकी दृष्टि जाती वह वह परलोक प्रयाण करता था ॥ २८४–२८६ ॥

[भीमके द्वारा दुर्योधन–वध] धर्मात्मज–युधिष्ठिर राजा दुर्योधनके प्रति इस प्रकार कहने

त्वं भृत्यत्वं समासाद्य सुखं तिष्ठ यदृच्छया । गृहाण मत्तमातङ्गान्रथानद्यापि वाजिनः ॥२८७
अद्याप्याज्ञां प्रतीच्छ त्वं मदीयां सदयो भव । छत्री सिंहासनारूढो राजाद्यापि भवोन्नतः ॥
अद्यापि जहि दुष्टत्वं भज मैत्र्यं मया सह । निशम्येति जजल्पासौ धार्तराष्ट्रः सुगर्वभृत् ॥
आवयोर्जन्मतो जातं वैरं नो याति निश्चितम् । एकोऽहं मारयिष्यामि विपुलान्पाण्डवान्रणे ॥
न भुनज्मि महीं भोक्तुं न दास्ये पाण्डवेशिनाम् । उक्तेनालं त्वमद्यापि सज्जो भव रणाङ्गणे ॥
इत्युक्त्वा सोऽसिना भूपं जघान क्रोधकम्पितः । धर्मात्मजः परं खड्गं यावत्संधरति ध्रुवम् ॥
तावत्तत्र समायासीदन्तरे पावनिर्मुदा । समस्तारिबलं छेत्तुं भ्रूभङ्गैर्भीषणः स्थितः ॥२९३
आकारयन्कुरूणां हि सैन्यं प्रबलसंयुतम् । तिष्ठ तिष्ठेति संजल्पन्भीमस्तस्थौ रणाङ्गणे ॥२९४
भीमो गदां समादाय तडिज्झङ्कारसंनिभाम् । यमजिह्वोपमां नागकन्यां वा विदधे रणम् ॥
दुर्योधनस्य शीर्षे सा भीममुक्ता पपात च । कण्ठप्राणो महीपीठे पतितः कौरवस्तदा ॥२९६
बभणीति स्म मन्दं स कोऽप्यस्ति कौरवे बले । जीवन्पाण्डववृन्दस्य क्षयं नेतुं क्षमः क्षितौ ॥
तदा बभाण कश्चिच्च गुरुपुत्रः पवित्रवाक् । समर्थस्तान्क्षयं नेतुं विषमो वैरिणोऽस्ति व ॥२९८

लगे। "हे दुर्योधन तुम मेरे भृत्य होकर अपनी इच्छासे सुखसे रहो। अद्यापि उन्मत्त हाथी, रथ और घोडे लेकर राज्यका अनुभव करो। दयायुक्त होकर मेरी आज्ञा अद्यापि धारण करो। अद्यापि छत्रसहित सिंहासनपर आरूढ होकर उन्नतिशाली राजा बने रहो। अद्यापि दुष्टता छोड मेरे साथ मित्रता धारण करो।" यह सुन महागर्विष्ठ धृतराष्ट्र पुत्र-दुर्योधन राजा बोलने लगा "हे धर्मराज हम दोनोंमें आजन्म वैर है। वह नष्ट नहीं होगा, यह निश्चयसे जानो। मैं अकेला सभी पाण्डवोंको युद्धमें मार डालूंगा। मै स्वयं पृथ्वीका उपभोग न ले सकूंगा और न तुम्हें भी भोगने दूंगा। अब इससे जादा मैं कुछ नहीं कहता। तुम लडनेके लिये सज्ज हो जाओ"। ऐसा बोलकर उसने क्रोधसे थर थर कांपते हुए तरवारके द्वारा राजाके ऊपर प्रहार किया। धर्मात्मज-युधिष्ठिर उत्तम खड्ग हाथमें धारण करना चाहताही था की इतनेमें वायुपुत्र भीमने उन दोनोंके बीचमें आनंदसे प्रवेश किया। भौंहोंकी वक्रताके कारण महाभयानक दीखनेवाला वह भीम समस्त शत्रुबलको छेदनेके लिये खडा हो गया ॥ २८७-२९३ ॥ भीमने उत्कृष्ट सामर्थ्यशाली कौरवोंके सैन्यको लडनेके लिये ललकारा। "हे दुर्योधन रणमें ठहरो, ठहरो" ऐसा बोलता हुआ भीम उसके सामने आ खडा हुआ। बिजलीके समान चमकनेवाली, यमकी जिह्वाके समान दीखनेवाली या नागकन्याके सदृश शोभनेवाली ऐसी गदा हाथमें लेकर भीमने युद्धप्रारंभ किया। भीमकी गदा दुर्योधनके मस्तकपर जाकर पडी। उस समय कौरव-दुर्योधन मरणोन्मुख हो जमीनपर आ गिरा ॥ २९४-२९६ ॥ उस समय मंदस्वरसे दुर्योधन कहने लगा "क्या कौरवोंके सैन्यमें पाण्डवोंका क्षय करनेमें समर्थ ऐसा कोई मनुष्य इस रणमें जीवित है? तब दुर्योधनके पास खडा हुआ कोई पुरुष कहने लगा, कि "हे दुर्योधन-

अश्वत्थामा समाकर्ण्य तद्वधं क्रुद्धमानसः । न्यवेदयज्जरासंधं बन्धुरं चेति निष्ठुरम् ॥२९९
प्रभो दशसहस्रेण नृपेण कौरवः क्षितौ । पतितस्तन्निशम्याशु चक्री शोकाकुलोऽभवत् ॥३००
सेनापत्यादिसैन्येनादिदेश गुरुनन्दनम् । जरासंधस्तु युद्धाय प्रचण्डः पाण्डवान्प्रति ॥३०१
गुरुपुत्रः समागत्य दुर्योधनसमीपताम् । रुदन् बभाण भो तात सर्वं शून्यं त्वया विना॥३०२

अस्माभिर्ब्राह्मणैस्ताताभोजि राज्यं समुज्ज्वलम् ।
त्वत्प्रसादादिदानीं किं नाथ ब्रूहि करिष्यते ॥३०३

तावता चक्रिणा शीर्षे बबन्ध मधुभूपतेः । चर्मपट्टः पुनः सोऽपि प्रेषितः सह सद्बलैः ॥३०४

अधुना पाण्डवानां हि विनाशो नेष्यते मया ।
संलोप्ये कृष्णशीर्षं हि भणित्वेति चचाल सः ॥३०५

दुर्योधनस्तदावोचन्मया बद्धस्तवाधुना । पट्टस्त्वं याहि संग्रामेऽश्वत्थामञ्जहि वैरिणः ॥३०६
अश्वत्थामा स्वसैन्येन गत्वा पाण्डवसैन्यकम् । वेष्टयामास सर्वत्र चतुर्दिक्षु भयप्रदम् ॥३०७
तदा सस्मार सद्विद्यां माहेश्वरीं गुरोः सुतः । शूलहस्ता दधावासौ चन्द्रभाला समायिका ॥

राजा, पवित्र वचनवाला गुरुपुत्र अश्वत्थामा, जो कि शत्रुको दुर्जय है, पाण्डवोंको नष्ट करनेमें समर्थ है। दुर्योधनका वध सुनकर क्रुद्ध अन्तःकरणवाला अश्वत्थामा मनोहर जरासंधको इस प्रकार अतिशय कठोर समाचार सुनाने लगा- "हे प्रभो जरासंध महाराज, दश हजार राजाओंके साथ दुर्योधन राजा भूतलपर पडा है अर्थात् कण्ठगतप्राण हुआ है।" उसका भाषण सुनकर चक्री-जरासंध शोकव्याकुल हुआ। "सेनापति आदि सैन्योंको साथ लेकर तुम पाण्डवोंसे लडो, ऐसी आज्ञा महापराक्रमी जरासंधने अश्वत्थामाको दी ॥ २९७-३०१ ॥ दुर्योधनके पास आकर गुरुपुत्र-अश्वत्थामा रोकर कहने लगा, कि "हे दुर्योधन आपके विना मुझे सब शून्यसा दीख रहा है। हे तात, आपके प्रसादसे हम ब्राह्मणोंने उज्ज्वल राज्यका उपभोग लिया है। हे नाथ, अब हम कौनसा कार्य करें, आज्ञा दीजिये" ॥ ३०२-३०३ ॥ उस समय चक्रवर्ती जरासंधने मधुराजाके मस्तकपर चर्मपट्ट बांधा और उसे भी अपने उत्तम सैन्यके साथ लडनेके लिये भेज दिया। "इस समय मैं पाण्डवोंका विनाश करूंगा और कृष्णका मस्तक तोडूंगा" ऐसा कहकर वह युद्धके लिये चला गया ॥ ३०४-३०५ ॥ दुर्योधनने उस समय अश्वत्थामासे कहा, कि मैंने अब तेरे मस्तकपर सेनापति-पट्ट बांधा है। तू युद्धमें जा और शत्रुओंका विनाश कर।" उस समय अश्वत्थामाने माहेश्वरी नामक उत्तम विद्याका स्मरण किया। अश्वत्थामाने अपने सैन्यको साथ लेकर पाण्डवोंके भयंकर सैन्यको सर्वत्र चारों दिशाओंमें वेष्टित किया। जिसके हाथमें-शूल

१ केवलं स ब प्रत्योरेव, नान्यत्र ।

तन्माहात्म्यात्तनाशाशु विष्णुपाण्डवयोर्बलम् । गुरुपुत्रश्चरन्सैन्ये चूरयामास तद्बलम् ॥३०९
गजा रथादिवाहानां महीपा दलिता रणे । तेन पाञ्चालभूपस्य शिरश्छिन्नं समुत्कटम् ॥३१०
जयश्रियं समाप्यासौ गुरुपुत्रः शिरस्तदा । तस्य दुर्योधनस्याग्रे दधौ धृतिकरं परम् ॥३११
तच्छिरीक्ष्य तदावोचत्कौरवः पाण्डवान्भुवि । हन्तुं क्षमोऽस्ति कोऽप्यत्र निरस्ता यैर्नराः सुराः
द्रोणकर्णौ रणे ध्वस्तौ यैस्तु पावनिना हतः । अहमेकेन चान्येषां हतानां तत्र का कथा ॥
पञ्चापि पाण्डवाः सन्ति जीवन्तस्तत्र किं परैः । हतैः पाञ्चालभूपाद्यैर्वृथानर्थपरायणैः ॥३१४
हरिणा पाण्डवैस्तूर्णं बलेनाश्रावि मस्तकम् । सेनान्या सह संछिन्नं तस्य द्रोणसुतेन च ॥३१५
तच्छ्रुत्वा दुःखिताः सर्वे रुरुदुः पाण्डवादयः ।
कृष्णोऽवोचन्न कर्तव्यः शोकः स्मो जीविता वयम् ॥३१६
तदा क्रुद्धो जरासंधः प्रलयाब्धिरिवाययौ । तदा सुरैर्हरिः प्रोचे मा विलम्बय केशव ॥३१७
जहि मागधभूपालं भविता ते महोदयः । श्रुत्वेत्याकारितश्चक्री विष्णुना भाविचक्रिणा ॥

है और मस्तकपर चंद्र है ऐसी मायावती माहेश्वरी विद्या भागती हुई अश्वत्थामाके पास आई। माहेश्वरीके प्रभावसे विष्णू और पाण्डवोंका सैन्य शीघ्र नष्ट हुआ। उनके सैन्यमें संचार करनेवाले गुरुपुत्रने उनके सैन्यको नष्ट कर डाला। युद्धमें गज, रथ आदिकोंके स्वामी राजालोग अश्वत्थामाने नष्ट किये और पांचालराजाका किरीटसे उत्कट शोभायुक्त दीखनेवाला मस्तक छिन्न किया। इस प्रकार जयलक्ष्मीको प्राप्त कर अश्वत्थामाने द्रुपदराजाका संतोष देनेवाला मस्तक दुर्योधनराजाके आगे रख दिया ॥ ३०९–३११ ॥ दुर्योधनराजाने द्रुपदराजाका मस्तक देखा और ऐसा कहा " जिन्होंने देव और मनुष्योंको पराजित किया है ऐसे पाण्डवोंको इस भूतलमें मारनेके लिये क्या कोई समर्थ है ? उन्होंने द्रोण और कर्णको युद्धमें मार डाला। अकेले भीमने मुझे मारा। फिर अन्य जनोंको उसने मारा इसमें क्या आश्चर्य है ? हे अश्वत्थामा, पांचों पाण्डव अद्यापि जीवित होते हुए अनर्थमें तत्पर ऐसे पांचालादिक राजाओंको मारनेमें क्या विशेषता है ? वह सब व्यर्थ है" ॥ ३१२–३१४ ॥ इधर श्रीकृष्ण, पाण्डव और बलभद्रोंने "द्रोणपुत्रने सेनापतिको साथ लेकर पांचालराजाका मस्तक तोड डाला" ऐसा वृत्तान्त सुना। उस समय पाण्डवादिक सब दुःखित हो रोने लगे। कृष्णने कहा, कि शोक करना योग्य नहीं है क्यों कि हम सब जीवित हैं ॥ ३१५-३१६ ॥

[कृष्णसे-जरासंधवध] अठारहवें दिन प्रलयकालके समान क्रुद्ध हुआ प्रतिनारायण जरासन्ध युद्धके लिये रणभूमिमें आगया। तब देवोंने हरिसे कहा, कि 'हे केशव, अब विलम्ब मत कर। तू मागधराजा जरासंधका वध कर और इस कार्यमें तुझे महाभ्युदयकी प्राप्ति होगी।" देवोंके वाक्य सुनकर भावी चक्रवर्ती विष्णुने चक्रवर्ती जरासंधको युद्धके लिये बुलाया ॥ ३१७–३१८ ॥ यादवोंका सैन्य देखकर जरासंधने सोमक नामक दूतको सर्व राजाओंका परिचय कहनेके लिये

दृष्ट्वा यदुचमूं सोऽथ दूतं पप्रच्छ सोमकम् । स्याहि सर्वान्नृपाञ्श्रुत्वा सोऽब्रोचच्चिह्नपूर्वकम् ॥
समुद्रविजयः स्वर्णवर्णाश्वोऽयं हरिध्वजः । अयं तु शुकवर्णाश्वो रथनेमिर्वृषध्वजः ॥३२०
सेनाग्रे श्वेतवाहोऽयं वैकुण्ठस्तार्क्ष्यकेतनः । रामोऽयं नीलवर्णाश्वोऽस्यावामे तालकेतनः ॥
नीलाश्वेन रथेनैष पाण्डुसूनुर्युधिष्ठिरः । भीमोऽयं भाति भीतिघ्नो विचित्ररथसंस्थितः ॥३२२
शक्रसूनुरयं श्वेततुरङ्गः कपिकेतनः । उग्रसेनः पुनरयं शुकतुण्डनिभैर्हयैः ॥३२३
जरासूनुरयं स्वर्णतुरगो मृगकेतनः । मेरुः कपिलरक्ताश्वः शिशुमारध्वजस्त्वयम् ॥३२४
काम्बोजैर्वाजिभिश्चायं सिंहलः सूक्ष्मरोमशः । पद्माभैर्वाजिभिश्चैष नृपः पद्मरथः पुरः ॥३२५
कृष्णाश्वोऽयमनावृष्टिर्गजकेतुश्चमूपतिः । एवं श्रुत्वा क्रुधाक्रान्तो युयुधे मागधश्चिरम् ॥३२६
तदा तौ मार्गणाञ्ज्यायां टंकारारावपूरिते । चापे संरोप्य मुञ्चन्तौ सिंहाविव विरेजतुः ॥
विष्णुना वह्निबाणेन ज्वालितं मागधं बलम् । चक्रिणा वारिबाणेन शान्तिं नीतं निजं बलम् ॥

कहा। उसने चिह्नपूर्वक सबोंका परिचय इस प्रकारसे दिया॥ ३१९॥ "यह समुद्रविजय राजा है इसके रथके घोडे सुवर्णवर्णके हैं और इसकी ध्वजा सिंह की है। यह राजा रथनेमि है, इसके रथके घोडे तोतेके समान हरे रंगके हैं तथा इसके रथपर बैलकी ध्वजा है। सेनाके आगे यह कृष्णराजा है और इसके रथके घोडे शुभ्रवर्णके हैं तथा इसकी ध्वजा गरुडके चिह्नकी है। यह राम-बलभद्र राजा है इसके रथके घोडे नीलवर्णवाले हैं तथा इसके दाहिने बाजूपर इसका तालवृक्षका ध्वज है। ये पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर नीलाश्व जिसको जोडे हैं ऐसे रथसे शोभने लगे हैं। यह इन्द्रका पुत्र अर्जुन सफेत घोडेवाले रथोंमें बैठा है तथा इसके रथके घोडे वानरचिह्नसे सुशोभित हैं। तथा भीतिको नष्ट करनेवाला यह भीम विचित्र रथमें बैठा है यह उग्रसेनराजा तोतेकी चोंचके समान लाल रंगके घोडोंसे युक्त ऐसे रथमें बैठा है और इसका ध्वज वानरचिह्नका है। यह जरानामक राणीका पुत्र जरत्कुमार है। इसके घोडे सुवर्णरंगके हैं तथा इसका ध्वज हरिणोंके चिह्नोंका है। यह मेरु नामक राजा पिंगल और लाल रंगके घोडोंसे युक्त रथमें बैठा है तथा यह राजा शिशुमार ध्वजवाला है। जिसके रथको काम्बोज देशके घोडे जोडे हैं ऐसा सिंहलदेशका राजा 'सूक्ष्मरोमश' नामका है। यह आपके आगे खडा हुआ राजा पद्मरथनामक है तथा इसके घोडे दिवसविकासी कमलके समान रंगवाले हैं। कृष्णका सेनापति अनावृष्टि नामक है। इसके घोडे कृष्णवर्णके हैं और इसके ध्वजपर हाथीका चिह्न है।" इस प्रकारसे राजाओंका परिचय सुनकर क्रोधसे भरा हुआ मागधराजा-जरासंध दीर्घकालपर्यन्त लडने लगा॥ ३२०-३२६॥ उस समय वे दोनों (कृष्ण और जरासंध) टंकारध्वनिसे पूर्ण ऐसे धनुष्यपर दोरीके ऊपर बाणोंको जोडकर अन्योन्यके ऊपर फेंकते समय सिंहके समान शोभने लगे। श्रीविष्णुने अग्निबाणके द्वारा मागधका (जरासंधका) सैन्य जलाया। तब चक्रवर्तीने-जरासंधने जलबाण छोडकर अपना सैन्य शांत किया। पुनः

पुनश्चक्री मुमोचाशु नागपाशं महाशुगम् । तार्क्ष्यबाणेन चिच्छेद केशवस्तं समुद्धतम् ॥३२९
विससर्ज जरासंधो विद्यां च बहुरूपिणीम् । स्तंभिनीं चक्रिणीं शूलां मोहयन्तीं हरेर्बलम् ॥
ताः सर्वा विष्णुना वेगान्महामन्त्रेण नाशिताः । बहुरूपिणीं गतां वीक्ष्य चक्री जातो विषण्णधीः
सुस्मृतं मागधश्चक्रमर्काभं च स्फुरत्प्रभम् । चर्चयित्वागतं हस्ते मुमोच मधुसूदनम् ॥३३२
स्फुरत्प्रभमसि तच्चक्रं त्रासयद् यादवं बलम् । विवेशार्क इव व्योम्नि तत्सेनायां महाकरैः ॥
तदा सर्वे नृपा नष्टाः स्थिरं तस्थौ जनार्दनः । हलिना पाण्डवैः सार्धं निर्भयो भीषयन्परान् ॥
त्रिः परीत्य हरिं चक्रं स्थितं तद्दक्षिणे करे । तदा जयारवो जातो यादवीये बलेऽखिले ॥
माधवो मधुरैर्वाक्यैर्मगधेशमुवाच च । नम मे चरणद्वन्द्वं धरामद्यापि धारय ॥३३६
मदाज्ञां पालय त्वं हि पूर्ववत्सुखितो भव । तन्निशम्य जरासंधः क्रुद्धोऽवोचद्विषण्णधीः ॥
त्वं गोपालो महीशेन मया नंनम्यसे कथम् । चक्रगर्वेण गर्वी त्वं मा भूयाः कुम्भकारवत् ॥
त्वं च याहि ममाभ्यर्णान्मद्भुजाभ्यां म्रियस्व मा । समुद्रविजयो भूपः सेवको मम सर्वदा ॥

चक्रवर्तीने नागपाश नामक महाबाण छोडा परंतु केशवने-श्रीकृष्णने गरुडबाणसे उद्धत नागपाशको छिन्न कर दिया। तदनंतर चक्रवर्ती जरासंधने बहुरूपिणी,स्तंभिनी,चक्रिणी,शूला और मोहिनी ऐसी विद्याओंका हरिके सैन्यपर प्रयोग किया परंतु वे सब विद्यायें कृष्णने महामंत्रके सामर्थ्यसे नष्ट की। बहुरूपिणी विद्या नष्ट हुई जानकर चक्रवर्तीकी बुद्धि खिन्न हुई ॥३२७-३३१॥ जरासंधने सूर्यके समान कांतिवाला,जिसकी प्रभा वृद्धिंगत हो रही है, ऐसे चक्रका स्मरण किया। तब वह चक्ररत्न उसके हाथमें आया। उसकी पूजा करके वह श्रीकृष्णके ऊपर उसने फेंक दिया। यादवोंके सैन्यको भय दिखलानेवाला, आकाशमें अपने तेजस्वी किरणोंसे चमकनेवाला वह चक्ररत्न, सूर्य जैसे आकाशमें प्रवेश करता है वैसे कृष्णकी सेनामें प्रविष्ट हुआ ॥ ३३२-३३३ ॥ उस समय सर्व राजा-भाग गये। जनार्दन कृष्ण बलराम और पाण्डवोंके साथ रणमें स्थिर खडे हुए। श्रीकृष्ण निर्भय थे। परंतु उससमय चक्ररत्नसे युक्त वे अन्योंको डरानेवाले दीखने लगे। श्रीकृष्णको उस चक्ररत्नने तीन प्रदक्षिणायें दीं और वह उनके दाहिने हाथमें ठहर गया। उससमय यादवोंके संपूर्ण सैन्यमें जयजयकार होने लगा। श्रीकृष्ण मधुरवाक्योंसे मगधेशको बोलने लगे— "हे जरासंध तुम मेरे दो चरणोंको नमस्कार करो और अद्यापि पृथ्वीको धारण करो—उसका पालन करो। मेरी आज्ञाका तुम पालन करो और पूर्वके समान सुखी हो जावो।" श्रीकृष्णका भाषण सुनकर खिन्न बुद्धिवाला क्रुद्ध जरासंध बोलने लगा, कि "हे कृष्ण तू गोपाल है, मैं राजा हूं। मैं तुझे कैसे नमस्कार करूं? हे कृष्ण तू चक्रके गर्वसे गर्विष्ठ मत हो। चक्र तो कुम्हारके पासभी होता है। हे कृष्ण तू मेरे पाससे दूर जा, मेरे दो बहुओंसे तू मत मर। समुद्रविजय राजा मेरी हमेशा सेवा करनेवाला सेवक था और तेरा पिता वसुदेव मेरे आगे सिपाहीके समान खडा होता था। तू ग्वालेका पुत्र है, अर्थात् तू

त्वत्पिता वसुदेवो मे पदातिः पुरतः स्थितः । त्वं गोपतनयो गोपः पापाद्यासि क्षयं खलु ॥
तन्निशम्य तदा क्रुद्धः कृष्णश्चक्रं व्यचिक्षिपत् । तेन च्छित्वा जरासंधशीर्षं भूमौ निपातितम्
परावृत्य पुनश्चक्रं विष्णुहस्त उपस्थितम् । तदा जयारवश्चक्रे सुरैर्भूपैश्च यादवैः ॥३४२
पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वाणाः सुराः प्राहुस्त्रिखण्डपः । नवमस्त्वं समुत्पन्नो धरां धत्स्व स्वपुण्यतः ॥
केशवो रणभूमिं तां शोधयन्पतितं नृपम् । जरासंधं निरीक्ष्याशु विषसाद सपाण्डवः ॥३४४
निश्वसन्तं निरीक्ष्याशु दुर्योधनमुवाच सः । स्मर धर्मं दयायुक्तं विस्मर द्वेषभावनाम् ॥३४५
येन ते जायते जीवः सुखी जन्मनि जन्मनि । तदा क्रुद्धो जगादैवं दुर्योधनो गतत्रपः ॥
अजीविष्यमहं नूनमकरिष्यं भवत्क्षयम् । निशम्येति तदा नूनं निश्चिक्युस्तमधर्मिणम् ॥३४७
गान्धारेयोऽधमो धर्महीनोऽथ निश्वसन्क्षणात् । दुर्लेश्यो दुर्गतिं मृत्वा प्रपेदे पापपाकतः ॥
पुनस्तु पतितं सैन्यं द्रोणं कर्णं निरीक्ष्य च । रुरुदुः पाण्डवाः सर्वे शुचा विष्णुबलादयः ॥
दहनं च तदा तेषां जरासंधादिभूभुजाम् । चन्दनागुरुभिः शीघ्रं चक्रुः केशवपाण्डवाः ॥
अत्रान्तरे महामात्या जरासंधतनूद्भवम् । सहदेवं नये निष्णं कृष्णस्याङ्के निचिक्षिपुः ॥३५१

वाला हूं, तू अपने पापसे नष्ट होनेवाला है।" जरासंधका उपर्युक्त भाषण सुनकर कुपित हुए श्रीकृष्णने जरासंधके ऊपर चक्ररत्न छोड दिया। उसने (चक्रने) जरासंधका मस्तक तोडकर भूमिपर गिराया। और पुनः वह कृष्णके हाथमें जाकर बैठ गया। उस समय देवों, राजाओं, और यादवोंने जयजयकार किया। पुष्पवृष्टि करनेवाले देव कहने लगे कि "हे श्रीकृष्ण तू तीन खण्डोंका पालन करनेवाला नवमनारायण उत्पन्न हुआ है। इस लिये अपने पुण्यसे तू पृथ्वीको धारण कर।" इसके अनंतर रणभूमिका शोधन करनेवाले कृष्णने रणभूमिमें पडे हुए जरासंधको देखकर पाण्डवोंके साथ खेद व्यक्त किया। वहां निश्वास लेते हुए दुर्योधनकोभी उन्होंने देखा वे उसे शीघ्र कहने लगे, कि हे दुर्योधन दयायुक्त धर्मका स्मरण कर और द्वेषभावनाको भूल जा, जिससे तेरा जीव प्रत्येक जन्ममें सुखी हो जावेगा। तब क्रुद्ध और निर्लज्ज दुर्योधनने ऐसा कहा-"यदि मैं जीऊंगा तो आपका नाश करूंगा" उसका ऐसा वचन सुनकर यह अधर्मी धर्महीन पापी है ऐसा उन्होंने निश्चय किया ॥ ३३४-३४७ ॥

[दुर्योधनको दुर्गतिप्राप्ति] अधम नीच, धर्मरहित दुर्योधन निश्वास लेता हुआ मर गया। दुर्लेश्यासे मरण होनेसे पापोदयसे वह दुर्गतिको प्राप्त हुआ। पुनः उन्होंने रणमें पडे हुए सैन्यमें,मरे हुए द्रोण,कर्णको देखकर विष्णु, बलराम, सर्व पाण्डव आदि महापुरुष शोकसे रोने लगे। उन केशव और पाण्डवोंने जरासंधादिक राजाओंका चंदन, अगुरु आदिक सुगंधि द्रव्योंसे शीघ्र दहन किया ॥ ३४८-३५० ॥ इस प्रसंगमें जरासंध राजाके महामात्योंने जरासंधका सहदेव नामक पुत्र, जो नीतिमें निष्णात था, उसे कृष्णके गोदमें स्थापन किया। श्रीकृष्णने पुनः उसे मगधदेशमें राजा

माधवस्तं विधत्ते स्म मगधेषु पुनर्नृपम् । प्रणिपातावसानो हि कोपो विपुलचेतसाम् ॥३५२
त्रिखण्डभरताधीशो भूत्वा स हलिना सह । विवेश द्वारिकां रम्यां वाद्यवृन्दैः समुत्सवैः ॥
पाण्डवाः स्वपुरं प्रापुर्हस्तिनागपुरं परम् । धर्मकर्म प्रकुर्वाणाः शर्मसिद्धिमुपागताः ॥३५४

क्षिप्त्वा ये वैरिचक्रं नरनिकरनताः शक्रतुल्याः स्मरन्तः
धर्मं शर्माब्धिपूरं विषमभवहरं पाण्डवाः पुण्यतो वै ।
राज्यं प्राज्यं समाप्ता गजपुरनगरे सर्वसंतानसौख्यम्
भुञ्जन्तो भव्यवर्गै रिपुभयमथनास्ते जयन्तु क्षितीशाः ॥३५५
धर्मात्मा धर्मपुत्रो रिपुभयहरणो भीमसेनः सुसेनः
ख्यातः क्षोण्यां सुपार्थः पृथुगुणसुकथः प्रार्थितो बन्दिवृन्दैः ।
मद्रीपुत्रौ पवित्रौ नकुलवरसहाद्यन्तदेवौ सुदेवौ
पञ्चैते पाण्डुपुत्राश्चिरमसमगुणाः पालयन्ति स्म पृथ्वीम् ॥३५६

इति श्रीपाण्डवपुराणे महाभारतनाम्नि भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपालसाहाय्यसापेक्षे पाण्डवकौरवसंग्रामजरासंधवधवर्णनं नाम विंशतितमं पर्व ॥ २० ॥

किया। योग्य ही है, कि उदार चित्तवालाका कोप प्रणिपातान्त होता है।अर्थात् शत्रु नम्र होनेपर वे महाशय क्षमाशील होते हैं ॥ ३५१–३५२ ॥ श्रीबलरामके साथ श्रीकृष्ण तीन खण्डोंके स्वामी (अर्धचक्रवर्ती होकर उन्होंने वाद्यसमूहोंके साथ बडे उत्सवोंसे रमणीय द्वारकानगरीमें प्रवेश किया। तथा धर्म कर्म करनेवाले,(देवपूजादि श्रावकोंके षट्कर्म करनेवाले) सुखकी सिद्धिको प्राप्त हुए ऐसे पाण्डवभी अपने उत्तम हस्तिनागपुर नगरको प्राप्त हो गये ॥ ३५३–३५४ ॥ जो शत्रुसमूहको नष्ट कर सर्व मानवोंसे आदरणीय बने, जो विषम संसारका नाश करनेवाला, सुखसमुद्रके प्रवाहोंसे परिपूर्ण, ऐसे धर्मको इन्द्रके समान स्मरण करनेवाले, गजपुर नगरमें-हस्तिनापुरमें उत्तम राज्यको पुण्यसे प्राप्त हुए, तथा भव्यसमूहोंके साथ सर्वप्रकारके अखण्ड सुखोंको भोगनेवाले, शत्रुभयको नष्ट करनेवाले, जो विशाल पृथ्वीके स्वामी हुए ऐसे उन पांच पाण्डवोंकी सदा जय हो ॥ ३५५ ॥ धर्मपुत्र–युधिष्ठिर धर्मात्मा है, भीमसेन उत्तम सेनाके धारक और शत्रुभयनाशक हैं। स्तुतिपाठकोंका समूह जिसकी स्तुति करता है, जिसके महागुणोंकी सुकथा लोगोंके द्वारा कही जाती है जो पृथ्वीपर प्रसिद्ध है ऐसा सुपार्थ–अर्जुन जो सुदेव अर्थात् चमकनेवाले, सौंदर्ययुक्त है, ऐसे पवित्र मद्रीके पुत्र नकुल और सहदेव ऐसे ये पांच पाण्डव अनुपम गुणोंके धारक होकर पृथ्वीका पालन करने लगे ॥३५६॥

ब्रह्मश्रीपालजीके साहाय्यसे भट्टारक शुभचन्द्राचार्यने रचे हुए महाभारत नामक पाण्डवपुराणमें पाण्डव-कौरवोंका युद्ध और जरासंधके वधका वर्णन करनेवाला वीसवां पर्व समाप्त हुआ ॥ २०

। एकविंशं पर्व ।

मल्लिं शल्यहरं कर्ममल्लजेतारमुन्नतम् । मल्लिकामोदसद्देहं वन्दे सत्कुलपालिनम् ॥१
अथैकदा नराधीशो युधिष्ठिरमहीपतिः । भीमादिभ्रातृसंपूज्यस्तस्थौ सिंहासने मुदा ॥२
चामरैर्वीज्यमानः स नानानृपतिसेवितः । छत्रसंछन्नतिग्मांशू रराजात्र युधिष्ठिरः ॥३
कदाचिन्नारदः प्राप दिवस्तेषां च संसदम् । अभ्युत्थानादिभिः पूज्यः पाण्डवैः परमोदयैः ॥
विधाय विविधां वाग्मी किंवदन्तीं विधेः सुतः । पाण्डवैः सह संप्राप तन्निशान्तं सुमानसः ॥
ददर्श द्रौपदीसद्म निम्छद्मा द्युम्नदीपितम् । गवाक्षपक्षसंपन्नं नारदो नरवन्दितः ॥६
तत्रासनसमारूढा प्रौढशृङ्गारसंगिनी । किरीटतटसंनद्धमूर्धा सा द्रौपदी स्थिता ॥७
विशाले तिलकं भाले दधाना हृदये वरम् । हारं सारं च नाद्राक्षीन्नारदं सा गृहागतम् ॥८
मुकुरे मुखमक्षेण नारदस्येक्षमाणया । अभ्युत्थानादिकं कर्म न कृतं च तया नतिः ॥९

[इक्कीसवा पर्व]

जिन्होंने कर्ममल्लको जीता है तथा माया, मिथ्यात्व और निदान इन तीन शल्योंको नष्ट किया है, जिनका सुंदर देह मल्लिकापुष्पगंधके समान है, जो उत्तम कुलोंका पालन करते हैं, जो अभ्युदय और निःश्रेयस सुखसे उन्नत हैं उन श्री मल्लितीर्थकरको मैं वन्दन करता हूं ॥ १ ॥ किसी एक समय भीमादि भाईयोंके द्वारा आदरणीय, मानवोंके स्वामी युधिष्ठिर महाराज सिंहासनपर आनंदसे बैठे थे। नौकर उनपर चामर ढारते थे। अनेक राजाओंसे वे सेवित थे। अपने छत्रसे उन्होंने सूर्यको आच्छादित किया था। इस प्रकार राजसभामें राजा युधिष्ठिर विराजे थे ॥ २-३ ॥

[द्रौपदीके ऊपर नारदका क्रोध] इसी समय नारदजी आकाशसे पाण्डवोंकी सभामें आये। महान उत्कर्षशाली पाण्डवोंने उठकर, हाथ जोडकर और उच्चासनादि देकर उनका आदर किया। इसके अनंतर ब्रह्मदेवके पुत्र श्रीनारदजीने पाण्डवोंके साथ अनेक प्रकारके वार्तालाप किये। तदनंतर उत्तम चित्तवाले वे उनके साथ अन्तः पुरमें आये। निष्कपटी मनुष्यवन्दित नारदने खिडकी और सज्जोंसे सम्पन्न, सुवर्णादि धनसे उज्ज्वल ऐसा द्रौपदीका महल देखा। उस महलमें द्रौपदी आसनपर बैठी थी। वह प्रौढ शृंगार धारण करने लगी थी। उसका मस्तक किरीटसे युक्त था। अर्थात् अपने मस्तकपर उसने किरीट धारण किया था। विशाल भालपर वह तिलक धारण कर रही थी और हृदयपर उत्तम अमूल्य रत्नोंका हार धारण किया था। इस प्रकार आभूषणोंसे अपने देहको सजानेके कार्यमें तत्पर होनेसे घरमें आये हुए नारदको उसने नहीं देखा ॥ ४-८ ॥ वह द्रौपदी अपना मुख दर्पणमें आखोंसे देख रही थी, इस लिये उठकर नम्रतासे खडे होना आदिक आदरके कार्य और नमस्कार न कर सकी। ऐसे अपमानादिक दोषसे ब्रह्मदेवसुत नारद क्रुद्ध

अपमानादिदोषेण संक्रुद्धोऽगाद्विधेः सुतः । तस्माद्गृहाच्छिरो धुन्वंश्चिन्वन्रोषं स्वमानसे ॥१०
बभ्राम नभसि भ्रान्तः फूत्कारमुखराननः । न क्वापि रतिमालेभे गतोऽसौ गगनार्णवम् ॥११
जगाम विजनं देशं सहसा च समुन्नतम् । अवादिते च नृत्यामि नारदोऽहं सदा मुदा ॥१२
वादिते किं पुनर्वच्मि चतुरः कलहप्रियः । क्वापमानः कृतो मेऽद्यानया दुःखीकृतोऽप्यहम् ॥
दूषणं च करोम्यत्रैतस्याः सा शुद्धिमाप्य च । प्रियेण संगमासाद्य तादृशी स्यान्निरङ्कुशा ॥
परेण हारयामीमां तदेषा दुःखिनी भवेत् । तस्या हतौ च मे पापं भविता तन्न युज्यते ॥१५
परस्त्रीलम्पटं कंचित्पश्यंश्चोपायसंयुतः । प्रमृग्य लंपटं किंचित्तेनेमां हारयाम्यहम् ॥१६
हरिणा बलदेवेन वन्दितोऽहं परैर्नृपैः । सर्वेषां गुरुरेवाहं सर्वस्त्रीणां विशेषतः ॥१७
पश्यतास्याः सुधृष्टत्वं दुष्टत्वं च सुकष्टकृत् । अवगण्य स्थितेयं मामासने दर्पसर्पिणी ॥१८
यः शृङ्गाररसोऽप्यस्या वल्लभो वल्लभादपि । स शृङ्गाररसो यात्यस्या यथाहं तथा यते ॥
तदा मनोरथाः सर्वे सेत्स्यन्ति मम निश्चितम् । उत्सारयामि सौभाग्यमहमस्या यदा ननु ॥
अपमानभवं दुःखं तदा यास्यति मे हृदः । यदास्या हरणं दुःखं नयनाभ्यां नभोगतः॥२१

होकर मनमें रोषकी वृद्धि करते हुए मस्तकको हिलाकर द्रौपदीके घरसे बाहर गये। मुखसे शापके शब्द निकालनेवाले वे भ्रान्त होकर आकाशमें भ्रमण करने लगे। उनको कहींभी संतोष प्राप्त नहीं हुआ। आकाशसमुद्रमें प्रवेश करते हुए वे अकस्मात् ऊंचे एकान्त प्रदेशमें गये। वे मनमें इस प्रकार विचार करने लगे मैं नारद हूं, मैं बिना वाद्योंकेहि आनंदसे नाचता हूं, फिर वाद्य बजते हुए मैं क्यों नहीं नृत्य करूंगा। मैं चतुर हूं। मुझे कलह करना बहुत प्रिय है। इस द्रौपदीने आज मेरा अपमान किया है। यद्यपि इसने मुझे दुःख दिया है--दुःखी किया है ऐसा समझकर यदि मैं इसे कुछ दूषण करूं तो यह शुद्धिको प्राप्त होकर अपने पतिके सहवाससे पुनः पूर्ववत् निरंकुश होगी। यदि इसका दूसरेके द्वारा हरण कराऊंगा तो यह खेदखिन्न होगी। यदि इसका मैं घात करूंगा तो मुझे पाप लगेगा। इस लिये ऐसा विचार करना योग्य नहीं है। किसी परस्त्री लंपटको देखकर किसी उपायसे उस लंपट मनुष्यको खोजकर उसके द्वारा इसे हरवाना अच्छा होगा। मुझे श्रीकृष्ण, बलभद्र और अन्य राजा नमस्कार करते हैं। मैं सब जनोंका गुरु हूं, और विशेषतः सर्व स्त्रियोंका गुरु हूं। कष्ट देनेवाला इसका दुष्टपना और धृष्टता तो देखो। मेरा तिरस्कार करके मानो यह उन्मत्त सर्पिणी आसन-पर बैठी थी। जो शृङ्गाररस इसे अपने पतिसेभी प्यारा है, वह शृंगाररस इसका जैसा नष्ट होगा ऐसा प्रयत्न मैं करूंगा। और तबही मेरे संपूर्ण मनोरथ निश्चयसे सिद्ध होंगे। जब मैं इसका सौभाग्य दूर करनेमें समर्थ होऊंगा आकाशमें ठहरकर मुझे इसका हरण आंखोंमें देखनेको मिलेगा, तब मेरे हृदयसे यह अपमानदुःख नष्ट होगा अन्यथा नहीं" ॥९-२०॥ इस प्रकारसे विचार कर वे ऋषि कोपसे आकाशमें चले गये। उपाययुक्त होकर परस्त्री लंपट किसी पुरुषको देखते हुए क्षीण अन्तःकरणसे वे ऋषि

चिन्तयित्वेति कोपेन स चचाल ऋषिर्नभः। परस्त्रीलंपटं कंचित्पश्यंश्चोपायसंयुतः ॥२२
बभ्राम निखिलां क्षोणीं क्षिप्रं क्षीणमना ऋषिः। तादृक्षं लोकते यावन्नृपं नाभूत्तदा सुखी॥
चिन्तयन्सोऽन्यनारीषु रतं नरपमुन्नतम्। जगाम धातकीखण्डं नानाखण्डसमुन्नतम् ॥२४
योजनानां चतुर्लक्षैर्विस्तृतं सुश्रुतं श्रुतौ। मन्दरः सुन्दरः पूर्वस्तत्रास्ति सुमनोहरः ॥२५
चतुर्भिरधिकाशीतिसहस्रैर्योजनैर्महान्। समुत्तुङ्गश्चतुर्भिश्च वनैर्वाभाति भूधरः ॥२६
तस्य दक्षिणदिग्भागे भारतं भुवि विश्रुतम्। षट्खण्डमण्डितं भाति भाभारभूपभूषितम्॥२७
मध्येक्षेत्रं पुरी सारामरकङ्का सुखाकरा। भूपीठं भूषयन्ती च सुभगा भवनोत्तमा ॥२८
तां पाति परमः प्रीतः पद्मनाभमहीपतिः। पद्मनाभ इवोत्तुङ्ग इन्दिरामन्दिरं सदा ॥२९
दोर्दण्डखण्डितारातिमण्डलो महिपैः स्तुतः। अवद्योद्भरविद्याभिः सुविद्यः परमोदयः ॥३०
विपुलामलसद्वक्षाः क्षितिरक्षाविचक्षणः। अलक्ष्यस्तु विपक्षाक्षै रूपनिर्जितमन्मथः ॥३१
अथ ब्रह्मसुतः पट्टे तस्या रूपमलेखयत्। रूपनिर्जितसर्वस्त्रीसमूहं चोहकारकम् ॥३२

शीघ्र संपूर्ण पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे। जबतक उनको परस्त्रीलंपट राजा नहीं मिला तबतक वे सुखी नहीं हुए। कोई ऊंचा-ऐश्वर्यशाली परस्त्रीलंपट राजा कहां मिलेगा ऐसा चिन्तन करने-वाले वे नारदर्षि अनेक पद्मवनोंसे समुन्नत-सुंदर ऐसे धातकीखंडको चले गये। वह धातकीखंड चार लक्ष योजन विस्तीर्ण है और आगममें प्रसिद्ध है। उसकी पूर्वदिशामें सुंदर और मनहरण करनेवाला मंदर पर्वत है, वह चौरासी हजार योजन ऊंचा और अतिशय बडा है। भद्रशालादि चार वनोंसे वह पर्वत अत्यंत शोभायुक्त है। उसके दक्षिणदिशाके भागमें पृथ्वीतलमें प्रसिद्ध भरतक्षेत्र है। वह छह खंडों द्वारा शोभता है। वह कांतिसंपन्न राजा लोगोंसे भूषित है ॥२१-२७॥

[नारदका पद्मनाभसे द्रौपदीरूप-कथन] इस भरतक्षेत्रके मध्यमें सुखकर और उत्तम अमरकंका नामक नगरी है उसने भूमितलको शोभायुक्त बनाया है। वह सुंदर है और उत्तम घरोंसे युक्त हैं। अतिशय स्नेहवान् पद्मनाभ नामका राजा जैसे उन्नतिशील कृष्ण इन्दिरामंदिरका-लक्ष्मीमंदिरका पालन करता है वैसे हमेशा पालन करता था। अपने बाहुदण्डसे शत्रुसमूहको अथवा शत्रुओंके देशको उसने नष्ट किया था। अनेक राजा उसकी स्तुति करते थे। यह राजा पापचतुर विद्याओंसे सुविद्य था अर्थात् पापयुक्त विद्याओंका ज्ञाता था। महान् वैभवशाली था। यह राजा विशाल और निर्मल वक्षःस्थलका धारक, पृथ्वीकी रक्षामें चतुर, शत्रुके नेत्रोंको अलक्ष्य और अपने रूपसे मदनको जीतता था॥ २८-३१ ॥ उधर नारदने अपने रूपसे सब स्त्रीसमूहके रूपको जीतनेवाला और नानाविध विकल्प मनमें उत्पन्न करनेवाला उस द्रौपदीका सौंदर्य पट्टपर लिखा। पट्टपर लिखा हुआ अतिशय आकर्षक और अपनी कांतिसे सूर्यको लज्जित करनेवाला रूप राजाको दिखाया। सुवर्णके समान सुंदर, मनोहर हारसे सुशोभित स्तनोंको धारण करनेवाली, पट्टस्थ

नारदो भूमिपालाय तद्रूपं पट्टसंगतम् । दर्शयामास संदीप्तं दीप्तिनिर्जितभास्करम् ॥३३
क्षितीशो वीक्ष्य पट्टस्थां योषां तां कनकोज्ज्वलाम् । हारिहारसुवक्षोजामचिन्तयदिति स्फुटम् ॥
केयं शुचिः शची स्वर्गात्समायाताञ्जसावतः । पद्माथ रोहिणी प्राप्ता सूर्यपत्नी भुवं गता ॥
किंनरी खचरी वाहो कामपत्नी गुणात्मिका । इत्यातर्क्य विकल्पेनेयं किं मोहनवल्लिका ॥
चिन्तयन्निति भूमीशो मुमूर्च्छ मोहसंगतः । तदा हाहारवैर्युक्ता नृपास्तत्र समागताः ॥३७
कथं कथमपि प्राप्तश्चेतनां चिन्तनोद्धुरः । विधातृपुत्रमानम्याप्राक्षीत्पृथ्वीश्वरस्तदा ॥३८
केयं पट्टगता तात वर्णिनीवरवर्णिनी । सविभ्रमा महारूपा विभ्रमभ्रूभ्रमानना ॥३९
यथोक्तं भण भव्येश मम निश्चयकारणम् । तदागदीद्विधेः सूनुः समाकर्णय भूपते ॥४०
शुश्रूषा तव चेदस्ति पट्टरूपस्य पार्थिव । वदामि तर्हि ते चित्तं सुस्थितं च यतो भवेत् ॥४१
मध्येद्वीपं महान्द्वीपो जम्बूनामा मनोहरः । वृत्तेन निर्जितश्चन्द्रस्तथा योगी च येन वै॥४२
तन्मध्ये मन्दरो दीप्तः सुदर्शनसमाह्वयः । लक्षयोजनतुङ्गाङ्गो भाति भूतिलकोपमः ॥४३

उस स्त्रीको देखकर राजा इस प्रकारसे स्पष्ट चिन्ता करने लगा । " यह स्त्री कौन है ? क्या पवित्र इन्द्राणी स्वर्गसे यहां आई है ? अथवा कमलको छोडकर यहां कमला—लक्ष्मी आई हैं ? यह चंद्रकी पत्नी रोहिणी है ? किंवा सूर्यपत्नी इस भूतलपर आई है ? क्या यह किन्नरी, विद्याधरी, अथवा गुणस्वरूपको धारण करनेवाली मदनकी पत्नी रति है ? इतने प्रकारके विकल्पसे यह कौन मोहनवल्ली है ? ऐसा मनमें वह राजा विचार करने लगा । राजा मोहयुक्त होकर मूर्च्छित हुआ । बडे कष्टसे चेतनाको प्राप्त होकर चिन्तनमें तल्लीन हुआ । उस समय वहां हाहाकार करके अनेक राजा आये । बडे कष्टसे चिन्तापीडित राजा पद्मनाभ सावध हुआ । उस समय राजाने नारदको नमस्कार कर पूछा, कि हे तात, पट्टमें वर्णयुक्त यह सुंदर स्त्री कौन है ? जो सविभ्रमा-हावभावयुक्त महासौन्दर्यशालिनी हैं । इसका मुख विलासयुक्त भोंएँ और आवर्तसे मनोहर है । हे ऋषे, आप मुझे निश्चयका कारण ऐसा सत्य कहिए आप भव्योंके स्वामी हैं । कहो ॥ ३२–३९ ॥ उस समय "हे राजा, यदि तुझे पट्टलिखित स्त्री-रूपको सुननेकी इच्छा है तो सुन मैं कहता हूं जिससे तेरा मन स्थिर होगा " ऐसा नारदने कहा ॥ ४० ॥ " अनेक द्वीपोंके मध्यमें जम्बूनामक मनोहर और महान् द्वीप है । इस गोल द्वीपने चन्द्रको जीता था, क्यों कि चन्द्र पौर्णिमाकी रातमेंही पूर्ण गोल रहता है अन्य तिथियोंमें नहीं । और इस द्वीपने योगिकोभी जीता था क्यों कि योगी भी वृत्तयुक्त—चारित्रयुक्त होते हैं, उनके चारित्रमें सदा एकरूपता नहीं रहती है । हमेशा कमजादापन होता है परंतु इस द्वीपके वृत्तमें-गोलाईमें सदा एकरूपताही रहती है । इस जम्बूद्वीपके मध्यमें सुदर्शननामक, एक लक्ष योजन ऊंचा प्रकाशमान मन्दरपर्वत है । वह पृथ्वीको तिलकके समान सुशोभित करता है ॥ ४१–४३ ॥ इस मन्दरपर्वतके दक्षिणमें जगतमें उत्तम धनुष्याकार, कलायुक्त, षट्खण्डोंसे

तदवाच्यां वरं क्षेत्रं भारतं भुवनोत्तमम् । चापाकारं कलाकीर्णं भाति षट्खण्डशोभितम् ॥
कुरुजाङ्गलनामास्ति नीवृत्तत्र मनोहरः । कुरुभूमिसमो भोगैर्भ्राजिष्णुर्भूरिभूपतिः ॥४५
हस्तिनागपुरं तत्र हस्तिनां बृंहितैर्वरम् । सुरापगापरिक्लृप्तपरिखं खलु विद्यते ॥ ४६
युधिष्ठिराभिधस्तत्र भूपो भूरिभयापहः । समृद्धो धरणीं धर्तुं विद्यते कौरवाग्रणीः ॥४७
पार्थः सार्थकनामाभूत्तद्भ्राता भुवि विश्रुतः । तत्पत्नी द्रौपदी पट्टे लिखितेयं सुरूपिणी ॥
रामासुखसमीहा चेत्तवैनां कुरु हृद्गताम् । विनानया प्रभो विद्धि जीवितं तेऽप्यजीवितम् ॥
तद्रूपं च वरे पट्टे विद्युत्कीर्णं सुकर्णभृत् । तुभ्यं यद्रोचते भूप तत्कुरुष्व न चान्यथा॥ ५०
इत्युक्त्वास्मिन्गते व्योम्नि तद्रूपाहतमानसः । तत्कामिनीं स्मरंश्चित्ते क्षणं दुःखी नृपोऽभवत्॥
वनमित्वा तदा भूपो मन्त्राराधनतत्परः । संगमाख्यं सुरं शीघ्रं साधयामास संगदम्॥५२
साधितः संगमः प्राप्तो नृपं प्रणयसंगतम् । प्राह देहि ममादेशं त्वदिष्टं हृष्टिकारकम् ॥५३
तदाभाणीन्नृपस्तुष्टो निर्जरानय मानिनीम् । द्रौपदीं रूपसंपन्नां संप्राप्तपरमोदयाम् ॥५४

शोभित भारतक्षेत्र शोभता है । उसमें कुरुजांगल नामका मनोहर देश है। वह भोगोंके पदार्थ देने-वाला होनेसे उत्तरकुरु, देवकुरुभोगभूमिके समान शोभनेवाला है और अनेक राजाओंसे मनोहर दीखता है । उस देशमें हाथियोंकी गर्जनाओंसे सुंदर हस्तिनागपुर नामक शहर है । निश्चयसे उसकी खाई गंगानदीसे बनाई गई है। वहां युधिष्ठिर नामका राजा है वह कौरववंशका अगुआ है। वह अतिशय भयको दूर करनेवाला है । वह पृथ्वीको धारण करनेमें समृद्ध-समर्थ है ॥ ४४-४७ ॥ युधिष्ठिरराजाके भ्राताका नाम 'पार्थ' है वह अन्वर्थ नामका धारक है। और इस भूतलमें प्रसिद्ध है। उसकी पत्नीका नाम द्रौपदी है। वही स्वरूप-सुंदरी इस पट्टमें लिखी है। हे राजा, स्त्रीके सुखकी यदि तुझे इच्छा है तो तू इसे अपने हृदयमें रख। हे राजन्, इसके विना तेरा जीवित भी अजीवितके समान है अर्थात् इसके विना जीना मरणके समान है। हे उत्तम कर्णको धारण करनेवाले राजन्, उसीका इस सुंदर पट्टमें बिजलीके समान रूप फैला हुआ है। प्रकाशमय रूप है। अब तुझे जैसा रुचता है वैसा कर मैंने जो कहा है वह अन्यथा-असत्य नहीं है" ॥ ४८-५० ॥ ऐसा बोलकर नारद आकाशमें चले गये। द्रौपदीके रूपसे व्याकुल चित्तवाला पद्मनाभराजा मनमें उस स्त्रीको स्मरण करता हुआ अतिशय दुःखी हुआ ॥ ५१ ॥

[कामुक पद्मनाभकी द्रौपदीसे प्रार्थना] राजा वनमें जाकर मंत्राराधना करनेमें तत्पर हो गया। उसने स्त्रीका संग देनेवाले संगम नामक देवको शीघ्र साध्य कर लिया। वश किया हुआ संगमदेव प्रेमसहित राजाके पास आगया और तुझे जो इष्ट और आनंदका कारण हो, मुझे आज्ञा दे। उस समय आनंदित हुआ राजा कहने लगा, कि- "जिसे उत्तम वैभव प्राप्त हुआ है, तथा जो रूपसंपन्न है, ऐसी द्रौपदीको यहां लाओ" उसका भाषण सुनकर प्रेम करनेवाला, चंचल

तन्निशम्य सुरः शीघ्रं सानुरागश्च कार्यकृत् । चचाल चलचित्तात्मा संचरन्गगनाङ्गणम् ॥५५
द्विलक्षयोजनव्यापिसागरं सत्वरं सुरः । जगामोल्लङ्घ्य निर्विघ्नो हस्तिनागपुरं परम् ॥५६
निशायां सदनं तस्याः प्रविश्य संगमः सुरः । साक्षाल्लक्ष्मीमिव क्षिप्रं सुप्तां जहेऽर्जुनाङ्गनाम्
हृत्वा सुरः समानीय द्रौपदीं स्वापसंयुताम् । तद्रङ्गोद्यानसद्गेहे मुमोच मतिमोहिताम् ॥५८
निद्रावशादजानन्तीं हेयाहेयं कथंचन । सशय्या तत्र सा सुप्ता प्रातःपर्यन्तमास्थिता ॥५९
पद्मनाभः सुरेणापि विज्ञापितस्तदागमः । प्रबुद्धः पटुधीः प्राप तस्या अभ्यर्णमादरात् ॥६०

निद्राक्रान्तां स आलोक्य कौमुदीं कनकोज्ज्वलाम् ।
पीनस्तनीं सुजघनां जहर्षेन्दुसमाननाम् ॥६१

बभाण भूपतिर्भक्तो भद्रे तु रजनी गता । प्रभातसमयो जातः प्रबुद्धा भव भामिनि ॥६२
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वेगेनालोकय त्वं सुलोचने । वद वाणीं विशेषेण विश्वविज्ञानपारगे ॥६३
इत्थमुत्थापिता वाक्यैर्मधुरैः सुसुधोपमैः । त्रस्तैणनयना बाला पश्यति स्म दिशो दश ॥
कोऽयं देशस्तु को वक्ति एष कः पुरतः स्थितः । किमुद्यानमिदं गेहे वेति चिन्तां तु सा गता ॥

चित्तवाला, कार्यकारी देव शीघ्र जाता हुआ आकाशमें चला गया। दो लक्ष योजन विस्तृत समुद्रको सत्वर उलंघकर वह देव निर्विघ्नतासे सुंदर हस्तिनागपुरको प्राप्त हुआ ॥ ५२-५६ ॥ रात्रीमें देवने उसके द्रौपदीके महलमें प्रवेश किया, सोई हुई साक्षाल्लक्ष्मी मानो ऐसी अर्जुनस्त्रीको देव हरकर शीघ्र ले गया। हरकर लायी गई जिसकी बुद्धि मोहित हुई है ऐसी द्रौपदीको अमर कंकानगरीके उपवनके उत्तम महलमें देव छोडकर चला गया। निद्राके वश होनेसे जिसे हेयाहेय कार्यका कुछ भी ज्ञान नहीं है ऐसी वह शय्यापर प्रातःकालतक सोती रही ॥५७-५९॥ देवने पद्मनाभराजाको द्रौपदीके आगमनकी बात कही। जागृत और चतुरबुद्धि वह राजा बडे आदरसे उसके पास आया ॥६०॥ सुवर्णसमान उज्ज्वल, ज्योत्स्नाके समान सुंदर, गाढ निद्रायुक्त, पुष्ट स्तनवाली, सुंदर श्रोणिवाली और चंद्रसमान मुखवाली द्रौपदीको देखकर राजा हर्षित हुआ। द्रौपदीके ऊपर लुब्ध हुआ राजा कहने लगा, कि "हे भद्रे, रात्रि समाप्त हुई और अब प्रभात काल हुआ है। हे भामिनि, जल्दी तू जागृत हो। हे सुलोचने, तू जल्दी ऊठ ऊठ। तू मुझे देख, सर्व कलाओंके ज्ञानमें चतुर हे सुलोचने, विशेषतासे मेरे साथ तू बोल" ॥ ६१-६३ ॥ इस प्रकारके अमृतोपम मधुरवाक्योंसे जिसको उठाया है और भययुक्त हरिणके नेत्रतुल्य आंखें जिसकी हैं ऐसी वह द्रौपदी दश दिशाओंको देखने लगी। तथा उसके मनमें ऐसी चिन्ता उत्पन्न हुई "यह कौनसा देश है? मुझसे बोलनेवाला कौन है? यह कौन पुरुष मेरे आगे खडा हुआ है? यह तो निश्चयसे स्वप्नही है इसमें मुझे कुछ भ्रान्ति नहीं दीखती है"। ऐसा विचार कर अपना मुख ढंक कर तथा आंखें मीचकर वह सो गई ॥ ६४-६६ ॥ राजाने उसका अभिप्राय जाना अर्थात् यह भामिनी भ्रान्तिमें है ऐसा उसने

अयं तु निश्चितं स्वप्नो न भ्रान्तिर्विद्यते मम। इति स्ववक्त्रमाच्छाद्य सुप्ता सा मीलितेक्षणा॥
भूपस्तन्मानसं ज्ञात्वा जगाद मदनाहतः। कमलाक्षि निरीक्षस्व नायं स्वप्नः प्रहर्षिणि॥६७
नेयं निद्रेति सा मत्वा प्रेक्षमाणा दिशो दश। ददर्श किङ्किणीयुक्तं व्योमयानं मनोहरम्॥
परस्त्रीलम्पटो लोभी कपटी विकटः पटुः। पद्मनाभो जजल्पेति भामिनि शृणु मद्वचः॥६९
द्वीपोऽयं धातकीखण्डश्चतुर्लक्षसुयोजनैः। विस्तीर्णो वेष्टितो विष्वक्कालोदकपयोधिना॥७०
विद्धीमां देवकङ्काख्यां पुरीं ख्यातां वरां शुभैः। स्वार्णैर्गृहैः समुद्दीप्तां मणिमुक्ताफलाञ्चिताम्
तत्पतिः पद्मनाभाख्यो वैरिवारविनाशकः। अहं पराक्रमाक्रान्तदिक्चक्रः शक्रसंनिभः॥७२
भो भामिनि भवत्यर्थे भयत्रस्तेन चेतसा। मया कष्टेन वेगेन सुरः संसाधितो हठात्॥७३
त्वां विना भोजनं भव्यं भव्ये मे रोचते न हि। विरहेण तवात्यर्थं मृतावस्थामितोऽस्म्यहम्॥
सुरेण तेन वेगेन त्वमानाय्य सुखं स्थितः। प्रसन्ना भव भो भीरु भज भोगान्मया समम्॥
देशं कोशं पुरं रत्नं चामरातपवारणे। तुरंगं दन्तिनं हर्म्यं गृहाण त्वं तवेप्सितम्॥७६
विरहाग्निं परं लग्नं विध्यापय विचक्षणे। भोगोदकेन वेगेन मम मर्मणि दाहकम्॥७७

समझ लिया। वह मदनपीडित होकर उसे कहने लगा, कि "हे कमलनयने, हे हर्षयुक्ते देख, यह स्वप्न नहीं है"। ऐसा उसका भाषण सुनकर यह निद्रा नहीं है अर्थात् स्वप्न नहीं है ऐसा उसने भी जान लिया और दश दिशाओंको वह देखने लगी। उसने अपने आगे छोटी घंटिकाओंसे युक्त मनोहर आकाशविमान देखा॥ ६७–६८॥

[पद्मनाभकी द्रौपदीसे प्रार्थना] परस्त्रीलंपट, लोभी, कपटी, भयंकर और चतुर पद्मनाभ-राजा कहने लगा, कि "हे सुंदरी मेरा वचन सुन" अर्थात् मैं यहांकी सब परिस्थिति तुझे कहता हूं। यह धातकीखंड नामक द्वीप चार लक्ष योजन विस्तीर्ण है और कालोदधि समुद्रने इसे चारों तरफसे वेष्टित किया है। हे भामिनि, इस उत्तम नगरीको अमरकंका नामकी प्रसिद्ध नगरी समझो। यह शुभ-सुंदर सुवर्णखचित घरोंसे चमकती है, तथा मणि-मौक्तिकोंसे समृद्ध है। इस नगरीका राजा मैं हूं, मेरा नाम पद्मनाभ है और मैं वैरिसमूहका नाश करनेवाला, पराक्रमसे दशदिशाओंको व्याप्त करनेवाला और इंद्रके समान वैभववाला हूं। हे सुंदरी, तेरे लिये-तेरी प्राप्तिके लिये भयभीत मनसे मैंने कष्टसे और हठसे देवकी आराधनाकर उसे साधा है। हे भव्ये, तेरे विना मधुर अन्न भी मुझे नहीं रुचता है। तेरे तीव्र विरहसे मेरी मृतके तुल्य अवस्था हुई है॥ ६९–७४॥ साधित देवके द्वारा मैं तुझे यहां लाया हूं जिससे अब मैं सुखसे रहूंगा। हे भीरु, तू मुझपर प्रसन्न हो और मेरे साथ भोगोंको भोग। देश, कोश, नगर, रत्न, चामर, छत्र, घोडा, हाथी, महल आदिक तुझे जो पदार्थ रुचते हैं वे ग्रहण कर। हे चतुरे, मेरे शरीरमें जो विरहाग्नि लग गई है उसे तू शांत कर। यह विरहाग्नि मेरे मर्मोंको दग्ध कर रही है उसे तू भोगरूपी जलके वेगसे शांत कर। इस

सानुकूलां परां दृष्टिं कुरु मन्मथसंगरे। विषादं भज मा भव्ये मया सत्रं सुखं भज।।७८
वल्लभा भव भूमर्तुर्भव्यभावमुपागता। मम मानसजं दुःखं हरन्ती सुखदायिके।।७९
निशम्येति शुचाक्रान्ता कम्पिताङ्गी स्फुटद्धृदा। रुरोद सेति दुःखार्ता बाष्पव्याप्तिमदानना।।
हा युधिष्ठिर हा ज्येष्ठ हा विशिष्ट सुधर्मधीः। हा पावने पवित्रोऽसि वीराणामग्रणीर्वरः।।८१
हा पार्थ नाथ समरे समर्थो दस्युशासनः। दुःखकाले समाक्रान्ते को मां रक्षति दुःखिनीम्।।
विना भवद्भिरत्यर्थं किं सुखं मम सांप्रतम्। किंवदन्तीमिमां तत्र को नेष्यति मम प्रियः।।
सुरेणाहं हर्डि नीता प्रसुप्ता भुवि विश्रुता[1]। इत्याक्रन्दं प्रकुर्वाणा संतस्थे द्रुपदात्मजा।।८४
स बभाण महायुक्त्या सुश्रोणि शृणु सांप्रतम्। शोकं हित्वा रमस्वाशु मया सार्धं सुखाप्तये।।
त्यक्त्वा धनंजयस्याशां दत्त्वा तस्मै जलाञ्जलिम्। विषादं च विमुच्याशु भोगे रक्ता भव प्रिये।।
तदा निशम्य पाञ्चाली शीलभङ्गोद्धुरं वचः। अचिन्तयन्निजे चित्ते चिन्तासंचयसंगता।।८७

कामयुद्धमें तू मुझपर अनुकूल दृष्टि डाल। हे देवि, विषाद छोड, मेरे साथ तू सुखको भोग। कल्याण स्वभावको धारण करनेवाली, तू पृथ्वीके पति ऐसे मेरी प्रियतमा बन। मेरे मानसिक दुःखका नाश करनेवाली तू मुझे सुख दे "॥ ७५–७९ ॥ पद्मनाभके ऐसे वचन सुनकर द्रौपदी शोकयुक्त हुई। उसका अंग कँपने लगा। उसका हृदय फूट गया। वह दुःखपीडित होकर रोने लगी। उसका मुख अश्रुओंसे भीग गया। वह इस प्रकारसे शोक करने लगी " हे ज्येष्ठ युधिष्ठिर, आपमें विशिष्ट धर्मकी बुद्धि निवास करती है। हे पावने, अर्थात् हे भीम आप पवित्र और वीरोंमें श्रेष्ठ अगुआ है। हे नाथ, अर्जुन, आप युद्धमें समर्थ और शत्रुओंका दमन करनेवाले हैं। प्राप्त हुए इस दुःखकालमें मुझ दुःखिनीका कौन कौन रक्षण करेगा ? ॥ ८०–८२ ॥ आपके नहीं होनेसे अर्थात् आपका अतिशय वियोग हो जानेसे मुझे इस समय सुखप्राप्ति कैसे होगी ? मेरा कौन प्रिय है जो यह वार्ता आपके प्रति पहुँचावेगा ? मैं पृथ्वीमें प्रसिद्ध हूं। मैं सोई थी ऐसे समय देवने मुझे यहां लाकर बंदिशालामें रखा है। " इस प्रकार शोक करती हुई द्रौपदी वहां रही ॥ ८३–८४ ॥ पद्मनाभराजा द्रौपदीको पुनः इस प्रकारसे प्रार्थना करने लगा " हे सुश्रोणि, तू इस समय मेरा वचन सुन। तू शोक छोडकर सुखके लिये मेरे साथ क्रीडा कर। अब अर्जुनकी आशा छोडकर उसे जलाञ्जलि दे। हे प्रिये, खिन्नताको छोड दे और शीघ्र भोगोंमें अनुरक्त-तत्पर हो "। ऐसा पद्मनाभने महायुक्तिके साथ भाषण किया ॥८५–८६॥ उस समय शीलभंग करनेवाला राजाका प्रबल वचन सुनकर चिन्ताओंके समूहसे पीडित द्रौपदीने अपने मनमें ऐसा विचार

---

१ स प्रसुप्ता सुश्रुतान्विता।

शीलरत्नमहो नृणां भूषणं शीलमुत्तमम्। शीलाद्दासत्वमायान्ति सुरासुरनरेश्वराः ॥८८
शीलात्सुसुज्ज्वलः कायः शीलेन विपुलं कुलम्। शीलेन जायते नाकः शीलं चक्रिपदप्रदम्॥
शीलेन शोभते सद्यः सर्वसीमन्तिनीगणः। शीलेन विपुलो वह्निः सीतावच्च जलायते ॥९०
सुलोचना यतो याता शीलतः सुरनिम्नगाम्। समुत्तीर्य तथान्यासां शीलान्नीरं स्थलायते ॥
शीलतो जलधिर्नृणां क्षणतो गोष्पदायते। श्रीपालकामिनीवद्वै शीलं सर्वसुखाकरम्॥९२
शीलयुक्तो मृतः प्राणी स सुखी स्याद्भवे भवे। न जहामि वरं शीलं मृत्यावद्युपस्थिते ॥
समुच्छ्वास्य विकल्प्येति जजल्प द्रुपदात्मजा। शृणु त्वं प्रकटाः पञ्च पाण्डवा भ्रातरो भृशम्॥
प्रचण्डाखण्डकोदण्डा जिताखण्डलमण्डलाः। कम्पन्ते यत्प्रभावेन निर्जराः सज्जमानसाः॥९५
संचरन्तो रणे नूनमनिवार्या विपक्षकैः। ये घ्नन्ति घनघातेन वैरिणो विगतालसाः ॥९६
पुनर्यद्भ्रातरौ कृष्णबलौ त्रिखण्डनायकौ। सुरासुरनरैः पूज्यौ तौ स्तो भारतभूषणौ ॥९७
कीचकेन समीहा मे कृता शीलविलुप्तये। हतः स भ्रातृभिः सत्रं शतसंख्यैः सुपाण्डवैः ॥९८

किया "मनुष्यप्राणियोंको शील रत्न है और वह उनका उत्तम अलंकार है। सुर, असुर और मनुष्योंके स्वामी इन्द्र, चक्रवर्ती आदि शीलके प्रभावसे दास होते हैं। शीलके पालनेसे तेजस्वी शरीरकी प्राप्ति होती है और शीलसे कुलकी विपुलता होती है अर्थात् उच्चकुलमें जन्म होता है। शीलसे स्वर्ग मिलता है और शील चक्रवर्तिपदका दाता है। शीलसे तत्काल सर्व नारीगणको शोभा उत्पन्न होती है। अतिशय तीव्र विशाल अग्नि शीलके प्रभावसे सीताके समान पानी हो जाता है। इस शीलके प्रभावसे जयकुमारकी रानी सुलोचना गंगा नदीको तीरकर संकटमुक्त हो गई। वैसे अन्य शीलवती स्त्रियोंको भी शीलके प्रभावसे पानी स्थलके समान हुआ है। शीलके प्रभावसे मनुष्योंको समुद्र क्षणमेंही गायके खुरके समान हो जाता है। श्रीपालराजा और उसकी स्त्री मदन-सुंदरी रानी भी इसके उदाहरण हैं। शीलसे सर्व सुख मिलते हैं। शीलयुक्त प्राणी मरनेपर प्रत्येक भवमें सुखी ही होता है। मृत्यु उपस्थित होनेपरभी मैं शीलका त्याग न करूंगी" ॥ ८७-९३ ॥ तदनंतर दीर्घ श्वास छोडकर और मनमें कुछ विचार कर द्रौपदी पद्मनाभको इस प्रकार बोलने लगीः– "हे राजा, सुन युधिष्ठिरादिक पांच पाण्डव अन्योन्यके भाई हैं। तथा उनकी सर्वत्र प्रसिद्धि है। वे प्रचंड और अखंड कोदंडके–धनुष्यके धारक हैं। और इंद्रोंको भी वे जितनेवाले हैं। इनके प्रभावसे स्थिरचित्तवालीं देवतायें डरती हैं। जब वे युद्धमें संचार करते हैं तब उन्हें निश्चयसे शत्रु जीतनेमें असमर्थ होते हैं। शत्रु उनका निवारण नहीं कर सकते हैं। आलस्य छोडकर वे प्रचण्ड आघातसे शत्रुओंको नष्ट करते हैं। पुनः त्रिखण्डके स्वामी श्रीकृष्ण और बलदेव ये पाण्डवोंके भाई हैं। ये श्रीकृष्ण और बलदेव सुर, असुर और मनुष्योंसे पूजे जाते हैं और वे इस समय जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रके अलंकार हैं। मेरा शील नष्ट करनेके लिये कीचकने इच्छा की थी, परंतु सुपाण्डवोंने

पुनस्त्वं मोहतो मानिन्मा मुह्यतात्स्वमानसे। नागीव विषवल्लीव वृथानीता त्वयाप्यहम् ॥
मासमेकं ममाशां त्वं मुक्त्वा तिष्ठ स्थिरं नृप। एतावत्कालपर्यन्तं यद्भाव्यं तद्भविष्यति ॥
कथं कथमपि प्रायस्ते नायास्यन्ति पाण्डवाः। मासमध्ये ततस्तुभ्यं रोचते यच्च तत्कुरु ॥
इत्युक्ते भूपतिस्तस्थौ चिन्तयन्निति चेतसि। रत्नाकरं समुत्तीर्य ते क्वायास्यन्ति पाण्डवाः ॥
ततः सा निरलङ्कारा पानाहारविवर्जिनी। शिरोवेणीं प्रबन्ध्यासौ तस्थौ चित्रगतेव वै ॥१०३
तदा गजपुरे प्रातः प्रचण्डैः पाण्डुनन्दनैः। निरीक्षितापि नो दृष्टा पाञ्चाली परमोदया॥१०४
तस्या शुद्धिर्न कुत्रापि लब्धा संशोधिता ध्रुवम्। पुनः पुनर्नराधीशैर्न दृष्टालोकिताप्यलम् ॥
तदा द्वारावतीपुर्यां केनापि कथितं हि तत्। चक्रिणे प्रणतिं कृत्वा द्रौपदीहरणं पुनः ॥
क्षणं दुःखाकुलस्तस्थौ केशवो विषमो रणे। पुनः क्रुद्धः स युद्धस्य दापयामास दुन्दुभिम् ॥
तदा घोटकसंघाता गजा गर्जनतत्पराः। रथाश्चीत्काररावाढ्याश्चलुश्चञ्चलचक्रिणः ॥१०८
उत्खातखड्गसद्धस्ताः कुन्तकादण्डपाणयः। पदातयस्ततस्तूर्णं प्रपेदिरे नृपाङ्गणम् ॥१०९
चतुरङ्गबलेनासौ यावद्यातुं समुद्ययौ। तावता नारदो यातोऽमरकङ्कापुरीं प्रति ॥११०

सौ भ्राताओंके साथ कीचकको मार डाला। पुनः तू भी हे मानी राजा मोहसे मेरी इच्छासे मनमें मोहित मत हो। मैं विषयुक्त नागिनीके समान तथा विषकी लताके समान हूं। तूने मुझे यहां व्यर्थ लाकर रखा हैं। एक महिनातक मेरी–आशा छोडकर हे राजा तूं स्थिर ठहर जा। इतने कालकी मर्यादामें जो कुछ होनहार है वह होगा। यदि किसी तरहसे भी वे पाण्डव एक मासमें नहीं आवेंगे तो तुझे जो रुचता है वह कार्य कर। ऐसा कहनेपर वह पद्मनाभ राजा मनमें ऐसा विचार करने लगा "समुद्रको उलंघकर वे पाण्डव कहां आ सकते हैं" ॥ ९४–१०२ ॥ तदनंतर द्रौपदीने अपने मस्तकपर वेणी बांधकर आहार और अलंकारोंका त्याग किया। तब वह मानो चित्रलिखितसी दीखने लगी। इधर गजपुरमें प्रातःकाल प्रचण्ड पाण्डुपुत्रोंको उत्तम अभ्युदयवाली पांचाली-द्रौपदी जहां तहां अन्वेषण करनेपरभी नहीं दीखी। अन्यस्थानोंमें उसको ढूंढनेपर भी कहांसे भी उसकी वार्ता नहीं मिली। वारंवार राजाओंसे तलाश करने परभी वह दृष्टिगत नहीं हुई। तब द्वारावतीनगरमें किसीने चक्रवर्तीको प्रणाम करके द्रौपदीकी हरणवार्ता पुनः निवेदन की ॥ १०३–१०६ ॥ श्रीकृष्ण क्षणतक दुःखी हुए अनंतर रणमें भयंकर केशवने क्रुद्ध होकर युद्धके लिये नगारा बजवाया। तब घोडोंका समूह, गर्जनामें तत्पर हाथी, जिनके चक्र चंचल हैं, जो चीत्कार शब्द करते हैं ऐसे रथ, युद्धसज्ज होकर चलने लगे। कोशसे निकाली हुई तरवारें जिनके हाथमें हैं, तथा जिनके हाथोंमें भाला और धनुष्य हैं ऐसे पैदल अपने स्थानोंसे शीघ्र राजाके अंगणमें जाकर खडे हो गये। चतुरंग सैन्यके साथ यह श्रीकृष्ण प्रयाण करनेके लिये निकला। इधर नारदने अमरकंकापुरीको जाकर वहां द्रौपदी देखी। अश्रुसमूहसे द्रौपदीका मुख व्याप्त अर्थात्

तत्र सा तेन संदृष्टा बाष्पौघप्लुतसन्मुखा। तप्तजम्बूनदाभासा मुक्तकेशी कृशोदरी॥१११
कपोलन्यस्तसद्धस्ता प्रतिमेव क्रियातिगा। रतिर्वा कामनिर्मुक्ता शची वाशक्रवर्जिता॥११२
श्रियं निर्जित्य रूपेण स्थिता किंवा स्थिरासना।
इति संचिन्त्य दुश्चिन्तो नारदश्चेत्यचिन्तयत्॥ ११३
सतीयं संकटं नीता मया मानेन पापिना। ततः स केशवं प्राप्यावादीद्रणसमुद्यतम्॥११४
विकटं कटकं विष्णो किमर्थं मेलितं त्वया। द्रौपदी धातकीखण्डे कङ्कायां सा तु विद्यते॥
पद्मनाभो नृपस्तत्र वैरिवंशविनाशकः। आराध्य निर्जरं जह्रे तां सीतां वा दशाननः॥११६
यत्र यातुं न शक्नोति नरः कोऽपि महाबली। अतोऽत्र तिष्ठ निर्द्वन्द्वमिदं कार्यं सुदुष्करम्॥
तन्निशम्य स्वभूस्तत्र प्रभुः संमुच्य तद्बलम्। रथेनैकेन संप्राप नगरं हास्तिनं पुरम्॥११८
संमुखं पाण्डवा विष्णुं गत्वा नत्वा न्यवेदयन्। द्रौपदीहृतिवृत्तान्तं विश्वलोकभयप्रदम्॥
ते तत्र मन्त्रणं कृत्वा मत्वा दुर्लङ्घ्यमर्णवम्। लवणाम्बुधिसत्तीरं प्रापुः पापपराङ्मुखाः
तत्र त्रिकोपवासेनासाधयत्स्वस्तिकं सुरम्। लवणाम्बुधिसन्नाथं प्रस्पष्टो विष्टरश्रवाः॥१२१

आर्द्र—गीला हुआ था। तपे हुए सोनेकासा उसका शरीरवर्ण था। उसके मस्तकके बाल बिखरे हुए थे। उसका पेट कृश हुआ था अर्थात् उसका शरीर कृश हुआ था। उसने अपने हाथपर अपना गाल रक्खा था। स्थिर प्रतिमाके—समान वह दीखती थी। मदनवियुक्त रतिके समान, वा इंद्ररहित शची—इंद्राणीके समान, अथवा सौंदर्यके द्वारा लक्ष्मीको जीतकर स्थिर आसनसे मानो बैठी हुई है ऐसा विचार कर दुःखदायक चिन्तासे घिरा हुआ नारद ऐसा विचार करने लगा॥१०६–११३॥ 'हाय! मुझ पापीने मानसे इस सतीको संकटमें डाला है।' तदनन्तर वह शीघ्र रणोद्यत कृष्णके पास आकर बोलने लगा। हे केशव, यह भयंकर सैन्य किस लिये इकट्ठा किया है? द्रौपदी तो धातकीखंडमें अमरकङ्का नामक नगरीमें मैंने देखी है। वहां पद्मनाभ नामक राजा, जो कि शत्रुओंका वंश नष्ट करनेवाला है, रावणने जैसा सीताका हरण किया, वैसे उसने देवकी आराधना कर द्रौपदीका हरण किया है। वहां कोई—महाबलवान् मनुष्य भी जानेमें समर्थ नहीं है इस लिये तुम यहां निश्चिंत होकर बैठे हैं। यह कार्य बडा कठिन है॥ ११४–११७॥ नारदसे द्रौपदीकी वार्ता सुनकर कृष्णराजाने अपना चतुरंग सैन्य वहां ही छोड दिया और एक रथसे वह हास्तिनापुरको आगया। विष्णुके पास जाकर और नमस्कार कर सब दुनियाको भीति उत्पन्न करनेवाली द्रौपदी हरणकी वार्ता पाण्डवोंने विष्णुसे कही॥ ११८–११९॥ पापरहित पाण्डव और श्रीकृष्णने वहां विचार किया और समुद्र अलंघनीय है ऐसा समझकर लवणसमुद्रके सुंदर किनारेपर आए। वहां विष्णुने तीन उपवास करके लवणसमुद्रके स्वामी श्रीस्वस्तिक नामक देवको स्पष्टरीतिसे सिद्ध किया। उस देवने वेगवान् छह रथ उनको दिये। वे रथ पानीमें चलनेवाले थे। उनके द्वारा वे क्षणमात्रमें

ततस्ते स्यन्दनैः षड्भिर्देवदत्तैः सुवेगिभिः। पयश्चारिभिराभेजुः पुरीं कङ्काभिधां क्षणात् ॥
हरिणा सह सिंहा वा जगर्जुः पञ्च पाण्डवाः। सज्जं शार्ङ्गं व्यधाद्विष्णुष्टङ्काराराववसंकुलम् ॥
भीमेन भ्रामिता तूर्णं गदा विद्युल्लता यथा। नकुलेन तदाग्राहि कुन्तो द्विट्कृन्तनोद्यतः ॥
पाणौ कृतः कृपाणस्तु सहदेवेन दीप्तिमान्। सज्जिता सत्वरं शक्तिर्धर्मपुत्रेण जित्वरी ॥१२५
तदा धनंजयः प्राह नत्वा धर्मसुतं क्षणात्। वारयिष्याम्यरिं यूयं सर्वे तिष्ठत निश्चलम् ॥
इत्युक्त्वा पूरयित्वा स शङ्खं कोदण्डपाणिकः। दधाव देवदत्ताह्वं पार्थः सद्रथसंस्थितः॥१२७
हरिणा पूरितः पाञ्चजन्यो जयभयंकरः। तन्निशम्य पुराद्राजा निर्जगाम बलोद्धतः ॥१२८
रणतूर्येण तूर्णं स कुर्वंश्च बधिरा दिशः। रेणुनाच्छादयन्व्योम युयुधे भूपतिर्बली ॥१२९
पार्थेन जर्जरीचक्रे पद्मनाभो महाशरैः। रणं हित्वा गतः पुर्यां दत्त्वा स विशिखां स्थितः ॥
वैकुण्ठः कठिनं पादप्रहारैस्तां न्यपातयत्। विविशुः पत्तनं सर्वे त्रासयन्तोऽखिलाञ्जनान्॥
भीमस्तु पातयामास गदया मन्दिराणि च। आददाविन्दिराः सर्वाः सुन्दरो मन्दरस्थिरः ॥

....

अमरकंका नगरीको आगये ॥ १२०–१२२ ॥

[पद्मनाभका शरण आना] कृष्णके साथ आये हुए वे पांच पाण्डव सिंहके समान गर्जना करने लगे। टंकारध्वनिसे भरा हुआ शार्ङ्ग धनुष्य विष्णुने सज्ज किया। भीमने शीघ्र घुमाई हुई गदा विद्युल्लताके समान दीखने लगी। नकुलने शत्रुको तोडनेमें समर्थ कुन्त-भाला हाथमें लिया। और सहदेवने अपने हाथमें तेजस्वी तरवार ग्रहण की। धर्मपुत्र युधिष्ठिरने जयशाली शक्तिनामक आयुध हाथमें लिया ॥ १२३–१२५ ॥ उस समय अर्जुनने धर्मसुतको--युधिष्ठिरको नमस्कार कर कहा, कि " तुम सब निश्चल रहो। मैं एक क्षणमें शत्रुको हटा दूंगा। " ऐसा बोलकर धनुष्य जिसके हाथमें हैं, जो उत्तम रथमें बैठा है, ऐसा अर्जुन देवदत्त नामक शंख पूर कर रणभूमिकी तरफ दौडने लगा। श्रीकृष्णने लोगोंको भय उत्पन्न करनेवाला पांचजन्य नामक शंख फूंका। उसका ध्वनि सुनकर बलसे-सैन्यसे उद्धत पद्मनाभराजा नगरके बाहर युद्धके लिये आया ॥ १२६–१२८ ॥ शीघ्र रणवाद्योंसे सर्व दिशाओंको बधिर करनेवाला और रेणुओंसे आकाशको आच्छादित करनेवाला वह पद्मनाभराजा लडने लगा। परंतु जब अर्जुनने महाबाणोंसे उसे जर्जर किया तब वह रण छोडकर अपने नगरमें गया और नगरद्वार बंद करके बैठा। उस नगरद्वारको कठिन पाद-प्रहारोंसे विष्णुने तोड दिया और सब पाण्डवोंने सर्व लोगोंको भय दिखाते हुए नगरमें प्रवेश किया। भीमने तो गदासे सब मंदिरोंको तोड डाला। मंदरपर्वतके समान स्थिर सुंदर भीमने सर्व द्रव्य हरण किया। तब सब लोग भागने लगे, राजा भी भाग गया और दौडता हुआ, रक्षण करो रक्षण करो ऐसा कहता हुआ द्रौपदीको शरण गया। "हे द्रौपदी, तेरे हरणसे जो मैंने पाप किया उसका फल मुझे भूमीशोंसे मिला" इस तरह वह बोलने लगा। इसके अनंतर " हे मूढचित्त, तुझे मैंने पूर्वमें

नष्टो जनस्तदा सर्वो भूपोऽपि प्रपलायितः। ब्रुवाणस्त्राहि त्राहीति द्रौपदीं शरणं ययौ॥
द्रौपदीहरणात्पापं कृतं यद्धि मया फलम्। लब्धं तदत्र भूमीशे इत्यवोचद्गिरं पराम्॥१३४
द्रौपद्यथावदद्वाक्यं शृणु रे मूढमानस। पुरा प्रोक्तं त्वदग्रेऽत्र समेष्यन्त्याशु पाण्डवाः॥१३५
दुर्योधनादयो योधा युद्धे यैर्निर्जिताः क्षणात्। तेषामग्रे भवद्वार्ता केति पूर्वं मयोदितम्॥१३६
तावता तत्र ते प्रापुर्दन्तिनो वा निरङ्कुशाः। भूपस्तान्वीक्ष्य नम्रोऽभूद्रक्ष रक्षेति संवदन्॥
तस्याः स शरणं प्राप्तो भूपोऽभाणीद्भयातुरः। त्वमखण्डा महाशीला सुशीलासि समप्रिया॥
त्वं दापयाभयं दानमेतैर्मे जीवनप्रदम्। सा तदादापयत्तस्याभयं दानं च तैर्नृपैः॥१३९
ततः प्रणम्य कृष्णाङ्घ्री पाण्डवान्विनयोद्यतः। यथायथं चकारासौ विनयं भोजनादिभिः॥
ते तदा द्रौपदीं लात्वा स्नात्वार्हत्पदपङ्कजम्। प्रपूज्य कारयामास द्रौपद्याः पारणां पराम्॥

इति शुभपरिपाकाच्छोभचन्द्रे जिनेन्द्रे वरकृतनतिभावा भव्यभावाः सुभव्याः।
द्रुपदनृपतिजातां ते समादाय प्रापुर्जननिकरसमिद्धं सद्यशो लोकचारि॥१४२

यस्माद्धर्मान्नृपतिमहितं पद्मनाभं विजित्य प्राप्ताः पूजां परतरमहाधातकीखण्डजाताम्।
लब्ध्वा पार्थप्रमदवनितां द्रौपदीं पाण्डवास्ते। प्रापुः सातं जिनवरवृषप्राभवं तद्धि विद्धि॥

कहा था, कि पाण्डव जल्दी यहां आयेंगे। इन्होंने दुर्योधनादिक योद्धाओंको युद्धमें क्षणमें जीत लिया है उनके आगे तेरी क्या कथा है ऐसा भी मैंने पूर्वमें कहा था।" द्रौपदी उसे बोल रही थी, इतनेमें निरंकुश हाथियोंके समान वे वहां आगये। "मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो" इस तरह कहता हुआ वह राजा उनको देखकर नम्र हुआ। भयसे भरा हुआ वह राजा द्रौपदीको शरण गया। और कहने लगा, कि "हे द्रौपदी, तू अखण्ड महाशीलव्रती है, तू सुशील है और समप्रिय है। मुझे तू इन राजाके द्वारा जीवन देनेवाला अभयदान दिला"। तब उन राजाओंके द्वारा उसे द्रौपदीने अभयदान दिलाया॥ १२९–१३९॥ तदनंतर विनयसे युक्त उस राजाने कृष्णके चरणोंको नमस्कार कर पाण्डवोंका भोजनादिकोंसे यथायोग्य विनय किया। उस समय वे द्रौपदीको लेकर और स्नान करके जिनचरणकमलोंकी पूजा करने लगे। इसके अनंतर उन्होंने द्रौपदीको पारणा कराई॥ १४०–१४१॥ शुभ और आनंददायक जिनेश्वरमें जिन्होंने उत्तम नम्रता–भक्ति की है, जिनके कल्याण करनेवाले भाव हैं, तथा जो सुभव्य हैं, ऐसे पाण्डवोंने शुभकर्मके उदयसे उस द्रौपदीको ग्रहण कर लोक–समूहमें वृद्धिंगत हुए, जगतमें संचार करनेवाले उत्तम यशको प्राप्त किया है॥ १४२॥ इस जिनधर्मसे पाण्डवोंने राजाओंमें पूज्य पद्मनाभराजाको जीत लिया और अतिदूर महा धातकीखण्डमें जाकर वहां उत्पन्न हुई पूजाको प्राप्त किया' ऐसे वे पाण्डव अर्जुनकी आनंद देनेवाली पत्नी द्रौपदीको प्राप्त कर सौख्यको प्राप्त हुए। यह सब जिनेश्वरके धर्मकी महिमा जानो॥ १४३॥

ब्रह्म–श्रीपालकी सहायतासे श्रीभट्टारक शुभचन्द्रने रचे हुए महाभारत नामक

इति पाण्डवपुराणे भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपालसाहाय्यसापेक्षे द्रौपदीहरण-
विष्णुपाण्डवतद्द्वीपगमनद्रौपदीप्राप्तिवर्णनं नामैकविंशतितमं पर्व ॥ २१ ॥

। द्वाविंशं पर्व ।

मुनिसुव्रतसंज्ञं तं मुनिसुव्रतमुत्तमम् । मुनिसुव्रतदं वन्दे मुनिसुव्रतं यतो भवेत् ॥१

अथ ते पाण्डवा विष्णुपादौ नत्वा मुदा जगुः।
तव प्रभावतो लब्धा द्रौपदी वैरिणा हृता ॥ २

ततस्ते रथमारुह्य तामादाय मनोहराम् । प्रतस्थिरे नृपाः पूर्णमनोरथशताकुलाः ॥३
पूरितः पाञ्चजन्यस्तु पीताम्बरमहीभुजा । महानादं प्रकुर्वाणः पयोधरसमध्वनिः ॥४
तदा तद्भरतावासिचम्पापूःपरमेश्वरः । त्रिखण्डमण्डलाधीशः कपिलाख्यः सुचक्रभृत् ॥५
कम्पयन्तं धरां सर्वां तच्छङ्खनिनदं नृपः । अश्रौषीद्विपुलं नन्तुं जिनं प्राप्तो महामनाः ॥६
जिनस्य समवस्थानस्थितेनार्धसुचक्रिणा । शङ्खशब्दं समालोक्य पप्रच्छे मुनिसुव्रतम् ॥७

पाण्डवपुराणमें द्रौपदी-हरण, विष्णु और पाण्डवोंका धातकीखंडमें
गमन और द्रौपदीकी प्राप्ति इन विषयोंका वर्णन करनेवाला
यह इक्कीसवा पर्व समाप्त हुआ ॥ २१ ॥

[बावीसवां पर्व]

जिसके आश्रयसे मुनियोंके अहिंसादि सुव्रत-महाव्रत प्राप्त होते हैं, जिसने मुनियोंको उत्तम व्रत धारण किये हैं, जो अनुयायि भव्यजनोंको मुनियोंके सुव्रत प्रदान करता है, उस मुनिसुव्रत इस अन्वर्थ नामको धारण करनेवाले वर्तमान कालीन बीसवे तीर्थंकरको मैं वंदन करता हूं ॥ १ ॥

[कृष्ण-पाण्डवोंका द्रौपदीके साथ आगमन] अनंतर वे पाण्डव विष्णुके चरणोंको नमस्कार कर आनंदसे बोलने लगे-हे विष्णो, आपके सामर्थ्यसे हमें शत्रुके द्वारा हरी गई द्रौपदी प्राप्त हुई । तदनंतर सैंकडो मनोरथ पूर्ण होनेसे आनंदित हुए वे राजा रथमें आरूढ होकर और उस मनोहर द्रौपदीको साथ लेकर हस्तिनापुरके प्रति प्रयाण करने लगे । पीताम्बरराजाने-श्रीकृष्णने जिसकी ध्वनि मेघके समान है, ऐसा महाध्वनि करनेवाला पांचजन्य नामका शंख पूरा । उस समय धातकी-खण्डके भरतक्षेत्रस्थ चम्पापुर नगरके पति, तीनखण्डके देशोंके प्रभु कपिलनामक अर्द्धचक्रवर्ती राज्य करते थे । संपूर्ण पृथ्वीको कँपानेवाला विष्णुके शंखका महाध्वनि जिनेश्वरको वंदन करनेके लिये आये हुए महामना उदार चित्तवाले कपिल नारायणने सुना ॥ २-६ ॥ जिनेश्वरके समवसरणमें बैठे हुए अर्द्धचक्रवर्तीने शंख-शब्द सुनकर मुनिसुव्रतनाथ जिनेश्वरको (धातकीखंडस्थ भरतक्षेत्र तीर्थ-

कस्य शङ्खरवोऽयं भो इति पृष्टेऽगदीज्जिनः। जम्बूद्वीपस्य भरते भाति द्वारावती पुरी ॥८
त्रिखण्डभरताधीशस्तत्र कृष्णो हि भूपतिः। पार्थप्रियार्थमायातः शङ्खस्तेनात्र पूरितः ॥९
तं द्रष्टुं गन्तुमिच्छुः सोऽवाचीत्थं धर्मचक्रिणा। चक्री च चक्रिणं नैव नेक्षते च हरिं हरिः॥
तीर्थंकरो न तीर्थेशं बलभद्रो बलं च न। गतस्य चिह्नमात्रेण तस्य स्यात्तव दर्शनम् ॥११
तथापि कपिलस्तूर्णं ययौ तं द्रष्टुमिच्छया। अन्योन्यं ध्वजमात्रं तौ तदा ददृशतुः स्फुटम् ॥

ध्मातौ शङ्खौ च ताभ्यां तौ तयोः शुश्रुवतुः स्वरान्।
केशवं जलधौ यातं मत्वा निर्वृत्य स गतः ॥१३

चम्पामागत्य चक्री स निर्भर्त्स्य पारदारिकम्। पद्मनाभं सुखेनास्थात्रिखण्डभरतेश्वरः ॥१४
अमी च पूर्ववत्तीर्त्वा जलधिं तत्तटे स्थिताः। जनार्दनो जगादैवं यूयं व्रजत पाण्डवाः ॥१५
विसर्ज्य स्वस्तिकं यावदायामि यमुनातटम्। उत्तीर्य तां तरीं मह्यं प्रेषयध्वं पुनर्नृपाः ॥१६
ततस्ते यमुनां प्राप्य द्रौपद्या सह पाण्डवाः। उत्तीर्य तां स्थितास्तीरे दक्षिणे लक्ष्यलक्षणाः ॥
धूर्तत्वेनाशु भीमेन नीतोत्पाट्य तरीस्तटम्। कृष्णबाहुबलं द्रष्टुं कालिन्द्युत्तरणक्षणे ॥१८

करको) पूछा, कि हे प्रभो, यह शंखध्वनि किसका है? ऐसा पूछने पर जिनेश्वरने इस प्रकार कहा— जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें सुंदर द्वारावती नगर है। वहां त्रिखण्ड भरतका स्वामी कृष्णराजा राज्यशासन कर रहा है। वह यहां अर्जुनकी स्त्री द्रौपदीको ले जानेके लिये आया था उसने यहां शंख पूरा है। उसको देखनेके लिये मुझे जानेकी इच्छा है ऐसा अर्धचक्रीने कहा तब धर्मचक्रवर्ती मुनिसुव्रतनाथने ऐसा कहा— हे कपिल, चक्रवर्ती चक्रवर्तीको, हरि—नारायण हरिको—नारायणको, तीर्थंकर तीर्थंकरको और बलभद्र बलभद्रको नहीं देखते हैं। देखनेके लिये जानेपर चिह्नमात्रसे ध्वजमात्रसे तुझे दर्शन होगा। तो भी कपिल श्रीकृष्णको देखनेकी इच्छासे शीघ्र चला गया, परंतु उन दोनोंने अन्योन्यकी ध्वजामात्र स्पष्ट देख ली। उन दोनोंने पूरे हुए एक दूसरेके शंखका ध्वनि सुना। श्रीकृष्ण समुद्रके पास चले गये ऐसा समझ कर वह कपिल अर्धचक्रवर्ती अपनी राजधानीके प्रति लौट गया ॥ ७–१३ ॥

[पाण्डवोंका दक्षिण मथुरामें राज्य–स्थापन] त्रिखंड भरतका पति वह कपिल चक्रवर्ती चम्पानगरीमें आया। अनंतर उसने परस्त्रीलम्पट पद्मनाभकी निर्भर्त्सना की और अपनी राजधानीमें सुखसे रहने लगा। ये पाण्डव पूर्वके समान समुद्रको रथोंसे उल्लंघकर उसके तट पर बैठ गये। जनार्दनने पाण्डवोंको कहा कि "हे राजा पाण्डवो, तुम आगे चलो, मैं स्वस्तिक देवका विसर्जन करके जब आऊंगा तब आप यमुना नदीको तीरकर मेरे पास यमुनाके तटपर पुनः नौका भेज दें। तदनंतर वे कुछ बहानेका विचार करनेवाले पाण्डव द्रौपदीके साथ यमुना नदीको तीरकर उसके दाहिने तटपर बैठ गये। कालिन्दीको तीरनेके समय कृष्णका बाहुबल देखनेके लिये धूर्तपनासे भीम

तावता केशवः प्राप्तो विसर्ज्य वरनिर्जरम् । सरिज्जलमगाधं स वीक्ष्य ब्रूते स्म पाण्डवान् ॥
कथं तीर्णा सरिच्छीघ्रं भवद्भिः कथ्यतां मम । तन्निशम्य तदावोचन्पाण्डवाश्छद्मतः खलु ॥
अस्माभिर्भुजदण्डेन तीर्णेयं च तरङ्गिणी । तन्निशम्याच्युतो दोर्भ्यामुत्ततार सरिज्जलम् ॥२१
तीरं गत्वा नृपान्वीक्ष्य हर्षितास्यो जहर्ष सः । जहसुः पाण्डवा वीक्ष्य कृष्णं हडहडस्वनाः ॥
हसतः पाण्डवान्वीक्ष्य प्रोवाच चक्रनायकः । भवद्भिर्हसितं किं भो कथ्यतां कथ्यतां मम ॥
ते जगुर्यमुनातीरं वयं तर्याथ तेरिम । त्वद्बाहुबलवीक्षायै प्रच्छन्ना सा कृता ततः ॥२४
नरेन्द्राघटितं कार्यमस्माभिर्घटितं स्फुटम् । प्रत्यर्थिकुम्भिकुम्भानां भञ्जने त्वं हरिर्हरिः ॥२५
श्रुत्वेति क्रोधभारेण बभाषे कम्पिताधरः । माधवः पाण्डवा यूयं सदा कलहकारिणः ॥२६
स्वजनस्नेहनिर्मुक्ता मायायुक्ताः सदा खलाः । किं सरित्तरणेऽस्माकं माहात्म्यं वीक्षितं[1] ननु ॥
गोवर्धनसमुद्धारे कालिन्दीनागमर्दने । चाणूरचूर्णने चित्रं कंसदस्युविघातने ॥२८

शीघ्र नौका वहांसे हटाकर तटपर ले गया। उतनेमें श्रीकृष्ण उस उत्तम देवको विसर्जित करके आये। उन्होंने नदीका अगाध पानी देखकर पाण्डवोंको कहा कि "हे पाण्डवो, आप शीघ्र नदी कैसे तीरकर गये मुझे बोलो ? श्रीकृष्णका भाषण सुनकर पाण्डव कपटसे निश्चयपूर्वक यों कहने लगे। "हम लोगोंने अपने बाहुदण्डसे इस नदीको उल्लंघा है"। उनका भाषण सुनकर श्रीकृष्ण अपने दोनो बाहुओंसे नदीका पानी उल्लंघ गये ॥१४-२१॥ तीरको गये श्रीकृष्ण हर्षितमुख पाण्डवोंको देखकर आनंदित हुए। पाण्डव श्रीकृष्णको देखकर अट्टहास्यसे हसने लगे। हसनेवाले पाण्डवोंको चक्रपति श्रीकृष्ण बोलने लेग कि, तुम क्यों हसने लगे मुझे कहो कहो ॥२२-२३॥ वे कहने लगे कि हम नौकाके द्वारा यमुनाके तीरको पहुंचे। परंतु आपका बाहुबल देखनेके लिये उस तटसे उस नौकाको हमने छुपा लिया है। हे राजेन्द्र, आपने हमसे अघटित कार्य स्पष्टतासे कर दिया है अर्थात् धातकीखंडमें जाकर वहांसे द्रौपदीको लाना यह कार्य हमसे कदापि होना शक्य नहीं था। (आप ही ऐसे कार्य करनेमें समर्थ हैं।) शत्रुरूपी हाथियोंके गण्डस्थलोंको फोडनेमें हे हरे, आप निश्चयसे हरि हैं- सिंह हैं ॥ २४-२५ ॥ पाण्डवोंका भाषण सुनकर अतिशय क्रोधसे जिनका अधरोष्ठ कंपित हुआ है ऐसे श्रीकृष्ण बोलने लगे "हे पाण्डवो, तुम हमेशा कलह करनेवाले हो। तुम हमेशा स्वजनोंके प्रति स्नेहरहित, कपटयुक्त और सदा दुष्ट हो। नदीके उल्लंघनमें आपने हमारा माहात्म्य बोलो क्या देखा है ? गोवर्धनपर्वतको उठाना, यमुना नदीके कालियसर्पका मर्दन करना, चाणूरको चूर्ण करना, कंसशत्रुका वध करना, अपराजितका नाश करना, गौतम नामक देवकी स्तुतिकर वश करना (जिससे द्वारिका का निर्माण हुआ।) रुक्मिणीका हरणकार्य, शीघ्र

१ ब वीक्ष्यते ।

अपराजितनिर्नाशे गौतमामरसंस्तवे । रुक्मिणीहरणे तूर्णं शिशुपालवधोद्यमे ॥२९
जरासंधवधेऽस्माकं चक्ररत्नसमागमे । त्रिखण्डपरमैश्वर्ये भवद्भिर्नेक्षितं बलम् ॥३०
सरिज्जलसमुत्तारे किं माहात्म्यं बलेक्षणे । अद्यापि जडता याति युष्माकं न खलात्मनाम् ॥
दूरं यान्तु भवन्तोऽत्र योजनानां शतान्तरे । अपाच्यां मथुरायां च चिरं तिष्ठन्तु पाण्डवाः ॥
इत्युक्ते दुःखचेतस्का जग्मुर्गजपुरं नृपाः । अभिमन्युसुतं तत्र सुभद्रापौत्रमुत्तमम् ॥३३
विराटनृपसंजातोत्तरादेवीसमुद्भवम् । हरिः परीक्षितं राज्ये स्थापयामास सुस्थिरम् ॥३४
द्वारावतीं ययौ विष्णुर्दक्षिणां मथुरां गताः । पाण्डवा मातृकान्ताद्यैः पुत्रैः सह समुद्धताः ॥
अथ द्वारावतीपुर्यां नेमीशो हरिसंसदि । संप्राप्तो बलमाहात्म्यवर्णने वर्ण्यतां गतः ॥३६
स कनिष्ठिकया कृष्णं दोलयामास तीर्थराट् । विरक्तः केशवो जज्ञे श्रीनेमे राज्यलोभतः ॥
कदाचिज्जलखेलायां क्रीडन्वस्त्रस्य पीलने । जाम्बूवत्यभिमानेन मानितो न जिनेश्वरः ॥३८
शस्त्रशालां समासाद्य नागशय्यां समाश्रितः । शार्ङ्गं ज्यायां स आरोप्यापूरयत्कम्बु नासया ॥
तदागत्य हृषीकेशो नत्वा तत्पादपङ्कजम् । शशंस परमैर्वाक्यैस्तं विवाहस्य सूचकैः ॥४०

शिशुपालका वध करनेमें उद्यत होना, जरासंधके वधका कार्य, चक्ररत्नकी प्राप्ति, त्रिखण्डका उत्तम ऐश्वर्य, इत्यादि कार्य हमने किये उस समय हमारा बल नहीं देखा ? तुम दुष्टोंकी अद्यापि मूर्खता नष्ट नहीं होती है ? हे पाण्डवो, तुम यहांसे सौ योजन दूर दक्षिणमथुरामें जाकर वहां दीर्घकाल-तक रहो ॥ २९–३२ ॥

[परिक्षितको राज्य–प्राप्ति] श्रीकृष्णके ऐसा वचन कहनेपर पाण्डवराजाओंका मन दुःखित हुआ। वे गजपुर गये वहां अभिमन्युका पुत्र अर्थात् सुभद्राका उत्तम पौत्र अर्थात् विराटराजासे उत्पन्न हुई कन्या उत्तरादेवीसे उत्पन्न हुआ पुत्र जिसका नाम परीक्षित था उसे राज्यपर श्रीकृष्णने स्थिर-तासे स्थापन किया। तदनंतर श्रीविष्णु द्वारावती चले गये और उद्धत अर्थात् शूर पाण्डव अपनी माता, अपनी स्त्रियाँ और अपने पुत्रोंको साथ लेकर दक्षिण मथुराको गये ॥ ३३–३५ ॥ इसके अनंतर किसी समय नेमिनाथप्रभु श्रीकृष्णकी सभामें गये। उस समय वीरोंके बलके महात्म्यका वर्णन हो रहा था तब प्रभु बलमाहात्म्यवर्णनका विषय हो गये ॥ ३६ ॥

[नेमिनाथ जिनेश्वरका दीक्षा–ग्रहण] तीर्थराज नेमिप्रभु कनिष्ठिकाके द्वारा श्रीकृष्णको झुलाने लगे। तब कृष्णके मनमें राज्यलोभ उत्पन्न हुआ। नेमिप्रभु मेरा राज्य बलवान होनेसे छीन लेंगे ऐसा उसके मनमें दुर्विचार आ गया और वह उनसे विरक्त हो गया ॥ ३७ ॥ किसी समय जल-क्रीडामें प्रभु तत्पर हो गये, उन्होंने जाम्बूवतीको वस्त्र निचोडनेके लिये कहा। परन्तु अभिमानसे उसने जिनेश्वरको नहीं माना। तब शस्त्रशालामें आकर वे नागशय्यापर आरूढ हो गये और शार्ङ्ग-धनुष्यको दोरीपर आरूढ कर नाकसे उन्होंने शङ्ख पूरा। तब श्रीकृष्ण वहां आ गये उन्होंने प्रभुके

उग्रसेननरेन्द्रस्य जयावत्याश्च देहजाम् । राजीमतीं ययाचे स नेमिपाणिग्रहेच्छया ॥४१
राज्यलोभेन वैकुण्ठो मेलयित्वा बहून्पशून् । वाटके बन्धयामास नेमिवैराग्यसिद्धये ॥४२
विवाहार्थं जिनो गच्छन्वीक्ष्य बद्धान्बहून्पशून् । पृष्ट्वा तद्रक्षकान्प्राप वैराग्यं रागदूरगः ॥४३
अनुप्रेक्षां जिनो ध्यात्वा लौकान्तिकसुरैः स्तुतः । शिबिकां देवकुर्वाख्यां समारुह्य वनं ययौ
सहस्राम्रवणे स्थित्वा षष्ठ्यां च श्रावणे सिते । पक्षे सहस्रभूपालैः स दीक्षां प्रत्यपद्यत ॥४५
चतुर्थज्ञानधारी स बभूवासन्नकेवली । षष्ठोपवासतो यातः पुरीं द्वारावतीं पराम् ॥४६
कनकाभो नृपो वीक्ष्यागच्छन्तं पारणाकृते । जग्राह युक्तितो नेमिमुच्चदेशे स्थिरीकृतम् ॥
पादप्रक्षालनं कृत्वा पूजनं च नतिं मुनेः । त्रिशुद्धया चान्नशुद्धयान्नं ददे तस्मै नरेश्वरः ॥४८
श्रद्धादिगुणसंपन्नः पञ्चाश्चर्याणि चाप सः । कोटी द्वादश रत्नानां सार्धा सुरकरच्युता ॥
वृष्टिः सौमनसी जाता ववौ वायुः सुशीतलः । सुरसंताडितोऽभाणीत् दुन्दुभिस्तन्नृपालये ॥
जिनोऽथ निषसं कृत्वा वनं गत्वा स्थिरं स्थितः । दधौ ध्यानं निजे चित्ते चिद्रूपस्य परात्मनः

चरणकमलोंको नमस्कार किया। और विवाहके सूचक वाक्योंसे उसने उनकी प्रशंसा की ॥ ३८–४० ॥ उग्रसेनराजा और जयावती रानीकी कन्या राजीमतीकी उसने नेमिप्रभुके साथ पाणिग्रहण करनेकी इच्छासे याचना की। और तदनन्तर श्रीकृष्णने राज्यके लोभसे बहुत पशुओंको मिलाकर बाडेमें नेमिप्रभुको वैराग्य प्राप्त करानेकी इच्छासे बंधवा दिया ॥ ४१–४२ ॥ विवाहके लिये प्रभु जा रहे थे, उन्होंने बांधे हुए बहुतसे पशुओंको देखा, उनके रक्षकोंको बांधनेका कारण पूछकर वे राग-भावसे दूर होकर विरक्तताको प्राप्त हुए। उन्होंने द्वादश अनुप्रेक्षाओंका चिन्तन किया। लौकान्तिक देवोंने आकर उनकी स्तुति की। देवकुरु नामकी शिबिकामें आरूढ होकर वे वनमें चले गये। सहस्राम्रवनमें खडे होकर श्रावण शुक्ल षष्ठीके दिन हजार राजाओंके साथ उन्होंने दीक्षा ली। जिनको केवलज्ञान शीघ्र प्राप्त होनेवाला है ऐसे प्रभु चौथे ज्ञानके–मनःपर्ययज्ञानके धारक हुए ॥ ४३–४५ ॥ दो उपवासोंके अनंतर प्रभुने उत्तम नगरी द्वारावतीमें प्रवेश किया। पारणाके लिये आते हुए प्रभुको कनकाभ नामक राजाने देख कर युक्तिसे पडगाहा। उच्चदेशमें उनको स्थिर किया। अर्थात् ऊंचे आसनपर राजाने प्रभुको बैठाया। मुनिराजप्रभुके चरण धोकर उसने पूजा की और नमस्कार किया। राजाने मन वचन और शरीर शुद्धिके साथ अन्नशुद्धि कर प्रभुको आहार दिया। श्रद्धादि सप्तगुणोंसे सहित होनेसे राजाको पंचाश्चर्य प्राप्त हुए। उसके अंगनमें देवोंके हाथोंसे साडे-बारा कोटि रत्नोंकी वृष्टि हुई। कल्पवृक्षोंके पुष्पोंकी वृष्टि हुई। शीतलवायु बहने लगी। देवोंके द्वारा राजाके घरमें नगारे ताडित हुए उनसे सुंदर ध्वनि हुआ ॥ ४६–५० ॥

[प्रभुको केवलज्ञानप्राप्ति] प्रभु आहार ग्रहण कर वनमें जाकर स्थिर बैठ गये। उन्होंने अपने मनमें शुद्ध चैतन्यरूप परमात्माका ध्यान धारण किया। छप्पन दिनोंका छद्मस्थावस्थाका

छद्मस्थसमये याते षट्पञ्चाशद्दिनप्रमे । गिरौ रैवतके तस्थौ जिनः षष्ठोपवासभृत् ॥५२
महाव्रतधरो धीरः सुगुप्तिसमलंकृतः । समित्याहितसाचित्तः परीषहसहो बभौ ॥५३
धर्मध्यानबलाद्योगी गलत्त्र्यायुरयत्नतः । दृष्टिघ्नप्रकृतीः सप्त जघान सुघनो जिनः ॥५४
समातपचतुर्जातित्रिनिद्राः स्थावराभिधम् । सूक्ष्मं श्वभ्रतिरश्चोश्च युग्मे उद्द्योतकर्म च ॥
कषायाष्टकषण्ढत्वस्त्रीत्वहास्यादिषट् नृता । क्रोधं मानं च मायां च लोभं संज्वलनाभिधम् ॥
निद्रां सप्रचलां दृग्ध्यावरणान्यन्तरायकम् । हत्वा जिनेश्वरः प्राप केवलज्ञानमद्भुतम् ॥५७
वरे ह्याश्वयुजे मासि शुक्लपक्षादिमे दिने । केवलज्ञानपूजायां समागुश्च नराः सुराः ॥५८
वरदत्तादयोऽभूवन्नेकादश गणाधिपाः । तस्याच्युतादिभूपालैः पूजितोऽभाज्जिनेश्वरः ॥५९
धनदेन ततश्चक्रे समवस्थानमुत्तमम् । जिनस्य विजितारातेर्विजिताखिलपाप्मनः ॥६०
शालो वेदी ततो वेदी शालो वेदी च शालकः । वेदी शालश्च वेदी च क्रमतो यत्र शोभते
प्रासादाः परिखा वल्ल्यः प्रोद्यानानि सुकेतवः । सुरवृक्षा गृहा यत्र गणाः पीठानि भान्ति च॥
मानस्तम्भाः सुनाट्यानां शालाःस्तूपा महोन्नताः । मार्गा धूपघटा भान्ति ध्वजा यत्र सरांस्यपि

समय प्रभुका व्यतीत हुआ। रैवतकपर्वतपर प्रभु दो उपवास धारण कर बैठ गये। महाव्रतधारी, धीर, उत्तम गुप्तियोंसे भूषित, समितियोंमें अपने चित्तको एकाग्र किये हुए प्रभु परिषह सहन करते हुए शोभने लगे ॥ ५१–५३ ॥ जिनके तीन आयु बिना प्रयत्नके गल गये हैं ऐसे योगी और अतिशय दृढ जिनेश्वरने धर्मध्यानके बलसे सम्यग्दर्शनके घातक अनंतानुबंध्यादि सात प्रकृतियोंका नाश किया। तथा आगे लिखी हुई प्रकृतियोंका शुक्लध्यानसे प्रभुने नाश किया। आतप, एकेन्द्रियजाति आदि चार जातिकर्म, तीन निद्राप्रकृति, स्थावर, सूक्ष्म, श्वभ्रगति-नरकगति तिर्यग्गति, नरकगत्यानुपूर्वी और तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, उद्द्योत, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान क्रोधादिक आठ कषाय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ, निद्रा और प्रचला, दर्शनावरणकर्म, ज्ञानावरणकर्म और अन्तरायकर्म इन कर्मप्रकृतियोंको घात कर प्रभुने अद्भुत केवलज्ञान प्राप्त किया। उत्तम आश्विन शुक्ल पक्षकी प्रतिपदाके दिन केवलज्ञानपूजाके समय मनुष्य और देव आये। प्रभुके वरदत्तादिक ग्यारह गणधर थे, श्रीकृष्ण–बलभद्र आदि राजाओं द्वारा पूजे गये प्रभु शोभने लगे ॥ ५४–५९ ॥ संपूर्ण पापको जिसने जीता है, तथा जिसने ज्ञानावरणादि चार घातिकर्मरिपुका नाश किया है ऐसे प्रभुके उत्तम समवसरणस्थानकी कुबेरने रचना की। तट, वेदी, वेदी, तट, वेदी, तट, वेदी, तट और वेदी ऐसी रचना इस समवसरणमें क्रमसे शोभती है। इसमें प्रासाद, खाई, लतायें, उद्यान, ध्वज, कल्पवृक्ष और गृह हैं जहां गण और पीठोंकी शोभा है। मानस्तंभ, नाट्यशाला, अतिशय ऊंचे स्तूप, मार्ग, धूपघट, ध्वज और सरोवर इस समवसरणमें शोभते हैं। सभाके मध्यमें स्पष्ट अशोकादि आठ प्रातिहार्योंको

मध्येसमं जिनो भाति स्पष्टाष्टप्रातिहार्यभृत् । चतुस्त्रिंशन्महाश्चर्यातिशयैः समलंकृतः ॥६४
निर्ग्रन्थाः कल्परामाश्चार्यिका भवनभौकसाम् । वामा भवनभौमोडुकल्पामर्त्यगजादयः ॥६५
एतैर्द्वादशभिः सभ्यैः शोभितश्चतुराननः । व्याजहार परं धर्मं वरदत्तं गणाधिपम् ॥६६
जीवाजीवास्रवा बन्धः संवरो निर्जरा तथा । मोक्षश्चेति सुतत्त्वानि सप्त प्रोक्तानि नेमिना ॥
षड्द्रव्यसंग्रहं चाख्यान्नेमिः पञ्चास्तिकायकम् । अधोमध्योर्ध्वभेदेन स्थितिं लोकस्य विश्रुताम्
सप्तनारकसंस्थानमायुरुत्सेधपूर्वकम् । द्वीपसागरभेदांश्च नाकलोकसुकल्पनाम् ॥६९
चतस्रस्तु गतीः प्राहेन्द्रियाणि पञ्च षट्पुनः । कायान्पञ्चदश स्वामी योगान्वेदत्रयं तथा ॥
पञ्चवर्गान्कषायांश्च ज्ञानान्यष्टौ च संयमान् । सप्तसंख्यांश्च चत्वारि दर्शनानि सुदर्शनः ॥
षड्लेश्या भव्यभेदौ च षट्सम्यक्त्वानि भेदतः । संज्ञयाहारकभेदांश्च चतुर्दश सुसंख्यया ॥७२
गुणस्थानानि जीवानां समासांस्तावतः पुनः । षट् पर्याप्तीर्दश प्राणान्संज्ञाश्च वेदसंमिताः॥७३
उपयोगान्द्विषड्भेदाञ्जीवजातीः कुलानि च । यतिधर्मस्वरूपं च श्रावकाध्ययनं तथा ॥७४
एवं श्रुत्वा शुभं श्रेयः केचित्सम्यक्त्वमाददुः । मिथ्यात्वमलमुत्सृज्य सर्वसंसारकारणम् ॥

धारण करनेवाले और चौतिस महाश्चर्यातिशयोंसे सुशोभित जिनेश्वर शोभते हैं। निर्ग्रन्थमुनि, स्वर्गकी देवांगना, आर्यिका, भवनवासिनी देवियां, व्यंतर देवियां, ज्योतिष्कदेवियां, भवनवासी देव, व्यंतर देव, ज्योतिष्क देव, कल्पवासी देव, मनुष्य, हाथी ऐसी बारा प्रकारके सभाओंके सहित सभ्योंसे चार मुखवाले प्रभु शोभते थे उन्होंने वरदत्तगणधरको उत्तम धर्मका उपदेश दिया ॥ ६२–६६ ॥

[प्रभुका तत्त्वोपदेश] जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ऐसे सात तत्त्वोंका स्वरूप जिनेश्वर नेमीने कहा। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ऐसे छह द्रव्योंका संग्रह और पंचास्तिकाय अर्थात् कालको छोड कर अवशिष्ट द्रव्योंका संग्रह प्रभुने कहा। अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक ऐसी लोककी तीन प्रकारकी प्रसिद्ध स्थितिका विवेचन प्रभूने किया। रत्नप्रभादि सात नरकोंकी रचना, नारकियोंकी आयु, उनकी उँचाई तथा द्वीप और सागरोंके भेद तथा स्वर्गलोकोंकी कल्पना अर्थात् सोलह स्वर्ग, नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश, पंच अनुत्तर, मुक्तिस्थान इनका वर्णन प्रभुने किया। नारकी, तिर्यंच आदि चार गतियाँ, स्पर्शनादिक पांच इन्द्रियां, त्रसकाय एक और पांच स्थावरकाय ऐसे षट्काय, औदारिक योगादिक पंधरा योग, स्त्री, पुरुष, नपुंसक ऐसे तीन वेद, क्रोधमानादिक पच्चीस कषाय, मत्यादिक आठ ज्ञान, सामायिकादिक सात संयम, चक्षुर्दर्शनादि चार दर्शन इनका वर्णन सुदर्शनने अर्थात् मनोहर सौंदर्यवाले प्रभूने किया। कृष्णादिक छह लेश्या, भव्य और अभव्य, क्षायिकादिक छह सम्यक्त्व संज्ञी, असंज्ञी, आहारक, अनाहारक ऐसी चौदा मार्गणायें, चौदा जीव समास, आहारादि छह पर्याप्तियां, दशप्राण, आहारादिक चार संज्ञा, उपोयोगके बारह भेद, जीवोंकी जातियाँ और कुलोंकी संख्या, यतिधर्मका

केचिदेकादश स्थानान्केचिच श्रावकव्रतान् । जगृहुः संयमं चान्ये महाव्रतपुरःसरम् ॥७६
एवं स श्रेयसो वृष्टिं कुर्वन्नीवृति नीवृति । विजहार जिनो नेमिर्भव्यान्संबोधयन्परान् ॥७७
विहृत्य निखिलान्देशान्पुनः प्राप जिनेश्वरः । ऊर्जयन्ताभिधं शैलमूर्जस्वी चार्जवान्वितः ॥
जिनं तत्रागतं वीक्ष्य यादवाः सोद्यमा मुदा । वन्दनार्थं समाजग्मुर्बलदेवपुरःसराः ॥७९
स्तुत्वा नत्वा जिनं स्थित्वा श्रुत्वा धर्मं सुमानसाः ।
सीरपाणिः पुनः प्राह जिनं नत्वाच्युतान्वितः ॥ ८०
भगवन्वासुदेवस्य प्राज्यं राज्यं महोदयम् । वर्तिष्यते कियत्कालं द्वारावत्याः पुनः स्थितिः ॥
जिनः प्राह पुनर्भद्र पूर्नश्येन्मद्यहेतुतः । नृप द्वादशवर्षान्ते द्वीपायननिमित्ततः ॥८२
विष्णोर्जरत्कुमारेण भवेद्गत्यन्तरे गतिः । सद्यः संयममासाद्य दूरं द्वीपायनोऽप्यगात् ॥८३
तथा जरत्कुमारश्च कौशाम्बीवनमाश्रयत् । ततः पुनर्जगामाशु जिनो देशान्तरं खलु ॥८४
तावत्काले गते चायान्मुनिर्द्वीपायनः क्रुधा । ददाह द्वारिकां सर्वां नान्यथा जिनभाषितम् ॥

स्वरूप और श्रावकोंके धर्मका स्वरूप, ऐसा शुभकल्याणका स्वरूप सुनकर कई जीवोंने सम्यग्दर्शन धारण किया, और सर्वप्रकारके संसारोंका कारण ऐसे मिथ्यात्वमलका त्याग किया। कई जीवोंने दर्शनिक, व्रतिकादिक ग्यारह प्रतिमाओंको धारण किया। कई जीवोंने श्रावकोंके व्रत धारण किये। कई जीवोंने अर्थात् पुरुषोंने महाव्रत मुख्य जिसमें हैं ऐसा संयम धारण किया। इस प्रकारसे उत्तम भव्योंको उपदेश देनेवाले नेमितीर्थंकर प्रत्येक देशमें धर्मकी वृष्टि करते हुए विहार करने लगे ॥६७--७७॥ अनंतबलधारक आर्जवयुक्त-कपटरहित नेमिजिनेश्वरने अनेक देशोंमें विहार किया और वे ऊर्जयन्तपर्वतपर आये ॥ ७८ ॥ प्रभु ऊर्जयन्तपर्वतपर आये हैं ऐसा देखकर बलभद्र जिनमें प्रमुख हैं ऐसे उद्यमशील यादव आनंदसे वंदन करनेके लिये आये। उत्तम मनवाले यादवोंने जिनेश्वरकी स्तुति की, उनको नमस्कार किया, सभामें बैठकर धर्मश्रवण किया। श्रीकृष्णके साथ जिनेश्वरको वंदन करके बलभद्रने ऐसे प्रश्न पूछे- "हे भगवन्, वासुदेवका महावैभवयुक्त उत्तम राज्य कितने कालतक रहेगा? तथा द्वारावती नगरीकी पुनःस्थिति कितने कालतक रहेगी?" इन प्रश्नोंका उत्तर भगवानने ऐसा दिया- हे भद्र, हे राजन्, मद्यके हेतुसे यह नगरी बारह वर्ष समाप्त होनेसे द्वीपायनके निमित्तसे नष्ट होगी। विष्णुका जरत्कुमारके निमित्तसे गत्यन्तरमें नरकगतिमें गमन होगा। यह सुनकर द्वीपायन दीक्षा लेकर तत्काल वहांसे दूर गया। वैसेही जरत्कुमारने भी कौशाम्बी-वनका आश्रय लिया। तदनंतर पुनः जिनेश्वर देशान्तरको शीघ्र गये। बारह वर्षका काल समाप्त होनेपर द्वीपायन मुनि क्रोधसे द्वारिका नगरको आये और उन्होंने संपूर्ण द्वारिकानगरीको जलाया।

१ स- ज्ञात्वा

बलकृष्णौ ततो यातौ कौशाम्बीगहनान्तरम्। पिपासापीडितो विष्णुर्जज्ञे तत्र बलच्युतः ॥
मृतो जरत्कुमारस्य बाणेन क्षणतः क्षयी। बलो जलं समादायागतोऽपश्यन्मृतं हरिम् ॥८७
उवाह तद्वपू रामः षण्मासान्प्रीतितो भृशम्। सिद्धार्थबोधितोऽप्याशु न विवेद मृतिं हरेः ॥
ततो जरत्कुमारोऽसौ गत्वा पाण्डवसंनिधिम्। आचख्यौ स्वकृतं मृत्युं केशवस्य सुकेशिनः
श्रुत्वा तन्मरणं पाण्डुनन्दना रुरुदुर्भृशम्। विस्मयं परमं प्राप्ता साध्वी कुन्ती रुरोद च ॥९०
जारसेयं पुरस्कृत्य बान्धवैः सह पाण्डवाः। स्वकलत्रैः सुमित्रैस्तैर्गता बलदिदृक्षया ॥९१
कियद्भिर्वासरैः प्रापुर्वनस्थं च हलायुधम्। तमासाद्य नृपाः सर्वे रुरुदुर्दुःखिताशयाः ॥९२
हली तान्वीक्ष्य सुस्निग्धः स्नेहनिर्भरमानसान्। आलिलिङ्ग समुत्थाय कुन्तीनमनपूर्वकम् ॥
तदा तत्र क्षणं स्थित्वा जगदुस्ते सुपाण्डवाः। हलायुध महाशोकं मुञ्च विष्णुसमुद्भवम् ॥९४
ज्ञात्वा संसारवैचित्र्यं सावधानमना भव। दामोदरस्य देहस्य संस्कारः क्रियतां लघु ॥९५
रामो बभाण मोहात्मा स्वमित्रपुत्रबान्धवैः। दह्येतां पितरौ तूर्णं युष्माभिश्च श्मशानके ॥९६

श्रीजिनेश्वरकी वाणी मिथ्या नहीं होती है ॥ ७९-८५ ॥

[कृष्ण-मरण तथा बलभद्र दीक्षा-ग्रहण] कौशाम्बीवनमें बलसे-सामर्थ्यसे च्युत होकर अर्थात् थक कर कृष्ण प्याससे दुःखी हुए। जिनका शीघ्र क्षय होनेवाला है ऐसे वे कृष्ण जरत्कुमारके बाणसे तत्काल मर गये। बलभद्र पानी लेकर आये उनको कृष्ण मरा हुआ दीखा। बलभद्रने छह महिनोंतक अतिशय प्रीतिसे कृष्णका शरीर धारण किया। सिद्धार्थने उपदेश किया तो भी कृष्णका मरण उन्होंने नहीं जाना ॥ ८६-८८ ॥ तदनंतर वह जरत्कुमार पाण्डवोंके पास गया और उत्तम केशवाले केशवका स्वकृत मरण उसने उनको कहा अर्थात् मेरे बाणसे कृष्णकी मृत्यु हुई ऐसा उसने कहा। पाण्डवोंने कृष्णका मरण सुनकर अतिशय शोक किया। उनको आश्चर्य हुआ। साध्वी कुन्ती रोने लगी। जरत्कुमारको आगे करके, पाण्डव, बांधव, अपनी स्त्रिया और सुमित्रोंके साथ बलभद्रको देखनेके लिये निकले। कई दिवसोंके अनंतर वे वनमें रहे हुए बलभद्रके पास आये। उसे प्राप्त करके वे सब दुःखित होकर रोने लगे ॥ ८९-९२ ॥ कुन्तीको प्रथम नमन कर तथा स्नेहसे जिनका मन भरा हुआ है ऐसे पाण्डवोंको देखकर स्नेहयुक्त हलीने-बलभद्रने उठकर आलिंगन दिया। वे पाण्डव वहां क्षणतक ठहरकर बलभद्रको कहने लगे कि "हे बलभद्र, आप विष्णुसे उत्पन्न हुए शोकको छोड दीजिये। हे बलभद्र, संसारकी विचित्रता जानकर अपना चित्त सावधान करो। तथा दामोदरके देहका संस्कार जल्दी किया जावे।" तब मोहित हुए बलभद्र कहने लगे, कि "श्मशानमें तुम अपने मित्र पुत्र और बांधवोंके साथ अपने माता-पिताको शीघ्र जला दो"। पाण्डव बलभद्रके साथ निद्रारहित रहने लगे। उन्होंने उनके साथ रहकर सुंदर उपदेश देते हुए वर्षाकाल व्यतीत किया। सिद्धार्थने आकर बलभद्रको उपदेश दिया, तब वे सावध

अतिचक्रमुरुभिद्राः पाण्डवा हलिना समम् । प्रावृट्कालं ददानास्ते प्रतिबोधं सुबन्धुरम् ॥
सिद्धार्थबोधितः प्राह हली संस्कारसिद्धये । वरं यूयं समायाता मम हर्षप्रदायिनः ॥९८
तुङ्गीगिरौ ददाहासौ कृष्णदेहं सपाण्डवः । पिहितास्रवमासाद्य प्रपेदे संयमं बलः ॥९९

भुक्त्वा राज्यं सुनेमिर्वरवृषसुरथे नेमिवत्प्रनाना-
नाकीन्द्रः कामहर्ताऽसमशमसहितो रम्यराजीमतीं यः ।
हित्वा दीक्षां प्रपेदे दरदमनमितः सिद्धकैवल्यबोधो
धृत्वा धर्मे धरित्रीं गिरिवरशिखरे संस्थितो भातु भव्यः ॥१००
यो नेमिर्निखिलैर्नरेशनिकरैः संसेवितो यं नता
देवेन्द्रा वरनेमिना कृतमिदं तस्मै नमो नेमये ।
नेमेः कम्रगुणा भवन्ति चरणे नेमेः परं शासनम्
नेमौ विश्वसितं मनो मम महानेमे वृषो दीयताम् ॥१०१

इति श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि भ० श्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपालसाहाय्यसापेक्षे श्रीनेमिनाथदीक्षाग्रहणकेवलोत्पत्तिद्वारिकादहनकृष्णपरलोकगमनबलदेव-दीक्षाग्रहणवर्णनं नाम द्वाविंशतितमं पर्व ॥ २२ ॥

हो गये और पांडवोंको कहने लगे, कि अच्छा हुआ मुझे आनंद देनेवाले आप कृष्णके संस्कार कार्यकी सिद्धिके लिये आये। तदनंतर पाण्डव और बलभद्रने मिलकर तुंगीपर्वतके ऊपर कृष्णके देहका दहन किया। अनंतर पिहितास्रवमुनीश्वरके पास जाकर उन्होंने संयम-मुनिदीक्षा धारणा की ॥ ९३-९९ ॥

[नेमि-जिनस्तुति] उत्तम जैनधर्मरूपी रथमें जो चक्रके ऊपर लगाई हुई लोहकी पट्टी-के समान हैं, जिनके चरणोंपर स्वर्गके अनेक इन्द्र नम्र हुए हैं, जिन्होंने मदनका नाश किया है, जिन्होंने राज्यको छोडकर अनुपम शान्ति धारण की है, सुंदर राजीमतीको छोडकर जिन्होंने दीक्षा धारण की, भीतिको नष्ट कर जो केवलज्ञानी हुए तथा विहार कर पृथ्वीको जिन्होंने धर्ममें स्थिर किया, गिरनार पर्वतके शिखरपर स्थित ऐसे अतिशय सुंदर नेमिप्रभु हमेशा प्रकाशवन्त रहें। जो नेमिप्रभु संपूर्ण राजसमूहसे भक्तिसे सेवे गये। जिस नेमिप्रभुको देवेन्द्रोंने नमस्कार किया। जिस श्रीनेमिविभुने यह धर्मतीर्थ प्रगट किया उस नेमिप्रभुको मेरा नमस्कार है। नेमिप्रभुसे भव्योंको सुंदर गुण प्राप्त होते हैं। चरित्रके विषयमें भगवान् नेमिजिनका उत्तम शासन है। नेमितीर्थकरमें मेरा मन विश्वास-श्रद्धा रखता है। हे महानेमि जिन, आप मुझे धर्मप्रदान करें ॥१००-१०१॥

श्रीब्रह्मश्रीपालकी साहायतासे श्रीभट्टारक शुभचन्द्रजीने रचे हुए महाभारतनामक पाण्डवपुराणमें

। त्रयोविंशं पर्व ।

नमिं नौमि नतानेकनरामरमुनीश्वरम् । निर्जिताक्षं विपक्षान्तं सद्धर्मामृतदायकम् ॥१
जारसेयं पुरस्कृत्य पाण्डवा द्वारिकां पुरीम् । समीयुः सह कुन्त्याद्यैः करुणाक्रान्तचेतसः ॥२
संवास्य तत्पुरीं पस्त्यैः प्रशस्तैः परमोदयैः । तत्र राज्ये जरापुत्रमस्थापयंश्च पाण्डवाः ॥
पुरातनं स्मरन्तस्तु गोविन्दबलदेवयोः । प्राज्यं राज्यं बभूवुस्ते शोकशङ्कासमाकुलाः ॥
अहो या निर्मिता देवैः पुरी भस्मत्वमागता । अदृश्यतामिता व्योमपुरीव नेत्रनन्दना ॥५
दशार्हाः परपूजार्हाः क गताः संगतोत्सवाः । अहो तौ काटितौ रम्यावच्युताच्युतपूर्वजौ ॥६
रुक्मिण्यादिसुनारीणां निवासा नाकिनन्दनाः । क समीयुः सुतास्तासां हर्षोत्कर्षसमुन्नताः ॥
अहो स्वजनसांगत्यं क्षणिकं ह्लादिनीसमम् । जीवितं च नृणां हस्ततलप्राप्तपयःप्रभम् ॥८

श्रीनेमिनाथका दीक्षाग्रहण, केवलज्ञानप्राप्ति, द्वारिका दहन, कृष्णपरलोकगमन और बलभद्रका दीक्षाग्रहण इतने विषयोंका वर्णन करनेवाला यह बाईसवां पर्व समाप्त हुवा ॥ २२ ॥

[तेईसवां पर्व]

अनेक मनुष्य देव और मुनियोंके स्वामी जिनको वन्दन करते हैं, जिन्होंने इंद्रियां वश की हैं अर्थात् जो जितेन्द्रिय हैं, जिन्होंने कर्मशत्रुओंका नाश किया है जो भव्योंको सद्धर्मामृत देते हैं ऐसे श्रीनेमिनाथ जिनेश्वरकी मैं स्तुति करता हूं ॥ १ ॥ जिनका चित्त दयासे भरा हुआ है ऐसे पाण्डव जारसेयको जरारानीके पुत्र-जरत्कुमारको आगे करके अर्थात् उसके साथ द्वारकानगरीको आये । पाण्डवोंने अपने साथ कुन्ती द्रौपदी आदिकोंको लिया था ॥ २ ॥ पाण्डवोंने प्रशस्त और उत्तम वैभवशाली ऐसे घरोंसे द्वारिका नगरीको बसाया और उसके राज्यपर उन्होंने जरत्कुमारकी स्थापना की ॥३॥ [दग्धद्वारावतीको देखकर पाण्डवोंके वैराग्योद्गार] परन्तु श्रीकृष्ण और बलदेवके प्राचीन और उत्तम राज्यका स्मरण करनेवाले पाण्डव शोकसे और शंकासे-तर्क वितर्कसे व्याकुल हुए ॥ ४ ॥ " अहो, नेत्रोंको आनंदित करनेवाली जो द्वारिका नगरी देवोंने निर्माण की थी, वह भस्म होकर नेत्रोंको रमणीय दीखनेवाली गंधर्व नगरीके समान अदृश्य होगयी । जो हमेशा उत्सवोंमें तत्पर रहते थे और जो अतिशय आदरके योग्य थे वे दशार्ह-समुद्रविजयादिक दश भ्राता कहां गये ? आश्चर्य है, कि वे सुंदर अच्युत-श्रीकृष्ण और अच्युत पूर्वज-श्रीकृष्णके ज्येष्ठ भाई-श्रीबलभद्र कहां गये हैं ॥५-६॥ रुक्मिणी,सत्यभामा आदि स्त्रियोंके देवोंको आनंदित करनेवाले महल कहां गये ? तथा उनके प्रद्युम्नादि पुत्र कहां गये ? जो हर्षके उत्कर्षसे उन्नत थे । अर्थात् उनको स्वप्नमें भी दुःखका स्पर्श नहीं हुआ था । खेदकी बात है, कि यह स्वजनोंकी संगति बिजलीके समान क्षणिक है । तथा मनुष्योंके जीवित हाथके तलमें स्थित पानीके समान हैं अर्थात् जैसे हाथके तलमें लिया हुआ

अङ्गना संगरङ्गेण रक्तालक्तकरङ्गवत्। विरक्तत्वं प्रयात्याशु का मतिस्तत्र निश्चला॥९
आत्मीया ये पराः पुत्राः पवित्रा आत्मनो न ते। केवलं कर्मकर्तारः संकल्पितसुखोपमाः॥
ग्रहा इव गृहाः पुंसां विकाराकरकारिणः। परप्रेमकरा आपत्संगदाः संपदापहाः॥११
वसूनि जलदस्येव मण्डलानि सुनिश्चितम्। चञ्चलानि परप्रेमकराणि स्युः क्षणे क्षणे॥१२
विशरारूणि सर्वत्र शरीराणि शरीरिणाम्। अनेहसा विनश्यन्ति चलानि शुष्कपर्णवत्॥१३
आत्मनोऽपि महादेहो नानास्नेहप्रवर्धितः। कालेन विपरीतत्व याति दुर्जनवत्सदा॥१४
अहो इदं शरीरं तु वराहारैः सुपोषितम्। क्षणेन विपरीतत्वं याति शत्रुकदम्बवत्॥१५
सप्तधातुमये काये व्यपाये पापपूरिते। पूतिगन्धे मनुष्याणां का मतिश्च स्थिराशया॥१६
अहो अनङ्गरङ्गेण रञ्जिता रागिणश्चिरम्। रमन्ते रम्यरामासु सातं तत्र कियन्मतम्॥१७

पानी क्षणानंतर गल जाता है वैसे स्वजनोंका संगम शीघ्र नष्ट होता है॥ ७-८॥ संभोगरंगसे पतिके ऊपर प्रेम करनेवाली स्त्री लाखके रङ्गके समान शीघ्र विरक्त हो जाती है। ऐसी स्त्रीमें निश्चल बुद्धि क्यों करना चाहिये? लाखका रंग जैसे जल्दी नष्ट होता है वैसे संभोगके हेतुसेहि पतिके ऊपर स्त्रियां प्रेम करती हैं परंतु जब पतिसे संभोगसुख नहीं मिलता है तब वे उससे विरक्त होती हैं। जिन उत्तम पुत्रोंको हम आत्मीय-अपने समझते हैं वे वास्तविक अपने नहीं हैं। मनोरथके सुखके समान वे केवल कर्मबंधके कर्ता है। अर्थात् मनोरथमें वास्तविक सुख नहीं है, क्यों कि उनमें कोईभी वर्तमान कालमें सुख देनेवाला पदार्थ सामने नहीं रहता है परंतु उसमें मनुष्योंको सुखाभास प्राप्त होता है और ऐसे मनोरथ-मनोराज्य कर्मबंधनका कारण है। वैसे पुत्रोंसे हम अपनेको सुखी समझते हैं परंतु वे कर्मबंधके कारण हैं॥ ९-१०॥ जो गृह मकान, महल आदिक आश्रयस्थान हैं वे शनि आदि ग्रहोंके समान विकारसमूह उत्पन्न करनेवाले हैं वे ग्रहके समान दूसरोंकि ऊपर प्रेम करनेवाले तथा स्वामीको आपत्तिमें गिरानेवाले और सम्पदाके विनाशक हैं। अनेक प्रकारका सुवर्ण रत्नादि धन मेघमण्डलके समान चंचल हैं ऐसा निश्चयसे समझना चाहिये। तथा प्रतिक्षण अपनेसे भिन्न व्यक्तियोंपर प्रेम करनेवाला है। प्राणियोंके शरीर सर्वत्र नाशवंत हैं। वे सूखे हुए पत्तोंके समान चंचल हैं। और कालसे नष्ट होते है। अनेक स्नेहोंसे वृद्धिंगत किया हुआ यह अपना अतिशय प्रिय बडा देह दुर्जनके समान हमेशा कालान्तरमें विपरीत होता है। उत्तम आहारोंसे पुष्ट किया गया यह देह शत्रुसमूहके समान तत्काल विपरीत अवस्थाको धारण करता है। यह मनुष्योंका शरीर रक्त मांसादि सप्त धातुओंसे भरा हुआ है। विशेष अपायकारक, पापोंसे भरा हुआ और दुर्गंध युक्त है ऐसे शरीरमें यह स्थिर है ऐसी बुद्धि क्यों होती है समझमें नहीं आता॥ ११-१६॥ कामी लोग अनंगरंगसे अनुरक्त होकर अर्थात् कामाकुल होकर रमणीय स्त्रियोंमें रममाण होते हैं। परंतु उनमें कितना सुख है? अर्थात् शरीरपरि-

यदङ्गे बहुधा रोगा बहुकोटिप्रमाः खलु । वसन्ति तत्र किं सातं बिले दर्वीकरा यथा ॥१८
भोगास्तु भङ्गुराः पुंसां सुखदाः सेवनक्षणे । अन्ते तु नीरसास्तत्र मूढाः किं मन्वते सुखम् ॥
विषयामिषदोषेण विषमेणासुहारिणा । विषेणेव नराः प्रीतिं कथयन्ति क्षयोन्मुखाः ॥२०
विषयेण हता जीवा दुर्गतिं यान्ति दुःखदाम् । पुनस्तमेव सेवन्ते महती मूढता नृणाम् ॥
इन्द्रियैर्निर्जिता जीवा द्रवन्तो द्रव्यमोहतः । विलीयन्ते क्षणार्धेन तस्करैर्निद्रयाथवा ॥२२
विषयाः क्षणिकत्वं हि वदन्तः सर्वशर्मणाम् । सत्यापयन्ति शीघ्रेण सौगतीयं मतं सताम् ॥
इन्द्रियाणि शरीराणि वसूनि विपुलानि च । मित्राणि कुत्र दृष्टानि सुस्थिराणि स्थिराशयैः ॥
भोगिवच्चञ्चला भोगा भयदा भव्यदेहिनाम् । सेव्यमानाः प्रवर्धन्तेऽग्निना कण्डूभरा इव ॥
भोगैः संभज्यमाना हि वर्धन्ते विषया ननु । न यान्ति शान्तितां क्वापि ज्वलना दारुतो यथा
बम्भ्रम्यन्ते भवे जीवाः सुचिरं पञ्चरूपके । प्रपञ्चिते प्रपञ्चेन पच्यमाना महासुखैः ॥२७
अनादिवासनोद्भूतमिथ्यात्वमतिमोहतः । विरमन्ति वृषाज्जीवा अविदन्तो हिताहितम् ॥२८

श्रमकेविना अन्य कुछभी उसमें प्रतीत नहीं होता है ॥१७॥ बिलमें सर्पके समान जिस अंगमें अनेक प्रकारके अनेक कोटिप्रमाण रोग रहते हैं उसमें सुख कैसा? अर्थात् शरीर रोगोंका घर होनेसे उससे दुःखही मिलता है। मनुष्योंके भोग पदार्थ नाशवंत हैं, जब उनका सेवन करते हैं तब वे सुखदायक मीठे मालूम पडने हैं। परंतु अन्तमें वे नीरस होते हैं। इसलिये मूढ लोग उनको सुखकारक क्यों समझते हैं? विषयका लोभदोष विषके समान विषम और प्राणहारक है। परंतु उनके साथ क्षयोन्मुख लोग प्रीति करते हैं अर्थात् ऐसे भी विषय लोगोंको बहुत प्रिय मालूम होते हैं। इस विषयसे मारे गये जीव दुःखदायक दुर्गतिको प्राप्त होते हैं, तो भी उसीको जीव पुनः सेवन करते हैं यह लोगोंकी बडी मूर्खता है। इंद्रियोंने जिनको पराजित किया है, ऐसे जीव धनके मोहसे इधर उधर दौडते रहते हैं। परंतु चोरोंके द्वारा अथवा निद्रासे वे क्षणार्द्धमें नष्ट होते हैं। क्षणिकवादियोंके मतके समान विषय शीघ्रही संपूर्ण सुखोंका क्षणिकपना व्यक्त करते हैं। इंद्रियाँ शरीर, बहुत धन और मित्र ये पदार्थ स्थिर चित्तवालोंको कहीं स्थिर दीखते हैं? भव्य प्राणियोंको ये भोग सर्पके शरीरके समान चंचल और भयदायक हैं। जैसे अग्निका सेवन करनेसे खुजली अधिक पीडा देती है वैसे इनका सेवन करनेसे ये भोगपदार्थ बढते हैं। जैसे लकडिओंसे अग्नि कहीं भी शान्त नहीं होती है वैसे भोगोंसे भोगे गये विषय निश्चयसे बढते हैं ॥ १८--२६ ॥ जो मायासे बढ गये हैं ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ऐसे पांच प्रकारके संसारोंमें महादुःखोंसे पचते हुए जीव दीर्घकालसे भ्रमण कर रहे हैं। अनादिकालकी अविद्यासे उत्पन्न मिथ्यात्व मतिमें मोह उत्पन्न करता है तब जीव हिताहितको न जानते हुए जिनधर्मसे विरक्त होते हैं ॥२८॥ संसारसे बारह प्रकारकी अविरति (व्रत धारण करनेकी इच्छा न होना) उत्पन्न होती है। विषयरूप मिष्टान्नमें

द्वादशाविरतीर्जीवाः कुर्वन्तो भवसंभवाः। विपदां यान्ति वेगेन विषयामिषलोलुपाः ॥२९
कषन्ति सद्गुणान्सर्वान् जीवानां बुद्धिशालिनाम्।
कषायास्ते मतास्तज्ज्ञैस्त्याज्या मोक्षसुखाप्तये ॥ ३०
युज्यन्ते कर्मभिः सत्रं जीवा यैस्ते मता बुधैः। योगाः शुभाशुभा हेयाः श्रेण्यसंख्येयमातृकाः॥
मद्यवत्संप्रमाद्यन्ति यतो जीवा मदोद्धताः। ते प्रमादाः सदा त्याज्या यतः संसारसंभवः॥
कौन्तेयाः सततं चित्ते चिन्तयित्वेति निर्ययुः। ततस्तु पल्लवं प्रापुर्नीवृतं जिनसंश्रितम् ॥३३
सुरासुरैः सदा सेव्यं तत्र नेमिजिनेश्वरम्। लोकत्रयसुसेव्यत्वाच्छत्रत्रयसुशोभितम् ॥३४
शोकशङ्कापहारित्वादशोकानोकहाङ्कितम्। चतुःषष्टिचलच्चारुचामरैः परिवीजितम् ॥३५
जगत्त्रयसुशीर्षस्थमिव सिंहासनाश्रितम्। सामोददिव्यदेहत्वात्पुष्पवृष्ट्योपशोभितम् ॥३६
कर्मारिजयतो जातदिव्यदुन्दुभिदीपितम्। अष्टादशमहाभाषाभाषणैकमहाध्वनिम् ॥३७
सूर्यकोटिसमुद्भासिभास्वद्भामण्डलामलम्। वीक्ष्य ते पाण्डवा भक्त्या पूजयन्ति स्म पूजनैः॥
स्तोतुमारेभिरे देवं पाण्डवाः पावनाः पराः। नावायसे नृणां नाथ संसाराब्धौ त्वमेव हि ॥
त्वमेव जगतां नाथस्त्वमेव परमोदयः। त्वमेव जगतां त्राता त्वमेव परमेश्वरः ॥४०

लुब्ध हुए जीव इन बारह अविरतिरूप परिणाम करते हुए वेगसे विपदाओंको प्राप्त होते हैं ॥२९॥ बुद्धिशाली जीवोंके सब सद्गुणोंको जो नष्ट करते हैं, घातते हैं उनको तज्ज्ञ जीव कषाय कहते हैं। मोक्षसुखकी प्राप्तिके लिये उनका त्याग करना चाहिये ॥ ३० ॥ जिनके द्वारा जीव कर्मोंके साथ जोडे जाते हैं, उनको विद्वानोंने योग कहा है। वे शुभयोग और अशुभयोग इस तरह दो प्रकारके हैं। पुनः इनके श्रेणिके असंख्यातवे भागप्रमाण भेद होते हैं ॥ ३१ ॥ जिनसे जीव मद्य पीनेवाले के समान मदोद्धत होते हैं वे प्रमाद सदा त्यागने योग्य होते हैं, क्योंकि इनसे संसारकी उत्पत्ति होती है ॥ ३२ ॥ इस प्रकारसे सर्व पाण्डव मनमें संतत विचार करके उस स्थानसे निकले और जिनेश्वरने जिसका आश्रय लिया है ऐसे पल्लवदेशको वे प्राप्त हुए ॥ ३३ ॥

[पाण्डवकृत नेमिप्रभु-स्तुति] जो त्रैलोक्यके द्वारा सेवनीय होनेसे छत्रत्रयसे-तीन छत्रोंसे सुशोभित हैं, शोकका भय नष्ट करनेसे अशोकवृक्षसे जो अंकित हुए हैं, चौसठ चंचल सुंदर चामर जिनपर ढुरे जा रहे हैं, त्रैलोक्यके मानो मस्तकपर जो विराज रहे हैं ऐसे सिंहासनका आश्रय लिये हुए, सुगंधित और दिव्य देहसे युक्त होनेसे जो पुष्पवृष्टिसे शोभित हुए हैं, कर्म-शत्रुको जीत लेनेसे प्राप्त हुए दिव्य दुंदुभियोंसे जो उद्दीप्त हुए हैं, अठारह महाभाषाओंमें भाषण करनेरूप एक महाध्वनि जिनकी है, सूर्यकोटियोंसे उत्पन्न प्रकाशके समान चमकनेवाला जो भामण्डल उससे जो निर्मल दीखते हैं, जिनको सुर और असुर हमेशा सेवन करते हैं ऐसे नेमि-जिनेश्वरको देखकर वे पाण्डव भक्तिसे पूजाओंके द्वारा पूजने लगे ॥ ३४-३८ ॥ पवित्र उत्तम

त्वमेव हितकृन्नृणां त्वमेव भवतारकः। त्वमेव केवलोद्भासी त्वमेव परमो गुरुः ॥४१
त्वत्प्रसादाज्जना यान्ति जवंजवाब्धिपारताम्। तव प्रसादतो जीवो लभते पदमव्ययम् ॥४२
त्वमव्ययो विभुर्भास्वान्भर्ता भवभयापहः। भगवान्भव्यजीवेशः प्रभग्नभयसंकटः ॥४३
कैवल्यविपुलं देवं सर्वज्ञं चिद्गुणाश्रयम्। मुनीन्द्रमामनन्ति त्वां गणेशं गणनायकम् ॥४४
त्वया बाल्येऽपि नाकारि प्राज्ये राज्ये विराजिते।
गजवाजिमहारामाराजिभिश्च महामतिः ॥ ४५
कन्दर्पदर्पसर्पस्य हतौ त्वं गरुडायसे। सर्वलोकहिताख्यानाद्धितकृद्धितदायकः ॥४६
धिषणाधिष्ठितत्वेन त्वमेव धिषणायसे। अतो नमो जिनेन्द्राय नमस्तुभ्यं चिदात्मने ॥४७
नमस्ते बोधसाम्राज्यराज्याय विजितद्विषे। अनन्तशर्मणे नित्यमाबालब्रह्मचारिणे ॥४८
केवलज्ञानरूपाय नमस्तुभ्यं महात्मने। नमस्तुभ्यं शिवाढ्याय केवलं केवलात्मने ॥४९
नमोऽनन्तसुबोधाय विशुद्धाय बुधाय ते। त्वया राजीमती त्यक्ता बाल्ये बालार्कसंनिभा ॥

पाण्डवोंने नेमिजिनेश्वरकी स्तुति करना प्रारंभ किया। "हे नाथ, आपही संसारसमुद्रमें मनुष्योंको नौकाके समान हैं। आपही जगत्के स्वामी हैं, आपही उत्कृष्ट उदयवाले हैं। आपही जगत्के रक्षक और आपही परमेश्वर हैं। आपही मनुष्योंका हित करते हैं और आपही संसार-तारक हैं। आपही केवलज्ञानसे प्रकाशमान् हैं और आपही परम गुरु हैं। हे प्रभो, आपकी कृपासे लोक संसारसमुद्रको पार करते हैं। आपके प्रसादसे जीव अविनाशी मुक्तिपदको प्राप्त करते हैं। हे प्रभो, आप अविनाशी हैं, ज्ञानसे विभु—व्यापक हैं, भामण्डलसे प्रकाशमान हैं, आप भव्योंको हितमार्ग दिखाकर उनका पोषण करते ह, अतः भर्ता हैं। उनके संसार-भयका नाश करते हैं। आप भगवान्-समवसरण-लक्ष्मी व अनन्त ज्ञानादि ऐश्वर्यके पति हैं। भव्य जीवोंके स्वामी हैं। आपके भय और संकट नष्ट हुए हैं। हे प्रभो, आपको कैवल्यसे विपुल, देवोंसे स्तुति की जानेसे देव, सर्व पदार्थोंके ज्ञाता होनेसे सर्वज्ञ, चैतन्यगुणके आधार, मुनियोंके स्वामी, द्वादशगणोंके प्रभु और गणनायक कहते हैं ॥ ३९–४४ ॥ हाथी, घोडे, सुंदर स्त्रियाँ, इनके समूहोंमे उत्कृष्ट, शोभायुक्त राज्य होनेपरभी उसमें आपकी मतिने प्रवेश नहीं किया। हे प्रभो, मदनका गर्वरूप सर्प मारनेमें आप गरुडके समान हैं। सर्व लोगोंको हितोपदेश करनेसे आप हितकृत् और हितदायक हैं। बुद्धिसे केवलज्ञानसे अधिष्ठित (युक्त) होनेसे आपही धिषण—गुरुके समान हैं इस लिये हे जिनेन्द्र, आपको हम नमस्कार करते हैं। चैतन्यस्वरूप आपको हमारा नमस्कार है। आप केवलज्ञानरूप साम्राज्यके राजा हैं। आप शत्रुरहित हैं, आप सदा अनंत सुखी और बालब्रह्मचारी ह। आप केवलज्ञान धारण करते हैं। आप महात्मा हैं इस लिये हम आपको नमस्कार करते हैं। आप अनंतशिवसे—सुखसे पूर्ण हैं तथा आप केवल आत्मरूप हैं अर्थात् कर्म आपसे पूर्ण पृथक् होगया है। अनंतज्ञानरूप

पूर्णचन्द्रानना तन्वी रतिरूपा गुणाकरा। निर्दोषा रससंपूर्णा लक्ष्यलक्षणलक्षिता ॥५१
कस्ते देव गुणान्वक्तुं समर्थोऽत्र जगत्त्रये। इति स्तुत्वा स्थिताः सभ्याः सभायां भास्वरा नृपाः ॥५२
व्याजहार जिनो धर्मं पाण्डवान् शृणुताधुना। यूयं यत्नेन जीवानां सातसाधनमुद्धरम् ॥५३
धर्मो जीवदया भूपैकभेदो विशदात्मकः। सा षड्जीवनिकायानां रक्षणं परमा मता ॥५४
द्विधाप्यथापि धर्मो भो यतिश्रावकगोचरः। पञ्चाचारं च चरतां यतिधर्मः प्रजायते ॥५५
दर्शनं निर्मलं यत्र दर्शनाचार उच्यते। ज्ञानं पापठ्यते शुद्धं ज्ञानाचारः स कथ्यते ॥५६
चारित्रं चर्यते यत्र त्रयोदशविधं परम्। चारित्राचार उक्तः स चारुचारित्रचेतसाम् ॥५७
यत्तपस्तप्यते सद्भिः षोढा बाह्यं तथान्तरम्। तपआचार उक्तः स विचारचतुरैर्नरैः ॥५८

विशुद्ध और बुधरूप आपको हमारी वंदना है। हे देव, आपने बालसूर्यके समान तेजस्विनी राजीमतीको बाल्यकालमें छोड दिया है, जो राजीमती पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली, मनोहर, रतिके समान सौंदर्यवाली सद्गुणोंकी खनी, दोषरहित, शृङ्गाररसपूर्ण, लक्ष्यलक्षणोंसे युक्त थी ऐसी राजमतीको आपने छोड दिया। हे देव, आपके गुणोंका वर्णन करनेमें जगत्त्रयमें कौन समर्थ है? ऐसी स्तुति करके वे तेजस्वी सभ्य राजा पाण्डव सभामें बैठ गये ॥ ४५–५२ ॥

[नेमिजिनका धर्मोपदेश] " हे पाण्डवो, जो जीवोंको सुखका उत्तम साधन है ऐसा धर्म आप यत्नसे एकाग्रचित्त होकर अब सुनो" ऐसा कहकर प्रभु धर्मका निरूपण करने लगे। हे राजगण, एक भेदात्मक अर्थात् अभेदात्मक और निर्मल धर्म एक है, और वह जीवदया है। षट्काय जीवोंका रक्षण करना यही उत्कृष्ट धर्म माना है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति इनको स्थावर कहते हैं इनके सिर्फ स्पर्शनेंद्रिय है। तथा द्वीन्द्रियसे पंचेन्द्रियतक जीवोंको त्रस कहते हैं। पांच प्रकारके स्थावर और त्रस जीवोंको षट्काय जीव कहते हैं। यतिविषयक और श्रावकविषयक ऐसे धर्मके दो भेद भी जिनेश्वरने कहे हैं। पंचपातकोंका देशत्याग करना श्रावक धर्म है और इनका संपूर्ण त्याग करना मुनिधर्म है। पांच आचारोंका पालन करनेवालोंको यतिधर्म प्राप्त होता है। निर्मल सम्यग्दर्शन जिसमें होता है अर्थात् निर्मलतासे अतिचाररहित पालन सम्यग्दर्शनका करना दर्शनाचार है। सम्यग्ज्ञानका आठ दोषोंसे रहित अध्ययन करना ज्ञानाचार कहा जाता है। जिसमें तेरह प्रकारके चारित्र-(पांच समिति, पांच महाव्रत और तीन गुप्तिरूप चारित्र) पाले जाते हैं सुंदर चरित्रमें जिनका मन है ऐसे महापुरुषोंका वह चारित्राचार है। बाह्य तपश्चरण अनशन, अवमोदर्यादि छह प्रकारका और अभ्यंतर तपश्चरण प्रायश्चित्त विनयादिक छह प्रकारका है। इन दो प्रकारके तपोंका सज्जन पालन करते हैं। इस तपके आचरणको विचारचतुर पुरुष तप आचार कहते हैं। अपना

---

१ स ब धर्माणाम्।

यद्वीर्यं प्रकटीकृत्य चर्यते चरणं महत् । वीर्याचारः प्रणीतः स जिनेन्द्रेण सुनेमिना ॥५९
त्रिधात्मकः पुनः प्रोक्तो धर्मः श्रीजिननायकैः । दर्शनज्ञानचारित्रभेदेन भवभेदिना ॥६०
शङ्कादिदोषनिर्मुक्तमष्टाङ्गपरिपूरितम् । तत्र सम्यक्त्वमाख्यातं तत्त्वश्रद्धानलक्षणम् ॥६१
संज्ञानं निर्मलं रम्यं जिनोक्तश्रुतसंश्रितम् । शब्दार्थादिप्रभेदेन पूरितं गदितं बुधैः ॥६२
त्रयोदशविधं विद्धि चारित्रं चरणोद्यतैः । प्रोक्तं पुरातनैः पुंसां सर्वकर्मनिकृन्तनम् ॥६३
अथवा दशधा धर्मो मतः क्षान्त्यादिलक्षणः । आद्यः क्षान्त्याह्वयस्तत्र मार्दवो मानमोचनम्॥
आर्जवं शाम्बरीत्यागः शौचं लोभविवर्जनम् । सत्यं तु सत्यवादित्वं संयमो जीवरक्षणम् ॥
तपस्तु तापनं देहे त्यागो वित्तविवर्जनम् । निर्ममत्वं शरीरादावाकिंचन्यं मतं जिनैः ॥६६
चरणं ब्रह्मणि स्वस्मिन्ब्रह्मचर्यं स्वभावजम् । सर्वसीमन्तिनीसंगत्यागो वा तन्मतं जिनैः ॥
अथवा परमो धर्मः स चिदात्मनि या स्थितिः । मोहोद्भूतविकल्पौघवर्जिता निर्मलात्मिका ॥

सामर्थ्य प्रगट कर जो महान् मुनियोंका आचार पाला जाता है उसको नेमिजिनेन्द्रने वीर्याचार कहा है। पुनः जिनधर्मके तीन भेद श्रीजिननायकोंने कहे ह। संसारनाशक धर्मके सम्यग्दर्शन धर्म, सम्यग्ज्ञान धर्म और सम्यक्चारित्र धर्म ऐसे तीन भेद हैं॥ ५३–६० ॥ शंका, कांक्षा, विचिकित्सादिक आठ दोषोंसे रहित, निःशंकित, निष्कांक्षित आदि आठ अंगोंसे पूर्ण, जो जीवादि सप्त तत्त्वोंपर श्रद्धान करना उसे सम्यक्त्व अर्थात् सम्यग्दर्शन कहते हैं। जिनेश्वरने कहे हुए आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवायादिक बारह अंगोंका आश्रय करनेवाला रम्य और निर्मल ऐसा जो जिनागमका ज्ञान, जिसके शब्दश्रुत [द्रव्यश्रुत] और भावश्रुत ऐसे दो भेद हैं तथा जिसके पूर्वादि चौदह भेद भी हैं। उसको विद्वान् सम्यग्ज्ञानधर्म कहते हैं। चारित्र पालनेमें उद्यत रहनेवाले प्राचीन महर्षियोंने पुरुषोंके सर्व ज्ञानावरणादि आठ कर्मोको तोडनेवाला तेरह प्रकारका चारित्र कहा है, वह सम्यक् चारित्र–धर्म है॥ ६१–६३ ॥ अथवा उत्तम क्षमादि लक्षण जिसके हैं ऐसे धर्मके दशभेद माने हैं। पहिला क्षान्तिनामका धर्म है अर्थात् क्रोधके कारण उपस्थित होनेपर सहनशील रहना क्षमाधर्म है। अभिमानका त्याग करना मार्दवधर्म है। कपट–त्यागको आर्जवधर्म कहते हैं। लोभको छोडना शौचधर्म है। सत्य बोलना सत्यधर्म और जीवोंका रक्षण संयम है। देहको अनशनादिकोंसे तपाना तपोधर्म है और सत्पात्रमें द्रव्य अर्पण करना अर्थात् चार प्रकारके आहार, शास्त्र, औषध, और वसतिका अर्पण करना त्याग–धर्म है। शरीरादिकोंमें ममतारहित होना जिनेश्वरने आकिञ्चन्यधर्म कहा है। ब्रह्ममें आत्मस्वरूपमें तत्पर होना यह स्वभावसे उत्पन्न हुआ ब्रह्मचर्य नामक धर्म है तथा संपूर्ण स्त्रीमात्रके संगका त्याग करना भी ब्रह्मचर्य धर्म है ऐसा जिनेश्वरने माना है॥ ६४–६७ ॥ अथवा चैतन्यमय आत्मामें जो स्थिर रहना उसेभी उत्तमधर्म कहते हैं। वह आत्मस्थिति, मोहसे उत्पन्न हुए रागद्वेष–मोहादि विकल्पोंसे रहित, मलरहित–स्वच्छ होती है। मैं चैतन्यस्वरूप, केवल–

चिद्रूपः केवलः शान्तः शुद्धः सर्वार्थवेदकः। उपयोगमयोऽहं चेति स्मृतिर्धर्म उच्यते ॥६९

मनसा वचसा तन्वा योऽचिन्त्यश्चेतनात्मकः।
स्वानुभूत्या परं गम्यो ध्यायतेऽत्र निरञ्जनः॥७०

संसारसागरान्मुक्तौ यः समुद्धृत्य देहिनम्। धत्ते धर्मः स आख्यातः परमो विपुलोदयैः॥७१
धर्मः पुंसो विशुद्धिः स्यात्सुदृग्बोधमयात्मनः। शुद्धस्य परमस्यापि केवलस्य चिदात्मनः॥

इति धर्मस्य सर्वस्वं श्रुत्वापृच्छन्भवान्तरान्।
आत्मीयानात्मनः शुद्ध्यै कौन्तेयाः कपटोज्झिताः॥७३

अस्माभिः किं कृतं श्रेयो वयं येन महाबलाः। जाताः स्नेहयुताः सर्वेऽन्योन्यं निर्मलमानसाः॥
पाञ्चाली केन पुण्येन जातेयमीदृशी शुभा। केनाघेन बभूवासौ पञ्चपूरुषदोषिणी॥७५
बभाण भगवाञ्श्रुत्वा भव्यानुद्धर्तुमुद्यतः। जम्बूपशोभिते द्वीपे सत्यं बाभाति भारतम्॥७६
तत्राङ्गीव महानङ्गैरङ्गदेशः सुलक्षणैः। दुर्लक्ष्यस्तु विपक्षेण क्षोण्यां ख्यातिं गतोऽक्षयी॥

कर्मरहित, शान्त, शुद्ध और सर्व पदार्थोंको जाननेवाला, उपयोगपूर्ण हूं ऐसी जो स्मृति होना उसे धर्म कहते है। मन, वचन और शरीर जिसका चिन्तन करनेमें असमर्थ हैं, जो चेतनात्मक और स्वानुभूतिहीसे जाना जाता है ऐसा निरंजन आत्मा इस स्मृतिमें चिन्तन किया जाता है॥ ६८–७०॥ विपुल उदयवाले अर्थात् अन्तरंग ज्ञानादि–लक्ष्मी तथा बहिरंग समवसरणादि–लक्ष्मीके धारक जिनेश्वरोंने संसारसमुद्रसे जीवको निकालकर मुक्तिमें–मोक्षमें जो स्थापन करता है, उसे परमधर्म–उत्तम धर्म कहा है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान स्वरूप आत्माकी जो कर्मरहित विशुद्धि-निर्मलता उसे धर्म कहते हैं। परमशुद्ध, केवल चैतन्यमय आत्माकी विशुद्धि धर्म है॥ ७१–७२॥

[पाण्डवोंके पूर्वभवोंकी कथा] इस प्रकार धर्मका पूर्ण स्वरूप सुनकर कपटरहित कौन्तेयोंने -अर्थात् कुन्तीपुत्र पाण्डवोंने अपने आत्माकी निर्मलता होनेके लिये अपने भव नेमि-प्रभुको पूछे। हे प्रभो, हमने कौनसा पुण्य संचित किया था कि जिससे हम सभी महाबलवान् अन्योन्यमें स्नेहयुक्त और निर्मल मनवाले हुए हैं? यह द्रौपदी कौनसे-पुण्यसे ऐसी शुभकर्म करनेवाली हुई है। तथा किस पापसे पांच पुरुषोंकी पत्नी है ऐसा दोष अपवाद इसका जगत्में फैल गया? भव्योंको संसारसे उद्धारनेमें उद्युक्त भगवानने पाण्डवोंके प्रश्न सुनकर भवोंका वर्णन किया। जम्बूवृक्षसे शोभित द्वीपमें अर्थात् जम्बूद्वीपमें भारतनामका क्षेत्र है। उसमें जैसे सुलक्षणयुक्त अंगोंसे–अवयवोंसे अंगी–शरीर शोभता है वैसा अंगदेश शुभ लक्षणोंसे शोभता है। शत्रुओंसे वह देश दुर्लक्ष्य था अर्थात् उनसे वह अजय्य था। इस पृथ्वीपर इस देशकी ख्याति हुई थी और यह देश अक्षय था॥ ७३–७७॥ उसमें चम्पापुर नगर पुण्यवान् था, पवित्र मनुष्योंका वह रक्षण करता था अर्थात् पवित्र महापुरुष उसमें रहते थे। तट और खाईसे वह

तत्र चम्पापुरी पुण्या पान्ती पावनमानवान् । प्राकारपरिखावेष्ट्या विशिष्टा भाति भूतले ॥
तत्र कौरववंशीयो मेघवाहनभूपतिः । सोमदेवाभिधस्तत्र वाडवो विपुलो गुणैः ॥७९

श्यामाङ्गी सोमिला तस्य तयोरासन्सुतास्त्रयः ।
प्रथमः सोमदत्तोऽन्यः सोमिलः सोमभूतिवाक् ॥८०
सोमिलायाः शुभो भ्राताग्निभूतिस्तस्य भामिनी ।
अग्निला च तयोस्तिस्रः पुत्र्यः सोमशुभाननाः ॥८१

धनश्रीश्चैव मित्रश्रीर्नागश्रीः श्रीरिवापरा । तास्तिस्रः सोमदत्ताद्यैः प्राप्ताः पाणिग्रहं क्रमात् ॥
सोमदेवः कदाचित्तु विरक्तो भवभोगतः । प्राव्राजीद्गुरुसांनिध्ये मिथ्यामार्गविमुक्तधीः ॥
त्रयस्ते भ्रातरो भक्ता भव्या भव्यगुणैर्युताः । श्रावकाध्ययनं धीरा ध्यायन्ति स्म सुधर्मिणः
सोमिला मलनिर्मुक्ता सम्यक्त्वव्रतधारिणी । दधाना परमं धर्मं सिद्धान्तश्रवणोद्यता ॥८५
सा वधूभ्यः सदादेशं ददाविति महाशया । अहिंसा सत्यमस्तेयं कार्यं ब्रह्मव्रतं बुधैः ॥८६

वेष्टित था। इस भूतलमें वह नगरी अपनी विशिष्टतासे शोभती थी ॥ ७८ ॥ उस नगरीमें कौरववंशमें जन्मा हुआ मेघवाहन नामक राजा राज्यपालन करता था। उसी नगरमें गुणोंसे विपुल श्रेष्ठ सोमदेव नामक ब्राह्मण रहता था। उसकी सोमिला नामक तरुण स्त्री थी। इन दोनोंको तीन पुत्र हुए। सोमदत्त पहिला पुत्र, दूसरा सोमिल और तीसरा सोमभूति नामक था। सोमिलाके सुस्वभाववाले भाईका नाम अग्निभूति था और उसकी पत्नीका अग्निला नाम था। इन दोनोंको चंद्रके समान मुखवाली तीन कन्यायें हुई। धनश्री, मित्रश्री और नागश्री ऐसे उनके नाम थे। उनमें नागश्री मानो दूसरी श्रीके तुल्य थी। सोमदत्तादिक तीनों भ्राताओंने विवाहक्रममे तीनों कन्याओंको प्राप्त किया ॥ ७९-८२ ॥ किसी समय सोमदेव संसारभोगसे विरक्त हुआ। उसकी बुद्धि मिथ्या-मार्गसे हट गई और उसने गुरुके सन्निध मुनिदीक्षा धारण की ॥ ८३ ॥ वे सोमदत्तादि तीनों भाई जिनभक्त थे और भव्यगुणोंसे-वात्सल्य, स्थितिकरणादिगुणोंसे युक्त रत्नत्रययोग्य थे। सुधर्मवान् होनेसे वे धीर-विद्वान् श्रावकाध्ययनका अर्थात् श्रावकोंके आचारका चिन्तन, मनन करते थे ॥८४॥ सोमदत्तादिकोंकी माता सोमिला मलरहित थी, निष्कपटी थी। सम्यग्दर्शन और अणुव्रतोंको धारण करती थी। उत्तम धर्मको धारण करनेवाली और सिद्धान्तश्रवणमें तत्पर रहती थी। श्रेष्ठ अभिप्राय-वाली वह सोमिला अपनी पुत्रवधुओंको हमेशा श्रेष्ठ-हितकारक उपदेश देती थी। अहिंसा, सत्य भाषण, अचौर्य और ब्रह्मचर्य सुज्ञ स्त्रीपुरुषोंको धारण करना चाहिये। अर्थात् तुम इन व्रतोंका पालन करो। धान्य ऊखलीमें कूटना, चक्कीसे उसे पीसना, अन्न पकाना और जलगालन करनेकी पद्धतिको जान कर वैसा विधिपूर्वक जलगालन करना, पात्रदानादिक देना ऐसी विशेष शिक्षा वह अपनी पुत्रवधुओंको देती थी। धनश्री और मित्रश्री ये दो वधुयें उसके वचनोंमें आनंदसे शीघ्र

खण्डनी पषणी चुल्ली जलगालनसद्विधिः। विधेयः पात्रदानादि देयं वध्वो विशेषतः ॥८७
द्वे वध्वौ तद्वचस्तूर्णं तदा श्रद्दधतुर्मुदा। नागश्रीर्विमुखा तस्मान्मिथ्यात्वमलदोषतः ॥८८
सा धर्मविकला दुष्टा कोपना कलहप्रिया। पापकर्मरता कामकलङ्ककलिता सदा ॥८९
नागश्रियं श्रियोपेतामुपदेशमुपादिशत्। धर्मस्य सोमिला साध्वी तत्प्रबोधप्रसिद्धये ॥९०
धिरष्टि कुटिलत्वं हि समुत्पाद्य सुपाटवम्। धर्मे धत्स्व च मिथ्यात्वं मुञ्च मान्ये विषादवत्॥
मिथ्यात्वमोहिता जीवा न हि श्रद्दधते वृषम्। यथा पित्तज्वराक्रान्ताः पयः सच्छर्कराश्रितम्॥
शुद्धो धर्म उपादिष्टः पापिने नैव रोचते। द्वादशात्मासमुद्दीप्तौ यथा घूकाय सुज्ज्वलः ॥९३

मिथ्यात्वान्मोहिता मत्ताः संसारे संसरन्त्यहो।
लंभन्ते न रतिं क्वापि मृगा वा मृगतृष्णया ॥ ९४

मिथ्यात्वं च सदा त्याज्यं देहिभिर्हितसिद्धये। दोषसर्वाकराकीर्णं मलमुक्तैर्यथा मलम् ॥९५
इति धर्मोपदेशस्तु न तस्या मानसे स्थितिम्। व्यधाद्यथाब्जिनीपत्रे पयोबिन्दुः समुज्ज्वलः ॥
अन्यदा प्रवरो योगी नाम्ना धर्मरुचिर्महान्। सोमदत्तगृहं प्राप भिक्षायै प्रवरेक्षणः ॥९७

श्रद्धा करती थी। सिर्फ नागश्री मिथ्यात्वमलसे दूषित होनेसे सासके वचनोंसे विमुख होगई। वह धर्मविकल—धर्मरहित थी, दुष्ट थी, कोपिनी थी और कलहोंमें आनंद माननेवाली थी। पापकर्मोंमें तत्पर और कामदोषसे युक्त थी॥ ८५–८९ ॥ सोमिला साध्वी, लक्ष्मीसे युक्त नागश्रीको धर्मका उपदेश उसको प्रबोधप्राप्तिके लिये देने लगी। "हे सुवासिनी-सौभाग्यवती नागश्री तू कपटको अपने हृदयसे निकालकर फेक दे, चातुर्ययुक्त धर्मको धारण कर और हे मान्ये, मिथ्यात्वको विषादके समान छोड दे। जैसे पित्तज्वरसे पीडित मनुष्योंको उत्तम शक्करमिश्रित दूध अच्छा नहीं लगता है वैसे मिथ्यात्वमुग्ध जीव धर्मके ऊपर श्रद्धा नहीं करते हैं ॥९०–९२॥ शुद्धधर्मका उपदेश पापीको रुचता ही नहीं है। जैसे उल्लूको अतिशय उज्ज्वल प्रकाशमान् सूर्य नहीं रुचता है। मिथ्यात्वसे मोहित और मत्त हुए लोग संसारमें भ्रमण करते हैं। जैसे कि हरिण मृगतृष्णासे मोहित होकर कहीं भी शांतिको प्राप्त नहीं होते हैं। अपना हित साधनेके लिये मनुष्योंको हमेशा मिथ्यात्वका त्याग करना चाहिये। जैसे मलरहित मनुष्य दोषोंके समूहसे भरा हुआ मल—विष्ठादिक अपवित्र पदार्थ त्यागते हैं। जैसे कमलिनीके पत्र पर उत्तम चमकनेवाला जलबिन्दु स्थिर नहीं रहता तत्काल वहांसे गिरता है वैसे सोमिलाका दिया हुआ धर्मोपदेश नागश्रीके मनमें स्थिर नहीं रहा वह वहांसे निकल गया ॥ ९३–९६ ॥

[नागश्रीने मुनिराजको विषयुक्त आहार दिया] किसी समय धर्मरुचि नामके एक महान् श्रेष्ठ मुनि, जो कि प्रवरेक्षण थे अर्थात् अतिशय देखभाल करके समितिका पालन करनेवाले थे—सोमदत्तके घरमें आहारार्थ आये। अपने गृहमें आये हुए मुनीश्वरको सोमदत्तने शीघ्र देखा और

सोमदत्तो विलोक्याशु तं मुनिं समुपागतम्। प्रतिजग्राह तं नत्वोच्चदेशस्थं व्यधाद्गुरुम्॥
पादौ प्रक्षाल्य नीरेण गुरोः स वाडवोऽप्यटन्। कार्याथादात्सुदानस्य शिक्षां नागश्रियै मुदा॥
वधूः सिद्धान्नसद्दानं देह्यस्मै दीप्तदेहिने। मुनये समुपार्ज्याशु सुकृतं नवधाश्रितम्॥१००
मिथ्यात्वमद्यमोहेन मदोन्मत्ता क्रुधाकुला। अचिन्तयन्निजे चित्ते सा दुश्चिन्ताशताकुला॥
अहो कोऽयं मुनिर्नग्नः किं दानमन्ननाशकम्। किं देयं को विधिः सर्वकार्यकृन्तनसाधकः॥
नग्ने दानात्फलं किं स्यादिति कोपेन कम्पिनी। व्यचिक्षिपद्विषं धान्ये सा नागी गरलं यथा॥
ऋजुबुद्ध्या न जानाति श्वश्रूस्तद्विषमिश्रणम्। केवलं पात्रदानेन सा तदा पुण्यमार्जयत्॥
विषेण विषमो व्याधिर्ववृधे विभिवत्क्षणात्। मुनिदेहे च वर्षायां वल्लीवृन्दं निरङ्कुशम्॥१०५
ज्ञात्वा योगी विषं देहे धर्मध्यानं दधौ हृदि। सावधानं सुसंन्यस्य चचार परमं तपः॥

उनको नमस्कार करके उनका स्वीकार किया और उन गुरुको उच्चासनपर उसने बैठाया। उसने उन गुरुके चरण जलसे धोये और कुछ कार्यके लिये जाते हुए उसने नागश्रीको आनंदसे दान देनेके लिये उपदेश दिया। वह उसे कहने लगा, कि हे प्रिये, नवधा भक्तिके आश्रयसे पुण्य प्राप्त कर इस तेजस्वी शरीरवाले मुनीश्वरको तू शीघ्र आहार दे। परंतु मिथ्यात्वरूपी मद्यके मोहसे मदोन्मत्त हुई। क्रोधाविष्ट वह नागश्री सैंकडो दुष्ट चिन्ताओंसे व्याकुल होकर अपने मनमें चिन्ता करने लगी। " अहो क्या कोई नग्न मुनि हो सकता है? जो अन्नका नाशक है वह दान कैसे? ऐसे नग्नको क्या अन्न देना योग्य होगा? और यह सब दानविधि कार्यको नष्ट करनेका साधक है। नग्नको दान देनेसे क्या फल होगा इत्यादि विचारसे वह कोपित होकर कांपने लगी। जैसे सर्पिणी विष-क्षेपण करती है वैसे उसने धान्यमें अर्थात् अन्नमें विष डाल दिया॥ ९७-१०३॥ सास तो सरल-बुद्धिवाली थी इसलिये अन्नमें मिश्रण किया हुआ विष उसे मालूम नहीं हुआ। परंतु सिर्फ पात्रदानके परिणामोंसे सासको पुण्यकी प्राप्ति हुई॥ १०४॥ जैसे वर्षाकालमें विपुल वल्लिओंका समूह निरंकु-शतया बढता है वैसे मुनिके देहमें विषसे तत्काल विषम रोग बढने लगा। मुनीश्वरने अपने देहमें विष-प्रवेश हुआ ऐसा जानकर हृदयमें धर्मध्यान धारण किया। सावधान होकर शरीर, कषाय और आहारका त्याग कर-उनका ममत्व छोडकर उत्तम तप धारण किया। विशुद्ध बुद्धिसे युक्त होकर अर्थात् आत्मस्वरूपके ज्ञानमें तत्पर होकर चार प्रकारकी आराधनाओंकी-सम्यग्दर्शनाराधना सम्यग्ज्ञानाराधना, सम्यक्चारित्राराधना और तपआराधनाओंकी आराधना करके मुनीश्वरने प्राणोंका त्याग किया और सर्वार्थसिद्धि नामक अनुत्तरके विमानमें जा विराजे॥ १०५-१०७॥

[सोमदत्तादिक तीनो मुनिओंका अच्युत स्वर्गमें जन्म] भव्योंमें श्रेष्ठ ऐसे सोमदत्तादिक तीनो भ्राता नागश्रीके किये हुए दोषको जानकर, संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त हुए। वरुणगुरुके पास जाकर उन्होंने उन्हें वंदन किया। सदाचारको अपनानेवाले वे ब्राह्मण उत्तम चारित्रके

आराधनाः समाराध्य विशुद्धविधयाहतः । हित्वा प्राणान्सुसर्वार्थसिद्धिं साधयति स्म च ॥
सोमदत्तादयो ज्ञात्वा दोषं नागश्रिया कृतम् । विरक्ता भवभोगेषु बभूवुर्भव्यसत्तमाः ॥१०८
वरुणस्य गुरोः पार्श्वे गत्वा नत्वा मुनीश्वरम् । जगृहुः परमं वृत्तं विप्राः सद्वृत्तिसंश्रिताः ॥
द्वे ब्राह्मण्यौ परे प्रीते दृष्ट्वा नागश्रियाः कृतिम् । गुणवत्यार्यिकाभ्यर्णे प्राव्राजिष्टां विरज्य च ॥
धर्मध्यानरताः पञ्च विशुद्धाचारचारिणः । बाह्यमाभ्यन्तरं तत्र तपन्ति स्म परं तपः ॥
अन्ते संन्यासमादाय दयादमशमोन्नताः । हित्वा प्राणांस्त्रयस्तूर्णमारणाच्युतयोर्गताः ॥११२
ब्राह्मण्यावपि संशुद्धे चरन्त्यौ चरणं चिरम् । शुद्धसाटीश्रिते रम्ये रेजतू रञ्जितात्मके ॥
सद्दर्शनबलाच्छित्वा स्त्रीलिंगं संगवर्जिते । संन्यस्य जग्मतुस्ते द्वे आरणाच्युतयोर्द्वयोः ॥११४
सामानिकाः सुरास्तत्र सातं सर्वोत्तमं सदा । संभजन्तश्चिरं तस्थुः पञ्चैते परमोदयाः ॥११५
उपपादशिलाप्राप्तदिव्यदेहाः स्फुरत्प्रभाः । अवधिज्ञानविज्ञातपूर्ववृत्तान्तवेदिनः ॥११६
नर्तकीनटनालोका विशोकाः शङ्कयातिगाः । नम्रामरमहाव्यूहा नानानीकविराजिताः ॥
शुद्धाम्भःस्नानसंसक्ता जिनपूजापवित्रिताः । द्वाविंशतिसहस्राब्दमानसाहारहारिणः ॥११८

धारक हुए। धनश्री और मित्रश्री दोनों ब्राह्मणियां भी जो जैनधर्मपर अतिशय प्रेमयुक्त थीं, नागश्रीकी कृति देखकर विरक्त हुईं और गुणवती आर्यिकाके पास उन्होंने आर्यिकापदकी दीक्षा धारण की। वे पांचो भी–तीन मुनि और दो आर्यिकायें धर्मध्यानमें तत्पर रहने लगे, दर्शनाचारादिक पांच विशुद्ध आचारोंका पालन करने लगे। बाह्य और अभ्यन्तर उत्तम तप तपने लगे। दया, जितेन्द्रियता तथा कषायोपशमसे विशिष्ट आत्मगुणोंकी उन्नति धारण करनेवाले उन मुनियोंने आयुष्यके अन्तमें संन्यासपूर्वक प्राणत्याग किया और वे आरणाच्युतमें शीघ्रही उत्पन्न हुए ॥ १०५-११२ ॥ जिन्होंने शुद्ध साडी धारण की है, उपचरित महाव्रतोंमें जिनका आत्मा अनुरक्त हुआ है ऐसी पवित्र परिणामवाली दो ब्राह्मणी आर्यिकायें दीर्घकालतक चारित्र धारण करती हुई शोभने लगी। परिग्रहोंका त्याग कर उन दो आर्यिकाओंने संन्यास धारण किया और सम्यग्दर्शनके बलसे स्त्रीलिंगको छेदकर दोनों आरणाच्युतस्वर्गमें सामानिक देव हुईं। उस स्वर्गमें महाऋद्धिओंके धारक वे पाच सामानिक देव सर्वोत्तम सुखको हमेशा भोगते हुए दीर्घकालतक रहे। उपपादशिलासे उनके दिव्यदेहकी उत्पत्ति हुई, वे पांचोंही अतिशय कांतिसंपन्न थे। अवधिज्ञानसे पूर्व वृत्तान्तको वे जानते थे। नर्तकियोंका नृत्य देखनेवाले, शोक रहित, शंका–भीतिसे दूर रहनेवाले, वे नानाविध सैनिकोंसे शोभने लगे। उनको देवसमूह नमस्कार करते थे। वे शुद्ध जलसे स्नान करके जिनपूजा करके पवित्र होते थे। बावीस हजार वर्ष बीतनेपर वे मानसिक आहार ग्रहण करते थे। बावीस पक्ष अर्थात् ग्यारह महिने बीतनेपर उत्तम सुगंधित उच्छ्वासको लेते थे। उत्तम सुखका अनुभव लेनेवाले बाईस सागर वर्षतक जीवन धारण करनेवाले वे सामानिक देव वहां रहे ॥ ११३-११९ ॥ इस प्रकार

द्वाविंशतिसुपयान्ते परमोच्छ्वासभासिनः। विश्रन्तः परमं सातं द्वाविंशत्यब्धिजीविनः ॥

इति जिनवरधर्माद्ध्वस्तमोहान्धकाराः, अमरनिकरसेव्या लोकनाथस्य भूतिम्।
त्रिभुवनजिनयात्राः संभजन्तो व्रजन्तो, विमलतरसुदेवीसेवितास्ते जयन्तु ॥१२०

भुक्त्वा मानुषसंभवं वरसुखं संसारसारं सदा
कृत्वा घोरतरं तपो द्विदशगं हित्वोपधीन्धीधनाः।
याता येऽच्युतनाम्नि देवनिलये ते पुण्यतः पावनाः
ज्ञात्वैवं विबुधा भजन्तु सुवृषं सिद्धिप्रदं श्रेयसे ॥१२१

इति श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि भ. श्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपालसाहाय्यसापेक्षे
पाण्डवभवान्तरद्वयवर्णनं त्रयोविंशतितमं पर्व ॥ २३ ॥

। चतुर्विंशं पर्व ।

नंनमीमि महारिष्टनेमिं नम्रनरामरम्। द्विधा धर्मरथे नेमिं न्यायनिश्चयकारकम् ॥१

जिनेश्वरके धर्माचरणसे जिन्होंने मिथ्यात्व-मोहरूप अंधारको नष्ट किया है, जो देवसमूहसे सेवनीय थे, लोकपति जिनेश्वरके ऐश्वर्यको अर्थात् उनके समवसरणको जो भजते थे- वहां जाकर प्रभुका उपदेश सुनते थे, त्रिभुवनमें स्थित अकृत्रिम जिन-प्रतिमाओंकी यात्रा-दर्शन, पूजन, वंदन वे करते थे, जिनकी अतिशय स्वच्छ-पवित्र सुंदर देवतायें सेवा करती थीं ऐसे वे सामानिक देव जयवंत रहे ॥ १२० ॥ जिन्होंने मनुष्यभवमें प्राप्त होनेवाले उत्तम सुखका त्याग किया, जिन्होंने संसारमें सारभूत अतिशय तीव्र बारह प्रकारका तप किया, जिन बुद्धिधनोंने-विद्वानोंने परिग्रहोंका त्याग किया, जो अच्युत नामक सोलहवें स्वर्गमें पुण्यसे उत्पन्न हुए वे पांच मुनि और आर्यिका महा पवित्र आत्मा थे। ऐसा जानकर उनके समान कल्याण प्राप्त करनेके लिये हे विबुधगण, तुम मुक्ति देनेवाला सुवृष-उत्तम धर्म अर्थात् जिनधर्म धारण करो ॥ १२१ ॥

ब्रह्म श्रीपालकी सहायतासे भट्टारक श्रीशुभचन्द्रजीसे विरचित महाभारत नामक
पाण्डवपुराणमें पाण्डवोंके दो भवोंका वर्णन करनेवाला
तेवीसावा पर्व समाप्त हुआ ॥ २३ ॥

[चौवीसवां पर्व]

जो यतिधर्म और गृहस्थधर्मरूप धर्मरथके पहियोंके ऊपर नेमिके समान-लोहेकी पट्टीके समान है, प्रमाण-नयरूप न्यायके द्वारा जो जीवादि तत्त्वोंका निश्चय करते हैं, जिनके चरणमूलमें

नागश्रीरथ पापेन प्रकटा लोकनिन्दिता । यष्टिमुष्ट्यादिभिर्हत्वा प्रापिता पीडनं परम् ॥२
मुण्डयित्वा मस्तकं वेगादारोप्याकर्णरासभे । भ्रामयित्वा पुरे साघाल्लोकैर्निष्कासिता पुरात् ॥
काष्ठलोष्टहता भ्रष्टा नष्टा कुष्ठेन कुष्ठिनी । भूत्वारिष्टेन पञ्चत्वं प्राप सा नरकोन्मुखा ॥४
अरिष्टां पञ्चमीं पृथ्वीं प्राप पापेन वाडवी । छेदनं भेदनं शूलारोपणं ताडनं गता ॥५
भुञ्जती पापतो दुःखमायुः सप्तदशार्णवम् । निर्गता सा ततः श्वभ्रं भुक्त्वा दुर्धीरनेकशः ॥
स्वयंप्रभाभिधे द्वीपे सोऽभूदृग्विषपन्नगः । हिंस्रकः स चलजिह्वः कोपारुणितलोचनः ॥

कृष्णलेश्योऽतिकृष्णाङ्गः फणाफूत्कारभीषणः ।
स्फुरत्पुच्छः कषायाढ्यो मूर्तः क्रोध इवोद्धुरः ॥ ८

मृत्वा द्वितीयां पृथ्वीं स जगामाघविपाकतः । त्रिसागरोपमायुष्को दुःखपूरपरिप्लुतः ॥९
बभ्राम निर्गतस्तस्मात्त्रसस्थावरयोनिषु । किञ्चिन्न्यूनद्विकोदन्वत्पर्यन्तं निर्गतस्ततः ॥१०

देव और मनुष्य नम्र होते हैं, ऐसे श्रीमहारिष्ट-नेमि जिनेश्वरको अर्थात् महाअरिष्ट-महाअशुभ, संकट और पापको चूर्ण करनेमें नेमिके समान होनेसे अन्वर्थ नामधारक श्रीमहारिष्टनेमि जिनेश्वरको मैं वारबार नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

[नागश्रीका नगरादिकोंमें भ्रमण] नागश्रीने मुनिको विषाहार दिया उससे उसकी दुष्टताकी सर्वत्र प्रसिद्धि हुई। उसकी लोग निंदा करने लगे। लाठी और मुष्टियोंसे लोगोंने उसे खूब पीटा जिससे उसे अतिशय दुःख हुआ । लोगोंने उसके मस्तकका मुंडन करवाया, उसको गधेपर बैठाया और नगरमें वेगसे घुमवाया। विषाहार देनेके घोर पापसे लोगोंने उसे अपने नगरसे निकलवाया। लकडी और पत्थरसे उस भ्रष्टाको पीटा, वह वहांसे भाग गई। कुष्ठरोगसे कुष्ठिनी हुई और ऐसे अरिष्टसे (संकटसे) नरकोन्मुख होकर मरणको प्राप्त हुई। पापसे वह नागश्री ब्राह्मणी पांचवी अरिष्टा नामक पृथ्वीमें धूमप्रभा नामक नरकमें उत्पन्न हुई। वहां छेदन, भेदन, शूलके ऊपर आरोपण और ताडन ऐसे दुःखोंको भोगने लगी। सतरह सागर आयुतक पापोदयसे अनेक प्रकारके नारकीय दुःख भोगकर वह दुष्ट बुद्धि नागश्री वहांसे निकलकर स्वयंप्रभ नामक द्वीपमें 'दृष्टिविष' जातिका सर्प हो गई ॥ २-६ ॥ जिसकी जिह्वा चञ्चल है, जिसकी आंखें कोपसे लाल होती हैं, जो अशुभतम परिणामोंका अर्थात् कृष्णलेश्याका धारक जिसका संपूर्ण शरीर अत्यंत काला है, फणाके फूत्कारसे भयंकर, जिसका पूंछ चंचल है, जो हिंस्र और कषायोंसे भरा हुआ मानो-उत्कट-तीव्र मूर्तिमान् क्रोधही है ॥ ७-८ ॥

[मातङ्गीने अणुव्रत धारण किये] वह दृष्टिविष जातिका सर्प पुनः मरकर पापोदयसे द्वितीय नरकमें उत्पन्न हुआ। वहां उसकी आयु तीन सागरोपम थी। वह नारकी दुःखसमूहसे पीडित था। वहांकी आयु समाप्त होनेपर जब निकला तब त्रसस्थावर योनियोंमें कुछ कम दो सागरोपम

चम्पापुर्यां समाजज्ञे मातङ्गी मन्दमानसा। अन्यदोदुम्बराण्यत्तुमासदद्विपिनं च सा ॥११

समाधिगुप्तयोगीन्द्रं दृष्ट्वा तत्र शनैः शनैः।
इयाय तस्य साम्यर्णमिच्छन्ती स्वस्य शं स्वयम् ॥ १२
न प्साति वक्ति नो किंचित्स्थिरं स्थानस्थितोऽव्ययम्।
किं चिकीर्षति भो एवं भवान्पृष्टे जगौ मुनिः ॥ १३

संभ्रम्यते भवे भव्ये भविनो भयसंकुलाः। पापच्यन्ते पुनः पापात्पतिता दुर्गतौ नराः ॥
मनुष्यत्वं च दुःप्रापं प्राप्य तत्राधमा नराः। चेक्रीयन्ते न ये धर्मं ते जंगमति दुर्गतिम् ॥
वर्जयेन्मद्यमांसानि मधुजन्तुफलानि च। वर्जयेद्व्यसनं कर्म यः स धर्मप्रियो मतः ॥१६
रजनीभोजनत्यागोऽनन्तकायविवर्जनम्। अगालितजलत्यागो नानास्थानकहापनम् ॥१७
नवनीतनिवृत्तिश्च छिद्रधान्यनिवर्तनम्। द्व्यहोषितस्य तक्रस्य निवृत्तिः क्रियतामिति ॥१८

कालतक उसने भ्रमण किया। वहांसे भी निकलकर चम्पापुरीमें मंद मनवाली-अज्ञानी मातंगी हुई। किसी समय वह उदुंबर फलोंको खानेकी इच्छासे वनमें गई। वहां उसने 'समाधिगुप्त नामक मुनीश्वरको देखा और स्वयंको सुखकी प्राप्ति इनसे होगी ऐसा विचारकर वह शनैः शनैः उनके पास गई ॥ ९-१२ ॥ "भो मुने, आप एकही स्थानमें स्थिर बैठे हैं, आप कुछ न खाते हैं और न बोलते हैं। आप यहाँ क्या करना चाहते हैं?" ऐसा प्रश्न मातंगीके द्वारा किया जानेपर मुनि बोलने लगे- "हे भव्ये, संसारी प्राणी भयव्याप्त होकर भवमें-संसारमें पुनः पुनः फिरते हैं। पुनः पापोदयसे जब दुर्गतिमें पडते हैं तो वहां बारबार दुःखोंमें पचते हैं। जो अधम मनुष्य, जिसकी प्राप्ति होना कठिन है ऐसा मनुष्यपना प्राप्त करके, धर्माचरण नहीं करते हैं वे दुर्गतिमें बारबार जाते हैं। जो मद्य और मांस छोडता है, जो मधु-शहद और जिनमें त्रसजन्तु उत्पन्न होते हैं ऐसे उदुंबरादिफलोंका त्याग करता है। जो द्यूतादि व्यसन-छोडता है वह धर्मप्रिय मनुष्य है अर्थात् धर्ममें प्रेम करनेवाला पुरुष है" ॥ १३-१६ ॥ रात्रि-भोजनका त्याग, अनंतसूक्ष्मजीव जिनमें उत्पन्न होते हैं ऐसे सूरण, आलु वगैरह कंद-मूलोंका त्याग करना चाहिये। अगालित जलका त्याग-न छना हुआ पानी पीनेका त्याग, नाना स्थानकोंका त्याग-अर्थात् अनेक प्रकारके अचार जिनको संधानक-(संस्कृत भाषामें कहते हैं तथा मराठी भाषामें लोणचें कहते हैं।) मक्खन, जिनको घुन लग गई है ऐसा धान्य, तथा दो दिनका छाछ ये पदार्थ त्यागने चाहिये। पुष्पोंका भक्षण करना छोडना चाहिये, परंतु पंचपुष्पोंको छोडकर अर्थात् भिलावेका फूल, नागकेसरका पुष्प, लवंगका पुष्प इत्यादि पुष्पोंका सेवन करना अयोग्य नहीं है, क्यों कि इनका शोधन कर सेवन करना अयोग्य नहीं है। पंचोदुम्बर फलोंका त्याग करना चाहिये, क्यों कि इनको फोडनेपर अंदरसे जीव उडते हुए आखोंको दीखते हैं। ऐसी वस्तुओंका-धान्य, फल, पुष्प इत्यादिकोंका भक्षणत्याग

कुसुमादिपरित्यागः पद्मपुष्पादृते द्रुतम् । वैरेयफलसंन्यासस्त्रसजन्त्वादिरक्षणम् ॥१९
असत्यचौर्यविरतिः सुशीलस्य च रक्षणम् । उपधीनां विधानं चावधेर्धीरसुधर्मदम् ॥२०
जिनोपदिष्टसन्मार्गश्रद्धा ध्यानं च सन्मतेः । स्मृतिश्च पञ्चमन्त्राणां स्वातन्त्र्यं स्वात्मनः पुनः॥
एतत्सर्वं विधेयं हि विधिना साधुना त्वया । तदाकर्णनमात्रेणातिमात्रं मन्त्रमग्रहीत् ॥२२
पवित्राणुव्रत योग्यं मद्यमांसादिवर्जनम् । गृहीत्वा सा मृतिं प्राप मनुष्यत्वमवाप च ॥२३
चम्पायां धनवान्धन्यः सुबन्धुर्वर्तते वणिक् । वदान्यो राजमान्यश्च स्वजनैः सेवितः सदा ॥
धनदेवी प्रिया तस्य कुशला कुलपालिका । सा सुताभूत्तयोस्तन्वी दुर्गन्धाख्या विगन्धिका ॥
तत्रापरो वणिग्धन्यो धनदेवो धनच्युतः । भार्यास्याशोकदत्ताख्या पुत्रद्वयसनिस्ततः ॥२६
जिनदेवसुतः पूर्वो जिनदत्तस्तयोः परः । विद्याभ्यासं प्रकुर्वाणौ यौवनं भेजतुश्च तौ ॥२७
सुबन्धुना तदा प्रार्थि धनदेवोऽतिमानतः । दुर्गन्धाया विवाहार्थं जिनदेवेन धर्मिणा ॥२८
राजमान्यस्य तस्येत्थं वचः श्रुत्वा स संस्थितः । मौनं धृत्वेति चैवं चेद्भविता कोऽत्र वारयेत्॥

करनेसे त्रसजीवोंका रक्षण होता है और अहिंसाव्रतका पालन होता है ॥१७–१९॥ असत्य भाषण का त्याग, तथा चोरीकी त्याग कर सुशीलका रक्षण करना चाहिये अर्थात् स्वस्त्रीमें और स्वपतिमें संतोष रखना चाहिये। परिग्रहोंकी अवधिका–मर्यादाकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये, जिससे इच्छाका नियंत्रण होता है। यह पांच अणुव्रतोंका पालन धीरोंको–विवेकी लोगोंको पुण्य देनेवाला है। जिनेश्वरके कहे हुए मोक्षमार्गपर श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है। अच्छी बुद्धिका चिन्तन सम्यग्ज्ञान है तथा पंचमंत्रोंका हमेशा स्मरण करना चाहिये ये सब उपाय आत्माके स्वातंत्र्यरूप हैं अर्थात् इनके आचरणसे आत्माकी कर्मपरतंत्रता नष्ट होती है। यह सब शुभाचरण भद्र विचारवाली तुमसे विधिपूर्वक किया जावे।” इस प्रकारका उपदेश सुनकर उस मातंगीने अतिशय प्रीतिसे मंत्रका स्वीकार किया। योग्य ऐसे पवित्र अणुव्रत और मद्यमांसादिकोंका त्याग ऐसे व्रतोंका स्वीकार कर वह मातङ्गी मर गई और उसने मनुष्यपना प्राप्त किया ॥ २०–२३ ॥

[मातङ्गी दुर्गन्धा नामक कन्या हुई] चम्पानगरीमें धनवान् और पुण्यवान् सुबन्धु नामका वैश्य रहता था। वह दानी, राजमान्य और परिवारोंसे सदा सेवित था। उसकी पत्नीका नाम धनदेवी था। वह चतुर और कुलकी रक्षा करनेवाली थी। उन दोनोंको सुंदराङ्गी कन्या हुई। वह दुर्गंध शरीरवाली होनेसे दुर्गंधा नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ २४–२५ ॥ उसी नगरमें धनदेव नामक पुण्यवान् परंतु धनरहित वैश्य रहता था। इसकी भार्याका नाम अशोकदत्ता था, इसने दो पुत्रोंको जन्म दिया था। पहिले पुत्रका नाम जिनदेव और छोटे पुत्रका नाम जिनदत्त था। विद्याभ्यास करनेवाले ये दोनों पुत्र कालान्तरसे तारुण्यको प्राप्त हुए ॥ २६–२७ ॥ तब सुबन्धु श्रेष्ठीने दुर्गंधाका विवाह धर्मवान् जिनदेवके साथ करनेके लिये अतिशय आदरसे धनदेवकी प्रार्थना की। सुबंधु श्रेष्ठी

सुबन्धुना पुनः सोऽपि प्रार्थ्यमानः प्रपन्नवान् । तथेति धनदाक्षिण्याद्दाक्षिण्यं किं करोति न
जिनदेवोऽपि तच्छ्रुत्वा दध्यौ हृदि ममेदृशी । यदि जाया भवेन्नूनं दुःकर्मफलभाजिनः ॥
तद्दुर्गन्धाङ्गसंगेन यौवनं निष्फलं मम । तदा स्यात्कर्मपाकेनाजाकण्ठस्तनवल्लघु ॥२२

दुर्गन्धायाः पिता श्रीमान्मान्यो राज्ञां सुमन्त्रवित् ।
तस्यान्यथा वचः कर्तुं न क्षमो जनको मम ॥२३

दुर्गन्धा दुर्भगा दुष्टा दुःखिता दीनमानसा । यदि मे भविता जाया तदा भोगैरलं मम ॥
कुसंगासंगतो नृणां जीवितान्मरणं वरम् । व्याधिसंगो यथा सर्वोऽनयासंगस्तु दुःखदः ॥२५
निद्राक्षुधापरित्यक्तश्चिन्तयित्वेति निर्गतः । पितरावप्रकथ्यासौ गृहाद्यातो वनं घनम् ॥२६
समाधिगुप्तनामानं मुनिं नत्वा पुरः स्थितः । पप्रच्छ तत्र धर्मार्थं जिनदेवो विदांवरः ॥२७
जगाद वचनं योगी सावधानमनाः शृणु । धर्मः सम्यक्त्वसंशुद्धो वृषः सेव्यः शिवार्थिभिः

राजमान्य होनेसे उसका उपर्युक्त वचन सुनकर मौनसे धनदेव बैठा। यदि ऐसा होगा अर्थात् दुर्गंधाके साथ मेरे पुत्रका विवाह करनेका सुबन्धुका विचार होगा तो उसे कौन भी नहीं रोक सकेगा क्यों कि वह राजमान्य होनेसे हमारा निषेध कुछभी कार्यकारी नहीं होगा। ऐसा धनदेवने मनमें विचार किया। सुबंधुने पुनः प्रार्थना करनेपर जिनदेवके साथ दुर्गंधाका विवाह करनेके लिये धनदेव धनके प्रभावसे तयार हुआ। अपनी इच्छा न होनेपरभी उसे कबूल होना पडा। ठीकही है,कि प्रभाव चीज ऐसी है कि वह क्या नहीं करेगी? जिनदेवने भी दुर्गंधाके साथ अपना विवाह होगा ऐसी वार्ता सुनी। वह मनमें ऐसा विचार करने लगा। "यदि ऐसी दुर्गंधा कन्या मेरी स्त्री होगी तो उस दुर्गन्धाके शरीरसहवाससे अशुभ कर्मके फल भोगनेवाला मेरा यौवन निष्फल होगा। अशुभ कर्मोदयसे मेरा जन्म उस समय बकरीके गलस्तनके समान व्यर्थ होगा। दुर्गंधाका पिता श्रीमंत है, राजमान्य है और अतिशय चतुर है, मेरा पिता उसका वचन अन्यथा करनेके लिये समर्थ नहीं है अर्थात् सुबन्धुका वचन उसे मान्य करना पडेगा। दुर्गंधा कुरूप है, दुर्गंधसे पीडित है, दुःखी और दीन मनवाली है। यदि वह मेरी पत्नी होगी तो मेरा भोग भोगना समाप्तही हुआ। सर्व प्रकारके व्याधियोंका संसर्ग जैसा दुःखदायक होता है वैसा इस कन्याके साथ संसर्ग होना मुझे दुःखदायक होगा। कुसंगके संसर्गसे जीवित रहनेकी अपेक्षा मनुष्योंका मरना भला है।" ऐसे विचारोंसे जिनदेवको निद्रा और भूखभी नहीं लगती थी। ऐसा विचार करके वह निकल गया। मातापिताको विना पूछेही वह घरसे निबिड वनमें चला गया। वहां समाधिगुप्त नामक मुनिको नमस्कार करके उनके आगे वह बैठ गया। विद्वान जिनदेवने वहा मुनिराजको धर्मका अर्थ पूछा, मुनिने सावधान चित्त होकर तू धर्मका अर्थ सुन ऐसा कहा–वे कहने लगे कि " सम्यक्त्वसे धर्मको पवित्रता प्राप्त होनी है इसलिये सम्यक्त्वसहित (जीवादिक तत्त्वोंकी श्रद्धासे सहित) धर्म मुक्तिसुखेच्छुकोंके द्वारा सेवन किया जाता

षड्जीवरक्षणं धर्मः सत्यं धर्मोऽभिधीयते । परस्वपरदारादित्यागो धर्मो विशुद्धितः ॥३९
वृषेण प्राप्यते वस्तु यत्सारं सातकारणम् । ज्ञात्वेति मानसे धर्मं धत्स्व धीमन्सुधाकरम् ॥४०
श्रुत्वेति जातवैराग्यो जिनदेवो दधौ व्रतम् । संसारसागरं तर्तुं पोतप्रख्यं भवापहम् ॥४१
सुबन्धुनाग्रहाद्दत्ता दुर्गन्धा नामतो गुणात् । विवाहविधिना तस्मै जिनदत्ताय सत्वरम् ॥४२
जिनदत्तो नवोढां तां गाढालिङ्गनवाञ्छया । निनाय वेश्म चात्मीयं तौ शय्यायां स्थितौ पुनः

तदा देहोत्थदौर्गन्ध्यं तस्याः स सोढुमक्षमः ।
प्रातः पलायितः क्वापि संपृच्छ्य पितरौ पुनः ॥४४
दुर्गन्धा दुःखिता चित्ते निनिन्द स्वं वियोगिनी ।
हा हा विधे मया पापं किमकारि कृपोज्झितम् ॥४५

जननी तं गतं मत्वा तां निनाय निजे गृहे । वत्से धर्मे मतिं धत्स्वेत्युपदेशप्रदायिका ॥४६
तद्देहदुष्टगन्धेन बन्धूनां दुःखिताभवत् । ततस्तैः सा पृथग्धाम्नि रक्षिता दुःखिता सदा ॥

है। पंचस्थावर-कायजीव और एक त्रसकाय जीव मिलकर षट्कायजीव कहे जाते हैं। इन जीवोंके रक्षणको धर्म कहते हैं। अहिंसाके समान सत्य धर्म है, परधन, परस्त्री, वेश्या आदिकोंका त्याग करना विशुद्धिके कारण होनेसे धर्म हैं। और जो सारभूत तथा सुखका कारण है ऐसी वस्तु धर्मसे प्राप्त होती है। ऐसा जानकर हे विद्वन्, तू मनमें अमृतकी खानतुल्य धर्मको धारण कर। " मुनिने कहा हुआ धर्मका स्वरूप सुनकर जिसे वैराग्य हुआ है ऐसे जिनदेवने संसारसागर तीरनेके लिये नौकाके समान तथा संसारका नाश करनेवाला व्रत धारण किया अर्थात् वह मुनि हो गया। ॥ ३८-४१ ॥

[दुर्गन्धाको छोडकर उसका पति चला गया] सुबंधुने आग्रह करके नामसे और गुणसेभी दुर्गंधा कन्या विवाहविधिसे उस जिनदत्तको सत्वर दी। जिनदत्त गाढालिंगनकी इच्छासे उस नूतन विवाहित दुर्गंधाको अपने घरमें ले गया। वे दोनों शय्यापर बैठे परंतु दुर्गंधाकी देहसे उत्पन्न हुई दुर्गन्धको वह सहन करनेमें असमर्थ हुआ और मातापिताको पूछकर वह प्रातःकाल वहांसे कहीं भाग गया ॥ ४२-४४ ॥

[दुर्गन्धाने सुव्रता आर्यिकाको आहार दिया] दुःखित हुई वियोगिनी दुर्गंधाने मनमें इस प्रकारसे अपनी निंदा की। "हा हा दैव ! मैंने दयारहित होकर कौनसा पातक किया ?" इधर दुर्गंधाकी माताको अपना जामात घरको छोडकर चला गया ऐसी वार्ता मालूम हुई, इस लिये वह आई और उसे उपदेश देने लगी, कि " हे बाले, धर्ममें तू अपनी बुद्धि स्थापन कर अर्थात् धर्माचरणमें अपना मन अब तू स्थिर कर " ऐसा कहकर उसे वह अपने घर ले गई ॥ ४५-४६ ॥ उसकी देहकी दुर्गंधतासे उसके बांधवोंको दुःख होने लगा तब उन्होंने एक भिन्न घरमें उस

अन्यदा क्षान्तिकायुक्ता सुव्रतैः सुव्रता गृहम् । तत्पितुः प्राप दुर्गन्धा तत्र गत्वा च तां नता ॥
तत्रार्यिकां प्रतिगृह्याहारं ददौ स सोज्ज्वलम् । आर्यिका तं च जग्राह जुगुप्सोज्झितमानसा ॥
समभावेन सा लात्वाहारं तत्र क्षणं स्थिता ।
क्षान्तिकाभ्यां समक्षाभ्यां सक्षमाभ्यां च क्षान्तिका ॥५०
सा ते संवीक्ष्य पप्रच्छ के इमे यौवनोन्नते । क्षान्तिके दीक्षिते केन हेतुना वद चार्यिके ॥५१
सावोचत्प्रथमे नाके विमला सुप्रभाभिधे । सौधर्मेशस्य चाभूतां प्राग्भवे योषिताविमे ॥५२
पत्या सहान्यदा देव्यौ द्वीपे नन्दीश्वराभिधे । जग्मतुः सोत्सवे देवान्संपूजयितुमुद्यते ॥५३
नत्वा जिनेन्द्रमूर्तीनां पादपद्मान्प्रमोदिते । देव्यौ दिव्याम्बुगन्धाद्यैः पूजयामासतुः परे ॥५४
गीतनृत्यादिकं कृत्वा प्रतिज्ञां प्रतिचक्रतुः । प्राप्य मर्त्यभवं नूनं करिष्यावस्तपोऽप्यतः ॥५५
अयोध्याधिपतेरत्र श्रीषेणस्य ततश्च्युते । श्रीकान्तावल्लभायां ते बभूवतुरिमे सुते ॥५६
हरिषेणाथ श्रीषेणा क्षितौ ख्यातिं गते इमे । यौवनालंकृते रम्यरूपे मदनसुन्दरे ॥५७
सयौवने इमे वीक्ष्य स्वयंवरविधिं नृपः । चकल्पे कल्पनातीतमहोत्सवशतावृतः ॥५८

दुःखित दुर्गंधाकी रक्षा की ॥ ४७ ॥ किसी समय उत्तमव्रतोंसे परिपूर्ण सुव्रता नामकी आर्यिका दुर्गंधाके पिताके घरमें आई तब वहां जाकर दुर्गंधाने आर्यिकाको वंदन किया। उसने आर्यिकाको पडगाह कर उसे उज्ज्वल आहार दिया। आर्यिकाने जुगुप्सा छोडकर आहार ग्रहण किया। क्षमा-धारण करनेवाली प्रत्यक्ष दो आर्यिकाओंके साथ वह सुव्रता आर्यिका आहारके अनंतर कुछ कालतक वहां ठहर गयी ॥ ४८–५० ॥

[दो आर्यिकाओंकी पूर्वभवकथा] दुर्गंधाने तारुण्यसे उन्नत दो आर्यिकाओंको देखकर पूछा कि इन दो आर्यिकाओंने किस हेतुसे दीक्षा ली है ? उनका वृत्त मुझे कहो ? तब आर्यिकाने इस प्रकारसे उनका वृत्त कहा " पूर्वभवमें पहिले स्वर्गमें सौधर्मेन्द्रकी विमला और सुप्रभा नामकी ये दोनों पत्नी हुई थीं। किसी समय सौधर्मेन्द्रके साथ ये दोनों देवियां नन्दीश्वरनामक द्वीपमें आनंदसे जिनमूर्तियोंकी पूजा करनेके लिये उद्युक्त हुईं। जिनेन्द्रमूर्तियोंके चरण–कमलोंको नमस्कार कर वे अतिशय हर्षित हुईं। वे उत्तम देवियां दिव्य जलगंधादिक द्रव्योंसे जिनमूर्तियोंको पूजने लगीं। गीतनृत्यादिक करके उन दोनों देवियोंने ऐसी प्रतिज्ञा की—" इस भवके अंनतर मनुष्यभव प्राप्त कर निश्चयसे हम तप करेंगी " देवलोकका आयुष्य समाप्त होनेपर वे वहांसे च्युत हुईं, और अयोध्यानगरीके स्वामी श्रीषेणराजा तथा रानी श्रीकान्तामें वे दोनों कन्यायें हो गईं। हरिषेणा और श्रीषेणा इस नामसे वे दोनों कन्यायें इस भूलोकमें ख्यातिको प्राप्त हुईं। यौवनसे भूषित, रमणीय रूपवाली ये कन्यायें मदनावस्थासे सुंदर दीखती थीं। तारुण्ययुक्त अपनी कन्याओंको देखकर कल्पनातीत सैंकडो महोत्सवोंके साथ राजाने स्वयंवरविधि किया ॥ ५१—५८ ॥ उस समय स्वयं-

मण्डपे मण्डिता भूपा मण्डनैर्मङ्गलावृताः । समाहूताः समायातास्तस्थुर्देशान्तरात्तदा ॥५९
कमलाभिधया वेत्रधारिण्या ते समागते । मण्डपे वीक्ष्य भूपालाञ्जातिस्मृतिमवापतुः ॥६०
स्मृत्वा ते प्राग्भवं पित्रोः कथयित्वा निजान्भवान् ।
निवर्त्य सर्वभूपालाञ्जग्मतुस्ते वनं घनम् ॥६१
ज्ञानसागरनामानं मुनिं नत्वा सुसंयमम् । ययाचाते यतः स्त्रीणां स्त्रीत्वं नैव प्रजायते ॥६२
प्राव्राजिष्टां ततस्ते द्वे संचरन्त्याविहागते । इति तद्वचनं श्रुत्वा व्यरंसीत्सुकुमारिका ॥६३
अहो इमे महाभाग्ये महारूपे सुकोमले । राजपुत्र्यौ च संत्यज्य भोगान् धत्तः स संयमम् ॥
दुर्गन्धाहं सदादुःखा दुर्देहा सुकुमारिका । विषयेच्छां न मुञ्चामि तृष्णाहो मे गरीयसी ॥
इत्युक्त्वांह्री नता तस्याः प्रार्थयन्ती सुसंयमम् । प्रबोध्य जनकादीन्सा जग्राह परमं तपः ॥
तपस्तीव्रं तपन्ती सा सहमाना परीषहान् । विजहार महीं भव्या तया क्षान्तिकया समम् ॥
एकदैक्षत वेश्यां च वसन्ताद्यन्तसेनकाम् । सा सुन्दरां वनं प्राप्तामावृतां पञ्चभिर्विटैः ॥६८
तां तादृशीं समालोक्य भूयादीदृग्विधं मम । निदानमकरोद्बाला दुर्गन्धा बन्धुरेति च ॥६९

वर–मण्डपमें अलंकारोंसे सुशोभित और मंगलोंसे युक्त ऐसे राजा आमंत्रण देनेसे देशान्तरसे आये। कमला नामक वेत्रधारिणीके साथ वे दोनों कन्यायें मण्डपमें आईं। वहां राजाओंको देखकर उन दोनोंको जातिस्मरण हुआ ॥ ५९–६० ॥ पूर्वभवका स्मरण करके उन्होंने अपने पूर्वभव माता-पिताओंको कहे। सर्व राजाओंको अपने स्थानमें राजाने लौटा दिया; तथा वे दोनों कन्यायें निबिड वनमें गईं। वहां उन्होंने ज्ञानसागर नामक मुनीश्वरको नमस्कार कर जिससे स्त्रियोंको स्त्रीत्व प्राप्त नहीं होगा ऐसे सुसंयम–आर्यिका–व्रत दीक्षाकी याचना की। तदनन्तर वे दोनों उनके पास दीक्षित हुईं और विहार करती हुई यहां आयी हैं" ऐसा आर्यिकाका वचन सुनकर सुकुमारिका दुर्गन्धा विरक्त हुई ॥ ६१–६३ ॥

[दुर्गंधाका दीक्षाग्रहण] "अहो ये दो राजकन्यायें महाभाग्यवती, महासुंदरी और अतिशय कोमल हैं, तो भी भोगोंका त्याग कर संयमका पालन कर रही हैं और मैं सुकुमारिका दुर्गंधा हूं। हमेशा दुःखिनी हूं। मेरा देह खराब है तोभी मैं विषयेच्छा नहीं छोडती हूं। अहो मेरी तृष्णा बलवत्तर है" ऐसा बोलकर उस आर्यिकाके चरणोंको उसने नमस्कार किया। उससे उसने संयम धारण करनेकी इच्छा प्रगट की। तदनंतर उसने अपने पिताभाता आदिकोंको समझाकर उत्तम तपका स्वीकार किया। तीव्र तपश्चरण करती हुई तथा क्षुधादि परीषहोंको सहन करनेवाली भव्या दुर्गंधाने सुव्रता आर्यिकाके साथ पृथ्वीपर विहार किया ॥ ६४–६७ ॥

[दुर्विचारोंकी निन्दा] किसी समय उसने पांच जारपुरुषोंके साथ वनमें आई हुई वसन्तसेना नामक सुंदर वेश्याको देखा। उसको देखकर मुझे भी ऐसी परिस्थिति प्राप्त होवे ऐसा उस

निवृत्ताचिन्तयद्धिङ् मे मनोवृत्तिं सुखातिगाम् । मिथ्यास्तु दुःकृतं मेऽद्य संचितं दुष्टचेतसा ॥
कृत्वैवं परमं घोरं तपः संन्यस्य सा क्रमात् । मुक्त्वा प्राणान्गता स्वर्गेऽच्युते च्युतशरीरिका
सोमभूतिचरस्याभूत्सुरस्य वरवल्लभा । देवी तु पञ्चपञ्चाशत्पल्यायुःस्थितिसंगिनी ॥७२
सा सुरी ते सुराः सर्वे संचरन्तः सुखेच्छया । चिरं तत्र स्थिता भेजुः प्रवीचारं च मानसम् ॥
अथ हास्तिपुरेशस्य श्रीपाण्डोः पृथिवीपतेः । कुन्त्यां मद्र्यां च ते तस्माच्च्युताः सत्पुत्रतामिताः
सोमदत्तो दरातीतो यः सोऽभूस्त्वं युधिष्ठिरः । सोमिलो योऽभवद्भ्राता सोऽभूद्भीमो भयातिगः
सोमभूतिरभूद्भ्रात्योऽर्जुनो जितविपक्षकाः । त्रिजगत्प्रथिता यूयं भ्रातरस्त्रय उन्नताः ॥७६
यो धनश्रीचरः सोऽभून्मद्रीजो नकुलो महान् । यो मित्रश्रीचरः सोयं सहदेवस्तवानुजः ॥
सुकुमारीचरा यासीत्सुता काम्पिल्यभूपतेः । सुता दृढरथायाश्च द्रौपदी द्रुपदस्य सा ॥७८

अज्ञानीने निदान किया अर्थात् मैं दुर्गंधा और असुंदर हूं, मुझे इस वेश्याके समान सौन्दर्य और वैभव प्राप्त हो ऐसा विचार उस अज्ञानी आर्यिकाने किया परंतु उस विचारसे अपनी मनोवृत्तिको जो कि सच्चे सुखसे दूर थी, धिक्कारा। मैंने जो दुष्ट मनसे पाप संचित किया है। वह मेरा दुष्कृत मिथ्या हो। इस प्रकार परम घोर तप उसने किया। तदनंतर आयुष्य समाप्तिके समय क्रमसे उसने कषाय और शरीरका त्याग किया। शरीर छूटनेसे प्राणोंको छोडकर वह अच्युत स्वर्गमें उत्पन्न हुई। ॥ ६८-७१ ॥

[दुर्गंधा अच्युत स्वर्गमें देवी हुई] जो पूर्वभवमें सोमभूति ब्राह्मण था ऐसे अच्युत स्वर्गके सामानिक देवकी वह दुगधा मरकर अतिशय प्रिय देवी हुई। उसकी आयु पचपन पल्यकी थी। उस स्वर्गमें स्थित वह देवांगना और वे पांच सामानिक देव सुखेच्छासे विहार करते हुए मानसिक मैथुन सुख भोगते थे ॥ ७२-७३ ॥

[देवांगना द्रौपदी हुई] तदनंतर वे सोमदत्तादिक अच्युत स्वर्गसे च्युत होकर हस्तिनापुर नगरके स्वामी राजा पाण्डुकी कुन्ती और मद्री रानीमें सत्पुत्रत्वको प्राप्त हुए। पूर्वभवमें जो निर्भय सोमदत्त ब्राह्मण था वह तू इस भवमें युधिष्ठिर हुआ है। हे युधिष्ठिर, पूर्वभवमें जो सोमिल ब्राह्मण तेरा भाई था वह अब तेरा निर्भय भीम नामक भाई हुआ है। अन्य सोमभूति ब्राह्मण जिसने शत्रुओंको जीता है ऐसा अर्जुन नामक तेरा भाई हुआ है। आप तीनों भाई त्रैलोक्यमें प्रसिद्ध और उन्नतिशाली हैं। जो पूर्वभवमें धनश्री ब्राह्मणी थी वह मद्री रानीसे उत्पन्न हुआ महान् शूर नकुल है। जो पूर्वभवमें मित्रश्री ब्राह्मणी थी वह अब तेरा भाई सहदेव हुआ है। जो पूर्वभवमें सुकुमारी थी (दुर्गंधा) वह कांपिल्य नगरके राजा द्रुपद और रानी दृढरथा इन दोनोंकी पुत्री द्रौपदी हुई ॥ ७४-७८ ॥

---

१ ब निर्वृता।

अनया च कृतं श्रेयः पूर्वजन्मनि निर्मलम् । समित्या च तथा गुप्त्या व्रतैश्च वरभावतः ॥
तत्प्रभावादलं जाता जातरूपसमद्युतिः । भोगोपभोगभूयिष्ठा द्रौपदीयमभूद्भुवि ॥८०
दृष्ट्वा वसन्तसेनाख्यां पण्यपत्नीं सुरूपिणीम् । यदर्जितं त्वया पापं पूर्वजन्मनि दुष्करम् ॥८१
तत्प्रभावादियं जातापकीर्तिर्दुस्तरा भुवि । द्रौपद्याः पञ्चभर्तृत्वसंभवा लोकहास्यदा ॥८२
मनसा वचसा वाचार्जितं यत्कर्म जन्तुना । तत्फलत्येव तादृक्षमुप्तं बीजं यथा भुवि ॥८३
अतो दुष्कर्म संकृत्य कर्तव्यः कृतिना वृषः । यत्प्रभावाद्भवत्येव सातं संसारसंभवम् ॥८४
यच्चारि पुरानेन चारित्रं परमोज्ज्वलम् । तस्माद्युधिष्ठिरस्यास्य यशोऽभूत्सत्यसंभवम् ॥८५
अन्वभावि च भीमेन वैयावृत्त्यं पुराभवे । तत्प्रभावदयं जज्ञे बलिष्ठो वैरिदुर्जयः ॥८६
पार्थेन प्रथितं पूर्वं यच्चरित्रं पवित्रकम् । तत्प्रभावदयं जातो धानुष्को धन्ववेदवित् ॥८७
नागश्रीस्नेहतः स्निग्धोऽभूद्द्रौपद्यां धनंजयः । अतिस्नेहस्तु जन्तूनां जायते पूर्वसंभवः ॥८८
ब्राह्मण्यौ यत्पुरा कृत्वा कर्मनिर्बर्हणक्षमम् । तपश्च चेरतुश्चित्रं चरित्रं दृक्समुज्ज्वलम् ॥८९
तत्प्रभावादिमौ जातौ भ्रातरौ भवतामिह । प्रसिद्धौ शुद्धनकुलसहदेवौ मनोहरौ ॥९०

इस द्रौपदीने पूर्वजन्ममें समितियोंसे, गुप्तियोंसे और व्रतोंसे तथा उत्तम विचारोंसे निर्मल पुण्य किया था। उसके प्रभावसे यह द्रौपदी सुवर्णके समान अतिशय कान्तिवाली हुई तथा भूतलमें विपुल भोगोपभोगसे युक्त हुई है। हे द्रौपदी, पूर्वजन्ममें सौन्दर्यवती वसन्तसेना वेश्याको देखकर जो दुर्निवार पापबंध तूने कमाया है उसके उदयसे इस भूतलमें तेरी दुस्तर अपकीर्ति हुई है। द्रौपदी पांच पतिवाली हो गई ऐसी लोकमें उपहास उत्पन्न करनेवाली अपकीर्ति तेरी हुई है। जैसा बीज बोया जाता है, वैसा फल उत्पन्न होता है। वैसे मनसे, वचनसे और शरीरसे प्राणीने जो कर्म प्राप्त किया है वह फल देताही है अर्थात् अशुभ कर्म बांधनेसे अशुभ फल और शुभ कर्म बांधनेसे शुभ फल मिलता है। इस लिये अशुभ कर्म तोडकर बुद्धिमानोंको धर्म-पुण्य कार्य करना योग्य है। क्योंकि उसके प्रभावसे सांसारिक सुख प्राप्त होता ही है ॥ ७९-८४ ॥

[युधिष्ठिरादिकोंमें विशिष्टता प्राप्त होनेके हेतु] इस युधिष्ठिरने पूर्वजन्ममें जो अतिशय निर्मल चारित्र पाला था उसके सत्यभाषणरूप फलसे इसका यश प्रगट हुआ। पूर्वभवमें इस भीमने वैयावृत्य तपका अनुभव किया उसके प्रभावसे यह भीम वैरिओंके द्वारा अजेय और बलिष्ठ हुआ है। इस अर्जुनने पूर्वभवमें जो पवित्र चारित्र प्रसिद्ध रीतीसे पाला था उसके प्रभावसे यह धनुर्वेदज्ञ-धनुर्धारी वीर हुआ। नागश्रीके स्नेहसे द्रौपदीमें अर्जुन स्नेहालु हुआ। प्राणियोंको जो अतिशय स्नेह उत्पन्न होता है वह सब पूर्वभवसे उत्पन्न होता है ॥ ८५-८८ ॥ धनश्री और मित्रश्री ब्राह्मणियोंने जो पूर्वकालमें कर्म नष्ट करनेमें समर्थ तप किया था तथा जो सम्यग्दर्शनसे उज्ज्वल चारित्र पाला था उनके प्रभावसे ये दोनों यहां इस भवमें आपके मनोहर और प्रसिद्ध शुद्ध नकुल तथा सहदेव

इति पूर्वभवान्भव्या भाविताञ्जिननेमिना । निशम्य पाण्डवाश्चण्डा बभूवुः शान्तमानसाः ॥

इति शुभपरिभावास्त्यक्तसंसारदावाः, अधिगतजिनरावा मुक्तवैकारहावाः ।
वरपरिणतिपावाः कर्मकेदारलावाः, जिनपतिकृतहावाः सन्तु सिद्धयै सुधावाः ॥९२

कृत्वा ये सुचिरं तपो द्विजभवे लात्वा शिवं शोभनम्
हित्वा दुष्कृतसंचयं वरदिवि प्राप्यामरत्वं शुभम् ।
भुक्त्वा तत्र सुसातमुत्कटरसं प्राप्ता नरत्वं नृपाः
हत्वा वैरिगणं जयन्ति भुवने ते पाण्डवाः पञ्च वै ॥९३

दुर्योध्यान्युधि कौरवान्परबलान्दुर्योधनादीन्नृपान्
सान्त्वा संगरशालिनः सुरसमाः सद्यः श्रितास्ते हरिम् ।
तत्साहाय्यमुपाश्रिता वरसरिद्वाहं सुतर्तुं क्षमाः
ये संतीर्य महाम्बुधिं बुधनुताः प्रापुः परां द्रौपदीम् ॥९४

इति श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि भट्टारकश्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपाल-
साहाय्यसापेक्षे पाण्डवद्रौपदीभवान्तरवर्णनं नाम
चतुर्विंशतितमं पर्व ॥ २४ ॥

नामके भाई हुए हैं ॥ ८९-९० ॥ इस प्रकारसे नेमिजिनेश्वरने कहे हुए पूर्वभवोंको सुनकर वे चण्ड पाण्डव शान्तचित्त हुए ॥ ९१ ॥ इस प्रकारसे जिन्होंने शुभ परिणाम धारण किये हैं, जिन्होंने संसाररूपी दावाग्निका-वनाग्निका त्याग किया है, जिन्होंने नेमिप्रभुके मुखसे दिव्यध्वनि-द्वारा धर्मोपदेश सुना है, जिन्होंने कामक्रोधादिक विकार-भावोंको जलाञ्जलि दे दी है, जिन्होंने श्रेष्ठ शुद्ध परिणाम धारण कर स्वपरोंको पवित्र किया है, जो कर्मरूपी खेतको मूलसे काटनेवाले हैं तथा जिनपति नेमिप्रभुमें जिनकी भक्ति है ऐसे वे पाण्डव मुक्तिप्राप्तिके लिये हमें अमृतके समान होवें ॥ ९२ ॥ जिन्होंने ब्राह्मणपर्यायमें दीर्घकाल तक तप करके सुंदर पुण्यका संचय किया, जिन्होंने पापसमूहको छोडकर स्वर्गमें (अच्युतमें) शुभ अमरपना-सामानिकदेवपद प्राप्त किया। जिसमें अतिशय आल्हादक स्वाद है ऐसा उत्तम स्वर्गसुख भोग करके जिन्होंने मनुष्य-पना प्राप्त किया। ऐसे वे पांच राजा-पाण्डव इस भूतलपर शत्रुसमूहको मारकर निश्चयसे सर्वो-त्कृष्ट जयको प्राप्त हुए हैं ॥ ९३ ॥ जिनके साथ युद्ध करना कठिन था, जिनके पास उत्कृष्ट सैन्य था अथवा जिनमें परबल विशाल सामर्थ्य था, ऐसे दुर्योधनादिक राजाओंको युद्धमें शोभनेवाले जिन्होंने (पाण्डवोंने) शान्त किया। जो देवके समान थे और शीघ्र जिन्होंने श्रीकृष्णका आश्रय-पक्ष लिया था। श्रीकृष्णका साहाय्य प्राप्त कर जो श्रेष्ठ नदीसमूहोंको धारण करनेवाले लवणोद समुद्रको तीरनेके लिये समर्थ हुए तथा देव वा विद्वान् जिनको नम्र हुए हैं, जिन्होंने उत्तम द्रौपदीकी

। पञ्चविंशतितमं पर्व ।

शुभचन्द्राश्रितं पार्श्वं श्रीपालं पालिताङ्गिनम् । नंनमीमि सुपार्श्वस्थभव्यवर्गं सुपार्श्वगम् ॥१
अथ ते पाण्डवा नत्वा नेमिं नम्रनरामरम् । विज्ञप्तिं चक्रिरे कृत्वा पाणिपद्मान्स्वमूर्धनि ॥२
ज्वलद्दुःखमहादाहे देहव्यूहमहीरुहे । करालकालगहने संशुष्यद्धिषणाजले ॥३
नानादुर्णयदुर्मार्गदुर्गमे भयदे नृणाम् । अनेकक्रूरदुःकर्मपाकसत्वे चरज्जने ॥४
दुष्टभावबिले भीमे संसारविपिने जनाः । बंभ्रम्यते भयत्रस्ता विना त्वच्छरणं विभो ॥५
नानाजन्मजलौघेन लङ्घिताशासमूहके । क्लेशोर्मिजालसंकीर्णे नानादुःकर्मवाडवे ॥६

प्राप्ति की वे पाण्डव इस भूतलमें उत्तम विजयको प्राप्त होवें ॥ ९४ ॥

श्रीब्रह्म श्रीपालकी साहाय्यतासे श्रीभट्टारक शुभचंद्रजीने रचे हुए भारत नामक
पाण्डवपुराणमें पाण्डव और द्रौपदीके भवान्तरोंका वर्णन करनेवाला
चौवीसवां पर्व समाप्त हुआ ॥ २४ ॥

[पच्चीसवां पर्व]

शुभचन्द्राश्रित उत्तम चंद्रने अर्थात् पौर्णिमाके चन्द्रदेवने जिनका आश्रय लिया है अथवा शुभचन्द्र भट्टारकजीने जिनका आश्रय लिया है। अथवा पुण्यकर्मरूपी चन्द्रने जिनका आश्रय लिया है, जो श्रीपाल-समवसरणादि-लक्ष्मीका पालन करते हैं, जिन्होंने सन्मार्ग दिखाकर प्राणियोंको पालन किया है, जिनके उत्तम पक्षमें-स्याद्वादरूप अहिंसा-धर्ममें भव्यजन रहे हैं, जो अपने उत्तम पार्श्वोंमें विद्यमान हैं अर्थात् स्याद्वाद, अहिंसा, परिग्रहत्याग, रत्नत्रय इत्यादि धर्मके पार्श्वोंमें-विभागोंमें हमेशा रहते हैं, ऐसे श्रीपार्श्वनाथ जिनेश्वरको मैं बारबार नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

[नेमिप्रभुसे पाण्डव-दीक्षाग्रहण] भववर्णन सुननेके अनंतर जिनको मनुष्य और देव नम्र हुए हैं ऐसे नेमिभगवानको नमस्कार कर तथा हस्तकमलोंको अपने मस्तकपर रखकर पाण्डव विज्ञप्ति करने लगे ॥ २ ॥ जिसमें प्रज्वलित दुःखरूपी महाज्वालायें इतस्ततः फैली हैं, जिसमें देहोंके समूहरूपी वृक्ष उत्पन्न हुए हैं, जो भयंकर मृत्युरूपी गुहासे युक्त है। जिसमें बुद्धिरूपी जल सूखता है, नाना कुमतोंके आचारमार्गोंसे जो दुर्गम हुआ है, मनुष्योंको जो भयंकर है, हिंसादिक अनेक दुष्कर्मही जिसमें क्रूर श्वापद हैं, जिसमें लोग घूम रहे हैं, दुष्ट परिणामरूपी बिलोंसे जो युक्त है ऐसे भयंकर संसाररूपी जंगलमें भयपीडित हुए सर्व जन हे विभो, संरक्षक आपके विना वारंवार भ्रमण कर रहे हैं ॥ ३-५ ॥ अनेक गतियोंमें जन्मरूपी जलप्रवाहसे जिसने दिशाओंका उल्लंघन किया है, जो अनेक दुःखरूप तरंगसमूहोंसे भरा हुआ है, और अनेक दुष्टकर्मरूपी वडवानल जिसमें हैं,

प्रोद्भूताद्भुतदुर्भावविसारिविसरान्तरे । भवाम्बुधौ जनानां त्वं नावायसे च तारणे ॥७
भवान्धकूपतो दत्त्वा धर्महस्तावलम्बनम् । अस्मानुद्धर धर्मेश पतितान्पापकर्मतः ॥८
दक्ष क्षिप्रेण सद्दीक्षां देवासम्यं शुभावह । त्वत्प्रसादेन देवेश वयं लिप्सामहे शिवम् ॥९
दत्त्वा संसारकान्तारे वृषाख्यसामवायिकम् । अस्मान्प्रापय वै क्षिप्रं मोक्षक्षेत्रं त्वमद्य भोः ॥१०
इति संप्रार्थ्य भूमीशा जिनं दीक्षासमुद्यताः । ददुः पुत्राय सद्राज्यं प्राज्यं भूरिनरैः स्तुतम् ॥
बाह्यान्दशविधाञ्शीघ्रं ग्रहानिव हतात्मनः । क्षेत्रवास्तुहिरण्यादींस्तत्यजुस्ते परिग्रहान् ॥१२
मिथ्यात्ववेदरागांश्च षड्हास्यादीन्सुपाण्डवाः । कषायानत्यजंश्चित्ताच्चतुरोऽभ्यन्तरोपधीन् ॥
जिनाज्ञया समुन्मूल्य चञ्चूर्यान्कचसंचयान् । त्रयोदशविधं वृत्तं जगृहुः पाण्डुनन्दनाः ॥
राजीमत्यार्यिकाभ्यर्णे कुन्ती हित्वा सुकुन्तलान् । सुभद्रया च द्रौपद्या संयमं परमग्रहीत् ॥
अन्ये भूपास्तथा वध्वो भूरिशोऽन्याः सुसंयमम् । जगृहुर्भावतो भव्या भवभीता भयापहाः ॥
युधिष्ठिरो गरिष्ठोऽथ विशिष्टोऽनिष्टवर्जितः । निष्ठुरं मोहमल्लं हि जिगाय जगतां गुरुः ॥१७

उत्पन्न हुए आश्चर्यकारक अशुभ परिणामरूपी मत्स्योंका समूह जिसमें हैं, ऐसे भवसमुद्रमें हे प्रभो लोगोंको तारनेके लिये आप नौकाके समान है ॥ ६–७ ॥ हे प्रभो, हम पापकर्मसे संसाररूपी अंधकारमय कूपमें पडे हैं, हे धर्मके स्वामिन्, आप हमें धर्महस्तका आश्रय देकर हमारा उद्धार करें। हे चतुर प्रभो, हमारा शुभ कार्य करनेवाली उत्तम दीक्षा हमें आप दीजिये। हे देवोंके ईश, आपकी कृपासे हम मोक्षको चाहते हैं ॥ ८–९ ॥ हे प्रभो, इस संसाररूपवनमें आज धर्मका साहाय्य देकर हम लोगोंको आप शीघ्र मुक्तिक्षेत्रको पोहोंचा दो ॥ १० ॥ उपर्युक्त प्रकारसे दीक्षा लेनेके लिये उद्यत हुए पाण्डवोंने प्रभुको विज्ञप्ति की। उन्होंने अनेक मनुष्योंसे प्रशंसनीय उत्तम नीतियुक्त राज्य अपने पुत्रको दिया ॥ ११ ॥ मिथ्यात्व, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद हास्य, रति, अरति, शोक, भय-जुगुप्सा तथा क्रोध, मान, माया और लोभ ऐसे चार कषाय ये सब अन्तरंग चौदह परिग्रह हैं, नेमिप्रभुकी आज्ञासे इनको नष्ट कर तथा केश-समूहको (मूंछे, दाढी और मस्तकके केशोंका) लोंच करके पाण्डवोंने पांच महाव्रत, तीन गुप्तियां और पांच समितियां ऐसा तेरह प्रकारका चारित्र धारण किया ॥ १२–१४ ॥

[कुन्त्यादिकोंका दीक्षा–ग्रहण] कुन्तीमाताने सुभद्रा और द्रौपदीके साथ राजीमति आर्यिकाके पास जाकर केशलोंच किया और आर्यिकाओंका उत्तम संयम धारण किया ॥ १५ ॥ अन्य राजगणने तथा अन्य बहुत स्त्रियोंने जो कि संसारसे भययुक्त और संयमके भयसे दूर तथा भव्य थे भावसे–मनःपूर्वक उत्तम संयमग्रहण किया ॥ १६ ॥ विशिष्ट निर्मल परिणामवाले अतएव गरिष्ठ–श्रेष्ठ, अनिष्ट परिणामोंसे रहित युधिष्ठिर मुनिराजने निष्ठुर मोहमल्लको जीत लिया और

भवारिसंगमे भीमः पापभीतो भयच्युतः । बिभेद पूर्ववद्भव्यो भावुको भव्यसंपदाम् ॥१८
धनंजयो दधौ चित्ते मुक्तिवधूं सुबन्धुराम् । आराध्याराधनां धीमान्धृत्या सह समुद्धुरः ॥
माद्रेयौ निद्रया मुक्तौ द्रव्यपर्यायवेदकौ । द्रव्योपाधिपरित्यक्तौ चेरतुश्चरणं चिरम् ॥२०
महाव्रतानि पञ्चैव तथा समितयः पराः । पञ्चेन्द्रियनिरोधाश्च परमावश्यकानि षट् ॥२१
लोचोऽचेलत्वमस्नानं तथा भूशयनं महत् । अदन्तधावनं चैव स्थितिभुक्त्येकभक्तके ॥२२
अमून्मूलगुणान्मूलान्समीयुः समनोन्मुखाः । महामत्या महान्तस्ते मुनयः पञ्च पाण्डवाः ॥
नानोत्तरगुणान्भव्या भावयन्तः सुधर्मिणः । दधुर्ध्यानं सुधर्माख्यं सुधीरास्ते तपोधनाः ॥
तिसृभिर्गुप्तिभिर्गुप्ता गुप्तात्मानः सुगौरवाः । गुणाग्रण्यः सुगायन्ति द्वादशाङ्गं मुनीश्वराः ॥
स्ववीर्यं प्रकटीकृत्य विकटाः संकटोज्झिताः । विकटं निकटे तस्य नेमेश्चेरुः परं तपः ॥२६

वे जगतके गुरु–मान्य हो गये ॥ १७ ॥ पापसे डरनेवाले, भयकर्मसे रहित अर्थात् मुनिव्रत पालनेमें सिंहवृत्ति धारण करनेवाले, कल्याण करनेवाली संपत्तिको–रत्नत्रयको प्राप्त करनेवाले भव्य ऐसे भीम मुनिराज संसाररूप शत्रुकी संगतिके लिये भयंकर थे अर्थात् संसार–शत्रुका नाश करनेवाले थे। उन्होंने पूर्ववत् गृहस्थावस्थामें जैसे शत्रुओंको जीता था अब मुनिअवस्थामें उन्होंने मोहरूप शत्रुको जीत लिया ॥ १८ ॥ धीमान्–निपुण, समुध्दुर–मोहकी धुराको अपने कंधेपरसे हटानेवाले धनंजय मुनिराजने सम्यग्दर्शनादि चार आराधनाओंकी आराधना करके अतिशय सुंदरी ऐसी मुक्तिवधूको संतोषके साथ अपने मनमें धारण किया ॥ १९ ॥ मद्रीके पुत्र नकुल और सहदेव ये दोनों मुनिराज निद्रा स्नेहादि प्रमादोंसे रहित होकर जीवादि द्रव्योंके गुण और पर्यायोंके स्वरूप जानने लगे । वस्त्रादि बाह्य परिग्रहके त्यागी होकर उन्होंने दीर्घकाल तक तपश्चरण किया ॥ २० ॥ अहिंसादिक पांच महाव्रत, ईर्यासमित्यादि पांच निरतिचार समितियां, पांच इंद्रियोंका संयम, सामायिकादि उत्तम छह आवश्यक, लोंच, नग्नता, अस्नान–स्नानका त्याग, भूमिपर शयन, दन्त–धावन नहीं करना, खडे होकर भोजन करना, एकबार भोजन करना ऐसे मुख्य मूलगुणोंको समताके प्रति उन्मुख हुए, महाबुद्धिसे महत्ताको धारण करनेवाले पंच पांडवोंने धारण किया ॥ २१–२३ ॥ उत्तम यतिधर्म धारण करनेवाले, वीर, तपरूपी धनका संचय करनेवाले वे भव्य मुनिराज नाना उत्तम गुणोंको धारण करनेका अभ्यास करने लगे तथा उन्होंने सुधर्म नामका ध्यान धारण किया। अर्थात् आर्तध्यान और रौद्रध्यानको छोड मोक्षके कारण धर्मध्यानका चिन्तन वे करने लगे ॥ २४ ॥ तीन गुप्तियोंसे गुप्त संरक्षित, जिन्होंने अपने आत्माका विषयोंसे रक्षण किया है अर्थात् जितेन्द्रिय, महान् गुणोंके गौरवसे शोभनेवाले, गुणोंसे मुनिसमाजमें अगुआ ऐसे वे पाण्डव मुनिराज आचारादि द्वादशांगोंका अध्ययन करने लगे। संकटोंसे रहित, तपमें विकट अर्थात् दृढ ऐसे पाण्डवोंने अपना सामर्थ्य प्रगट करके उन नेमिप्रभुके चरणमूलमें उत्तम–निरतिचार और कठिन तप किया।

षष्ठाष्टमादिभेदेन क्षपणां क्षपणोद्यताः । कर्मणां चक्रिरे नित्यमनाश्नन्तो नरोत्तमाः ॥२७
द्वात्रिंशत्कवला नृणामाहारो गदितो जिनैः । तन्न्यूनतावमोदर्यं दधुस्ते देहदाहकाः ॥२८
वर्त्मैकवेश्मवीथ्यादिप्रतिज्ञा याशनेच्छया । सुवृत्तिपरिसंख्यानं कुर्वन्तो भोजनं व्यधुः ॥
निर्विकृत्या रसत्यागकाञ्जिकान्नेन पारणाम् । कुर्वाणाश्च रसत्यागं तपस्तेपुर्मुनीश्वराः ॥३०
शून्यागारे गुहायां च वने पितृवने तथा । निःकुटे कोटरे भूध्रे निर्जने जन्तुवर्जिते ॥३१
भयदे भयसंत्यक्ताः सिंहा इव समुद्धराः । कुर्वाणाः संस्थितिं भेजुर्विविक्तशयनासनाः ॥३२
चत्वरादिषु देशेषु ममत्वं वपुषः परम् । हित्वा ते संदधुर्भव्याः कायक्लेशाभिधं तपः ॥३३
बाह्यं तपश्चरन्तस्ते षड्विधं वधवर्जिताः । विविधं विविधोपायैस्तस्थुस्ते पर्वतादिषु ॥३४
आलोचनादिभेदेन प्रायश्चित्तं व्यधुर्मुदा । दशधा चिद्विशुद्ध्यर्थं व्रतशुद्ध्यर्थमाशु ते ॥३५
चतुर्धा विनयं तेनुर्दर्शनज्ञानगोचरम् । मुनयः पाण्डवाः प्रीताश्चारित्रं चौपचारिकम् ॥३६
आचार्यादिप्रभेदेन वैयावृत्त्यं विशुद्धिकृत् । दशधा ते चरन्ति स्म चारित्राचरणोद्यताः ॥३७

[पाण्डवोंका दुर्धर तपश्चरण] षष्ठ–दो उपवास, अष्टम–तीन उपवास, आदि शब्दसे दशम चार उपवास, द्वादश–पांच उपवास इत्यादि उपवास करनेमें उद्युक्त निराहारी वे श्रेष्ठ पुरुष हमेशा कर्मोका क्षय करने लगे। जिनेश्वरोंने बत्तीस ग्रास प्रमाण आहार पुरुषोंका कहा है। परंतु देहको दग्ध करनेवाले–देहको सुखानेवाले पाण्डवोंने बत्तीस ग्राससे न्यून अर्थात् एकत्तीस, तीस, उनतीस ग्रासोंसे लेकर एक ग्रास तक आहार लेनेका अवमोदर्य तप किया। एक मार्ग, एक घर, एक गली इत्यादिकहीमें मैं आहार ग्रहण करूंगा ऐसी आहारकी इच्छासे प्रतिज्ञा करना उसे वृत्तिपरिसंख्यान कहते हैं। ऐसा वृत्तिपरिसंख्यान तप करते हुए वे भोजन करते थे। जिससे जिह्वा और मन विकृत होते हैं ऐसा जो आहार उसको छोडकर वे मुनिराज, नीरस आहार लेते थे गुड घी आदिक रसोंका त्याग कर आहार लेते थे। तथा कांजिकान्नसे पारणा करते थे। इस प्रकार रसपरित्याग तप उन्होंने किया। शून्यागारमें–जिनका कोई स्वामी नहीं है ऐसे मकान, गुहा-स्मशान, तथा उपवन, वृक्षोंकी कोटर, पर्वत इत्यादि निर्जन और जन्तुरहित तथा भीतिदायक स्थानमें सिंहके समान निर्भय और धैर्यवान् वे पाण्डव मुनि एकान्त स्थानमें शयनासन तप करते हुए रहने लगे। मैदान, पर्वतका शिखर और नदीका तट इत्यादि स्थानोंमें शरीरपर स्नेह छोडकर उन भव्योंने कायक्लेश नामक तप धारण किया। विविध उपायोंसे विविध छह प्रकारोंका बाह्य तप करनेवाले हिंसावर्जित पूर्ण अहिंसक मुनिराज पर्वतादिकोंपर रहने लगे ॥ २५–३४ ॥ जिसके आलोचनादि दस भेद हैं ऐसा प्रायश्चित्त नामक तप आत्मशुद्धि तथा व्रतशुद्धिके लिये वे शीघ्र करते थे। ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय और उपचारविनय ऐसा चार प्रकारका विनयतप स्नेहयुक्त पाण्डव मुनि करते थे। आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, साधु, ग्लान, गण, कुल, संघ और मनोज्ञ ऐसे दस

वाचनाप्रच्छनाम्नायानुप्रेक्षाधर्मदेशनाः । इति तैः पञ्चधा दध्रे स्वाध्यायो ध्यानसिद्धये ॥
कायादिममतात्यागो व्युत्सर्गस्तु सुनिश्चलः । दध्रे तैर्निर्जने देशे कायात्मभेददर्शिभिः ॥३९
धर्मध्यानं चतुर्धा ते दधुः संसिद्धशासनाः । आज्ञापायविपाकाख्यसंस्थानविचयाख्यया ॥४०
शुक्लं शुक्लाभिधं वीराः पृथक्त्वेन वितर्कणाम् । वीचारेण प्रकुर्वन्तो दधुर्ध्यानं बुधोत्तमाः ॥
एवमाभ्यन्तरं द्वेधा दधतः षड्विधं तपः । कर्माणि शिथिलीचक्रुर्गरुडाश्च यथोरगान् ॥४२
तपसस्तु प्रभावेन प्रभवन्ति न हृद्व्यथाः । तेषां समृद्धयो भेजुः सामीप्यं विविधा अपि ॥४३
मैत्र्यं सर्वेषु सत्त्वेषु दधाना धर्मधारिणः । गुणाधिकेषु जीवेषु प्रमोदं ते दधुर्ध्रुवम् ॥४४
क्लिष्टजीवेषु कारुण्यं कुर्वन्तः कृपयाङ्किताः । माध्यस्थ्यं विपरीतेषु चक्रिरे ते मुनीश्वराः ॥४५

प्रकारके मुनियोंके भेदसे दस प्रकारका आत्मशुद्धि करनेवाला वैयावृत्त्य तप चारित्रके आचारणमें उद्यत पाण्डव मुनि करने लगे। ध्यानकी सिद्धिके लिये वाचना, प्रच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश ऐसा पांच प्रकारका स्वाध्याय तप उन्होंने धारण किया। शरीर और आत्मा इनमें भेद देखनेवाले उन मुनिराजोंने शरीर, कमण्डलु आदिके ऊपरकी ममताका त्याग किया और आत्मामें वे सुनिश्चल रहने लगे। इस प्रकार उन्होंने व्युत्सर्गतप निर्जनवनमें धारण किया ॥ ३५–३९ ॥ जो जिनेश्वरकी आज्ञाको पालते थे ऐसे पाण्डवोंने आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय नामके चार धर्मध्यानको धारण किया। जीवादितत्त्वोंकी सूक्ष्मता जो जिनेश्वरने कही, वही सत्य है, ऐसी चिन्ता करना, आज्ञाविचय है। संसारकारण ऐसे मिथ्यात्वसे इन जीवोंका कैसा उद्धार होगा ऐसा विचार करना अपाय विचय है। कर्मकी सत्ता, उदय बंधका विचार करना विपाकविचय है तथा लोकसंस्थानका विचार करना संस्थानविचय है। कषायका उपशम होनेसे अथवा क्षय होनेसे शुक्लध्यान होता है। विद्वदुत्तम और वीर ऐसे पाण्डवोंने पृथक्त्वसे वितर्क और वीचार करते हुए शुक्लध्यान किया। पृथक्त्ववितर्क-वीचार नामक पहिला शुक्लध्यान है, उसमें अर्थ परिवर्तन, व्यंजन-शब्दपरिवर्तन, तथा योग, मन, वचन और काययोगका परिवर्तन होता है और श्रुतज्ञानके विषयरूप आत्मादि वस्तुका एकाग्रतासे चिन्तन होता है ॥ ४०–४१ ॥ जैसे गरुड सर्पोंको शिथिल करते हैं, वैसे अंतरंग तप और बहिरंग तप धारण करनेवाले पाण्डवोंने कर्म शिथिल किये। तपश्चरणके प्रभावसे उनको हृदय व्यथित करनेवाली कोई भी बाधा नहीं होती थी। तथा विक्रियादिक अनेक ऋद्धियांभी उनके पास आईं अर्थात् उन्हें प्राप्त हो गईं ॥ ४२–४३ ॥

[मैत्र्यादिक भावनाओंसे उपसर्गादि सहन] संपूर्ण प्राणिमात्रमें मैत्रीभाव धारण करनेवाले यतिधर्मधारी पाण्डवोंने रत्नत्रयसे अपनेसे उत्कृष्ट मुनियोंके विषयमें प्रमोदभावना दृढतया धारण की। किसीको दुःख नहीं हो ऐसी मैत्रीभावना मनमें धारण की। कृपासे युक्त होकर रोगादि-कसे पीडित जीवोंपर दया करते हुए उन मुनीश्वरोंने कारुण्यभावना धारण की तथा विपरीत-

भावयन्तो निजात्मानं शुद्धं बुद्धं निरञ्जनम् । एताभिर्भावनाभिस्ते स्थिरं तस्थुः स्थिराशयाः
रत्नत्रयमयं ज्योतिरजायत महोज्ज्वलम् । तेषां मोहद्रुमो येन समूलं नाशमाप्नुयात् ॥४७
तिर्यङ्मर्त्यामरप्रासुकृतांस्ते विपुलाशयाः । उपसर्गान्सहन्ते स्म शुद्धचिन्मयतां गताः ॥४८
क्षुत्पिपासाक्षुशीतोष्णदंशादींश्च परीषहान् । द्वाविंशतिं सहन्ते स्म मुनयोऽमलमानसाः ॥४९
अप्रमत्ता महावीराश्चरन्ति चरणं परम् । ब्रह्मचर्यपराः पूता निर्भयाः कुम्भिनो यथा ॥५०
विशुद्धबुद्धिचेतस्काः सुसंयमसमावृताः । क्षीणमोहाः प्रमादघ्ना ध्यानध्वस्ताघसंचयाः ॥५१
विहरन्तः समासेदुः सौराष्ट्रे ते च नीवृति । शत्रुंजयगिरौ शीघ्रं कदाचिद्ध्यानसिद्धये ॥५२
तस्योत्तुङ्गसुशृङ्गेषु तस्थुस्ते ध्यानसिद्धये । कायोत्सर्गविधौ धीराः स्मरन्तः परमं पदम् ॥५३
आतापनादियोगेन तपस्यन्तः परं तपः । घोरोपसर्गसहने समर्थाः सिद्धिसाधकाः ॥५४
अनक्षरं परं शुद्धं चिन्मात्रं देहदूरगम् । ध्यायन्तस्ते परात्मानं तत्र तस्थुस्तपोधनाः ॥५५
निर्ममत्वपदप्राप्ता निर्मला मानसे सदा । यावत्तिष्ठन्ति योगीन्द्रास्तत्र ते पाण्डुनन्दनाः ॥५६

मिथ्यादृष्टिओंमें माध्यस्थ्यभाव धारण किया था। इन भावनाओंसे अपने मनको उन्होंने स्थिर किया तदनंतर शुद्ध, पूर्ण ज्ञानमय और कर्ममलरहित ऐसे निजात्माका चिन्तन करनेवाले वे पाण्डव मुनि स्वस्वरूपमें स्थिर रहे। ऐसे आत्मचिन्तनसे उनकी रत्नत्रयपूर्ण चैतन्यज्योति अत्यंत निर्मल हुई। जिससे उनका मोहरूपी वृक्ष समूल नष्ट हो गया ॥ ४४–४७ ॥ विशाल परिणामशुद्धि धारण करनेवाले शुद्ध चैतन्यमय अवस्थाको प्राप्त हुए वे पशु, मनुष्य, देव और अचेतन पदार्थोंसे होनेवाले चार प्रकारके उपसर्ग सहन करने लगे। निर्मल हृदयवाले उन मुनियोंने भूख, प्यास, शीत, उष्ण, दंशमशक आदिक बाईस परीषहोंको सहन किया ॥ ४८–४९ ॥ उनका मन विकथादिक प्रमादोंसे रहित हुआ। वे महाधैर्यवान् थे। उत्कृष्ट चारित्रके धारक और ब्रह्मचर्यमें तत्पर रहनेसे पवित्र थे। जैसे हाथी निर्भय होते हैं, वैसे वे निर्भय थे। उनका मन निर्मल ज्ञानवाला हुआ, वे उत्तम संयमसे युक्त थे। उनका मोह क्षीण हुआ था। उनके प्रमाद नष्ट हुए थे और ध्यानके द्वारा उन्होंने पापोंका नाश किया था ॥ ५०–५१ ॥

[पाण्डवोंको घोर उपसर्ग।] विहार करते हुए वे पाण्डव कदाचित् सौराष्ट्र देशमें शत्रुंजय पर्वतपर ध्यानसिद्धिके लिये शीघ्र आये। कायोत्सर्गविधिमें धैर्यवान्, उत्तम ऐसे श्रुतज्ञानके पदोंका स्मरण करनेवाले वे मुनिराज ध्यानसिद्धिके लिये शत्रुंजयगिरिके अत्युच्च शिखरोंपर खडे होकर आत्मचिन्तन करने लगे। आतपनादि योग धारण कर उत्तम तप करनेवाले, भयंकर उपसर्ग सहन करनेमें समर्थ, सिद्धिके साधक ऐसे वे तपोधन मुनि अविनाशी, अतिशय शुद्ध, चैतन्यमय, देहरहित उत्तम आत्माका-परात्माका चिन्तन करते हुए उस पर्वतपर कायोत्सर्गमें लीन हुए ॥ ५२–५५ ॥ हमेशा मनमें निर्मल, निर्ममत्वकी अवस्थाको धारण किये हुए महायोगी वे पाण्डुपुत्र जब वहां

तावदायाद्विरी तत्र क्रूरः कुर्यधरः शठः । खलः कौरवनाथस्य भागिनेयो गुणातिगः ॥ ५७
निरीक्ष्य पाण्डवान् धर्मध्यानस्थान् दुष्टमानसः । निहन्तुमुद्यतस्तावच्चिन्तयन्निति मानसे ॥५८
मदीयान्मातुलान्हत्वा मदमत्ताः सुपाण्डवाः । इदानीं ते क यास्यन्ति मया दृष्टाः सुदैवतः ॥
अधुना प्रतिवैरस्य संदानेऽवसरो मम । योगारूढा इमे किंचिन्न करिष्यन्ति संगरम् ॥६०
ततः पराभवं कृत्वा हन्मीमान्मानशालिनः । वाचंयमान्यमाधारान्बलिनोऽपि बलच्युतान् ॥
आयसाभरणान्याशु पराकाराणि षोडश । प्रज्वलन्ति ज्वलद्वह्निवर्णान्यसावकारयत् ॥६२
लोहजं मुकुटं मूर्ध्नि ज्वलज्ज्वालामयं दधौ । कर्णेषु कुण्डलान्याशु तेषां हारान् गलेषु च ॥
करेषु कटकान्क्रुद्ध आयसान्वह्निदीपितान् । कटीतटेषु संदीप्तकटिसूत्राण्यसूत्रयत् ॥६४
पादभूषाः सुपादेषु करशाखासु मुद्रिकाः । आरोपयद्विकल्पाढ्यो विकलो वृषतो भृशम्॥६५
तदङ्गसंगतो भूषावह्निः संप्रज्वलन्वपुः । ददाह दाहयोगेन दारुणीव पराणि च ॥६६
आयसाभरणाश्लेषान्निर्जगाम धनंजयात् । धूमोऽन्धकारकृद्वह्वेर्दारुयोगाद्यथा स्फुटम् ॥६७

ध्यानमें लीन थे, तब क्रूर वक्रचित्तवाला (शठ) दुष्ट, गुणोंसे दूर ऐसा दुर्योधनके बहिनका पुत्र जिसका नाम कुर्यधर था वहां आया ॥ ५६–५७ ॥ धर्मध्यानमें लीन हुए उन पाण्डवोंको देखकर दुष्टहृदयी कुर्यधर उनको मारनेके लिये उद्युक्त हुआ। तत्पूर्व उसने मनमें ऐसा विचार किया— " मेरे मामाओंको मारकर ये मदोन्मत्त पाण्डव यहां आये हैं; परंतु अब कहां जायेंगे ? सुदैवसे मैंने इनको देखा है। अब प्रतिवैरका बदला लेनेका मुझे अवसर प्राप्त हुआ है। ये इस समय योगमें-ध्यानमें आरूढ हुए हैं। इस समय ये मुझसे कुछभी युद्ध नहीं करेंगे। इस लिये मानशाली, मौनी महाव्रतधारी, बलवान् परंतु बलच्युत ऐसे इन मुनियोंका पराभव करके मैं इनके प्राण हरण करूंगा " ॥ ५८–६१ ॥ उस कुर्यधरने लोहेके सोलह प्रकारके उत्तम आकारवाले आभूषण बनवाये जो ज्वालायुक्त और उज्ज्वल अग्निके वर्णसमान लाल थे। उन मुनियोंके मस्तकपर जिसकी प्रकाशमान ज्वालायें इधर उधर फैलती हैं ऐसा लोहेका मुकुट उसने स्थापन किया। कानोंमें कुंडल, तथा उनके गलोंमें हार शीघ्र स्थापन किया। अग्निसे प्रदीप्त ऐसे लोहके कडे उनके हाथोंमें उस क्रोधीने पहनाये, तथा उनके कमरोंमें करधौनीयाँ बांधी गईं। उनके चरणोंमें पादभूषण, और उनके हाथोंकी पांचो अंगुलियोंमें मुद्रिकायें अनेक विकल्प करनेवाले और धर्मसे अत्यंत दूर ऐसे कुर्यधरने पहनाईं ॥ ६२–६५ ॥

[परमेष्ठिओंका चिन्तन] अग्नि जैसे अपने दाहगुणसे उत्तम लकडियोंका जलाता है वैसे पाण्डवोंके शरीरसंसर्गसे ज्वालायुक्त अलंकारोंका अग्नि उनके शरीरोंको जलाने लगा। लोहेके अलंकारोंका संबंध होनेपर धनंजयसे-अर्जुनसे अंधकार करनेवाला धूम प्रगट हुआ जैसे अग्निमेसें धूम प्रगट होता है। जब उन श्रेष्ठ पाण्डवोंने अपने देह जलने लगे हैं ऐसे देखा तब वे उसको बुझानेके लिये ध्यानरूपी पानीका

ज्वलन्ति ते तदा वीक्ष्य वपूंषि वरपाण्डवाः । विध्यापनकृते दध्युस्तस्य ध्यानजलं हृदि ॥६८
जिनसिद्धसुसाध्विद्धसद्धर्मवरमङ्गलम् । चतुर्लोकोत्तमांश्चिते दधुस्तच्छरणानि च ॥६९
ज्वलते ज्वलनो देहाञ्ज्वालयन् विपुलात्मकः । नात्मनः सत्कुटीयद्वन्नभस्तत्समाश्रितम् ॥
मूर्तास्तु पावका मूर्ताञ्ज्वालयन्त्यङ्गसंचयान् । न चात्मनो यथास्माकं सदृशाः सदृशान्पराः॥
शुद्धः सिद्धः प्रबुद्धश्च निराकारो निरञ्जनः । उपयोगमयो ह्यात्मा ज्ञाता द्रष्टा निरत्ययः ॥
त्रिधा कर्मविनिर्मुक्तो देहमात्रस्तु देहतः । भिन्नोऽनन्तसुबोधादिचतुष्टयसमुज्ज्वलः ॥७३
इति ते स्वात्मनो रूपं स्मरन्तः शुद्धमानसाः । ईक्षांचक्रुरनुप्रेक्षा विपक्षक्षयहेतवे ॥७४
क्षणमात्रस्थिरं लोके जीवितव्यं नृणां सदा । अभ्रवद्विभ्रमस्तत्र स्थायित्वेन कथं भवेत् ॥७५
शरीरं चञ्चलं वृक्षच्छायावद्यौवनं मतम् । जलबुद्बुदवद्विद्धि वित्तं च जलदोपमम् ॥७६

मनमें चिन्तन करने लगे ॥ ६६–६८ ॥ श्रीजिनेश्वर, सिद्धभगवान्, साधु (आचार्य, उपाध्याय और साधु) तथा जिनधर्म येहि संसारमें उत्कृष्ट मंगल-पापनाशक और पुण्यदायक हैं, ऐसा पाण्डवोंने मनमें विचार किया। ये हि जगतमें सर्वोत्तम और शरण हैं ऐसा समझकर उन्होंने उनको हृदयमें धारण किया ॥ ६९ ॥ अतिशय फैला हुआ और देहोंको जलाता हुआ यह अग्नि हमारे आत्माओंको नहीं जलाता है। जैसे अग्नि झोपडीको जलाता है परंतु उसके आश्रयसे रहनेवाले आकाशको नहीं जला सकता है। वैसे अमूर्त आत्माको अग्नि जलानेमें असमर्थ है। अग्नि मूर्तिक होनेसे मूर्तिक शरीरसमूह उससे जलता है। परन्तु हमारी आत्मायें उनसे नहीं जलती हैं। क्योंकि समान सदृश चीज अपनेसे भिन्न चीजपर अपना प्रभाव प्रगट करती है। आत्मा शुद्ध है, कर्माष्टक रहित, सिद्ध है, ज्ञानमय और अमूर्त (निराकार) है। कर्मलेपरहित है। ज्ञानदर्शनोपयोगमय, ज्ञाता–चराचर वस्तु जाननेवाला, और द्रष्टा–समस्त वस्तु देखनेवाला, अविनाशी द्रव्यकर्म-ज्ञानावरणादिक, भावकर्म रागद्वेषादिक और नोकर्म शरीरके और कर्मके उपकारक इतर आहारादिक पदार्थ इन सबसे आत्मा भिन्न है–रहित है। आत्मा देहके संयोगसे देहप्रमाण है परंतु देहसे भिन्न अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यसे उज्ज्वल है। इस प्रकार अपने आत्माके स्वरूपका चिन्तन करनेवाले शुद्धहृदयी वे पाण्डव मुनि विपक्ष–कर्मके क्षयके लिये अनुप्रेक्षाओंको देखने लगे–विमर्श करने लगे ॥ ७०–७४ ॥

[पाण्डवोंका अनुप्रेक्षाचिन्तन अनित्यानुप्रेक्षा] लोकमें मनुष्योंका जीवन सदा क्षणमात्र स्थिर रहनेवाला है। यदि वह नित्य होता तो मेघोंके समान उसमें विलास नहीं होता। अर्थात् मेघ जैसे देखते देखते नष्ट होते हैं वैसे मनुष्य नष्ट नहीं होते। परंतु मनुष्य क्षणमें नष्ट होते हैं अतः उनमें मेघके समान विलास दीखता है। शरीर वृक्षकी छायासमान चंचल है, तारुण्य पानीके बबूलेके समान है अर्थात् शीघ्र नष्ट होता है और धन मेघके तुल्य है। मेघ जैसा विलीन होता है वैसा धनभी नष्ट होता है। यदि चक्रवर्तियोंकेभी विषय–पंचेन्द्रियोंके भोग्य पदार्थ नष्ट होते हैं तो

विषया यदि नश्यन्ति चक्रिणामपि का कथा।
अन्येषां तु स्वयं त्याज्या विद्वद्भिः शिवसिद्धये ॥७७

नश्वरेण शरीरेण साध्यमत्राविनश्वरम्। पदं प्रतिमया साध्यश्चन्द्रो वा चन्द्रिकालयः ॥७८
न किंचिच्छाश्वतं लोके विद्यते निजजन्मिनम्। विहायेन्द्रधनुस्तुल्यं दृष्टमात्रप्रियं परम् ॥७९
किं कस्य जीवितं दृष्टं भरतादेश्च चक्रिणः। किं ताम्यसि तदर्थं किं सफलं वा क्षणं नय ॥

अनित्यानुप्रेक्षा

निःशरण्ये वने सिंहैराक्रान्तो मृगशावकः। न रक्ष्यते यथा जन्तुराक्रान्तो यमकिङ्करैः ॥८१
सायुधैः सुभटैर्वीरैर्भ्रातृभिर्वाजिदन्तिभिः। संवृतं यमराड्जन्तुं गृह्णात्याखुमिवाखुभुक् ॥८२
आत्मनः शरणं नैव मन्त्रयन्त्रादयोऽखिलाः। सत्येव किं तु पुण्ये हि तैः स्थिताश्च न के भुवि ॥
पक्षिणो नष्टयानस्य पयोधाविव चायुषः। शरणं सत्यपाये न स्वास्थ्यं तस्मिन्सति ध्रुवम् ॥
समर्थोऽपि सुरेन्द्रो न निजदेवीपरिक्षये। क्षमो हि रक्षितुं सोऽन्यान्कथं रक्षति कालतः ॥

अन्यजनोंके विषयोंकी बातही क्या है ? इस लिये विद्वान् मोक्षसिद्धिके लिये उनको स्वयं छोड दें। इस नश्वर शरीरके द्वारा अविनश्वर-नित्य ऐसा मुक्तिपद साध्य करना चाहिये। जैसे प्रतिबिम्बके द्वारा चन्द्रिकाका निवासस्थान चंद्र प्राप्त किया जाता है। सब पदार्थ इन्द्रधनुष्यके समान देखने मात्र अतिशय प्रिय हैं। इस जगतमें अपने आत्माको छोडकर अन्य कोईभी वस्तु नित्य नहीं है। क्या किसीका जीवित नित्य देखा गया है ? नहीं। भरतादि चक्रवर्तीकाभी जीवित नित्य नहीं था। उस जीवितके लिये हे आत्मन्, तू क्यों खिन्न हो रहा है ? जो जीवनक्षण तुझे प्राप्त हुआ है उसे सफल कर ॥ ७५-८० ॥

[अशरणानुप्रेक्षा] जिसमें कोई रक्षणकर्ता नहीं ऐसे वनमें सिंहोंने जिसके ऊपर आक्रमण किया है ऐसे हरिणबालकका उनसे कोई रक्षण नहीं कर सकता वैसे यमदूतोंने पकडा हुआ प्राणी किसीके द्वारा नहीं रक्षा जाता है। बिल्लीने पकडे हुए चुहेके समान यमराजने पकडे हुए प्राणीको जिनके पास शस्त्र हैं ऐसे वीर सुभट, भाई, घोडे और हाथी नहीं छुडा सकते हैं। मंत्र यंत्र, औषधादिक, सर्व पदार्थ कदापि आत्माके रक्षक नहीं हैं। यदि पुण्य होगा तो मंत्र, तंत्रादिक उसके रक्षक होते हैं। वह यदि नहीं तो इस भूलोकमें उसके विना कौन स्थिर रहे हैं। समुद्रमें नौकाका आश्रय जिसने छोडा है ऐसे पक्षीको जैसे कोई रक्षक नहीं है वैसे आयुकी समाप्ति होनेपर मनुष्यका कोई रक्षण नहीं करता है। आयुष्य होनेपर उस प्राणीको निश्चयसे स्वास्थ्य मिलता है। सुरेन्द्रभी जब उसकी देवी मरने लगती है उसका रक्षण करनेमें असमर्थ होता है तब वह अन्यजीवका कालसे कैसे रक्षण करेगा। सिर्फ शुद्धचैतन्यरूप आत्माही नित्य है और वह कालके अधीन नहीं है इस लिये आत्माको छोडकर अन्य कुछ शरण नहीं है। जो मोहितचित्त हुए हैं

विनैकं शुद्धचिद्रूपं कालागम्यमनश्वरम् । शरणं देहिनां नैव किंचिन्मोहितचेतसां ॥८६

अशरणानुप्रेक्षा ।

संसारः पञ्चधा प्रोक्तो द्रव्यं क्षेत्रं तथा परः । कालो भवस्तथा प्रोक्तः पञ्चमो भावसंज्ञकः ॥
परावृत्तानि जीवेन कृतानि पञ्च संसृतौ । अनन्तानि च तेषां त्वेकस्य कालोऽप्यनेकशः॥८८
किं रज्यसि वृथा जन्तो संसृतौ शुभलाभतः । स्थिरीभव स्वचिद्रूपेऽन्यथा चेत्संसृतिभ्रमः ॥

संसारानुप्रेक्षा ।

जनने मरणे लाभे सुखे दुःखे हितेऽहिते । एकोऽसि संसृतौ जन्तो भ्रमन्भिन्नास्तु बान्धवाः ॥
कर्ता त्वं कर्मणामेको भोक्ता त्वं कर्मणः फलम् ।
अङ्गं भोक्ता च किं मुक्तौ यतसे नात्मसंस्थितौ ॥९१
एकस्मिन्नेव चिद्रूपे रूपातीते निरञ्जने । स्वाधीने कर्मभिन्ने च सातरूपे स्थिरीभव ॥९२

एकत्वानुप्रेक्षा ।

कर्म भिन्नं क्रिया भिन्ना भिन्नो देहस्तथा परे । विषया इन्द्रियाद्यर्था मात्राद्याः स्वकीयाः किमु ।

ऐसे प्राणियोंको इन संसारमें कोईभी रक्षक नहीं हैं ॥ ८१-८६ ॥

[संसारानुप्रेक्षा] चतुर्गतिमें भ्रमण करना संसार है । संसारके द्रव्यसंसार, क्षेत्रसंसार, कालसंसार, भावसंसार और भवसंसार ऐसे पांच भेद हैं । इस जीवने पांचो संसारोंमें अनंत परावर्तन किये हैं । उनमें एकका कालभी अनेक अर्थात् अनंत है । हे जीव, इस संसारमें शुभ लाभ होनेसे व्यर्थ क्यों अनुरक्त हो रहा है ? हे आत्मन्, तू अपने चैतन्यस्वरूपमें स्थिर हो अन्यथा तुझे संसारमें भ्रमण करना पडेगा ॥ ८७-८९ ॥

[एकत्वानुप्रेक्षा] हे आत्मन्, जन्म, मरण, लाभ, सुख, दुःख, हित और अहितमें तू अकेलाही है । इस संसारमें तू अकेलाही भ्रमण करता है । सब बांधव तुझसे भिन्न हैं । हे आत्मन् तूही नाना प्रकारके ज्ञानावरणादि कर्मोंका कर्ता हैं और तूही उनसे प्राप्त होनेवाले फलोंका भोक्ता है । तथा हे आत्मन्, तूही कर्मोंका नाश करके मुक्त होनेवाला है, इस लिये हे आत्मन्, शुद्ध स्वरूपकी मुक्तिके लिये तू क्यों नहीं प्रयत्न करता है ? हे आत्मन्, यह तेरा चिद्रूप रूपातीत-अमूर्तिक, कर्मलेपरहित, और स्वाधीन हैं तथा कर्मोंसे भिन्न है । इस सुखरूप एक चिद्रूपमें तू स्थिर हो ॥ ९०-९२ ॥

[अन्यत्वानुप्रेक्षा] हे आत्मन्, तुझसे कर्म भिन्न है और मनोवचनकाय योगोंकी क्रिया भिन्न है । यह तेरा देहभी तुझसे भिन्न है । इंद्रियोंके भोग्य पदार्थ अर्थात् विषय तुझसे भिन्न हैं । इस लिये हे आत्मन् ! माता, पिता, भ्राता आदिक स्वकीय कैसे होंगे ? हे आत्मन्, मैं देहात्मक हूं,

अहं देहात्मकोऽस्मीति मतिं चेतसि मा कृथाः। निचोलसदृशो देहोऽसिसमस्त्वं च मध्यगः ॥
सर्वतो भिन्न एवासि सदृक्संविच्चिवृत्तिमान्। कर्मातीतः शिवाकारस्त्वमाकारपरिच्युतः ॥९५

अन्यत्वानुप्रेक्षा।

मांसास्थ्यसृङ्मये देहे शकृत्प्रस्रावपूरिते। मेदश्चर्मकचावासे चेतः किं तत्र रज्यसे ॥९६
यद्योगाच्चन्दनादीनां मेध्यानामप्यमेध्यता। शुक्रशोणितसंभूते तत्र का रतिरुत्तमा ॥९७
सर्वाशुचिविनिर्मुक्तं सर्वदेहपरिच्युतम्। ज्ञानरूपं निराकारं चिद्रूपं भज सर्वदा ॥९८

अशुचित्वानुप्रेक्षा।

अब्धौ सच्छिद्रनावीव भवेद्वार्यागमस्तथा। कर्मास्रवो भवाब्धौ स्यान्मिथ्यात्वादेश्च देहिनाम्।
पञ्चमिथ्यात्वतो जन्तोर्द्वादशाविरतेर्भवेत्। पञ्चवर्गकषायाच्चास्रवस्त्रिपञ्चयोगतः ॥ १००
आस्रवाद्भ्राम्यति प्राणी संसृतावब्धिकाष्ठवत्। अतः सर्वास्रवत्यक्तं चिद्रूपं शाश्वतं भज ॥१०१

आस्रवानुप्रेक्षा।

ऐसी मनमें बुद्धि मत कर। यह तेरा देह कोशके समान है और उसके बीचमें रहनेवाला तू खड्गके समान है। हे आत्मन्, तू देहसे सर्वथा भिन्न है। तू सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी और चारित्रधारी है। तू कर्मोंसे भिन्न है तथा शिवाकार है अर्थात् चरम-शरीरसे कुछ कम तेरे आत्मप्रदेशोंकी आकृति है और तू आकाररहित-अमूर्त हैं ॥ ९३-९५ ॥

[अशुचित्वानुप्रेक्षा] यह देह मांस, हड्डी, और रक्तसे भरा हुआ है, विष्ठा और मूत्रसे भरा हुआ है। मेद, चर्म और केशोंका घर है। हे मन ! तू इसमें आसक्त हुआ है। चन्दन, कस्तूरी आदिक पदार्थ पवित्र हैं, परंतु इस देहका संबंध होनेसे वेभी अपवित्र होते हैं। शुक्र और रक्तसे उत्पन्न हुए इस शरीरमें आसक्त होना क्या श्रेष्ठ है ? अर्थात् घृणा उत्पन्न करनेवाले देहमें आसक्त होना लज्जास्पद है। हे मन, आत्मा सर्व प्रकारके अशुचि पदार्थोंसे रहित हैं। सर्व-देहोंसे औदारिक, वैक्रियिक, तैजस, आहारक और कार्माण ऐसे पांच देहोंसे रहित है। यह आत्मा ज्ञानरूप, निराकार, तथा चैतन्यमय है उसीका तू आश्रय कर ॥ ९६-९८ ॥

[आस्रवानुप्रेक्षा] समुद्रमें छिद्रसहित नौकामें जैसे पानीका प्रवेश होता है वैसे संसार-समुद्रमें प्राणियोंमें मिथ्यात्व, अविरति, कषाय आदि परिणामोंसे कर्मागमन होता है। पांच प्रकारके मिथ्यात्व, बारा अविरति, पंचीस कषाय और पन्द्रह योग ऐसे कर्मोंका आगमन होनेके कारण सत्तावन हैं। इनसे जीवोंमें कर्मका प्रवेश होता है। समुद्रमें पडी हुई लकडी जैसे भ्रमण करती है, वैसे यह जीव संसारमें इन मिथ्यात्वादिकोंसे भ्रमण करता है। इस लिये अविनाशी, संपूर्ण आस्रवोंसे रहित जो चिद्रूप है, उसे हे आत्मन्, तू भज। उसकी उपासना कर ॥ ९९-१०१ ॥

आस्रवाणां निरोधस्तु संवरो धर्मगुप्तिभिः । अनुप्रेक्षातपोध्यानैः समित्या क्रियते बुधैः ॥
संवरे सति नो जन्तुः संसाराब्धौ निमज्जति । स्वेष्टं पदं प्रयात्येव निश्छिद्रा नौरिवार्णवे ॥
अस्मिन्नक्लेशगम्ये त्वमात्माधीने सदा मतिः । श्रेयोमार्गे व्यधा बाह्ये मतिभ्रमणतः किमु ॥
संवरानुप्रेक्षा ।
रत्नत्रयेण संबद्धकर्मणां निर्जरा भवेत् । अग्निर्दाह्यं किमाध्मातो निःशेषं साऽवशेषयेत् ॥१०५
सविपाकाविपाकेन निर्जरा द्विविधा भवेत् । आद्या साधारणा जन्तोरन्या साध्या व्रतादिभिः ॥
अनास्रवात्क्षयादात्मन्केवल्यसि च कर्मणाम् । आस्रवे निर्गतेऽशेषे धाराबन्धे पयः कुतः ॥
निर्जरानुप्रेक्षा ।
प्रसारिताङ्घ्रिनिक्षिप्तकटिहस्तनरोपमः । आद्यन्तरहितो लोकोऽकृत्रिमः केनै निर्मितः ॥१०८

[संवरानुप्रेक्षा] आस्रवोंको अपने आत्मामें नहीं आने देना संवर है। कर्मागमनके प्रतिबंधको संवर कहते हैं। वह संवर दशधर्म, तीन गुप्ति, बारह अनुप्रेक्षा, बारह तप और पांच समिति तथा धर्मध्यान शुक्लध्यानोंसे होता है। संवर होनेपर यह प्राणी संसारसमुद्रमें नहीं डूबता है तथा वह इच्छितस्थान-मुक्तिस्थानको प्राप्त कर लेता है। जैसे कि निश्छिद्र नौका समुद्रमें इच्छित स्थानको मनुष्यको ले जाती है। हे आत्मन्, यह मोक्षमार्ग विनाक्लेशसे प्राप्त होता है तथा आत्माके आधीन है इस लिये तू इसमेंही अपनी बुद्ध लगा दे। बाह्यमें अपनी मति दौडानेसे क्या लाभ होगा ॥१०२ १०४॥

[निर्जरानुप्रेक्षा] रत्नत्रयकी प्राप्ति होनेसे पूर्वभवोंमें बंधे हुए कर्मोंकी निजरा होती है। वे कर्म अपना फल देकर निकल जाते हैं। जब अग्नि प्रज्वलित होता है तब जलाने योग्य लकडी आदि संपूर्ण वस्तुओंको जलाता है क्या उनमेंसे कुछ वस्तुएँ बच जाती हैं? निर्जराके सविपाका निर्जरा और अविपाका निर्जरा ऐसे दो भेद हैं। पहिली सामान्य है वह सभी संसारिप्राणिओंको होती है परंतु दुसरी व्रत, समिति, तप आदिकोंसे व्रतधारियोंको होती हैं। योग्य कालमें कर्म उदयमें आकर फल देता है और आत्मासे वह निकल जाता है उसे सविपाकानिर्जरा कहते हैं। और आगे उदयमें आनेवाले कर्मको पूर्वकालमें उदयमें लाकर उसका फल भोगकर उसे आत्मासे निकाल देना अविपाका निर्जरा है। नया कर्म आत्मामें नहीं आनेसे और पूर्वकर्मोंका क्षय होनेसे आत्मा केवली हो जाता है अर्थात् सर्व-कर्ममुक्त, अनन्तज्ञानादिगुण-परिपूर्ण, सिद्ध परमात्मा होता है। जैसे तालावमें नया पानी आना बंद हुआ और बचा हुआ पानी सूख गया तो उसमें पानी कैसे रहेगा? ॥ १०५-१०७ ॥

[लोकानुप्रेक्षा] जिसने अपने दो पांव फैलाये हैं और अपनी कमरपर दो हाथ स्थापन किये हैं ऐसे मनुष्यके समान इस लोककी-जगतकी आकृति हैं। यह लोक अनादि और अनिधन है अकृत्रिम है। ब्रह्मादिकोंने इसे नहीं उत्पन्न किया है। हे आत्मन् यदि तुझमें अज्ञान होगा,

पूर्ववद्भ्राम्यसि प्राणिन् सत्यज्ञाने पुनः पुनः । न हि कार्यक्षयो नूनं जृम्भमाणे च कारणे ॥
लोकवैचित्र्यमावीक्ष्याधोमध्योर्ध्वविभेदगम् । स्वसंवेदनसिद्ध्यर्थं शान्तो भव सुखी यतः ॥
लोकानुप्रेक्षा ।

भव्यत्वं च मनुष्यत्वं सुभूजन्मकुलस्थितिः । क्रमात्ते दुर्लभं चात्मन् समवायस्तु दुर्लभः ॥
समवायोऽपि ते व्यर्थो न चेद्धर्मे मतिः परा । किं केदाराधिगुण्येन कणिशोद्गमता न चेत् ॥
पुनस्तु दुर्लभो धर्मः श्राद्धानां योगिनां पुनः । लब्धे योगीन्द्रधर्मेऽपि दुर्लभं स्वात्मबोधनम् ॥
स्वात्मबोधिः कदाचिच्चेल्लब्धा योगीन्द्रगोचरा । चिन्तनीया भृशं नष्टा वित्तमर्षणवत्सदा ॥
नात्मलाभात्परं ज्ञानं नात्मलाभात्परं सुखम् । नात्मलाभात्परं ध्यानं नात्मलाभात्परं पदम् ॥
लब्ध्वात्मबोधनं धीमान्मतिं नान्यत्र संभजेत् । प्राप्य चिन्तामणिं काचे को रतिं कुरुते पुमान् ॥
बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा ।

जिनधर्मः सदा सेव्यो यत्प्रभावाच्च देवता । भविता श्वापि विश्वेषां नाथः स्याद्धर्मतो नरः ॥

तो पूर्वके समान लोकमें पुनः पुनः तुझे भ्रमण करना पडेगा । क्यों कि कारण बढते जानेपर कार्यका नाश कैसे होगा ? लोकके, अधोलोक मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक ऐसे तीन भेद हैं उनमें नाना प्रकारके वैचित्र्य भरे हुए हैं । हे आत्मन् उनको देखकर तूं स्वसंवेदनसिद्धिके लिये शान्त हो, जिससे तुझे सुखकी प्राप्ति होगी ॥ १०८ ११० ॥

[बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा] हे आत्मन् भव्यत्व-रत्नत्रय प्राप्तिकी योग्यता, मनुष्यपना, उत्तम क्षेत्रमें–आर्यखंडमें जन्म, उत्तम कुलमें पैदा होना, ये बातें क्रमसे दुर्लभ हैं । फिर समवाय-इन भव्यत्वादिकोंका समूह तो दुर्लभ है ही । हे आत्मन्, यदि तुझे धर्ममें बुद्धि प्राप्त नहीं होगी, तो इनका समवाय समुदायका पाना व्यर्थ होगा । यदि धान्यकी उत्पत्ति न होगी तो खेतके उत्तम गुणोंका क्या उपयोग है ? श्रावकोंका धर्म दुर्लभ है उससेभी योगियोंका धर्म पुनः अधिक दुर्लभ है । मुनीश्वरका धर्म प्राप्त होनेपरभी अपने स्वरूपका ज्ञान होना दुर्लभ है । योगीन्द्रोंको जिसका अनुभव आता है ऐसी आत्मबोधि (आत्मलाभ) कदाचित् प्राप्त हुई तो उसका पुनः पुनः अतिशय चिन्तन, मनन, निदिध्यास करना चाहिये । जैसे कोई धनिक धन नष्ट नहीं होवे इस हेतुसे उसका रक्षण, अर्जन और संवर्धन करता है । आत्मलाभसे दुसरा ज्ञान नहीं है, यही श्रेष्ठ ज्ञान है । आत्मलाभसे दूसरा सुख नहीं है, यही सर्व श्रेष्ठ सुख है । आत्मलाभसे दूसरा ध्यान नहीं है, यही सर्वश्रेष्ठ ध्यान है और आत्मलाभसे दूसरा पद नहीं है अर्थात् यही सर्वश्रेष्ठपद है । आत्मबोध होनेपर बुद्धिमान् अपनी मति अन्यवस्तुमें नहीं लगावें । चिन्तामणि प्राप्त होनेपर कौन मनुष्य काचमें प्रेम करेगा ॥ १११–११६ ॥

धर्मस्तु दशधा प्रोक्तो दुर्लभो योगिगोचरः । त्रयोदशसुवृत्ताख्यः स्याद्धर्मो मुक्तिदायकः ॥
संसाराशर्मतो यस्तु समुद्धृत्य शिवे पदे । नरं धत्ते सुधाधाम्नि स धर्मः परमो मतः ॥११९
मोहोद्भूतविकल्पेन त्यक्ता वागङ्गचेष्टितैः । शुद्धचिद्रूपसद्बुद्धिर्गीयते धर्मसंज्ञया ॥१२०
धर्मः पुंसो विशुद्धिः स्यात्स मुक्तिपददायकः । शुद्धिं विना न जीवानां हेयोपादेयवेदिता ॥
स्वात्मध्यानं परं धर्मः स्वात्मध्यानं परं तपः । स्वात्मध्यानं परं ज्ञानं स्वात्मध्यानं परं सुखम् ॥
स्वात्मज्ञानं न लभ्येत स्वात्मरूपं न दृश्यते । अतः सर्वं परित्यज्यात्मन्स्वरूपे स्थिरीभव ॥
धर्मानुप्रेक्षा ।
इत्यनुप्रेक्षया तेषामक्षोभ्याभूद्विरक्तता । समर्थे कारणे नूनं सतां शीलं व्यवस्थितम् ॥१२४
अमन्यन्त तृणायैते शरीरादिपरिग्रहान् । पीयूषे हि करस्थेऽहो के भजन्ते विषं बुधाः ॥१२५

[धर्मानुप्रेक्षा] जिनधर्मकी सदा उपासना करना चाहिये । इसके प्रभावसे कुत्ताभी देवता होता है । मनुष्य इस धर्मके सेवनसे सर्व जगतका नाथ अर्थात् जिनेश्वर तीर्थंकर होता है । मुनियोंको विषयभूत-मुनियोंको आचरणयोग्य धर्म क्षमादिरूप है । उसके क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य ऐसे दस भेद हैं । पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति इसको चारित्रधर्म कहते हैं यह मुक्तिका दाता है । संसारदुःखसे छुडाकर जो मनुष्यको उत्तमसुखके स्थानमें मोक्षमें स्थापन करता है, अमृतधाममें स्थापन करता है वह उत्कृष्ट धर्म माना है । मोहसे उत्पन्न हुए रागद्वेष जिसमें नहीं हैं, तथा वचनव्यापार और शरीर व्यापारभी जिसमें नहीं है ऐसी जो शुद्ध चैतन्यरूप-बुद्धि उसे धर्मसंज्ञासे विद्वान वर्णन करते हैं । आत्माकी जो निर्मलता-परिणामोंकी अत्यंत शुद्धता वह धर्म है और उससे मुक्तिपद प्राप्त होता है । इस शुद्धिके बिना जीवोंको हेय क्या है और उपादेय ग्राह्य क्या है ? समझमें नहीं आता है । उत्तम आत्मध्यानही धर्म है । स्वरूपका चिन्तनही उत्तम तप है । स्वरूपमें तत्पर रहना उत्कृष्ट ज्ञान है और आत्मामें एकाग्र चित्त होनाही उत्तम सुख है । यदि अपनी आत्माका ज्ञान नहीं होगा तो अपना स्वरूप नहीं प्राप्त होगा इस लिये अन्य सर्व कार्य छोडकर आत्मस्वरूपमें स्थिर होना चाहिये ॥ ११७-१२३ ॥

[धर्म, भीम, अर्जुनोंको मुक्ति प्राप्ति और नकुल सहदेव मुनिको सर्वार्थसिद्धिलाभ] ऐसी अनुप्रेक्षाओंके चिन्तनसे उनकी विषयविरक्तता अक्षोभ्य हुई अर्थात् अतिशय दृढ हुई । योग्यही है, कि समर्थ कारण मिलनेपर सज्जनोंका स्वभाव व्यवस्थित होता है अर्थात् दृढ होता है । ये पांच पाण्डव शरीर, इंद्रिय आदि परिग्रहोंको तृणके बराबर तुच्छ मानने लगे । योग्यही है, कि अमृत हाथमें आनेपर कौन चतुर पुरुष विषसेवन करेंगे । मनोयोगका रोध कर शुद्धयोगको

निरुध्येति मनोयोगं शुद्धयोगं समाश्रिताः । श्रेणिमारुरुहुस्तूर्णं क्षपकां पाण्डवास्त्रयः ॥१२६
शुद्धध्यानं समाध्यास्य प्रबुद्धाः शुद्धचेतसि । ते ध्यायन्ति निजात्मानं निर्विकल्पेन चेतसा ॥
अधःकरणमाराध्य स्वापूर्वकरणस्थिताः । आयुर्मुक्तास्तदा ते चानिवृत्तिकरणं श्रिताः ॥१२८
समातपादिदुःकर्मत्रयोदशविनाशकाः । अष्टाविंशतिदग्वृत्तमोहशातनसङ्कटाः ॥१२९
पञ्चध्यावरणध्वंसे नवदग्वृतिवारणे । पञ्चविघ्नौघघातार्थं तेऽभूवंश्च समुद्यताः ॥१३०
त्रिषष्टिप्रकृतेरेवमप्रमत्तादितः क्षयम् । व्यधुः क्षीणकषायान्ते प्रथमाः पाण्डवास्त्रयः ॥१३१

उन्होंने आश्रय लिया। और तीन पाण्डव (नकुल सहदेवको छोडकर) शीघ्र क्षपकश्रेणीपर चढने लगे। महाविद्वान् पूर्वश्रुतधर वे तीन पाण्डवमुनि शुक्लध्यानपर आरोहण करके निर्विकल्प मनमें-रागद्वेषरहित मनसे शुद्ध मनमें-अपनी आत्माके स्वरूपमें एकाग्रचित्त हो गये ॥ १२४-१२७ ॥ अधःकरणकी आराधना करके वे पाण्डवत्रिक अपूर्वकरणके परिणाम धारण करने लगे। अनंतर नरकायु, तिर्यगायु और देवायुके बंधसे रहित वे अनिवृत्तिकरणगुणस्थानमें आये। (अधःकरणमें जो काल है उसमें ऊपरके समयवर्ती जीवोंके परिणाम नीचेके समयवर्ती जीवोंके परिणामोंके सदृश अर्थात् संख्या और विशुद्धिकी अपेक्षा समान होते हैं। क्षपकश्रेणिमें चढनेके पूर्व होनेवाले परिणामोंको आगममें अधःप्रवृत्त-करण कहा है। चारित्र-मोहनीयके अप्रत्याख्याना-वरण क्रोधादिक चार कषाय, प्रत्याख्यानके चार कषाय, संज्वलनके चार कषाय ऐसे बारह कषाय तथा नौ नोकषाय ऐसे इकीस कषायोंका क्षय करनेके लिये अधःकरणादि तीन प्रकारके परिणाम चरमशरीरधारी मुनिको होते हैं इन तीन परिणामोंसे प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता हो जाती है। इन परिणामोंसे कर्मोंका क्षय, स्थितिखण्डन, अनुभागखण्डन होता है। अपूर्व-करण गुणस्थानमें पूर्वमें कभी नहीं हुए थे ऐसे विशुद्ध परिणाम होते हैं। इस गुणस्थानमें समसमयमें वर्तमान जीवोंके परिणाम सदृश विसदृश दोनोंही होते हैं परंतु भिन्न समयमें स्थित जीवोंके परि-णामोंमें कभीभी समानता नहीं होती हैं। अनिवृत्ति-करण-गुणस्थानमें वर्तमान जीवके परिणाम समसमयमें जीवोंके समानही होते हैं और भिन्न समयमें स्थित जीवोंके परिणाम विसदृशही होते हैं। इस गुणस्थानमें इन परिणामोंसे आयुकर्मके विना बचे हुए सात कर्मोंकी गुणश्रेणि निर्जरा गुण संक्रमण, स्थितिखंडन और अनुभागखंडन होता है, तथा मोहनीय कर्मकी बादर कृष्टि, सूक्ष्म-कृष्टि आदिक होती है ॥ १२८ ॥ आतपादिक अशुभकर्मोंकी तेरा प्रकृतियोंका उन्होंने नाश किया दर्शन मोहनीय और चारित्र-मोहनीयकी अठ्ठाईस प्रकृतियोंको नष्ट करनमें वे तीन पाण्डवमुनि महाभट थे। पांच ज्ञानावरणकर्मके ध्वंसके लिये और दर्शनावरणकी नौ प्रकृतियोंका नाश करनेके लिये तथा पांच अन्तरायकर्मके विनाशार्थ वे उद्युक्त हुए ॥ १२९-१३० ॥ अप्रमत्त गुणस्थानसे क्षीण-कषाय गुणस्थानके अन्ततक उन प्रथमके तीन पाण्डवोंने त्रिसठ प्रकृतिओंका क्षय किया ॥ १३१ ॥

केवलज्ञानमुत्पाद्य घातिकर्मनिबर्हणात् । अन्तकृत्केवलज्ञानभाजिनः शिवमुद्ययुः ॥१३२
युधिष्ठिरमहाभीमपार्थाः पृथ्वीं वराष्टमीं । मुक्त्वा भेजुः शिवस्थानं तनुवाते शिवाश्रिते ॥
सम्यक्त्वाद्यष्टसुस्पष्टगुणा मोहविवर्जिताः । अनन्तानन्तशर्माणोऽभूवंस्ते सिद्धिसंगताः ॥१३४
पञ्चससारनिर्मुक्ता बुभुक्षाक्षयसंगताः । पिपासापीडनोन्मुक्ता भयनिद्राविदूरगाः ॥१३५
अनन्तानन्तकालं ये भोक्ष्यन्ते चाक्षयं सुखम् । ते सिद्धा नः शिवं दद्युः पूर्णसर्वमनोरथाः ॥
तत्कैवल्यसुनिर्वाणे युगपन्निखिलामराः । ज्ञात्वागत्य व्यधुस्तेषां कल्याणद्वयसूत्सवम् ॥१३७
मद्रीजावथ मुक्ताघौ किंचित्कालुष्यसंगतौ । प्रापतुश्चोपसर्गेण मृत्युं तौ स्वर्गसन्मुखौ ॥१३८
सर्वार्थसिद्धिमासाद्य त्रयस्त्रिंशन्महार्णवान् । स्थास्यतस्तत्र तौ देवावहमिन्द्रपदं श्रितौ ॥१३९
ततश्च्युत्वा समागत्य नृलोके नरतां गतौ । सेत्स्यतस्तपसा तौ द्वौ परात्मध्यानधारिणौ ॥
राजीमती तथा कुन्ती सुभद्रा द्रापदी पुनः । सम्यक्त्वेन समं वृत्तं वव्रिरे ता वृषोद्यताः ॥

तिरसठ प्रकृतियाँ इस प्रकार समझनी चाहिये। ज्ञानावरणकी ५ दर्शनावरणकी ९ मोहनीयकी २८ अंतरायकी ५ ऐसी घाति–कर्मोंकी ४७ प्रकृतियां। मनुष्यायु छोडकर तीन आयु तथा साधारण, आतप, पंचेन्द्रियजातिरहित चार जाति, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्व्य, स्थावर, सूक्ष्म, तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, उद्योत ऐसे तिरसठ प्रकृतिओंका विनाश पाण्डवोंने किया। घातिकर्मोंका नाश करनेसे उनको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई। अन्तकृत्–केवलज्ञानी होकर वे मुक्तिको प्राप्त हुए अर्थात् केवलज्ञान और मोक्ष इनकी उनको समसमयमें प्राप्ति हुई ॥ १३२ ॥ युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन उत्तम आठवी पृथ्वीको छोडकर अर्थात् उस पृथ्वीके ऊपर तनुवातवलयमें जो कि सिद्धपर-मेष्ठियोंसे आश्रित है ऐसे शिवस्थानमें जाकर विराजे ॥ १३३ ॥ वे पाण्डव अर्थात सिद्धपरमेष्ठी आठों कर्मोंका नाश होनेसे सम्यक्त्वादिक आठ स्पष्टगुणोंसे युक्त हुए। मोहरहित, अनंतानंत मुक्ति–लक्ष्मीसे आलिंगित हुए ॥ १३४ ॥ सम्यक्त्वगुण, अनन्तज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य, अव्या-बाध, अवगाहन, सूक्ष्म, और अगुरुलघु ऐसे आठ गुणोंसे वे सिद्धपरमात्मा हुए। पांच प्रकारके संसारसे तथा भूख, प्यास, भय, निद्रा आदिसे रहित, अनंतानंत कालतक अक्षय सुख भोगनेवाले, जिनके सर्व मनोरथ पूर्ण हुए हैं वे पाण्डव सिद्धपरमात्मा हमें शाश्वत–सुख प्रदान करें। उनको केवलज्ञान तथा मोक्ष प्राप्त हुआ जानकर सभी देवोंने आकर दोनों कल्याणकोंका उत्सव किया ॥१३५-१३७॥ जिनका पातक नष्ट हुआ है और जिनके मनमें अत्यल्पकषाय रहा था ऐसे वे मद्रीके पुत्र नकुल तथा सहदेव मुनि जो कि स्वर्गके सन्मुख हुए थे उपसर्गसे मृत्युके वश हुए। वे सर्वार्थसिद्धि अनुत्तर विमा-नको प्राप्त होकर तेतीस सागरोपम कालतक वहां रहेंगे। वे वहां अहमिन्द्रपदके धारक देव हुए हैं। वहांसे च्युत होकर वे मनुष्यलोकमें आकर महापुरुष होंगे। परमात्माके ध्यानमें तत्पर वे दोनों महापुरुष तपश्चरण कर मुक्त होंगे ॥ १३८-१४० ॥

चिरं प्रपाल्य चारित्रं शुद्धसम्यक्त्वसंयुताः । जघ्नुस्त्रैणमयं घोरं ता विघ्नौघविघातिकाः ॥
स्वायुरन्ते च संन्यस्य स्वाराधनचतुष्टयम् । मुक्तासवः समाराध्य जग्मुस्ताः षोडशं दिवम् ॥
सुरत्वसंश्रिताः सर्वाः पुंवेदोदयभाजिनः । सामानिकसुरा भूत्वा तत्रत्यं भुञ्जते सुखम् ॥१४४
द्वाविंशत्यब्धिपर्यन्तं सातं संसेव्य स्वर्भवम् । प्राणातीताः सुपर्वाणः संयास्यन्ति परासुताम् ॥
ते नृलोके नृतामेत्य तपस्तप्त्वा सुदुस्तरम् । ध्यानयोगेन सेत्स्यन्ति कृत्वा कर्मक्षयं नराः ॥
अथ नेमीश्वरो धीमान्विविधान्विषयान्वरान् । विहृत्य सुरसंसेव्यमागाद्रैवतकाचलम् ॥ १४७
माससमात्रावशेषायुः संहृत्य स ध्वनद्ध्वनिम् । योगं च निष्क्रियस्तस्थौ पर्यङ्कासनसंगतः ॥
गुणस्थानं समासाद्यान्तिमं श्रीनेमितीर्थकृत् । पञ्चाशीतिप्रकृतीनां क्षयं निन्ये जिनाधिपः ॥
शुक्ले शुचौ च सप्तम्यां षट्त्रिंशदधिकैः सह । प्राप पञ्चशतैर्मुक्तिं योगिभिर्नेमिनायकः ॥१५०
सुरासुराः समायाताः सिद्धिसंगमहोत्सवे । कृत्वा निर्वाणकल्याणं ययुस्तद्गुणवाञ्छकाः ॥

[कुन्ती, द्रौपदी आदिकोंको अच्युतस्वर्गमें देवपदप्राप्ति] राजीमती, कुन्ती, सुभद्रा और द्रौपदी ये चार महासध्वी आर्यिकायें धर्ममें तत्पर होकर सम्यक्त्वके साथ चारित्रको धारण करने लगीं। उन शुद्ध सम्यक्त्वको धारण करनेवालीओंने दीर्घ कालतक चारित्रका पालन किया। विघ्न-समूहका विनाश करके उन्होंने भयंकर दुःखदायक स्त्रीपर्यायका नाश किया। आयुष्यके समाप्ति कालमें उन्होंने शरीरसल्लेखना व कषायसल्लेखना धारण की। दर्शनादिक चार आराधनाओंकी आराधना करके प्राण छोडकर सोलहवे स्वर्गमें प्रयाण किया ॥ १४१–१४३ ॥ वे सर्व आर्यिकायें पुंवेदको धारण करनेवाले देवत्वसे युक्त सामानिक देव हुई। अब वे स्वर्गीय देव-सुखका अनुभव कर रही हैं। बाईस सागरोपम कालतक स्वर्गीय-सुख सेवन कर वे देव प्राणोंको छोडकर मृत्युवश होंगे ॥ १४४–१४५ ॥ वे देव इस मनुष्य लोकमें मनुष्य होकर दुर्धर तपश्चरण करके शुक्ल-ध्यानके द्वारा कर्मक्षय करके सिद्ध होंगे ॥ १४६ ॥

[नेमिप्रभुका निर्वाणोत्सव] तदनंतर केवलज्ञानी नेमिजिनेश्वर अनेक उत्तम-आर्य देशोंमें विहार करके देवोंसे सेवित होते हुए रैवतकपर्वतपर आये। जब उनकी आयु एक मासकी रही तब उन्होंने दिव्यध्वनि और योगका उपसंहार किया अर्थात् दिव्यध्वनिसे उपदेश देना बंद किया और विहारभी बंद किया। क्रियारहित होकर पर्यंकासनसे वे बैठ गये। अयोग-केवल नामक अन्तिम–चौदहवां गुणस्थान प्रभु नेमितीर्थकरने धारण किया। उसमें पचासी कर्म प्रकृति-योंका नाश किया। आषाढ शुक्ल सप्तमीके दिन पांचसौ छत्तीस मुनियोंके साथ श्रीनेमिप्रभु मुक्त हुए। प्रभुके मुक्ति-लक्ष्मीके संगमके उत्सवमें देव और असुर आये। प्रभुके गुणोंको चाहनेवाले देवोंने उनका निर्वाण-कल्याण किया अनंतर वे स्वस्थानमें चले गये ॥ १४७–१५१ ॥

भिल्लो विन्ध्यनगे वणिग्वरगुणश्चेभ्यादिकेतुः सुरैः
चिन्तार्यातिखगेण्महेन्द्रसुमना भूपोऽपराद्विजितः।
सोऽप्यादच्युतनायको नरपतिः स्वादिप्रतिष्ठोऽप्यह-
मिन्द्रो यश्च जयन्तके नरनुतो नेमीश्वरो वः प्रभुः ॥१५२

येऽभूवन्परमोदया द्विजवरा विद्वज्जनैः संस्तुताः
तप्त्वा तीव्रतपो विशुद्धमनसा नाकेऽच्युते निर्जराः।
संजाता वृषपुत्रभीमसुरराट्पुत्राश्च मद्रीसुतौ
याता मोक्षपदं त्रयश्च दिविजौ जातौ श्रिये सन्तु ते ॥१५३

नेमिः शं वो दिशतु दुरितं दीर्णभावं विधाय
दीप्यद्देवो दलितदवथुर्दर्पदावाग्निकन्दः।
मन्दस्कन्दो द्रुततरदमो दिव्यचक्षुर्दवीयः
कीर्तिर्दाता दममयमहादेहदीप्तिः प्रदर्शी ॥१५४

[नेमिप्रभुके पूर्वभवोंका कथन] पहिले भवमें विन्ध्यपर्वतपर भिल्ल हुए, दूसरे भवमें इभ्य-केतु नामक श्रेष्ठी, तीसरे भवमें स्वर्गमें देव, चौथे भवमें चिन्तागति नामक विद्याधर, पांचवे भवमें माहेन्द्र स्वर्गमें देव, छट्टे भवमें अपराजित राजा, सातवे भवमें अच्युतेन्द्र, आठवे भवमें सुप्रतिष्ठ राजा, नौवे भवमें जयन्त अनुत्तरमें अहमिन्द्र और दसवे भवमें सर्व मनुष्योंसे प्रशंसनीय नेमिजिन हुए। वे तुम्हारे प्रभु हैं ॥ १५२ ॥

[पाण्डव-भवकथन] जो उत्तम उन्नतिके धारक विद्वानोंसे प्रशंसायोग्य ऐसे श्रेष्ठ ब्राम्हण हुए। निर्मल मनसे तीव्र तप करके जो अच्युतस्वर्गमें सामानिक देव हुए। तदनंतर वहांसे च्युत होकर क्रमसे धर्मपुत्र (युधिष्ठिर), भीम, सुरराट्पुत्र—इन्द्रपुत्र अर्जुन, और मद्रीसुत-नकुल और सहदेव ऐसे पांच पाण्डव हुए। इनमें तीनोंको कुन्तीके पुत्रोंको मोक्षपद प्राप्त हुआ और नकुल सहदेव सार्वार्थसिद्धिमें देव हुए। वे आपको लक्ष्मी प्रदान करें ॥ १५३ ॥

[नेमिप्रभुको पाप विनाशार्थ प्रार्थना] जो प्रकाशमान भामंडलके धारक तीर्थकर हैं, जिन्होंने कर्मसंताप दूर किया है। जो मदनरूपी दावानलको शांत करनेके लिये मेघके समान हैं। जिन्होंने अज्ञानका नाश किया। और अतिशय शीघ्र दम—जितेन्द्रियता धारण की। जो दिव्यचक्षुके—केवल-ज्ञानके धारक हैं। जिनकी कीर्ति दूर फैली है। जो भव्योंको अभयदान देते हैं अर्थात् दिव्यध्वनि-के द्वारा हितोपदेश देते हैं। जितेन्द्रियस्वरूप और महाकान्तियुक्त देहके धारक और केवलदर्शनसे सर्व लोगोंको देखते थे वे प्रभु नेमिनाथ पापको विदीर्ण करके आपको सुख देवें ॥ १५४ ॥

क्वेदं चरित्रं क मम प्रबोधः श्रीगौतमाद्यैः कथितं विशालम् ।
आच्छादनैश्छादितसर्वभागो ज्ञानस्य सोऽहं प्रयते तथापि ॥१५५
बालोऽन्तरीक्षगणनं न करोति किं वा, भेकोऽपि सिन्धुपयसां गणनां न वा किम् ।
रङ्कः स्ववीर्यनिचयं विवृणोति किं न, सोऽहं तथा वरकथां कथयामि कांचित् ॥
संप्रार्थयामि नितरां वरसाधुसिंहान्, सच्छास्त्रदूषणहरान्परतोषदातॄन् ।
किं प्रार्थयामि नितरामसतः प्रयत्नाच्छास्त्रस्य दूषणकरान्परदोषदातॄन् ॥१५७
ये साधवः क्षितितले परकार्यरक्ता, दोषालयेऽपि विकृतिं न भजन्ति सर्गात् ।
नक्षत्रवंशविभवेऽपि किरन्ति तोषं, शुभ्रांशवो निजकरैः परितर्पयन्ति ॥१५८
ये दुष्टतामससमूहगता विमार्गे, शुभ्रांशुमार्गगहने कृतनित्यचित्ताः ।
पङ्कावलिप्तनिजदेहभरा भृशं वै, तेऽसाधवोऽन्धतमसं प्रकिरन्ति लोके ॥१५९
सन्तोऽसन्तो ये भुवि जाताः स्थाने स्थाने तत्खलु कृत्यम् ।
नो चेदेषां कः परिवेत्ता काचाभावे रत्नमिवात्र ॥१६०

[कविकी नम्रता] श्रीगौतमादि ऋषियोंका कहा हुआ यह विशाल पाण्डव-चरित्र कहां और मेरा ज्ञान कहां। मेरे ज्ञानके अंश तो ज्ञानावरणोंसे आच्छादित हुए हैं तथापि मैंने इसकी रचनामें प्रयत्न किया हैं ॥ १५५ ॥ अथवा क्या बालक आकाशकी गणना नहीं करता है ? क्या मेंढकभी समुद्रके पानीकी गणना नहीं करता है ? क्या दुर्बल मनुष्यभी अपने सामर्थ्य प्रगट नहीं करता है ? वैसे मैंनेभी यह सुंदर कथा संक्षेपसे कही है ॥ १५६ ॥ जो उत्तमशास्त्रोंमेंसे दोषोंको हटाते हैं। जो अन्यजनोंको आनंदप्रदान करते हैं ऐसे उत्तम साधुसिंहोंकी मैं अतिशय प्रार्थना करता हूं। परंतु जो प्रयत्नसे शास्त्रको दूषित करते हैं तथा लोगोंको दोष देते हैं उन दुष्टोंकी क्यों प्रार्थना करूं ? प्रार्थना करनेसेभी वे प्रसन्न नहीं होते हैं ॥ १५७ ॥ जो साधुगण इस भूतलपर हमेशा परकार्य करनेमें अनुरक्त होते हैं। वे दोषोंके घर ऐसे मनुष्यपरभी स्वभावसे विकारयुक्त नहीं होते हैं। योग्यही है, कि चंद्र नक्षत्रसमूहका वैभव होनेपरभी उनके ऊपर संतोष-शांतिकी वर्षा करते हैं और अपनी किरणोंसे उनको सुखी करते हैं ॥ १५८ ॥ जो असत्पुरुष हैं वे दुष्ट तामससमूहमें-दुष्ट दुर्जनसमूहमें रहना पसंद करते हैं, खोटे मार्गमें उनका मन हमेशा तत्पर होता है और शुभ्रांशुमार्गमें-निर्मल मार्गके संकटमें वे मनसे प्रवृत्त होते हैं। उनके देह पापसे अत्यंत लिप्त होते हैं, ऐसे दुष्ट पुरुष जगतमें घन अज्ञानको फैलाते हैं ॥ १५९ ॥ इस भूतलमें जो सज्जन और दुर्जन उत्पन्न हुए हैं उनके कृत्य स्थान स्थानमें दीखते हैं। यदि उनके कार्य नहीं दीखते तो उनको कौन जानता ? जैसे काचके अभावमें यहां रत्न नहीं जाना जाता ॥ १६० ॥ मैं उन उत्तम साधुसमूहोंको क्या प्रार्थना करूं जो दूसरोंके गुणोंकीही प्रशंसा करते हैं। दैवयोगसे दोष

किं प्रार्थयामि भुवि तान्वरसाधुवर्गाञ्जल्पन्ति ये परगुणानगुणाम दैवात् ।
दोषेऽपि ये न ददते हितकारिदण्डं, ते तुष्टभावनिवहा भुवने विभान्ति ॥१६१
निष्कास्य दोषकणिकां भुवि दर्शयन्ति, आदाय दोषमखिलं परिजल्पयन्ति ।
अन्यस्य दोषकथने च सदा विनिद्रा, ये प्रार्थयामि खलु तानसतः प्रबुद्धान् ॥१६२
कृत्वा पवित्रं परमं पुराणं तेषां च नो राज्यसुखं लिलिप्सुः ।
अहं परं मुक्तिपदं प्रयाचे त्वद्भक्तितः सर्वमिदं फलि स्यात् ॥१६३
यदत्र सल्लक्षणयुक्तिहीनं छन्दःस्वलंकारविरुद्धकेन ।
शोध्यं बुधैस्तत्खलु शुद्धभावाः परोपकाराय बुधा यतन्ते ॥१६४
छन्दांस्यलङ्कारगणान्न वेद्मि काव्यानि शास्त्राणि पराण्यहं च ।
जैनेन्द्रकालापकदेवनाथसच्छाकटादीनि च लक्षणानि ॥१६५
त्रैलोक्यसारादिसुलोकग्रन्थान्सद्गोमटादीन्वरजीवहेतून् ।
सत्तर्कशास्त्राष्टसहस्रवीशान् नो वेद्म्यहं मोहवशीकृतान्तः ॥१६६

दीखनेपरभी हितकारक दण्डभी–शासनभी नहीं करते हैं ऐसे वे सज्जन इस भूतलमें शोभते हैं । ॥ १६१ ॥ जो अन्य जनोंकी दोष कणिकाको देखते हैं । सब दोष ग्रहण करके जगतमें कहते फिरते हैं । दुसरोंके दोष कथनमें जो हमेशा निद्रारहित होते हैं उन दुष्ट विद्वानोंको मैं निश्चयसे प्रार्थना करूंगा ॥१६२॥ उन पाण्डवोंका पवित्र पुराण रचकर मैं राज्यसुखको नहीं चाहता हूं । परंतु मैं केवल मुक्तिपदकी याचना करता हूं । क्यों कि भक्तिसे सब सफल होता है अर्थात् भक्तिसे चाहा हुआ पदार्थ मिलता है ॥१६३॥ मैंने रचे हुए इस पाण्डवपुराणमें जो उत्तम लक्षणरहित और रचना–हीन छन्द रचा गया होगा । जिसमें व्याकरण और छन्दःशास्त्रकी अपेक्षा दोष रहे होंगे । उपमादिक अलंकारके विरुद्धभी रचना की गयी होगी । उसका संशोधन निर्मलबुद्धिवाले विद्वान् करें । क्यों कि सुज्ञलोक परोपकारके लिये प्रयत्न करते हैं । काव्य और अन्यशास्त्रोंकाभी मुझे बोध नहीं है । जैनेन्द्रव्याकरण, कालापव्याकरण (कांतत्र व्याकरण), देवनाथव्याकरण इन्द्रव्याकरण और शाकटायन–व्याकरण आदि व्याकरणोंको मैं नहीं जानता हूं ॥ १६४–१६५ ॥ त्रैलोक्यसारादिक लोकवर्णनवाले ग्रंथ, गोमटसारादिक जीवके हेतुभूत ग्रंथ–जीवका स्वरूप बतानेवाले ग्रंथ, मैं नहीं जानता हूं तथा उत्तम तर्कशास्त्र ऐसे अष्टसहस्री आदिक ग्रंथोंको मैं नहीं जानता हूं, क्यों कि मेरा मन मोहके वश हुआ है अज्ञ है ॥ १६६ ॥ इस तरहसे संपूर्ण, उत्तम, प्रशस्त और प्रकर्षयुक्त

१ ' सत्तर्कशास्त्राष्टसहस्रकादीन् ' इति पाठः स्यादत्र ।

ताहग्विधोऽहं प्रगुणैर्जिनेशं स्तुवंश्च सद्भिः सकलैः परैश्च ।
क्षाम्यः सदा कोपगमं विहाय बाल्ये जने को हि हितं न कुर्यात् ॥१६७

[कविप्रशस्तिः]

श्रीमूलसङ्घेऽजनि पद्मनन्दी तत्पट्टधारी सकलादिकीर्तिः ।
कीर्तिः कृता येन च मर्त्यलोके शास्त्रार्थकर्त्री सकलापि चित्रा ॥१६८
भुवनकीर्तिरभूद्भुवनाद्भुतैर्भवनभासनचारुमतिः स्तुतः ।
वरतपश्चरणोद्यतमानसो भवभयाहिखगेट् क्षितिवत्क्षमी ॥१६९
चिद्रूपवेत्ता चतुरश्चिरन्तनश्चिद्भूषणश्चर्चितपादपङ्कजः ।
सूरिश्च चन्द्रादिचयैश्चिनोतु वै चारित्रशुद्धिं खलु नः प्रसिद्धाम् ॥१७०
विजयकीर्तियतिर्मुदितात्मको जितततान्यमतः सुगतैः स्तुतः ।
अवतु जैनमतं सुमतो मतो नृपतिभिर्भवतो भवतो विभुः ॥१७१
पट्टे तस्य गुणाम्बुधिर्व्रतधरो धीमान्गरीयान्वरः
श्रीमच्छ्रीशुभचन्द्र एष विदितो वादीभसिंहो महान् ।

ऐसे गुणोंसे जिनेश्वरकी–नेमिप्रभुकी स्तुति करनेवाला अज्ञानी मैं कोपको छोडकर आपसे क्षमा करने योग्य हूं। योग्यही है, कि अज्ञ जनमें कौन हित नहीं करेगा ॥ १६७ ॥

[कविप्रशस्ति ।] श्रीमूलसंघमें पद्मनंदि नामक आचार्य हुए। उनके पट्टपर सकलकीर्ति भट्टारक आरूढ हुए। उन्होंने इस मनुष्यलोकमें शास्त्रार्थ करनेवाली नानाविध और पूर्ण ऐसी कीर्ति की है। अर्थात् प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोगके अनेक ग्रंथ रचकर अपनी कीर्ति शास्त्रार्थकर्त्री की है ॥ १६८ ॥ भुवनमें आश्चर्ययुक्त भुवनकीर्ति नामक आचार्य जो कि जगतको प्रकाशित करनेवाली सुंदर बुद्धिके धारक थे, विद्वानोंसे प्रशंसे गये हैं। ये भुवनकीर्ति उत्तम तपश्चरणमें हमेशा उद्युक्तचित्तवाले थे, संसारभयरूपी सर्पको गरुड थे और पृथ्वीके समान क्षमावान् थे ॥ १६९ ॥ इनके अनंतर चैतन्यके स्वरूपको जाननेवाले, चतुर, कर्पूर, चंदन आदि द्रव्योंके–समूहसे जिनके चरणकमल पूजे गये हैं ऐसे चिरन्तन–वृद्ध, अनुभवी चिद्भूषणसूरि–ज्ञानभूषणसूरि हमारी प्रसिद्ध चारित्र–शुद्धिकी वृद्धि करे ॥ १७० ॥ जिनका आत्मा हमेशा आनंदित है, जिन्होंने विस्तीर्ण अन्यमतोंको जीता है, विद्वानोंने जिनकी स्तुति की है, जो नृपतियोंको मान्य हैं, जो उत्तम मतके धारक हैं अर्थात् स्याद्वादी हैं वे विजयकीर्ति प्रभु (भट्टारक) जैनमतकी तथा आपकी भवसे–संसारसे रक्षा करें ॥ १७१ ॥ उन विजयकीर्तिके पट्टपर गुणसमुद्र, व्रतधारक, ज्ञानवान्, महान्, श्रेष्ठ, श्रीमान्, महावादिरूपी हाथियोंको सिंह ऐसा यह

तेनेदं चरितं विचारसुकरं चाकारि चञ्चद्रुचा
पाण्डोः श्रीशुभसिद्धिसातजनकं सिद्ध्यै सुतानां मुदा ॥१७२

[कविविरचितग्रन्थानां नामावलिः]

चन्द्रनाथचरितं चरितार्थं पद्मनाभचरितं शुभचन्द्रम् ।
मन्मथस्य महिमानमतन्द्रो जीवकस्य चरितं च चकार ॥१७३
चन्दनायाः कथा येन दृब्धा नान्दीश्वरी तथा ।
आशाधरकृतार्चायां वृत्तिः सद्वृत्तिशालिनी ॥१७४
त्रिंशच्चतुर्विंशतिपूजनं च सद्वृद्धसिद्धार्चनमाव्यधत्त ।
सारस्वतीयार्चनमत्र शुद्धं चिन्तामणीयार्चनमुच्चरिष्णुः ॥१७५
श्रीकर्मदाहविधिबन्धुरसिद्धसेवां नाना गुणौघगणनाथसमर्चनं च ।
श्रीपार्श्वनाथवरकाव्यसुपञ्जिकां च, यः संचकार शुभचन्द्रयतीन्द्रचन्द्रः ॥१७६

प्रसिद्ध शुभचन्द्र भट्टारक हुआ है। चमकनेवाली कांति जिसकी है ऐसे इस शुभचन्द्रने विचारसुलभ, शुभ, सिद्धि और सुख देनेवाला पाण्डुराजाके पुत्रोंका चरित आनंदसे रचा हैं॥ १७२ ॥

[कविविरचित ग्रंथोंकी नामावली] उत्तम अर्थसे भरा हुआ चन्द्रनाथचरित्र, शुभ और आनंददायक पद्मनाभचरित्र, 'प्रद्युम्नकी महिमा' अर्थात् प्रद्युम्नचरित्र और जीवकका चरित्र अर्थात् जीवंधरचरित्र ऐसे ग्रंथ आलस्यरहित होकर श्रीशुभचन्द्राचार्यने बनाये हैं ॥ १७३ ॥ इस शुभ चन्द्रभट्टारकने 'चन्दनाकी कथा रची है तथा नांदीश्वरी कथा--नन्दीश्वरव्रतकी कथा रची है। उत्तम रचनासे शोभनेवाली आशाधरकृत आचारशास्त्रके ऊपर वृत्ति लिखी है अर्थात् आशाधरकृत अनगारधर्मामृतके ऊपर टीका लिखी है ॥१७४॥ 'त्रिंशच्चतुर्विंशति पूजन' तीस चोवीस तीर्थकरोंका पूजन अर्थात् पांच भरतक्षेत्र और पांच ऐरावतक्षेत्रके त्रिकालवर्ति सातसौ वीस तीर्थकरोंका पूजन, उत्तरोत्तर बढनेवाला सिद्धोंके गुणोंका पूजन, जिसको सद्वृद्धसिद्धार्चन कहते हैं, रचा है। शुद्ध सरस्वतीयार्चन--(सरस्वतीवलयका पूजन) चिन्तामणीयार्चन, इन ग्रंथोंकी रचना की है। श्रीकर्मदाहविधि जिसमें सिद्धोंका सुंदर पूजन है ऐसा ग्रंथ अर्थात् कर्मदहनव्रतका उद्यापन रचा है। नाना गुणसमूहसे युक्त गणनाथसमर्चन अर्थात् चौदहसो बावन गणधरोंकी पूजा रची है। यतीन्द्रोंमें चंद्रके समान शुभचंद्रसूरीने वादिराज कवीके 'पार्श्वनाथ-चरित्र' काव्यके ऊपर उत्तम पञ्जिका लिखी है। जिसने पल्योपमविधि की उद्यापन प्रकाशयुक्त किया है। जिसके बारासौ चौतीस भेद हैं ऐसे चारित्रशुद्धि

---

1 [आशाधरकृतार्चाया]

उद्यापनमदीपिष्ट पल्योपमविधेश्च यः । चारित्रशुद्धितपसश्चतुस्त्रिंद्वादशात्मनः ॥१७७

संशयवदनविदारणमपशब्दसुखण्डनं परं तर्कम् ।
सत्तत्त्वनिर्णयं वरस्वरूपसम्बोधिनीं वृत्तिम् ॥१७८
अध्यात्मपद्यवृत्तिं सर्वार्थापूर्वसर्वतोभद्रम् ।
योऽकृत सद्व्याकरणं चिन्तामणिनामधेयं च ॥१७९
कृता येनाङ्गप्रज्ञप्तिः सर्वाङ्गार्थप्ररूपिका ।
स्तोत्राणि च पवित्राणि षड्वादाः श्रीजिनेशिनाम् ॥१८०

तेन श्रीशुभचन्द्रदेवविदुषा सत्पाण्डवानां परम्
दीप्यद्वंशविभूषणं शुभभरभ्राजिष्णुशोभाकरम् ।
शुम्भद्भारतनाम निर्मलगुणं सच्छब्दचिन्तामणिम्
पुष्यत्पुण्यपुराणमत्र सुकरं चाकारि प्रीत्या महत् ॥१८१
शिष्यस्तस्य समृद्धिबुद्धिविशदो यस्तर्कवेदी वरो
वैराग्यादिविशुद्धिवृन्दजनकः श्रीपालवर्णी महान् ।
संशोध्याखिलपुस्तकं वरगुणं सत्पाण्डवानामिदम्
तेनालेखि पुराणमर्थनिकरं पूर्वं वरे पुस्तके ॥१८२
श्रीपालवर्णिना येनाकारि शास्त्रार्थसंग्रहे ।

तप नामक व्रतका उद्यापन भी प्रकाशयुक्त किया है ॥ १७५--१७६ ॥ 'संशयवदनविदारण 'अपशब्दसुखण्डन' नामक तर्कग्रंथ, 'सत्तत्त्व-निर्णय' स्वरूपसंबोधिनी टीका अध्यात्मपद्योंके ऊपर टीका अर्थात् नाटक समयसारके कलशोंपरकी टीका, सर्वार्थापूर्व, सर्वतोभद्र, चिन्तामणिनामक व्याकरण, ऐसे ग्रंथ रचे हैं। सर्व अङ्गोंके अर्थका प्ररूपण करनेवाली 'अङ्गप्रज्ञप्ति' रची है। 'पवित्र-स्तोत्र' और जिनेश्वरोंके षड्वाद (षड्दर्शन) ऐसे ग्रंथ रचे हैं॥ १७७--१८० ॥

[पाण्डवपुराणका कर्तत्व] उज्ज्वलवंशका भूषण, पुण्यसमूहसे प्रकाशमान, शोभाका स्थान, सुंदर ऐसे भारत नामसे युक्त, निर्मलगुणोंसे पूर्ण, सज्जन पाण्डवोंके उत्तम पुण्यकी वृद्धि करनेवाला, उत्तम शब्दोंका मानो चिन्तामणि ऐसा सुलभ पाण्डवपुराण अथवा भारत नामक पुराण- ग्रंथ इस शुभचंद्रदेव विद्वानने रचा है ॥ १८१ ॥

[स्वशिष्य-प्रशंसा] उस शुभचंद्र भट्टारकका समृद्धिशाली, बुद्धिसे निर्मल, न्यायशास्त्रका ज्ञाता, वैराग्यादिगुणोंमें विशुद्धियोंको उत्पन्न करनेवाला, श्रेष्ठ, आदरणीय, श्रीपालवर्णी नामक शिष्य था। उसने यह पाण्डव--पुराण, जो कि गुणोंसे श्रेष्ठ और अर्थसे भरा हुआ है, प्रथमतः पूर्ण संशोधा

साहाय्यं स चिरं जीयाद्वरविद्याविभूषणः ॥१८३

ये श्रृण्वन्ति पठन्ति पाण्डवगुणं संलेखयन्त्यादरात्
लक्ष्मीराज्यनराधिपत्यसुरतां चक्रित्वशक्रेशिताम् ।
भुक्त्वा भोगमिदं पुराणमखिलं संबोभुवत्युन्नताः
मुक्तौ ते भवभीमनिम्नजलधिं सन्तीर्य सातं गताः ॥१८४

अर्हन्तो ये जिनेन्द्रा वरवचनचयैः प्रीणयन्तः सुभव्यान्
सिद्धाः सिद्धिं समृद्धिं ददत इह शिवं साधवः सिद्धिशुद्धाः ।
दृक्सद्बोधं सुवृत्तं जिनवरवचनं तीर्थराट्प्रोक्तधर्म-
स्तत्सच्चैत्यानि रम्या जिनवरनिलयाः सन्तु नस्ते सुसिद्ध्यै ॥१८५

यावच्चन्द्रार्कताराः सुरपतिसदनं तोयधिः शुद्धधर्मो
यावद्भूगर्भदेवाः सुरनिलयगिरिर्देवगङ्गादिनद्यः ।
यावत्सत्कल्पवृक्षास्त्रिभुवनमहिता भारते वै जगत्याम्
तावत्स्थेयात्पुराणं शुभशतजनकं भारतं पाण्डवानाम् ॥१८६

श्रीमद्विक्रमभूपतेर्द्विकहतस्पष्टाष्टसंख्ये शते
रम्येष्टाधिकवत्सरे सुखकरे भाद्रे द्वितीयातिथौ ॥

है, अनंतर उत्तम पुस्तकमें लिखा है। शास्त्रके अर्थसंग्रहमें जिसने साहाय्य किया है वह उत्कृष्ट विद्याका अलंकार धारण करनेवाला श्रीपालवर्णी चिरंजीव रहें ॥ १८२-१८३ ॥ पाण्डवगुणोंका वर्णन जिसमें है ऐसा यह पाण्डवपुराण जो भव्य सुनते हैं; पढते हैं तथा आदरसे लिखते हैं, वे लक्ष्मी, राज्य, मनुष्योंका प्रभुत्व, देवत्व, चक्रिपना, इंद्रत्व और भोगको भोगकर बार बार उन्नत होते हैं। और संसाररूपी भयंकरसमुद्रको तीरकर मुक्तिमें सुखको भोगते हैं ॥ १८४ ॥ जो अपने उत्तम वचनसमूहसे भव्योंको आनंदित करते हैं ऐसे अर्हत् जिनेन्द्र, सिद्धि और समृद्धिको देनेवाले सिद्धपरमेष्ठी, सिद्धिके लिये शुद्ध हुए साधु (आचार्य, उपाध्याय और साधुपरमेष्ठी) जो कि सुख देते हैं, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, जिनेश्वरकी वाणी, तीर्थकरोंका कहा हुआ धर्म, तीर्थकरोंकी प्रतिमायें, सुंदर जिनमंदिर ये सब हमारे सिद्धिके लिये होवें ॥ १८५ ॥ जबतक चन्द्र, सूर्य, तारा, इंद्रका वैजयन्त प्रासाद, समुद्र, तथा निर्मल जैनधर्म रहेंगे, जबतक पृथ्वीके गर्भमें भवनवासी धरणेन्द्रादिक, देवोंके प्रासादसे रमणीय मेरुपर्वत, देवगंगादि नदियां रहेंगी, जबतक त्रिलोकमें मान्य कल्पवृक्ष रहेंगे तबतक इस भारतभूमिपर सैंकडो शुभोंको जन्म देनेवाला पाण्डवोंका यह भारत-पुराण रहें ॥१८६॥

[पाण्डव–पुराण–रचनाकाल] श्रीमान् विक्रमराजाके १६०८ सोलहसौ आठ के रमणीय वत्सरमें सुखदायक भाद्रपद द्वितीया तिथिके दिन लक्ष्मीसंपन्न वाग्वर या वागड प्रान्तमें शाकवाट

श्रीमद्वाग्वरनीवृतीदमतुलं श्रीशाकवाटे पुरे।
श्रीमच्छ्रीपुरुधाम्नि वै विरचितं स्थेयात्पुराणं चिरम् ॥ १८७
तदहं शास्त्रं प्रवक्ष्यामि पुराणं पाण्डवोद्भवम्।
सहस्रषट्भवेन्नूनं शुभचन्द्राय कथ्यते ॥[1]

इति श्रीपाण्डवपुराणे भारतनाम्नि भ. श्रीशुभचन्द्रप्रणीते ब्रह्मश्रीपाल-साहाय्यसापेक्षे पाण्डवोपसर्गसहनकेवलोत्पत्तिमुक्तिसर्वार्थसिद्धि-गमनवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमं पर्व ॥ २५ ॥

या सागवड नामक नगरमें श्रीसंपन्न आदिनाथ जिनमंदिरमें यह भारत अर्थात् पाण्डव-पुराण श्रीशुभचंद्र भट्टारकजीने रचा है वह चिरंजीव रहें ॥ १८७ ॥

मैं पाण्डवोंका पुराण-शास्त्र कहता हूं। श्रोताओंको शुभ और आल्हादके लिये मैं उसकी छह हजार श्लोकसंख्या कहता हूं ॥

ब्रह्म श्रीपालकी साहायतासे श्री भट्टारक शुभचंद्रजीने रचे हुए महाभारत नामक पाण्डवपुराणमें पाण्डवोंने कुर्यधर द्वारा किया हुआ उपसर्ग सहन किया, तीन पाण्डवोंको केवलज्ञान और मुक्तिकी प्राप्ति हुई, नकुल, सहदेव मुनियोंको सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्रदेवत्व प्राप्त हुआ इन बातोंका वर्णन करनेवाला पच्चीसवां पर्व समाप्त हुआ ॥ २५ ॥

---

१ प, ग आदर्शयोरयमाधिकः श्लोक उपलभ्यते।

श्लोकोंका शुद्धिपत्रक।

पत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	३	सर्वस्व	सर्वस्वः
८	६	विशिष्ट	वशिष्ट
१४	४	मेदगम्	भेदगम्
३३	७	कुलीना	कुलीनाः
३९	१०	वन	व्रनं
५५	११	तिरेहितान्	तिरोहितान्
७२	३	त्वसुनतां	त्वन्सुनतां
७७	६	शोकाकुलौ	शोकाकुलो
१०७	३	सुपर्नाणाः	सुपर्वाणः
१०९	१	जिनेश	जिनेशः
१२३	१	मानुषादौ	मानुषाद्रौ
१३७	३	समयाति	समायाति
१५६	२	कलभाषणः	कलभाषणैः
१५७	५	मातङ्ग	मातङ्गं
१९३	१०	अर्धधर्मं	अर्धमर्धं
१९६	४	सच्छत्र	सच्छत्रं
२०१	१	सेचन्द्र	संचेन्द्र
२३८	७	कौरवं	कौ रवं
२४६	१२	मेघवृन्दसम	मेघवृन्दसमं
२५०	१	सुधमात्मा	सुधर्मात्मा
२५२	५	इदृशाः	ईदृशाः
२५६	५	कौरवा	कौरवाः
२६८	२	सनद्धो	संनद्धो
२९५	१	भूपति भव्यं	भूपतिर्भव्यम्
३००	२	चौद्गतौ	चोद्गतौ
३१०	३	कामक्रीडाग्रहं स्वार्ण	कामक्रीडागृहं स्वार्णं
३१०	४	कनकाद्रीतटं	कनकाद्रितटं
३१३	११	बाणन	बाणेन

पत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१५	६	पाथ	पार्थ
३१९	८	परांस्तजति	परांस्तर्जति
३२४	१३	कम	कर्म
३३४	९	स्तूण	स्तूर्ण
३३८	३	चाथ	चार्थं
३३८	११	नेतव्य	नेतव्यं
३४०	१	तः	तैः
३४८	२	समभ्यर्ण	समभ्यर्णे
३४८	१०	योगाङ्गे यो	यो गाङ्गेयो
३६४	१	विकसद्वक्रो	विकसद्वक्त्रो
३६४	५	सुखः	सुखैः
३८५	७	पार्थयामासप्रार्थ	प्रार्थयामास पार्थ
३८७	१२	तूण	तूर्णं
४०६	७	गाङ्गयः	गाङ्गेयः
४१२	२	ब्रह्मचय	ब्रह्मचर्यं
४१४	८	पञ्चम	पञ्चमं
४१६	१	सस्राहणि	सहस्राणि
४१७	४	कलकल	कलकलं
४२७	५	वत्मनि	वर्त्मनि
४३२	५	दशाभिस्तु	दशभिस्तु
४४९	१०	विपक्षाक्ष	विपक्षाक्षै
४७९	१	पषणी	पेषणी
४८५	५	पवित्राणुव्रत	पवित्राणुव्रतं
५०८	४	ससार	संसार
५०८	१०	द्रापदी	द्रौपदी

हिंदी अनुवादका शुद्धिपत्रक।

२	१४	अर्थका	अर्थको
१८	२४	करने रहे हैं	कर रहे हैं

पत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१	१०	क्षत्रियाक	क्षत्रियोंके
३१	१६	तान	तीन
३६	१०	कटाक्षविक्षप	कटाक्षविक्षेप
३६	२१	क्रिया था	क्रिया—थी
३८	११	बाजत	वर्जित
३८	१४	अलंकार, सद्गणा	अलंकारोंकी सद्गुणोंकी
३८	२४	बुद्धमान	बुद्धिमान
४०	१८	महिनातक	महिनोंतक
४२	१९	सामप्रभ	सोमप्रभ
७५	१३	बोल	बोले
७९	११	दखा	देखा
८५	१२	उनका	उनको
१२७	२४	'आधार' यह शब्द यहां नहीं चाहिये	
१२१	१४	विशाली	विशाल
२३४	१९	सुवणके	सुवर्णके
२७८	२९	मुनिराज	मुनिराजने
२८९	२७	पिशाच	पिशाचयुक्त
२९०	२९	वह पिशाच भीम	वह भीम
२९५	२१—२२	निबंध	प्रबंध
२९८	१५	निदय	निर्दय
३००	२२	पदाथ	पदार्थ
३२७	१८	शीलका	शीलकी
३६५	१५	दस दिनोंके अनंतर	इसके अनंतर
४१४	२२	धमसे	धर्मसे
४२२	१८	उत्तम शल्यके समान दीखते हैं	उत्तम शल्यके समान दीखते हैं ग्रहण करो
४४४	२८	बहुओंसे	बाहुओंसे
५०५	१४	संबधन	संवर्धन
५१३	२२	उद्युक्तचित्तवाले	उद्युक्तचित्त

—०—